॰ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॰

कल्याण

ज्योतिषतत्त्वाङ्क

कोड १२२०

[जनवरी सन् २०१४ ई०]

वर्ष ८८

संख्या १

गीताप्रेस, गोरखपुर

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

ज्योतिषतत्त्वाङ्क

वर्ष : ८८

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या : १

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,१५,०००)

मंगलाभिशंसा

सूर्यः शौर्यमथेन्दुरुच्चपदवीं सन्मङ्गलं मङ्गलः
सद्बुद्धिं च बुधो गुरुश्च गुरुतां शुक्रः सुखं शं शनिः।
राहुर्बाहुबलं करोतु विपुलं केतुः कुलस्योन्नतिं
नित्यं प्रीतिकरा भवन्तु भवतां सर्वे प्रसन्ना ग्रहाः॥

भगवान् सूर्य पराक्रम, चन्द्रमा श्रेष्ठ पद, मंगल शुभ मंगल, बुध सद्बुद्धि, गुरु गौरव, शुक्र सुख, शनि कल्याण, राहु विपुल बाहुबल एवं केतु परिवारको उन्नति प्रदान करें। सभी ग्रह प्रसन्न होकर निरन्तर आप सभीके लिये प्रीतिकारक हों। [मानसागरी]

* कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

एकवर्षीय शुल्क *
भारतमें ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क *
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (Rs.2700), पंचवर्षीय US$ 225 (Rs.13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

भुवनभास्कर ग्रहाधिपति भगवान् श्रीसूर्यनारायण

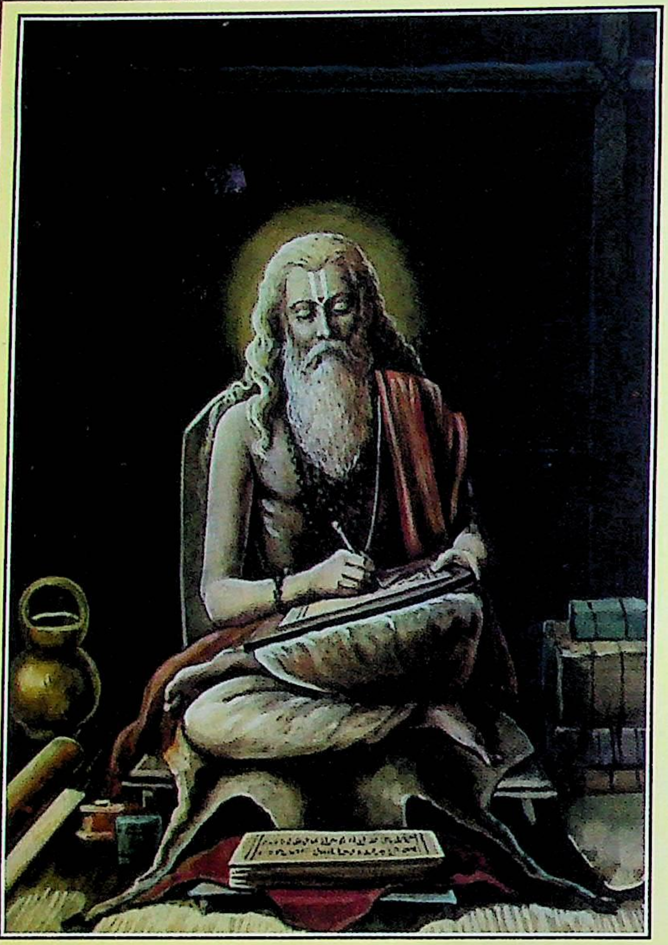

महर्षि व्यास

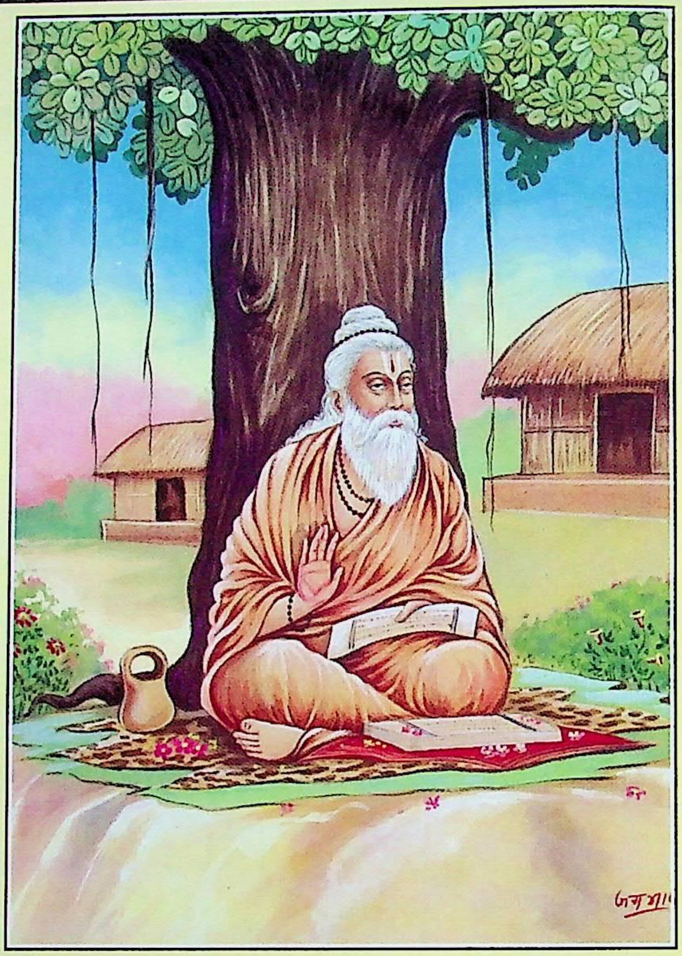

महर्षि वसिष्ठ

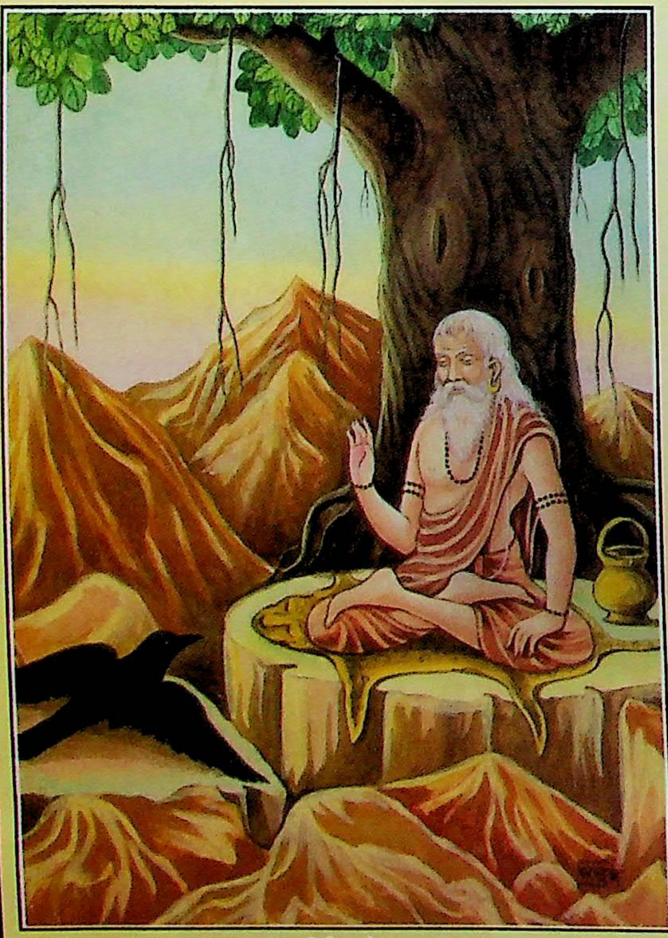

महर्षि लोमश

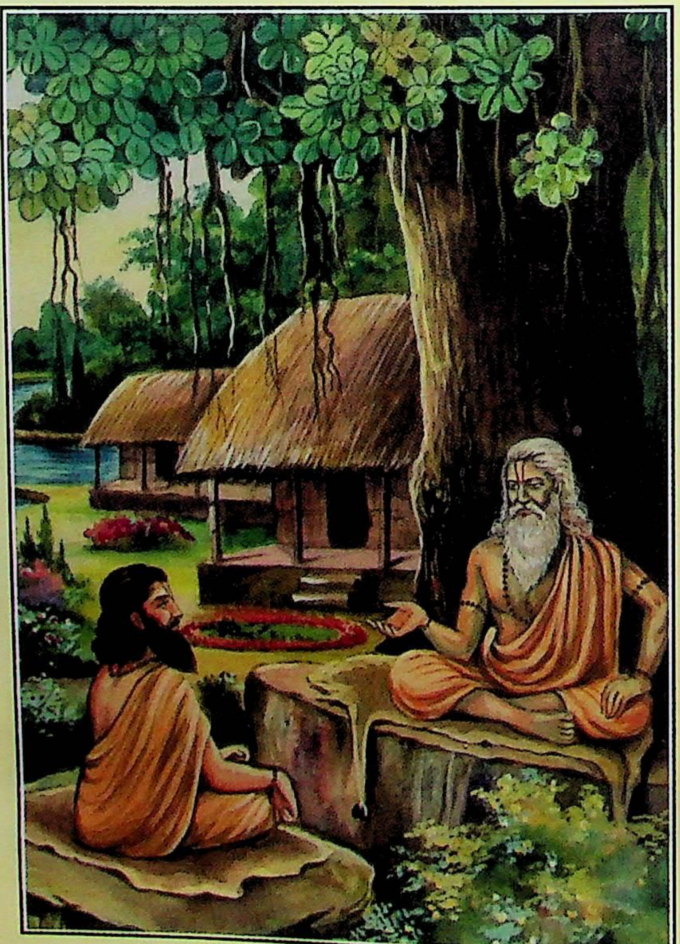

महर्षि अंगिरा

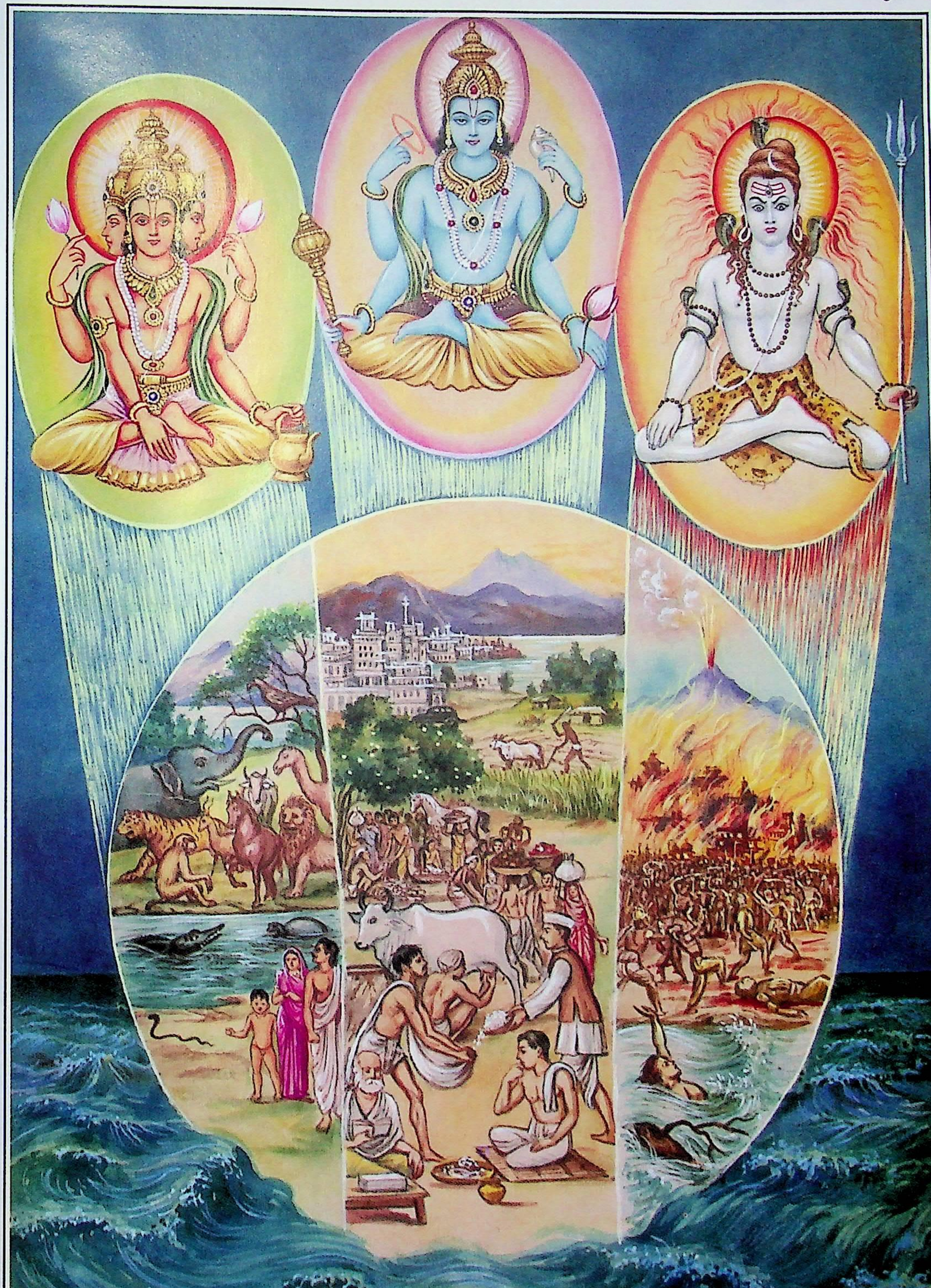

सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी, पालनकर्ता भगवान् विष्णु एवं संहारकर्ता भगवान् शिव

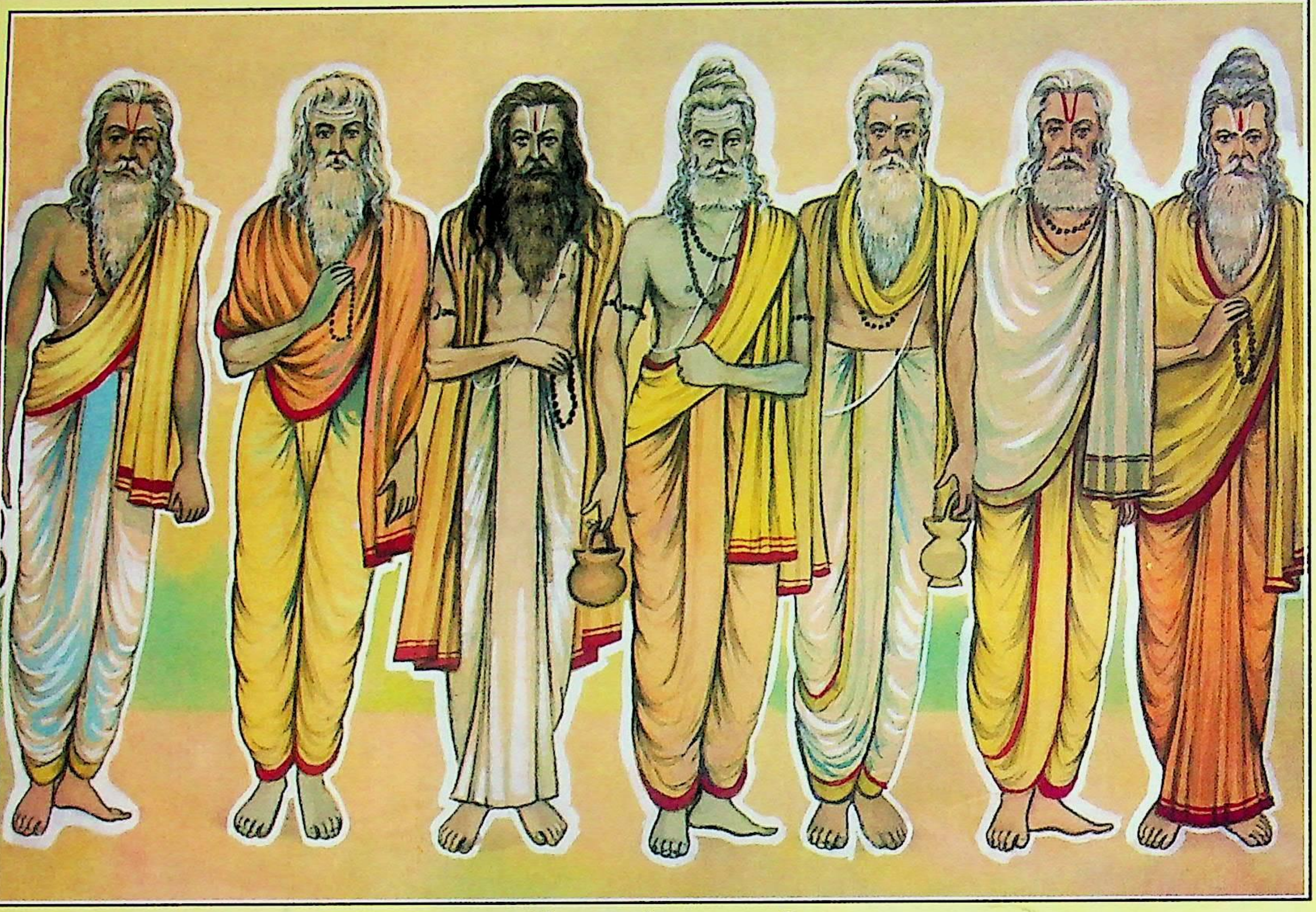

सप्तर्षिमण्डलके सात ऋषि

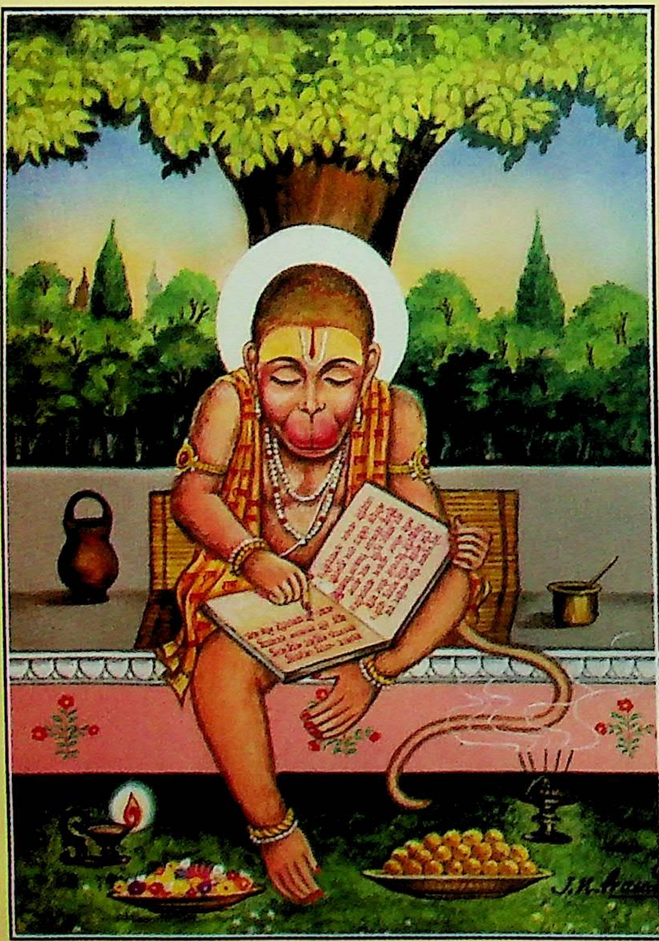

दैवज्ञ श्रीहनुमान्‌जी

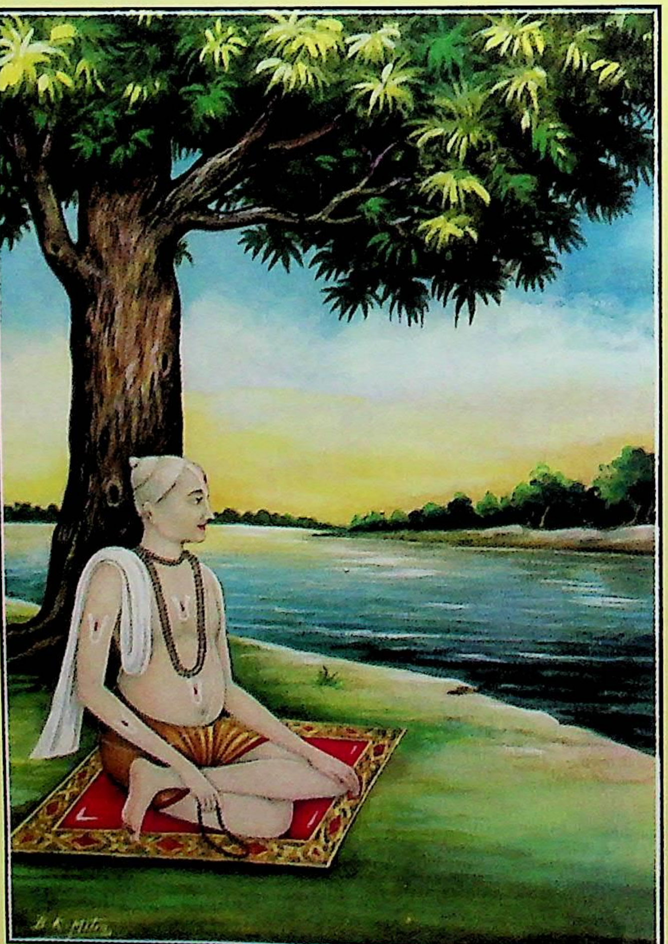

ज्योतिषमर्मज्ञ गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

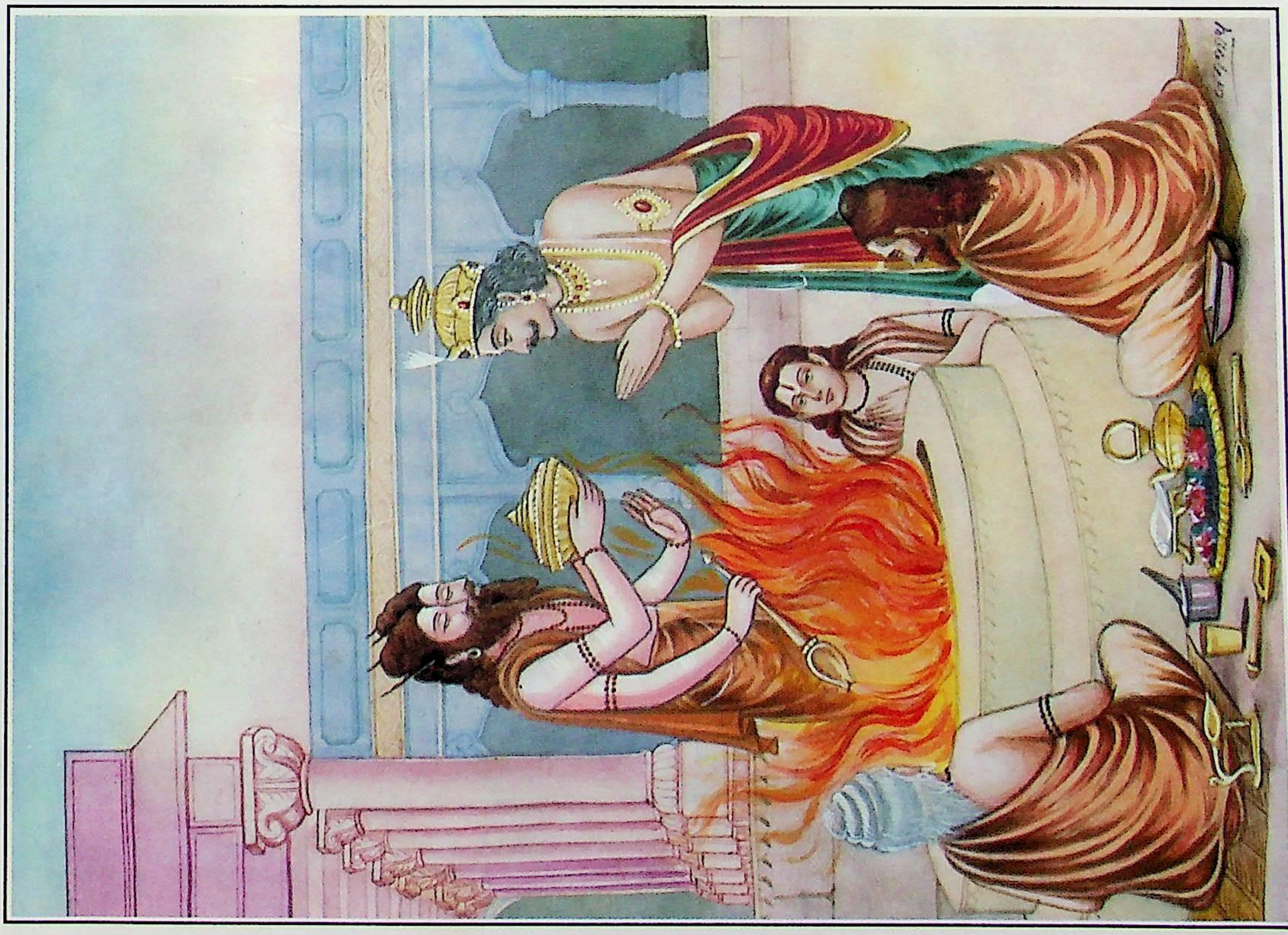

पुत्रेष्टियज्ञसे दशरथजीको चरुकी प्राप्ति

भगवान् वासुदेवद्वारा उत्तराके गर्भकी रक्षा

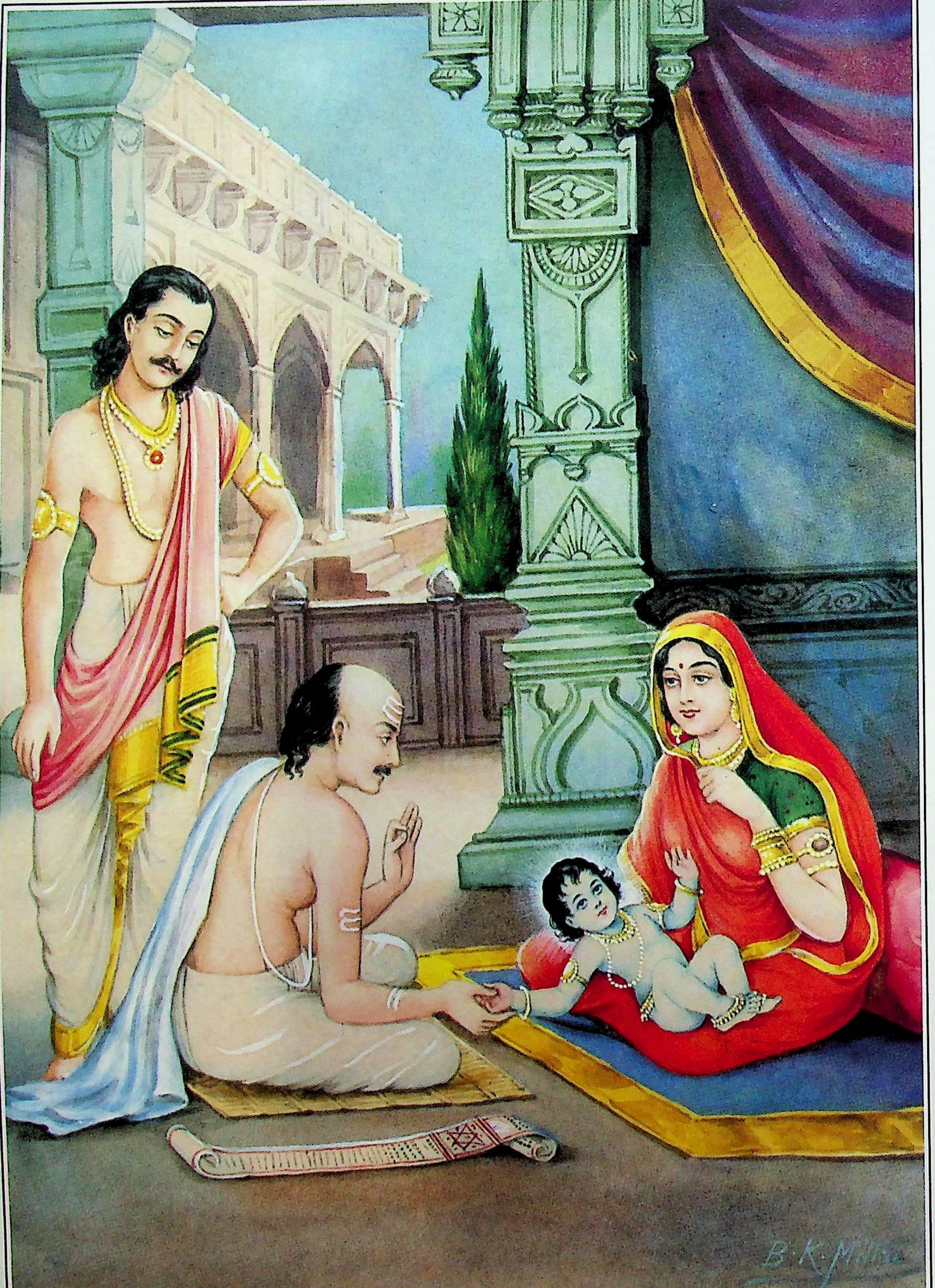

श्रीगर्गाचार्यद्वारा बालक कृष्णका फलित-विचार

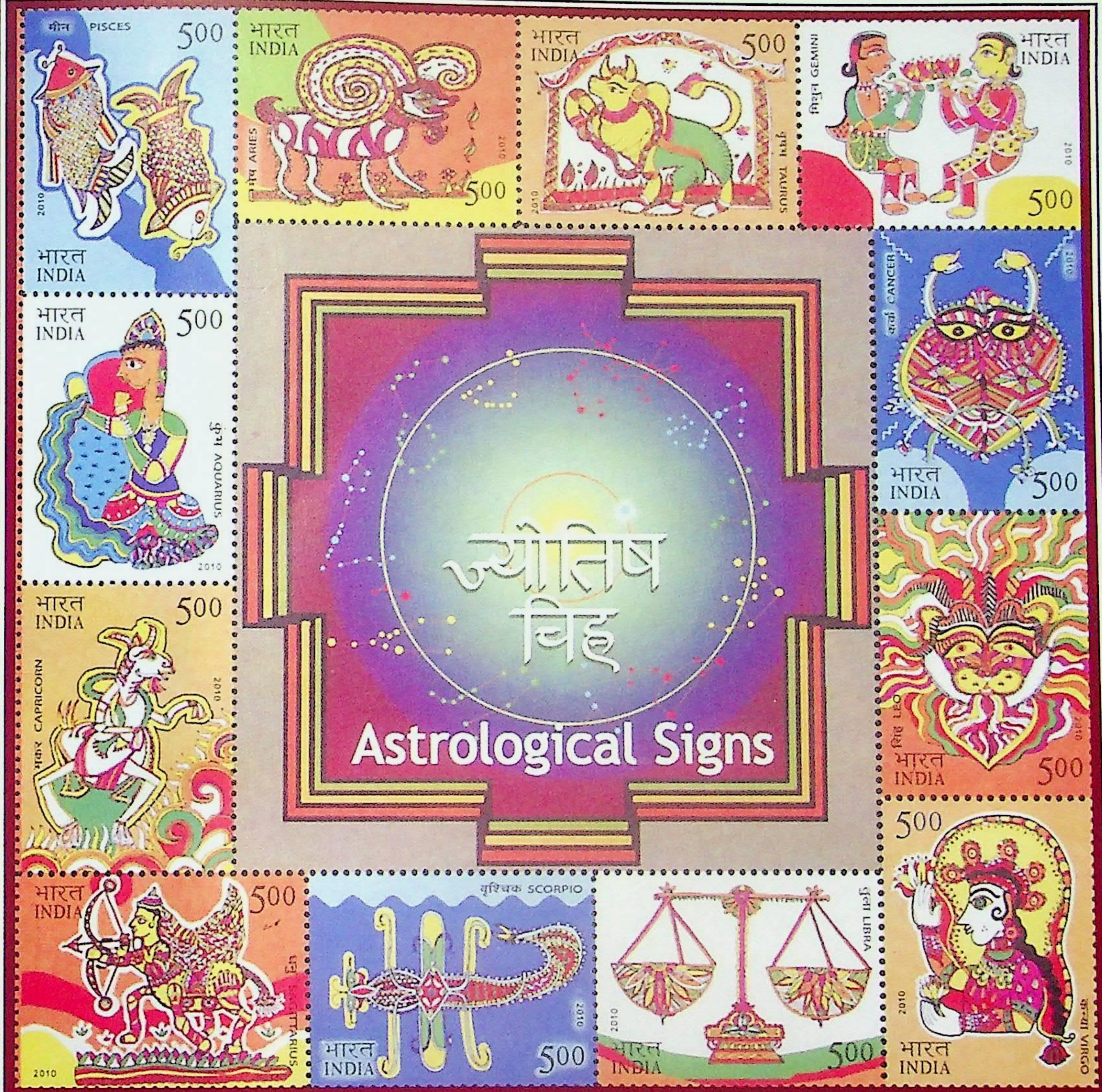

भारत सरकारद्वारा सन् २०१० ई० में द्वादश राशियों तथा १९७४ ई० में सूर्य एवं चन्द्रमापर जारी डाकटिकट

भगवान् सदाशिवद्वारा बालक रामका भविष्यफल-कथन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

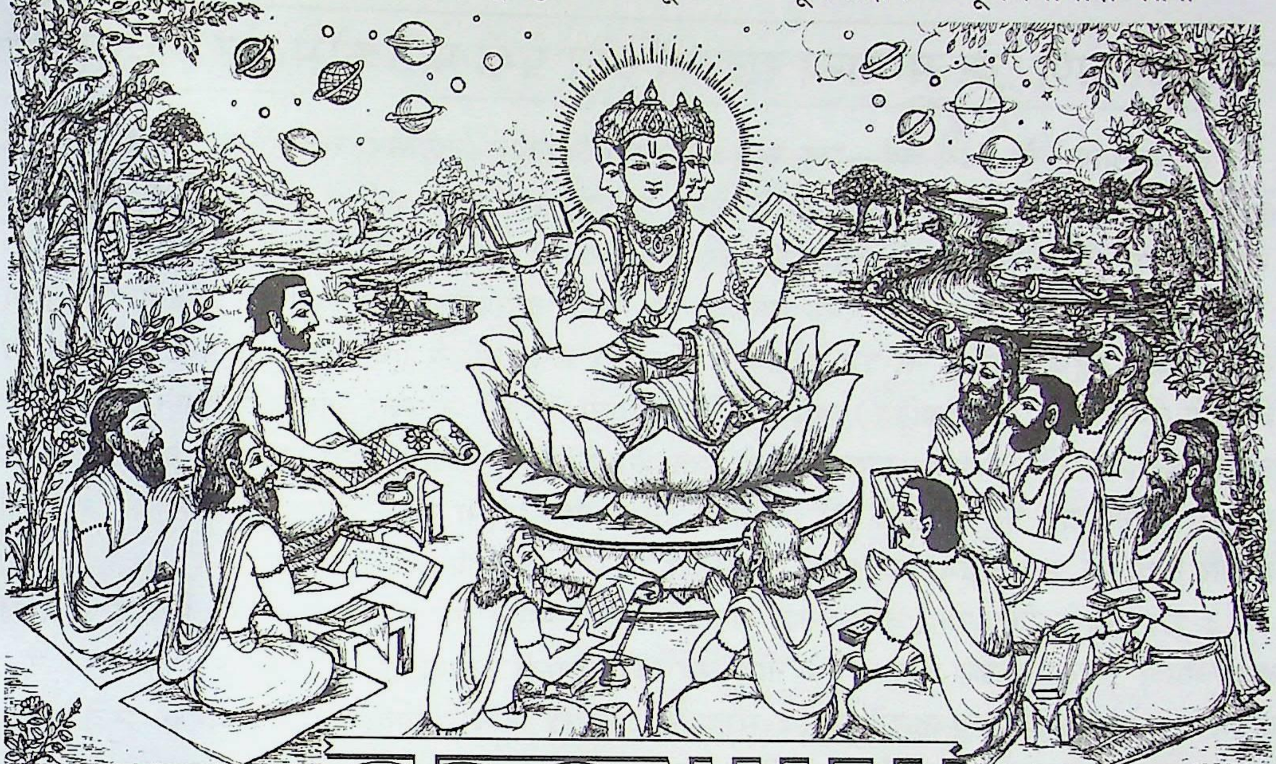

कल्याण

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं देवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि॥

वर्ष ८८ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०७०, श्रीकृष्ण-सं० ५२३९, जनवरी २०१४ ई० | संख्या १

पूर्ण संख्या १०४६

सच्चिदानन्दके ज्योतिषी

अवध आजु आगमी एकु आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुतन्ह परिचौ पायो॥ १॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।
सँग सिसुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो॥ २॥
पायँ पखारि, पूजि दियो आसन असन बसन पहिरायो।
मेले चरन चारु चार्‌यो सुत माथे हाथ दिवायो॥ ३॥
नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक, नयन जल छायो।
लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो॥ ४॥
जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिस सीय-स्वयंबर गायो।
राम, भरत, रिपुदवन, लखनको जय सुखु सुजस सुनायो॥ ५॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो।
सनमान्यो महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो॥ ६॥

[गीतावली]

Kalyan Visheshank_2014_Section_2_1_Front

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ८८वें वर्ष—सन् २०१४ का यह विशेषाङ्क *'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'* आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४८२ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ६ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये, जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पता एवं पिन-कोड आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)
९	शक्ति-अङ्क	१५०	३०	सत्कथा-अङ्क	१४०	५१	सं० वाराहपुराण	१००
१०	योगाङ्क	१३०	३१	तीर्थाङ्क	१५०	५३	सूर्याङ्क	८०
१२	संत-अङ्क	१८०	३४	सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	२००	५६	श्रीवामनपुराण	११०
१५	साधनाङ्क	२५०	३५	सं० योगवासिष्ठ	१४०	५८-५९	श्रीमत्स्यमहापुराण-सानुवाद	२३०
१९	सं० पद्मपुराण	२००	३६	सं०शिवपुराण (बड़ा टाइप)	२००	६६	सं० भविष्यपुराण	१५०
२०	गो-अङ्क	१७०	३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१७५	६७	शिवोपासनाङ्क	१००
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	७५	३९	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	१२०	६९	गोसेवा-अङ्क	१००
२१	सं० ब्रह्मपुराण	१००	४३	परलोक और पुनर्जन्माङ्क	१५०	७१	कूर्मपुराण-सानुवाद	१००
२२	नारी-अङ्क	२००	४४-४५	श्रीअग्निपुराण (सानुवाद)	२००	७३	वेद-कथाङ्क	१००
२३	उपनिषद्-अङ्क	१५०	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान् श्रीराधा-		७४	सं० गरुडपुराण	१४०
२५	सं० स्कन्दपुराण	२८०		कृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	१३०	७५	आरोग्य-अङ्क (संवर्धित सं०)	१७०
२६	भक्त-चरिताङ्क	२००	४५	नरसिंहपुराण-सानुवाद	७०	७७	भगवत्प्रेम-अङ्क	८५
२८	सं० नारदपुराण	१७०	४८	श्रीगणेश-अङ्क	१५०	८२	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)	१००
२९	संतवाणी-अङ्क	१५०	४९	श्रीहनुमान-अङ्क	१२५	८३	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्द्ध)	१००

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

Kalyan Visheshank_2014_Section_2_1_Back

श्रीहरिः

'ज्योतिषतत्त्वाङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- सच्चिदानन्दके ज्योतिषी	११
शुभाशंसा—	
२- शान्तिवाक्	१७
३- नक्षत्र-दर्शन	१८
४- कुर्वन्तु वो मङ्गलम्	१९
५- ग्रहाभिवन्दन	२०
६- ज्योतिषशास्त्रका माहात्म्य	२१
७- दैवज्ञकी स्वरूप-मीमांसा और उसकी महिमा	२३
८- नक्षत्रसूची कौन है ?	२४
९- ज्योतिषशास्त्र—एक विश्लेषण (राधेश्याम खेमका)	२५
प्रसाद—	
१०- पितामह ब्रह्मा और उनका ज्योतिर्मय पैतामह सिद्धान्त	३७
११- सूर्यसिद्धान्तके अधिष्ठाता भगवान् सूर्य और उनका महनीय चरित	४१
१२- शास्त्रोंके उपकारक आचार्य बृहस्पति और उनका मुहूर्तशास्त्र	४८
१३- त्रिस्कन्ध ज्योतिषके आदि-उपदेष्टा देवर्षि नारद	५७
१४- दैवज्ञ गर्गाचार्यजी और ज्योतिषतत्त्व-मीमांसा	६३
१५- महर्षि पराशर और उनका होराशास्त्र	६९
१६- लोमशसंहिताके उद्भावक महर्षि लोमश और उनका उदात्त चरित	७८
१७- महर्षि वाल्मीकिकृत वाल्मीकिरामायणमें ज्योतिषप्रकरण	८९
१८- गोस्वामी तुलसीदासजीका ज्योतिष-विचार	९३
१९- सूरसाहित्यमें शकुन-अपशकुन	९८
२०- चन्द्रलोक-यात्रा और भारतीय शास्त्र (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	९९
२१- नवग्रहोंकी उपासना (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१०१
२२- ज्योतिषशास्त्र (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीदयानन्दजी सरस्वती, भारत धर्म महामण्डल)	१०५
२३- 'मार्तण्डाय नमो नमः'	१११
२४- प्रारब्ध और पुरुषार्थ (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीचिदानन्दजी महाराज, सिहोरनिवासी)	११२
२५- कालविवेचन (महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराज)	११७
२६- देश-काल-तत्त्व (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१२२
२७- काशीके मध्ययुगीन ज्योतिषी (महामहोपाध्याय पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय)	१२४
२८- नवग्रहों के वैदिक मन्त्र	१२६
२९- सच्चिदानन्दके ज्योतिषी (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२७
३०- भविष्यवाणियाँ, जो अक्षरशः सत्य सिद्ध हुईं (गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी) [प्रे० श्रीशिवकुमारजी गोयल]	१२८
३१- पंचांगश्रवणका माहात्म्य	१२९
३२- गीतामें ज्योतिष (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१३०
३३- भगवान् रामका जन्मकाल एवं जन्मकुण्डली [आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री]	१३१
३४- भगवान् श्रीकृष्णका जन्मपत्र [पं० श्रीलज्जारामजी मेहता]	१३३
आशीर्वाद—	
३५- ज्योतिषशास्त्रका वैशिष्ट्य (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)	१३४
३६- भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति [श्रीमद्भागवत]	१३६
३७- ज्योतिषके बहुविध रूप एवं उनकी उपादेयता (अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१३७
३८- नवग्रहोंका स्वरूप [मत्स्यपुराण]	१४२
३९- ज्योतिषदर्शन (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१४३
४०- नवग्रहोंकी समिधाएँ [मत्स्यपुराण]	१४७
४१- ज्योतिषशास्त्रकी उपादेयता (अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१४८
४२- कर्म-मीमांसा [महाभारत]	१४९
४३- जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यका व्रतादि-विषयक कपाल (स्पर्श)-वेध सिद्धान्त (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)	१५०
४४- काल और कालातीत चिन्तन (परमपूज्य संत श्रीहरिहरजी महाराज दिवेगाँवकर)	१५१
४५- नवग्रहपीडाहरस्तोत्र [ब्रह्माण्डपुराण]	१५२
ज्योतिषतत्त्वविमर्श—	
४६- ज्योतिषतत्त्वविमर्श (आचार्य श्रीशशिनाथजी झा)	१५३
४७- ज्योतिषशास्त्र-तत्त्ववर्णन (गोपदरेणु श्रीमंगलतीर्थजी महाराज)	१५७
४८- भारत-भारती [कविता] (श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त) [प्रे० श्रीत्रिलोचनप्रसादजी व्यास]	१५९
४९- ज्योतिषशास्त्र एवं मानव-जीवन (डॉ० श्रीगिरिजाशंकरजी शास्त्री)	१६०

विषय	पृष्ठ-संख्या

५०- ज्योतिष—मानवका परम हितैषी पथ-प्रदर्शक (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०, डी०एस-सी०) १७१
५१- ज्योतिर्विज्ञानकी उपादेयता (डॉ० श्रीविद्याभास्करजी वाजपेयी) १७३
५२- 'प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रम्' (श्रीपंकजकुमारजी झा, नव्यव्याकरणाचार्य) १७८
५३- 'ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र है' (श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी शास्त्री, वरिष्ठ धर्माधिकारी) १८२
५४- ज्योतिष-गौरव [कविता] (ज्योतिषाचार्य पं० श्रीशंकरलालजी गौड़ 'शम्भूकवि') १८३
५५- ज्योतिषशास्त्रका सामान्य परिचय (प्रो० श्रीचन्द्रमौलीजी उपाध्याय, ज्योतिषाचार्य, पी-एच०डी०) १८४
५६- ज्योतिष—ईश्वरीय ज्ञान (श्रीबिमलकुमारजी लाभ, एम०एस-सी०) १८७
५७- ज्योतिष एक प्रामाणिक शास्त्र है (डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग) १८९
५८- ज्योतिर्विज्ञान—भौतिक उन्नति तथा आध्यात्मिक उन्नयन (प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम', डी०लिट०) १९१
५९- ज्योतिषकी उपादेयता और इसके ज्ञानकी आवश्यकता (श्रीमेघराजजी अग्रवाल) १९३
६०- ज्योतिषविद्या सत्कर्मकी उत्प्रेरिका है (डॉ० श्रीरामेश्वर प्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०) १९५
६१- मानव-जीवन और ज्योतिष (डॉ० श्रीहरिकृष्णजी छँगाणी) १९८
६२- सनातन काल-चेतना [कविता] (आचार्य श्रीपानसिंहजी रावत) १९९
६३- ज्योतिषनिरूपण—भ्रान्तिनिवारण (एकराट् पं० श्रीश्यामजीतजी दूबे 'आथर्वण') २००
६४- भूकम्प एवं वैदिक ज्योतिष—एक समीक्षा (आचार्य श्रीअश्विनीकुमारजी मिश्र) २०५
६५- भारतीय ज्योतिषकी प्राचीनतापर विदेशी विद्वानोंके अभिमत (डॉ० श्रीनेमिचन्द्रजी शास्त्री, ज्योतिषाचार्य). २०७
६६- जन्मान्तरीय शुभ कर्मका फल २०९
६७- भारतीय कालगणना (पं० श्रीसीतारामजी स्वामी, एम०ए०, बी०एड०, ज्योतिषाचार्य) २१०
६८- ज्योतिषीय कालपरिमाण (श्रीजगदीशप्रसादजी तिवारी).. २१४
६९- इसलामी एवं रोमन-कैलेण्डरका स्रोत (पं० श्रीविनयजी झा) २२२
७०- कालगणना और विक्रमसंवत् (पं० श्रीबालकृष्णजी कौशिक) २२६

जातकतत्त्व-मीमांसा [होरास्कन्ध]—

(क) फलितविचार

७१- होरास्कन्धविमर्श (डॉ० श्रीअशोकजी थपलियाल) २२८

विषय	पृष्ठ-संख्या

७२- जन्मकुण्डलीके प्रारम्भमें देनेयोग्य कतिपय मांगलिक श्लोक २३२
७३- कुण्डली-निर्माणके लिये आवश्यक ज्ञातव्य बातें (पं० श्रीरामजी लाल जोशी) २३४
७४- जातकतत्त्व-मीमांसा (श्रीचयनिकाजी शर्मा) २४१
७५- फलित ज्योतिषमें भाव-विचार (प्रो० श्रीसुरेशचन्द्रजी पाण्डे) २४७
७६- विभिन्न भावोंमें सूर्य-स्थितिके फल (डॉ० श्रीकामेश्वरजी उपाध्याय) २५०
७७- जगके प्रकाशक सूर्य [कविता] (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०) २५२
७८- प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणका ग्रहोंसे सम्बन्ध (याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्य) २५३
७९- जन्म-मृत्यु और ग्रह-विचार (डॉ० श्रीनारायणदत्तजी श्रीमाली, एम०ए०, पी-एच०डी०) २५५
८०- नवग्रहोंकी स्वरूप-मीमांसा (पं० श्रीबाबूलालजी द्विवेदी, मानसमधुप) २५७
८१- ग्रह एवं राशिज्ञान-तालिका [प्रेषक—श्रीमाँगीलालजी प्रजापति] २६०
८२- राशिपरिचय—गुण-धर्म (श्रीहरिनारायणजी 'शास्त्री').. २६१
८३- बारह राशियोंके जातकका स्वरूप (डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी श्रीवास्तव, साहित्यवाचस्पति) २६३
८४- प्रायौगिक विज्ञानसिद्ध-द्रष्टलग्न या भावलग्न (श्रीवासुदेवजी) २६५
८५- शनि-पाद-विचार २६८
८६- नक्षत्र-विवेचन (श्रीअभयजी कात्यायन) २६९
८७- शनिकी साढ़ेसाती २७३
८८- लोकमनमें नक्षत्र (डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी) ... २७४
८९- सप्तर्षि एवं सप्तर्षिमण्डल २७७
९०- ज्योतिष फलादेशके महत्त्वपूर्ण सूत्र (श्रीसन्तोषकुमारजी 'राम') २७९
९१- ज्योतिषमें आयुविचार (प्रो० श्रीआई० एन० चन्द्रशेखरजी रेड्डी) २८१
९२- यात्रा-मुहूर्त तथा प्रस्थान-विचार २८४
९३- होराचक्र (अवकहडाचक्र) २८५
९४- नैसर्गिक ग्रहमैत्रीचक्र २८५
९५- वर-कन्या वैवाहिक अष्टकूट-मिलान (मेलापक)-हेतु उपयोगी सारणियाँ २८६
९६- विवाह-मेलापक तथा मंगल, गुरु एवं सूर्यपर विचार (डॉ० श्रीकृष्णपालसिंहजी गौतम) २८७
९७- विवाहमेलापकमें अष्टकूटदोषोंका परिहार (श्रीकृष्णकान्तजी भारद्वाज) २८९
९८- व्यापार-व्यवसायका चयन (श्रीतुलसीदासजी तिवारी).. २९१
९९- कालसर्पयोग (श्रीहरिनारायणजी 'शास्त्री') २९२
१००- नाहक बदनाम है—कालसर्पयोग (डॉ० श्रीमनोहरजी वर्मा) २९८

विषय	पृष्ठ-संख्या

१०१- पुत्रकामेष्टि... २९९
१०२- ज्यौतिषशास्त्रकी रीतिसे सन्त-लक्षण (दैवज्ञ विनोद) . ३००
१०३- भविष्यवाणियाँ—जो कभी असत्य नहीं होतीं (श्रीपुरुषोत्तम नागेशजी ओक)........................... ३०१
१०४- भविष्यवाणियाँ, जो सत्य निकलीं (श्रीशिवकुमारजी गोयल)............................... ३०४
१०५- ज्योतिष और अनुभव (कार्ष्णि डॉ० श्रीराधेश्यामजी अग्रवाल, एम०ए०, पी-एच०डी०)...................... ३०६
१०६- राजा बननेका योग (श्रीउमाकान्तजी शास्त्री 'पंचमुखीदास')............... ३०८
१०७- ग्रहोंसे मनुष्योंका सम्बन्ध [दो विलक्षण ज्योतिषी] (श्रीशंकरबालकृष्णजी दीक्षित)........................... ३०९
१०८- भद्राका स्वरूप, विधि-निषेध तथा परिहार (डॉ० श्रीरामनिहोरजी पाण्डेय)............................ ३११
१०९- पंचकविचार ३१५
११०- सूर्य-चन्द्रग्रहण-विमर्श.. ३१६
१११- आर्ष ज्योतिषकी गूढ़ विधि [नाडीग्रन्थों और भृगुसंहिता आदिसे पाराशरहोराशास्त्रके अस्पष्ट अंशोंका सम्बन्ध] (पं० श्रीविनयजी झा).. ३२२
११२- ज्योतिष, कर्मफल और अरिष्टनिवारणकी मीमांसा (डॉ० श्रीसत्येन्दुजी शर्मा)................................. ३३१

(ख) ग्रहोपासनाका स्वरूप

११३- सूर्यादि ग्रहोंके रत्न, यन्त्र, व्रत, मन्त्र और औषधि (पं० श्रीमदनलालजी शर्मा)............................... ३३३
११४- नवग्रहोंके निमित्त दान (श्रीश्रीनारायणजी शर्मा, ज्योतिषाचार्य)................ ३३८
११५- ज्योतिष और रत्न (डॉ० श्रीमूलवर्धनजी राजवंशी) ३४२
११६- नवग्रहोंके जपनीय मन्त्र.. ३४५
११७- योगिनियोंके अरिष्ट-शमनहेतु मन्त्र............................ ३४५
११८- ज्योतिष और रोग (डॉ० कल्पनाजी ठोंबरे)............. ३४६
११९- हृदयरोगका ज्योतिषशास्त्रीय निदान एवं उपचार (डॉ० श्रीशत्रुघ्नजी त्रिपाठी)................................. ३४९
१२०- कुण्डलीके भाव या घर (House) या भाव परिचय ३५३
१२१- गर्भरक्षक श्रीवासुदेव-सूत्र (पं० श्रीमाधवप्रसादजी पाण्डेय).......................... ३५४
१२२- मैं शनि हूँ (ज्योतिर्विद् पं० श्रीश्रीकृष्णजी शर्मा) ३५६
१२३- नवग्रह-कवच [यामलतन्त्र] ३५८
१२४- शनिदेवके कतिपय आख्यान..................................... ३५९
१२५- ज्योतिषमें गो-महिमा [पं० श्रीश्रीकृष्णजी शर्मा] ३६३
१२६- वास्तुदोषोंका निवारण करती है गाय [प्रे०—श्रीसंजयकुमारजी चाण्डक]........................ ३६४
१२७- सदाचारका पालन न करनेसे ग्रहोंका दुष्प्रभाव (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)........................... ३६५
१२८- ग्रहोंके दान-पदार्थ... ३६६

ज्योतिषशास्त्रके विविध आयाम—

१२९- ज्योतिर्विद्या और योगशास्त्र (प्रो० श्रीरामचन्द्रजी पाण्डेय) ३६७
१३०- सामुद्रिक शास्त्र और हस्तविज्ञान (श्रीभँवरलालजी शर्मा) ३७२

विषय	पृष्ठ-संख्या

१३१- जन्मराशि और नामराशिका विचार [ज्योतिर्निबन्ध]... ३७३
१३२- ज्योतिष और आयुर्वेद (वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)........ ३७४
१३३- भारतीय वर्षा-विज्ञान (श्रीशिवनाथजी पाण्डेय शास्त्री).. ३७५
१३४- स्वरविज्ञान और ज्योतिषशास्त्र (श्रीजगदीशचन्द्रजी मेहता) ३७८
१३५- वास्तुशास्त्र और आरोग्य (श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन) .. ३८१
१३६- रत्नोंका ज्योतिषीय प्रभाव (डॉ० श्रीमनोहरजी वर्मा)... ३८४
१३७- शकुन-शास्त्र (डॉ० श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')......... ३८६
१३८- शुभ-अशुभ शकुन तथा उनके समाधान (डॉ० श्रीगोकुलप्रसादजी तिवारी, पी-एच०डी०)...... ३९४
१३९- ज्योतिषशास्त्र और अंगविद्या (आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, पी-एच०डी०) ३९६
१४०- श्राद्धके लिये 'ज्योतिषशास्त्रोक्त' कालशुद्धि (पं० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय 'किशनमहाराज') ३९९
१४१- श्रीरामचरितमानसमें स्वप्न-प्रसंग (श्रीमदनगोपालजी).. ४०१
१४२- विलक्षण ज्योतिष-विद्या—'हाजरात' (डॉ० श्रीश्याममनोहरजी व्यास)........................ ४०४
१४३- मुगल बादशाह जहाँगीरद्वारा राशियोंको सिक्कोंपर स्थान (डॉ० मेजर श्रीमहेशकुमारजी गुप्ता)..................... ४०५

ज्योतिषशास्त्रका इतिहास—

१४४- ज्योतिषशास्त्रका संक्षिप्त इतिहास ४०६
१४५- काशीके विशिष्ट ज्योतिषाचार्य................................ ४१६
१४६- म०म० पं०श्रीसुधाकरजी द्विवेदी ४१८
१४७- काशीके कुछ अनोखे रत्न (श्रीपण्डितराजजी)......... ४२१
१४८- ज्योतिषमें मिथिलाका अवदान (डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक')...................... ४२२
१४९- ज्योतिष-जगत्‌के सूर्य—पं० श्रीसूर्यनारायणजी व्यास (डॉ० श्रीराजशेखरजी व्यास)................................ ४२८
१५०- ज्योतिष्मती नारियाँ.. ४३२
१५१- कृष्णभक्त श्रीरहीमजीका फलित-विचार ४३४
१५२- कुमाऊँके ज्योतिषी (डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम०ए०, पी-एच०डी०).. ४३६
१५३- लोकज्योतिषी घाघ और भड्डरीकी भविष्यवाणियाँ (डॉ० श्रीरमेशप्रतापसिंहजी)................................. ४३९
१५४- वेध एवं वेधशालाओंकी परम्परा (डॉ० श्रीविनयकुमारजी पाण्डेय)......................... ४४४
१५५- महाराजा सवाई जयसिंह एवं उनकी प्रस्तर-वेधशालाएँ (ठा० श्रीप्रह्लादसिंहजी)........................ ४४६

सत्साहित्यमें ज्योतिषनिरूपण—

१५६- वेदोंमें ज्योतिष (श्रीओमप्रकाशजी पालीवाल, एम०ए०, एल०एल०बी०).. ४५१
१५७- शतपथब्राह्मणके अन्तर्गत ज्योतिष तथा वास्तुके मूलतत्त्व (श्रीप्रवेशजी व्यास).................... ४५२
१५८- स्वप्नमें गोदर्शनका फल [पं० श्रीराजेश्वरजी शास्त्री सिद्धान्ती]...................... ४५५
१५९- योगवासिष्ठमें वर्णित दैव-पुरुषार्थवाद—एक विवेचन (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम०एस-सी०, पी-एच०डी०) ४५६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१६०- वाल्मीकिरामायणमें ज्योतिषके कुछ विशिष्ट प्रकरण (पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री, शास्त्रार्थपंचानन)	४५७
१६१- ज्योतिषीय दृष्टिसे पौराणिक कालगणना और उसमें श्रीमद्भागवतका वैशिष्ट्य (प्रो० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	४६२
१६२- व्याकरण और निरुक्तमें ज्योतिषकी अवधारणा (डॉ० श्रीदिव्यस्वरूपजी ब्रह्मचारी)	४६७
१६३- कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें ज्योतिषतत्त्व (श्रीअरविन्दकुमारजी श्रीवास्तव, एम०ए०, बी०एड०)	४७०
१६४- ज्योतिषमें पराशरोक्त सृष्टिक्रम और अवतारवाद (श्रीकान्तमणिजी त्रिपाठी)	४७२
१६५- राजस्थानी साहित्यमें ज्योतिषके दोहे (पं० श्रीप्रह्लादरायजी व्यास 'साहित्य-सुधाकर', ज्योतिषाचार्य)	४७३
१६६- महाकवि जायसीके ग्रन्थोंमें ज्योतिष (डॉ० श्रीघनानन्दजी शर्मा 'जदली', ज्योतिषविशारद)	४७८
१६७- फलित ज्यौतिषके प्रत्यक्ष अनुभव (पं० श्रीदेवीदत्तजी शर्मा, ज्यौतिषाचार्य)	४८०
ज्योतिष और अध्यात्म—	
१६८- ज्योतिषशास्त्रमें भगवत्तत्त्व (डॉ० श्रीनागेन्द्रजी पाण्डेय, ज्योतिषाचार्य)	४८१
१६९- ज्यौतिषशास्त्रमें भगवन्नाम तथा प्रार्थनाकी महत्ता (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)	४८३
१७०- ज्योतिष और अध्यात्म (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री)	४८५
१७१- ज्योतिषशास्त्रमें भगवत्कृपा (श्रीबलरामजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न, ज्योतिषाचार्य)	४८७
१७२- 'धर्मो रक्षति रक्षितः' [कहानी] (श्री 'चक्र')	४८९
१७३- प्रारब्धकर्म एवं ज्योतिषशास्त्र (प्रो० श्रीपारसनाथजी द्विवेदी)	४९१
१७४- नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना	४९७

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- ग्रहों एवं राशियोंका स्वरूप	आवरण-पृष्ठ
२- भुवनभास्कर ग्रहाधिपति भगवान् श्रीसूर्यनारायण	३
३- ज्योतिषशास्त्रके उपदेष्टा आचार्य—	
[क] महर्षि व्यास [ख] महर्षि वसिष्ठ	४
[ग] महर्षि लोमश [घ] महर्षि अंगिरा	४
४- सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी, पालनकर्ता भगवान् विष्णु एवं संहारकर्ता भगवान् शिव	५
५- [क] सप्तर्षिमण्डलके सात ऋषि [ख] दैवज्ञ श्रीहनुमान्जी [ग] ज्योतिषमर्मज्ञ गो० श्रीतुलसीदासजी	६
६- [क] भगवान् वासुदेवद्वारा उत्तराके गर्भकी रक्षा	७
[ख] पुत्रेष्टियज्ञसे दशरथजीको चरुकी प्राप्ति	७
७- श्रीगर्गाचार्यद्वारा बालक कृष्णका फलित-विचार	८
८- भारत सरकारद्वारा द्वादश राशियों तथा सूर्य एवं चन्द्रमापर जारी डाकटिकट	९
९- भगवान् सदाशिवद्वारा बालक रामका भविष्यफल-कथन	१०

(सादे चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- पितामह ब्रह्माजी	३०
२- ब्रह्माजीका ऋषियोंको उपदेश	४०
३- सप्ताश्ववाहन भगवान् सूर्य	४१
४- व्यासजीको उपदेश देते हुए देवर्षि नारदजी	५७
५- भगवान् विष्णु एवं देवर्षि नारद	५८
६- यशोदाका बालकृष्णके द्वारा मुनि गर्गको प्रणाम करवाना	६४
७- महर्षि पराशर और मैत्रेयजी	७२
८- इन्द्रका गर्वभंग	७९
९- लोमशजीका इन्द्रद्युम्नको अपनी चिरायु बताना	८०
१०- पाण्डवोंद्वारा महर्षि लोमशका स्वागत	८६
११- आरण्यक मुनिका ब्रह्मरन्ध्र फूटना	८८
१२- महर्षि वाल्मीकि	८९
१३- दशरथ और भगवान् श्रीरामजीका संवाद	८९
१४- भगवान् श्रीराम	१३१
१५- ज्योतिर्विद् वररुचिके आदेशपर नवजातका बोलना	२०९
१६- सूर्यद्वारा अपनी पुत्री भद्राको विश्वरूपको सौंपना	३११
१७- राजा दशरथद्वारा शनिके विरुद्ध बाण-सन्धान	३५९
१८- गोमाता	३६३
१९- देवर्षि नारदद्वारा भगवती पार्वतीकी हस्तरेखाएँ देखना	३७३
२०- जहाँगीरके राशिचिह्नके सिक्के	४०५
२१- म०म० पं० श्रीबापूदेवजी शास्त्री	४१७
२२- म०म० पं० श्रीसुधाकरजी द्विवेदी	४१८
२३- पं० श्रीसूर्यनारायणजी व्यास	४२८
२४- महाराजा सवाई जयसिंह	४४६
२५- दिल्लीकी वेधशाला	४४८
२६- उज्जैनकी वेधशाला	४४८
२७- वाराणसीकी वेधशाला	४४८
२८- जयपुरकी वेधशाला	४४८

शान्तिवाक्

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् । शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥
शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् । शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥
इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता । ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥
इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् । येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥
इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः । उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥
नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥
शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा । शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥
शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः । शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥

द्युलोक, पृथ्वी, विस्तृत अन्तरिक्षलोक, समुद्री जल और ओषधियाँ—ये सभी उत्पन्न होनेवाले अनिष्टोंका निवारण करके हमारे लिये सुख-शान्ति प्रदान करें। पूर्वजन्ममें किये गये कर्म हमारे लिये शान्तिप्रदायक हों। हमारे द्वारा सम्पन्न किये गये और न किये गये कार्य भी शान्ति प्रदान करें। भूत और भविष्यत् दोनों हमारे लिये शान्ति-प्रदायक सिद्ध हों। सभी कर्म हमें शान्ति और सुख प्रदान करें। परमपदपर विराजमान एवं तेजस्वी ज्ञानसे देदीप्यमान जो वाणीकी देवी सरस्वती हैं, वे हमारे द्वारा दूसरोंके प्रति बोले गये अपशब्दोंके दोषसे हमें मुक्त करें तथा हमारे लिये शान्ति प्रदान करनेवाली सिद्ध हों। यह जो परम स्थानमें विराजमान और ज्ञानसे देदीप्यमान इस जगत्का मूल कारण मन है, यदि इसके द्वारा दुष्कर्मकी उत्पत्ति हुई हो तो यही हमारे द्वारा किये गये बुरे कर्मोंके प्रभावको शान्ति प्रदान करे। चेतनाद्वारा संचालित मनके साथ जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे हृदयमें वास करती हैं, उनसे यदि अपराधकर्म बन पड़ा हो तो उनके द्वारा रचित उस दुष्कर्मकी हमारे प्रति शान्ति हो। दिनके अधिष्ठाता देवता सूर्य (मित्र), रात्रिके अभिमानी देव वरुण, पालनकर्ता विष्णुदेव, प्रजाके पालक प्रजापति, परम वैभवयुक्त इन्द्रदेव, बृहस्पति तथा अर्यमादेव—ये सभी देवता हमें शान्ति प्रदान करनेवाले हों। मित्र, वरुण, अन्धकारनाशक विवस्वान्, सभी प्राणियोंके संहारकर्ता अन्तकदेव, हमें सुख प्रदान करनेवाले सिद्ध हों। पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकमें होनेवाले उत्पात और द्युलोकमें विचरणशील मंगल आदि ग्रह हमारे दोषका निवारण करके हमारे लिये शान्तिप्रद सिद्ध हों। उल्काओंसे फेंका गया नक्षत्र हमें शान्ति प्रदान करनेवाला हो। अभिचार-क्रियाएँ तथा कृत्या-प्रयोग भी हमारे लिये शान्तिप्रद हों। भूमिमें खोदकर किये गये प्रयोग भी हमारे लिये घातक न हों। उल्काएँ शान्त हों। देशमें होनेवाले सभी प्रकारके विघ्न भी शान्त हो जायँ। चन्द्रमण्डलके मंगल आदि ग्रह, राहुसे ग्रस्त आदित्य ग्रह, मारक धूमकेतुके अनिष्ट और रुद्रके तीखे सन्तापक उत्पात—ये सभी शान्त हों। एकादश रुद्रगण, आठ वसुगण, बारह आदित्य, सभी प्रकारकी अग्नियाँ, इन्द्रादि देवशक्तियाँ, सप्तर्षि और बृहस्पतिदेव—ये सभी शान्ति प्रदान करते हुए हमारे लिये कल्याणकारी सिद्ध हों। **[अथर्ववेद]**

नक्षत्र-दर्शन

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्॥
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम्॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्॥
आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु॥
यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु॥
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन्॥

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते। सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि॥
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥

हम अनिष्टनिवारक श्रेष्ठ बुद्धिकी कामना करते हुए, द्युलोकमें विचित्र वर्णोंसे एक साथ चमकते हुए, नष्ट न होनेवाले, तीव्र वेगसे सतत गतिशील नक्षत्रों एवं स्वर्गलोककी अपनी वाणीसे स्तुति करते हैं। हे अग्निदेव! कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र हमारे लिये सुखपूर्वक आवाहन करनेयोग्य हों। मृगशिरा नक्षत्र कल्याणप्रद हो। आर्द्रा शान्तिकारक हो। पुनर्वसु श्रेष्ठ वक्तृत्वकला (वाक्शक्ति) देनेवाला एवं उत्तम फलदायी हो। आश्लेषा प्रकाश देनेवाला तथा मघा नक्षत्र हमारे लिये प्रगतिशील मार्ग प्रशस्त करनेवाला हो। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र पुण्यदायी, हस्त और चित्रा नक्षत्र कल्याणकारी, स्वाति नक्षत्र सुखदायी, राधा-विशाखा नक्षत्र आवाहनयोग्य तथा अनुराधा, ज्येष्ठा एवं मूल नक्षत्र मंगलप्रद हों। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हमारे लिये अन्नप्रद और उत्तराषाढ़ा बलदायक अन्नरस प्रदान करे। अभिजित् हमारे लिये पुण्यदायी, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्र हमारे लिये उत्तम रीतिसे पालन करनेवाले हों। शतभिषक् नक्षत्र महान् वैभवप्रदाता तथा दोनों श्रेष्ठपदा नक्षत्र हमें श्रेष्ठ सुख प्रदान करनेवाले हों। रेवती और अश्वयुक् (अश्विनी) नक्षत्र ऐश्वर्यदाता तथा भरणी नक्षत्र भी हमें वैभव प्रदान करनेवाले हों। जो नक्षत्र द्युलोकमें, अन्तरिक्षलोकमें, जलमें, पृथ्वीमें, पर्वतश्रेणियों तथा दिशाओंमें दिखायी देते हैं, चन्द्रमा जिनको प्रदीप्त करते हुए प्रादुर्भूत होते हैं; वे सभी नक्षत्र हमें सुख प्रदान करनेवाले हों। कृत्तिकादि कल्याणप्रद जो अट्ठाईस नक्षत्र हैं, वे हमें अभीष्ट प्रदान करें। नक्षत्रोंका सहयोग हमारे लिये लाभप्रद हो। हम प्राप्त वस्तुके संरक्षणमें समर्थ हों। हम अहोरात्रके प्रति वन्दना करते रहे, हमें योग-क्षेम प्राप्त हो। प्रातः-सायं हमारे लिये सुखप्रद हों। हम श्रेष्ठ प्रयोजनहेतु अनुकूल नक्षत्रमें गमन करें, जिसमें हरिण आदि पशु-पक्षी शुभ संकेतवाले हों। हे अमर्त्य अग्ने! आप हमारी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर यहाँ पधारें। ××× हे ब्रह्मणस्पति इन्द्रदेव! पूर्व आदि जिन दिशाओंमें आँधी-तूफानके रूपमें वायुदेव चलते हैं, उन्हें आप उपयुक्त मार्गसे चलनेवाला बनाकर हमारे लिये मंगलमय बनायें। हमारा हर तरहसे कल्याण हो, हमें निर्भयताकी प्राप्ति हो। अहोरात्ररूप देवको हमारा नमस्कार है। **[अथर्ववेद]**

कुर्वन्तु वो मङ्गलम्

श्रीमत्पङ्कजविष्टरो हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनलश्चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणाः प्रेताधिपाद्या ग्रहाः।
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
गौरी श्रीः कुलदेवता च सुभगा भूमिः प्रपूर्णा शुभा सावित्री च सरस्वती च सुरभिः सत्यव्रतारुन्धती।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी दुःस्वप्नविध्वंसिनी वेलाश्चाम्बुनिधेः समीनमकराः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
गङ्गा सिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा कावेरी सरयूर्महेन्द्रतनयाश्चर्मण्वती देविका।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता गया गण्डकी पुण्याः पुण्यजलैः समुद्रसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमाः धेनुः कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शङ्खोऽमृतं चाम्बुधेः रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः सूर्यो ग्रहाणां पतिः शक्रो देवपतिर्हविर्हुतपतिः स्कन्दश्च सेनापतिः।
विष्णुर्यज्ञपतिर्यमः पितृपतिः शक्तिः पतीनां पतिः सर्वे ते पतयः सुमेरुसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
आदित्यादिनवग्रहाः शुभकरा मेषादयो राशयो नक्षत्राणि सयोगकाश्च तिथयस्तद्देवतास्तद्गणाः।
मासाब्दा ऋतवस्तथैव दिवसाः सन्ध्यास्तथा रात्रयः सर्वे स्थावरजङ्गमाः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥

सर्वैश्वर्यसम्पन्न ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव, वायुदेव, देवराज इन्द्र तथा अग्निदेवता, चन्द्रदेवता, भगवान् सूर्य, धनाध्यक्ष कुबेर, वरुण और संयमनीपुरीके स्वामी यमराज, सभी ग्रह, श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न, नल और कूबर, ऐरावत गज, चिन्तामणि, कौस्तुभमणि, शक्तिको धारण करनेवाले स्वामी कार्तिकेय तथा हलायुध बलराम—ये सब आपलोगोंका मंगल करें। भगवती गौरी (पार्वती), भगवती लक्ष्मी, अपने कुलके देवता, सौभाग्ययुक्त स्त्री, सभी धन-धान्योंसे सम्पन्न पृथ्वीदेवी, ब्रह्माकी पत्नी सावित्री और सरस्वती, कामधेनु, सत्य एवं पातिव्रत्यको धारण करनेवाली वसिष्ठपत्नी अरुन्धती, अग्निपत्नी स्वाहा देवी, कृष्णपत्नी जाम्बवती, रुक्मभगिनी देवी रुक्मिणी तथा दुःस्वप्ननाशिनी देवी, मीन और मकरोंसे संयुक्त समुद्र एवं उनकी वेलाएँ—ये सब आपलोगोंका मंगल करें। भागीरथी गंगा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी, सरयू तथा महेन्द्रपर्वतसे निःसृत समस्त नदियाँ, चर्मण्वती, देविका नामसे प्रसिद्ध देवनदी, क्षिप्रा, वेत्रवती (बेतवा), महानदी, गयाकी फल्गुनदी, गण्डकी या नारायणी—ये सब पुण्यजलवाली पवित्र नदियाँ अपने स्वामी समुद्रके साथ आपलोगोंका मंगल करें। भगवती लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, पारिजात नामका कल्पवृक्ष, वारुणीदेवी, वैद्यराज धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु गौ, देवराज इन्द्रका ऐरावत हस्ती, रम्भा आदि सभी अप्सराएँ, सात मुखवाला उच्चैःश्रवा नामक अश्व, कालकूट विष, भगवान् विष्णुका शार्ंगधनुष, पांचजन्य शंख तथा अमृत—ये समुद्रसे उत्पन्न चौदह रत्न आपलोगोंका प्रतिदिन मंगल करें। वेदोंके स्वामी ब्रह्मा, पशुपति भगवान् शंकर, ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्य, देवताओंके स्वामी इन्द्र, हव्य पदार्थोंमें श्रेष्ठ हविर्द्रव्य—पुरोडाश, देवसेनापति भगवान् कार्तिकेय, यज्ञोंके स्वामी भगवान् विष्णु, पितरोंके पति धर्मराज और सभी स्वामियोंकी स्वामिनी शक्तिस्वरूपा भगवती महालक्ष्मी—ये सभी स्वामिगण पर्वतराज सुमेरुगिरिसहित आपलोगोंका मंगल करें। कल्याण-मंगल करनेवाले सूर्य-चन्द्रमा आदि नौ ग्रह, मेष-वृष आदि बारह राशियाँ, विष्कुम्भ-प्रीति आदि योगोंसहित अश्विनी-भरणी आदि सत्ताईस नक्षत्र, प्रतिपदा-द्वितीया आदि तिथियाँ, उन तिथियोंके देवता तथा उनके गण, चैत्रादि द्वादश मास, वत्सर-इडावत्सर आदि संवत्सर, वसन्त-ग्रीष्म आदि ऋतुएँ, रवि-सोम आदि वासर, प्रातः-मध्याह्न तथा सायं—तीनों सन्ध्याएँ, सभी रात्रियाँ और सम्पूर्ण चराचर जीव-जगत्—ये सभी प्रतिदिन आपलोगोंका मंगल करें।

ग्रहाभिवन्दन

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्। तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥
दधिशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम्। नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम्॥
धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम्। कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम्॥
प्रियङ्गुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्। सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम्॥
देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चनसंनिभम्। बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्॥
हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्। सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्॥
नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्। छायामार्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम्॥
अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम्। सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम्॥
पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम्। रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्॥
इति व्यासमुखोद्‌गीतं यः पठेत् सुसमाहितः। दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्नशान्तिर्भविष्यति॥
नरनारीनृपाणां च भवेद्दुःस्वप्ननाशनम्। ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्धनम्॥

जो जपापुष्पके समान अरुणिम आभावाले, महान् तेजसे सम्पन्न, अन्धकारके विनाशक, सभी पापोंको दूर करनेवाले तथा महर्षि कश्यपके पुत्र हैं, उन **सूर्य**को मैं प्रणाम करता हूँ। जो दधि, शंख तथा हिमके समान आभावाले, क्षीरसमुद्रसे प्रादुर्भूत, भगवान् शंकरके शिरोभूषण तथा अमृतस्वरूप हैं, उन **चन्द्रमा**को मैं नमस्कार करता हूँ। जो पृथ्वीदेवीसे उद्भूत, विद्युत्‌की कान्तिके समान प्रभावाले, कुमारावस्थावाले तथा हाथमें शक्ति लिये हुए हैं, उन **मंगल**को मैं प्रणाम करता हूँ। जो प्रियंगु लताकी कलीके समान गहरे हरित वर्णवाले, अतुलनीय सौन्दर्यवाले तथा सौम्यगुणसे सम्पन्न हैं, उन चन्द्रमाके पुत्र **बुध**को मैं प्रणाम करता हूँ। जो देवताओं और ऋषियोंके गुरु हैं, स्वर्णिम आभावाले हैं, ज्ञानसे सम्पन्न हैं तथा तीनों लोकोंके स्वामी हैं, उन **बृहस्पति**को मैं नमस्कार करता हूँ। जो हिम, कुन्दपुष्प तथा कमलनालके तन्तुके समान श्वेत आभावाले, दैत्योंके परम गुरु, सभी शास्त्रोंके उपदेष्टा तथा महर्षि भृगुके पुत्र हैं, उन **शुक्र**को मैं प्रणाम करता हूँ। जो नीले कज्जलके समान आभावाले, सूर्यके पुत्र, यमराजके ज्येष्ठ भ्राता तथा सूर्यपत्नी छाया तथा मार्तण्ड (सूर्य)-से उत्पन्न हैं, उन **शनैश्चर**को मैं नमस्कार करता हूँ। जो आधे शरीरवाले हैं, महान् पराक्रमसे सम्पन्न हैं, सूर्य तथा चन्द्रको ग्रसनेवाले हैं तथा सिंहिकाके गर्भसे उत्पन्न हैं, उन **राहु**को मैं प्रणाम करता हूँ। पलाशपुष्पके समान जिनकी आभा हैं, जो रुद्रस्वभाववाले और रुद्रके पुत्र हैं, भयंकर हैं, तारकादि ग्रहोंमें प्रधान हैं, उन **केतु**को मैं प्रणाम करता हूँ। भगवान् वेदव्यासजीके मुखसे प्रकट इस स्तुतिका जो दिनमें अथवा रातमें एकाग्रचित्त होकर पाठ करता है, उसके समस्त विघ्न शान्त हो जाते हैं, स्त्री-पुरुष और राजाओंके दुःस्वप्नोंका नाश हो जाता है। पाठ करनेवालोंको अतुलनीय ऐश्वर्य और आरोग्य प्राप्त होता है तथा उनके पुष्टिकी वृद्धि होती है।

ज्योतिषशास्त्रका माहात्म्य

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद स वेद सर्वम्॥

वेदोंका प्रवर्तन यज्ञोंके सम्यक् सम्पादनके लिये हुआ। वे यज्ञ भी कालके सम्यक् ज्ञान होनेपर ही यथाविधि सम्पन्न होते हैं। यह ज्योतिषशास्त्र कालका विधायक है, अत: जो ज्योतिषको जानता है, वह सब कुछ जानता है। [विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें पितामहसिद्धान्त]

वेदेषु विद्यासु च ये प्रदिष्टा
धर्मादयः कालविशेषतोऽर्थाः।
ते सिद्धिमायान्त्यखिलाश्च येन
तद्वेदनेत्रं जयतीह लोके॥

वेदोंमें तथा अन्य विद्याओंमें कालविशेषपर आधारित जो धर्म-कर्मादि निर्दिष्ट हैं, वे सभी जिस विद्याके प्रभावसे सिद्ध होते हैं, वेदके चक्षु:स्वरूप उस ज्योतिषशास्त्रकी इस संसारमें जय हो। [ज्योतिर्निबन्धमें महर्षि आर्ष्टिषेणिका वचन]

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं
मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिः
चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः॥

इस ज्योतिषशास्त्रको वेदका चक्षु (नेत्र) कहा गया है। इसी कारण वेदांगोंमें इसकी मुख्यता कही गयी है। कर्ण, नासिका आदि दूसरे अंगोंसे सम्पन्न होनेपर भी नेत्ररूपी अंगसे हीन होनेपर मनुष्य कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हो पाता। [सिद्धान्तशिरोमणि, मध्यमा० ११]

एकासनस्था जलवायुभक्षा
मुमुक्षुवस्त्यक्तपरिग्रहाश्च ।
पृच्छन्ति तेऽप्यम्बरचारिचारं
दैवज्ञमन्ये किमुतार्थचित्ताः॥

जो एक आसनपर स्थित होकर ध्यानमें निमग्न रहते हैं, केवल जल तथा वायुका भक्षण करनेवाले हैं, सभी प्रकारके संग्रहोंका परित्याग किये हुए हैं, ऐसे मोक्षार्थी मुमुक्षुजन भी जब ग्रह-नक्षत्रोंकी गणना करनेवाले दैवज्ञसे अपने भूत-भविष्यकी जिज्ञासा करते हैं तो फिर जो रात-दिन अर्थचिन्तापरायण रहते हैं, उनके विषयमें क्या कहा जाय! अर्थात् वे ज्योतिर्विद्के पास जायँ तो इसमें क्या आश्चर्य!

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम्॥

जिन्होंने गृहस्थाश्रमका परित्यागकर वनका ही आश्रय ग्रहण किया है, जो अहन्ता-ममतासे रहित और आसक्तिसे शून्य हैं, वे भी ग्रह-नक्षत्रोंकी गतिको जाननेवाले ज्योतिर्वेत्तासे अपने विषयमें प्रश्न पूछते हैं।

[वराहमिहिर, बृहत्संहिता २।८]

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम्॥

जिस प्रकारसे मयूरोंकी शिखा उनके शिरोदेशमें स्थित रहती है और जिस प्रकार नागोंकी मणियाँ भी उनके सिरस्थ देशमें रहती हैं, उसी प्रकार वेदांगों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द तथा ज्योतिष)-में ज्योतिषशास्त्र सबसे ऊपर स्थित है। [वेदांगज्योतिष, याजुषज्यौतिष ५]

दिव्यं चार्क्षग्रहाणां च दर्शितं ज्ञानमुत्तमम्।
विज्ञेयार्कादिलोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम्॥

[सूर्यावतारपुरुषने मयासुरसे कहा—] मैंने ग्रह तथा नक्षत्रसम्बन्धी दिव्य उत्तम ज्ञान तुम्हें उपदिष्ट किया। इसके ज्ञानसे व्यक्ति सूर्य आदि लोकोंमें शाश्वत स्थान प्राप्त कर लेता है। [सूर्यसिद्धान्त १४।२३]

न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते।
ब्रह्मलोके प्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः॥

ज्योतिर्विद्याके जाननेवालेको नरकादि लोकोंकी प्राप्ति नहीं होती। दैवका विचार करनेवाला ज्योतिर्वेत्ता ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। [बृहत्संहिता २।१३]

अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं
न किञ्चिदेषां भुवि दृष्टमस्ति।
चिकित्सितज्यौतिषमन्त्रवादाः
पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति॥

अन्य शास्त्र तो विनोदमात्र हैं, इनका इस पृथिवीपर कोई दृष्टान्त नहीं दिखायी देता, किंतु चिकित्साशास्त्र, ज्यौतिषशास्त्र और मन्त्रशास्त्र तो पद-पदपर विश्वास दिलानेवाले हैं। [मुहूर्तचिन्तामणि, पीयूषधारा]

ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्।
ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेद स याति परमां गतिम्॥

ज्योतिश्चक्रमें संसारके सभी जनोंका शुभाशुभ विद्यमान रहता है, जो ज्योतिषशास्त्रको जानता है, वह परमगति (ब्रह्मसायुज्य)-को प्राप्त होता है। [पीयूषधारामें महर्षि गर्गका वचन]

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥

अन्य शास्त्र अप्रत्यक्ष हैं, इसलिये उनमें तो विवाद ही रहता है, किंतु ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्षशास्त्र है और इसके साक्षी सूर्य तथा चन्द्रमा हैं। [पीयूषधारा]

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना: नरावरा:।
कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहा: कर्मफलप्रदा:॥

ग्रहोंके अधीन ही यह सम्पूर्ण संसार है। ग्रहोंके अधीन ही सभी श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं। कालका ज्ञान भी ग्रहोंके अधीन है और ग्रह ही कर्मोंके फलको देनेवाले होते हैं। [बृहस्पतिसंहिता १।६]

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

पूर्वजन्ममें प्राणियोंने जो शुभ अथवा अशुभ कर्म किया है, उसके परिणामको तथा उस परिणामका समय कब होगा, इस बातको यह ज्योतिषशास्त्र उसी प्रकार बता देता है, जैसे अँधेरेमें दीपक पदार्थोंको दिखा देता है। [बृहस्पतिसंहिता १।८]

यथा काष्ठमय: सिंहो यथा चित्रमयो नृप:।
तथा वेदाद्यधीतोऽपि ज्योति:शास्त्रं विना द्विज:॥

जिस प्रकार काष्ठसे निर्मित सिंह तथा चित्रमें बनाया गया राजा प्राणविहीन होनेसे कुछ भी करनेमें निष्फल होता है, उसी प्रकार वेद आदि शास्त्रोंका ज्ञाता द्विज भी ज्योति:-शास्त्रके ज्ञानके बिना निष्फल ही होता है। [पीयूषधारा]

छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

वेदरूपी पुरुषके छन्दशास्त्र पैर हैं, दोनों हाथ कल्प हैं, ज्योतिषशास्त्र नेत्र हैं, निरुक्त श्रोत्र हैं, शिक्षाको वेदकी नासिका तथा मुखको व्याकरण कहा गया है, अत: वेदांगोंके ज्ञानके साथ ही वेदका अध्ययन करनेवाला ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। [पाणिनीय शिक्षा ४१-४२]

होराशास्त्रमिदं सर्वं श्रद्धाविनयसंयुत:।
श्रुत्वा गुरुमुखादेव बुद्धिमानवलोक्य च॥
यो जानाति स शास्त्रार्थं सर्वपापै: प्रमुच्यते।
श्रावयेद्दर्शयेद् विद्वानन्यो गर्गो द्विजोत्तम:॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति।
वेदेभ्यश्च समुद्धृत्य ब्रह्मा प्रोवाच विस्तृतम्॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं वेदाङ्गं वेदचक्षुषी।

जो बुद्धिमान् इस होराशास्त्रको श्रद्धा-विनयसे युक्त होकर गुरुके मुखसे सुनकर और ठीकसे समझकर शास्त्रके अर्थको जानता है, वह सभी पापोंसे छूट जाता है और ऐसा विद्वान् जो दूसरोंको सुनाता है और उपदिष्ट करता है, वह द्विजोत्तम दूसरे गर्गके समान होता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। यही वेदांग और वेदका नेत्ररूपी आद्यशास्त्र है, जिसे वेदोंसे निकालकर ब्रह्माजीने विस्तारपूर्वक गर्गऋषिको बताया था। [पा०होरा० २९।१—४]

एतद् बुद्ध्वा सम्यगाप्नोति नूनं
धर्मं चार्थं मोक्ष्यमग्र्यं यशश्च।

इस [ज्योतिषशास्त्र]-को भलीभाँति जान लेनेसे व्यक्ति निश्चित ही इस लोकमें धर्म, अर्थ, सर्वपूज्यता तथा यश प्राप्त करता है और मृत्युके अनन्तर उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। [वृद्धवसिष्ठसिद्धान्त]

यो ज्योतिषं वेत्ति नर: स सम्यक्
धर्मार्थकामाँल्लभते यशश्च।

जो इस ज्योतिषशास्त्रको सम्यक् रीतिसे जानता है, वह धर्म, अर्थ, काम तथा यश प्राप्त करता है। [सूर्यसिद्धान्त, मध्यमा० ९२]

सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान् वेद विदश्नुते।
सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्॥

जो विद्वान् चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रके चरितको जानता है, वह विद्वान् सोम-सूर्य तथा नक्षत्रसे प्रचरित प्रसिद्ध चन्द्रलोक, सूर्यलोक और नक्षत्रलोकको प्राप्त करता है अर्थात् वहाँ जाकर वहाँके सुखोंका उपभोग करता है और संसारमें पुत्र-पौत्रादिकोंको प्राप्त करता है।

[याजुषज्योतिष ४४]

दैवज्ञकी स्वरूप-मीमांसा और उसकी महिमा

शान्तो विनीतः शुद्धात्मा देवब्राह्मणपूजकः।
विमुखः परनिन्दासु वेदपाठी जितेन्द्रियः॥
देवताराधनासक्तः स्वरशास्त्रविशारदः।
सिद्धान्तसंहितावेत्ता जातके च कृतश्रमः॥
प्रश्नज्ञः शकुनज्ञश्च प्रशस्तो गणकः स्मृतः।
प्रमाणं वचनं तस्य भवत्येव न संशयः॥

ज्योतिषके ज्ञाताको चाहिये कि वह शान्त स्वभाववाला, विनयसे सम्पन्न, पवित्र अन्तःकरणवाला, देवताओं तथा ब्राह्मणोंमें श्रद्धा रखनेवाला, परनिन्दासे विमुख रहनेवाला, वेदका पारायण करनेवाला तथा जितेन्द्रिय हो। वह देवताओंकी आराधनामें परायण रहनेवाला और सूर्य तथा चन्द्रस्वरका ज्ञान करानेवाले स्वरोदयशास्त्रका पारगामी विद्वान् हो। वह ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्त (गणित) एवं संहितास्कन्धका ज्ञाता हो तथा उसने जातकशास्त्र (फलितज्योतिष)-में पर्याप्त श्रम किया हो। प्रश्नविद्याकी जानकारी रखनेवाला और शकुनशास्त्रमें प्रवीण—इस प्रकारका व्यक्ति श्रेष्ठ गणक (ज्योतिषी) कहा गया है। उसका कहा हुआ वचन प्रामाणिक होता है, इसमें कोई संशय नहीं। [अत्रि]

ग्रन्थतश्चार्थतश्चैव कृत्स्नं जानाति यो द्विजः।
अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पंक्तिपावनः॥
नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते॥
मुहूर्तं तिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा।
सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात्सांवत्सरो यदि॥
कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम्।
यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति॥
अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः।
तथासांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि॥
तस्माद्राज्ञाभिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणीः।
जयं यशः श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता॥

जो द्विज इस ज्योतिषशास्त्रको ग्रन्थके अनुसार अथवा अर्थके अनुरूप भलीभाँति जान लेता है, वह श्राद्धमें प्रथम भोजन करनेयोग्य, पंक्तिपावन तथा सर्वत्र पूज्य हो जाता है। कल्याणकामी व्यक्तिको ऐसे देशमें निवास नहीं करना चाहिये, जहाँ ज्योतिर्विद् न रहता हो; क्योंकि सब बातोंका नेत्ररूप दैवज्ञ जहाँ रहता है, वहाँ पाप नहीं रहता। यदि ग्रह-नक्षत्रोंकी गणना करनेवाला ज्योतिर्विद् न हो तो मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतुएँ तथा अयन—ये सभी व्याकुल हो जायँ। सम्पूर्ण अंगों तथा उपांगोंसहित वेदशास्त्रमें कुशल एवं होराशास्त्र तथा गणितशास्त्रमें परिनिष्ठित दैवज्ञकी जो राजा सेवा-पूजा नहीं करता, वह विनाशको प्राप्त होता है। जिस प्रकार दीपक (प्रकाश)-से विहीन रात्रि तथा सूर्यसे रहित आकाश होता है, वैसी ही स्थिति दैवज्ञके बिना राजाकी होती है, वह (मार्गका ज्ञान करानेवाले ज्योतिषीके अभावमें) अन्धेकी भाँति मार्गमें इधर-उधर भटकता रहता है। अतः विजय, यश, लक्ष्मी, उत्तम भोग तथा कल्याणकी अभिलाषा रखनेवाले राजाको विद्वान् तथा श्रेष्ठ ज्योतिर्विद्के समीपमें जाना चाहिये अर्थात् उसके परामर्शके अनुसार ही कार्य करना चाहिये। [बृहत्संहिता अ० २]

गणितं जातकं शाखां यो वेत्ति द्विजपुङ्गवः।
त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्टः संहितापारगश्च सः॥

जो द्विजश्रेष्ठ गणितस्कन्ध तथा जातकशास्त्रको सम्यक् रूपसे जानता है और संहितास्कन्धका पारगामी विद्वान् है, वह त्रिस्कन्धज्ञ कहा गया है। [गर्ग]

गणितेषु प्रवीणो यः शब्दशास्त्रे कृतश्रमः।
न्यायविद् बुद्धिमान् देशदिक्कालज्ञो जितेन्द्रियः॥
ऊहापोहपटुर्होरास्कन्धश्रवणसम्मतः।
मैत्रेय सत्यतां याति तस्य वाक्यं न संशयः॥

[महर्षि पराशर कहते हैं—] हे मैत्रेय! जो गणितमें

प्रवीण हो, व्याकरणशास्त्रमें जिसने खूब श्रम किया हो, न्यायशास्त्रका जाननेवाला हो, बुद्धिमान् हो, देश-दिक् तथा कालका ज्ञान रखनेवाला हो, तर्क-वितर्क करनेमें अत्यन्त पटु हो और होराशास्त्र (फलित ज्योतिष)-के श्रवणमें जिसकी विशेष अभिरुचि हो, उसका कहा हुआ सब सत्य होता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

[बृहत्पाराशरहोराशास्त्र]

त्रिस्कन्धज्ञो दर्शनीयः श्रौतस्मार्तक्रियापरः।
निर्दाम्भिकः सत्यवादी दैवज्ञो दैववित्स्थिरः॥

दैवज्ञ सिद्धान्त, संहिता तथा होरा—तीनों स्कन्धोंको जाननेवाला, दर्शन करनेयोग्य, श्रुति-स्मृतिविहित कर्म करनेवाला, पाखण्डरहित, सत्यवादी, दैवको जाननेवाला तथा स्थिर मतिवाला होता है। [नारदसंहिता १।१६]

यस्तु सम्यक् विजानाति होरागणितसंहिताः।
अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा॥

विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजाको होराशास्त्र, गणितविद्या तथा संहिताशास्त्र (तीनों स्कन्धों)-को जो भलीभाँति जानता है, ऐसे दैवज्ञका आदर-मान करना चाहिये और उसे अंगीकार करना चाहिये।

[बृहत्संहिता २।२१]

नक्षत्रसूची कौन है ?

अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।
स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः॥

जो पुरुष ज्योतिषशास्त्रको जाने बिना दैवज्ञ बन जाय, उस पापात्मा पंक्तिदूषकको नक्षत्रसूची जानना चाहिये। [बृहत्संहिता २।१७]

तिथ्युत्पत्तिं न जानन्ति ग्रहाणां नैव साधनम्।
परवाक्येन वर्तन्ते ते वै नक्षत्रसूचकाः॥

तिथिकी उत्पत्तिको जो नहीं जानते, ग्रहोंके साधनका ज्ञान जिन्हें नहीं है, केवल दूसरेके कहे-सुनेके अनुसार जो व्यवहार करते हैं, वे नक्षत्रसूचक कहलाते हैं। [मु०चि० पीयूषधारा]

त्रिस्कन्धपारङ्गम एव पूज्यः
श्राद्धे सदा भूसुरवृन्दमध्ये।
नक्षत्रसूची खलु पापरूपो
हेयः सदा सर्वसुधर्मकृत्ये॥

श्राद्धकर्ममें ब्राह्मणसमुदायके मध्य ज्योतिषके तीनों स्कन्धोंका पारगामी विद्वान् ही पूज्य है। नक्षत्रसूची (दैवज्ञ होनेका दम्भ भरनेवाला) निश्चितरूपसे पापात्मा है, वह सभी उत्तम धार्मिक कृत्योंमें सदा ही निन्द्य है, (त्याज्य है)। [पीयूषधारामें महर्षि वसिष्ठका वचन]

दशदिनकृतपापं हन्ति सिद्धान्तवेत्ता
त्रिदिनजनितदोषं तन्त्रविज्ञः स एव।
करणभगणवेत्ता हन्त्यहोरात्रदोषं
जनयति घनमंहश्चात्र नक्षत्रसूची॥

सिद्धान्त (गणित) ज्योतिषका ज्ञाता दस दिनमें किये हुए पापोंको नष्ट कर डालता है, संहिताका ज्ञान कर लेनेपर वह तीन दिनोंमें किये गये पापरूपी दोषको विनष्ट कर देता है और होराशास्त्रकी जानकारी कर लेनेपर अहोरात्र (रात-दिन)-के दोषको दूर कर देता है, किंतु नक्षत्रसूची तो महान् पाप ही उत्पन्न करता है। [पीयूषधारा]

'गृहे गृहे गत्वापृष्ट एष नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि शुभाशुभफलसूचकानि सूचयतीति नक्षत्रसूची।'

जो घर-घर जाकर बिना किसीके पूछे ही (अपना पाण्डित्य दिखानेके लिये) अश्विनी आदि नक्षत्रों (तथा ग्रहों आदि)-के शुभाशुभ फलको बताने लगता है, वह नक्षत्रसूची कहलाता है। [मु०चि० पीयूषधारा]

ज्योतिषशास्त्र—एक विश्लेषण

भारतीय संस्कृतिका मूलाधार वेद हैं। वेदसे ही हमें अपने धर्म और सदाचारका ज्ञान प्राप्त होता है। हमारी पारिवारिक, सामाजिक, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विचारधाराओंके स्रोत भी वेद ही हैं। भारतीय विद्याएँ वेदोंसे ही प्रकट हुई हैं। वेदोंके छः अंग कहे गये हैं—१-शिक्षा, २-कल्प, ३-व्याकरण, ४-निरुक्त, ५-छन्द तथा ६-ज्योतिष। इन्हें षड्-वेदांगोंकी संज्ञा दी गयी है। वेदोंका सम्यक् ज्ञान करानेके लिये इन छः अंगोंकी अपनी विशेषता है। मन्त्रोंके उचित उच्चारणके लिये शिक्षाका, कर्मकाण्ड और यज्ञीय अनुष्ठानके लिये कल्पका, शब्दोंके रूपज्ञानके लिये व्याकरणका, अर्थज्ञानके निमित्त शब्दोंके निर्वचनके लिये निरुक्तका, वैदिक छन्दोंके ज्ञानहेतु छन्दका और अनुष्ठानोंके उचित काल-निर्णयके लिये ज्योतिषका उपयोग मान्य है।

महर्षि पाणिनिने ज्योतिषको वेदपुरुषका नेत्र कहा है—**'ज्योतिषामयनं चक्षुः'**। जैसे मनुष्य बिना चक्षु-इन्द्रियके किसी भी वस्तुका दर्शन करनेमें असमर्थ होता है, ठीक वैसे ही वेदशास्त्र या वेदशास्त्रविहित कर्मोको जाननेके लिये ज्योतिषका अन्यतम महत्त्व सिद्ध है। भूतल, अन्तरिक्ष एवं भूगर्भके प्रत्येक पदार्थका त्रैकालिक यथार्थ ज्ञान जिस शास्त्रसे हो, वह ज्योतिषशास्त्र है। अतः ज्योतिष ज्योतिका शास्त्र है। ज्योतिषशास्त्रसे त्रैकालिक प्रभावको जाना जा सकता है। वेदके अन्य अंगोंकी अपेक्षा अपनी विशेष योग्यताके कारण ही ज्योतिषशास्त्र वेदभगवान्‌का प्रधान अंग—निर्मल चक्षु माना गया है और इसका अन्य कारण यह भी है कि भविष्य जाननेकी इच्छा सभी युगोंमें मनुष्योंके मनमें सर्वदा प्रबल रहती है, जिसकी परिणति यह ज्योतिषशास्त्र है।

प्रातः-उत्थानसे लेकर स्वप्नपर्यन्तकी नित्यचर्या, सम्पूर्ण जीवनचर्या, गर्भसे लेकर मृत्युतक और उसके बाद भविष्यकी बातों, परलोक-पुनर्जन्मकी बातों तथा भूतकालकी स्थितिको ज्योतिष अभिव्यक्त करता है। ज्योतिषभास्कर भास्कराचार्य बताते हैं कि अन्य जन्मोंमें जो भी शुभाशुभ कर्म किया गया हो, उसके फल तथा फलप्राप्तिके समयको यह शास्त्र वैसे ही स्पष्ट व्यक्त करता है, जैसे अन्धकारमें स्थित पदार्थोंको दीपक व्यक्त कर देता है—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

(लघुजातक)

कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति॥

(बृहज्जातक १।३)

इसी कारण ज्योतिषको नेत्र कहा गया है। नेत्रका कार्य है सम्यक् अवलोकन। यह नेत्र मानवके सामान्य नेत्रके समान नहीं है, जिसमें भ्रम-लिप्सा एवं प्रमाद आदिके कारण दृष्टिदोष हो जानेसे यथार्थ ज्ञान भी मिथ्या प्रतीत होने लगता है, फलतः तथ्यसे परे धारणा बन जाती है, किंतु वेदपुरुषका नेत्र एक ऐसा नेत्र है, एक ऐसी दिव्य दृष्टि है, जिस दृष्टिसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और समस्त जीवनिकायका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, व्यवहित-अव्यवहित समस्त कर्म हस्तामलकवत् स्पष्ट दृग्गोचर होने लगता है। जैसे शरीरमें कर्ण, नासिका आदि अन्य अंगोंके अविकल विद्यमान रहनेपर भी नेत्रके न रहनेपर व्यर्थता प्रतीत होती है, व्यक्ति कुछ भी करनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाता है, वैसे ही अन्य शास्त्रोंके रहनेपर भी नेत्ररूपी चक्षुसे हीन होनेपर अर्थात् ज्योतिषशास्त्रके बिना वेदकी अपूर्णता ही रहती है, इसीलिये ज्योतिषशास्त्रकी मुख्यता है।

कृषि, व्यापार, उद्योग, यज्ञ, सदाचार, धर्म, व्यवसाय तथा जीवनयात्राहेतु शुभ कालनिर्णयके लिये ज्योतिष ही एकमात्र साधन है। कर्मोका कौन काल श्रेष्ठ है, कौन मुहूर्त उत्तम है, इसे व्याकरण आदि शास्त्रोंके माध्यमसे नहीं जाना जा सकता। मुहूर्तकी उपयोगिता यज्ञादि कर्मके लिये है। सुन्दर (शुभ) समय जाननेके लिये कालमानका जानना आवश्यक होता है। काल भी शुभाशुभ-मिश्रित रहता है। वसिष्ठ आदि ऋषियोंने इस शास्त्रको कालविधायक शास्त्र कहा है। अतएव कालविधायक शास्त्रको जाननेके पूर्व 'काल' का ज्ञान आवश्यक है।

कालतत्त्व-मीमांसा

संस्कृत वाङ्मयमें 'काल' निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार, अनादि-अनन्त, सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान्‌के रूपमें व्यवहृत होता रहा है। कहा जाता है—**'कालाधीनं जगत्सर्वम्'**। प्राणियोंके व्यावहारिक एवं पारमार्थिक सभी कार्य कालाधीन हैं और 'काल' ज्योतिषशास्त्रके अधीन है। अतः ज्योतिषशास्त्र लौकिक-पारलौकिक सभी कार्योंके लिये मुहूर्त निर्धारित करता है। वैसे तो कालकी विवेचना प्रायः सभी शास्त्रोंमें मिलती है, किंतु ज्योतिषशास्त्र कालका सम्यक् विवेचन करनेके कारण उसका पर्याय ही बन गया है।

एक जिज्ञासा होती है कि कालकी परिभाषा क्या है? इस विषयमें आचार्योंका कथन है कि संसारके सभी दृश्य पदार्थ परिवर्तनशील हैं। इसी परिवर्तनके ज्ञानका जो हेतु है, उसीको काल कहते हैं। यह काल अद्वितीय, सर्वव्यापी तथा नित्य है। भूत, भविष्य एवं वर्तमान—ये कालके व्यावहारिक एवं उपाधिगत (औपाधिक) भेद हैं। परमार्थतः काल एक ही है। कालके ही वशीभूत होकर ब्रह्मा सृष्टि रचते हैं, विष्णु पालन करते हैं तथा शिव संहार करते हैं। वर्षा-शीत-ग्रीष्म, प्रातः-सायं, दिन-रात्रि, शिशिर-हेमन्त-वसन्त आदि कालके ही रूप हैं। इसीमें समस्त प्राणी जन्मते-मरते हैं। कालानुसार ही वृक्षोंमें फल-फूल आते हैं, बीजांकुरण भी कालानुसार ही होता है। किसी कविने कहा है—

धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आये फल होय॥

जैसे वृक्ष यथोचित समयपर फल देते हैं, उसी प्रकार मनुष्यका सुन्दर रूप, कुल, शील, विद्या आदि भी कोई काम नहीं आते, परंतु तपसे अर्जित प्रारब्ध (भाग्य) ही समय आनेपर काम आता है और नाना प्रकारका फल देता है।

सप्ताहके दिनोंका नामकरण जैसे रविवार, सोमवार आदि तथा इन वारोंके क्रम आदिका निर्धारण कोई मनगढ़न्त नहीं है, अपितु भारतीय मनीषाकी अभूतपूर्व देन है, जिसके लिये सम्पूर्ण विश्व भारतका ऋणी है। अथर्ववेदके अथर्वज्योतिषमें वारोंके नाम एवं क्रमका स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुधबृहस्पतिः।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्तदिनाधिपाः॥

रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिवार—ये सप्ताहके सात वार हैं, जिनका नामकरण-संस्कार भारतमें हुआ तथा शेष विश्वने भारतसे ही तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया।

अथर्वा ऋषिके अनुसार काल सबका गृहीता, दाता एवं कर्ता है। मास-पक्ष कालके शरीर हैं, दिन-रात्रि वस्त्र हैं, ऋतुएँ इन्द्रियाँ हैं—यही कालसंज्ञक ब्रह्म है। यह काल ही प्राणिमात्रकी गति है। कालकी गतिका उल्लंघन करना असम्भव है। कालक्रमसे ही ब्रह्मा, इन्द्र, भूपति आदि पद प्राप्त होते हैं। यह काल सर्वतन्त्रस्वतन्त्र होनेपर भी प्राणियोंको शुभाशुभ फल उनके कर्मानुसार ही देता है।

ज्योतिषशास्त्र प्रारब्धका विरोधी नहीं है, अपितु यह प्रारब्धका ज्ञान कराकर, जन्मान्तरीय शुभाशुभका ज्ञान कराकर भविष्यको उज्ज्वल बनानेकी दृष्टि देता है और वर्तमानको सुधारनेका परामर्श देता है—निर्देश देता है। ज्योतिष बताता है कि जन्मान्तरीय शुभाशुभके परिणामसे वर्तमानमें शुभाशुभ प्राप्त हो रहा है, अतः भविष्यको सुधारना है, परलोकको बनाना है तो वर्तमानको सुधारो, अच्छे कर्म करो, प्रारब्धवश जो प्राप्त है, उसका सन्तुष्ट होकर सदुपयोग करो, देवाराधन करो, ग्रहोंकी आराधना करो, नामका आश्रय ग्रहण करो, संसारमें आये हो तो सबकी निःस्वार्थ भावसे सेवा करो, तुम अपने कर्मोंके भोक्ता स्वयं हो, अतः स्वयंको उसका कर्ता मानो। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र, रात-दिन तथा अन्य ग्रह-उपग्रह तुम्हारे किये जानेवाले कर्मोंको देख रहे हैं, जहाँ तुम जरा-सा भी अपने रास्तेसे हटोगे तो समझो कि तुम्हारा समय खराब आनेवाला है, अतः सावधान हो जाओ। इसमें ग्रह निमित्त बनते हैं, कभी अरिष्ट बनकर सूर्य सावधान करता है, कभी चन्द्र सचेत करता है, कभी मंगल उद्‌बुद्ध करता है, कभी शनि विपरीत होकर पीड़ा देता है, ऐसेमें यह समझना चाहिये कि अरिष्ट बनकर—निमित्तकारण बनकर ये ग्रह सावधान करते हैं, सचेत करते हुए मानो कहते हैं कि संसारमें आये हो तो ठीकसे रहो। अच्छे-अच्छे कर्मोंको करो। तुम पाओगे कि ज्योंही तुम ठीक रास्तेपर चलने लगते

हो, ग्रह-नक्षत्र, दैव—सभी अनुकूल होने लगते हैं। ग्रह भी देवरूप हैं, ये महान् दयालु हैं, किसीको कष्ट नहीं देते। अपने किये अच्छे-बुरे कर्मका जब परिपाक (फल प्राप्त होनेका समय) आ जाता है तो देवाज्ञासे ग्रह-नक्षत्र निमित्त बनकर फलीभूत होने लगते हैं। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र हमारे लिये महान् उपयोगी है। इसके निर्देशोंका पालन करना चाहिये। इससे जीवनमें सुख-शान्ति आयेगी और भविष्य सुधर जायगा।

ज्योतिषशास्त्रके उपायोंसे मनुष्य अपने भावी सुख-दुःखादिका ज्ञानकर अपने पौरुषसे उसे अनुकूल बना सकता है—**'हन्यते दुर्बलं दैवं पौरुषेण विपश्चिता।'** (होरारत्न) यह शास्त्र मनोवैज्ञानिकरूपसे उसे सुख-दुःखादि परिस्थितियोंको झेलनेमें सम्बल प्रदान करता है, प्राणिमात्रपर पड़नेवाले शुभाशुभ प्रभावका अध्ययनकर तदनुरूप फल-कथन करता है और मानव-जीवनसे सम्बद्ध विभिन्न पहलुओंकी मीमांसाकर उसे समुचित मार्ग-निर्देशन देता है। ज्योतिषशास्त्र भाग्यपर पूरी तरह निर्भर रहनेकी प्रेरणा न देकर पुरुषार्थ करनेका सन्देश देता है। अपने क्रियमाण कर्मोंद्वारा शिथिल प्रारब्धको ज्योतिष अन्यथा कर देता है। इसके लिये देवाराधना, ग्रहशान्ति, मणिधारण, मन्त्र-जप, दान आदि उपाय निर्दिष्ट हैं। अथर्वज्योतिष (१६०-१६१)-में बताया गया है कि व्रत एवं उपवास करनेसे, गौओंके दानसे, ऋषियोंके लिये तर्पण करनेसे अथवा विद्वान् ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करनेसे ग्रह-नक्षत्रोंसे उत्पन्न होनेवाले दोष शान्त हो जाते हैं। जो व्यक्ति ग्रह-नक्षत्र, देवता, पितर और ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, संसारमें उसकी भी पूजा होती है और जो इनका अपमान करता है तो ये उसके लिये अनिष्टकारी बन जाते हैं—

उपवासैर्गवां दानैस्तर्पणैश्च मनैषिणाम्।
ग्रहनक्षत्रजाः दोषाः प्रशाम्यन्तीह देहिनाम्॥
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव देवता पितरो द्विजः।
पूजिताः प्रतिपूज्यन्ते निर्दहन्त्यपमानिताः॥

ज्योतिषशास्त्रके अध्ययनकी तथा अपनी बातको व्यक्त करनेकी अपनी विशिष्ट शैली है, यही इसे अन्य शास्त्रोंसे पृथक् करती है, भविष्यका ज्ञान तो सिद्ध-महात्मा भी करा देते हैं, योग-समाधिसे भी यह जानकारी प्राप्त हो जाती है, किंतु ज्योतिष एक शास्त्र है, वेदांगोंमें इसकी मुख्यता है। शास्त्रका अर्थ ही है नियमन करना। अतः ज्योतिषकी स्वतन्त्र सत्ता विद्यमान है। अन्य शास्त्र अप्रत्यक्ष हैं, उनमें अनेक प्रकारके विवाद हैं, किंतु ज्योतिष प्रत्यक्ष शास्त्र है, जिसके साक्षी सूर्य और चन्द्रमा हैं—

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तत्र केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥

भारतीय आर्य मनीषाने अपने दिव्य प्रातिभ ज्ञान और अपरोक्षानुभूतिसे इस शास्त्रकी उद्भावना की है। अपौरुषेय वेदसंहितामें यह दिव्य ज्ञान सूत्ररूपमें निर्दिष्ट है। ऋग्ज्योतिष, याजुषज्योतिषमें संक्षेपमें खगोलीय ग्रहगणना एवं गतियाँ निरूपित हैं। इसी वेदज्ञानको अनेक आचार्योंने अपनी-अपनी शैली में प्रवर्तित किया है। कहीं इसके आदि उपदेष्टा पितामह ब्रह्मा बताये गये हैं और कहीं कालके नियामक भुवनभास्कर भगवान् सूर्य। इन्हींसे उपबृंहित होता हुआ यह शास्त्र वसिष्ठ, नारद, बृहस्पति, गर्ग, पराशर, व्यास, अत्रि, कश्यप, पुलस्त्य तथा लोमश आदि आचार्योंद्वारा संरक्षित होता हुआ परवर्ती वराहमिहिर आदि दैवज्ञजनोंको प्राप्त हुआ। लगधाचार्य एक महान् आचार्य हो चुके हैं। दैवकी गतिको जाननेवाला होनेसे ही ज्योतिर्विद् दैवज्ञ कहलाता है। जिस प्रकार धर्मके तीन स्कन्ध (आधारस्तम्भ) बताये गये हैं, उसी प्रकार ज्योतिषशास्त्रके भी तीन स्कन्ध हैं। धर्मके तीन स्कन्धोंमें पहला स्कन्ध है—यज्ञ, अध्ययन और दान, दूसरा स्कन्ध है तप और तीसरा स्कन्ध है—नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए आचार्यकुलमें निवास।* ज्योतिषशास्त्रका पहला स्कन्ध है—सिद्धान्त—गणिततन्त्र, दूसरा स्कन्ध है संहिता और तीसरा स्कन्ध है होरा अथवा जातक—

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमनुत्तमम्॥
(नारदसं० १।४)

* 'त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयः०।' (छान्दोग्योपनिषद् २।२३।१)

इन तीन स्कन्धों (स्तम्भों)-पर ही ज्योतिषशास्त्ररूपी विशाल प्रासाद अवस्थित है। एक भी स्कन्ध (शाखा)-की हीनतासे प्रासाद अवनत हो जाता है। अतः ज्योतिषशास्त्रको यथार्थरूपसे जानना हो तो तीनों स्कन्धोंका सम्यक् परिज्ञान अनिवार्य है। ऐसे त्रिस्कन्धज्ञकी शास्त्रोंमें बड़ी महिमा आयी है, उसके दर्शनका शुभ फल बताया गया है और कहा गया है कि ऐसे त्रिस्कन्धज्ञका कहा हुआ निश्चित रूपसे प्रमाण अर्थात् सत्य होता है—**'प्रमाणं वचनं तस्य भवत्येव न संशयः।'** (महर्षि अत्रि) वह सर्वपूज्य तथा श्राद्धमें प्रथम भोजन करनेयोग्य पंक्तिपावन होता है। कल्याणकामी व्यक्तिको ऐसे देशमें निवास नहीं करना चाहिये, जहाँ त्रिस्कन्धज्ञ ज्योतिर्विद् न रहता हो, क्योंकि दिव्य दृष्टिसम्पन्न दैवज्ञ जहाँ रहता है, वहाँ पाप नहीं रहता—

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते॥

(बृहत्संहिता)

दैवज्ञकी आचार-मीमांसामें बताया गया है कि उसे शान्त स्वभाववाला, विनयी, पवित्र अन्तःकरणवाला, देवता तथा ब्राह्मणकी पूजा करनेवाला, परनिन्दासे दूर रहनेवाला, वेदका पाठ करनेवाला, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान्, देश-दिक् और कालका ज्ञाता, दम्भ एवं आडम्बरसे विहीन तथा ऊहापोहमें पटु होना चाहिये। तीनों स्कन्धोंके साथ ही वह प्रश्नविद्याका ज्ञाता, शकुनशास्त्र तथा स्वरशास्त्रमें पारंगत, शब्दशास्त्र (व्याकरण)-में निपुण तथा श्रौत-स्मार्त क्रियाओंको सम्पन्न करनेवाला होना चाहिये। महर्षि पराशरजी कहते हैं—हे मैत्रेय! ऐसे दैवज्ञका कहा हुआ सब सत्य होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं—**'मैत्रेय सत्यतां याति तस्य वाक्यं न संशयः।'** (परा० होराशास्त्र)

इसके विपरीत जो सिद्धान्त, संहिता, होराशास्त्रको कुछ भी नहीं जानता, इधर-उधरकी सुनी-कही बातोंके आधारपर अथवा थोड़ा-सा पढ़कर ज्योतिषी होनेका दम्भ भरता है, मिथ्या आत्मप्रकाशन करता है, अर्थकी लिप्सासे ज्योतिषका व्यवसाय करता है, लोगोंकी वंचना करता है, आडम्बरके बलपर अपनेको गुरुभाक् सिद्ध करता है, उसे नक्षत्रसूची या नक्षत्रजीवी कहा गया है—

अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।
स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः॥

उसकी बड़ी निन्दा ज्योतिषशास्त्रमें की गयी है, उसे पापात्मा, वंचक, निन्द्य एवं सभी धर्मकृत्योंमें त्याज्य बताया गया है—**'नक्षत्रसूची खलु पापरूपो हेयः सदा सर्वसुधर्मकृत्ये।'** (महर्षि वसिष्ठ) उसे तो महान् पाप उत्पन्न करनेवाला कहा गया है—**'जनयति घनमंहश्चात्र नक्षत्रसूची।'** (मु०चि० पीयूषधारा)

अतः इस दैवज्ञशास्त्रके अध्ययन करनेवालेको न केवल ग्रन्थोंके गहन ज्ञानकी ही आवश्यकता है, बल्कि सनातन आचार-परम्पराका पालन एवं धर्माचरणपरायण होना भी उसके लिये परम आवश्यक है। केवल ग्रन्थज्ञानसे वाणीका परिष्कार होना सम्भव नहीं। अतः ज्योतिर्विद्के लिये शास्त्रोंमें जो आचारमीमांसा निर्धारित की गयी है, उसका परिपालन अति आवश्यक है। आज जो ज्योतिषकी उपेक्षा, अवहेलना तथा उपहास हो रहा है, उसके मूलमें इन्हीं सब बातोंकी अनदेखी करना है।

ज्योतिषशास्त्र न केवल व्यष्टिगत मानव-जीवनकी व्याख्या करता है, अपितु समष्टिके विषयमें भी फलका निरूपण करता है। खगोलीय हलचलें किन योगोंमें होती हैं, सूर्य-चन्द्रग्रहण कब पड़ेगा, उल्कापातों तथा धूमकेतुका क्या स्वरूप है, वृष्टि कब होगी, अतिवृष्टि और अनावृष्टि किन योगोंमें होती है, मेघोंका गर्भधारण क्या है, प्रवहमान होनेवाली वायुकी दिशा और दशा कैसी है, मौसम-ज्ञान कैसे हो, खेती कैसी होगी, भूकम्प कब-किस योगमें आयेगा, अन्नकी महँगी-सस्तीका विचार, भौम, आन्तरिक्ष तथा दैवी उत्पातोंके लक्षण, वास्तुविद्या, प्रासादनिर्माण, भूमिपरीक्षण आदि बहुत-से विषय ज्योतिषशास्त्रमें विवेचित रहते हैं। भूमिके नीचे कहाँपर, कितनी गहराईमें जल स्थित है, कहाँ धन गड़ा हुआ है और कहाँ शल्य (अस्थि आदि) गड़ा हुआ है—इसके ज्ञानके अद्भुत उपाय ज्योतिषमें सन्निहित हैं। वृक्षारोपणका विज्ञान इसमें भरा हुआ है। प्रासाद आदिके बाहर लगाये जानेवाले वज्रलेपोंका वर्णन है, जिन्हें लगानेसे हजारों वर्षतक वह स्थिर रहता है और ऐसे भवन वज्रके समान हो जाते हैं, उनमें कोई बाहरी प्रभाव होने नहीं पाता। मुख्यरूपसे यह विषय संहितास्कन्धके अन्तर्गत आता

है। इसीके साथ ही अन्य शास्त्रों और ज्योतिषका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तुशास्त्र तो ज्योतिषमें परिगणित ही है, ऐसे ही सामुद्रिकशास्त्र, हस्तरेखाविज्ञान, रत्नविज्ञान, मनोविज्ञान, धर्मशास्त्र, व्रतोपवासदान आदि उपासनाशास्त्र, स्वरोदयशास्त्र, संग्रामविजय, शकुनशास्त्र, नक्षत्रविज्ञान, गणितशास्त्र, भैषज्यशास्त्र, गोविज्ञान, प्रश्नविद्या, अंगविद्या, मुहूर्तशास्त्र, अर्थशास्त्र, यात्राविज्ञान, शरीरविज्ञान, स्वप्नशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, भूगोलशास्त्र, जलविज्ञान, भौतिकविज्ञान, कृषिशास्त्र, प्रतिष्ठाविज्ञान, कर्मकाण्ड, परलोकविद्या तथा अध्यात्मशास्त्र आदि अनेक क्षेत्र हैं, जिनकी जानकारीके लिये ज्योतिषविद्याका सम्यक् ज्ञान अति आवश्यक है। इन सभी विषयोंका ज्योतिषशास्त्रमें अद्भुत समन्वय है। अत: ज्योतिषशास्त्रकी परम उपादेयता है। ज्योतिष केवल फलादेश करता है—यह धारणा नितान्त अज्ञानमूलक है।

पूर्वमें ज्योतिषके तीन स्कन्धोंकी बात आयी है। अत: संक्षेपमें उनकी कुछ बातें यहाँ निरूपित हैं—

(१) सिद्धान्तस्कन्ध या गणिततन्त्र

सामान्य रूपसे सिद्धान्तस्कन्धमें गणित विद्याका सांगोपांग निरूपण है। आचार्य भास्करने अपने सिद्धान्तशिरोमणिमें बताया है कि जिसमें त्रुटि (कालकी लघुत्तम इकाई)-से लेकर प्रलयान्तकालतककी कालगणना की गयी हो, कालमानोंके सौर-सावन-नाक्षत्र-चान्द्र आदि भेदोंका निरूपण किया गया हो, ग्रहोंकी मार्गी-वक्री, शीघ्र-मन्द, नीच-उच्च, दक्षिण-उत्तर आदि गतियोंका वर्णन हो, अंक (पाटी)-गणित एवं बीजगणित—दोनों गणितविद्याओंका विवेचन किया गया हो, उत्तरसहित प्रश्नोंका विवेचन हो, पृथ्वीकी स्थिति, स्वरूप एवं गतिका निरूपण हो, ग्रहोंके कक्षाक्रम एवं वेधोपयोगी यन्त्रोंका वर्णन किया गया हो, उसे सिद्धान्तज्योतिष कहते हैं। इसके साथ ही अधिकमास, क्षयमास, प्रभवादि संवत्सर, नक्षत्रोंका भ्रमण, चरखण्ड, राश्युदय, छाया, नाड़ी, करण आदिका वर्णन रहता है।

सिद्धान्तके क्षेत्रमें पितामह, वसिष्ठ, रोमक, पौलिश तथा सूर्य—इनके नामसे गणितकी पाँच सिद्धान्त-पद्धतियाँ प्रमुख हैं, जिनका विवेचन आचार्य वराहमिहिरने अपने पंचसिद्धान्तिका नामक ग्रन्थमें किया है। आर्यभटका 'आर्यभटीयम्' महत्त्वपूर्ण गणितसिद्धान्त है। इन्होंने पृथ्वीको स्थिर न मानकर चल बताया। आर्यभट प्रथम गणितज्ञ हुए और आर्यभटीयम् प्रथम पौरुष ग्रन्थ है। आचार्य ब्रह्मगुप्तका ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्राय: आर्यभट तथा ब्रह्मगुप्तके सिद्धान्तोंको आधार बनाकर सिद्धान्त ज्योतिषके क्षेत्रमें पर्याप्त ग्रन्थ-रचना हुई। पाटी (अंक)-गणितमें लीलावती (भास्कराचार्य) एवं बीजगणितमें चापीयत्रिकोणगणितम् (नीलाम्बरदैवज्ञ) प्रमुख हैं। अनेक करणग्रन्थ भी हैं। बापूदेवशास्त्री, वेंकटेश केतकर तथा पं० सुधाकरद्विवेदी आदिकी रचनाएँ भी बहुत मान्य एवं उपयोगी हैं।

(२) संहितास्कन्ध

ज्योतिषका संहितास्कन्ध बड़े ही महत्त्वका है। सामान्य रूपसे यह भी कहा जाता है कि ज्योतिषका जो भी विषय है, वह संहितास्कन्धके अन्तर्गत है, उसमेंसे समष्टिका अध्ययन करके फल सूचित करनेवाला स्कन्ध-संहिता है और व्यष्टिका अध्ययन करके फल-निर्देश करनेवाला स्कन्ध होरा या जातक है। संहिताभाग सार्वभौम है और होराभाग व्यक्तिविषयक है। संहितास्कन्धमें सिद्धान्त और फलित दोनोंके विषयोंका मिश्रण है। गणित एवं फलितके मिश्रित रूपको अथवा ज्योतिषशास्त्रके सभी पक्षोंपर जिसमें विचार किया जाता है, उसे संहिता कहते हैं। इसमें नक्षत्रमण्डलमें ग्रहोंके गमन और उनके परस्पर युद्धादि, केतु-धूमकेतु, उल्कापात, उत्पात तथा शकुनादिकोंके द्वारा राष्ट्रके लिये शुभाशुभ फलका विवेचन होता है तथा मुहूर्तशास्त्रका वर्णन रहता है।

संहितास्कन्धसम्बन्धी साहित्य बहुत विशाल है। इस विषयकी पर्याप्त सामग्री वेदवाङ्मयमें विद्यमान है। वराहमिहिराचार्यने अपने ग्रन्थ वृहत्संहिता (वाराही संहिता)-में अपने पूर्ववर्ती गर्ग, पराशर, असित, देवल, कश्यप, भृगु, वसिष्ठ, बृहस्पति आदि अनेक संहिताकारोंका स्मरण किया है। आचार्य भट्टोत्पलने भी अनेक संहिताकारोंका उल्लेख किया है। प्राचीन उपलब्ध संहिताओंमें नारदसंहिता प्राप्त होती है, विद्वानोंका मत है कि मूल नारदसंहिता अत्यन्त विस्तृत थी। नारदीयपुराणमें जो नारदसंहिता उपलब्ध है, उसमें प्राय: तीनों स्कन्धोंके विषय विवेचित हैं।

(३) होरास्कन्ध (जातकस्कन्ध)

मानवजीवनके सुख-दु:ख, इष्टानिष्ट आदि सभी शुभाशुभ विषयोंका विवेचन करनेवाला विभाग होराशास्त्र है। होरा शब्दकी व्युत्पत्ति अहोरात्र पदके पूर्वापर वर्णके लोपसे होती है। इसमें शोधित इष्टकालके द्वारा विविध कुण्डलियोंका निर्माणकर जातकके पूर्वजन्म, वर्तमान-जन्म तथा भविष्यके फलोंके कथनकी विधियाँ निरूपित हैं। इस स्कन्धमें ग्रह और राशियोंका स्वरूपवर्णन, ग्रहोंकी दृष्टि, उच्च-नीच, मित्रामित्र, बलाबल आदिका विचार, द्वादश भावोंद्वारा विचारणीय विषय, होरा, द्रेष्काण, नवमांश आदिका विवेचन, जन्मकाल, यमलादि सन्तानोंका विमर्श, बालारिष्ट, आयुर्दाय, दशा-अन्तर्दशा, अष्टकवर्ग, गोचरविचार, राजयोग, नाभस आदि विविध योग, पूर्वजन्म आदिका विचार, तात्कालिक प्रश्नोंका शुभाशुभ-निरूपण, विवाहादि संस्कारोंका काल, नष्टजातकविचार, वियोनि-जन्मज्ञान आदि विषय सम्मिलित रहते हैं।

मृत्युके अनन्तर जीवकी गति क्या होती है, इसे बताते हुए आचार्य वराहमिहिरने कहा है कि यदि जन्मसमय अथवा मृत्युके समय जन्मलग्नसे केन्द्र या छठे अथवा आठवें स्थानमें उच्च (कर्क)-का बृहस्पति हो या मीनलग्नमें बृहस्पति हो, शेष सभी ग्रह निर्बल हों तो मोक्षकी प्राप्ति होती है। (लघुजातक १५।४)। जन्मलग्नसे छठे, सातवें या आठवें भावगत ग्रहोंमें बृहस्पति बली हो तो जातक मृत्युके अनन्तर देवलोक; चन्द्र और शुक्र बली हों तो पितृलोक; मंगल और सूर्य बली हों तो मृत्युलोक तथा बुध और शनि बली हों तो नरकलोकमें जाता है। (लघुजातक १५।३) ऐसे ही पूर्वजन्मादिका ज्ञान भी कुण्डलीके योगोंसे हो जाता है। होरास्कन्धमें पाराशर-होराशास्त्र, बृहज्जातक आदि मुख्य ग्रन्थ है। होराशास्त्रके ताजिक, प्रश्नतन्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, रमल, स्वरोदय तथा स्वप्नविज्ञान आदि अनेक विभाग हैं।

होरास्कन्धकी ताजक (ताजिक) शाखामें केशवीय-जातक, हायनरत्न तथा नीलकण्ठका ताजिकनीलकण्ठी आदि मुख्य ग्रन्थ हैं। इनमें वर्षकुण्डली बनाकर फलादेशकी पद्धति निरूपित है। इसमें यावनीय ज्योतिषका विशेष प्रभाव है। प्रश्नतन्त्रमें प्रश्नज्ञान, प्रश्नसार, भुवनदीपक, केरलमतम् आदि ग्रन्थ हैं। ऐसे ही सामुद्रिकशास्त्र, रमल (पाशक विद्या), स्वरोदयशास्त्र तथा स्वप्नविद्यापर भी अनेक ग्रन्थ हैं।

कुण्डलीकी कुछ ज्ञातव्य बातें

जिस प्रकार सर्प गोलाकारमें कुण्डली बाँधे रहता है, वैसे ही कुण्डली भी लम्बी बनी होती है और गोलाकार लपेटी रहती है, इसलिये इसे कुण्डली कहते हैं। इसीका नाम जन्मपत्री भी है। मुख्य रूपसे इसमें बारह खानोंका एक चक्र बना रहता है और उसमें जातकके जन्मसमयकी वैसी ही ग्रहस्थिति अंकित रहती है, जैसी उस समय आकाशमण्डलमें रहती है। यह समझना चाहिये कि जातकके जन्मसमयमें आकाशमें ग्रहनक्षत्रोंकी जो स्थिति रहती है, उसीकी छाया जन्मपत्री है। बारह खाने इसलिये बनते हैं कि आकाशस्थ गोलपिण्डके ३६०° के बारह भाग बारह राशियोंमें विभक्त हैं। राशियाँ १२ हैं, अत: एक राशि ३०° की होती है। संस्कारित शुद्ध जन्म-समयका सूर्योदयसे अन्तर निकालकर जो घण्टा-मिनट समय आता है, उसका घटी-पलात्मक मान बनाकर जो संख्या प्राप्त होती है, वह इष्टकाल कहलाता है। जैसे किसीका जन्म दिनमें बारह बजे हुआ और सूर्योदय प्रात: ६ बजे है तो सूर्योदयसे जन्म-समय बारह बजेका अन्तर करनेपर छ: घण्टा प्राप्त हुआ, इसका घटी-पलात्मक मान १५।०० घटी आया (२^{१}/२ घड़ी=एक घण्टा)। यही इष्टकाल हुआ।

इष्टकालका ज्ञान होनेपर लग्नानयनकी क्रिया होती है। लग्नसाधनकी अनेक स्थूल-सूक्ष्म विधियाँ हैं, पंचांगोंमें भी तत्तत् स्थानीय लग्न-सारणी दी रहती है। **'राशीनामुदयो लग्नः।'** जन्मके समय पूर्व क्षितिजमें जो राशि प्राप्त होती है, उसके जो अंश आदि रहते हैं, उसीसे लग्नका निर्धारण होता है। अहोरात्र सामान्यतया ६० घटीका होता है। अत: बारह राशियोंके हिसाबसे ५ घटी अथवा दो घंटेकी एक राशि होती है। इस नियमसे छ: लग्न दिनमानमें होते हैं और छ: लग्न रात्रिमानमें होते हैं। लग्नराशि एवं अंश ज्ञात होनेपर बारह खानेवाला कुण्डली-चक्र बनाकर उसमें सबसे ऊपरके खानेमें

लग्नराशिका अंक लिख देना चाहिये। माना मिथुन लग्न आया तो मिथुन तीसरी राशि है, अतः अंक ३ सबसे ऊपर लिखा जायगा। मिथुनका तात्पर्य हुआ कि जातकके जन्म-समयमें पूर्व क्षितिजमें मिथुन राशिका उदय हो रहा था। यह ध्यान देनेयोग्य बात है कि कुण्डलीमें भाव स्थिर हैं, किंतु राशियाँ (लग्न) बदल जाती हैं।

कुण्डलीके बारह भाव

सबसे ऊपरका भाव प्रथम भाव कहलाता है, फिर बायीं ओरका द्वितीय भाव आदि। इस प्रकार बारह भाव स्थिर रहते हैं।* यथा—

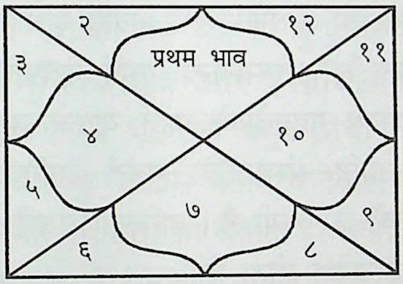

कुण्डलीके जो बारह भाव ऊपर दिखाये गये हैं, उनसे सम्पूर्ण जीवनके सभी पक्षों (बातों)-का तथा पूर्वजन्म और मृत्युके बादकी स्थितिका भी बोध होता है। इसके निर्धारणमें ऋषियोंके सूक्ष्म अतीन्द्रिय ज्ञानकी झलक प्राप्त होती है। कुण्डलीका पहला भाव लग्न या तनु भाव कहलाता है, इससे जातकके शरीरका विचार होता है। इसके ठीक सामने सातवाँ भाव है, जो पुरुषकी कुण्डलीमें पत्नीका और स्त्रीकी कुण्डलीमें पतिका स्थान है। इसी भावसे विवाह आदिका विचार भी होता है। कुण्डलीका चौथा भाव माताका स्थान है और उसके ठीक सामनेका दसवाँ भाव पिताका प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार कुण्डलीके ये चारों भाव पति-पत्नी तथा माता-पितासे सम्बन्ध रखते हैं, ये चारों सर्वाधिक महत्त्वके हैं और ये चारों स्थान केन्द्र कहलाते हैं। कुण्डलीका पाँचवाँ तथा नवाँ स्थान त्रिकोण कहलाता है। पाँचवेंसे सामान्यतया विद्या-बुद्धि एवं सन्तानका विचार होता है तथा नवाँ स्थान भाग्य कहलाता है। दूसरे भावसे धनका विशेषरूपसे स्थायी सम्पत्ति, पैतृक सम्पत्तिका विचार होता है तथा ग्यारहवें भावसे आकस्मिक लाभ और स्वोपार्जित धनका विचार होता है। कुण्डलीका छठा भाव ऋण-रोग-शत्रुका तथा आठवाँ भाव मृत्युका होता है। बारहवें भावसे व्यय (हानि) आदिका विचार होता है।

फल-कथनके लिये ग्रहोंकी स्थिति, परस्पर दृष्टि, उच्च-नीच राशियों, ग्रहों एवं नक्षत्रोंके स्वरूप तथा भावके बलाबलका विचार किया जाता है। लग्न तथा चन्द्रके बलाबलका विचार किया जाता है। सूर्यको आत्मा, चन्द्रमाको मन, मंगलको बल (पराक्रम), बुधको वाणी, बृहस्पतिको ज्ञान और सुख, शुक्रको मदन (काम) तथा शनिको दुःखरूप बताया गया है। ग्रहमण्डलमें सूर्य और चन्द्रमा राजा, बुध राजकुमार, मंगल सेनापति, गुरु और शुक्र मन्त्री तथा शनि प्रेष्य (भृत्य) है। सूर्य, मंगल, बृहस्पति पुरुष ग्रह हैं, बुध, शनि नपुंसक तथा शुक्र और चन्द्रमा स्त्रीग्रह हैं। मंगल अग्नितत्त्व, बुध पृथ्वीतत्त्व, बृहस्पति आकाशतत्त्व, शुक्र जलतत्त्व और शनि वायुतत्त्वका स्वामी है।

बारह राशियाँ हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन। इनका आकार तथा प्रभाव भी अपने नामके अनुरूप ही है। सत्ताईस नक्षत्र हैं। एक राशि सवा दो नक्षत्र (नौ चरण)-की है। चन्द्रमाके भ्रमणका काल भी सवा दो दिन है अर्थात् एक राशिमें चन्द्रमा सवा दो दिन रहता है। नक्षत्रसे ही नामका निर्धारण होता है। पुराणोंमें अश्विनी आदि नक्षत्रोंको दक्षप्रजापतिकी कन्या और चन्द्रमाकी पत्नी कहा गया है। कुण्डलीमें चन्द्रमा जिस अंकमें होता है, वही राशि जन्मराशि होती है।

कालपुरुषके मस्तकमें मेष, मुखमें वृष, छातीमें मिथुन, हृदयमें कर्क, पेटमें सिंह, कटिमें कन्या, नाभिके नीचे तुला, लिंगमें वृश्चिक, ऊरुमें धनु, जंघामें मकर, ठेहुनीके नीचे भागमें कुम्भ और पैरमें मीन राशि मानी गयी है, इसी प्रकार जन्मकालमें मनुष्योंके भी अंगका विभाग समझना चाहिये। इसका प्रयोजन यह है कि जन्मकालमें जिन राशियोंमें शुभ ग्रह हों, वे अंग पुष्ट तथा जिनमें पापग्रह हों, वे अंग क्षीण और निर्बल होते हैं। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु तथा मकर—ये राशियाँ

* दक्षिण भारतमें कुण्डलीलेखनमें इस उत्तर भारतीय पद्धतिसे अन्तर है, वहाँ राशियाँ स्थिर हैं और भाव बदल जाते हैं।

रात्रिबली होती हैं, मीनको छोड़कर शेष पाँच राशियाँ दिनमें बली होती हैं, मीन राशि उभयबली है। मेषादि द्वादश राशियाँ क्रमसे क्रूर तथा सौम्य स्वभाववाली होती हैं, जैसे मेष क्रूर, वृष सौम्य, मिथुन क्रूर, कर्क सौम्य इत्यादि। इसी प्रकार क्रमशः पुरुष-स्त्री तथा चर, स्थिर और द्विस्वभाव संज्ञावाली—ये राशियाँ होती हैं। मेष, सिंह और धनु—ये तीन पूर्व दिशाके स्वामी हैं, ऐसे ही वृष-कन्या-मकर दक्षिण दिशा, मिथुन-तुला-कुम्भ पश्चिम और कर्क-वृश्चिक तथा मीन—ये उत्तर दिशाके स्वामी हैं। मेष और वृश्चिक राशिका स्वामी मंगल, वृष और तुलाका स्वामी शुक्र, मिथुन और कन्याका स्वामी बुध, कर्कका स्वामी चन्द्रमा, धनु और मीनका स्वामी बृहस्पति, मकर तथा कुम्भका स्वामी शनि तथा सिंह राशिका स्वामी सूर्य होता है। इस प्रकार ग्रह और राशियोंका स्वरूप ठीक-ठीक समझ लेनेपर कुण्डलीका विचार होता है। होरा, द्रेष्काण, नवमांश आदि षड्वर्गी कुण्डली बनाकर फलकथन किया जाता है।

विंशोत्तरी महादशा

फलादेशके लिये पराशरजीने महादशा-अन्तर्दशाका भी विधान किया है, उनका कहना है कि ग्रह अपनी दशा-अन्तर्दशामें ही शुभाशुभ फल प्रदान करते हैं। इस दशाको उन्होंने विंशोत्तरी महादशा नाम दिया है, सामान्यरूपसे पुरुषकी आयु १२० वर्ष मानकर उन्होंने प्रत्येक ग्रहकी दशाके वर्ष निर्धारित किये हैं और ग्रहोंकी दशाका क्रम भी निर्धारित किया है। यथा—

ग्रहोंका दशाक्रम	ग्रहोंके दशावर्ष	जन्मनक्षत्र
सूर्य	६	कृ०, उ०फा०, उ०षा०
चन्द्र	१०	रोहिणी, हस्त, श्रवण
मंगल	७	मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा
राहु	१८	आर्द्रा, स्वाति, शतभिषा
बृहस्पति	१६	पुनर्वसु, विशाखा, पू०भा०
शनि	१९	पुष्य, अनुराधा, उ०भा०
बुध	१७	आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती
केतु	७	मघा, मूल, अश्विनी
शुक्र	२०	पू०फा०, पू०षा०, भरणी
योग	१२० वर्ष	

जन्मके समय किस ग्रहकी दशा चल रही थी, इसका निर्धारण जन्म-समयके नक्षत्रसे होता है। जन्मके समय जो नक्षत्र हो, वह अपने इष्टकालसे कितने अन्तरपर है, इसे देखकर भयात (अर्थात् जन्म-समयतक नक्षत्र कितना व्यतीत हो गया है) निकालकर फिर भभोग (नक्षत्रका सम्पूर्ण मान) निकाला जाता है। नौ ग्रहोंको तीन-तीन नक्षत्र मिले हैं। यहाँ नक्षत्रोंकी गणना कृत्तिकासे की गयी है।

अष्टकवर्ग, गोचर, प्रश्नकुण्डली आदिसे भी फल-विचार होता है। रमलशास्त्रमें पाशोंके द्वारा विचार होता है। स्वप्न और शकुनसे भी अनेक प्रकारके हल निकलते हैं। मुहूर्तशास्त्रमें जीवनके सभी क्षेत्रोंके शुभाशुभ समयोंका विचार होता है, कृषिसम्बन्धी मुहूर्त, देवप्रतिष्ठासम्बन्धी मुहूर्त, गृहारम्भ-गृहप्रवेशके मुहूर्त, यात्राके मुहूर्त, विवाह-उपनयन आदि संस्कारोंके मुहूर्त आदिकी विवेचना मुहूर्तशास्त्रमें की गयी है। ताजिकशास्त्रमें वर्षकुण्डली बनाकर फलादेश होता है।

पंचांग-परम्परा

पंचांगोंके निर्माणकी अत्यन्त सुदीर्घ परम्परा है, कहते हैं कि यदि व्यक्ति पंचांगका ठीकसे अध्ययन कर ले तो दैवज्ञ हो जाता है। तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण—ये पाँच अंग जिसमें प्रधानरूपसे वर्णित रहते हैं, वह पंचाग कहलाता है। पंचांग पृथक्-पृथक् अक्षांश देशान्तरपर बने रहते हैं। प्रयोगके लिये स्थानीय पंचांगको ग्रहण करना चाहिये अन्यथा संस्कार करके इष्टकालादिका शोधन करना पड़ता है। पंचांगका मुख्य आधार सूर्योदय और सूर्यास्त है। वेध करके बनाये गये दृग्गणितीय पंचांग निरयन और प्राचीन सूर्यसिद्धान्तादिपर बने पंचांग सायन पंचांग कहलाते हैं। अब वह प्राचीन परम्परा प्रायः नहीं रही, जिसमें संवत्सर प्रतिपदा अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, जहाँसे नवीन संवत्सरका प्रारम्भ होता है, के दिन घरको ध्वजा, पताकासे सुसज्जितकर स्नानादिसे निवृत्त होकर मंगल-पाठ एवं पूजनकर सपरिवार एकत्र होकर दैवज्ञकी पूजाकर घर-घर पंचांगश्रवण तथा संवत्सरका फलश्रवण होता था। इसकी महिमामें बताया गया है कि इस दिन पंचांगका श्रवण करनेसे गंगास्नानके समान फल प्राप्त होता है—

तिथिवारञ्च नक्षत्रं योगं करणमेव च।
पञ्चाङ्गस्य फलं श्रुत्वा गङ्गास्नानफलं लभेत्॥

इस दिन नीम (पारिभद्र)-के फूलसहित सुकोमल कलिकाओंको मरिच एवं लवण, हींग तथा जीरक और अजवायनके साथ पीसकर सेवन करनेसे वर्षभर कोई रोग नहीं होता और धर्मकी वृद्धि होती है—

पारिभद्रस्य पत्राणि कोमलानि विशेषतः।
सपुष्पाणि समानीय चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः॥
मरीचिर्लवणं हिङ्गुजीरकेन च संयुतम्।
अजमोदयुतञ्चैव भक्षयेद्रोगशान्तये॥

ज्योतिषशास्त्रकी ये कल्याणकारी प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे नष्ट हो रही हैं, यह बड़े ही दुःखका विषय है।

सामुद्रिकशास्त्र और हस्तविज्ञान

सामुद्रिकशास्त्र भारतकी बहुत प्राचीन विद्या है। जन्मपत्री अथवा कुण्डलीसे बताये जानेवाले फलादेशमें कदाचित् अन्तर-प्रत्यन्तर हो सकता है; क्योंकि समयके थोड़े-से अन्तरालसे इष्टकाल बदल जाता है, ग्रहदशा बदल जाती है, परंतु हाथकी रेखाके फलादेशमें यह सम्भावना नहीं रहती; क्योंकि हाथकी रेखाएँ तो जन्मके साथ ही आती हैं। सामुद्रिकशास्त्रका अध्ययनक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें शरीरलक्षणोंके साथ हस्तविज्ञानका भी अध्ययन होता है। हस्तविज्ञानकी अपनी कुछ विशेषता है।

प्रातःकालमें हथेलियोंका दर्शन करना हमारे यहाँ पुण्यदायक, मंगलप्रद तथा तीर्थोंके सेवन-जैसा माना गया है। अतः सुबह उठते ही हथेलियोंको देखनेकी परम्परा है। सामुद्रिकशास्त्रके ज्ञाता बताते हैं कि मातृरेखा, पितृरेखा और आयुरेखा क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती हैं। इसलिये हथेलियोंके दर्शनसे त्रिवेणीदर्शन हो जाता है। हस्तरेखाओंको देखकर भूत-भविष्य-वर्तमानके सभी शुभाशुभ फल जाने जा सकते हैं। पितृरेखाके स्वामी ब्रह्मा, मातृरेखाके स्वामी विष्णु तथा आयुरेखाके स्वामी शिव हैं। इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर—हथेलीकी चारों दिशाओंके क्रमसे स्वामी हैं। यह शास्त्र भारतवासियोंका एक अत्यन्त गौरवपूर्ण शास्त्र है, जो परिशीलन तथा मनन करनेयोग्य है।

प्राचीन समयमें सामुद्रिकशास्त्र भारतमें बड़ी उन्नत दशामें रहा, किंतु वर्तमानमें इसका बहुत ह्रास हो गया है। यह केवल आजीविकाका ही विषय बन गया है। इस शास्त्रका विषय बहुत गहन एवं अनुभवगम्य है। अतः सम्यक् अध्ययन और अनुभवके पश्चात् ही इसका प्रयोग करना चाहिये।

स्वरविज्ञान

पंचतत्त्वोंका बना हुआ मानव-शरीर ब्रह्माण्डका ही एक छोटा प्रतिरूप है। परमात्म-प्रभुकी असीम कृपासे जन्मके साथ ही मानवको स्वरोदय ज्ञान मिला है। यह विशुद्ध वैज्ञानिक आध्यात्मिक ज्ञानदर्शन है।

मनुष्यकी नासिकामें दो छिद्र हैं—दाहिना और बाँया। दो छिद्रोंमेंसे केवल एक छिद्रसे ही वायुका प्रवेश और बाहर निकलना होता रहता है, दूसरा छिद्र बन्द रहता है। जब दूसरे छिद्रसे वायुका प्रवेश एवं बाहर निकलना प्रारम्भ होता है तो पहला छिद्र स्वतः ही स्वाभाविक रूपसे बन्द होता है। अर्थात् एक छिद्र क्रियाशील रहता है तो दूसरा बन्द हो जाता है। इस प्रकार वायुके संचारकी क्रिया—श्वास-प्रश्वासको ही स्वर कहते हैं। स्वर ही श्वास है, श्वास ही जीवनका प्राण है। स्वरका दिन-रात चौबीस घण्टे बना रहना ही जीवन है और स्वरका बन्द होना मृत्युका प्रतीक है।

स्वरका उदय सूर्योदयके समयके साथ प्रारम्भ होता है। साधारणतया स्वर प्रतिदिन प्रत्येक ढाई घड़ीपर अर्थात् एक घण्टेके बाद दायाँ-से-बायाँ और बायाँ-से-दायाँ बदलता है और इन घड़ियोंके बीच स्वरोदयके साथ पाँच तत्त्व—पृथ्वी (२० मिनट), जल (१६ मिनट), अग्नि (१२ मिनट), वायु (८ मिनट) एवं आकाश (४ मिनट) भी एक विशेष समय-क्रमसे उदय होकर क्रिया करते हैं। प्रत्येक (दायाँ-बायाँ) स्वरका स्वाभाविक गतिसे एक घण्टेमें ९०० श्वास-संचारका क्रम होता है और पाँच तत्त्व ६० घड़ीमें १२ बार बदलते हैं। एक स्वस्थ व्यक्तिकी श्वास-प्रश्वास क्रिया दिन-रात अर्थात् २४ घण्टेमें २१६०० बार होती है। नासिकाके दाहिने छिद्रको दायाँ स्वर या सूर्य स्वर या पिंगला नाडी-स्वर कहते हैं तथा बाँयें छिद्रको बायाँ स्वर या चन्द्र स्वर या इडा नाडी-स्वर कहते हैं। कभी-कभी दोनों छिद्रोंसे वायुप्रवाह एक साथ निकलना प्रारम्भ हो

जाता है, जिसे सुषुम्णा नाडी-स्वर कहते हैं। इसे उभय स्वर भी कहते हैं। इन स्वरोंका अनुभव व्यक्ति स्वयं ही करता है कि कौन-सा स्वर चलित है, कौन-सा स्वर अचलित है। यही स्वरविज्ञान-ज्योतिष है।

शकुनशास्त्र

ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिमें शकुनका भी बड़ा महत्त्व है। शकुन चाहे स्वप्नमें हो या जाग्रत्‌दशामें हो, अपने शरीरमें हो, चाहे संसारमें, पशु-पक्षियोंद्वारा हो या दिव्य शक्तियोंद्वारा—प्रत्येक दशामें उनका तात्पर्य है, हमें सावधान करना और आश्वासन देना। कोई भी व्यक्ति किसी कार्यका आरम्भ अथवा यात्रा आदिका प्रारम्भ सफलताकी दृष्टिसे शुभ मुहूर्तमें करना चाहता है, इसके साथ ही शकुन देखनेकी भी परम्परा है। शकुन शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके होते हैं। शुभ मुहूर्तमें शुभ शकुनके प्राप्त होनेपर यात्रा अथवा कार्य आदिकी सफलता निश्चित हो जाती है। जो व्यक्ति यात्रा करता है अथवा कार्य प्रारम्भ करता है, वह शुभ शकुन प्राप्त होनेपर कार्यकी सफलताके लिये मानसिक रूपसे पूर्ण आश्वस्त हो जाता है और प्रायः परिणाम भी अनुकूल होते हैं। इस प्रकार जीवनमें शकुनकी महिमा कम नहीं है। वर्तमान समयमें बहुत सारे शुभ शकुन तथा अशुभ शकुन किंवदन्तियोंपर भी आधारित हैं। ये किंवदन्तियाँ प्रायः शकुनशास्त्रके अनुसार परम्परासे बँध गयी हैं। सामान्यतः यात्राके समय सवत्सा गौ सामनेसे आती हो, सौभाग्यवती स्त्री अपने पुत्रको गोदमें लेकर आती हो, किसी वृद्ध व्यक्तिका शव समारोहपूर्वक बाजे-गाजेके साथ आता हो, जलसे भरे हुए दो घड़े मार्गमें मिलते हों अथवा दहीसे पूर्ण पात्र दिखे तो इन्हें अपने दाहिनी ओर करके जानेपर यात्रा शुभ होती है। ये शुभ शकुन हैं। इसी प्रकार अशुभ शकुनोंकी भी सूची है। यात्राके समय यदि कोई एकचक्षु (काना) व्यक्ति मार्गमें मिल जाय, कोई नाई अपने औजारके डिब्बेके साथ मिल जाय, कोई विधवा ब्राह्मणी, खाली घड़ा आदि मार्गमें मिल जाय अथवा कोई छींक दे तो अशुभ शकुनकी सूचना मानी जाती है और प्रायः इसके अशुभ परिणाम होते भी हैं।

इसके अतिरिक्त पशु-पक्षियोंके द्वारा भी शुभ-अशुभकी सूचना प्राप्त होती है। जैसे दशहरा-दीपावलीपर नीलकण्ठ पक्षीका दर्शन, सवत्सा गोमाताका दर्शन, नेवलेका दर्शन, मीनयुग्म (मछलियाँ) आदिके दर्शन शुभ होते हैं। इसी प्रकार हिरण, नाग आदिके दर्शन भी शुभ माने जाते हैं।

गिरगिटके स्पर्श होनेपर, छिपकलीके शरीरपर गिरनेपर शुभ-अशुभ दोनों प्रकारके फल होते हैं। दाहिने अंगपर पड़नेसे शुभकी सूचना मिलती है तथा बायें अंगपर पड़नेपर अनिष्टका संकेत मिलता है। पशु-पक्षियोंसे अशुभकी सूचना भी मिलती है—बिल्लीद्वारा रास्ता काटे जानेपर, कुत्तेके कान फड़फड़ानेपर, कुत्ते एवं सियारके रोनेपर, गिद्धके मकान आदिपर बैठनेसे, कौवेके शोर मचानेपर अशुभके संकेत प्राप्त होते हैं। पुरुषका दायाँ अंग तथा स्त्रीका बायाँ अंग फड़कना शुभ होता है, इसके विपरीत अशुभ होता है।

शकुन जब स्वाभाविक रूपमें स्वतः होते हैं, तब इनका प्रभाव विशेष रूपमें होता है। कभी-कभी कुछ लोग कृत्रिम रूपसे शुभ शकुन बनानेकी चेष्टा करते हैं। जैसे बहेलियेके द्वारा नीलकण्ठ मँगाकर दर्शन करना, सवत्सा गौको सामने रखना, घड़ेमें जल भरकर मार्गमें रखना इत्यादि। इस प्रकारके कृत्रिम शकुनका विशेष प्रभाव नहीं होता। कुछ विचारवान् व्यक्ति अपशकुन होनेपर यात्रादिको कुछ समयके लिये स्थगित कर देते हैं। इस प्रकार इसका परिहार भी हो जाता है। हिन्दू संस्कृतिमें शकुनशास्त्रका बहुत व्यापक प्रभाव है और यह एक प्रकारसे अनुभूत विद्या है।

रत्नविज्ञान

ज्योतिषमें रत्नोंकी भी विशेष महिमा है। रत्नोंकी चमत्कारी शक्तिका सम्बन्ध आकाशीय ग्रहोंसे है। प्रत्येक ग्रहमें भिन्न-भिन्न प्रकारके प्राकृतिक गुण होते हैं। अनुभवसे यह पता चलता है कि ग्रहविशेष और रत्नविशेषकी प्रकृतिमें भारी गुणसाम्य है। इस प्रकार ये दोनों समानधर्मा हैं। यथा—सूर्य और माणिक्य, चन्द्र और मोती, मंगल और मूँगा, बुध और पन्ना, गुरु और पुखराज, शुक्र और हीरा, शनि और नीलम, राहु और गोमेद, केतु और लहसुनिया आदिमें गुणसाम्य है। स्वाभाविक बात यह है कि ग्रहोंकी रश्मियाँ अपनी तरहके गुणवाले रत्नोंकी ओर स्वतः आकर्षित होती हैं।

जातकके जन्मकालिक ग्रहोंकी स्थितिके आधारपर शुभाशुभका निर्धारण किया जाता है और इन्हीं शुभाशुभ ग्रहोंके अनुसार धारणीय रत्नोंका निर्धारण होता है। जो रत्न एक व्यक्तिके लिये अनुकूल हो, वह दूसरे व्यक्तिके लिये प्रतिकूल भी हो सकता है। अतः उपयुक्त रत्नका चुनाव किसी पारंगत दैवज्ञकी सलाहसे किया जाना उचित है। रत्न तीन प्रकारसे प्रभाव डालते हैं—१-शुभ कर्मोंके भोगमें आनेवाली बाधाओंको हटाना, २-अशुभ ग्रहोंके प्रभावसे रक्षा करना तथा ३-सात्त्विक, परंतु दुर्बल ग्रहोंमें अतिरिक्त बलकी वृद्धि करना।

जैसे एक छतरी आनेवाली बरसातको रोक नहीं सकती, परंतु व्यक्तिको बरसातके पानीसे बचा सकती है। इसी प्रकार रत्नके धारण करनेसे ग्रहोंके दुष्प्रभावसे यथासाध्य रक्षा होती है।

ज्योतिष और आयुर्वेद

आयुर्वेद अत्यन्त प्राचीन शास्त्र है। भारतीय संस्कृतिके आधारस्तम्भ वेदोंमें ऋग्वेद सर्वप्रथम परिगणित है। इसके अन्तर्गत ज्योतिष एवं चिकित्सा-विज्ञानका भी सांगोपांग वर्णन किया गया है। दोनों एक-दूसरेके पूरक एवं एक-दूसरेपर निर्भर हैं।

जन्मलग्नके द्वारा यह ज्ञात हो सकता है कि व्यक्तिमें किन आधारभूत तत्त्वोंकी कमी रह गयी, इसी ज्ञानके बलपर ज्योतिषी पहले ही भविष्यवाणी कर देता है कि इस व्यक्तिको अमुक अवस्थामें अमुक रोग होगा।

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार विभिन्न ग्रह निम्न शरीररचनाओंको नियन्त्रित करते हैं—

१-सूर्य—अस्थि, जैव-विद्युत्, श्वसनतन्त्र, नेत्र।
२-चन्द्रमा—रक्त, जल, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (हार्मोन्स), मन।
३-मंगल—यकृत्, रक्तकणिकाएँ, पाचनतन्त्र।
४-बुध—अंग-प्रत्यंग-स्थित तन्त्रिकातन्त्र, त्वचा।
५-बृहस्पति—नाडीतन्त्र, स्मृति, बुद्धि।
६-शुक्र—वीर्य, रज, कफ, गुप्तांग।
७-शनि—केन्द्रीय नाडीतन्त्र।
८-९-राहु-केतु—शरीरके अन्दर आकाश एवं अपानवायु।

ग्रहदोषके अनुसार ही विभिन्न वनौषधियाँ ग्रहबाधाका निवारण करती हैं तथा ओषधिमिश्रित जलसे स्नान करनेसे भी ग्रहदोष दूर होते हैं। विभिन्न रत्नोंको धारण करनेसे भी ग्रहबाधाएँ नष्ट होती हैं।

शरीरमें वात-पित्त एवं कफकी मात्राका समन्वय रहनेपर शरीर साधारणतया स्वस्थ बना रहता है। इनकी न्यूनाधिक मात्रा शरीरमें रोग उत्पन्न करती है। सूर्य पित्तदोष, चन्द्रमा कफ एवं वातदोष, मंगल-पित्तदोष, बुध त्रिदोष, बृहस्पति कफदोष एवं शनि वातदोष उत्पन्न करता है।

मानवजीवनकी अपनी विशेषता है। इसके आधारभूत धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्तिका मुख्य साधन मनुष्यका शरीर है। इसे निरामय एवं कार्यक्षम रखना व्यक्तिका प्रथम कर्तव्य है। जन्मपत्री पूर्वार्जित कर्मोंको जाननेकी कुंजी है। पूर्वकृत किस कर्मके विपाकसे मनुष्यको कौन-सी व्याधि होगी—इसका ज्ञान मनुष्यको ज्योतिषविद्यासे ही प्राप्त होता है।

ज्योतिषमें रोगोंकी जानकारी प्रायः जातककी जन्मकुण्डलीसे होती है। इसके अतिरिक्त हाथकी रेखाएँ, हाथके पर्वत एवं नाखूनोंके अध्ययनसे भी रोग-ज्ञान हो जाता है। अनेक शताब्दियोंसे ज्योतिर्विद्याका औषधियोंके साथ सम्बन्ध माना गया है। पूर्वकालमें किसी भी वैद्यके लिये यह आवश्यक था कि वह ज्योतिषी भी हो। सम्प्रति यह प्रसन्नताका विषय है कि विकसित देश भी ज्योतिर्विद्याका उपयोग चिकित्सामें करने लगे हैं।

भारतीय वर्षाविज्ञान

प्राचीन कालके ऋषि-मुनियोंके पास आजकी तरह न तो विकसित वेधशालाएँ थीं और न सूक्ष्म परिणाम देनेवाले आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरण, फिर भी वे अपने अनुभव तथा अतीन्द्रिय ज्ञानके सहारे आकाशीय ग्रह-नक्षत्रों आदिका अध्ययन करके वर्षोंपूर्व मौसमका पूर्वानुमान कर लेते थे। यद्यपि वैदिक संहिताओं, पुराणों, स्मृतियोंमें इस विज्ञानका उल्लेख मिलता है, फिर भी आचार्य वराहमिहिरका इसमें विशेष योगदान रहा है। उन्होंने अपने ग्रन्थ बृहत्संहितामें इस विषयपर विस्तारसे प्रकाश डाला है। संहिताग्रन्थोंमें तो ऐसे मन्त्रोंका भी विधान है, जिनके द्वारा यथेच्छ रूपसे वर्षाके आयोजन और निवारणको नियन्त्रित किया जा सकता है।

ऋतुचक्रका प्रवर्तक सूर्य होता है। सूर्य जब आर्द्रा

नक्षत्र (सौरगणना)-में प्रवेश करता है, तभीसे औपचारिक रूपसे वर्षा-ऋतुका प्रारम्भ माना जाता है। भारतीय पंचांगकार प्रतिवर्ष आर्द्राप्रवेश-कुण्डली बनाकर भावी वर्षाकी भविष्यवाणी करते हैं। आर्द्रासे नौ नक्षत्रपर्यन्त वर्षाका समय माना जाता है।

गर्ग, पराशर आदि ऋषियोंके समय तो यह विज्ञान गुरु-शिष्य-परम्परामें रहा। कालान्तरमें अनेक ज्योतिर्विदोंद्वारा इसे सर्वसुलभ कराया गया।

कर्मफल और अरिष्टनिवारण-मीमांसा

ज्योतिषशास्त्रके विशेषज्ञ किसी भी मनुष्यके भावी सुख-दुःखकी भविष्यवाणी करते हैं और ग्रहोंको इनका हेतु मानकर अरिष्ट-निवारणार्थ ग्रहशान्तिके लिये दान-जप-हवन आदिके उपाय बताते हैं, परंतु मनुष्यके सुख-दुःखके कारण वास्तवमें ग्रह-नक्षत्र नहीं हैं। महाभारतके अनुशासनपर्वमें भगवती उमा महेश्वरसे इस सम्बन्धमें जिज्ञासा करती हुई यह पूछती हैं—संसारमें ऐसी मान्यता है कि लोगोंके समस्त सुख-दुःखके कारण ग्रह हैं। अतः शुभाशुभ कर्मको ग्रहजनित मानकर लोग प्रायः ग्रह-नक्षत्रोंकी ही उपासना करते हैं, जबकि शास्त्रका मत है कि मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कर्मोंके कारण ही सुख-दुःख भोग करते हैं। अतः आप इस सन्दर्भमें मेरा सन्देह निवारण करनेकी कृपा करें। भगवती उमाके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए महेश्वर कहते हैं कि देवि! तुम्हारा सन्देह उचित है, किंतु ग्रह-नक्षत्र मनुष्योंके शुभ-अशुभके निवेदकमात्र हैं, न कि वे स्वयं कर्मफल प्रदान करते हैं—

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव शुभाशुभनिवेदकाः।
मानवानां महाभागे न तु कर्मकराः स्वयम्॥

(महा०अनुशासन०)

ग्रह-नक्षत्र शुभ-अशुभ कर्मफलको उपस्थित नहीं करते हैं, अपना ही किया हुआ सारा कर्म शुभाशुभ फलका उत्पादक होता है।

इस प्रकार उमा-महेश्वर-संवादसे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कोई ग्रहविशेष किसी प्राणीके सुख-दुःखका कारण नहीं होता, अपितु मनुष्य अपने नियत प्रारब्धका ही भोग करता है।

भावी या वर्तमान दुःखोंका ग्रह-सम्बन्धी अध्ययन करके ज्योतिषी दान, जप, हवन, रत्नधारण आदि शान्तिके उपाय बताते हैं। इन उपायोंके द्वारा साध्य पाप कर्मके फल-भोगसे तो मुक्ति मिल जाती है या दुःखमें कुछ कमी अवश्य आ जाती है, किंतु असाध्य पापके फल-भोगमें जप, तप, पूजा, प्रार्थना आदि भी अपना पूरा प्रभाव नहीं दिखा पाते।

वस्तुतः एक सामान्य व्यक्तिमें यह सामर्थ्य नहीं होती कि वह किसी दुःख-क्लेशके साध्य-असाध्यकी पहचान कर सके, इसलिये हर दुःखसंतप्त व्यक्ति यथाशक्ति शान्ति-कर्म आदिके उपायोंको ग्रहण करता है और इस प्रयत्नमें ज्योतिषशास्त्र उसका मार्गदर्शन करता है, किंतु लोकमें होनहार बलवान्के आगे सबको इसका लाभ नहीं प्राप्त होता। *'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी'*—यह कथन परम सत्य है, परंतु इसके लिये भूतभावन भगवान् विश्वेश्वरकी कृपा आवश्यक है। अगर ब्रह्माण्डनायक परमपिता परमेश्वर प्रसन्न हो जायँ, तब तो कुछ भी सम्भव है, तभी तो महर्षि मार्कण्डेयने मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली और भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उत्तराका मृतशिशु पुनः जीवित हो उठा। इसलिये परमार्थ, सत्य और सेव्य एकमात्र भगवान् हैं।

इस गौरवशाली ज्योतिषशास्त्रको केवल फलकथनका साधन कहना कष्टकी बात है। आज व्यावसायिक धरातलपर आ जानेसे इस शास्त्रकी महती हानि हो रही है और ज्योतिषशास्त्रका जो तात्त्विक लाभ मिलना चाहिये, उसकी प्राप्ति तो दुर्लभ-सी हो गयी है। ज्योतिषशास्त्र तो उपासना एवं सत्कर्मकी प्रवृत्ति देता है, मनुष्यको सन्मार्गमें प्रेरित करता है। परमात्मप्रभुसे प्रार्थना है कि वे सर्वसाधारणको शास्त्रनिष्ठाके प्रति सद्बुद्धि प्रदान करें और विशेषरूपसे ज्योतिषशास्त्रका संरक्षण करके अभ्युदय एवं निःश्रेयसका मार्ग प्रशस्त करनेकी कृपा करें।

जो मन, वाणी तथा शरीरसे हिंसाभावसे रहित होता है, इन्द्रियों तथा मनको वशमें रखता है, न्यायके मार्गसे धनका उपार्जन करता है और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय आदिके नियमोंका निरन्तर पालन करता है, उस व्यक्तिपर सभी ग्रह सदा ही अनुग्रह करते हैं—

अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च।
सर्वदा नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः॥

—राधेश्याम खेमका

पितामह ब्रह्मा और उनका ज्योतिर्मय पैतामह सिद्धान्त

'नमोऽस्तु विद्यावितताय चक्रिणे

समस्तधीस्थानकृते सदा नमः।'

(पद्मपु० सृष्टिखण्ड)

जो सम्पूर्ण विद्याओंके आश्रय, चक्रधारी तथा समस्त ज्ञानेन्द्रियोंको व्याप्त करके स्थित हैं, उन ब्रह्माजीको सदा नमस्कार है।

सृष्टिकर्ता तथा शास्त्ररक्षणकर्ताके रूपमें पितामह ब्रह्माजीका लोकपर महान् अनुग्रह है। वे पिताओंके भी पिता हैं, इसीलिये पितामह कहलाते हैं। उनका आविर्भाव प्रलयपयोधिमें योगनिद्राका आश्रयणकर शयन कर रहे भगवान् नारायणके नाभिकमलसे हुआ। स्वयं आविर्भूत होनेसे ये स्वयम्भू कहलाते हैं। प्रादुर्भूत होते ही इन्होंने तपका आश्रय लिया। दीर्घ तपके फलस्वरूप इन्हें सर्वेश्वर नारायणका दर्शन हुआ। उन्हींके परामर्शसे उन्होंने सृष्टिसंरचनाका संकल्प लिया। भगवान्‌की प्रेरणासे देवी सरस्वतीने उनके हृदयमें प्रविष्ट होकर उनके चारों मुखोंसे ज्योतिष आदि वेदांगों तथा उपवेदोंसहित चारों वेदोंका सस्वर गान कराया। उनका आविर्भाव सर्वप्रथम हुआ। वे ही विश्वकी रचना करनेवाले, पालन करनेवाले तथा उसकी रक्षा करनेवाले हैं—**'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता'** (मुण्डकोपनिषद् १।१।१)।

यह समस्त दृश्य-अदृश्य जगत् तथा समस्त जीवनिकाय भगवान् ब्रह्माजीद्वारा ही सृष्ट है। भगवान्‌की अचिन्त्य शक्तिसे प्रेरित होकर जब ब्रह्माजीने अनेक प्रकारकी सृष्टि की, किंतु उससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ, तब उन्होंने मनुष्य-शरीरकी सृष्टि की, इसकी रचना करके वे बहुत आनन्दित इसलिये हुए कि इस शरीरसे मनुष्य ब्रह्मसाक्षात्कार कर सकता है—

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या

वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान्।

तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय

ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः॥

(श्रीमद्भा० ११।९।२८)

भगवान्‌के अवतरणके मूल प्रेरक भी ब्रह्माजी ही हैं। ये समस्त कल्याणके मूल कारण हैं। समस्त प्रजाएँ प्रजापति ब्रह्माजीकी सन्तानें हैं, वे अपनी प्रजा-सन्ततियोंका सब प्रकार अभ्युदय देखना चाहते हैं, उन्होंने जहाँ अपने उपदेशोंसे जीवको भगवन्मार्गमें प्रेरित होनेका सन्देश दिया, वहीं उनके लिये शाश्वत संविधान—वेदों आदि शास्त्रोंका भी प्राकट्य कर दिया। व्यक्ति धर्माचरण करता रहे, सदाचारका पालन करे, इसके लिये उन्होंने अनेक प्रकारके नीतिधर्मोंकी उद्भावना की है। ब्रह्माजी कालतत्त्वके सम्यक् अवबोधक हैं। सृष्टिजगत्‌में जीवोंके साथ ही प्रकृतिके सम्पूर्ण स्वरूपोंका ज्ञान उन्होंने कराया है। यह दृश्य एवं अदृश्य जगत् किस प्रकार गतिशील है, प्रकृतिका तथा ब्रह्माण्डीय गतियोंका जीवसे क्या सम्बन्ध है, पिण्ड और ब्रह्माण्डका परस्पर क्या सम्बन्ध है, मनुष्यके दैनन्दिन गतिविधियोंपर इन ग्रह-नक्षत्रोंका क्या प्रभाव पड़ता है, कालतत्त्व क्या है, इसको जाननेकी विधियाँ क्या हैं, ये ब्रह्माण्डीय पिण्ड आकाशमें इधरसे उधर गतिशील क्यों हैं, ये उदय-अस्त होते क्यों दिखायी

देते हैं, इनका प्रेरक कौन है, नियामक कौन है—इस विषयके ब्रह्माजी प्रत्यक्ष द्रष्टा हैं। ज्योतिषका मुख्य आधार काल है, उस कालमानकी गणना ब्रह्माजीकी आयुसे ही होती है, जो ब्राह्ममान कहलाता है। ब्रह्माजीका दिन ही इस सृष्टिका समय है। इस सृष्टिमें सौर जगत्‌की भी सृष्टि होती है। ब्रह्माजीका दिन ही कल्प कहलाता है। एक कल्पमें चौदह मन्वन्तरोंका समय होता है। ब्रह्माजीके दिनके उदयके साथ ही त्रैलोक्यकी सृष्टि होती है। उनके दिनकी समाप्ति होनेपर उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। ब्रह्माजीकी परमायु ब्राह्ममानसे एक सौ वर्ष है। इसे 'पर' कहते हैं। इस समय ब्रह्माजी अपनी आयुका आधा भाग अर्थात् एक परार्ध (५० वर्ष) बिताकर दूसरे परार्धमें चल रहे हैं। यह उनके ५१वें वर्षका प्रथम दिन या कल्प है। ब्रह्माके प्रथम परार्धमें कल्पोंकी गणना रथन्तरकल्पसे होती है और ब्रह्माके द्वितीय परार्धके आदिका कल्प श्वेतवाराहकल्प कहलाता है। अतः वर्तमान कल्प श्वेतवाराहकल्प कहलाता है। यह द्वितीय परार्धका प्रथम कल्प है। इस कल्पके चौदह मन्वन्तरों (चौदह मनुओं)*-मेंसे छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं और २८वें महायुगके सत्य, त्रेता, द्वापर बीतकर २८वाँ कलियुग चल रहा है।

यह कालगणना ज्योतिषका मुख्य विषय है। प्रत्येक धर्म-कर्मादिके आरम्भमें जो संकल्प किया जाता है, उसमें देश और कालका ही स्मरण किया जाता है। संकल्पमें देशके अन्तर्गत इस ब्रह्माण्डके चतुर्दश भुवनों, सप्तद्वीपों, खण्ड, वर्ष आदिके साथ ही कालके अन्तर्गत सृष्टिकर्ता ब्रह्माके परार्ध, कल्प, मन्वन्तर, युगादिसे लेकर संवत्, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, करण, योग, ग्रहोंकी गोचर स्थिति तथा लग्नादिका उच्चारण किया जाता है। इस प्रकार ब्रह्माजीकी आयुसे ही कालतत्त्वका निर्धारण होता है। अहर्गणका प्रारम्भ कबसे होगा, युगका, संवत्सरका आरम्भ कबसे होगा, एक वर्षका मान कितना है, ऋतुओंकी गणना कहाँसे प्रारम्भ होगी, ग्रहोंका संचार तथा उदय-अस्तका निर्धारण कैसे होगा? इसके अधिष्ठाता सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ही हैं।

ब्रह्माजीके एक दिन (कल्प) बीतनेके अनन्तर प्रलय होता है, जो नैमित्तिक, दैनन्दिन या कल्पप्रलय कहलाता है। ब्रह्माकी आयुके दोनों परार्धोंके बीतनेपर प्राकृतिक महाप्रलय होता है, जिसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा तथा समस्त ज्योतिर्जगत् (ग्रहनक्षत्रादि सौरमण्डल)-का लय होता है। तदनन्तर समस्त ब्रह्माण्डका पूर्ण ब्रह्म परमात्मामें लय होता है, जो आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है, पुनः काल, कर्म और स्वभाववश उस निराकारसे साकार सृष्टिकी उत्पत्ति होती है और ज्योतिश्चक्रका प्रवर्तन होता है, यही सृष्टि और प्रलयका क्रम अनादिकालसे चला आ रहा है।

सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके द्वारा वेदोंके साथ ही ज्योतिष शास्त्रकी भी उत्पत्ति हुई, यह सर्वथा प्रसिद्ध है। ब्रह्माजी ही पितामह हैं और उनके द्वारा उद्भूत ज्योतिष-सिद्धान्त पैतामहसिद्धान्त कहलाता है। उन्होंने यज्ञसाधननिमित्तक चार वेदोंको अपने चार मुखोंसे प्रकट किया, जिनका मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने संग्रह किया। यज्ञोंका सम्पादन कालज्ञानके आधारपर ही सम्भव होता है, अतः यज्ञकी सिद्धिके लिये ब्रह्माजीने कालावबोधक ज्योतिषशास्त्रका प्रणयनकर अपने पुत्र नारदजीको दिया। नारदजीने इस शास्त्रके महत्त्वको समझते हुए लोकमें इसका प्रवर्तन किया। नारदजी स्वयं कहते हैं कि यह ज्योतिषशास्त्र वेदांग कहलाता है। यह जगत्‌के शुभाशुभका निरूपण करता है। यज्ञ, अध्ययन, संक्रान्तिका पुण्यकाल, ग्रह, षोडशवर्ग—इनके यथार्थ समयका निर्णय ज्योतिषशास्त्रके द्वारा ही होता है। बिना ज्योतिषके ज्ञानके श्रौत-स्मार्त कर्मोंकी सिद्धि नहीं होती। अतः जगत्‌के कल्याणके लिये ब्रह्माजीने प्राचीनकालमें इस शास्त्रकी रचना की—

* मार्कण्डेयपुराणके अनुसार चौदह मनुओंके नाम इस प्रकार हैं—१-स्वायम्भुव, २-स्वारोचिष, ३-औत्तम, ४-तामस, ५-रैवत, ६-चाक्षुष, ७-वैवस्वत (वर्तमान मनु), ८-सावर्णि, ९-दक्षसावर्णि, १०-ब्रह्मसावर्णि, ११-धर्मसावर्णि, १२-रौद्रसावर्णि, १३-रौच्यमनु तथा १४-भौत्यमनु।

विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा रचितं पुरा॥

(नारदसंहिता १।७)

इसी प्रकार गणकशिरोमणि श्रीगर्गाचार्यजी कहते हैं कि स्वयम्भू ब्रह्माने द्विजन्मा लोगोंके नेत्ररूप इस वेदांगशास्त्र (ज्योतिष)-का स्वयं निर्माण किया, जो यज्ञके लिये हितकारी है। ब्रह्माजीद्वारा निर्मित क्रिया एवं कालके साधक इस ज्योतिषशास्त्रको मैंने उनके द्वारा ही प्राप्त किया—

स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं चक्षुर्भूतं द्विजन्मनाम्।
वेदाङ्गं ज्योतिषं ब्रह्मापरं यज्ञहितावहम्।
मया स्वयम्भुवः प्राप्तं क्रियाकालप्रसाधनम्॥

(गर्गाचार्य)

आचार्य पराशरजी जो होराशास्त्रके सर्वाधिक मान्य आचार्य हैं, ने लिखा है कि मैंने ब्रह्माजीके मुखसे जैसा सुना है, वैसा ही वेदके चक्षुःस्वरूप इस ज्योतिषशास्त्रको मैं कहूँगा—

वक्ष्यामि वेदनयनं यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्।

(पारा०होरा०पू० १।४)

इस ज्योतिषशास्त्रके प्रादुर्भाव तथा उसकी परम्पराका उल्लेख करते हुए पराशरजी कहते हैं कि हे मैत्रेयजी! ज्योतिषरूप यह वेदांगशास्त्र वेदका चक्षुस्वरूप है, आद्य है, ब्रह्माजीने वेदोंसे ही इसे ग्रहण करके गर्गाचार्यजीको बताया और गर्गजीने मुझे बताया। उनसे मैंने जैसा सुना, उसे यथावत् रूपमें तुमसे कहा है—

वेदेभ्यश्च समुद्धृत्य ब्रह्मा प्रोवाच विस्तृतम्॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं वेदाङ्गं वेदचक्षुषी।
गार्गस्तस्मादिदं प्राह मया तस्माद्यथा तथा॥
तदुक्तं तव मैत्रेय शास्त्रमाद्यं तमेव हि॥

(पारा०होरा०उत्त० २१।३—५)

एक दूसरे स्थलपर पुनः पराशरजी कहते हैं कि मैं कुण्डलीके द्वादश भावोंके विषयमें कुछ विशिष्ट बात कहने जा रहा हूँ, जैसा कि मैंने भगवान् ब्रह्माके मुखसे सुना है—

किञ्चित् विशेषं कथयामि यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्।

(पारा०होरा०पू० ६।३८)

अवन्तिकाचार्य श्रीवराहमिहिरने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिताके प्रारम्भमें ही उल्लेख किया है कि मैं सर्वप्रथम मुनि ब्रह्माजीद्वारा विस्तारपूर्वक कहे गये सत्यरूप ज्योतिषशास्त्रका अवलोकन करके ही इस ग्रन्थका प्रणयन कर रहा हूँ—**'प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम्'** (बृहत्संहिता १।२)। इस प्रकार आचार्यने ब्रह्माजीके शास्त्रका उपकार स्वीकृत किया है, इसी दृष्टिसे उन्होंने ग्रन्थके अन्तमें पूर्वाचार्योंको विनयसे प्रणाम किया है—**'नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः'** (बृहत्संहिता १०६।६)।

आचार्य कमलाकरभट्टने नवीनसिद्धान्त-पंचककी शिष्य-परम्परामें उल्लेख किया है कि ब्रह्माजीने नारदजीको जो सिद्धान्त उपदिष्ट किया, वह ब्राह्मसिद्धान्त कहलाया—**'ब्रह्मा प्राह नारदाय'** (सिद्धान्ततत्त्वविवेक म०का० ६५)।

इससे सिद्ध है कि ब्रह्माजीने स्वनिर्मित ज्योतिषशास्त्रको नारद, गर्ग, पराशर आदिको उपदिष्ट किया। आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर आदि-आदि परवर्ती अन्य ग्रन्थकर्ता भी उनसे उपकृत रहे।

ज्योतिषकी आर्ष संहिताओंमें ज्योतिषशास्त्रके अठारह, कहीं-कहीं उन्नीस आद्य आचार्योंका परिगणन हुआ है, उनमें श्रीब्रह्माजीका नाम प्रारम्भमें ही लिया गया है।

ज्योतिषाचार्य नारदजीके अनुसार ज्योतिषशास्त्रके अठारह प्रवर्तक इस प्रकार हैं—

ब्रह्माचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यरोमशौ।
मरीचिरङ्गिरा व्यासो नारदो शौनको भृगुः॥
च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः।
अष्टादशैते गम्भीरा ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तकाः॥

(नारदसंहिता)

महर्षि कश्यपने आचार्योंकी नामावली इस प्रकार निरूपित की है—

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

(काश्यपसंहिता)

किंतु पराशरजीके मतसे पुलस्त्य नामके एक आद्य आचार्य भी हुए हैं, इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक आचार्य उन्नीस हैं। यथा—

विश्वसृङ् नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
लोमशो यवनः सूर्यः च्यवनः कश्यपो भृगुः॥
पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिशः शौनकोऽङ्गिराः।
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्यौतिःप्रवर्तकाः॥

इस प्रकार पितामह ब्रह्माजी ज्योतिषके आदि उद्भावक आचार्य हैं। चूँकि वे पितामह हैं, अतः उनका ज्योतिषसिद्धान्त पैतामह सिद्धान्त या ब्राह्म सिद्धान्त कहलाता है।

कालक्रमसे इस समय ब्रह्माजीका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, अतः उनके ज्योतिषीय अवदानका इदमित्थं निरूपण करना सम्भव नहीं है। तथापि आचार्य वराहमिहिरने पैतामह सिद्धान्तका संकेत किया है। ज्योतिष-जगत्में अवन्तिकाचार्य वराहमिहिरका नाम बड़े ही आदरसे ग्राह्य है, वे ४२७ शकमें विद्यमान थे। पंचसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता तथा बृहज्जातक आदि उनके बड़े ही विशिष्ट ग्रन्थ हैं। इन्होंने पंचसिद्धान्तिका नामक ग्रन्थमें गणितके प्राचीन पाँच सिद्धान्तोंका वर्णन किया है। इसीलिये इसका पंचसिद्धान्तिका नाम पड़ा। जिनके नाम हैं—१-पौलिश, २-रोमक, ३-वासिष्ठ, ४-सौर और ५-पैतामह। इस पंचसिद्धान्तिकाके बारहवें अध्यायमें पैतामह ज्योतिष (सिद्धान्त)-का सारांश दिया है। इस अध्यायमें कुल पाँच श्लोक (आर्याछन्द) हैं और ग्रहोंका वर्णन बताया गया है। गणित (सिद्धान्त)-ज्ञानके लिये पैतामह सिद्धान्त भारतीय ज्योतिषका सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। इस सिद्धान्तमें मध्यमानसे सूर्य और चन्द्रकी गणना की गयी है तथा तिथि, नक्षत्र, पर्व आदिकी गणना भी मध्यममानसे की गयी है। पैतामह सिद्धान्तके अनुसार रवि और चन्द्रका युग पाँच वर्षका होता है। तीस चान्द्र महीनेमें एक अधिमास होता है। नक्षत्रारम्भ धनिष्ठासे होता है। इस प्रकारसे संक्षेपमें गणितकी बातें बतायी गयी हैं। वेदांगज्योतिषसे पैतामह सिद्धान्तका विशेष साम्य है।

महाभारतके आश्वमेधिक पर्वमें एक अनुगीता पर्व है, इसके अवान्तरसंवादमें महर्षियोंको ब्रह्माजीने अनेक

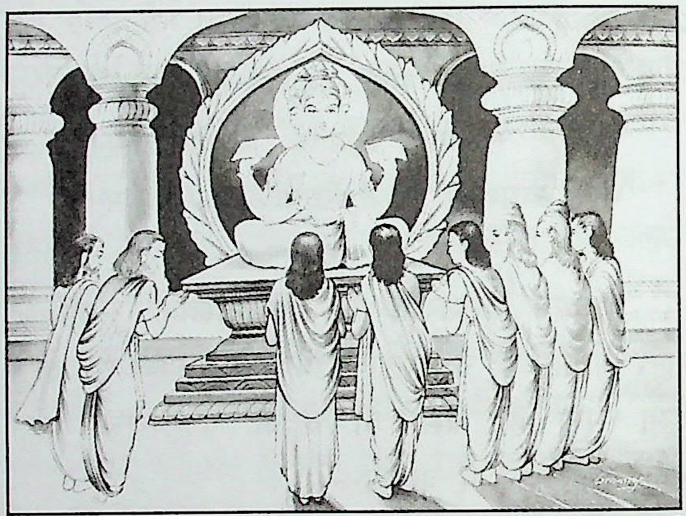

प्रकारके उपदेश दिये हैं, बीच-बीचमें ज्योतिष-सम्बन्धी भी संकेत हैं। एक स्थलपर ब्रह्माजीने बताया कि पहले दिन है फिर रात्रि, अतः रात्रिका आदि दिन है। इसी प्रकार शुक्लपक्ष महीनेका आदि है, श्रवण नामका नक्षत्र नक्षत्रोंका आदि है और ऋतुओंका आदि शिशिर ऋतु है—

अहः पूर्वं ततो रात्रिर्मासाः शुक्लादयः स्मृताः।
श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतवः शिशिरादयः॥

(महा०आश्व० ४४।२)

वर्तमानमें पैतामह ज्योतिषके मूलस्वरूपकी उपलब्धि न होनेसे इस सम्बन्धमें कुछ कहना कठिन है, परंतु इतना तो निश्चित ही है कि अन्य शास्त्रोंके समान ही ब्रह्माजीने सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्रका भी प्रणयन और प्रवर्तन किया है।

ब्रह्माजीकी ज्योतिर्मयी दिव्य सभा

महाभारतमें ब्रह्माजीकी एक दिव्य सभाका वर्णन है, जिसका नाम 'सुसुखा' कहा गया है। वह ब्रह्माजीके मानसिक संकल्पसे उद्भूत है, वह उत्तम सुख देनेवाली

है, वहाँ भूख-प्यास, सर्दी, गर्मीका कोई प्रभाव नहीं है। उस सभामें सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजी विराजमान रहते हैं। वहाँ सभी देवता, ऋषि-महर्षि उनकी उपासनामें निरत रहते हैं। शुक्र, बृहस्पति, बुध, मंगल, शनैश्चर तथा राहु-केतु आदि सभी ग्रह, समस्त वेद, उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थशास्त्र) तथा वेदांग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष)—ये सभी मूर्तिमान् स्वरूप धारणकर उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं—

शुक्रो बृहस्पतिश्चैव बुधोऽङ्गारक एव च।
शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे तथैव च॥

(महा०सभा० ११।२९)

वहाँ साक्षात् कालतत्त्व, क्षण, लव, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, छहों ऋतुएँ, साठ संवत्सर, पाँच संवत्सरोंका युग, चार प्रकारके दिन-रात (मानव, पितर, देवता और ब्रह्माजीके दिन-रात) वहाँ उनकी सेवामें तत्पर रहते हैं और उनके आदेशानुसार गतिमान् हो संचालित होते हैं।

ब्रह्माजी समय-समयपर अपनी प्रजाको सन्मार्गमें प्रेरित होनेके लिये उपदेश देते रहते हैं। एक बार साध्यगणोंसे उन्होंने कहा—हे देवो! पुरुष जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे मनुष्योंका संग करता है और जैसा होना चाहता है, वह वैसा ही हो जाता है। जैसे वस्त्र जिस रंगमें रँगा जाय, वैसा ही हो जाता है, इसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरका साथ करता है तो वह उन्हींके जैसा हो जाता है, अतः सदा सज्जनोंका ही साथ करना चाहिये—

यादृशैः सन्निवसति यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः॥
यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रंगवशं प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति॥

(महा०शान्ति० २९९।३२-३३)

सूर्यसिद्धान्तके अधिष्ठाता भगवान् सूर्य और उनका महनीय चरित

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

(ऋक्० १।११५।१, शु०यजु० ७।४२)

सूर्योपस्थानकी यह ऋचा भुवनभास्कर भगवान् सूर्यकी महिमामें पर्यवसित है। इसका भाव है—जो तेजोमयी किरणोंके पुंज हैं, मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त विश्वके प्राणियोंके नेत्र हैं और स्थावर-जंगमात्मक समस्त जीवनिकायके अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्षलोकको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हो रहे हैं।

ऋषि वसिष्ठजी उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं—जो ज्ञानियोंके अन्तरात्मा, जगत्को प्रकाशित करनेवाले, संसारके हितैषी, स्वयम्भू तथा सहस्र उद्दीप्त नेत्रोंसे सुशोभित हैं, उन अमित तेजस्वी सुरश्रेष्ठ भगवान् सूर्यको नमस्कार है—

विवस्वते ज्ञानभृदन्तरात्मने
जगत्प्रदीपाय जगद्धितैषिणे।
स्वयम्भुवे दीप्तसहस्रचक्षुषे
सुरोत्तमायामिततेजसे नमः॥

(महा०आदि० १७२।१८)

भुवनभास्कर भगवान् सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं, प्रकाशरूप हैं। उपनिषदोंमें भगवान् सूर्यके तीन रूपोंका विवेचन हुआ है—१-निर्गुण-निराकार, २-सगुण-निराकार और ३-सगुण-साकार। **आदित्यं ब्रह्मेति** (छान्दो० ३। १९। १)।

चाक्षुषोपनिषद्में वर्णन आया है कि सांकृतमुनिने आदित्यलोकमें जाकर भगवान् सूर्यसे चाक्षुष्मती विद्या प्राप्त की। ऐसे ही ऋषिप्रवर याज्ञवल्क्यजीने भी आदित्यलोकमें जाकर उनका दर्शन किया और आत्मतत्त्वका उपदेश प्राप्त किया। हनुमान्‌जीका उनके द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्त करना प्रसिद्ध ही है—***'भानुसों पढ़न हनुमान गये'***। भगवान् सूर्य स्वयं परमात्मारूप हैं तथा भक्तोंके लिये सगुण-साकाररूप धारण करते हैं। विविध विद्याओंका उपदेश देते हैं और स्वयं ग्रहाधिपतिरूपमें प्रतिष्ठित होकर ज्योतिश्चक्रका प्रवर्तन और नियमन करते हैं।

जैसे भगवान् विष्णुका स्थान वैकुण्ठ, भूतभावन शंकरका कैलास, चतुर्मुख ब्रह्माका ब्रह्मलोक और भगवती जगन्माताका मणिद्वीप है, वैसे ही आदित्यनारायणका स्थान आदित्यलोक—सूर्यमण्डल है। भगवान् सूर्य ही कालचक्रके प्रणेता हैं। सूर्यसे ही दिन-रात्रि, घटी, पल, मास, पक्ष, ऋतु, अयन तथा संवत्सर आदिका विभाग होता है। ये सम्पूर्ण जगत्के प्रकाशक हैं, इनके बिना सब अन्धकार है। सूर्य ही जीवन, तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा और मन हैं—**'आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुः श्रोत्र आत्मा मनः'** (नारायणोपनिषद् १५)।

इनके आविर्भावकी परम्परामें बताया गया है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका जन्म हुआ। ब्रह्माजीके मानसपुत्रका नाम मरीचि है। महर्षि मरीचिसे कश्यपका जन्म हुआ। ये कश्यप ही सूर्यके पिता हैं, इनकी माताका नाम अदिति है, जो दक्षप्रजापतिकी पुत्री हैं, इसलिये ये अदितिनन्दन तथा मरीचिसूनु भी कहलाते हैं।

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण ग्रहोंके राजा हैं, जिस प्रकार घरके मध्य भागमें स्थित प्रज्वलित दीपक ऊपर-नीचे सम्पूर्ण घरको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अखिल जगत्के अधिपति सूर्य अपनी हजारों रश्मियोंसे लोकोंको प्रकाशित करते रहते हैं। परम दिव्य तेजःपुंज ही सूर्यका स्वरूप है। सूर्यका तेजोमण्डल दो भागोंमें विभक्त है, सूर्यमण्डलका एक तेज ऊर्ध्वकी ओर उद्दीप्त करता है, उस तेजकी शक्ति संज्ञा है, दूसरा तेज अधोगामी—पृथ्वीसे पातालपर्यन्त उद्दीपन करता है, उस तेजकी शक्तिका नाम छाया है। पुराणोंमें संज्ञा तथा छाया—ये भगवान् सूर्यकी दो पत्नियाँ बतायी गयी हैं। ये दोनों उनकी शक्तिके रूपमें निरन्तर गतिशील रहती हैं।

सूर्यलोकमें भगवान् सूर्यके समक्ष इन्द्रादि सभी देवता-ऋषिगण स्थित रहते हैं तथा गन्धर्व एवं अप्सराएँ नृत्य-गानसे उनकी स्तुति करती हैं। तीनों सन्ध्याएँ मूर्तिमान् रूपमें वहाँ उपस्थित रहती हैं। भगवान् सूर्य सात छन्दोमय अश्वोंसे युक्त हैं, इसलिये वे सप्ताश्वतिलक कहलाते हैं। वे घटी, पल, ऋतु, संवत्सरादि कालके अवयवोंद्वारा निर्मित दिव्य रथपर आरूढ़ होकर सुशोभित रहते हैं। गरुड़के छोटे भाई अरुण उनके सारथिका कार्य करते हैं। उनके दोनों पार्श्वोंमें दाहिनी ओर राज्ञी (संज्ञा)* और बायीं ओर निक्षुभा (छाया) नामकी दो पत्नियाँ स्थित रहती हैं। उनके साथमें पिंगल नामके लेखक, दण्डनायक नामके द्वाररक्षक तथा कल्माष नामके दो पक्षी द्वारपर खड़े रहते हैं। दिण्डि उनके मुख्य सेवक हैं, जो उनके सामने खड़े रहते हैं।

भगवान् सूर्यका परिवार

भगवान् सूर्यकी दस सन्तानें हैं। विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा (अश्विनी) नामक पत्नीसे वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमारद्वय और रेवन्त तथा छायासे शनि, तपती, विष्टि (भद्रा) और सावर्णि मनु हुए।

भगवान् सूर्यके परिवारकी यह कथा पुराणों आदिमें

* विभिन्न पुराणों, आगमशास्त्रों तथा शिल्पग्रन्थोंमें संज्ञाके सुरेणु, त्वाष्ट्री, द्यौ, वडवा (अश्विनी) तथा प्रभा—ये नाम भी आते हैं।

अनेक प्रकारसे सूक्ष्म एवं विस्तारसे आयी है, उसका सारांश यहाँ प्रस्तुत है—

विश्वकर्मा (त्वष्टा)-की पुत्री संज्ञा (त्वाष्ट्री)-से जब सूर्यका विवाह हुआ तब अपनी प्रथम तीन सन्तानों वैवस्वत मनु, यम तथा यमी (यमुना)-की उत्पत्तिके बाद उनके तेजको न सह सकनेके कारण संज्ञा अपने ही रूप-आकृति तथा वर्णवाली अपनी छायाको वहाँ स्थापितकर अपने पिताके घर होती हुई 'उत्तरकुरु' में जाकर छिपकर वडवा (अश्वा)-का रूप धारणकर अपनी शक्तिवृद्धिके लिये कठोर तप करने लगी। इधर सूर्यने छायाको ही पत्नी समझा तथा उससे उन्हें सावर्णि मनु, शनि, तपती तथा विष्टि (भद्रा)—ये चार सन्तानें हुईं। जिन्हें वह अधिक प्यार करती, किंतु संज्ञाकी सन्तानों वैवस्वत मनु तथा यम एवं यमीका निरन्तर तिरस्कार करती रहती।

माता छायाके तिरस्कारसे दु:खी होकर एक दिन यमने पिता सूर्यसे कहा—तात! यह छाया हमलोगोंकी माता नहीं हो सकती; क्योंकि यह हमारी सदा उपेक्षा, ताड़न करती है और सावर्णि मनु आदिको अधिक प्यार करती है। यहाँतक कि उसने मुझे शाप भी दे डाला है। सन्तान माताका कितना ही अनिष्ट करे, किंतु वह अपनी सन्तानको कभी शाप नहीं दे सकती। यमकी बातें सुनकर कुपित हुए सूर्यने छायासे ऐसे व्यवहारका कारण पूछा और कहा—सच-सच बताओ तुम कौन हो? यह सुनकर छाया भयभीत हो गयी और उसने सारा रहस्य प्रकट कर दिया कि मैं संज्ञा नहीं, बल्कि उसकी छाया हूँ।

सूर्य तत्काल संज्ञाको खोजते हुए विश्वकर्माके घर पहुँचे। उन्होंने बताया कि भगवन्! आपका तेज सहन न कर सकनेके कारण संज्ञा अश्वा (घोड़ी)-का रूप धारणकर उत्तरकुरुमें तपस्या कर रही है। तब विश्वकर्माने सूर्यकी इच्छापर उनके तेजको खरादकर कम कर दिया। अब सौम्य शक्तिसे सम्पन्न भगवान् सूर्य अश्वरूपसे वडवा (संज्ञा—अश्विनी)-के पास उससे मिले। वडवाने परपुरुषके स्पर्शकी आशंकासे सूर्यका तेज अपने नासाछिद्रोंसे बाहर फेंक दिया। उसीसे दोनों अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई, जो देवताओंके वैद्य हुए। तेजके अन्तिम अंशसे रेवन्त नामक पुत्र हुआ, जो गुह्यकों और अश्वोंका अधिपति हुआ। इस प्रकार भगवान् सूर्यका विशाल परिवार यथास्थान प्रतिष्ठित हो गया। यथा—वैवस्वत मनु वर्तमान (सातवें) मन्वन्तरके अधिपति हैं। यम यमराज एवं धर्मराजके रूपमें जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके फलोंको देनेवाले हैं। यमी यमुना नदीके रूपमें जीवोंके उद्धारमें लगी हैं। अश्विनीकुमार (नासत्य-दस्र) देवताओंके वैद्य हैं। रेवन्त निरन्तर भगवान् सूर्यकी सेवामें रहते हैं। सूर्यपुत्र शनि ग्रहोंमें प्रतिष्ठित हैं। सूर्यकन्या तपतीका विवाह सोमवंशी अत्यन्त धर्मात्मा राजा संवरणके साथ हुआ, जिनसे कुरुवंशके स्थापक राजर्षि कुरुका जन्म हुआ। इन्हींसे कौरवोंकी उत्पत्ति हुई। विष्टि भद्रा नामसे नक्षत्रलोकमें प्रविष्ट हुई। सावर्णि मनु आठवें मन्वन्तरके अधिपति होंगे। इस प्रकार भगवान् सूर्यका विस्तार अनेक रूपोंमें हुआ है। वे आरोग्यके अधिदेवता हैं—**'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'** (मत्स्यपु० ६८।४१)।

ज्योतिषशास्त्र और भगवान् सूर्य

गणित, होरा एवं संहिता—इन तीन स्कन्धोंसे युक्त ज्योतिषशास्त्र वेदका चक्षुभूत प्रधान अंग है। इस विद्यासे भूत, भविष्य, वर्तमान, अनागत, अव्यवहित, अदृष्ट-अवच्छिन्न सभी वस्तुओं तथा त्रिलोकका प्रत्यक्षवत् ज्ञान हो जाता है। ज्योतिषज्ञानविहीन लोक अन्य ज्ञानोंसे पूर्ण होनेपर भी दृष्टिशून्य अन्धेके तुल्य होता है। इस महनीय ज्योतिषशास्त्रके प्राण तथा आत्मा और ज्योतिश्चक्रके प्रवर्तक भगवान् सूर्य ही हैं। वे स्वर्ग और पृथ्वीके नियामक होते हुए उनके मध्य बिन्दुमें अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके केन्द्रमें स्थित होकर ब्रह्माण्डका नियमन और संचालन करते हैं। उनके ही द्वारा दिशाओंका निर्माण, कला, काष्ठा, पल, घटी, प्रहरसे लेकर अब्द, युग, मन्वन्तर तथा कालपर्यन्त कालोंका विभाजन, प्रकाश, ऊष्मा, चैतन्य, प्राणादि वायु, झंझावात, विद्युत्,

मेघ, वृष्टि, अन्न तथा प्रजावर्गको ओज एवं प्राणशक्तिका दान एवं नेत्रोंको देखनेकी शक्ति प्राप्त होती है। भगवान् सूर्य ही देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप तथा लता-वृक्षादि समस्त जीवसमूहोंके आत्मा और नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं—

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः॥

(श्रीमद्भा० ५। २०। ४६)

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार सूर्य समस्त ग्रह एवं नक्षत्रमण्डलके अधिष्ठाता तथा कालके नियन्ता हैं। ग्रहोंमें कक्षाचक्रके अनुसार सूर्यके ऊपर मंगल तथा फिर क्रमशः गुरु तथा शनि हैं और नीचे क्रमशः शुक्र, बुध तथा चन्द्रकक्षाएँ हैं। सूर्य, चन्द्र एवं गुरुके कारण पाँच प्रकारके संवत्सरों—वत्सर, परिवत्सर, अनुवत्सर, इडावत्सर तथा संवत्सरका निर्माण होता है।

ग्रहोंके रूपमें सूर्यका स्वरूप-निरूपण

ज्योतिषशास्त्रमें ग्रहोंके रूपमें सूर्यका जो विचार हुआ है, उसका संक्षेपमें सार इस प्रकार है—

सूर्य सिंह राशिके स्वामी हैं। मेष राशिके दस अंशमें स्थित होकर उच्च तथा कन्याराशिमें नीच कहलाते हैं। इनका आकार ह्रस्व, समवृत्त, वर्ण क्षत्रिय, प्रकृति पुरुष, संज्ञा क्रूर, गुण सत्त्व, रंग लाल, निवासस्थान देवालय, भूलोक एवं अरण्य, उदय-प्रकार पृष्ठोदय, प्रकृति पित्त, दृष्टि आकाशकी ओर तथा मुँह पूर्वकी ओर रहता है। ये कटुरसके विधाता तथा धातुस्वरूप हैं। अग्नि इनके देवता हैं, माणिक्य धारण करने तथा हरिवंशपुराणके श्रवणसे सूर्यकृत अरिष्टकी शान्ति होती है। ये ग्रहोंके राजा हैं। इनकी मंगल, चन्द्रमा और बृहस्पतिसे नैसर्गिक मित्रता, शुक्र तथा शनिसे शत्रुता और बुधसे उदासीनता है। कुण्डलीमें सूर्यसे पिता, आत्मा, प्रताप, आरोग्यता और राज्यलक्ष्मी आदिका विचार किया जाता है। ये अपनी उच्च राशि, द्रेष्काण, होरा, रविवार, नवांश, उत्तरायण, मध्याह्न, राशिके आरम्भ, मित्रके नवमांश तथा लग्नसे दसवें भावमें सदा बलवान् होते हैं। ये सदा मार्गी रहते हैं, वक्री नहीं होते। विंशोत्तरी दशाके अनुसार सूर्यकी महादशा छः वर्ष रहती है। सूर्य मेषादि द्वादश राशियोंमें भ्रमण करते हैं। एक राशिसे दूसरी राशिके संक्रमणको संक्रान्ति कहते हैं। इस प्रकार भ्रमणसे द्वादश राशियोंके बारह सौरमास तथा एक सौरवर्ष होता है। सूर्य एक राशिमें एक मास रहते हैं। मकर तथा कर्कसे अयन-संक्रान्तियाँ बनती हैं। मकरसंक्रान्तिसे उत्तरायण तथा कर्कसंक्रान्तिसे दक्षिणायन होता है। मेष तथा तुलाकी संक्रान्ति विषुवसंक्रान्ति कहलाती है। धनु, मिथुन, कन्या, मीनकी संक्रान्तियाँ षडशीतिमुखा और सिंह, वृश्चिक, वृष तथा कुम्भकी संक्रान्तियाँ विष्णुपदा कहलाती हैं।

ज्योतिषसिद्धान्तके उद्भावकके रूपमें भगवान् सूर्य

ज्योतिषसिद्धान्तके प्रवर्तक आद्य आचार्योंके रूपमें दैवज्ञ नारद, महर्षि पराशर तथा ऋषिप्रवर कश्यपजीने जिन अठारह (मतान्तरसे उन्नीस) आचार्योंका परिगणन किया है, उनमें भगवान् सूर्यका नाम मुख्यरूपसे उल्लिखित है, किंतु भगवान् सूर्यद्वारा प्रत्यक्ष उपदिष्ट अथवा रचित कोई ग्रन्थ वर्तमानमें उपलब्ध नहीं है। सूर्यसिद्धान्तका सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख आचार्य वराहमिहिरने किया है। वराहमिहिर महान् दैवज्ञ हो चुके हैं, उन्होंने ज्योतिषके तीनों स्कन्धों—सिद्धान्त (गणित), संहिता तथा होरा (जातक)-पर ग्रन्थ प्रणयनकर लोकका महान् उपकार किया है। जातकशास्त्रमें उनका फलित-विषयक बृहज्जातक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, संहिताके विषयोंको उन्होंने बृहत्संहिता (वाराहीसंहिता)-में संग्रहीत किया है। सिद्धान्त (गणित)-के क्षेत्रमें उन्होंने अपने समयमें प्रचलित गणितके प्राचीन पाँच सिद्धान्तोंका वर्णन अपने पंचसिद्धान्तिका नामक ग्रन्थमें किया है, वे पाँच सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(१) पैतामह सिद्धान्त, (२) वासिष्ठ सिद्धान्त, (३) पौलिश सिद्धान्त, (४) रोमक सिद्धान्त तथा (५) सौर सिद्धान्त—**'पौलिशरोमकवासिष्ठसौर-पैता-**

महास्तु पञ्चसिद्धान्ता:'।

इन पाँचों सिद्धान्तोंमें सूर्यसिद्धान्तका विशेष महत्त्व है; क्योंकि अन्य सिद्धान्तोंकी अपेक्षा यह विस्तृत है तथा इसके विवेचनकी पद्धति अत्यन्त सूक्ष्म है। आचार्य वराहमिहिरने पाँचों सिद्धान्तोंका अनुशीलनकर तुलनात्मक दृष्टिसे सूर्यसिद्धान्तको अधिक स्पष्ट तथा शुद्ध बताया है। अपनी बातको आचार्यने **'स्पष्टतर: सावित्र:'** (पंचसिद्धा० ४) कहकर व्यक्त किया है। इसी कारण परवर्ती आचार्यों आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर आदिने सूर्यसिद्धान्तको अधिक महत्त्व दिया। पंचसिद्धान्तिकाके ९वें, १०वें तथा १६वें और १७वें—इस प्रकार चार अध्यायोंमें वराहमिहिराचार्यने प्राचीन सूर्यसिद्धान्तकी व्याख्या की है। अध्याय ९ में सूर्यग्रहणका गणित, अध्याय १० में चन्द्रग्रहण, अध्याय १६ में ग्रहोंके मध्यम मान ज्ञात करनेका गणित तथा १७वें अध्यायमें गणितद्वारा ग्रहोंके स्पष्ट मानको ज्ञात करनेकी विधि वर्णित है। वस्तुत: भारतीय सिद्धान्तज्योतिषमें सूर्यसिद्धान्तके गणितसे ही पूर्ण वैज्ञानिकता आयी और यही कारण था कि सूर्यसिद्धान्तके बाद यद्यपि प्राचीन सिद्धान्तोंके नाम वही रहे, किंतु कुछ परिष्कार, संशोधन एवं परिवर्धनके साथ आगे गणितके सिद्धान्त बने। मूल गणित सिद्धान्त भगवान् सूर्यके नामपर ही आज भी प्रचलित है।

वर्तमानमें उपलब्ध सूर्यसिद्धान्त

वर्तमानमें खगोलीय गणितज्ञानका भगवान् सूर्यके नामसे एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध है, जो 'सूर्यसिद्धान्त' के नामसे प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ चौदह अध्यायों (अधिकारों)-में विभक्त है, इसकी श्लोक-संख्या ५०० के आसपास है। अध्याय ११ तकका नाम पूर्वखण्ड तथा शेष तीनका नाम उत्तरखण्ड है।

इस ग्रन्थके प्रादुर्भावके सम्बन्धमें ग्रन्थारम्भमें एक रोचक आख्यान आया है, जिसका सारांश यहाँ उपस्थित है—

प्राचीनकालकी बात है, मयासुर नामक महान् शिल्पीने सत्ययुगके अन्तमें वेदांगोंमें श्रेष्ठ तथा परम पुण्यमय तथा अत्यन्त रहस्यमय नक्षत्र-ज्ञान (ज्योतिष-विद्या)-के श्रेष्ठ ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त कठोर तप करके भगवान् सूर्यकी आराधना की। उसके तपसे प्रसन्न हुए भगवान् सविता प्रकट हुए और उसे वरदान देते हुए बोले—हे दानवश्रेष्ठ मय! मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ, मैंने तुम्हारे अभिप्रायको समझ लिया है, मैं तुम्हें अवश्य सम्पूर्ण ज्योतिर्विज्ञानका ज्ञान प्रदान करूँगा और उसका रहस्य भी बताऊँगा,* किंतु हे मय! मूल बात यह है कि इस त्रिलोकमें ऐसा कोई नहीं है, जो मेरे तेजको सह सके, जो भी मेरे समक्ष रहेगा, वह मेरे तापसे दग्ध हो जायगा और दूसरी बात यह है कि मैं निरन्तर भ्रमण करता रहता हूँ, अत: मेरे पास अवकाश भी नहीं है, इसी कारण मेरा ही अंशभूत पुरुषावतार प्रकट होकर तुम्हें सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र बतलायेगा—

न मे तेज: सह: कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षण:।
मदंश: पुरुषोऽयं ते नि:शेषं कथयिष्यति॥

(सूर्यसिद्धान्त १।६)

मयासुरसे ऐसा कहकर तथा अपने अंशावतार पुरुषको मयके प्रति सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र उपदिष्ट करनेकी आज्ञा देकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये, तदनन्तर मयने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सूर्यांशपुरुषको प्रणाम किया, तब सूर्यावतार पुरुषने कहा—हे मय! प्रत्येक युगमें भगवान् सूर्य ऋषियोंको ज्योति:शास्त्रका जो उत्तम ज्ञान दिया करते हैं, उन्हींके अनुग्रहसे मैं तुम्हें बताता हूँ, एकाग्र होकर सुनो। तदनन्तर सर्वप्रथम मयसे कालतत्त्व का निरूपण करते हुए कहा—कालके दो रूप हैं एक तो अविभाज्य कालतत्त्व है, जो शास्त्रप्रमाणद्वारा ही सिद्ध है, वह लोकोंका अन्त करनेवाला है, कालका

---

* अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुर:। रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम्॥
वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषाङ्गतिकारणम्। आराधयन्विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥
तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने। ग्रहाणां चरितं प्रादान्मया सविता स्वयम्॥ (सूर्यसिद्धान्त १।२—४)

दूसरा स्वरूप है, जो कलनात्मक है, विभाज्य है, ज्ञानका विषय है, उसे जाना जा सकता है। यह कलनात्मक काल भी स्थूल (मूर्त) एवं सूक्ष्म (अमूर्त)—दो प्रकारका है—

लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते॥

(सूर्यसिद्धान्त १।१०)

इस प्रकार आगे मयासुरको सूर्यांशपुरुषने सम्पूर्ण गणितशास्त्रका उपदेश दिया, जो मूलतः भगवान् सूर्यका ही अभिमत था। मयद्वारा सूर्यावतार सूर्यांशपुरुषसे प्राप्त ज्योतिषशास्त्र विद्याका उल्लेख इसी ग्रन्थ (सूर्यसिद्धान्त)-में अन्यत्र भी आया है। वहाँ भी निर्दिष्ट है कि मयासुरने परम भक्तिपूर्वक सूर्यांशपुरुषकी पूजाकर उनसे अनेक प्रश्न किये—

अथार्कांशसमुद्भूतं प्रणिप्रत्य कृताञ्जलिः।
भक्त्या परमयाभ्यर्च्य पप्रच्छेदं मयासुरः॥

(सूर्यसिद्धान्त १२।१)

सम्पूर्ण विद्या देनेके अनन्तर सूर्यांशपुरुष बोले—हे सूर्यभक्त दैत्यश्रेष्ठ मय! मैंने यह परम अद्भुत रहस्य तुम्हें बतलाया है, यह सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा परम पवित्र और ब्रह्मस्वरूप है। ग्रहों और नक्षत्रोंसे सम्बद्ध यह जो दिव्य ज्ञान तुम्हें प्रदान किया, इसको जान लेनेसे सूर्यादि लोकोंमें सदाके लिये स्थान प्राप्त होता है—'**विज्ञेयार्कादिलोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम्॥**' (सूर्यसिद्धान्त १४।२३) इस प्रकार मयको भलीभाँति उपदेश देनेके अनन्तर सूर्यांशपुरुष उनसे पूजित होकर सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट हो गये। मयने भी वह दिव्य ज्ञान प्राप्तकर अपनेको धन्य और कृतार्थ माना। कालान्तरमें ऋषियोंको जब यह जानकारी हुई कि मयने सूर्यभगवान्से वर प्राप्त किया है तो वे भी उस ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये आदरपूर्वक उसके पास गये और प्रसन्न होकर मयासुरने भी ऋषियोंको ग्रहों-नक्षत्रोंकी स्थितिका भलीभाँति ज्ञान कराया—'**स तेभ्यः प्रददौ प्रीतौ ग्रहाणां चरितं महत्।**' (सूर्यसिद्धान्त १४।२७) इस प्रकार भगवान् सूर्यसे प्रकट ज्योतिर्विद्या सूर्यांशपुरुष, मयासुर तथा ऋषियोंको अनुक्रमसे परम्परया प्राप्त होकर लोकमें प्रचलित हुई।

सूर्यसिद्धान्तका प्रतिपाद्य विषय

सूर्यसिद्धान्त चौदह अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। यहाँ प्रत्येक अध्यायकी बातें संक्षेपमें प्रस्तुत हैं—

(१) प्रथम अध्याय (मध्यमाधिकार)-के प्रारम्भमें सूर्यांशपुरुषद्वारा मयको ज्योतिर्विद्या प्राप्त करनेका आख्यान, कालविभाग, युगमान, दिन-संख्या, अहर्गण, ग्रहोंका मध्य, मन्दोच्च और शीघ्र गतिज्ञान करके वारप्रवृत्ति तथा तात्कालिक ग्रहज्ञानका गणित वर्णित है।

(२) दूसरे स्पष्टाधिकारमें ग्रहगतिका कारण, ग्रहोंकी आठ प्रकारकी गतियोंका वर्णन, ज्यानिर्णय, क्रान्ति और केन्द्रसाधन, ग्रहस्पष्ट, भुजान्तरसंस्कार, अहोरात्रमान, तिथि, नक्षत्र, योग तथा करणों आदिके गणितका वर्णन है।

(३) तीसरे अध्यायको त्रिप्रश्नाधिकार कहा गया है। दिक्, देश तथा कालसम्बन्धी तीन बातोंका इसमें वर्णन है। इसके लिये पलभा, अयनांश, नत्यानयन निरक्षराशिमान, लग्न तथा दशम लग्नज्ञानकी विधियाँ दी गयी हैं।

(४) चौथा अध्याय चन्द्रग्रहणाधिकार है, इसमें सूर्यचन्द्रबिम्बका ज्ञान, सूर्य तथा चन्द्रग्रहणका स्वरूप तथा ग्रहणके भेद आदिका गणित है।

(५) पाँचवें अध्यायमें विशेषरूपसे सूर्यग्रहणके गणितका विमर्श है।

(६) छठे छेद्यकाध्याय नामक अध्यायमें परिलेखाधिकारका वर्णन है। ग्रहणोंके भेदज्ञानको बतानेवाले छेदक गणितका वर्णन है।

(७) सातवें अध्यायमें ग्रहोंकी युति, दृक्कर्म, ग्रहविम्ब तथा ग्रहयुद्ध आदिका वर्णन है।

(८) आठवें अध्यायमें ग्रहों तथा नक्षत्रोंकी युतिज्ञानका वर्णन है।

(९) नवें अध्यायमें ग्रहोंके उदय एवं अस्त होनेके

गणित तथा काल-निर्णय वर्णित हैं।

(१०) दसवें अध्यायमें चन्द्रशृंगोन्नति तथा चन्द्रोदय आदिकी विधि वर्णित है।

(११) ग्यारहवें पाताधिकार नामक अध्यायमें वैधृति, व्यतीपात आदि पातोंका वर्णन, योग तथा उनका फल, गण्डक, भसन्धि आदि निरूपित हैं। यहाँपर ग्रन्थका पूर्वभाग पूर्ण हो जाता है।

(१२) बारहवें भूगोलाध्यायके प्रारम्भमें मयासुरद्वारा पुनः सूर्यांशपुरुषसे प्रश्न हुए हैं। मयासुरने भूगोल-ज्ञान बतानेके लिये निवेदन किया है और कहा—हे भगवन्! इस पृथ्वीका परिमाण क्या है, आकार कैसा है, यह किसके आश्रयसे टिकी है? इसके कितने विभाग हैं और किस प्रकारसे सात पातालों और भूमिकी अवस्थिति है, किस प्रकार सूर्य दिन-रातकी व्यवस्था करते हैं, समस्त भुवनोंमें किस प्रकार प्रकाश करते हैं तथा किस प्रकार वे विचरण करते हैं? देवता और असुरोंके दिन-रात विपरीत क्यों हैं इत्यादि। इन सभी प्रश्नोंका उत्तर सूर्यांशपुरुषने उन्हें दिया और सृष्टिचक्र का वर्णन किया।

(१३) तेरहवें अध्यायमें गोलनिरूपण तथा गोलमें मेषादि राशियोंका प्रतिस्थापन करके उससे खगोल-ज्ञानका वर्णन है और अनेक प्रकारके कालज्ञानसम्बन्धी शंकु, यष्टि, चक्र आदि छायायन्त्रोंके निर्माणकी विधि वर्णित है।

इस विद्याके फलमें सूर्यांशपुरुष बताते हैं कि ग्रहनक्षत्रके और गोलके तत्त्वतः ज्ञानसे मनुष्य ग्रहलोकको प्राप्तकर अन्तमें आत्मज्ञानसे मोक्ष प्राप्त कर लेता है—

ग्रहनक्षत्रचरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्त्वतः।
ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान्नरः॥

(सूर्यसिद्धान्त १३। २५)

(१४) अन्तिम चौदहवें अध्यायके आरम्भमें नौ प्रकारके कालमानोंका वर्णन हुआ है—(१) ब्राह्म, (२) दैव, (३) पित्र्य, (४) प्राजापत्य, (५) बार्हस्पत्य, (६) सौर, (७) सावन, (८) चान्द्र तथा (९) नाक्षत्रमान। इसमेंसे केवल सौर, चान्द्र, नाक्षत्रिक तथा सावन—इन चार मानोंका ही व्यवहार होता है। षष्ट्यब्द जाननेके लिये बार्हस्पत्यमान समझना चाहिये। इन सभी कालमानोंके ज्ञानकी विधि तथा उन मानोंसे क्या-क्या व्यवहार लेना चाहिये—यह बताया गया है, जैसे दिन-रात्रिका परिमाण, उत्तर तथा दक्षिण अयन, संक्रान्ति, संक्रान्तिका पुण्यकाल आदिका व्यवहार सौर माससे जानना चाहिये।

चान्द्रमाससे तिथि, करण, विवाह, क्षौरादिकर्म, व्रत, उपवास, यात्रा आदिका विचार करना चाहिये। आगे भी इसी प्रकार विस्तृत विवेचन है। अन्तमें ग्रन्थकी फलश्रुति है।

इस प्रकार सूर्यसिद्धान्त नामक इस ग्रन्थमें खगोल तथा भूगोलज्ञान, अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणितके मूल सिद्धान्त बताये गये हैं। ज्या (Sine), कोटिज्या (Cosine), त्रिज्या (Radus), धनु (Aae) आदि त्रिकोणमितिका पूर्ण गणित वर्णित है तथा दिक्, कालज्ञान और ग्रहों-नक्षत्रोंकी गतियोंका पूर्ण वर्णन है। आज भारतवर्षके अधिकांश पंचांग इसी सूर्यसिद्धान्तके आधारपर बनते हैं। गणेशदैवज्ञका ग्रहलाघव तथा मकरन्दीय सारणियाँ इसी सिद्धान्तकी पोषक हैं। दैवज्ञजगत्में इस ग्रन्थका विशेष समादर है।

सूर्यसिद्धान्तकी टीकाएँ—यह ग्रन्थ अत्यन्त क्लिष्ट है। इसके तत्त्वको समझानेके लिये संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी आदिमें कई टीकाएँ इसपर हुई हैं। प्रसिद्ध संस्कृत टीकाओंमें आचार्य रंगनाथ (शक १५२५)-की गूढार्थप्रकाशिका, नृसिंहदैवज्ञ (शक १५४२)-का सौरभाष्य, विश्वनाथदैवज्ञ (शक १५५०)-की सोदाहरणगहनार्थप्रकाशिका तथा दादाभाई (शक १६४१)-की किरणावली मुख्य हैं।

परम सूर्यभक्त शिल्पशास्त्री मयासुरका संक्षिप्त परिचय

सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थके प्रारम्भमें सूर्यावतार पुरुषके द्वारा मयको सम्पूर्ण ग्रह-नक्षत्रोंका ज्ञान करानेवाली

ज्योतिषविद्याकी चर्चा आयी है, अत: संक्षेपमें दैत्यश्रेष्ठ मयका चरित यहाँ प्रस्तुत है—

जिस प्रकार देवशिल्पीके रूपमें विश्वकर्मा (त्वष्टा)-की प्रसिद्धि है, वैसे ही असुरशिल्पीके रूपमें असुरश्रेष्ठ मयकी प्रतिष्ठा है। शिल्पकला, वास्तुकला, स्थापत्य, चित्रकला तथा खगोलज्ञानके आचार्य होनेके कारण असुरलोकके प्रासाद, उद्यान तथा असुरोंकी सभाओंके निर्माता मय ही हैं। इनके द्वारा विरचित 'मयशिल्पम्' नामक शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन कालसे भारतमें समादृत होता चला आ रहा है। महर्षि वाल्मीकिने सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्डके लगभग पचास अध्यायोंके अन्तर्गत मयद्वारा निर्मित लंकापुरीके वर्णनमें मयके विचित्र शिल्पकौशलका परिचय दिया है। असुरोंकी नगरी भोगावतीके निर्माता मय ही हैं। मय केवल दैत्योंके ही नहीं, प्रत्युत देवताओं, मनुष्यों और यहाँतक कि भगवान् कृष्ण और युधिष्ठिरके कहनेपर इन्द्रप्रस्थ नगरी तथा युधिष्ठिरके दिव्य सभाभवनके निर्माता मय ही हैं, उस सभाभवनका फर्श इतना विलक्षण था कि स्थल जलके समान और जल स्थलके समान प्रतीत होता था, इसी कारण दुर्योधन-जैसा शूर एवं बुद्धिमान् भी उसे देखकर भ्रममें पड़ गया।

पौराणिक कथानकोंके अनुसार मय कश्यपपत्नी दनुके पुत्र हैं। इनकी पत्नीका नाम हेमा है। मन्दोदरी नामकी इनकी सुलक्षणा कन्याका विवाह रावणके साथ हुआ था। सूर्य-चन्द्रमाकी भाँति आकाशमें विचरण करनेवाले तीन पुरोंके निर्माता मय ही हैं। इनका भेदन करनेकी शक्ति केवल भगवान् शिवमें थी, इसीलिये वे त्रिपुरारि कहलाये। शिल्पशास्त्रोंके ग्रन्थोंमें आद्य आचार्यके रूपमें मयकी वन्दना की गयी है। मत्स्यपुराणमें वास्तुविद्याके अठारह आचार्य परिगणित हैं, उनमें मयका विशिष्ट स्थान है। जैसे मय शिल्पशास्त्रमें निपुण थे, वैसे ही भगवान् सूर्यकी कृपासे ज्योतिषविषयक उनका ग्रहगणितीय ज्ञान भी अपूर्व था।

शास्त्रोंके उपकारक आचार्य बृहस्पति और उनका मुहूर्तशास्त्र

आचार्य बृहस्पति देवताओंके भी गुरु हैं। ब्रह्माजीके मानसपुत्र महर्षि अंगिराके तीन पुत्र हुए—बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त। इनमें बृहस्पति सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हुए। देवगुरु बृहस्पति अत्यन्त सत्त्वसम्पन्न, वाणी-बुद्धि और ज्ञानके अधिष्ठाता तथा महान् परोपकारी हैं। महाभागवत श्रीभीष्मपितामहजीका कहना है कि आचार्य बृहस्पतिके समान वक्तृत्वशक्तिसम्पन्न और कोई दूसरा कहीं भी नहीं है—

'वक्ता बृहस्पतिसमो न ह्यन्यो विद्यते क्वचित्।'

(महा०अनु० १११।५)

आचार्य अपने एक रूपसे देवपुरोहितके रूपमें इन्द्रसभामें, ब्रह्मसभामें विराजमान रहते हैं तथा दूसरे रूपसे ग्रहके रूपमें प्रतिष्ठित होकर नक्षत्रमण्डलमें विराजमान रहते हैं और जगत्के कल्याणचिन्तनमें निमग्न रहते हैं। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार बृहस्पति सब प्रकारसे अभ्युदयके विधायक हैं और इनकी कृपासे बुद्धि सत्त्वसम्पन्न होकर सन्मार्ग तथा धर्माचरणमें प्रवृत्त होती है। वेदों तथा पुराणेतिहासग्रन्थोंमें इनके उदात्त चरित्रका बहुधा उल्लेख हुआ है। आचार्य बृहस्पति वेदों और वेदार्थोंके तत्त्वज्ञ, समस्त कलाओंमें कुशल, समस्त शास्त्रोंमें पारंगत तथा नीतिविद्याके विशेषज्ञ हैं। वे हितका उपदेश करनेवाले, गुणवान्, देश-कालको जाननेवाले, ग्रह-नक्षत्रोंकी गतिका ज्ञान रखनेवाले और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। उनके द्वारा भगवान् शंकरकी की गयी आराधना प्रसिद्ध ही है।

वेदोंमें एक श्रेष्ठ देवताके रूपमें इनका निरूपण हुआ है। वहाँ बताया गया है कि ये बुद्धि एवं यज्ञके अधिष्ठाता हैं। 'सदसस्पति', ज्येष्ठराज, वाचस्पति,

बृंहणस्पति तथा पुरोहित आदि इनके नाम वेदोंमें आये हैं। इनकी उत्पत्तिके विषयमें बताया गया है कि ये आकाशके महान् प्रकाशसे प्रकट हुए हैं और इनका वर्ण स्वर्णके समान अरुणिम आभासे युक्त है।

बृहस्पतिजीके ग्रहोंमें प्रतिष्ठित होनेका वृत्तान्त

स्कन्दपुराणमें आया है कि देवगुरु बृहस्पतिजीने काशीमें शिवलिंगकी स्थापनाकर घोर तपस्या की। तपस्या करते हुए जब दस हजार वर्ष बीत गये, तब जगदीश्वर महादेव उस लिंगसे प्रकट होकर कहने लगे—'मैं तुम्हारी तपस्यासे परम प्रसन्न हूँ, अपना अभीष्ट वर माँगो।' अपने सामने उत्कृष्ट तेजोमय जटाजूटधारी परम कल्याणकारी शंकरकी मूर्ति देखकर वे उनकी स्तुति करने लगे—हे जगन्नाथ! आप त्रिगुणातीत, जरा-मरणसे रहित, त्रिजगन्मय, भक्तोंका उद्धार करनेवाले और शरणागतवत्सल हैं। आपके दर्शनोंसे ही मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। मेरी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो गयी हैं। अतः कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं है। आंगिरसकी ऐसी स्तुति सुनकर भगवान् आशुतोषने और भी प्रसन्न होकर अनेक वर दिये और कहा—हे आंगिरस! तुमने बृहत् (बड़ा) तप किया है, इसलिये तुम इन्द्रादि देवोंके पति (पालक) तथा ग्रहोंमें पूज्य होओगे और तुम्हारा नाम 'बृहस्पति' होगा—

बृहता तपसानेन बृहतां पतिरेध्यहो।
नाम्ना बृहस्पतिरिति ग्रहेष्वर्च्यो भव द्विज॥

(स्कन्दपु० काशी० पू० १७।४३)

हे ग्रहाधीश! तुम बड़े वक्ता और विद्वान् हो, इसलिये तुम्हारा नाम वाचस्पति भी होगा। जो प्राणी तुम्हारे द्वारा स्थापित इस बृहस्पतीश्वर लिंगकी आराधना करेगा और तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुतिका पाठ करेगा,* उसे मनोवांछित फल मिलेगा तथा ग्रहजन्य कोई बाधा भी उसे पीड़ित नहीं करेगी। इतना कहकर भगवान् शंकरने सभी देवताओंको बुलाकर बृहस्पतिजीको देवाचार्य तथा देवगुरुके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

इसी प्रकारका दूसरा आख्यान स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डमें प्राप्त होता है। उसमें बताया गया है कि बृहस्पतिजीने प्रभासक्षेत्रमें सोमनाथके समीपमें शिवलिंगकी स्थापनाकर महान् तप किया और भक्तिभावसे दीर्घकालतक उनकी आराधना की। तब सन्तुष्ट हुए देवेश्वर शिवने उन्हें ज्ञान प्रदान किया और वे देवताओंके गुरुपदपर प्रतिष्ठित हुए, साथ ही ग्रहोंमें उन्हें अत्यन्त महनीय पद प्राप्त हुआ। वहाँ स्थापित बृहस्पतीश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता।

ज्योतिषशास्त्रमें निरूपित आचार्य बृहस्पतिकी स्वरूपमीमांसा

ग्रहमण्डलमें देवगुरु बृहस्पतिका विशिष्ट स्थान है। ये अत्यन्त शुभकारक ग्रह हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त सौम्य है। ये वाणी, विद्या, बुद्धि, शास्त्र, धर्म तथा ज्ञानके अधिष्ठाता हैं। कालात्मा पुरुषके शरीरमें ये ज्ञानशक्तिके प्रतिनिधि हैं। इनका वर्ण गौर-पीत है। इनका शरीर लम्बा तथा सिरके केश और नेत्र भूरे हैं, बुद्धि श्रेष्ठ है, कफप्रकृति है। ये पीतवस्त्र धारण करते हैं। आकाशतत्त्वके अधिपति हैं, इनकी दिशा ईशान है। ये सत्त्वगुणसे सम्पन्न तथा सभी शास्त्रोंको जाननेवाले हैं। बारह राशियोंमेंसे नवीं राशि धनु तथा बारहवीं राशि मीनके ये स्वामी हैं। इनका रत्न पुखराज है। इनके नामसे गुरुवारकी प्रवृत्ति है। इनका रथ अत्यन्त प्रकाशमान तथा तेजोमय है। ये पीले रंगके तथा वायुके समान वेगशाली आठ दिव्य अश्वोंसे जुते सुवर्णमय रथपर चलते हैं। ये एक राशिपर एक वर्ष रहते हैं। कालप्रवर्तनचक्रमें इनके मानसे बार्हस्पत्यमान चलता है। ये कर्क राशिमें उच्चके तथा मकर राशिमें नीचके कहे गये हैं। विंशोत्तरी महादशामें इनका समय सोलह वर्ष है। इनके अधिदेवता ब्रह्मा तथा प्रत्यधिदेवता इन्द्र हैं। नवग्रहमण्डलमें उत्तर दिशामें इनकी स्थापना होती है

* बृहस्पतिद्वारा की गयी यह स्तुति अत्यन्त ही ललित, गेय तथा कण्ठ करनेयोग्य है, इसके भाव बड़े ही सुन्दर हैं। इस स्तुतिका संग्रह गीताप्रेससे प्रकाशित 'शिवस्तोत्ररत्नाकर' में सानुवाद हुआ है। भगवत्प्रेमीजनोंको उसे अवश्य देखना चाहिये।

और इनकी आकृति अष्टकोणात्मक है। विग्रहरूपमें ये सिरपर स्वर्णमुकुट तथा गलेमें सुन्दर माला धारण करते हैं और कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं। ये अपने चार हाथोंमें दण्ड, रुद्राक्षमाला, पात्र और वरदमुद्रा धारणकर सुशोभित रहते हैं। सूर्य, चन्द्र तथा मंगलसे इनकी नैसर्गिक मैत्री है। इनकी उपासनामें पीत वस्त्र तथा पीत पुष्पका उपयोग होता है। इनका वैदिक मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥ (ऋक्० २।२३।१५; यजु० २६।३)

नवग्रहमण्डलमें इनका आवाहन निम्न मन्त्रसे किया जाता है—

देवानां च मुनीनां च गुरुं काञ्चनसन्निभम्।
वन्द्यभूतं त्रिलोकानां गुरुमावाहयाम्यहम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिन्धुदेशोद्भव आङ्गिरसगोत्र पीतवर्ण भो गुरो! इहागच्छ इह तिष्ठ ॐ बृहस्पतये नमः बृहस्पतिं आवाहयामि स्थापयामि।

इनका तान्त्रिक मन्त्र है—'**ॐ बृं बृहस्पतये नमः।**'

इस प्रकार नक्षत्रमण्डलमें अधिष्ठित होकर ग्रहश्रेष्ठ बृहस्पति जगत्‌के कल्याणमें सदा निरत रहते हैं और सद्‌बुद्धि तथा धार्मिक ज्ञान प्रदानकर भगवन्मार्गमें प्रेरित करते रहते हैं। कुण्डलीमें बृहस्पतिकी शुभ स्थिति सब प्रकारका अभ्युदय प्रदान करती है।

बृहस्पतिजीका शास्त्रज्ञान और उनकी शिष्य-परम्परा

यतः आचार्य बृहस्पति देवताओंके ही नहीं, असुरों तथा मानवोंके भी गुरुभाक् पदसे सुशोभित हैं, अतः सभी उनके उपदेशोंसे उपकृत हुए हैं। जब-जब भी लोकमें धर्माचरणका ह्रास हुआ है, देवताओंपर विपत्ति आयी है, बृहस्पतिजीने ही उन्हें संकटसे उबारा है। उनके प्रमुख शिष्योंमें देवराज इन्द्र ही परिगणित हैं। इन्द्रको उन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र प्रदान किया।

नीतिशास्त्रका परिज्ञान उन्होंने इन्द्रको कराया, बृहस्पतिप्रोक्त धर्मशास्त्र प्राप्त है, उसके श्रोता भी इन्द्र ही हैं। ज्योतिषशास्त्रपर मुहूर्तविज्ञानसे सम्बद्ध बृहस्पतिजीके नामसे बृहस्पतिसंहिता ग्रन्थ उपलब्ध है, उसे भी इन्द्रको सम्बोधित करके ही उपदिष्ट किया गया है। नारदसंहितामें ज्योतिषशास्त्रके जो अठारह आचार्य परिगणित हैं, उनमें बृहस्पतिजी विशेष मान्य हैं। बृहस्पतिप्रोक्त अर्थशास्त्र बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र कहलाता है। इनका (कोसलनरेश) राजर्षि वसुमनाको दिया गया राजधर्मका उपदेश इनके राजधर्मज्ञानका किंचित् परिचय देता है। मत्स्यपुराण (२५२।२—४)-में बताया गया है कि वास्तुशास्त्रके अठारह आचार्योंमें बृहस्पति भी अन्यतम आचार्य हैं। बृहस्पतिजीने महाराज युधिष्ठिरको संसारकी असारता और अध्यात्मज्ञानका जो उपदेश प्रदान किया, वह बड़े ही महत्त्वका है।

देवपुरोहित बृहस्पतिजीके शिष्य थे राजा उपरिचरवसु। उन्होंने बृहस्पतिजीसे चित्रशिखण्डियोंके बताये हुए पांचरात्रशास्त्रका विधिवत् अध्ययन किया।* ऐसे ही राजर्षि मान्धाता भी बृहस्पतिजीके शास्त्रज्ञानसे उपकृत थे।

आचार्य बृहस्पति और उनकी बृहस्पतिसंहिता

आचार्य बृहस्पतिके नामसे बृहस्पतिसंहिता नामक एक संहिताग्रन्थ प्राप्त होता है, जो मुख्यरूपसे गर्भाधानादि संस्कारोंके मुहूर्तका परिज्ञान कराता है। इस ग्रन्थमें कुल २९ अध्याय हैं, किंतु अन्तिम अध्यायमें ग्रन्थ-समाप्तिका कोई संकेत (पुष्पिका आदि) नहीं है, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इसका शेष अंश कालके प्रभावसे विलुप्त हो गया है। मुख्य रूपसे यह ग्रन्थ मुहूर्तविधानका

* महाभारत (शान्ति० ३३५।२७—२९)-में बताया गया है कि मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ—ये सात ऋषि चित्रशिखण्डी कहलाते हैं।

निरूपक है। प्रसंगवश इसमें होरा-सम्बन्धी विषयों तथा धर्मशास्त्रीय विषयोंका भी स्थान-स्थानपर सन्निवेश हुआ है। यहाँ इस ग्रन्थकी कुछ बातें दी गयी हैं—

इसके **प्रथम अध्यायमें** कुल २७ श्लोक हैं, जिनमें ज्योतिषशास्त्रकी महिमा, ग्रहोंकी महिमा, दैवज्ञकी महिमा तथा गुरु और शुक्रादि ग्रहोंके द्वारा दोषोंके अपचय करनेमें बलाबलकी क्षमताका विचार किया गया है। इसके प्रारम्भमें ही बताया गया है कि द्विजातियोंके कल्याणके लिये इस ज्योतिषशास्त्रकी रचना स्वयं ब्रह्माजीने की है। यह शास्त्र नेत्ररूप है, वेदांग है, ब्रह्मस्वरूप है तथा यज्ञके लिये हितकारी है—

स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं चक्षुर्भूतं द्विजन्मनाम्।
वेदाङ्गं ज्योतिषं ब्रह्मपरं यज्ञहितावहम्॥

(बृह०सं० १।३)

पुन: बृहस्पतिजी कहते है कि क्रिया तथा कालके साधक एवं तीनों लोकोंका हित करनेवाले वेदोंमें उत्तम इस शास्त्रको मैंने ब्रह्माजीसे प्राप्त किया—'**मया स्वयम्भुवः प्राप्तम्।**'

ग्रहोंकी महिमा तथा उनकी फलदातृत्व शक्तिका निरूपण करते हुए बृहस्पतिजी बताते हैं कि यह सम्पूर्ण संसार ग्रहोंके अधीन है, सभी श्रेष्ठजन भी ग्रहोंके ही अधीन होते हैं, कालतत्त्वका ज्ञान भी ग्रहोंके अधीन ही है और ग्रह ही कर्मोंका फल देनेवाले होते हैं, सृष्टि, पालन तथा संहार—यह सब ग्रहोंके अधीन है, कर्मोंके फलदाता ग्रह ही हैं और कर्मफलोंके सूचक भी ग्रह ही होते हैं, अशुभ संयोग भी ग्रहोंके अनुसार ही प्राप्त होता है और उन अशुभ संयोगोंको दूर करनेमें ग्रह ही सहायक होते हैं, अत: उन ग्रहोंकी उपासनाद्वारा उन्हें प्रसन्न करना चाहिये—

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना: नरावरा:।
कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहा: कर्मफलप्रदा:॥
सृष्टिरक्षणसंहारा: सर्वे चापि ग्रहानुगा:।
कर्मणां फलदातार: सूचकाश्च ग्रहा: सदा॥
दुष्करं भवसंयोगं काले दु:स्थानमाययु:।
तत्फलानन्वपायैव तदा पूज्यतमा ग्रहा:॥

(बृह०सं० १।६-७, ९)

बृहस्पतिजी बताते हैं कि पूर्वजन्ममें प्राणियोंके द्वारा जो भी शुभ अथवा अशुभ कर्म होते हैं, उसके फलको तथा फलभोगके समयको ज्योतिषशास्त्र उसी प्रकार स्पष्ट व्यक्त कर देता है, जैसे दीपक अँधेरेमें रखे पदार्थोंको स्पष्ट दिखा देता है—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

(बृह०सं० १।८)

कालतत्त्वके विषयमें एक विशेष बात बताते हुए बृहस्पतिजी कहते हैं कि काल अर्थात् समयमें स्वभावसे ही शुभता एवं अशुभता रहती है, ऐसा नहीं कि कोई समय पूर्णरूपसे शुभ है और पूर्ण रूपसे अशुभ है, वह सब समय न पूर्णरूपसे दोषरहित होता है और न पूर्णरूपसे गुणरहित ही होता है, ऐसा वह अनादि तथा अविनाशी कालतत्त्व ग्रह-नक्षत्रादिके योगसे शुभता एवं अशुभताको प्राप्त करता है, सर्वथा निर्दुष्ट काल मिलना मुश्किल है। अत: कम-से-कम दोषवाले शुभ मुहूर्तको जानना चाहिये। अर्थात् जब दोष अति स्वल्प हों, नगण्य हों, ऐसा काल भी कार्यके लिये शुभ ही होता है। अत: ऐसे काल (मुहूर्त)-का ज्ञानकर कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये।

बृहस्पतिजी कहते हैं कि मुहूर्त आदिके विषयमें ऐसे ही दैवज्ञसे पूछना चाहिये जो ज्योतिषशास्त्रको भलीभाँति जानता हो। जो नक्षत्रसूची हो अर्थात् ज्योतिषका किंचित् भी ज्ञान न रखनेपर भी सिद्धज्योतिषी होनेका दम्भ रखनेवाला हो, उससे ज्योतिषकी कुछ भी बात नहीं पूछनी चाहिये। पापोंका प्रायश्चित्त, रोगकी औषधि, समयकी जानकारी तथा धर्मशास्त्रका निर्णय जो तत्तद् शास्त्र बिना जाने बताता है, उसे ब्रह्मघाती समझना चाहिये अर्थात् शास्त्रज्ञान बिना इनके विषयमें निर्णय

देनेवालेको ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है—

प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषं धर्मनिर्णयम्।
विना शास्त्रं हि यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥

(बृह०सं० १।२४)

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रके ज्ञानकी महिमा बताकर आगेके अध्यायोंमें शुभ एवं अशुभ योगोंका निर्णय किया गया है।

बृहस्पतिसंहिताके **दूसरे अध्यायमें** ५७ श्लोक हैं। यहाँ अश्व, गज तथा स्वर्ण आदि धातुओंके पात्रोंके संग्रहका मुहूर्त बताया गया है तथा आभूषणके क्रय-विक्रयके शुभ ग्रहयोग भी बताये गये हैं। आगे वार तथा नक्षत्रकी युतिसे होनेवाले शुभाशुभ योगोंको बताया गया है। जैसे सोमवारको यदि चित्रा, श्रवण और सौम्य नक्षत्र हो तो यह सुधायोग होता है, यह शुभ योग शुभकारक होता है—

चित्राश्रवणसौम्याः स्युः यदि शीतांशुवारगाः।
एते चापि सुधायोगाः सर्वशोभनशोभनाः॥

(बृह०सं० २।२७)

तीसरे अध्यायमें बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीके द्वारा बताये गये तिथि, करण, राशि, अंश, लग्न तथा ग्रहयोगसे होनेवाले अशुभ योगोंका विस्तारसे निरूपण किया है। साथ ही यह भी बताया है कि गुरु तथा शुक्रके अस्त होनेपर विवाह तथा चूड़ाकरण, उपनयन नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे नारीको वैधव्य प्राप्त होता है, शिशुका अनिष्ट होता है तथा वटुकी मृत्युकी आशंका रहती है। इसके साथ ही विष्टिदोष, विषनाड़ी, यमघण्ट आदि अशुभ योगों तथा दिग्दाह, उल्कापात आदि उत्पातोंका वर्णन करके उनमें शुभ कार्योंको करनेका निषेध किया है। इस अध्यायमें २४१ श्लोक हैं।

चौथे अध्यायमें बताया गया है कि काल स्वभावसे ही पूर्ण गुणयुक्त तथा पूर्णदोषयुक्त नहीं होता। अतः दोषोंको दूर करनेवाले वचनों (अपवादों)-को मानकर दोषोंको दूर हुआ समझकर उन समयोंमें शुभ कार्य कर लेना चाहिये; क्योंकि ऐसा यदि नहीं किया जायगा तो अर्थात् सभी कार्योंके लिये शुभ मुहूर्त ही खोजा जायगा तो सभी कार्योंके लिये निर्दुष्ट समय कहाँ मिल पायेगा और कई आवश्यक एवं शुभ कार्य भी मुहूर्त न मिलनेके कारण पूर्ण होनेसे रह जायँगे। इस अध्यायमें १६९ श्लोक हैं।

पाँचवें अध्यायमें सभी शुभ कार्योंके प्रारम्भमें किये जानेवाले मंगलांकुर-रोपणकर्मका विधान बताया गया है। इस अध्यायमें ४१ श्लोक हैं।

अठारह श्लोकोंवाले **छठे अध्यायमें** सोलह संस्कारोंमेंसे प्रथम होनेवाले संस्कार गर्भाधान-संस्कारका मुहूर्त, ऋतु-काल तथा गर्भाधानके लिये योग्यायोग्य समयका निर्धारण किया गया है। इस अध्यायमें १८ श्लोक हैं।

सातवें अध्यायमें गर्भके यथायोग्य सुस्थापित हो जानेपर पुंसवन-संस्कारका समय तथा उस संस्कारको सम्पन्न करनेकी विधि बतायी गयी है। इस अध्यायमें २७ श्लोक हैं।

आठवें अध्यायमें सीमन्तोन्नयन-संस्कारके कालका निरूपण है। कहा गया है कि सौरमाससे चौथे, छठे या आठवें महीनेमें सीमन्तोन्नयन-संस्कार करना चाहिये। इस अध्यायमें २० श्लोक हैं।

नवें अध्यायमें २१ श्लोक हैं। इनमें जातकर्म-संस्कारकी व्याख्याके साथ ही उसकी विधि भी बतायी गयी है।

दसवें अध्यायमें नामकरणकी विधि तथा उसका समय निरूपित है, इस अध्यायमें ३४ श्लोक हैं।

ग्यारहवें अध्यायमें कर्णवेध-संस्कारका वर्णन है। इसके उद्देश्यमें बताया गया है कि इस संस्कारसे आरोग्य, लक्ष्मी तथा सुखकी प्राप्ति होती है। इसी अध्यायके अन्तमें शंखपात्रसे दुग्धपान, जन्मकालिक क्षौर तथा बालकके प्रथम बार खट्वारोहण कर्मका समय भी दिया गया है। इस अध्यायमें ३३ श्लोक हैं।

बारहवें अध्यायमें शिशुके प्रथम बार घरसे बाहर ले जाने अर्थात् निष्क्रमण-संस्कारके योगोंका वर्णन है। इस अध्यायमें १५ श्लोक हैं।

तेरहवें अध्यायमें अन्नप्राशन-संस्कारका शुभ समय निरूपित है। प्रारम्भमें अन्नकी महिमा निरूपित है। इस अध्यायमें ५० श्लोक हैं।

चौदहवें अध्यायमें चूडाकर्म-संस्कारका निरूपण है और चूडाकर्म-संस्कार कब, किन शुभ योगोंमें निषिद्ध समयोंका परिहार करके करना चाहिये, इसका विस्तारसे वर्णन है। यह भी बताया गया है कि अभिषेक, यज्ञान्त अवभृथस्नान तथा वृषोत्सर्गमें होनेवाले क्षौरकर्ममें मुहूर्तविचारका विधान नहीं है। इस अध्यायमें ९७ श्लोक हैं।

पन्द्रहवें अध्यायमें द्विजोंके द्विजत्वको सिद्ध करनेवाले उपनयन-संस्कारके शुभ समय तथा यज्ञोपवीत-संस्कारकी विधिका वर्णन है। बृहस्पति कहते हैं कि माताके उदरसे तो केवल जन्म होता है। वास्तविक जन्म तो उपनयन-संस्कारमें होनेवाले वेदाध्ययनसे होता है—**'जन्मन्युदरतो जन्म केवलं जन्म वेदतः'** (बृह०सं० १५। २)। इस अध्यायकी श्लोक-संख्या १४० है।

सोलहवें अध्यायकी श्लोक-संख्या ६२ है। इसके प्रारम्भमें ही बताया गया है कि यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हो जानेके तुरंत बाद अथवा सूर्यास्तके समय यथाविधि सन्ध्यावन्दन करे और फिर प्रतिदिन सायं-प्रातः सन्ध्या करनी चाहिये—**'सन्ध्यां सम्यगुपासीत सायं प्रातर्दिने दिने॥'** (बृह०सं० १६। १)

तदनन्तर श्रवण या धनिष्ठा नक्षत्रमें पूर्णिमाको उपाकर्म (श्रावणी) कर्म करे—ये दोनों न मिलें तो हस्त नक्षत्रमें करे। तदनन्तर वेदारम्भ-संस्कार करना चाहिये। आगे वेदारम्भका काल दिया गया है।

सत्रहवें अध्यायमें ११ श्लोक हैं और इस अध्यायमें समावर्तन-संस्कारका शुभ योग निरूपित है।

अठारहवें अध्यायमें मुख्यरूपसे विवाह-संस्कारकी व्याख्या तथा विवाह-मुहूर्तोंकी व्याख्या है। इस अध्यायकी श्लोक-संख्या ३३० है।

उन्नीसवें अध्यायमें केवल ६ श्लोक हैं। इसमें विवाह-संस्कारके बाद चौथे दिन होनेवाले चतुर्थी कर्मका विधान वर्णित है।

बीसवें अध्यायमें बताया गया है कि सम्पूर्ण अहोरात्र (रात-दिन)-में ६० नाडियाँ होती हैं। एक नाडीका मान एक घटी (२४ मिनट)-के बराबर होता है। सूर्योदयसे लेकर दूसरे सूर्योदयतक एक-एक घटीके क्रमशः सृष्टि, सिद्धि, नाश, मित्र, जीव, विग्रह आदि नाम होते हैं। इन नाडियोंमें इनके नामके अनुरूप कार्य करने चाहिये।

इक्कीसवें अध्यायमें २८१ श्लोक हैं। इसमें विशेषकर राजाओंके लिये तिथियों और नक्षत्रों तथा वारोंके योगसे यात्राके विधान तथा उसके लिये शुभ मुहूर्त बताये गये हैं।

बाईसवें अध्यायमें ३२ श्लोक हैं। सेवकको स्वामीका प्रथम दर्शन किन नक्षत्रोंमें, किन मुहूर्तोंमें प्रथम बार करना चाहिये, इसका विवेचन यहाँ किया गया है।

तेईसवाँ अध्याय विभिन्न देवताओंकी प्रतिष्ठासे सम्बद्ध है, इसमें १२१ श्लोक हैं।

चौबीसवें अध्यायमें विशेष रूपसे राजाओंके अभिषेकका काल निरूपित है। इस अध्यायमें ३४ श्लोक हैं।

पचीसवें अध्यायमें पुण्यप्रद कालोंका निरूपण है। विशेष समयोंमें तीर्थोंका जल विशेष पावन हो जाता है, अतः उन समयोंमें गंगादि तीर्थजलों तथा पुण्यप्रद तीर्थस्थानोंकी यात्रा करनी चाहिये। इस अध्यायमें २२ श्लोक हैं।

छब्बीसवें अध्यायमें पवित्रारोपण-कर्मका विधान तथा उसका काल निर्दिष्ट है। इसमें कुल १५ श्लोक हैं।

सत्ताईसवें अध्यायमें बताया गया है कि विविध भौमान्तरिक्ष उत्पातों, महामारी तथा ग्रहपीड़ाजन्य समष्टिगत विकारोंके दोषकी निवृत्तिके लिये मातृका-शान्ति करनी चाहिये। ब्रह्माणी, इन्द्राणी, वाराही, वैष्णवी, माहेश्वरी, कौमारी तथा रौद्र चामुण्डा—ये सात मातृकाएँ बतायी गयी हैं। इनमेंसे प्रत्येक मातृकासे सात-सात मातृकाओंकी

उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार मातृकाओंकी संख्या ४९ है। इस अध्यायमें २७ श्लोक हैं।

अट्ठाईसवाँ अध्याय सबसे बड़ा है, इसमें ९९६ श्लोक हैं। इस अध्यायमें विशेषरूपसे विविध कर्मोंके मुहूर्तोंका वर्णन हुआ है। कृषिकार्य, बीजोंके वपन, मिट्टीके शोधन, औषधिनिर्माण, स्वर्णाभूषणनिर्माण, नवान्नभक्षण, गृहारम्भ, वृक्षच्छेदन, शिलान्यास, गृहाच्छादन, पशु तथा विविध वस्तुओंके क्रय-विक्रय, पशुसंग्रह, रोगमुक्तिस्नान, नवीनवस्त्रधारण, संगीतशिक्षण, गोशाला आदिके निर्माण आदिके मुहूर्तोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है। विविध नक्षत्रोंमें करणीय कर्मोंका वर्णन है। साथ ही दिन-रातके तीस मुहूर्तोंके नाम तथा उनमें किये जानेवाले कर्मों तथा राजासे सम्बन्धित विविध कर्मोंका निरूपण है।

उनतीसवें अध्यायमें ५८ श्लोक हैं। यह अन्तिम अध्याय है। यहाँ संक्षेपमें श्राद्धविधान निरूपित है। बताया गया है कि प्रेत और पितृभेदसे दो प्रकारका श्राद्ध होता है। वैश्वदेवसे रहित श्राद्ध प्रेतश्राद्ध कहलाता है और विश्वेदेवयुक्त श्राद्ध पितृश्राद्ध कहा गया है। श्राद्धके लिये कुतपवेला, अमावास्या तिथि, दक्षिण दिशा प्रशस्त है। इस अध्यायमें ग्रन्थकी पूर्णता होती है।

इस प्रकार विषयवस्तुकी वैविध्यताको देखनेसे यह प्रतीत होता है कि मुहूर्तप्रधान होनेपर भी यह ग्रन्थ अनेक विषयोंको अपनेमें संयोजित किये हुए है। अन्तमें कोई पुष्पिका न होनेसे यह भी आभास होता है कि यह संहिता अभी पूर्ण नहीं हुई है।

मौसम-ज्ञानकी जानकारी देनेवाला ग्रन्थ—गुरुसंहिता

मौसमविज्ञान एवं ऋतुचक्र, विशेष रूपसे वर्षाज्ञानकी जानकारी देनेवाला एक ग्रन्थ उपलब्ध है, जो गुरुसंहिताके नामसे प्रसिद्ध है। चूँकि 'गुरु' यह नाम मुख्य रूपसे देवोंके गुरु, आचार्य एवं पुरोहित बृहस्पतिजीका वाचक है। अतः इस ग्रन्थको देवाचार्य बृहस्पतिका माना जा सकता है।

उपलब्ध गुरुसंहितामें ४९२ श्लोक हैं। बीच-बीचमें विषयोंका विभाजन तो है, किंतु अध्याय-संख्या नहीं लगी है। यत्र-तत्र शिव-पार्वती-संवादके रूपमें ग्रन्थ उपनिबद्ध है तथा महर्षि गर्गके वचनोंका भूयशः सन्निवेश हुआ है। यथा—**'इति गर्गेण भाषितम्'** इत्यादि।

मुख्य रूपसे यह ग्रन्थ त्रिस्कन्धज्योतिषके संहितास्कन्धके विषयोंका विवेचन करता है। कृषि वर्षाके ऊपर आश्रित है और वर्षा मेघोंद्वारा होती है। अतः मेघोंके स्वरूप, मेघोंके प्रकार, मेघको देखनेसे वर्षण एवं अवर्षणका ज्ञान, अवर्षणका फल, धान्यकी महँगी एवं सस्तीका विचार, विद्युत् एवं वायुसे वर्षाका ज्ञान, ग्रहोंके चारसे मौसमकी जानकारी, संक्रान्तिमें वृष्टिका फल तथा काकनिलय (कौएके घोंसले) आदिसे वर्षाके ज्ञानके साधनोंका इसमें समावेश हुआ है। इस प्रकार मौसम, वृष्टि तथा ऋतुचक्र एवं अनेक प्रकारके उत्पातोंके कारणोंकी जानकारी देनेवाला यह लघु ग्रन्थ ज्योतिष-वाङ्मयका महत्त्वका ग्रन्थ है। प्राचीनकालमें कृषक लोग अपने कृषिकार्यमें इस जानकारीका विशेष उपयोग करते थे। यहाँ इस ग्रन्थकी कुछ बातें संक्षेपमें दी जाती हैं—

इसमें कार्तिकमाससे प्रारम्भकर आश्विनमासतक बारहमासोंमें वर्षाज्ञानका विवरण है, जो ३४३ श्लोकोंमें है। इसके अनन्तर मेघदर्शन, सद्यो गर्भलक्षण, वायुधारण, विद्युत्फल, आर्द्राफल, शुक्रचार, राहुचार, केतुचार तथा संक्रान्तिफल निरूपित है। अन्तमें काकनिलय-शुभाशुभ-विचार तथा काकाण्डात्फलविचार दिया हुआ है।

इसका प्रारम्भिक श्लोक इस प्रकार है—

गार्भिके कार्तिके मासि चतुर्मासेषु वर्षति।
सुभिक्षं जायते तत्र शस्यसम्पत्तिरुत्तमा॥

(गुरुसंहिता १)

तदनन्तर मेघोंका वर्णन करते हुए कहा गया है कि मेघ श्वेत, पीत, कृष्ण, ताम्र तथा सिन्दूरवर्णके होते हैं। मार्गशीर्षमासके विवरणमें बताया गया है कि मार्गशीर्ष आदि पाँच मासोंके शुक्लपक्षमें यदि किसी तिथिका क्षय होता है तो दुर्भिक्ष होता है। राजाके छत्र-भंग होनेका

भय रहता है तथा युद्धकी सम्भावना होती है—

मार्गादिपञ्चमासेषु शुक्लपक्षे तिथिक्षयः।
दुर्भिक्षं छत्रभंगो वा जायते राजविग्रहः॥

(गु०सं० २७)

आगे बताया गया है कि मार्गशीर्षमासकी सप्तमी तथा नवमी तिथिको यदि ईशान दिशामें मेघमण्डल दिखलायी दे तो अल्पवर्षा होती है अथवा तेज हवा चलती है—

मार्गशीर्षे यदा मासि सप्तमी नवमी दिने।
ईशानादिसमाश्रित्य दृश्यते मेघमण्डलम्॥
स्तोकं वर्षति पर्जन्योऽथवा वातमादिशेत्।

(गु०सं० २८-२९)

यदि पौषमासमें बिजलीकी गरजके साथ वृष्टि होती है और सुखदायी वायु प्रवाहित होती है तो समझना चाहिये कि अतिवृष्टि होगी और अनाज महँगा होगा—

गर्जते वर्षते पौषे विद्युद् वायुश्च शोभनः।
अतिवृष्टिं विजानीयाद् धान्यं याति महर्घताम्॥

(गु०सं० ४३)

यदि माघमासकी संक्रान्तिको वर्षा हो तो समझना चाहिये कि गायें अधिक दूध देनेवाली होंगी तथा भूमिमें अधिक अन्न उपजेगा—

माघमासे तु संक्रान्तौ वर्षते माधवो यदा।
बहुक्षीरप्रदा गावो बहुशस्या वसुन्धरा॥

(गु० सं० ९८)

आषाढ़मासके प्रथम पक्षमें यदि सूर्यमण्डल बादलोंसे रहित हो, बिजली भी न गरजती हो तथा वृष्टि भी न होती हो तो समझना चाहिये इन्द्रदेव दो मासतक वर्षा नहीं करेंगे—

आषाढ़मासे प्रथमे च पक्षे
निरभ्रदृष्टे रविमण्डले च।
न विद्युतो गर्जति नैव वृष्टि-
र्मासद्वयं वर्षति नैव देवः॥

(गु०सं० २३६)

बादलोंकी आकृतिको देखनेसे वर्षाज्ञानके विषयमें बताया गया है कि यदि सन्ध्याकालमें पूर्व दिशामें आकाश मेघोंसे आच्छादित हो और वे मेघ ऊँट, हाथी, वराहमुख, महिष, पर्वत तथा वृषभकी आकृति एवं आभाके समान दिखायी दें तो समझना चाहिये कि निश्चित ही वर्षा होगी—

पूर्वस्यां यदि सन्ध्यायां मेघसञ्छादितं नभः॥
केचिदुष्ट्रसमा मेघाः केचित्कुञ्जरसन्निभाः।
केचिद्वै शूकरमुखाः केचिन्महिषसन्निभाः॥
केचिद् वै पर्वताकारा केचिद् वृषभसन्निभाः।
एतद्वर्णाश्च ये मेघा वर्षन्ते नात्र संशयः॥

(गु० सं० ३४४—३४६)

काकनिलयविचार

कौएके घोंसलेसे शुभाशुभ-विचार भी इसमें बताया गया है। ईश्वर (शिव) पार्वतीसे कहते हैं—हे प्रिये! यदि वृक्षकी पूर्वकी शाखामें कौआ घोंसला बनाये तो यह समझना चाहिये कि उस वर्ष सुभिक्ष, क्षेम तथा आरोग्य होता है—

वृक्षस्य पूर्वशाखायां निलयं कुरुते खगः।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं तस्मिन् वर्षे न संशयः॥

(गु० सं० ४६५)

इसी प्रकार आगे बताया गया है कि वृक्षके अग्निकोणकी शाखामें कौआ घोंसला बनाये तो मेघ कम वृष्टिवाले होते हैं और दुर्भिक्ष होता है। दक्षिण भागमें घोंसला बनाये तो दो मासतक वर्षा होती है। तदनन्तर पाला (तुषार) पड़ता है। नैर्ऋत्य दिशामें घोंसला बनाये तो पहले तो वर्षा नहीं होती, लेकिन बादमें खूब वर्षा होती है। वृक्षके पश्चिम भागमें घोंसला बनाये तो अतिवृष्टि, वायव्यकोणमें बनाये तो वातवृष्टि, उत्तरमें बनाये तो अतिवृष्टि, वायव्यमें बनाये तो सुभिक्ष, ईशानमें मध्यमवृष्टि, ऊपरकी ओर बनाये तो बराबर वृष्टि होती है और पृथ्वी शस्यवती होती है और यदि किसी वृक्षके कोटर अथवा घरमें अथवा दक्षिण दिशाकी ओर भूमिमें कौआ घोंसला बनाये तो भयंकर अकाल पड़ता है और राजयुद्ध होता है। ऐसे ही यदि नदीके किनारे जमीनपर घोंसला बनाये तो उस वर्ष सूखा पड़ता है। (गु०सं० ४६६—४७६)

इसमें बताया गया है कि बिना मांसके उद्देश्यसे यदि कहींपर कौए अचानक इकट्ठे हों तो समझना चाहिये कि शीघ्र ही अकाल पड़नेवाला है (गु०सं० ४७७)। यदि वृक्षकी शाखापर बैठा हुआ कौआ अपने पंखोंको जोर-जोरसे फड़फड़ाता हो तो समझना चाहिये कि शीघ्र ही वर्षा होगी (गु० सं० ४७९)। इस प्रकार कौएके द्वारा वर्षाकालमें महावृष्टि, शीतकालमें दुर्दिन तथा ग्रीष्मकालमें अत्यधिक घाम आदिका ज्ञान करना चाहिये। वर्षाज्ञानकी इस प्रकारकी विचित्र एवं रोचक बातें इस गुरुसंहितामें आयी हैं।

बृहस्पतिप्रोक्त उपदेशामृत

वाणीका प्रयोग कैसे करें—बृहस्पतिजी हमें यह शिक्षा देते हैं कि लोकव्यवहारमें वाणीका प्रयोग बहुत ही विचारपूर्वक करना चाहिये। बृहस्पतिजी स्वयं भी अत्यन्त मृदुभाषी एवं संयतचित्त हैं। वे देवराज इन्द्रसे कहते हैं—राजन्! आप तो तीनों लोकोंके राजा हैं, अतः आपको वाणीके विषयमें बहुत सावधान रहना चाहिये; क्योंकि जो व्यक्ति दूसरोंको देखकर पहले स्वयं बात करना प्रारम्भ करता है और मुसकराकर ही बोलता है, उसपर सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं—

यस्तु सर्वमभिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभिभाषते।
स्मितपूर्वाभिभाषी च तस्य लोकः प्रसीदति॥

(महा०शान्ति० ८४।६)

इसके विपरीत जो सदा भौंहें टेढ़ी किये रहता है, किसीसे कुछ बातचीत नहीं करता, बोलता भी है तो टेढ़ी या व्यंग्यमय वाणी बोलता है, शान्त-मधुर वचन न बोलकर कर्कश वचन बोलता है, वह सब लोगोंके द्वेषका पात्र बन जाता है—

यो हि नाभाषते किञ्चित् सर्वदा भ्रुकुटीमुखः।
द्वेष्यो भवति भूतानां स सान्त्वमिह नाचरन्॥

(महा०शान्ति० ८४।५)

जीवका सच्चा साथी कौन है—एक बार धर्मराज युधिष्ठिरने बृहस्पतिजीसे कहा—भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता, कालकी गतिको जाननेवाले तथा सब शास्त्रोंके विद्वान् हैं, अतः बताइये कि माता-पिता, पुत्र, पत्नी, गुरु, मित्र तथा बन्धु-बान्धव—इनमेंसे मनुष्यका सच्चा साथी कौन है? लोग अपने प्रियजनके मृत शरीरको काष्ठ तथा ढेलेके समान त्यागकर चले जाते हैं, तब इस जीवके साथ कौन जाता है?

इसपर बृहस्पतिजीने कहा—राजन्! प्राणी अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही दुःखसे पार होता है और अकेला ही दुर्गति भोगता है। पिता-माता, भाई-बन्धु कोई उसके सहायक नहीं होते। केवल किया हुआ धर्माचरण ही जीवात्माके साथ जाता है, अतः धर्म ही सच्चा सहायक है, मनुष्योंको सदा धर्मका ही सेवन करना चाहिये—

तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति॥
तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः।

(महा०शान्ति० १११।१४-१५)

सज्जनोंका ही साथ करें—गरुडपुराणके आचारकाण्डमें बृहस्पतिजीद्वारा देवराज इन्द्रको दिया गया उपदेश सुभाषितोंका आकर है, कुछ वचन यहाँ प्रस्तुत हैं। पहले ही सुभाषितमें सज्जनोंके सहवास (संगति)-की महिमा बताते हुए कहा गया है कि जो मनुष्य पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धि चाहता है, उसे सदैव सज्जनोंका ही साथ करना चाहिये। दुर्जनोंके साथ रहनेसे इहलोक तथा परलोकमें भी हित नहीं है—

सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः।
नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम्॥

(गरुडपु० आ० १०८।२)

नित्य स्मरण रखनेयोग्य बात क्या है—बृहस्पतिजी बताते हैं कि मनुष्योंको दुर्जनोंकी संगतिका परित्याग करके साधुजनोंकी संगति करनी चाहिये और दिन-रात पुण्यका संचय करते हुए अपनी एवं सांसारिक भोगोंकी अनित्यताका नित्य स्मरण करते रहना चाहिये—

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥

(गरुडपु० आ० १०८।२६)

त्रिस्कन्ध ज्योतिषके आदि-उपदेष्टा देवर्षि नारद

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥
(श्रीमद्भा० १।६।३९)

श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियोंसे देवर्षि नारदकी महिमा बताते हुए कहते हैं—अहो! ये देवर्षि नारद धन्य हैं; क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्‌की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ इस त्रितापतप्त जगत्‌को भी आनन्दित करते रहते हैं।

भगवद्भक्तिके प्रधान आचार्य परम भागवत देवर्षि नारदजीका उदात्त चरित जगत्‌के लिये परम आदर्श है। ये ज्ञानके स्वरूप, भक्तिके सागर, प्रेमके भण्डार,दयाके निधान, आनन्दकी राशि, सदाचारके आधार, सर्वभूतोंके सुहृद् तथा समस्त सद्‌गुणोंकी खान हैं। ये भागवद्धर्मके आचार्य, भक्तिशास्त्रके प्रवर्तक एवं स्वयं परम भागवत हैं।*

साथ ही ये राजनीति एवं धर्मनीतिके मर्मज्ञ, सन्धि और विग्रह-सिद्धान्तोंके ज्ञाता, ज्योतिषशास्त्रके सर्वस्व, वेद-वेदांगोंके प्रकाण्ड विद्वान् तथा संगीतविद्याके परम प्रेमी और संगीतशास्त्रके मर्मज्ञ हैं।

ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं और भक्ति तथा उसके माहात्म्यका विस्तार करते हुए लोक-कल्याणके लिये सदा सर्वत्र विचरण किया करते हैं। पृथ्वी आदि समस्त लोकों तथा वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक आदिमें भी इनकी सर्वत्र अबाध गति है। संकीर्तनके ये आद्य आचार्य हैं। इनकी वीणा 'भगवज्जपमहती' के नामसे विख्यात है, उससे अनाहत-नादके रूपमें निरन्तर 'नारायण' ध्वनि निकलती रहती है। श्रीनारदजी सभी जीवोंके कर्मोंके साक्षी हैं तथा भूत-भविष्यके ज्ञाता हैं और जीवोंको भगवदोन्मुख होनेके लिये निरन्तर प्रेरित करते रहते हैं। ये भगवान्‌के कृपापात्र तथा उनके लीला-सहचर हैं। भगवद्धर्मकी स्थापना करनेके लिये आपने स्वयं अवतार भी धारण किया।

श्रीनारदजी व्यास, वाल्मीकि तथा महाज्ञानी शुकदेवजीके गुरु रहे हैं। श्रीमद्भागवत तथा श्रीवाल्मीकिरामायण-जैसे उदात्त ग्रन्थ देवर्षि नारदकी कृपासे ही हमें प्राप्त हो सके हैं। आपने ही प्रह्लाद, ध्रुव आदिको भगवन्नामका उपदेश देकर भक्तिमार्गमें प्रवृत्त किया। श्रीमद्भागवतके प्रादुर्भावमें देवर्षि नारदजीकी प्रेरणा रही है। एक बारकी बात है, वेदव्यासजी सरस्वती नदीके तटपर शिष्योंके साथ बैठे हुए थे। उनका मन बड़ा ही अशान्त था, उसी समय देवर्षि वहाँ आ पहुँचे। उन्हें उदास देखकर नारदजीने प्रश्न किया, मुने! आप उदास क्यों हैं? इसपर व्यासजी बोले—देवर्षे! क्या कारण है कि मैंने चारों वेदोंका मर्म महाभारतमें रख दिया है, पुराणोंका संकलन भी कर लिया है, तब भी मुझे सन्तोष नहीं है, इसपर नारदजी बोले—मुने! आपने

अपनी रचनाओंमें भगवान् वासुदेवके निर्मल यशका वर्णन नहीं किया है, इसीसे आपका चित्त प्रसन्न नहीं है। अतः अब आप भगवान् वासुदेवकी मनोरम लीलाओंका

* (क) प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन् पुण्यानिमान् परमभागवतान्नमामि॥ (पाण्डवगीता)
(ख) स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः। प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥ (श्रीमद्भा०)

वर्णन करें। इतना कहकर नारदजी वीणा बजाते हुए चले गये। तब व्यासजीने नारदजीके उपदेशानुसार भगवल्लीला-मयी सात्वतसंहितानाम्नी भागवतसंहिताका निर्माण किया और उसे अपने विरक्त पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया। यद्यपि नारदजीको कलह-प्रिय तथा कलिप्रिय भी कहा गया है, किंतु इनका उद्देश्य सर्वथा पवित्र तथा निःस्वार्थपरक रहा है।

देवर्षिके पूर्वजन्मोंके अनेक आख्यान पुराणोंमें प्राप्त हैं। इनके एक जन्मका नाम उपबर्हण है। कहीं इन्हें ब्रह्माजीका पुत्र तथा कहीं भगवान् विष्णुका मानस अवतार और कहीं परमात्माका मन बताया गया है तो कहीं 'भगवत्पार्षदों' में उनकी गणना है।

श्रीनारदजीका पावन चरित सर्वतोमुखी कल्याणकारक है। उन्होंने जगत्के कल्याणके लिये महनीय कार्य किये हैं। संक्षेपमें यहाँ उनके ज्योतिषीय अवदानके साथ-साथ बहु-आयामी व्यक्तित्व तथा कृतित्वका निर्दशन प्रस्तुत है—

नारदीय भक्तिमार्ग—प्रेममय भक्तिमार्गके उद्भावक देवर्षि नारदजीकी महत्ताकी क्या इयत्ता! प्रेमैकगम्य, प्रेमास्पद भगवान् श्रीकृष्ण सदा जिनकी स्तुति करते रहते हैं—'**अहं हि सर्वदा स्तौमि नारदं देवदर्शनम्**'

(स्कन्दपुराण माहे० कौमा०)। एक समय देवर्षि नारदजीने भगवान्से पूछा—देवेश्वर! आप कहाँ निवास करते हैं?

इसपर भगवान् बोले—नारद! न तो मैं वैकुण्ठमें निवास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें। मेरे भक्त जहाँ मेरा गुणगान करते हैं, वहीं मैं भी रहता हूँ—'**नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥**' (पद्मपु० उ० ९२। २२) बस, फिर क्या था, देवर्षि नारदजीने भगवद्गुणगानको ही अपना जीवन बना लिया। नारदजीने अनुभव किया कि भगवान् प्रेमके वशीभूत हैं तथा प्रेमका, अनुरागका, अनुरक्तिका मार्ग सहज और सुलभ भी है, अतः उन्हें अनन्य प्रेमसे रिझाना चाहिये, इसी बातको बतानेके लिये उन्होंने चौरासी सूत्रोंकी रचना की, जो नारदभक्तिसूत्रके नामसे प्रसिद्ध हो गये।

नारदपांचरात्र—भगवद्धर्मके उपासक सात्त्विक समुदायमें पांचरात्र आगमका बड़ा आदर है। इसके उद्भावक देवर्षि नारदजी ही हैं। इस पांचरात्रशास्त्रको नारदजीने अन्यान्य महर्षियोंको मलयाचलपर्वतपर बैठकर सुनाया था।

नारदीय शिक्षा—वेदोंके समुचित अर्थबोधके लिये वेदांगोंका ज्ञान आवश्यक है। शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द तथा ज्योतिष—ये छः वेदांग हैं। इनमें वेदांगकी शिक्षा-शाखाका विशेष महत्त्व है। वेदोंके मन्त्रोंके उच्चारणज्ञानकी पद्धति शिक्षाग्रन्थोंमें निरूपित है। अनेक ऋषि-महर्षियों यथा—याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, कात्यायन आदिकी शिक्षापद्धतियाँ उपलब्ध हैं। इनमें भी देवर्षि नारदप्रणीत नारदीय शिक्षा विशेष महत्त्वकी है।

गानविद्याके आचार्य—देवर्षि गानविद्या (संगीत-शास्त्र)-के विद्वान् मर्मज्ञ हैं। इनकी वीणा भगवद्-गुणानुवादका प्रतिनिधि वाद्य है। इनके गानसे सम्बद्ध कथाएँ पुराणोंमें अनेक प्रकारसे आयी हुई हैं।

नारदजीने देवी जाम्बवती, सत्यभामा तथा देवी रुक्मिणीसे दीर्घकालतक संगीतविद्याका अध्ययन किया।

नारदपरिव्राजकोपनिषद्—देवर्षि नारदजीके नामसे एक उपनिषद् भी प्राप्त है, जो नारदपरिव्राजकोपनिषद्के नामसे प्रसिद्ध है। यह अथर्ववेदसे सम्बद्ध है।

नारदगीता—महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन अध्यायों (३२९ से ३३१ तक)-में देवर्षि नारदजीद्वारा व्यासजीके पुत्र गर्भज्ञानी श्रीशुकदेवजीको जो अध्यात्मज्ञानका उपदेश दिया गया है, वह नारदगीताके नामसे प्रसिद्ध है।

नारदस्मृति—देवर्षि नारद व्यवहारशास्त्रमें पारंगत थे। उनके नामसे एक धर्मशास्त्र (स्मृतिग्रन्थ) प्राप्त होता है, जो नारदस्मृति कहलाता है।

नारदीय ज्योतिष और नारदपुराण

भगवद्भक्तिके माहात्म्यको प्रतिपादित करनेवाले नारदपुराणका अष्टादश महापुराणोंमें विशिष्ट स्थान है। इस पुराणका नाम वक्ताके नामपर न होकर श्रोताके नामपर है। सनत्कुमारादिकोंने देवर्षि नारदसे इस पुराणका कथन किया था। यह पुराण पूर्व तथा उत्तर दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वभागमें १२५ तथा उत्तरभागमें ८२ अध्याय हैं। इस पुराणमें मुख्यरूपसे पुराणोंके सर्ग-प्रतिसर्ग आदि मुख्य विषयोंके साथ-साथ सदाचारमहिमा, वर्णाश्रमधर्म, गंगावतरण, इष्टापूर्तधर्मका माहात्म्य, विभिन्न व्रतोपवास, श्राद्धकल्प, प्रायश्चित्त-निरूपण, भक्तोंके लक्षण, भगवद्भक्ति और उपासनाका माहात्म्य, शुकदेवजीका आख्यान, वेदांगनिरूपण, निवृत्तिधर्म, पाशुपतदर्शन, विविध मन्त्र तथा देवोंकी उपासनापद्धति, दानका माहात्म्य, वैष्णवधर्म, पांचरात्रोपासनापद्धति, तीर्थमाहात्म्य तथा भगवन्नाम-महिमाका वर्णन हुआ है। इसमें अठारहों पुराणोंके विवेच्य विषयोंकी अनुक्रमणिका दी गयी है और पुराणोंकी महिमामें कहा गया है कि वेदोंमें तिथि, नक्षत्र आदि कालनिर्णायक और ग्रह-संस्कारकी कोई युक्ति नहीं बतायी गयी है। तिथियोंकी वृद्धि, क्षय, पर्व, ग्रहण आदिका निर्णय भी उनमें नहीं है। यह निर्णय सर्वप्रथम इतिहास-पुराणोंके द्वारा ही निश्चित किया गया है। जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियोंमें हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं—

न वेदे ग्रहसञ्चारो न शुद्धिः कालबोधिनी।
तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः॥
इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ॥
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते॥

(नारदपुराण उ० अ० २४)

नारदपुराणका यह एक महान् वैशिष्ट्य है कि यह एक विश्वकोशके रूपमें जाना जाता है। इस दृष्टिसे इसके पूर्वभागका द्वितीयपाद विशेष महत्त्वका है, जिसमें वेदके छः अंगों—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्दशास्त्रका अत्यन्त प्रामाणिक और विशद विवेचन प्राप्त होता है। इस पुराणमें वर्णित शिक्षा-वेदांग पृथक्-रूपसे शिक्षाग्रन्थके रूपमें उपलब्ध होता है, जो नारदीय शिक्षाके नामसे 'शिक्षा-संग्रह' में संगृहीत है।

इसी प्रकार नारदपुराणका जो ज्योतिषविषयक वर्णन है, वह नारदीय ज्योतिषके नामसे विख्यात है। देवर्षि नारदजी ज्योतिषके आदि-उपदेष्टा हैं। नारदपुराणमें वर्णित इनका त्रिस्कन्धज्योतिष परवर्ती सभी ग्रन्थोंका उपजीव्य है। ज्योतिषशास्त्रकी महिमा बताते हुए श्रीनारदजी कहते हैं कि ज्योतिषशास्त्रके ज्ञानके बिना श्रौत तथा स्मार्तकर्मका सम्पादन करना कठिन है, अतः आरम्भमें ब्रह्माजीने जगत्‌के कल्याणके लिये इस शास्त्रका प्रणयन किया—

बिनैतदखिलं श्रौतस्मार्तकर्म न सिद्ध्यति।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा रचितं पुरा॥

नारदपुराणमें ज्योतिषके ज्ञानका फल बताते हुए कहा गया है कि इसके विज्ञानमात्रसे मनुष्योंके धर्मकी सिद्धि होती है—'**यस्य विज्ञानमात्रेण धर्मसिद्धिर्भवेन्नृणाम्**' (नारदपु० पूर्व० २।५४।१)। आगे बताया गया है कि ज्योतिषशास्त्र चार लाख श्लोकोंवाला है, उसके तीन स्कन्ध हैं, जिनके नाम हैं—गणित (सिद्धान्त), जातक (होरा) और संहिता—

त्रिस्कन्धं ज्योतिषं शास्त्रं चतुर्लक्षमुदाहृतम्।
गणितं जातकं विप्र संहितास्कन्धसंज्ञितम्॥

(नारदपु० पू० २।५४।२)

प्राचीन ज्योतिषके आचार्योंमें—ज्योतिषप्रवर्तकोंमें अठारह आचार्योंको प्रधानता दी गयी है, जैसा कि नारदजीने लिखा है—

ब्रह्माचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यरोमशौ।
मरीचिरङ्गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः॥
च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः।
अष्टादशैते गम्भीरा ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

(नारदपुराणकी नारदसंहिता)

अर्थात् ब्रह्मा, आचार्य (सूर्य), वसिष्ठ, अत्रि, मनु, पौलस्त्य (चन्द्रमा), रोमश (लोमश), मरीचि, अंगिरा, व्यास, नारद, शौनक, भृगु, च्यवन, यवन (मय दैत्य), गर्ग, कश्यप और पराशर—ये ज्योतिःशास्त्रका प्रवर्तन करनेवाले ऋषिगण हैं। जैसे वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने ऋचाओंका दर्शन और फिर उसका प्रवर्तन किया, उसी प्रकार इन ऋषियोंने भी अपने तप एवं प्रातिभज्ञानसे सम्पूर्ण खगोल एवं भूगोलका दर्शनकर उनकी गतियों एवं संचारका अनुभवकर ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्तोंकी उद्भावना की। अवश्य ही इन सभी आचार्योंके सिद्धान्त, होरा तथा संहिता-सम्बन्धी ग्रन्थ प्राचीनकालमें रहे होंगे, किंतु इस समय इन आचार्योंके तीनों स्कन्ध उपलब्ध नहीं हैं। किसी आचार्यका सिद्धान्त मिलता है तो किसीका होरास्कन्ध और किसीका संहितास्कन्ध; किंतु यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि देवर्षि नारदजीके तीनों स्कन्ध प्राप्त हैं और तीनों ही स्कन्ध नारदपुराणमें उपनिबद्ध हैं।

नारदपुराणके पूर्वभागका चौवनवाँ अध्याय त्रिस्कन्ध ज्योतिषका सिद्धान्तस्कन्ध (गणित) है, इसमें एक सौ पचासी श्लोक हैं। पचपनवाँ अध्याय होरास्कन्ध (जातक) है, इसमें तीन सौ सत्तर श्लोक हैं तथा छप्पनवाँ अध्याय संहितास्कन्ध है, इसमें सात सौ अट्ठावन श्लोक हैं। नारदजीके ज्योतिषशास्त्रको देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आजके उपलब्ध भारतीय ज्योतिषशास्त्रके तीनों स्कन्धोंके ज्योतिषपर देवर्षि नारदके ज्योतिर्ज्ञानका पूरा-पूरा प्रभाव है। यहाँ संक्षेपमें नारदीय ज्योतिषके तीनों स्कन्धोंका संक्षिप्त वर्णन तथा उसका परवर्ती ग्रन्थोंपर पड़े प्रभावोंका निरूपण प्रस्तुत है—

(१) सिद्धान्त (गणित)-स्कन्ध

नारदजी बताते हैं कि इस गणितस्कन्धमें परिकर्म—योग (जोड़), अन्तर (घटाना), गुणन, भजन (भाग), वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल तथा ग्रहोंके मध्यम एवं स्पष्ट करनेकी रीतियाँ बतायी गयी हैं। साथ ही अनुयोग (देश, दिशा और कालका ज्ञान), चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, उदय, अस्त, छायाधिकार, चन्द्रशृंगोन्नति, ग्रहयुति तथा पात (सूर्य-चन्द्रमाके क्रान्तिसाम्य)-का साधन-प्रकार कहा गया है।*

आगे इनके विवरणमें जो बातें दी गयी हैं, वे आजके ज्योतिषसिद्धान्तोंका आधार बनी हुई हैं। नारदीय संहिताके कितने ही श्लोक ज्यों-के-त्यों सूर्यसिद्धान्तमें प्राप्त होते हैं। आर्षसिद्धान्तमें सबसे अधिक प्रामाणिक तथा सूक्ष्म गणनावाला गणितसिद्धान्त 'सूर्यसिद्धान्त' माना जाता है। गणित ज्योतिषमें सूर्यसिद्धान्तका नाम अत्यन्त विख्यात है। भारतवर्षके अधिकांश पंचांग इसी आधारपर बनते हैं। वर्तमानमें उपलब्ध सूर्यसिद्धान्त चौदह अधिकारों और अध्यायोंमें विभाजित है। इसके पूर्वार्धमें ११ अधिकार (अध्याय) और उत्तरार्धमें ३ अध्याय हैं। इस सूर्यसिद्धान्तमें नारदसिद्धान्तके अधिकांश श्लोक यथावत् मिलते हैं। सूर्यसिद्धान्तका मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार—ये दोनों तो मानो नारदसिद्धान्तके श्लोकोंसे रचे गये हैं। यहाँ एक-आध श्लोक उदाहरणके लिये प्रस्तुत हैं—

नारदीय संहितामें भुजज्या और कोटिज्या बनानेका सूत्र निम्न श्लोकमें दिया गया है—

ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात्तथा शीघ्राद्विशोध्य च॥
शेषं केन्द्रपदं तस्माद्भुजज्याकोटिरेव च।

(नारदपुराण पू० २।५४।९४-९५)

यही श्लोक सूर्यसिद्धान्तके द्वितीय अध्याय श्लोक

* गणिते परिकर्माणि खगमध्यस्फुटक्रिये। अनुयोगश्चन्द्रसूर्यग्रहणं चोदयास्तकम्॥
छाया शृङ्गोन्नतियुती पातसाधनमीरितम्। (ना०पुरा०पू० २।५४।३-४)

२९के द्वारा यथावत् उल्लिखित है। ऐसे एक नहीं, अपितु शताधिक श्लोक नारदीय संहिताके सूर्यसिद्धान्तमें आये हैं। इस आधारपर यह कहा जा सकता है कि सूर्यसिद्धान्तका आधार नारदीय सिद्धान्त (नारदपुराण) है। इतना ही नहीं, नारदीय सूर्यसिद्धान्तमें सूर्यसिद्धान्तसे भी अधिक विलक्षणता पायी जाती है। भास्कराचार्यका सूर्यसिद्धान्त तथा पाटीगणित नारदीय ज्योतिषसे प्रभावित है। भास्कराचार्यजीकी लीलावतीमें जो दो श्लोक आये हैं, वे नारदीय ज्योतिषमें प्राप्त हैं, यथा—

छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम्।
ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद् दृश्ये राशिप्रसिद्धये॥
अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हरः।
अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत्॥

(नारदपुराण पू० २।५४।२८-२९)

(२) होरा (जातक)-स्कन्ध

फलितज्योतिषमें भी नारदपुराणका जातकस्कन्ध, अन्यान्य फलितसंहिताओं और होराओंका मूलाधार प्रतीत होता है। नारदपुराणके जातकस्कन्धमें यद्यपि ३७० श्लोक हैं, किंतु जातक-सम्बन्धी ऐसे विलक्षण योगों एवं राजयोगोंका वर्णन है, जिनका अस्तित्व अन्य जातक ग्रन्थों तथा बड़े-बड़े होराग्रन्थोंमें भी नहीं मिलता।

इसके प्रारम्भमें बारह राशियोंका कालपुरुषके मस्तक, मुख आदि अंगोंके रूपमें निरूपण करके राशियोंके स्वामी बताये गये हैं, यथा—मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, शनि तथा गुरु—ये क्रमशः मेषादि बारह राशियोंके स्वामी हैं। तदनन्तर राशि, होरा, द्रेष्काण, त्रिंशांश, द्वादशांश, नवमांश—ये षड्वर्ग बताये गये हैं। इसके बाद राशियोंका स्वरूप आदि निरूपित है। इसके पश्चात् ग्रहोंके शील-गुणका निरूपण, ग्रहोंकी दृष्टि, ग्रहमैत्री, ग्रहोंका बल, वियोनि-जन्मज्ञान, आधानलग्ननिरूपण, गर्भमासोंके अधिपति, आयुर्दाय, दशा-अन्तर्दशा, अष्टकवर्ग, विभिन्न योग तथा उनका फल, राशिफल, द्वादश भावोंमें ग्रहोंका फल, स्त्रीजातकका वर्णन, कुण्डलीसे पूर्वजन्मका ज्ञान, प्रश्नलग्नसे कुण्डली-निर्माणकी विधि आदि बातें निरूपित हैं।

(३) संहितास्कन्ध

नारदपुराणमें वर्णित संहितास्कन्धमें सात सौ अट्ठावन श्लोक हैं। संहितास्कन्धके स्वरूप अर्थात् संहितास्कन्धमें किन विषयोंका निरूपण है, इसे बताते हुए देवर्षि नारदजी कहते हैं कि संहितास्कन्धमें ग्रहोंकी गति, वर्षलक्षण, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त, सूर्यसंक्रान्ति, ग्रहगोचर, चन्द्रमा और ताराका बल, लग्न और ऋतुदर्शनका विचार, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन, मौंजीबन्धन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, प्रतिष्ठा, गृहलक्षण, यात्रा, गृहप्रवेश आदिके मुहूर्त आदि, तत्कालवृष्टिज्ञान तथा कर्मविपाक आदि विषयोंका वर्णन हुआ है। (नारदपु०पू० २।५४।८—१२)

इसमें कहा गया है कि ब्राह्म, दैव, मानव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र तथा बार्हस्पत्य—ये नौ मान होते हैं। इस लोकमें इन नौ मानोंमेंसे पाँचके द्वारा ही व्यवहार होता है। सौर मानसे ग्रहोंकी गतिका ज्ञान होता है। वर्षाका समय तथा स्त्रीके प्रसवका समय सावन मानसे ग्रहण किया जाता है। वर्षोंके भीतरका घटीमान आदि नाक्षत्रमानसे लिया जाता है। यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि एवं वर्षेशका निर्णय तथा पर्व एवं मासका विचार चान्द्रमानसे किया जाता है। बार्हस्पत्य मानसे प्रभवादि संवत्सरका ज्ञान होता है। शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे अमावास्यातक चान्द्रमास होता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तितक सौरमास होता है। आगे तिथियोंके स्वामी तथा तिथियोंमें होनेवाले विहित एवं निषिद्ध कर्मोंका वर्णन है, युगादि, मन्वादि तिथियाँ, निन्द्य मुहूर्त, नक्षत्रोंका वर्णन तथा विविध मुहूर्त, द्विपुष्कर-त्रिपुष्करयोग, संक्रान्तियोंका वर्णन तथा विविध संस्कारोंके मुहूर्त वर्णित हैं। विवाह-संस्कारका विशेष वर्णन है, विवाहमें २१ दोषोंका वर्णन है, वर-वधू-कुण्डली-मेलापक और विवाहके भेद वर्णित हैं, अन्तमें प्रतिष्ठा तथा वास्तुविचार है।

सबसे अन्तमें कूर्मचक्र तथा मूर्ति—प्रतिमाके विकारों तथा भौम, आन्तरिक्ष एवं दैवी उत्पातोंका विचार तथा उनकी शान्ति निरूपित है।

सारांशमें यह कहा जा सकता है कि नारदपुराणमें वर्णित त्रिस्कन्ध ज्योतिषके तीनों विभाग—सिद्धान्त, संहिता तथा होरा बड़े ही महत्त्वके हैं और अन्यान्य सिद्धान्त, संहिता एवं होरा-ग्रन्थोंके आधारभूत हैं। वर्तमानमें जो नारदसंहिता नामसे ५५ अध्यायात्मक ग्रन्थ उपलब्ध होता है, वह किंचित् अन्तरसे नारदपुराणका ही संहितास्कन्ध (५६वाँ अध्याय) है। प्रायः अधिकांश श्लोक कुछ शब्दान्तरसे नारदपुराणके ही हैं, नारदपुराणका पहला श्लोक इस प्रकार है—

क्रमाच्चैत्रादिमासेषु मेषाद्याः संक्रमा मताः।
चैत्रशुक्लप्रतिपदि यो वारः स नृपः स्मृतः॥

(नारदपुराण पू० २।५६।१)

इसका अर्थ है चैत्रादि मासोंमें क्रमशः मेषादि राशियोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होती है (जैसे मेषके सूर्यमें रहते जो अमावास्या होती है, वहाँ चैत्रकी समाप्ति समझी जाती है एवं वृषादिके सूर्यमें वैशाखादि मास समझने चाहिये।) चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके आरम्भमें जो वार (दिन) हो, वही ग्रह उस (चान्द्र) वर्षका राजा होता है।

नारदसंहिता नामक ग्रन्थमें इसी बातको इन शब्दोंमें कहा गया है—

चैत्राद्येष्वपि मासेषु मेषाद्याः संक्रमाः क्रमात्।
चैत्रादितिथिवारेशस्तस्याब्दस्य त्वधीश्वरः॥

(नारदसंहिता २।१)

मयूरचित्रक

नारदजीके नामसे मयूरचित्रक एक ग्रन्थ भी प्राप्त होता है, जो त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषके संहितास्कन्धसे सम्बद्ध है। विद्वानोंका यह भी अभिमत है कि यह ग्रन्थ प्राचीन नारदीय संहिताका ही एक भागविशेष है। इसमें सोलह अध्याय तथा ३७४ श्लोक हैं। इसके बहुतसे विषय नारदीय संहितासे साम्य रखते हैं। ज्योतिषशास्त्रका फलितस्कन्ध जहाँ व्यष्टिसे सम्बन्ध रखता है, वहीं संहितास्कन्ध समष्टिका ज्ञान कराता है। ग्रहजनित प्राकृतिक घटनाओं यथा—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल, उल्कापात, झंझावात, भूस्खलन, भूकम्प, महामारी, दैवीप्रकोप, देवप्रतिमाओंसे सम्बद्ध विकारके ज्ञानमें संहितास्कन्धका फलादेश प्रभावी रहता है। होरास्कन्धमें जहाँ कुण्डलीके योगसे एक व्यक्तिका फल बताया जाता है, वहीं संहितास्कन्धमें देश-कालजन्य फल रहता है, जिससे सभी लोग प्रभावित होते हैं। मयूरचित्रक संहितास्कन्धके विषयोंका ही निरूपण करता है। इसमें बताया गया है कि यदि एक राशिपर चार या पाँच ग्रह उपस्थित हों तो वे सम्पूर्ण पृथ्वीको रक्त या जलमें डुबोते हैं अर्थात् भयंकर युद्ध होता है या अतिवृष्टि होती है—

एक राशौ यदा यान्ति चत्वारः पञ्च वा ग्रहाः।
प्लावयन्ति महीं सर्वां रुधिरेण जलेन वा॥

(मयूरचित्रक १६।३८)

इसका प्रथम अध्याय 'केतुचार' नामसे कहा गया है। इसमें विभिन्न केतुओं (पुच्छलतारों तथा धूमकेतुओं)-के उदय एवं अस्त होनेके योग बताये गये हैं तथा उससे होनेवाले फलाफलका विचार किया गया है। इस ग्रन्थके प्रारम्भमें ही बताया गया है। केतुओंके उदय एवं अस्त होनेका ज्ञान गणितद्वारा नहीं किया जा सकता, अतः इसके ज्ञानके लिये यहाँ यह विषय वर्णित है। विभिन्न केतुओंके स्वरूप तथा उनके द्वारा होनेवाले दिव्य, आन्तरिक्ष एवं भौम उत्पातों या शुभ परिणामोंका निर्देश इसमें बताया गया है। यहाँ एक हजार केतुओंके होनेकी बात बतायी गयी है। यहाँ केतुओंको विभन्न ग्रहों तथा देवोंसे उत्पन्न बताया गया है तथा जिन-जिन स्थानोंमें उनका उदय होता है, उसे भी निरूपित किया गया है।

द्वितीय अध्यायमें विभिन्न ग्रहोंकी युतिका फल बताया गया है। जैसे प्रारम्भमें ही कहा है कि यदि सूर्य

और मंगल आर्द्रा नक्षत्रमें आ जायँ तो उस मासमें अन्न महँगा हो जायगा, यदि सूर्य और केतु भरणी या मृगशिरा नक्षत्रपर रहें तो सिन्धुदेशमें उत्पन्न नमक महँगा होगा—

भानुकेतुश्च भरणीं मृगं वा यदि चास्थितौ।
लवणं महर्घतां याति सिन्धुदेशोद्भवं विदुः॥

(मयूरचित्रक २।२)

तदनन्तर अध्याय तीनसे चौदहतक क्रमसे चैत्रसे फाल्गुनमासमें होनेवाले तिथि एवं वारोंके योगसे होनेवाले विभिन्न फलोंका वर्णन है, जैसे चैत्रमासकी शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको रविवार हो तो वर्षा नहीं होती और लोग दुःखी होते हैं। इसके विपरीत यदि चैत्रमासकी प्रतिपदाको सोमवार, बुधवार, शुक्रवार या गुरुवार हो तो पृथ्वी धान्य तथा जलसे परिपूर्ण होती है—

प्रतिपदि रविवारश्चैत्रमासे यदि स्यात्
न भवति बहुवृष्टिर्दुःखितालोकसङ्घः।
अमृतकिरणवारे ज्ञास्फुजिद् वाक्पतीनाम्
भवति यदि धरित्री सस्यतोयाभिपूर्णा॥

(मयूरचित्रक ३।२)

इसके पन्द्रहवें अध्यायका नाम वृष्टिलक्षणाध्याय है। वृष्टि (वर्षा)-का ज्ञान कैसे हो, इन बातोंकी सूचना इसमें दी गयी है। प्रश्नलग्नद्वारा वृष्टिका लक्षण, प्रश्नकर्ताकी चेष्टाद्वारा वृष्टिका ज्ञान, सूर्यकी किरणोंसे वर्षाका ज्ञान तथा शकुनोंसे वर्षाका ज्ञान आदि विषय इसमें निरूपित हैं। अन्तिम सोलहवें मिश्रितयोगफलाध्यायमें विभिन्न योगोंसे होनेवाले वर्षायोगों, ग्रहोंके अतिचार एवं ग्रहोंके वक्री होनेका फल, संक्रान्ति-फल तथा विभिन्न ग्रहोंकी युतिका फल निर्दिष्ट है।

दैवज्ञ गर्गाचार्यजी और ज्योतिषतत्त्व-मीमांसा

वृष्णीनां कृष्णदेवानामाचार्याय महात्मने।
श्रीमद्गर्गकवीशाय तस्मै नित्यं नमो नमः॥

(गर्गसंहिता-माहा०)

जो कृष्णको ही परमाराध्य देवता माननेवाले, वृष्णिवंशियोंके आचार्य तथा कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, उन महात्मा श्रीमान् गर्गजीको नित्य बारम्बार नमस्कार है।

योगभास्कर श्रीगर्गाचार्यजी ज्योतिषतत्त्वके पारगामी आचार्यों तथा उपदेष्टा शास्त्रकारोंमें परिगणित हैं। नारदसंहिता, कश्यपसंहिता तथा पाराशरहोराशास्त्रमें ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक जिन अठारह आचार्योंके नाम आये हैं, उनमें दैवज्ञ श्रीगर्गाचार्यजीका नाम बड़े ही आदरपूर्वक ग्रहण किया गया है। सिद्धहस्त ज्योतिषीके रूपमें गर्गाचार्यजीका नाम लोकमें इतना प्रसिद्ध है कि थोड़ा भी ज्योतिष जाननेवालेको लोग 'गर्गाचार्य' कहने लगते हैं।

श्रीगर्गाचार्यजी महान् योगी, भगवद्भक्त, पुराणविद्याके आचार्य तथा आचारनिष्ठाके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। वे लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके लिये सदा ही पूज्य तथा आचार्यके रूपमें प्रतिष्ठित रहे। गर्गाचार्यजीकी शिवभक्ति तथा विष्णुभक्ति अत्यन्त प्रशस्त है। उन्होंने अपने भक्तिके सिद्धान्त को स्थापित करते हुए बताया है कि भगवान्‌की मंगलमयी पावन कथा आदिमें अनुराग होना ही भक्ति है—**'कथादिष्विति गर्गः'** (ना०भ०सू० १७)। गर्गाचार्यजी स्वयं बताते हैं कि मैंने सरस्वतीके तटपर मानस-यज्ञद्वारा भगवान् शिवको सन्तुष्ट किया, इससे प्रसन्न होकर उन्होंने चौंसठ कलाओंका अद्भुत ज्ञान मुझे प्रदान किया और मेरी दस लाख वर्षकी आयु नियत कर दी। (महा०अनु० १८।३८-३९)

अनन्त (शेषभगवान्)-से ज्योतिर्विज्ञानकी प्राप्ति

महर्षि गर्गाचार्यजीने अनन्त शेषभगवान्, जिन्होंने पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण किया है-की आराधना करके समस्त ज्योतिर्मण्डल (ग्रह-नक्षत्रादि) और शकुन-अपशकुनादि नैमित्तिक फलोंको बतानेवाले ज्योतिःशास्त्रका

सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था—

यमाराध्य पुराणर्षिर्गर्गो ज्योतींषि तत्त्वतः।
ज्ञातवान्सकलं चैव निमित्तपठितं फलम्॥

(विष्णुपु० २।५।२६)

महर्षि गर्गाचार्यजी वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेदके कई मन्त्रोंके आप द्रष्टा हैं (ऋ० ६।४७)। महर्षि पाणिनिके एक सूत्र (४।१।१०५)-में गर्गाचार्यजीका नाम बहुत-से प्रसिद्ध ऋषियोंमें सर्वप्रथम रखा गया है—**'गर्गादिभ्यो यञ्'**। गर्गका अपत्य गार्गि, पौत्र गार्ग्य और प्रपौत्र गर्गायण कहलाता है। महर्षि गर्ग गोत्रकार ऋषियोंमें परिगणित हैं। महाभारतमें आया है कि राजर्षि पृथु, जिनके नामपर इस भूमिका नाम पृथ्वी पड़ा, गर्गाचार्यजी उनकी राजसभाको दैवज्ञके रूपमें सुशोभित करते थे—**'महर्षिर्भगवान् गर्गस्तस्य सांवत्सरोऽभवत्।'** (महा०शान्ति० ५९।१११)

गर्गजीद्वारा भविष्यफलवर्णन

भगवान् श्रीकृष्णके आविर्भावके बादकी बात है। एक दिन नन्दरानी यशोदाजी बालक श्रीकृष्णको स्तनपान करा रही थीं, उसी समय एक श्रेष्ठ ब्राह्मण शिष्यसमूहसे घिरे हुए वहाँ आये। वे ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे। शुद्धस्फटिककी मालापर ब्रह्मजप कर रहे थे। दण्ड और छत्र धारण किये थे, श्वेतवस्त्र पहने हुए थे। वे वेद-वेदांगोंके पारगामी विद्वान् तथा ज्योतिर्विद्याके मूर्तिमान् स्वरूप थे—**'ज्योतिर्ग्रन्थो मूर्तिमांश्च वेदवेदाङ्गपारगः'** (ब्र०वै०पु० ४।१३।४)। मस्तकपर सुवर्णके समान पिंगल जटाभार धारण किये थे। उनका वर्ण अत्यन्त उज्ज्वल था, कमल-जैसे नेत्र थे, वे योगिराज गर्गजी शंकरजीके शिष्य थे तथा गदाधारी विष्णुके प्रति विशुद्ध भक्ति रखते थे—**'योगीन्द्रो धूर्जटेः शिष्यः शुद्धभक्तो गदाभृतः।'** (ब्र०वै०पु० ४।१३।६) उन्हें जीवन्मुक्त-अवस्था प्राप्त थी, वे सिद्धोंके स्वामी, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे।

इस प्रकारके दिव्यदृष्टिसम्पन्न महायोगीको देखकर यशोदाजी खड़ी हो गयीं, उन्होंने मस्तक झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणामकर उनकी समुचित अभ्यर्चना

की, प्रसन्न हुई नन्दरानीने अपने शिशु श्रीकृष्णसे भी मुनीन्द्रकी वन्दना करवायी। मुनि तो सर्वज्ञ थे ही, उन्होंने अपने आराध्यको मन-ही-मन प्रणाम किया। जब नन्दरानीने बड़ी ही नम्रतासे मुनिसे उनका परिचय पूछा तो गर्गजी बोले—देवि! मेरा नाम गर्ग है, मैं चिरकालसे यदुकुलका पुरोहित आचार्य हूँ, श्रीवसुदेवजीने मुझे यहाँ एक कार्यविशेषके लिये भेजा है। भद्रे! नन्दराय और आप जो हैं, वह सब मुझे ज्ञात है, यह बालक जिस प्रयोजनसे भूतलपर अवतीर्ण हुआ है, वह सब भी मैं जानता हूँ, किंतु ये बातें मैं किसी एकान्त स्थानमें बताऊँगा।

यह संवाद हो ही रहा था कि श्रीनन्दजी भी वहाँ आ पहुँचे। फिर गर्गजी आसनसे उठे और नन्द-यशोदाको साथ लेकर अन्तःपुरमें गये, जहाँ कोई दूसरा न था। गर्गजी बोले—नन्दरायजी! वसुदेवजीने मुझे इन बालकोंके संस्कारके लिये गुप्तरीतिसे यहाँ भेजा है, ताकि कंसको कृष्णावतारकी बात ज्ञात न हो सके। तदनन्तर गर्गाचार्यजीने अपनी ज्योतिर्विद्याके बलसे उन दोनों बालकोंका भविष्यफल बताते हुए कहा—नन्दराय! आपका यह शिशु पूर्णब्रह्मस्वरूप है और मायासे इस भूतलपर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुआ है। इस शिशुरूपमें राधिकावत्सल साक्षात् गोलोकनाथ भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं। गोपराज! युग-युगमें इनके भिन्न-

भिन्न वर्ण और भिन्न-भिन्न नाम हैं। ये सत्ययुगमें श्वेत, त्रेतामें रक्त, द्वापरमें पीत तथा इस समय कृष्णवर्ण होकर प्रकट हुए हैं। ये श्रीमान् तेजकी राशि हैं और परिपूर्णतम ब्रह्म हैं, इसलिये कृष्ण कहे गये हैं। '**कृष्णः**' पद में जो ककार है, वह ब्रह्माका वाचक है, ऋकार अनन्त (शेषनाग)-का वाचक है, मूर्धन्य षकार शिवका और णकार धर्मका बोधक है। अन्तमें जो अकार है, वह श्वेतद्वीपनिवासी विष्णुका वाचक है तथा विसर्ग (:) नर-नारायणके अर्थका बोधक है। ये श्रीहरि उपर्युक्त सब देवताओंके तेजकी राशि हैं। गर्गाचार्यजीने अनेक प्रकार की 'कृष्ण' पदकी निरुक्तिकर उनके अनेक नाम बताये और कहा—नन्दजी! इनके अनन्त नाम हैं, किंतु उन सभी नामोंका स्मरण करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह सब केवल 'कृष्ण' नामके स्मरण करनेसे मनुष्य अवश्य प्राप्त कर लेता है। कृष्ण नामके स्मरणका जैसा पुण्य है, उसके कीर्तन और श्रवणसे भी वैसा ही फल प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुके सब नामोंमें कृष्ण नाम सबकी अपेक्षा सारतम वस्तु और परात्पर तत्त्व है। कृष्ण नाम अत्यन्त मंगलमय, सुन्दर तथा भक्तिदायक है—

विष्णोर्नाम्नां च सर्वेषां सर्वात् सारं परात्परम्।
कृष्णेति मङ्गलं नाम सुन्दरं भक्तिदास्यदम्॥

(ब्र०वै०पु० ४।१३।६५)

गोपराजजी! मेरे गुरु भगवान् शंकर हैं। पूर्वकालमें भगवान् शंकरके मुखसे इस कृष्ण नामकी मैंने महिमा सुनी थी।

तदनन्तर गर्गजीने हलधरजीके नामोंकी तथा राधानामकी व्युत्पत्ति विस्तारसे बतायी और बताया कि वृन्दावनमें राधा-माधवका विवाह होगा, जगत्-स्रष्टा ब्रह्मा ही वह विवाह करायेंगे और साक्षात् अग्निदेव साक्षी होंगे। तदनन्तर गर्गजीने भगवान् जो-जो लीलाएँ आगे करेंगे, उन सभी भविष्यकी घटनाओंको बता दिया। फिर गर्गजी नामकरण-संस्कारका शुभ मुहूर्त बताते हुए बोले—नन्दरायजी! माघ शुक्ल चतुर्दशीको शुभ वेलामें इन बालकोंका नामकरण-संस्कार कराओ। उस दिन गुरुवार है, रेवती नक्षत्र है, चन्द्र और तारा शुद्ध हैं, मीनके चन्द्रमा हैं, उसपर लग्नेशकी पूर्ण दृष्टि है, उत्तम वणिज नामक करण है और मनोहर शुभ योग है। तदनन्तर ज्योतिषके अनुसार इस उत्तम योगमें मुनिवर गर्गजीके आदेशानुसार आनन्दमग्न नन्दरायजीने बालकका 'कृष्ण' यह नाम रखा।

इसके पश्चात् अपने परमाराध्य श्रीहरिको गोदमें लेकर गर्गजी एकान्त स्थानमें गये और बड़ी भक्ति तथा प्रसन्नतासे उन परमेश्वरको प्रणाम करके उनका स्तवन करने लगे।[१] उस समय उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बह रहे थे, शरीरमें रोमांच हो आया था, वे स्तुति करते-करते भक्तिका वर माँगते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े और जोर-जोरसे रोने लगे। भक्तवत्सल भगवान् मुसकरा उठे और बोले—'**मयि ते भक्तिरस्त्विति**' अर्थात् मुझमें तुम्हारी अचल भक्ति हो।

भक्तिका वर पाकर पुलकित हुए महर्षि गर्ग बालरूप भगवान्‌को नन्दजीको सौंपकर उनसे आज्ञा लेकर शिष्योंसहित मथुरा पधारे और वसुदेवजीको नन्दोत्सवकी सम्पूर्ण बातें सुनायीं, जिसे सुनकर उन्हें बड़ा ही आनन्द हुआ।[२]

गर्गाचार्यद्वारा भगवान्‌के भविष्य-फलका यह वर्णन श्रीमद्भागवतमें विशिष्ट रीतिसे आया है, वहाँ जब श्रीनन्दरायजीके पास गर्गाचार्यजी पहुँचे तो नन्दजी बोले—भगवन्! आप तो पूर्णकाम हैं, आपका आगमन ही कल्याणका हेतु है। प्रभो! आप भूत-भविष्यकी सारी

१. यह स्तुति ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्णजन्म-खण्डके तेरहवें अध्यायमें २२ श्लोकोंमें आयी है। यह अत्यन्त ललित, भक्तिभावसे परिपूर्ण तथा भगवत्प्रीतिको उत्पन्न करनेवाली है। भगवत्प्रेमियोंको उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

२. श्रीगर्गाचार्यजीद्वारा भगवान्‌के नामकरण-संस्कार तथा भगवान्‌के भविष्य-फल-कथनका यह वर्णन यत्किंचित् अन्तरके साथ गर्गसंहिता (गोलोक-खण्ड, अ० १५) तथा श्रीविष्णुपुराण (५।६।८-९) आदिमें भी वर्णित है।

बातें जानते हैं, ज्योतिषके तत्त्वको जाननेवाले हैं, मेरे मनकी भी सारी बातें आपको ज्ञात ही हैं। हे मुने! जो बात साधारण इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है अथवा भूत और भविष्यके गर्तमें निहित है, वह भी ज्योतिषशास्त्रके द्वारा जान ली जाती है, आपने उसी ज्योतिषशास्त्रकी रचना की है—

ज्योतिषामयनं साक्षात् यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम्।
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम्॥

(श्रीमद्भा० १०।८।५)

मुने! कृपाकर अपनी विद्याके बलपर मेरे इन दोनों बालकोंका नामकरण-संस्कार करनेकी कृपा करें। तब गर्गजीने 'कृष्ण' तथा 'बलराम' ये नाम रखे और उनकी महिमा बतायी तथा भविष्यमें वे जो-जो भी लीलाएँ करेंगे, अपने ज्योतिषविद्याके प्रभावसे वह सब भी उन्हें बता दिया।

महर्षि गर्गाचार्य और गर्गस्त्रोततीर्थ

महाभारतके शल्यपर्वमें बलरामजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें वैशम्पायनजीने जनमेजयको बताया कि राजन्! सरस्वतीनदीके तटपर एक महातीर्थ है, वहाँ महामुनि गर्गाचार्यजीने महान् तपस्या की, जिससे वे पवित्र अन्तःकरणवाले और कालतत्त्वके ज्ञाता हो गये। वहींपर उन्होंने कालका ज्ञान, कालकी गति, ग्रहों और नक्षत्रोंके उलट-फेर, दारुण उल्कापात तथा शुभ लक्षण—इन बातोंकी जानकारी प्राप्त की। कालज्ञानके लिये तथा ग्रह-नक्षत्रोंके प्रभाव और गतिको जानने तथा उसका शुभाशुभ परिणाम जाननेके लिये बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि महाभाग गर्गमुनिकी आराधना किया करते थे। इसी कारण वह तीर्थ गर्गस्त्रोततीर्थ कहलाता है। इसी तीर्थमें गर्गमुनिने ज्योतिषके ग्रन्थोंका प्रणयन किया तथा ज्योतिषज्ञान प्राप्त किया था।

महर्षि गर्गाचार्य और उनका ज्योतिषीय अवदान

महर्षि गर्गाचार्यके संक्षिप्त जीवनवृत्तमें उनके सिद्धहस्त दैवज्ञ होनेके आख्यान प्राप्त होते हैं, प्राचीनतम ज्योतिषके आचार्योंमें उनका परिगणन भी हुआ है तथा उनके नामसे गर्गसंहिता नामक एक ज्योतिषग्रन्थका भी उल्लेख प्राप्त होता है, किंतु वर्तमानमें गर्गजीका ज्योतिषविषयक यह साहित्य प्राप्त नहीं होता। गर्गजीकी एक गर्गसंहिता अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो भगवान् श्रीकृष्णकी माधुर्यमयी लीलाओंसे परिपूर्ण है। विद्वज्जनोंका यह मानना है कि गर्गसंहिता श्रीमद्भागवतोक्त श्रीकृष्णलीलाका महाभाष्य है।*

गर्गसंहितामें गोलोकखण्ड, वृन्दावनखण्ड, गिरिराजखण्ड, माधुर्यखण्ड, मथुराखण्ड, द्वारकाखण्ड, विश्वजित्खण्ड, श्रीबलभद्रखण्ड, श्रीविज्ञानखण्ड तथा अश्वमेधखण्ड—ये दस खण्ड हैं। गर्गाचार्यजीने श्रीकृष्णके प्रपौत्र अनिरुद्धके पुत्र मथुराधिपति वज्रनाभको नौ दिनोंतक गर्गसंहिता सुनायी तथा भगवन्नामकी महिमा बताते हुए कहा कि जिसने एक बार भी कृष्ण—इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षतक पहुँचनेके लिये कमर कस ली—'**सकृदुच्चरितं येन कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥**' (गर्ग०अश्व० ६१।३९)

इस गर्गसंहितामें यत्र-तत्र ज्योतिषके विषयोंका तो आनुषंगिकरूपसे प्रवेश हुआ है, किंतु गर्गसंहिता नामसे प्राचीन आचार्योंमें जिस आर्ष संहिताका उल्लेख है, वह इससे भिन्न है। कालक्रमसे वह अप्राप्त है।

गर्गजातक एवं गर्गमनोरमा

वर्तमानमें गर्गजीके नामसे दो लघु ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जो गर्गजातक तथा गर्गमनोरमा नामसे प्रसिद्ध हैं।

* 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव०' (द्वारकाखण्ड १२।१९), 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुःविष्णुः०' और 'अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया०' (माधुर्यखण्ड १।१३-१४) तथा 'नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये०' (विज्ञानखण्ड ९।२२, द्वारकाखण्ड २।२९) आदि प्रसिद्ध श्लोक इसी गर्गसंहितामें आये हैं।

गर्गमनोरमामें प्रश्नविद्याका वर्णन है, इसमें कुल २२ श्लोक हैं। इसके प्रारम्भमें मंगलाचरणके रूपमें गर्गमुनि कहते हैं—

प्रणम्यानन्दरूपं तमानन्दैकनिकेतनम्।
गर्गो बुद्धिमतां प्रीत्यै प्रश्नविद्यामथाकरोत्॥

अर्थात् आनन्दके निधान तथा आनन्दस्वरूप उन परमात्माको प्रणाम करके विद्वज्जनोंकी प्रीतिके लिये मैंने इस प्रश्नविद्याशास्त्रका प्रणयन किया है। आगे प्रश्नकी विधिमें बताया गया है कि प्रश्नकर्ता पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर प्रात:कालमें किसी पुष्प, मध्याह्नमें फल, सायंकालमें नदी तथा रात्रिमें देवताके नामका उच्चारण करे। गणितज्ञ ज्योतिषीको उस नामके अक्षरोंके योगसे प्रश्नका विचारकर फल बताना चाहिये। संक्षेपमें इसकी प्रक्रिया भी वहाँ बतायी गयी है।

गर्गजातक नामसे दूसरा जो लघु ग्रन्थ प्राप्त होता है, वह कुण्डलीमें विशेष ग्रहयोगसे फलादेशका निर्णय बताता है। इसमें कुल ८४ श्लोक हैं। इसके प्रारम्भमें अरिष्टसम्बन्धी मृत्युकारक योग, फिर राजयोग, धन-प्राप्तिके योग तथा अन्तमें माता-पितासे सम्बद्ध अरिष्ट-योग बताये गये हैं। बीच-बीचमें अरिष्टभंगयोग भी निर्दिष्ट हैं। अरिष्ट-ज्ञानके लिये यह लघुग्रन्थ बड़े महत्त्वका है।

गर्गसंहिता, मत्स्यपुराण तथा आचार्य वराहमिहिरकी बृहत्संहिता

गर्गसंहिता तो वर्तमानमें पूर्ण रूपसे उपलब्ध नहीं दिखायी देती, किंतु उसके प्रकरण यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। गर्गसंहिताका जो 'उत्पातप्रकरण' है, वह मत्स्यपुराणके अध्याय २२९ से २३८ तक दस अध्यायोंमें आया हुआ है। वहाँ राजर्षि मनुके पूछनेपर मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महातपस्वी वृद्ध गर्गने उत्पातों तथा उनकी शान्तिके उपायोंके विषयमें अत्रिमुनिसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं तुम्हें बतला रहा हूँ। एक समय मुनिजनोंके प्रिय महर्षि गर्गाचार्य सरस्वतीनदीके तटपर सुखपूर्वक बैठे हुए थे, उसी समय महातेजस्वी अत्रिजीने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया—महर्षे! आप मुझे विनाशोन्मुख मनुष्यों, राजाओं तथा नगरोंके सभी पूर्वलक्षण बताइये।

इसपर गर्गजी बोले—अत्रिजी! मनुष्योंके अत्याचारसे निश्चय ही देवता प्रतिकूल हो जाते हैं। तत्पश्चात् उन देवताओंके अप्रसन्न होनेसे उत्पात प्रारम्भ होता है। वह उत्पात दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम—तीन प्रकारका कहा गया है। ग्रहों और नक्षत्रोंके विकारको दिव्य उत्पात जानना चाहिये। उल्कापात, दिशाओंका दाह, मण्डलोंका उदय, आकाशमें गन्धर्वनगरका दिखायी देना, खण्डवृष्टि, अनावृष्टि या अतिवृष्टि—ये आन्तरिक्ष उत्पात हैं। स्थावर-जंगमसे उत्पन्न हुआ उत्पात तथा भूमिजन्य भूकम्प भौम उत्पात हैं। जलाशयोंका विकार भी भौम उत्पात कहलाता है।*

आगेके अध्यायोंमें गर्गजीने अत्रिजीको उत्पात-सम्बन्धी बातें तथा उनकी शान्तिके उपाय बताये हैं।

यहाँ विशेष ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि आचार्य वराहमिहिरने अपनी बृहत्संहिता (वाराहीसंहिता)-के ४६वें अध्यायमें 'उत्पात-लक्षण' नामसे ९९ श्लोक दिये हैं, वे मत्स्यपुराणमें उल्लिखित महर्षि गर्गजीद्वारा अत्रिको बताये गये विषय ही हैं। इस बातको स्वयं वराहमिहिरजीने स्वीकार भी किया है, उनके वचन इस प्रकार हैं—**'यानत्रेरुत्पातान् गर्गः प्रोवाच तानहं वक्ष्ये'** (वारा०सं० ४६।१) अर्थात् गर्गजीने महर्षि अत्रिको उद्देश्य करके जिन उत्पातोंके विषयमें बताया है, उन्हें मैं कहूँगा।

---

* पुरुषापचारान्नियतमपरज्यन्ति देवता:। ततोऽपरागाद् देवानामुपसर्ग: प्रवर्तते॥
दिव्यान्तरिक्षभौमं च त्रिविधं सम्प्रकीर्तितम्। ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे॥
उल्कापातो दिशां दाह: परिवेषस्तथैव च। गन्धर्वनगरं चैव वृष्टिश्च विकृता तु या॥
एवमादीनि लोकेऽस्मिन्नान्तरिक्षं विनिर्दिशेत्। चरस्थिरभवो भौमो भूकम्पश्चापि भूमिज:॥
जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम्। (मत्स्यपु० २२९।५—९)

आगे जैसा वर्णन मत्स्यपुराणमें गर्गजीने किया है, प्राय: वही सब वर्णन किंचित् शब्दान्तरसे वाराहीसंहितामें आया हुआ है, तुलनाके लिये कुछ बातें दी जा रही हैं—

मत्स्यपुराण—

पुरुषापचारान्नियतमपरज्यन्ति देवता:।
ततोऽपरागाद् देवानामुपसर्ग: प्रवर्तते॥
दिव्यान्तरिक्षभौमं च त्रिविधं सम्प्रकीर्तितम्।

(२२९।५-६)

वाराहीसंहिता—

अपचारेण नराणामुपसर्ग: पापसञ्चयाद् भवति।
संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्तदुत्पाता:॥

(४६।२)

आगे अग्निसम्बन्धी, वृक्षजन्य, वृष्टिजन्य उत्पात, जलाशयजनित विकृतियाँ, प्रसवजनित विकार, उपस्करविकृति, पशु-पक्षी-सम्बन्धी उत्पात, राजाकी मृत्यु तथा देशके विनाशसूचक लक्षण तथा इन सबकी शान्तिके अनुष्ठान मत्स्यपुराणमें वर्णित हैं। ये ही विषय वाराहीसंहितामें भी समानरूपसे महर्षि गर्गजीके नामसे आये हैं।

इन उत्पातोंकी शान्ति भी बतलायी गयी है, जो मत्स्यपुराण तथा वाराहीसंहितामें समान तात्पर्यसे आयी है। अग्निजन्य उत्पातोंका वर्णन करके गर्गजीने बतलाया कि ऐसी दशामें पुरोहितको चाहिये कि तीन रात्रितक उपवासकर अत्यन्त समाहित चित्तसे दूधवाले वृक्षोंकी लकड़ियों, सरसों तथा घीसे अग्निमन्त्रोंके द्वारा हवन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा उन्हें सुवर्ण, गौएँ, वस्त्र और पृथ्वीका दान दे। ऐसा करनेसे अग्निविकार-सम्बन्धी पाप नष्ट हो जाता है।[1]

इसी बातको आचार्य वराहमिहिरने अपने शब्दोंमें इस प्रकार कहा है—

मन्त्रैर्वाह्नै: क्षीरवृक्षात्समिद्भि-
र्होतव्योऽग्नि: सर्षपै: सर्पिषा च।
अग्न्यादीनां वैकृते शान्तिरेवं
देयं चास्मिन् काञ्चनं ब्राह्मणेभ्य:॥

(वा०सं० ४६।२४)

वृक्षजन्य विकारोंसे होनेवाले राष्ट्रकी विपत्तिकी शान्तिके लिये गर्गजीने मत्स्यपुराणमें जो बातें बतायी हैं। यथा—वृक्षोंमें उपद्रवके लक्षण दिखायी देनेपर ब्राह्मण उस वृक्षको ऊपरसे वस्त्रसे ढककर चन्दन और पुष्पमालासे भूषित करे और वायुकी शान्तिके लिये वृक्षके ऊपर छत्र लगाये, तदनन्तर शिवकी पूजा करे और **रुद्रेभ्य:०** इस मन्त्रसे वृक्षोंके नीचे हवन करके शिवका जप करे। फिर घृत तथा मधुयुक्त खीरसे ब्राह्मणोंको सन्तुष्टकर उन्हें पृथ्वीका दान दे।[2]

इसी वर्णनको वाराहीसंहितामें इन शब्दोंमें कहा गया है—

स्रग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य च्छत्रं निधायोपरि पादपस्य।
कृत्वा शिवं रुद्रजपोऽत्र कार्यो रुद्रेभ्य इत्यत्र षडङ्गहोम:॥
पायसेन मधुना च भोजयेद् ब्राह्मणान् घृतयुतेन भूपति:।
मेदिनी निगदितात्र दक्षिणा वैकृते तरुकृते महर्षिभि:॥

(वा०सं० ४६।३१-३२)

इस प्रकार अप्राप्त गर्गसंहिताके बहुत-से प्रकरण विभिन्न ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं।

---

१. त्रिरात्रोपोषितश्चात्र पुरोधा: सुसमाहित:॥
समिद्भि: क्षीरवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च। होमं कुर्यादग्निमन्त्रैर्ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्॥
दद्यात् सुवर्णं च तथा द्विजेभ्यो गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवं च। एवं कृते पापमुपैति नाशं यदग्निवैकृत्यभवं द्विजेन्द्र॥
(मत्स्यपुराण २३१।९—११)

२. आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत्। वृक्षोपरि तथा च्छत्रं कुर्यात् पापप्रशान्तये॥
शिवमभ्यर्चयेद् देवं पशुं चास्मै निवेदयेत्। रुद्रेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेत् तत:॥
मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन सम्पूज्य विप्रांश्च भुवं च दद्यात्। गीतेन नृत्येन तथार्चयेत्तु देवं हरं पापविनाशहेतो:॥
(मत्स्यपुराण २३२।१३—१५)

महर्षि पराशर और उनका होराशास्त्र

महर्षि पराशर परम धर्मात्मा हैं। उनका प्रात:काल नामस्मरण करनेसे कल्याण-मंगलकी प्राप्ति होती है। नित्य प्रात:स्मरणीय पुण्यश्लोकोंमें उनका स्मरण करते हुए उनका इस प्रकार नमन किया गया है—**'पराशरं वेदनिधिं नमस्ये'** (महा०अनु०पर्व १५०।१०) अर्थात् वेदनिधि पराशरजीको नमस्कार है।

महर्षि पराशर महात्मा वसिष्ठके पौत्र, ऋषि शक्तिके पुत्र, कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीके पिता तथा महाभागवत शुकदेवजीके पितामह हैं। इस प्रकार पराशरजीकी पितृ-परम्परा तथा पुत्र-पौत्रकी परम्परा अत्यन्त समृद्ध तथा भक्ति-ज्ञान एवं योगसे सम्पन्न है। इन सबके लोकोपकार तथा सदाचरणकी कोई सीमा नहीं है। 'पराशर' इस शब्दका अर्थ ही है कि जो अपने दर्शन-स्मरणसे ही समस्त पाप-तापको नष्ट कर देते हैं, वे ही पराशर कहलाते हैं—**'पराशृणाति पापानीति पराशरः'** (माधवीय धातुवृत्ति, क्र्यादिगण १६)। लोककल्याणकी दृष्टिसे त्रिकालज्ञ महर्षि पराशरजीका अवदान अत्यन्त ही विशिष्ट कोटिका है। वे महान् योगी, महान् दैवज्ञ, कालतत्त्वके ज्ञाता, धर्मके निगूढ़ तत्त्वको जाननेवाले, पुराणविद्याके आचार्य, वार्ताशास्त्रमें पारंगत तथा गोविद्याके तात्त्विक रहस्यको जाननेवाले थे। वे ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक उपदेष्टा आचार्य हैं। ज्योतिषके प्राचीन ग्रन्थोंमें जहाँ-जहाँ भी ज्योतिषशास्त्रके उपदेष्टा एवं आविर्भावक आचार्योंका सन्दर्भ आया है, वहाँ पराशरजीका नाम बड़े ही समारोहपूर्वक परिगणित हुआ है।*

इनके द्वारा रचित पराशरहोराशास्त्र, लघुपाराशरी, मध्यपाराशरी तथा कृषिपाराशर आदि ग्रन्थ ज्योतिर्विज्ञानके बड़े ही महत्त्वके ग्रन्थ हैं और ज्योतिषशास्त्रके तत्त्वज्ञानमें इनकी विशिष्ट भूमिका है। न केवल ज्योतिषशास्त्र, अपितु धर्मशास्त्रके भी आप महान् ज्ञाता हैं। आपने धर्माधर्मनिरूपणके लिये दो स्मृतिग्रन्थोंका प्रणयन किया है, जो पराशरस्मृति तथा बृहत्पराशरस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध हैं। अष्टादश महापुराणोंमें परिगणित विष्णुपुराण आपके द्वारा ही महर्षि मैत्रेयके प्रति उपदिष्ट है। इसके साथ ही पराशर-उपपुराण भी प्राप्त होता है। महाभारतके शान्तिपर्वमें पराशरगीता उपलब्ध है, जो राजर्षि जनकके प्रति उपदिष्ट है। महर्षि पराशरजीकी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा अत्यन्त समृद्ध है, किंतु उनमें महर्षि मैत्रेयजीका नाम विशेष प्रसिद्ध है। श्रीपराशरहोराशास्त्र तथा श्रीविष्णुपुराण मैत्रेयजीकी जिज्ञासाके ही परिणाम हैं। आपकी गोत्रकार ऋषियोंमें गणना है। यहाँ संक्षेपमें पराशरजीके उदात्त एवं महनीय, लोकोपकारक चरितकी कुछ बातें तथा उनके ज्योतिषीय अवदानकी परिचर्चा प्रस्तुत है—

महान् धर्मशास्त्री

महर्षि पराशरजी युगद्रष्टा महात्मा थे। उन्होंने बताया कि कलियुगमें लोगोंके लिये सत्ययुगादिके धर्मोंका परिपालन दुष्कर हो जायगा, अतः उन्होंने कलियुगके अनुसार धर्माचरणकी व्यवस्था की, इसके लिये उन्होंने पराशरस्मृति तथा बृहत्पराशरस्मृतिके नामसे दो धर्मशास्त्रोंका प्रणयन किया। उन्होंने बताया कि सत्ययुगमें तपस्यारूप धर्मका प्राधान्य रहता है, त्रेतामें ज्ञानधर्मकी प्रमुखता रहती है, द्वापरमें यज्ञ-यागादिका

---

* (क) ब्रह्माचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यलोमशौ। मरीचिरङ्गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः॥
च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः। अष्टादशैते गम्भीरा ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तकाः॥ (नारदसंहिता)

(ख) सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः। कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः। शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥ (कश्यपसंहिता)

(ग) विश्वसृड् नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः। लोमशो यवनः सूर्यः च्यवनः कश्यपो भृगुः॥
पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिशः शौनकोऽङ्गिराः। गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्यौतिःप्रवर्तकाः॥ (पराशरसंहिता)

विशेष अनुष्ठान होता है, किंतु कलियुगमें दानरूप धर्मकी विशेष महिमा है—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमित्यूचुर्दानमेकं कलौ युगे॥

(परा०स्मृति १।२३)

सत्ययुगमें मनुद्वारा निर्दिष्ट धर्म प्रमुख था, त्रेतामें महर्षि गौतमकी धर्मसंहिता मान्य हुई, द्वापरमें महर्षि शंख-लिखितके धर्मशास्त्र प्रतिष्ठित थे, किंतु कलियुगमें महात्मा पराशरजीका कहा हुआ धर्म विशेष मान्यता प्राप्त है—

कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः।
द्वापरे शङ्खलिखितः कलौ पाराशरः स्मृतः॥

(परा०स्मृति १।२४)

इन दोनों स्मृतियोंमें मुख्यरूपसे सदाचरणकी महिमा, संस्कार-निरूपण, वर्णाश्रमधर्म, आशौचव्यवस्था तथा प्रायश्चित्तनिरूपण आदि प्रधानरूपसे वर्णित है।

महान् योगी

महर्षि पराशरकी योगचर्या बड़े ही महत्त्वकी है। यद्यपि योगपरक उनका कोई विशिष्ट ग्रन्थ नहीं है तथापि अपनी स्मृतियों तथा विष्णुपुराणमें उन्होंने योगके सूक्ष्म तत्त्वोंका निरूपण किया है। उन्होंने अष्टांगयोगका निरूपण करते हुए ध्यानयोगपर विशेष बल दिया है और इसे 'योगसारसर्वस्व' बताया है। पराशरजी कहते हैं कि योगसाधकको चाहिये कि वह उस एक परतत्त्वपर ही निरन्तर ध्यान लगाये रखे, जिससे कि साक्षात् हरि उसके हृदय-प्रदेशमें निवास करने लगें और उनका वह प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर ले—

एवमेवाभ्यसेत् तत्त्वं येन चित्ते वसेद्धरिः।

(परा० स्मृति १२।३४९)

पुराणविद्याके आचार्य

महर्षि पराशरजीके नामसे श्रीविष्णुमहापुराण तथा पराशर-उपपुराण—ये ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। श्रीविष्णुमहापुराण अष्टादश महापुराणोंमें विशिष्ट कोटिका है। उसका पूर्वरूप अति विशाल था, किंतु वर्तमानमें यह छः हजार श्लोकोंमें उपनिबद्ध है। इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरितके साथ ही प्रधान रूपसे भक्तिदर्शनका महत्त्वपूर्ण पथ निर्दिष्ट है। भगवान्की महिमाका गान तथा भगवद्भक्तिकी उद्भावना इसका प्रमुख उद्देश्य है। इसके प्रथम अंशमें सृष्टिका वर्णन, द्वितीय अंशमें भूगोल—खगोलवर्णन, तृतीय अंशमें मन्वन्तर, वेदकी शाखाओंका विस्तार, वर्णाश्रमधर्म तथा श्राद्धकल्प निरूपित है, चतुर्थ अंशमें सूर्य तथा चन्द्रवंशी राजाओंका चरित निरूपित है। पंचम अंशमें विस्तारसे श्रीकृष्णचरित वर्णित है तथा अन्तिम षष्ठ अंशमें कलिधर्मनिरूपण, प्रलयवर्णन तथा भगवान् वासुदेवके माहात्म्यका निरूपण है। ज्यौतिषीय विवेचनकी दृष्टिसे इसका द्वितीय अंश विशेष महत्त्वका है, जिसमें विस्तारसे भूगोल, खगोल, सूर्य-चन्द्रादि ग्रहों एवं राशियोंकी व्यवस्था, ज्योतिश्चक्र और शिशुमारचक्र, द्वादश सूर्योंके नाम तथा उनका परिभ्रमण, नवग्रहोंका स्वरूप तथा उनके रथोंका सुन्दर वर्णन है।

पराशर-उपपुराणमें अठारह अध्याय और आठ हजार श्लोक हैं। इसमें मुख्यरूपसे शैवधर्म तथा भगवान् शिवकी आराधना-उपासना एवं शिवसपर्याका वर्णन है।

पराशरजीकी गोभक्ति

महर्षि पराशरजीकी समस्त प्राणियोंपर अपार दया एवं करुणा है। उन्होंने अपने धर्मशास्त्रमें जहाँ अहिंसाधर्मका विशेष प्रतिपादन करते हुए गोसेवा और संरक्षाको विशेष महत्त्व दिया है, वहीं अपने कृषिपराशरग्रन्थमें गोवंश, मुख्यरूपसे बैलोंके संरक्षणपर विशेष बल दिया है। गोवधको उन्होंने सर्वोपरि पाप बताया है और वृषभकी महिमामें बताया है कि वृषभसे अधिक पूज्यतम और कोई नहीं है—**'तस्मात् वृषात् पूज्यतमोऽस्ति नान्यः'** (बृहत् परा०स्मृति १०।३२)। गोसेवा तथा गोमहिमा एवं कृषिके सम्बन्धमें उन्होंने बहुत ही उपयोगी बातें बतायी हैं। इन्होंने गौओंमें सभी देवताओं ऋषि-महर्षियों एवं गंगादि नदियोंका वास बताया है (बृहत् परा०स्मृति ५।३४—४१)। महर्षि पराशरजी कहते हैं कि गायोंका

दुग्ध आदि हो, गोधूलि हो, चाहे गोमय, गोमूत्र आदि हो—सब कुछ पूज्य ही है—'**किमपूज्यं हि तस्या गोरिति पाराशरोऽब्रवीत्**' (बृहत्परा०स्मृति अ० ५)। पुनः वे कहते हैं कि गौएँ स्पर्शमात्रसे समस्त पापोंको नष्ट कर देती हैं, उनकी सेवा किये जानेपर वे अपार सम्पत्ति प्रदान करती हैं। वे ही गायें दानमें दिये जानेपर उत्तम लोकोंको प्रदान करती हैं, ऐसी गौओंके समान अन्य कोई दूसरा धन नहीं है—

स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं
संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम्।
ता एव दत्तास्त्रिदिवं नयन्ति
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित्॥

(बृहत्परा०स्मृति अ० ५)

महर्षि पराशरजीकी सदाचारनिष्ठा और अध्यात्मज्ञान

एक बारकी बात है, विदेहराज जनकजीने महर्षि पराशरजीके पास जाकर पूछा—मुने! कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो समस्त प्राणियोंके लिये इहलोक तथा परलोकमें भी कल्याणकारी है। तब पराशरजीने उन्हें जो धर्मज्ञान और स्वधर्माचरणकी बातें बतायीं, वे पराशर-गीताके नामसे महाभारतके शान्तिपर्व (अ० २९०—२९८)-में संगृहीत हैं। पराशरजीने जनकजीसे कहा—राजन्! शास्त्रविहित स्वधर्मका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया जाय तो वह इहलोक तथा परलोक—दोनों जगह कल्याणकारी होता है—'**धर्म एव कृतः श्रेयानिह-लोके परत्र च**' (शान्ति० २९०।६)। मनुष्य नेत्र, मन, वाणी और क्रियाद्वारा चार प्रकारका कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है—'**कुरुते यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते**' (शान्ति० २९०।१६)। अतः मनुष्यको सत्कर्मानुष्ठानके द्वारा आत्माके उत्थानका प्रयत्न करना चाहिये—'**उत्कर्षार्थं प्रयतेत नरः पुण्येन कर्मणा**' (शान्ति० २९१।३)। धर्मका पालन करते हुए जो धन प्राप्त होता है, वही सच्चा धन है। जो धन अधर्मसे प्राप्त होता है, वह धन तो धिक्कार देनेयोग्य है। संसारमें धनकी इच्छासे शाश्वत धर्मका त्याग कभी नहीं करना चाहिये—'**धर्मं वै शाश्वतं लोके न जह्याद् धनकाङ्क्षया**' (शान्ति० २९२।१९)। असन्तोष ही दुःखका कारण है। लोभसे मन और इन्द्रियाँ चंचल हो जाती हैं और बुद्धि नष्ट हो जाती है। अतः लोभादिका परित्याग करके परमात्माको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जो जितेन्द्रिय हैं, वे ही परमपदको प्राप्त करते हैं—'**जितेन्द्रियार्थाः परमाप्नुवन्ति**' (शान्ति० २९७।२)। राजन्! आसक्तिका अभाव ही श्रेयका मूल कारण है। ज्ञान ही सबसे उत्तम गति है। स्वयं किया हुआ तप तथा सुपात्रको दिया दान—ये कभी नष्ट नहीं होते—

असङ्गः श्रेयसो मूलं ज्ञानं चैव परा गतिः।
चीर्णं तपो न प्रणश्येद्वापः क्षेत्रे न नश्यति॥

(महा० शान्ति० २९८।३)

महर्षि पराशरजीका ज्योतिषविषयक अवदान

ज्योतिष-सम्बन्धी महर्षि पराशरजीके चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जो मुख्यरूपसे होराशास्त्रसे सम्बद्ध हैं। इनके नाम हैं—१-बृहत् पाराशरहोराशास्त्र, २-लघुपाराशरी (उडुदायप्रदीप), ३-मध्यपाराशरी और ४-कृषिपाराशर-शास्त्र। ज्योतिषशास्त्रके अनेक भेद होनेपर भी '**त्रिस्कन्धं ज्योतिषं शास्त्रम्**'—इस वचनके अनुसार ज्योतिषशास्त्र प्रधान रूपसे सिद्धान्त, संहिता तथा होरा—इन नामोंसे स्कन्धत्रयात्मक है। होराशास्त्र भी जातक, ताजिक, रमल, प्रश्न तथा स्वप्नके भेदसे पाँच प्रकारका है। इनमें भी जातक (होरा) शाखाका प्राधान्य है। होराशास्त्र फलितशास्त्र है। यह अत्यन्त प्राचीन है। वेदों तथा उपनिषदादिमें नक्षत्रविद्याका उल्लेख है। नारद, कश्यप, वसिष्ठ, पराशर आदि इस शास्त्रके प्राचीन आचार्य हैं, बादमें वराहमिहिरका बृहज्जातक, उनके पुत्र पृथुयशाकी षट्पंचाशिका, कल्याणवर्माकी सारावली, केशवदैवज्ञकी जातकपद्धति, गणेशदैवज्ञका जातकालंकार, वैद्यनाथका जातकपारिजात, ढुण्ढिराजका जातकाभरण, जीवनाथका भावकुतूहल तथा बलभद्रका होरारत्न आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ निर्मित हुए और फलित शाखाका विशेष प्रचार-प्रसार हुआ।

यहाँ महर्षि पराशरजीके होराशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थोंका संक्षेपमें निदर्शन प्रस्तुत है—

(१) बृहत्पाराशरहोराशास्त्र

महामुनि पराशरविरचित बृहत्पाराशरहोराशास्त्र (बृहत्पाराशरी) ग्रन्थ ज्योतिषशास्त्रका अत्यन्त प्रौढ़ तथा विशेष उपयोगी ग्रन्थ है, त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषमें यह 'होरास्कन्ध' का अप्रतिम प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें जातकसम्बन्धी सभी बातें निरूपित हैं। यह पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वार्धमें ३९ प्रकरण (अध्याय) तथा उत्तरार्धमें १९ प्रकरण (अध्याय) हैं।*

प्रारम्भमें ही मैत्रेयजीद्वारा ज्योतिषशास्त्रका उपदेश देनेकी प्रार्थना करनेपर पराशरजीने मंगलाचरणमें सर्वप्रथम ग्रहोंके स्वामी तथा समस्त जगत्‌की उत्पत्तिके कारणस्वरूप

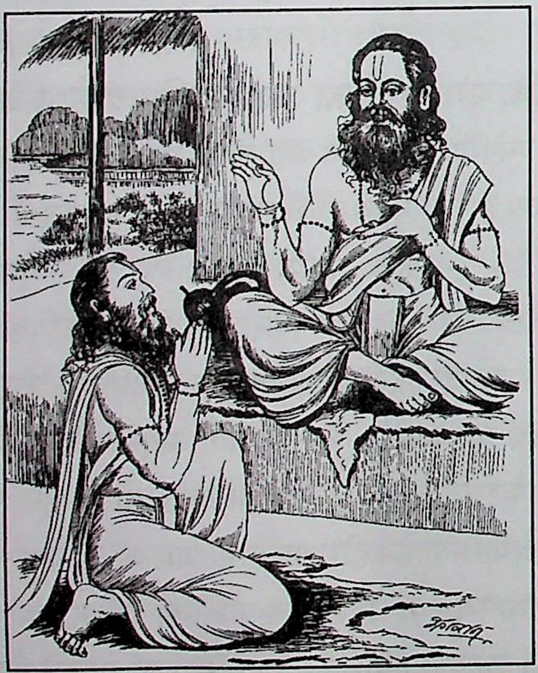

भगवान् सूर्यको प्रणाम करके कहा—मैत्रेयजी! वेदके नयनरूप इस शास्त्रका उपदेश मुझे ब्रह्माजीसे प्राप्त हुआ है और उन्होंने मुझे जो उपदेश दिया, वह मैं यथावत् रूपसे आपसे कहूँगा—'**वक्ष्यामि वेदनयनं यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्**' (पू० १।४)।

तदनन्तर पराशरजीने सर्वप्रथम पहले अध्यायमें सृष्टिरचनाका क्रम बताया और यह निरूपित किया कि अव्यक्तात्मा विष्णु ही सत्त्वादि शक्तियोंको धारणकर इस जगत्‌के स्रष्टा, पालक तथा संहर्ता हैं। वे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध नामक व्यूहचतुष्टयको धारण करते हैं। सभी जीवोंमें परमात्मा स्थित हैं और यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मामें ही स्थित है। सभी जीवोंमें दो अंश रहते हैं—१-जीवांश तथा २-परमात्मांश। किसीमें जीवांश अधिक होता है और किसीमें परमात्मांश। सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहोंमें, ब्रह्मा-शिव आदि देवताओंमें तथा अन्य अवतारोंमें परमात्माका अंश अधिक होता है। पराशरजीके ऐसा कहनेपर मैत्रेयजीने पुनः प्रश्न किया कि हे प्रभो! राम, कृष्ण आदि जो विष्णुके अवतार हैं, क्या वे भी जीवांशसे युक्त हैं, इसपर पराशरजी बोले—मैत्रेयजी! राम, कृष्ण, नरसिंह तथा वाराह—ये चार पूर्ण अवतार हैं और शेष अवतार जीवांशसे युक्त हैं—'**रामः कृष्णश्च भो विप्र नृसिंहः शूकरस्तथा। इति पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः॥**' (पू० १।२४)। पराशरजी एक विशेष बात बताते हुए कहते हैं कि ग्रहरूपी जनार्दन ही जीवोंके कर्मफलके देनेवाले हैं और सूर्यादि ग्रह ही विभिन्न अवतारोंके रूपमें प्रकट हुए हैं। सूर्यका ही रामावतार हुआ, चन्द्रमाका कृष्णरूपमें अवतरण हुआ, मंगल नृसिंहावतारके रूपमें प्रकट हुए और बुधका बौद्धावतार हुआ। बृहस्पतिका वामन, शुक्रका परशुराम, शनिका कूर्म तथा राहुका वाराहावतार हुआ। केतुका मत्स्यावतार हुआ, अन्य अवतार भी ग्रहोंसे ही हुए। ये ग्रह प्रलयके समय अव्यक्त परमात्मामें लीन हो जाते हैं। अव्यक्त परमात्मा विष्णु ही कालरूप जनार्दन हैं, उन कालरूप पुरुषके अंग ही बारह राशियाँ हैं। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन—ये बारह राशियाँ क्रमसे कालपुरुषके सिर, मुख, दोनों भुजाएँ, हृदय, पेट, कटि, वस्ति, गुह्यस्थान, ऊरू, दोनों जानु, जंघे तथा दोनों चरण हैं।

पराशरजीने आगे बारहों राशियोंके स्वरूपका वर्णन किया है। तदनन्तर ग्रहस्वरूपाध्यायमें नवग्रहोंमें सूर्यको कालपुरुषकी आत्मा, चन्द्रमाको मन, मंगलको सत्त्व, बुधको वाणी, गुरुको ज्ञान तथा सुख, शुक्रको बल तथा

* विद्वानोंकी मान्यता है कि मूल पाराशरशास्त्र परिमाणमें अत्यन्त विस्तृत था और वर्तमानमें जो संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें भी अन्तर है।

शनिको दुःखका प्रतिनिधि बताया है।* ग्रहोंमें सूर्य और चन्द्रमा राजा, मंगल नेता, बुध राजकुमार तथा गुरु और शुक्रको मन्त्री बताया गया है, शनिको दास तथा राहु और केतुको सेना बताया गया है। तदनन्तर ग्रहोंके स्वरूपका निरूपण तथा ग्रहमैत्रीका वर्णन हुआ है।

तदनन्तर लग्नके आनयनकी विधि निरूपित है। आचार्य पराशरजीने सोलह प्रकारसे कुण्डलीके निर्माणमें गृह, होरा, द्रेष्काण, चतुर्थांश, सप्तमांश, नवांश, दशमांश, द्वादशांश, षोडशांश, त्रिंशांश, चतुर्विंशांश, सप्तविंशांश, त्रिदशांश, चत्वारिंशांश, पंचचत्वारिंशांश तथा षष्ठ्यंश—इन सोलह वर्गोंके निर्माणकी प्रक्रिया तथा इनके फल-निरूपणकी विधि बतायी है। आगेके अध्यायोंमें राशियोंके परस्पर दृष्टि-सम्बन्धका फल, बालारिष्टयोग तदनन्तर कारकाध्यायमें कौन ग्रह किस चीजका कारक है, इसे बताया गया है। जैसे सूर्य आत्मकारकके साथ राज्य, मूँगा, रक्तवस्त्र, माणिक, गज, वन, पर्वत, क्षेत्र आदिका कारक है। चन्द्रमा माता, मन, शरीरपुष्टि, गन्धद्रव्य आदिका कारक है। तदनन्तर आरूढ लग्न, उपपदलग्न, मारकेशका विचार हुआ है। आगे कुण्डलीके द्वादश भावोंसे किन-किन चीजोंका विचार करना चाहिये—इसे बताया गया है। जैसे प्रथम भावसे शरीर, रूप (रंग), ज्ञान, वर्ण (ब्राह्मणादि), बल, शील (स्वभाव) और प्रकृतिका तथा दूसरे भावसे धन, धान्य, कुटुम्ब, शत्रु, धातु, रत्न आदिका विचार करना चाहिये। इसी प्रकार सभी भावोंकी विचारणीय बातोंका निरूपण है तथा द्वादश भावोंसे फलकथन, भावोंके स्वामी किस भावमें बैठे हैं—उसका फल निरूपित है। जैसे लग्नेश (लग्नभावका स्वामी ग्रह) यदि लग्नभाव (प्रथम भाव)-में स्थित हो तो जातक सुखी, पराक्रमी, मनस्वी होता है। आगेके अध्यायोंमें राशि और ग्रहके परस्पर सम्बन्धसे होनेवाले ३२ नाभस योगोंका तथा उनके फलका वर्णन है। तदनन्तर गजकेसरी, पारिजात, सुनफा, अनफा, दुरुधरा तथा केमद्रुम योगों और विभिन्न राजयोगों एवं धनप्राप्ति-योगोंका वर्णन है।

मैत्रेयजीने आगे प्रश्न किया—हे कृपानिधे! अब आप सूर्य आदि ग्रहोंकी अवस्थाओंके बारेमें बतानेकी कृपा करें।

इसपर पराशरजीने कहा—मैत्रेयजी! ग्रहोंकी जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तावस्था होती है। ग्रहोंकी जाग्रत्-अवस्थामें कार्य सिद्ध होता है, स्वप्नावस्थामें मध्यम फल होता है तथा सुषुप्तावस्थामें कोई फल नहीं होता। इसी प्रकार ग्रहोंकी दीप्त, स्वस्थ, मुदित, शान्त, दीन, अतिदुःखी, विकल, खल तथा क्रोधरूप—ये नौ अवस्थाएँ भी होती हैं। ग्रहकी दीप्त-अवस्थामें अभ्युदय होता है तथा क्रोधावस्थामें सब प्रकारका कष्ट तथा कार्यकी असिद्धि होती है। ऐसे ही ग्रहोंकी बाल, कुमार, युवा, वृद्ध तथा मृत—ये पाँच अवस्थाएँ भी होती हैं। इनका फल नामानुसार होता है। इसके अतिरिक्त प्रवास, नष्ट, मृत आदि १२ अवस्थाएँ और होती हैं। तदनन्तर सभी अवस्थाओंका फल बताया गया है।

इसके अनन्तर आयुका ज्ञान कैसे होता है—इसे उन्होंने आयुर्दायाध्यायमें मारकप्रकरण तथा अष्टकवर्गमें निरूपित किया है।

सन्तानसुखके विषयमें आचार्य पराशरजीने बड़ी ही सूक्ष्म बातें निरूपित की हैं। शिव-पार्वती-संवादको बताते हुए पराशरजी कहते हैं—सन्तानका नष्ट होना तथा अनपत्यता (सन्तानहीन होना या सन्तान होनेपर मृत्यु हो जाना) दोष शापजन्य भी होता है। पराशरजी कहते हैं कि नागदेवता कुलकी वृद्धि करनेवाले हैं, यदि कभी पूर्वजन्ममें नागदेव-सम्बन्धी कोई अपराध हो गया हो तो उनके दोषसे सन्तानसुख बाधित होता है। इसके लिये ग्रहयोगवश सर्पके शापको जानकर शान्ति करनेसे यह दोष दूर हो जाता है। सुवर्णका नाग बनाकर उसका दान करनेसे नागदेव प्रसन्न होकर कुलकी वृद्धि करते

* कालात्मा च दिवानाथो मनः कुमुदबान्धवः। सत्त्वं कुजो विजानीयाद् बुधो वाणीप्रदायकः॥
देवेज्यो ज्ञानसुखदो भृगुर्वीर्यप्रदायकः। विचार्यतामिदं सर्वं छायासूनुश्च दुःखदः॥ (पा०हो० पू० ३।१-२)

हैं—ऐसे ही पितृ एवं मातृ, भ्राता, ब्राह्मण, प्रेत आदिका अपराध बन जानेसे भी सन्तानमें बाधा होती है। पितृदोष-निवारणके लिये गयाश्राद्ध, ब्राह्मणभोजन तथा गोदान आदि करना चाहिये। इससे पितृदोष दूर होता है—**'एवं कृते पितुः शापान्मुच्यते नात्र संशयः'** (पा०हो०पू० ३३। ३१)। पराशरजी बताते हैं कि जब पितरोंके कर्मका लोप हो जाता है अर्थात् उनके श्राद्धादि कर्म नहीं होते तो वे अतृप्त आत्माके रूपमें भटकते रहते हैं और प्रेत बन जाते हैं। वे वंशवृद्धि नहीं होने देते। इसका ज्ञान कुण्डलीमें विभिन्न ग्रहोंकी स्थितिको देखकर होता है। इसका वर्णन पराशरजीने ३३वें अध्यायके ग्यारह श्लोकों (९२-१०२)-में किया है। प्रायः सभी श्लोकोंके चतुर्थ चरणमें आया है—**'प्रेतशापात् सुतक्षयः।'** इसके परिहारके लिये उन्होंने गयामें विष्णुपदमें श्राद्ध, रुद्राभिषेक तथा ब्रह्ममूर्तिका दान, गोदान, रजतपात्र तथा नीलमणिका दान बताया है और कहा है कि **'एतत्कर्मकृते तत्र शापमोक्षः प्रजायते।'** अर्थात् इस कर्मके कर लेनेसे शापसे मुक्ति हो जाती है।

तदनन्तर पराशरजीने ग्रहोंकी विंशोत्तरी, षोडशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि दशाओंका वर्णन किया है। यह दशावर्णन पराशरजीकी अनूठी देन है। विंशोत्तरीदशा नक्षत्रके ऊपर आधारित है। इसमें महादशा, अन्तरदशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा आदि विभेद हैं। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु, शुक्र—इन ग्रहोंके क्रमसे विंशोत्तरी दशा होती है। सूर्यकी महादशा छः वर्ष, चन्द्रमाकी दस वर्ष, मंगलकी सात वर्ष, राहुकी अठारह वर्ष, बृहस्पतिकी सोलह वर्ष, शनिकी उन्नीस वर्ष, बुधकी सत्रह वर्ष, केतुकी सात वर्ष, तथा शुक्रकी बीस वर्षतक रहती है। इन सबका योग एक सौ बीस वर्ष होता है, इसलिये यह विंशोत्तरी दशा कहलाती है। कृत्तिका नक्षत्रसे प्रारम्भकर पूर्वाफाल्गुनीतक पुनः उत्तराफाल्गुनीसे पूर्वाषाढ़ातक तथा उत्तराषाढ़ासे भरणी नक्षत्रतक क्रमसे नौ ग्रहोंमें आवर्तन करनेसे जन्मके समय किस ग्रहकी दशा चल रही है, इसका ज्ञान हो जाता है। निम्न तालिकासे यह स्पष्ट हो जाता है—

ग्रह	दशावर्ष	नक्षत्र
सू.	६	कृ.,उफा.,उषा.
चं.	१०	रो.,ह.,श्रवण
मं.	७	मृ.,चि.,ध.
रा.	१८	आ.,स्वा.,श.
बृ.	१६	पुन.,वि.,पूभा.
श.	१९	पु.,अनु.,उभा.
बु.	१७	आश्ले.,ज्ये.,रे.
के.	७	म.,मू.,अश्वि.
शु.	२०	पूफा.,पूषा.,भ.

फिर जन्म-समयके इष्टकाल तथा जन्म-नक्षत्रके घटी-पलको देखकर भयात[1] एवं भभोग[2]का ज्ञानकर यह ज्ञात हो जाता है कि जन्मके समय जिस ग्रहकी दशा चल रही थी, वह कितनी बीत गयी है तथा कितनी शेष है, शेष समयमें आगेके ग्रहोंकी दशावर्ष जोड़ते जानेसे आगेकी महादशाका ज्ञान हो जाता है। तदनन्तर विस्तारसे इन दशाओंमें क्या फल होता है, उसका विचार किया गया है। बृहत्पाराशरहोराशास्त्रका यह दशा-विचार-प्रकरण ३४वेंसे ३९वें अध्यायतक—इस प्रकार छः अध्यायोंमें विस्तारसे वर्णित है। यहींपर पूर्वार्ध पूर्ण हो जाता है।

तदनन्तर उत्तरार्धमें अष्टकवर्ग, ग्रहोंके बलाबलका विचार, रश्मिबल तथा उनका फलादेश निरूपित है। आगे द्वादश भावोंके विभिन्न नाम बताये हैं, यथा—प्रथम भावका नाम लग्न, आत्मा, शरीर, होरा, कल्प तथा मूर्ति आदि तदनन्तर विस्तारसे अध्याय ११ से १३ तक आयुसम्बन्धी विभिन्न योगोंका वर्णन है। इसके अनन्तर भाग्य तथा भाग्योदय और जीविकाकी वृत्तिका वर्णन है। तदनन्तर विभिन्न योग और प्रश्नाध्याय निरूपित है। अन्तमें पराशरजी कहते हैं—हे मैत्रेय! यह ज्योतिषशास्त्र वेदांग और वेदका नेत्ररूप है।

१. 'भ' नक्षत्रको कहते हैं। जन्मसमयतक नक्षत्र कितना बीत गया, इसे भयात कहते हैं।

२. जन्मनक्षत्रका कुल मान कितने घटी है, इसे भभोग कहते हैं।

ब्रह्माजीने वेदसे निकालकर इसे गर्गाचार्यजीको बताया और गर्गजीसे मैंने सुना, उसीको मैंने यथावत् आपसे कहा है, जो बुद्धिमान् श्रद्धाविनयसे संयुक्त होकर इस होराशास्त्रको गुरुमुखसे सुनकर और भलीभाँति समझकर इस शास्त्रके अर्थको जानता है, दूसरोंको बताता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और ब्रह्मलोक प्राप्त करता है—'**सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति।**' (पा०हो०उ० २१। ३)

(२-३) लघुपाराशरी-मध्यपाराशरी

आचार्य पराशरजीके होराशास्त्रविषयक दो ग्रन्थ और प्राप्त होते हैं, जो लघुपाराशरी और मध्यपाराशरी नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके नामसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि परिमापमें ये ग्रन्थ बृहत्पाराशरहोराशास्त्रसे छोटे हैं।

लघुपाराशरीका अपर नाम उडुदायप्रदीप भी है। उडुका अर्थ है नक्षत्र और दाय कहते हैं आयुको, इस प्रकार नक्षत्रों (दशाफल)-के आधारपर फलादेश बतानेवाला ग्रन्थ। इस लघु ग्रन्थमें संज्ञाध्याय, फलनिर्णयाध्याय, राजयोगाध्याय, आयुर्दायाध्याय, दशाफलाध्याय तथा मिश्रफलाध्याय नामवाले छः अध्याय हैं और इसकी पूर्ण श्लोकसंख्या ४२ है। विद्वानोंमें यह प्रसिद्धि है कि उडुदायप्रदीप ग्रन्थ यद्यपि संक्षिप्त है, किंतु विषयगत गाम्भीर्य होनेके कारण फलादेश कहनेमें सर्वाधिक प्रामाणिक तथा अत्यन्त विलक्षण है। आचार्य वाराहमिहिर, सत्याचार्य, कल्याणवर्मा आदि आचार्योंके ग्रन्थोंमें भी जो योग नहीं हैं, वे योग महर्षि पराशरके ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं। ग्रहयोगों तथा दशा-अन्तर्दशाओंके फलकथन महर्षि पराशरजीकी ही अपूर्व देन है। यद्यपि यह ग्रन्थ देखनेमें सरल और केवल ४२ श्लोकोंमें उपनिबद्ध है तथापि श्लोकोंका कितना गूढ़ आशय है, यह विद्वज्जन ही जानते हैं। भविष्यज्ञानके लिये इस ग्रन्थका आधार इतर ग्रन्थोंके आधारसे सर्वथा भिन्न है, अन्य जातक-ग्रन्थोंकी तरह 'किस भावका स्वामी किस भावमें बैठकर क्या फल देगा' इत्यादि विचार इसमें नहीं है। इसमें तो ग्रहोंके परस्पर सम्बन्धसे ही ग्रहोंका शुभाशुभत्व एवं योगकारकत्व बताया गया है। अन्य ग्रन्थोंने पूर्णचन्द्र, बुध, गुरु, शुक्रको शुभग्रह तथा शुभफलप्रद माना है और सूर्य, मंगल, शनि, राहु-केतु, पापग्रहयुक्त बुध तथा क्षीण चन्द्रको अशुभ ग्रह एवं अशुभ फलप्रद माना है, परंतु इस ग्रन्थके अनुसार दशाके फलोंके लिये ग्रहोंका शुभाशुभत्व उपर्युक्त नैसर्गिक शुभाशुभत्वपर नहीं, अपितु भावके शुभाशुभत्वपर अवलम्बित है।

मध्यपाराशरी ग्रन्थ भी आकारमें लघु है, यह आठ परिच्छेदोंमें विभक्त है। इसमें कारक, मारक ग्रहोंका विचार करके विंशोत्तरीदशा, अन्तर्दशासे फल-कथनका वर्णन है। आचार्य पराशरजीने विंशोत्तरीदशाका ही फलकथनमें प्राधान्य माना है। अष्टोत्तरी उन्हें ग्राह्य नहीं है—'**दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता।**' (मध्यपारा० ७। १)

(४) वार्ताशास्त्र

महर्षि पराशरविरचित 'कृषिपराशर' ग्रन्थ ज्योतिषके परिप्रेक्ष्यमें मुख्यतः वार्ताशास्त्रका ग्रन्थ है। यह आकारमें लघु है, किंतु है बड़े महत्त्वका। वार्ताका तात्पर्य कृषि-गोरक्षा तथा वाणिज्यवृत्तिसे है। साथ ही इसमें मौसमविज्ञानकी भी बहुत-सी बातें हैं। वार्ताशास्त्र भारतीय अध्ययन-परम्पराका अत्यन्त प्राचीन शास्त्र है। अथर्ववेदमें इसके मूल सूत्र उपलब्ध हैं। गृह्यसूत्रों, मन्वादि स्मृतियों, पुराणों और गीता आदिमें वृत्तिनिरूपणके सन्दर्भमें वार्ताशास्त्रसम्बन्धी अनेक बातें निरूपित हैं। आचार्य वराहमिहिरने बृहत्संहितामें वृष्टि तथा कृषिकर्मका विशेष निरूपण किया है। मनुस्मृतिके १०वें अध्यायमें वार्तावृत्तिके प्रसंगमें यह भी बताया गया है कि यद्यपि कृषिकर्मको लोकमें प्रशस्त वृत्ति बताया गया है तथापि कृषिकर्ममें जुताई आदिमें हलके फाल आदिद्वारा भूमिके अन्दर रहनेवाले जीवोंकी हत्या हो जाती है, अतः यह वृत्ति बहूपकरणसाध्य होनेसे पराधीन और हिंसाबहुल वृत्ति होनेसे उत्तम नहीं है।* किंतु इसके समाधानमें तथा

---

* वैश्यवृत्त्यापि जीवस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा। हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत्॥
कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता। भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम्॥ (मनु० १०। ८३-८४)

इसकी प्रशंसा करते हुए महर्षि पराशरजी कहते हैं—हिंसादोषसे युक्त होनेपर भी कृषिकर्म त्याज्य नहीं है, कृषिकार्यमें जुताई आदिमें जो जमीनमें रहनेवाले जीव हैं, उनका मृत्युजन्य जो दोष है, वह कृषिकर्मद्वारा प्राप्त अन्नके द्वारा अतिथि-पूजन करनेसे समाप्त हो जाता है—इसलिये कृषिकर्म धर्म है, पवित्र है, कृषि ही प्राणियोंका जीवन है—

कृषिर्धन्या कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः।
हिंसादिदोषयुक्तोऽपि मुच्यतेऽतिथिपूजनात्॥

(कृषिपाराशर १।८)

इसी बातको प्रकारान्तरसे मनुस्मृतिमें भी बताया गया है कि गृहस्थको गृहस्थाश्रमधर्मके निर्वाहमें यद्यपि पाँच वधके स्थानोंका प्रयोग करनेसे पातक प्राप्त होता है, यथा—चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली-मूसल और जलका घट—इनसे सम्बद्ध क्रियाओंमें जीवहिंसा होती है, अतः इस पंचसूनाजन्य दोषके निवारणके लिये उसे पंचमहायज्ञों—ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, दैवयज्ञ, बलिवैश्वदेव तथा अतिथियज्ञका नित्य पालन करना चाहिये। इन पंचमहायज्ञोंको नित्य करनेवाला व्यक्ति गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी पंचसूनाके दोषोंसे युक्त नहीं होता—

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते॥

(मनु० ३।७१)

ऊपरमें महर्षि पराशरजीने कृषिकर्मकी दोषनिवृत्तिके लिये जो अतिथि-पूजनका संकेत किया है, वह गृहस्थके पंचमहायज्ञोंका ही उपलक्षण है। अन्न प्राणियोंका जीवनाधार—प्राणाधार है। औपनिषद श्रुतिमें प्राणको अन्न बताया गया है और शरीर प्राण (अन्न)-के आधारपर ही प्रतिष्ठित है, इसलिये अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। साथ ही पृथिवीको ही अन्न (का आधार) बताया गया है, अन्नको बढ़ानेका परामर्श दिया गया है—

अन्नं न निन्द्यात्। प्राणो वा अन्नम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्। अन्नं बहु कुर्वीत। पृथिवी वा अन्नम्। (तैत्तिरीय० ३।७।१, ३।९।१)

पराशरजी बताते हैं कि सत्ययुगमें प्राण अस्थिगत, त्रेतामें मांसगत, द्वापरमें रुधिरगत होते हैं, किंतु कलियुगमें अन्नके आधारपर ही प्राण स्थित रहते हैं, अन्न न मिलनेपर प्राणियोंका जीवन रह नहीं सकता—

कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांससंस्थिताः।
द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः॥

(पराशरस्मृति १।३०)

अन्न ही प्राण, अन्न ही बल तथा अन्न ही समस्त प्रयोजनोंका साधन है। देव, असुर, मनुष्य सभी अन्नके उपजीवी होते हैं। यह अन्न धान्यसे ही उत्पन्न होता है और धान्य कृषिके बिना प्राप्त नहीं हो सकता, अतः प्रयत्नपूर्वक कृषिकर्म करना चाहिये—

अन्नं प्राणा बलं चान्नमन्नं सर्वार्थसाधनम्।
देवासुरमनुष्याश्च सर्वे चान्नोपजीविनः॥
अन्नं हि धान्यसञ्जातं धान्यं कृष्या विना न च।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्नेन कारयेत्॥

(कृषिपाराशर १।६-७)

आगे पराशरजी बताते हैं कि कृषिकर्मका मूल वृष्टिपर ही निर्भर है, यह वृष्टि जीवनका भी मूल है, अतः सर्वप्रथम वृष्टिका ज्ञान करना चाहिये—

वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्॥

(कृषिपाराशर २।१)

तदनन्तर पराशरजीने ज्योतिषके आधारपर संवत्सरके राजा-मन्त्री आदिके ज्ञानके द्वारा वृष्टिज्ञानके तथा मेघोंके स्वरूपद्वारा वृष्टिज्ञानके उपायोंका वर्णन किया है और आवर्त, संवर्त, पुष्कर तथा द्रोण नामक चार मेघ एवं उनके लक्षण तथा उनसे होनेवाली चैत्रादि बारह मासोंमें वृष्टि (अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि)-का वर्णन किया है। आगे पराशरजीने सद्योवृष्टिके लक्षणोंको बताते हुए कहा है कि यदि चींटियाँ अण्डा लेकर निकलें, अचानक मेढक बोलने लगें, विडाल, नेवले, सर्प एवं बिलोंमें रहनेवाले दूसरे प्राणी तथा शलभ मतवाले होकर दौड़ने लगें, मार्गमें बच्चे धूलिसे सेतुबन्धन करें,

मयूर नृत्य करने लगें, चोट एवं वातसे पीड़ित मनुष्योंके शरीरमें पीड़ा होने लगे, सर्प वृक्षपर चढ़ने लगें तो ये शीघ्र ही वर्षा होनेके लक्षण हैं—**सद्यो वृष्टिर्भवेद्ध्रुवम्** (कृषिपाराशर २।५६—६१)।

ऐसे ही मंगल एवं शनि आदि ग्रहोंके एक राशिसे दूसरी राशिपर जानेके समयपर भी वृष्टि होती है। तदनन्तर उन्होंने ग्रहों तथा नक्षत्रोंके योगसे अनावृष्टिके लक्षण भी दिये हैं।

कृषिपाराशर ग्रन्थके तृतीय अन्तिम कृषिखण्डमें कृषिपुराणज्ञ पराशरजीने कृषिके सम्बन्धमें बताया है कि कृषिकर्म, गायें, व्यापारिक ज्ञान, स्त्रियाँ एवं राजकुल—ये निरन्तर देखभाल करते रहनेपर ही सफल होते हैं। थोड़ी देरके लिये भी इनकी उपेक्षा या अवहेलना कर दी जाय तो ये कष्टप्रद हो जाते हैं—

कृषिर्गावो वणिग्विद्याः स्त्रियो राजकुलानि च।
क्षणेनैकेन सीदन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्॥

(कृषिपाराशर ३।३)

कृषिकर्म तथा धान्यका वहन करनेवाले एवं कर्षणकर्म करनेवाले बैलों तथा गोशाला आदि बातोंके विषयमें पराशरजी बताते हैं कि खेती इस प्रकार करनी चाहिये, जिससे वाहक पशु (बैल आदि)-को पीड़ा न हो, वाहकोंकी पीड़ासे प्राप्त किया गया अनाज सभी कर्मोंमें निषिद्ध है। इसके साथ ही पराशरजी कहते हैं कि जहाँ बैलोंको या गौओंको रखा जाता है, वह गोशाला पवित्र, सुदृढ़ एवं गोमय आदिसे रहित स्वच्छ होनी चाहिये। बैल गोबर और गोमूत्रमें लिपटे न हों, गोशालामें झाड़ू, मूसल, उच्छिष्ट (जूठन) रखनेसे गायोंका विनाश होता है। गायोंके स्थानमें दीपक जलाना चाहिये।

कृषिकर्म (जुताई)-में प्रयुक्त होनेवाले एक हलमें आठ बैलोंको जोतना चाहिये। यह धर्मका हल है, जीविकारूपसे एक हलमें छः बैल रखे जा सकते हैं। जो निर्दयी होते हैं, वे एक हलमें चार बैल जोतते हैं, किंतु अत्यन्त क्रूर तो एक हलके लिये दो बैल जोतते हैं, वे गोहत्यारेके समान हैं—

हलमष्टगवं प्रोक्तं षड्गवं व्यावहारिकम्।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं तु गवाशिनाम्॥

(कृषिपाराशर ३।१८)

अधिक बैल रहनेसे जुताईमें (हलको खींचनेमें) बैलोंपर अधिक बोझ न पड़े और उन्हें कष्ट न हो, इस आशयसे ऐसा कहा गया है।

इसी बातको उन्होंने अपनी स्मृति (पराशरधर्मशास्त्र)-में भी बताया है (पराशरस्मृति २।८-९) और उसी प्रकरणमें आगे कहा है कि दो बैलोंवाले हलसे एक प्रहरतक अर्थात् सूर्योदयसे लगभग तीन घण्टेतक, चार बैलोंवाले हलसे मध्याह्नतक, छः बैलोंवाले हलसे तीन प्रहरतक और आठ बैलोंवाले हलसे सायंकालतक जुताई की जा सकती है। (पराशरस्मृति २।१०)

खलयज्ञ

पराशरजी बताते हैं कि वृक्षोंको काटने, पृथ्वीको जोतने, गोड़ने तथा इन कर्मोंके सम्बन्धसे कृमि-कीट आदि अनेक जीव मर जाते हैं, इन पापोंसे मुक्त होनेके निमित्त खेती करनेवालेको खलयज्ञ करना चाहिये—

वृक्षं छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान्।
कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(पराशरस्मृति २।१५)

खलयज्ञके सम्बन्धमें पराशरजीने संकेतमें बताया है कि यह यज्ञ खेती कटनेके बाद अन्नकी राशिसे खलिहानमें ही किया जाता है और इसमें विशेष रूपसे कृषिद्वारा प्राप्त अन्नकी राशिमेंसे सर्वप्रथम सुपात्र ब्राह्मणोंको अन्न-दान करे, राजाको खेतीका छठा भाग दे तथा देवताओंके निमित्त प्रदान करे, साथ ही कृषि-कार्यमें सहायक सेवकों तथा याचकोंको अन्न देकर शेष अन्न घरमें लाना चाहिये। ऐसा करनेसे वह कृषिकर्म-जन्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है—**'सर्वपापैः प्रमुच्यते'** और उसका वह अन्न हविष्यरूप हो जाता है। (पराशरस्मृति २।१८)।

आचार्य पारस्करने अपने गृह्यसूत्रके द्वितीय काण्डके

अन्तमें सीतायज्ञ नामसे जिस कृषिकर्मका वर्णन किया है, वह भूमि जोतनेके सम्बन्धमें है, इसे लांगलकर्म कहा गया है। हलको लांगल भी कहते हैं।

पराशरजीने आगे प्रतिवर्ष गोपर्व तथा गोयात्रा-महोत्सव मनानेकी विधि बतायी है और इसके प्रयोजनमें वे बताते हैं कि इससे गोवंशके समस्त विघ्नोंका विनाश होता है और वह समस्त व्याधियोंसे मुक्त तथा स्वस्थ रहता है—**'नानाव्याधिविनिर्मुक्ता वर्षमेकं न संशयः'** (कृषिपराशर ३। २६)। कार्तिकमासमें गायों तथा बैलोंका शृंगार करके तेल और हल्दीसे उनका पूजन करना चाहिये तथा बड़े महोत्सवके साथ गाजे-बाजेके साथ गौका जुलूस गाँवोंमें घुमाना चाहिये। गोयात्रा तथा गौओंके इधर-उधर ले जाने-सम्बन्धी नक्षत्रोंके शुभ योग भी पराशरजीने बताये हैं। तदनन्तर हलनिर्माणकी प्रक्रिया तथा श्रेष्ठ हलके लक्षण तथा हल जोतनेके मुहूर्तोंका विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। हल जोतनेसे पूर्व इन्द्रदेव, मेघों तथा पृथ्वीकी स्तुतिका भी विधान किया है। खेतमें बोनेवाले बीजोंका रक्षण, संरक्षण एवं रखरखाव कैसे करना चाहिये, खेतमें बीज कब बोना चाहिये तथा धान्यछेदन और कणमर्दन कब करना चाहिये आदिके विषयमें भी महत्त्वपूर्ण बातें एवं उनका मुहूर्त इसमें बताया गया है।

लोमशसंहिताके उद्भावक महर्षि लोमश और उनका उदात्त चरित

अतिशय दीर्घजीवी ऋषियोंमें महर्षि लोमशजीका नाम सबसे पहले लिया जाता है। ये सनकादि तथा वसिष्ठ आदि ऋषियोंसे भी अवस्थामें बड़े हैं। इनके जीवनमें न जाने कितने ब्रह्मा बीत चुके हैं। इसीलिये ये चिरजीवी कहलाते हैं। इनके पूरे शरीरमें लोम—रोम-ही-रोम हैं, इसीलिये ये लोमशके नामसे प्रसिद्ध हैं। कल्पान्तमें जब ब्रह्माजीका लय होता है, तब इनका एक रोम (लोम) गिर जाता है। इनको इतना दीर्घजीवन कैसे प्राप्त हुआ तथा इन्हें कालज्ञान आदिकी विद्याएँ कैसे प्राप्त हुईं—इस सम्बन्धमें ब्रह्मवैवर्तपुराणमें एक रोचक आख्यान प्राप्त होता है, उसका सारभाग यहाँ प्रस्तुत है—

एक बारकी बात है, देवराज इन्द्रको सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे अपने पदका अभिमान हो आया था। उन्होंने अपने ऐश्वर्यके प्रदर्शनके लिये एक विशाल प्रासाद (भवन)-के निर्माणका संकल्प लिया। इसके निर्माणके लिये उन्होंने देवशिल्पी विश्वकर्माको नियुक्त किया। सौ वर्षसे भी अधिकका समय व्यतीत हो गया, किंतु वह पूरा नहीं हुआ था, उन्हीं दिनोंकी बात है, एक मुनीश्वर वहाँ उपस्थित हुए, जो ज्ञान तथा अवस्थामें सबसे बड़े थे, उनका शरीर अत्यन्त वृद्ध था। वे महान् योगी थे। वे कटिदेशमें मृगचर्म, मस्तकपर जटाभार, ललाटमें उज्ज्वल तिलक, वक्षःस्थलमें रोमचक्र तथा सिरपर चटाई धारण किये हुए थे।*

देवराज इन्द्रने मुनिवरका मधुपर्क आदिसे स्वागत किया। महर्षिका ऐसा अद्भुत स्वरूप देखकर इन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने पूछा—मुनिवर! आपका आगमन कहाँसे हुआ है और आपका नाम क्या है? यहाँ आनेका उद्देश्य क्या है? आप कहाँके रहनेवाले हैं तथा आपने मस्तकपर चटाई किसलिये धारण कर रखी है? मुने! आपके वक्षःस्थलपर यह विशाल रोमचक्र क्या है तथा यह बीचमें कुछ खाली भी दिखायी पड़ रहा है, कृपया मुझे सब बतानेकी कृपा करें।

लोमशमुनि इन्द्रके अभिमानको दूर करनेके लिये कहने लगे—हे इन्द्र! मेरी बात ध्यानसे सुनो, मैं इस सबका रहस्य बताता हूँ। देवराज! आयु बहुत थोड़ी होनेके कारण मैंने कहीं भी रहनेके लिये घर नहीं बनाया है, विवाह भी नहीं किया है और जीविकाका साधन भी नहीं जुटाया है, मैं भिक्षासे ही निर्वाह करता हूँ। मेरा नाम लोमश है। मेरे सिरपर जो चटाई है, वह वर्षा और

* अतिवृद्धो महायोगी ज्ञानेन वयसा महान्॥
कृष्णाजिनी जटाधारी बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्। वक्षःस्थले रोमचक्रं बिभर्ति मस्तके कटम्॥ (ब्र०वै०पु० ४। ४७। १३३-१३४)

धूपका निवारण करनेके लिये है। मेरे वक्षःस्थलपर जो रोमचक्र तुम्हें दिखायी दे रहा है, वह मेरी आयुकी संख्याका प्रमाण है। जब एक इन्द्रका समय समाप्त होता है, तब मेरे इस रोमचक्रसे एक रोम कम हो जाता

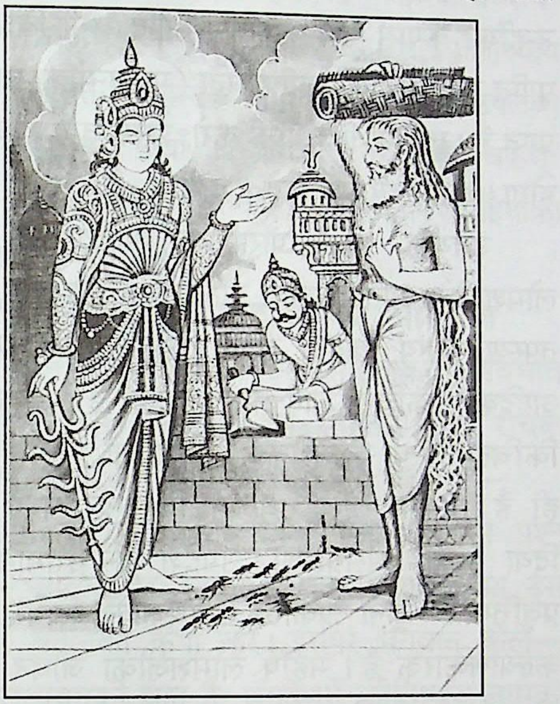

है। इसी कारण बीचमें कुछ स्थान खाली हो गया है।

असंख्य ब्रह्मा मेरे देखते-देखते विलीन हो गये हैं और आगे विलीन होंगे। फिर इस छोटी-सी आयुके लिये स्त्री-पुत्र और घरकी क्या आवश्यकता है? अतः मैंने इन सबका संग्रह नहीं किया। मैं तो निरन्तर श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें ध्यान लगाये रखता हूँ। हे इन्द्र! हरिका दास्य भाव अत्यन्त दुर्लभ है। भक्तिका गौरव मुक्तिसे भी बढ़कर है। सारा ऐश्वर्य स्वप्नके समान मिथ्या है और भगवान्‌की भक्तिमें विघ्न डालनेवाला है।[१]

देवेन्द्र! यह भूत, भविष्यका सारा ज्ञान मेरे गुरु भगवान् शंकरने मुझे दिया है और शास्त्रोंका उपदेश भी मुझे प्रदान किया है—ऐसा कहकर वे मुनि लोमश भगवान् शंकरके पास चले गये।

लोमशजीकी विलक्षण चर्या और विलक्षण स्वरूप तथा उपदेश सुनकर इन्द्रको बड़ा आनन्द हुआ। उनका विवेक जाग्रत् हो उठा, तृष्णा और ऐश्वर्यका मोह छोड़कर वे भगवान्‌के शरणागत हो गये और उनका ऐश्वर्यसम्बन्धी सारा मद जाता रहा।

स्कन्दपुराण[२]में प्राप्त लोमशोपाख्यान

प्राचीनकालमें इस पृथ्वीपर इन्द्रद्युम्न नामके एक राजा थे, वे बड़े ज्ञानी, धर्मात्मा तथा पराक्रमी थे। अपने पुण्योंके प्रभावसे वे बहुत समयतक ब्रह्माजीके लोकमें रहे और क्षीणपुण्य हो जानेपर उन्हें इस भूलोकमें आना पड़ा, इससे उनके मनमें बड़ी ग्लानि हुई, अब वे ऐसे गुरुकी खोजमें लगे, जो उन्हें सदाके लिये इस संसार-सागरसे पार उतार दे।

उन्हें ज्ञात हुआ कि इस समय कलापग्राममें लोमश नामके एक महामुनि रहते हैं, जो अत्यन्त दीर्घजीवी हैं, इन्द्रद्युम्न वहाँ गये और उन्होंने देखा कि एक महान् तेजसे सम्पन्न महात्मा ध्यान लगाकर बैठे हैं, उनकी जटाएँ पीले वर्ण की हैं, उन्होंने छाया करनेके लिये अपने बायें हाथमें एक मुट्ठी तृण ले रखा है और वे दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला धारण किये हैं। इन्द्रद्युम्नने पास जाकर तपोनिधिके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका विचित्र स्वरूप देखकर प्रश्न किया। भगवन्! इस समय तीव्र गरमी पड़ रही है, सूर्यदेव आकाशके मध्यभागमें आकर तप रहे हैं तो भी आपने अपने लिये कुटी क्यों नहीं बनायी, आपने अपने हाथमें जो तिनके लिये हैं, उन्हींसे आप मस्तकपर छाया किये हैं, इसमें क्या कारण है?

इसपर लोमशजी बोले—राजन्! एक दिन सभीको मरना अवश्य है, यह शरीर गिर जायगा, फिर इस अनित्य संसारमें रहनेवाले मनुष्योंद्वारा किसके लिये घर बनाया जाता है? दाँत चले जाते हैं, लक्ष्मी चली जाती है तथा यौवन और जीवन भी चला जानेवाला है। यह जो कुछ भी दिखायी देता है, वह सब अत्यन्त चंचल और क्षणभंगुर है, ऐसी अवस्थामें संग्रह करनेसे क्या लाभ है? इस संसारको असार और चलायमान जान

१. दुर्लभं श्रीहरेर्दास्यं भक्तिर्मुक्तेर्गरीयसी। स्वप्नवत् सर्वमैश्वर्यं तद्भक्तिव्यवधायकम्॥ (ब्र०वै०पु० ४।४७।१५०)

२. स्कन्दपुराणके अधिकांश भागके उपदेष्टाके रूपमें महर्षि लोमशजीकी प्रसिद्धि है, इसे उन्होंने नैमिषारण्यमें शौनकादि महर्षियोंको सुनाया था।

लेनेपर किसके लिये कुटी आदिका संग्रह किया जाय?

इन्द्रद्युम्नने फिर पूछा—भगवन्! तीनों लोकोंमें आप ही चिरायु सुने जाते हैं, आप भूत-भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालोंकी बातको जाननेवाले हैं, इसीलिये मैं आपके पास आया हूँ, फिर आप ऐसी बातें क्यों बोलते हैं?

लोमशजी बोले—राजन्! प्रत्येक कल्पमें मेरे शरीरसे एक रोम टूटकर गिर जाता है, जिस दिन मेरे सब रोएँ नष्ट हो जायँगे, उस दिन मेरी मृत्यु हो जायगी। देखो, मेरे घुटनेमें दो अंगुलका स्थान रोमोंसे खाली हो गया है, इसीसे मैं डरता हूँ कि जब मरना ही है तो घर बनाकर क्या होगा?

इन्द्रद्युम्नने फिर पूछा—भगवन्! आपको जो इतनी दीर्घ आयु प्राप्त हुई है और आप अपनी विद्यासे

जीवोंकी गति जानते हैं, इसका क्या रहस्य है?

लोमशजी बोले—हे अनघ! पूर्वजन्ममें मेरी की गयी स्वल्प शिवपूजासे प्रत्यक्ष प्रकट होकर भगवान् चन्द्रशेखरने मुझे साक्षात् दर्शन दिये, मैंने उनसे अजर-अमर होनेका वर माँगा। तब प्रभु मुझसे बोले—देखो, जो नाम-रूप धारण करता है, वह सर्वथा अजर-अमर नहीं हो सकता, तुम अपने दीर्घ जीवनकी कोई सीमा निश्चित करो। भगवान्‌का वचन सुनकर मैंने वर माँगा कि प्रत्येक कल्पके अन्तमें मेरे शरीरका एक रोम गिरे और इस प्रकार सब रोम गिर जानेपर मेरी मृत्यु हो, उसके बाद मैं आपका गण हो जाऊँ। भगवान् शिव 'तथास्तु' कहकर अदृश्य हो गये। राजन्! तभीसे मैं भगवान् शिवकी आराधना किया करता हूँ, उन्हींकी कृपासे मुझे कालज्ञान आदि सभी विद्याओंकी प्राप्ति हुई और मुझे जातिस्मरता (पूर्वजन्मोंका ज्ञान) भी प्राप्त है। तुम भी शिवभक्ति करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा। (स्कन्दपुराण माहे० कुमा०, अ० १०)

उपर्युक्त दोनों पौराणिक आख्यानोंसे महर्षि लोमशजीके अतिदीर्घजीवी होने, उनके कालज्ञान, त्याग, तपस्या, वैराग्य, तितिक्षा, संयम, नियम एवं सदाचारप्रियता आदिका किंचित् ज्ञान प्राप्त होता है। कथानकोंमें किंचित् अन्तर कल्पभेदसे होनेपर भी तात्पर्यार्थ एक ही है। देवराज इन्द्र तथा राजर्षि इन्द्रद्युम्नको उनका दिया गया असंग्रहका उपदेश निवृत्तिमार्ग तथा प्रवृत्तिमार्ग—दोनों प्रकारके साधकोंके लिये अत्यन्त कल्याणकारक है। महर्षि लोमशजीका जीवन कितना दीर्घ है तथापि वे उसे एक क्षणका मानकर किंचित् भी संग्रह नहीं करते और परम आश्चर्य मानते हैं कि जीव, जिसका जीवन तो वास्तवमें क्षणिक है, वह अल्प आयुवाला है, फिर भी संग्रहके लिये कितना व्याकुल रहता है। दूसरी बात यह है कि लोमशजी भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं, उनकी कृपासे उन्हें सभी विद्याओं तथा ज्ञानकी प्राप्ति है। इस दृष्टिसे उनका ज्योतिषविषयक उपदेश अत्यन्त सूक्ष्म और सत्यमार्गपर आश्रित है।

प्राचीन संहिताओंमें ज्योतिषके अठारह आचार्य बताये गये हैं, जो आर्ष कहे गये हैं। उनमें श्रीलोमशजीका नाम बड़े ही आदरसे लिया गया है तथा उनके नामसे लोमशसंहिताका भी उल्लेख सर्वत्र प्राप्त है। लोमशसंहिता ज्योतिषके होरास्कन्ध (फलित ज्योतिष)-से सम्बद्ध है। दैवज्ञोंकी यह मान्यता है कि लोमशजीका ग्रहगणितीय फलादेश-कथन बहुत ही सटीक, वैज्ञानिक तथा स्वयं अनुभव करनेयोग्य है।

वर्तमानमें लोमशसंहिता सम्पूर्णरूपमें प्राप्त नहीं

होती। बारह अध्यायोंवाली उपलब्ध लोमशसंहिताकी पुष्पिकाओं*से ज्ञात होता है कि मूल लोमशसंहितामें साठ हजार श्लोक थे। इस लोमशसंहिताके दो अध्याय स्वतन्त्ररूपसे भी प्रकाशित हैं। जो 'भावफलाध्याय' तथा 'धराचक्रम्' के नामसे प्रसिद्ध हैं। भावफलाध्याय नामसे प्रकाशित लघुपुस्तिका बारह अध्यायोंवाली उपलब्ध लोमशसंहिताका नौवाँ अध्याय है तथा 'धराचक्रम्' नामसे प्रकाशित लघु पुस्तिका उपलब्ध लोमशसंहिताका बारहवाँ अध्याय है।

लोमशसंहिताके प्रादुर्भावका आख्यान

शिव-पार्वतीसंवादरूप इस संहिताका आविर्भाव क्यों हुआ, इस सम्बन्धमें इस संहितामें एक रोचक आख्यान आया है, जिसका सार इस प्रकार है—

एक बार माता पार्वतीने भगवान् शंकरसे प्रश्न किया—भगवन्! इस संहिताका प्राकट्य क्यों हुआ, इस विषयमें बतानेकी कृपा करें। इसपर भगवान् बोले—देवि! सत्ययुगकी बात है, बंगदेशमें कीर्तिध्वज नामका एक राजा हुआ, जो धर्मज्ञ, सत्यवक्ता तथा महान् पराक्रमी था। उसके राज्यमें प्रजा सब प्रकारसे सुखी थी। उसकी दो पत्नियाँ थीं, जो अत्यन्त सदाचारसम्पन्न तथा पतिभक्तिपरायणा थीं। ज्येष्ठ पत्नीका नाम कमला था तथा कनिष्ठाका नाम था किरणा। ज्येष्ठ पत्नी कमलाके यमल (जुड़वाँ) पुत्र उत्पन्न हुए। एक समयमें, एक वर्षमें, एक मास, एक पक्ष, एक तिथि, एक वार तथा समानकालमें जन्म होनेपर भी दोनों पुत्रोंके स्वभाव और आचरणमें पर्याप्त भिन्नता थी। एक साँवला था तो दूसरा गौरवर्ण, एक कृशकाय था तो दूसरा स्थूल शरीर, एक आकृतिमें ह्रस्व था तो दूसरा दीर्घ, एक गुणवान्, धर्मात्मा तथा सत्यवादी था तो दूसरा पापी, क्रोधी, पिशुन तथा असत्यवादी।

अपने पुत्रोंकी स्थिति देखकर राजाको महान् आश्चर्य हुआ कि एक समय जन्म लेनेपर भी यह अन्तर क्यों? राजा बड़े विचारमें पड़ गया, अत्यन्त चिन्तित भी हो गया। राजाने ईश्वरकी मायाकी ऐसी विचित्र गतिका समाधान अनेक ग्रन्थोंमें ढूँढ़ा, किंतु उन्हें कहीं भी मनस्तोष नहीं हुआ। संयोगसे उसी समय वसिष्ठ, गर्ग, कश्यप, शौनक, नारद, व्यास, अत्रि, पराशर आदि ऋषियोंका समूह वहाँ उपस्थित हुआ। राजाने सबका अर्घ्य-पाद्यादिसे स्वागत-सत्कार किया और उन्हें श्रेष्ठ आसन प्रदान किया। उन सबके आसनासीन हो जानेपर राजाने अपनी चिन्ता उनसे निवेदित की। तब ऋषियोंने विचार करके राजासे कहा—राजन्! आपके पुरोहित सुमति जो भृगुगोत्रीय हैं, वे महाज्ञानी हैं, वे ब्रह्माजीके वरदानसे इक्कीस जन्मान्तरोंके फलको जाननेवाले हैं, वे आपका समुचित समाधान करेंगे। ऐसा कहकर वे ऋषि चले गये।

तब राजा कीर्तिध्वजने शीघ्र ही दूतोंको अंगदेश भेजा, किंतु वहाँ सुमति नहीं मिले। उनके पुत्र सुजन्मा (सुतजन्मा)-ने बताया कि पिताजी गंगासागरकी तीर्थयात्रामें गये थे और वहाँ उनकी मृत्यु हो गयी। तब दूतोंके कहनेपर सुतजन्माको साथ लेकर दूत राजाके पास वापस आ गये। राजाने उन्हें अपने जुड़वाँ पुत्रोंकी जन्मपत्री दिखायी। इसपर सुतजन्माने लज्जित होकर कहा—राजन्! मुझे व्याकरण आदि शास्त्रोंका तो ज्ञान है,किंतु ज्योतिषशास्त्रकी जानकारी नहीं है। इसपर राजाको बड़ा दुःख हुआ, क्रोध भी आया कि ब्राह्मण होकर भी जो ज्योतिष नहीं जानता, उसका जन्म लेना व्यर्थ है। यह ज्योतिषशास्त्र साक्षात् धर्मका कारण है, व्रतोंका सूचक है, संक्रान्ति, पर्व तथा अन्य कालों तथा ग्रह-नक्षत्र-मण्डलका सूचक है। मुक्तिकी इच्छा रखनेवालोंके लिये यह साधन है, धर्मका साधक है। यह ब्रह्मा एवं रुद्रके मुखसे निःसृत है तथा सम्पूर्ण देवता इसका आश्रय ग्रहण करते हैं। यह भूत-भविष्य एवं वर्तमान सबका प्रदर्शक शास्त्र है, यह सिद्धि देनेवाला तथा मोक्षका भी कारण है—

* 'इति श्रीलोमशसंहितायां षष्टिसाहस्र्यां श्रीशिवपार्वतीसंवादे ····अध्यायः।'

भूतं चैव भविष्यं च वर्तमानं तथैव च।
सर्वप्रदर्शकं शास्त्रं सिद्धिदं मोक्षकारणम्॥

(लो०सं० ४।२८)

राजाके इन वचनोंको सुनकर ब्राह्मण सुजन्माको बड़ा क्षोभ हुआ, उसी समय वे वहाँसे ज्योतिषका ज्ञान प्राप्त करने निकल पड़े। उन्हें ज्ञात हुआ कि बदरिकाश्रममें महात्मा लोमशजी विद्यमान हैं, वे सभी बातोंके ज्ञाता हैं, महान् दैवज्ञ हैं, ज्योतिषशास्त्रमें पारंगत हैं, अतः वे बदरिकाश्रममें श्रीलोमशजीके पास पहुँचे और अपना परिचय देते हुए जो-जो भी घटित हुआ था, वह सब वृत्तान्त उन्हें निवेदित किया और कहा—प्रभो! मैं आपकी शरणमें आया हूँ और ज्योतिषका उपदेश देनेके लिये प्रार्थना की। सुजन्माके विनय एवं शीलको देखकर महर्षि लोमश बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले—वत्स! एक महीने प्रतीक्षा करो; क्योंकि माघमासके शुक्लपक्षकी पंचमी तिथि रेवती नक्षत्र तथा गुरुवारसे युक्त है, वह विद्याध्ययनका अत्यन्त शुभमुहूर्त है। यह सुनकर सुजन्मा अत्यन्त हर्षित हुए, वे संयम-नियमपूर्वक एक मास बदरिकाश्रममें गुरुकी सेवामें निरत रहे। एक मास पूर्ण होनेपर सुजन्माद्वारा प्रार्थित होनेपर महर्षि लोमशने उन्हें ज्योतिषशास्त्रका उपदेश दिया और लोमशऋषिद्वारा सुजन्माको प्राप्त हुआ उपदेश ही लोमशसंहिताके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

लोमशसंहिताका परिचय

उपलब्ध लोमशसंहिताके बारह अध्यायोंका संक्षेपमें विवेचन इस प्रकार है—

'परमरहस्यकथन' नामक प्रथम अध्यायमें २९ श्लोक हैं। इसमें शिव-पार्वती-संवादरूपमें कर्ममीमांसा, रामनामकी महिमा वर्णित है। द्वितीय अध्यायके प्रारम्भमें ही पार्वतीजीका प्रश्न है कि पूर्वजन्मके कर्मोंका ज्ञान विद्वान् कैसे कर लेते हैं, इसपर शिवने कहा—हे देवि! ग्रह, राशि, नवांश आदिके बलाबलको देखकर दैवज्ञ पूर्वजन्मका ज्ञान कर लेते हैं। कर्मके ज्ञाता तथा रक्षक नारायण हैं, कर्मशास्त्रका वक्ता मैं स्वयं तथा इसके कर्ता लोमशमुनि हैं। उन लोमश मुनिसे भृगु, वसिष्ठ, नारद आदि ऋषियोंने जाना। सर्वप्रथम ब्रह्माजीके पुत्र लोमशने इस ज्योतिषशास्त्रको प्रकट किया—**'आद्ये प्रकटिते ह्येष लोमशो द्रुहिणा-त्मजः॥'** (लो०सं० २।१२) लोमशजीने इसे सुमतिके पुत्र सुतजन्मा (सुजन्मा)-को पढ़ाया। सुतजन्मासे आगे क्रमशः च्यवन, जैगीषव्य, शक्ति, पराशर, वाजवैप, बृहस्पति, भारद्वाज, माण्डव्य तथा गर्ग आदि ऋषियोंने प्राप्त किया।

तीसरे, चौथे एवं पाँचवें अध्यायमें इस शास्त्रके आविर्भावकी कथा है, जो पूर्वमें वर्णित की गयी है। पाँचवें अध्यायमें ही लोमशजीने बताया कि हे सुजन्मा! राम, कृष्ण, नृसिंह तथा वराहावतार—ये भगवान्के पूर्णावतार हैं। अन्य अवतार जीवांशयुक्त हैं। भगवान्के अनेक अवतार हुए हैं। जीवोंके कर्मोंका फल देनेवाले भगवान् जनार्दन ही ग्रहरूपमें स्थित हैं—**'जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः'** (लो०सं० ५।४१)। सूर्यका रामावतार, चन्द्रमाका कृष्णावतार, मंगलका नृसिंहावतार, बुधका बुद्धावतार, बृहस्पतिका वामनावतार, शुक्रका परशुरामावतार, शनिका कूर्मावतार, राहुका वराहावतार तथा केतुका मीनावतार है। (लो०सं० ५।४३—४५)

यहाँतक पाँचवें अध्यायमें बतानेके बाद लोमशजीने छठे अध्यायसे जातक (होरा)-स्कन्धका वर्णन किया है। सर्वप्रथम मेषादि द्वादश राशियोंको बताकर कालात्मा पुरुषके शरीरके अंगोंमें इन द्वादश राशियोंका निवास बताया है। तत्पश्चात् राशियोंका स्वरूप, उनके षोडश वर्ग (क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण आदि), विविध योग, ग्रहोंका स्वरूप, भावोंका विवेचन तथा भावोंसे विचारणीय विषयोंका वर्णन किया है। इस छठे अध्यायमें १२४ श्लोक हैं।

सातवें अध्यायमें विंशोपक बल, गुलिक, लग्नशोधन, वियोनिजन्मज्ञान तथा आयुर्दायपर विचार है।

आठवें अध्यायमें ३६ श्लोक हैं। विशेषरूपसे ग्रहोंके आधारपर आयुर्दाय निकालनेकी विधि, पशु-

पक्षियोंकी आयुका निर्धारण, जातकके शरीरके चिह्नों तथा अन्ध, वामन, कुष्ठ आदि योगोंका वर्णन है।

लोमशसंहिताका भावफलाध्याय नामक नौवाँ अध्याय

लोमशसंहिताका यह अध्याय विशेष महत्त्वका होनेसे स्वतन्त्ररूपसे भी प्रकाशित है। इसके प्रारम्भमें कुछ श्लोकोंमें जातकके पिता आदिका ज्ञान करानेके अनन्तर कुण्डलीके बारह भावोंके स्वामियोंकी स्थितिसे फलादेशका विचार किया गया है। संक्षेपमें कुछ बातें दी जा रही हैं—

जन्मकुण्डलीमें तनु, धन आदि नामवाले बारह भाव (स्थान) होते हैं। इसमें सबसे ऊपरका स्थान लग्न या प्रथम भाव कहलाता है। लग्नभावमें जो राशि होती है, उसी राशिवाला वह भाव कहलाता है। उदाहरणके लिये जातकके जन्म-समयमें लग्नमें यदि मेष राशि हो तो प्रथम राशि होनेसे इसे मेषराशिका उदय कहा जायगा और प्रथम राशि होनेसे यहाँपर एकका अंक लिखा जायगा, आगे बाँयी ओरसे क्रमसे २ से १२ तकके अंक लिखे जायँगे। यदि किसीके जन्मसमयमें मिथुन लग्न है तो प्रथम भावमें तीनका अंक लिखा जायगा, कर्कलग्न है तो चारका अंक लिखा जायगा। यहाँ यह ध्यान देनेकी बात है कि भावोंका क्रम तो निश्चित है, किंतु लग्नराशि समयानुसार बदल जायगी। इस प्रकार कुण्डलीके बारह भाव होते हैं, इन बारह भावोंसे इस जीवनके, अगले जीवनके तथा पिछले जन्मकी सभी बातोंका विचार होता है। प्रत्येक भावकी राशिका स्वामी भावेश कहलाता है। ज्योतिषमें मेषसे लेकर मीनतक बारह राशियाँ और सूर्यादि नौ ग्रह हैं। राशिके स्वामी ग्रह होते हैं। जैसे मेष और वृश्चिकका स्वामी मंगल है। वृष और तुला राशिका स्वामी शुक्र है, मिथुन और कन्याका स्वामी बुध है, कर्कका स्वामी चन्द्रमा तथा सिंहराशिका स्वामी सूर्य है। धनु और मीनराशिका स्वामी बृहस्पति तथा मकर और कुम्भका स्वामी शनि है। यदि कुण्डलीमें प्रथम भावमें मेष राशि है तो इसका स्वामी है मंगल, अतः प्रथम भाव या लग्नका स्वामी हुआ मंगल, यही भावेश या लग्नेश कहलायेगा। विभिन्न समयोंमें लग्नकी स्थिति बदलती रहती है अतः लग्नानुसार भावेश (ग्रह) भी बदलते रहते हैं।

इस लोमशसंहिताके भावफलाध्यायमें लोमशजीने यही विचार किया है कि लग्नेश (लग्नमें स्थित राशिका स्वामी) यदि लग्नमें स्थित हो तो उसका फल क्या होगा, लग्नेश यदि दूसरे भावमें बैठा हो तो उसका क्या फल होगा? इसी प्रकार लग्नेश तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें, दसवें तथा ग्यारहवें और बारहवें भावमें स्थित हो तो उसका शुभाशुभ क्या फल होगा? यह तो हुआ लग्नेशके विभिन्न भावोंमें स्थित होनेका फल। इसी प्रकार दूसरे (धन) भावका स्वामी द्वितीयेश (धनेश) यदि लग्न (प्रथम भाव)-में बैठा हो तो उसका क्या फल होगा, दूसरे भाव, तीसरे आदि बारहों भावमें हो तो क्या-क्या फल होगा। ऐसे ही तृतीयेश, चतुर्थेश, पंचमेश, षष्ठेश, सप्तमेश, अष्टमेश, नवमेश, दशमेश, एकादशेश तथा द्वादशेशके बारह भावोंमें स्थित होनेका क्या फल होता है? यही लोमशसंहिताके इस भावफलाध्यायका वर्ण्य विषय है। एक-दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

कुण्डलीका नवमभाव भाग्यस्थान कहलाता है और उसमें स्थित राशिका स्वामी नवमेश या भाग्येश कहलाता है। लोमशजी बताते हैं कि जिसके जन्मकालमें नवमेश नवमभावमें बैठा हो, वह सर्वदा धन-धान्यसे युक्त, गुणी, सुन्दर और बहुत भाइयोंके सुखसे सम्पन्न होता है—

धनधान्ययुतो नित्यं गुणसौन्दर्यसंयुतः।
बहुभ्रातृसुखैर्युक्तो भाग्येशे नवमे स्थिते॥

(भावफलाध्याय ६२)

जातकशास्त्रके अन्य ग्रन्थोंमें भी इसी प्रकार भावेशोंका फल बताया गया है। बृहत्पाराशरहोराशास्त्रमें भाग्येशके भाग्यभावमें स्थित होनेके विषयमें लोमशसंहिताके समान ही फल बताया गया है कि ऐसा जातक धन-

धान्य, गुण-सौन्दर्य तथा अनेक भाइयोंके सुखसे सम्पन्न होता है—

धनधान्ययुतो नित्यं गुणसौन्दर्यसंयुतः।
बहुभ्रातृसुखं युक्तं भाग्येशे नवमे सति॥

(पारा०हो० १७।७०)

मानसागरीग्रन्थमें बताया गया है कि यदि भाग्येश भाग्यस्थानमें हो तो ऐसा जातक अपने भाइयोंसे अत्यन्त स्नेह तथा समान भाव रखनेवाला, दानी, देवता, गुरु तथा आत्मीय (मित्र-बन्धु) जनों एवं स्त्री-पुत्र आदिमें आसक्त रहता है—

सुकृतगतः सुकृतपतिः स्वबन्धुभिः प्रीतिमतुलितसमत्वम्।
दातारं देवगुरौ स्वजनकलत्रादिसंसक्तम्॥

(मानसागरी ३।१०६)

लोमशजी बताते हैं कि जन्मकालमें लग्नेशके लग्नभावमें स्थित होनेपर जातक सुन्दर देहवाला, पराक्रमी, मनस्वी, अतिशय चंचल, दो भार्याओंवाला अथवा स्त्रियोंसे प्रेम रखनेवाला होता है—

लग्नेशे लग्नके जन्तुः सुदेहः स पराक्रमी।
मनस्वी चातिचाञ्चल्यो द्विभार्या परिगाम्यसौ॥

(लग्नेशभावफलाध्याय १)

इसी प्रकार आगे बताया गया है कि यदि लग्नेश दूसरे तथा ग्यारहवें भावमें बैठा हो तो ऐसा जातक लाभसम्पन्न, बुद्धिमान्, सुन्दर स्वभाववाला, धर्मको जाननेवाला, मानी तथा अनेक स्त्रियोंसे सम्पन्न होता है—

लग्नेशे च धने लाभे लाभवान् पण्डितो नरः।
सुशीलो धर्मविन्मानी बहुदारगणैर्युतः॥

(लग्नेशभावफलाध्याय २)

जातकशास्त्रके अन्य ग्रन्थोंमें भी इसी प्रकार भावेशोंका फल बताया गया है। जैसे भृगुसंहितामें भावफलाध्यायमें लग्नेशके लग्नमें स्थित होनेके फलमें बताया गया है कि ऐसा जातक नीरोग, दीर्घायु, लोकप्रिय, अत्यन्त सुन्दर शरीरवाला और पृथ्वीसम्बन्धी धनसे शोभित होता है—

लग्ननाथो यदा लग्ने अरुजो दीर्घजीविनः।
वल्लभोऽतिसुमूर्तिश्च भूधनेन विभूषितः॥

मानसागरी तथा गर्गसंहितामें भी थोड़े अन्तरके साथ यही फल बताया गया है—

लग्नाधिपतिर्लग्ने नीरोगं दीर्घजीविनं कुरुते।
अतिबलमवनीशं वा भूलाभसमन्वितं जातम्॥

(मानसागरी ३।२)

लग्नाधिपतिर्लग्ने निरोगं दीर्घजीवितं कुरुते।
बलवन्तं दृढगात्रं रूपयुतं बहुप्रतिष्ठितं चैव॥

(गर्गसंहिता)

पाराशरहोराशास्त्रमें भी बताया गया है कि यदि लग्नेश लग्नमें हो तो जातक सुखी, पराक्रमी, मनस्वी, अत्यन्त चंचल, दो स्त्रियोंवाला अथवा परस्त्रीमें आसक्ति रखनेवाला होता है—

लग्नेशे लग्नके पुंसः सुखी भुजपराक्रमी।
मनस्वी चातिचाञ्चल्यो द्विभार्यो परगोऽपि वा॥

(पारा०होरा० १७।१)

इस प्रकार इस भावफलाध्यायमें सभी भावस्वामियोंका बारह भावोंमें स्थित होनेका शुभाशुभ फल बताया गया है।

इस प्रकार भावेशफलका विचार करनेके अनन्तर दसवें अध्यायमें विंशोत्तरी, षोडशोत्तरी, द्वादशोत्तरी, अष्टोत्तरी, पंचोत्तरी आदि दशाओंका वर्णन है और बताया गया है कि दशाके द्वारा ही लाभालाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरणका विचार करना चाहिये (लो०सं० १०।१३)। इस अध्यायमें ७५ श्लोक हैं। ग्यारहवें अध्यायमें ५१ श्लोक हैं। इसमें लोमशजीने प्रधानरूपसे जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त जगत्के सुख-दुःख तथा विवाह, पुत्रसुखादिका वर्णन किया है।

लोमशसंहिताका बारहवाँ अध्याय—धराचक्र

यह धराचक्र नामक बारहवाँ अध्याय स्वतन्त्ररूपसे भी प्रकाशित है, संक्षेपमें इसकी कुछ बातें दी जाती हैं। इस अध्यायमें ६२ श्लोक हैं। मुख्यरूपसे भूमिमें स्थित द्रव्य (धन), शल्य, जल और देवमूर्ति आदिके ज्ञानके उपाय बताये गये हैं। सुतजन्माने लोमशजीसे पूछा—हे

मुनिश्रेष्ठ! पृथ्वीके गर्भस्थित द्रव्य (सुवर्ण-रजत आदि), शल्य (हड्डी आदि), जल और देवता-सम्बन्धी वस्तुओंको किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है; क्योंकि जिस द्रव्यका कभी नाम नहीं सुना और न देखा, वह द्रव्य कैसे प्राप्त हो सकता है, इसे बतानेकी कृपा करें। इसपर मुनि बोले—तुमने साधु प्रश्न किया है, इनका ज्ञान कैसे होगा, वह मैं बताता हूँ, ध्यानसे सुनो।

जिस स्थानपर गाने और बाजेकी आवाज सुनायी दे तथा रात्रिके अन्तिम प्रहरमें अन्धकार रहते हुए भी वहाँ प्रकाश-जैसा दिखायी पड़े, ऐसे स्थानोंमें जमीनके नीचे निश्चित ही धनका खजाना रहता है। जिस स्थानपर नित्य सर्पोंका दर्शन हो, नकुल (नेवले)-का दर्शन या बिल हो, सरठ (बड़ा गिरगिट) प्रतिदिन दिखायी पड़े और सायंकाल तथा प्रातःकाल जिस स्थानपर उत्तरमुख बैठा हुआ खंजरीट (खंजन) पक्षी दिखायी पड़े, उस स्थानपर निश्चित द्रव्य होता है—**'तत्र स्यान्निश्चितं निधिः'** (लो०सं० १२।६)। ऐसे ही जिस स्थानपर लाल रंगका सर्प और लाल रंगकी चींटी नित्य दिखायी पड़े, वहाँ निस्सन्देह द्रव्य रहता है—**'तत्र द्रव्यं न संशयः'** (लो०सं० १२।७)। आगे भी अनेक द्रव्यस्थलोंका निर्देश करनेके अनन्तर जल कहाँ होता है, इसे बताते हुए कहते हैं—जिस स्थानकी चिकनी मिट्टी सुन्दर मीठे स्वादसे युक्त हो, जहाँ काँटेदार वृक्ष अधिक हों, चींटी आदिके अण्डे प्रतिदिन दिखायी पड़ें या दूर्वा (दूब)-से पूर्ण भूमि हो, वहाँ निश्चय ही जल रहता है—**'तत्र तोयं न संशयः'** (लो०सं० १२।१४)।

देवता आदि कहाँ स्थित रहते हैं, इसके सम्बन्धमें लोमशजी बताते हैं—जिस स्थानपर शयन करनेसे प्रतिदिन स्वप्नमें देवताओं, ब्राह्मणों, अग्नि और गव्य—दूध-दही आदि दिखायी पड़े तथा जहाँपर तुलसीका वृक्ष स्वयं उत्पन्न हो, निम्ब, अश्वत्थ आदि वृक्ष हों, उस स्थानपर निश्चित ही देवता रहते हैं—ऐसा समझना चाहिये—

देवानां दर्शनं यत्र विप्राणां दर्शनं तथा।
यत्राग्निर्दृश्यते स्वप्ने गव्यानां दर्शनं तथा॥
तुलसी स्वयमुत्पन्ना यत्र तत्र च भूतले।
निम्बाश्वत्थादिवृक्षाश्च तत्र देवो न संशयः॥

(लो०सं० १२।१५-१६)

भूमिमें शल्य कहाँ गड़ा रहता है, इसको बताते हुए कहते हैं—जिस स्थानपर मिट्टी ऊसर भूमिके समान हो और सियार आदि जन्तुओंसे युक्त हो, जहाँके वृक्ष स्वयं सूख जाते हों, जिस स्थानपर तेलसे भरा दीपक जलानेपर बार-बार बुझ जाय, जहाँपर रहनेसे चित्तमें उद्वेग हो, अनेक प्रकारके प्राकृतिक उत्पात—उपद्रव होते हों, वहाँ निश्चय ही शल्य (हड्डी आदि) रहता है—**'तत्र शल्यं न संशयः'** (लो०सं० १२।१९)।

तदनन्तर धराचक्र बनानेकी विधि दी है और ग्रहोंके द्वारा उस धराचक्रसे द्रव्य, शल्य, देवता तथा जलके ज्ञानके उपाय वर्णित हैं। ये पदार्थ भूमिमें कितने नीचे हैं, प्रयत्न करनेपर प्राप्त होंगे या नहीं आदि बातोंका भी वर्णन है। अन्तमें स्वप्नेश्वरीविद्या, स्वप्नेश्वरीचक्र तथा स्वप्नेश्वरीमन्त्रका वर्णन है। स्वप्नेश्वरीकी आराधना करके स्वप्नेश्वरीयन्त्रको सिरहाने रखकर सो जाय, स्वप्नमें जैसा दिखायी पड़े, द्रव्य आदिकी प्राप्तिके लिये वैसा ही करना चाहिये। **'ॐ ह्रीं श्रीं स्वप्नेश्वर्यै नमः'** यह स्वप्नेश्वरीमन्त्र है। इस प्रकार स्वप्नेश्वरीमन्त्र तथा यन्त्र आदिकी बातें बताकर लोमशजीने सुतजन्माको बताया कि यह ज्ञान अत्यन्त गोप्य है, इसे श्रद्धालु शिष्यको ही देना चाहिये, अन्यको नहीं। यहींपर बारहवाँ अध्याय पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार लोमशजीने ब्राह्मण सुतजन्माको जातकस्कन्धकी बातें बतायीं।

लोमशजीकी भौगोलिक ज्ञानसम्पदा

महर्षि लोमशजी जैसे खगोलविद्याके आचार्य थे, वैसे ही उनका भुवनज्ञान भी अलौकिक था। इस सम्बन्धमें महाभारतमें विस्तारसे एक वृत्तान्त आया है, जिसका एक अंश यहाँ प्रस्तुत है—

युधिष्ठिर आदि पाण्डव वनवासकालमें काम्यक वनमें निवास कर रहे थे और अर्जुन दिव्यास्त्रोंकी प्राप्तिके लिये देवलोकमें देवराज इन्द्रके पास गये हुए

थे। उन्हीं दिनोंकी बात है, महर्षि लोमश इन्द्रसे मिलनेकी अभिलाषासे देवलोकमें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि धनुर्धर अर्जुन इन्द्रके आधे सिंहासनपर बैठे हैं। यह देखकर मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब शचीपति इन्द्रने अर्जुनकी महिमा, प्रभाव और पराक्रमका वर्णन किया, जिसे सुनकर मुनिको बड़ा आनन्द हुआ। तदनन्तर इन्द्रने लोमशजीसे कहा—मुने! इस समय युधिष्ठिर आदि चारों भाई द्रौपदीके साथ काम्यक वनमें निवास कर रहे हैं, वे लोग अर्जुनके लिये चिन्तित हैं, आप कृपा करके वहाँ जाकर अर्जुनकी कुशलताका समाचार उन्हें दें और बतायें कि अर्जुनने अस्त्र-शस्त्र तथा गान्धर्व आदि समस्त विद्याएँ प्राप्त कर ली हैं, अब वे शीघ्र ही उनके पास आयेंगे। हे मुने! आप उन्हें तीर्थोंकी यात्रामें जानेके लिये कहें। हे द्विजश्रेष्ठ! आप अपनी विद्याके प्रभावसे देश-कालके सभी विषयोंको जाननेवाले हैं। अतः उन्हें समस्त तीर्थोंका प्रभाव बताकर उन्हें तीर्थयात्राका ज्ञान करा दें। तदनन्तर अर्जुनने भी मुनिसे प्रार्थना की—हे द्विजश्रेष्ठ! आप सब प्रकारसे समर्थ हैं। अतः युधिष्ठिर आदि मेरे भाइयोंकी रक्षा करें। 'बहुत अच्छा' कहकर लोमशजी भूलोकमें आकर काम्यक वनमें पहुँचे। युधिष्ठिर आदिने जब मुनिवरको उपस्थित देखा तो वे उनके स्वागतमें उठकर खड़े हो गये।

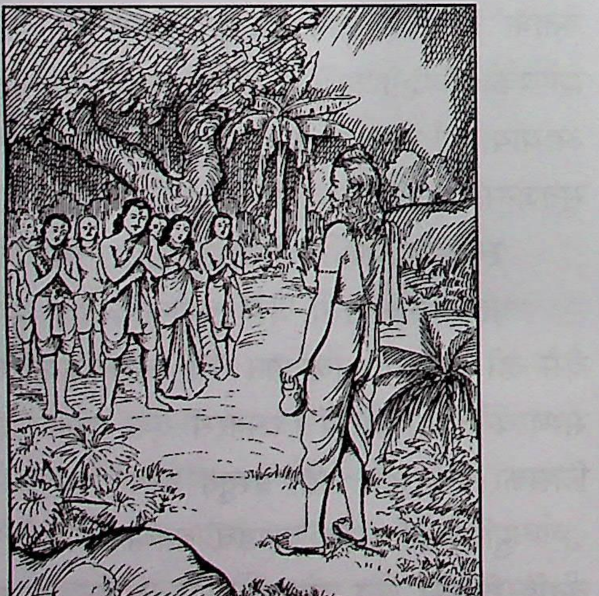

युधिष्ठिरने उनका सत्कार किया और वहाँ आनेका प्रयोजन पूछा, तब महर्षि लोमश बोले—कुन्तीनन्दन! मैं यों ही सम्पूर्ण लोकोंमें विचरण किया करता हूँ। एक दिन मैं देवलोकमें इन्द्रके भवनमें पहुँचा तो वहाँ मैंने धनुर्धर अर्जुनको इन्द्रके आसनपर आसीन देखा। फिर मुनिने इन्द्र तथा अर्जुनका सन्देश उन्हें सुनाया और बताया कि उन्हींके अनुरोधसे मैं यहाँ उपस्थित हूँ। हे राजन्! तीर्थोंमें भ्रमणकर धर्मार्जन करना चाहिये। मैं राक्षसों आदि वनचरोंसे रक्षा करता हुआ आप सबको तीर्थोंमें भ्रमण कराऊँगा। हे कुरुनन्दन! पहले दो बार मैंने सभी तीर्थोंके दर्शन कर लिये हैं, अब तीसरी बार आपके साथ पुनः उनका दर्शन करूँगा—

द्विस्तीर्थानि मया पूर्वं दृष्टानि कुरुनन्दन।
इदं तृतीयं द्रक्ष्यामि तान्येव भवता सह॥

(महा०वन०तीर्थ० ९२।९)

राजन्! तीर्थयात्रा सब प्रकारके भयोंका नाश करनेवाली है तथा समस्त पुण्योंको देनेवाली है, जो सरल नहीं है, जिसने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है, जिसकी बुद्धि कुटिलतासे भरी है, उसे तीर्थोंका फल नहीं मिलता, अतः तीर्थयात्रीको चाहिये कि वह अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति तथा संयम-नियमपूर्वक तीर्थदर्शन करे।

इसपर युधिष्ठिर बोले—भगवन्! आपने मुझे तीर्थोंका दर्शन करनेके लिये जो उत्साह प्रदान किया है तथा जो प्रेरणा प्रदान की है, वह हमारे लिये बहुत ही कल्याणकारक है। मैंने पहले ही पुरोहित धौम्यजीके आदेशसे तीर्थोंमें जानेका विचार कर रखा है, अतः ब्रह्मन्! कृपाकर आप हमारे अग्रगामीके रूपमें हमें सभी तीर्थोंका माहात्म्य, वहाँ जानेका मार्ग और तीर्थोंमें करणीय कृत्योंकी जानकारी करायें। आप जब आदेश दें, तभी मैं यात्रा प्रारम्भ करूँगा। आप यात्राका शुभ मुहूर्त बतानेकी कृपा करें। तदनन्तर लोमशजीने बताया कि मार्गशीर्षमासकी पूर्णिमा व्यतीत होनेपर जब पुष्य नक्षत्र आयेगा, तब उसी शुभ मुहूर्तमें यात्रा करनी चाहिये। यह शुभ वेला आनेपर युधिष्ठिर द्रौपदी तथा भाइयोंको साथ लेकर और

काम्यक वनके विप्रजनोंके साथ महर्षि लोमशजीको आगे करके तीर्थयात्रापर चल पड़े।

महर्षि लोमशजी प्रत्येक तीर्थका मार्ग बताते जाते और वहाँका माहात्म्य भी बताते। सर्वप्रथम लोमशजीके निर्देशानुसार पूर्व दिशाकी यात्रा प्रारम्भ हुई। महर्षि लोमशजीने देखा कि युधिष्ठिर बड़े अनमने-से दिखायी दे रहे हैं, इनके मनमें तीर्थ-दर्शनका जैसा उत्साह तथा आनन्द होना चाहिये, वैसा दिखता नहीं। जब उन्होंने इस विषयमें युधिष्ठिरसे प्रश्न किया तो वे कहने लगे—भगवन्! मेरी समझमें मैंने कभी कोई अधर्माचरण नहीं किया और मैं अपनेको सात्त्विक गुणोंसे हीन भी नहीं मानता तो भी दुःखोंसे इतना सन्तप्त रहता हूँ। इसके विपरीत दुर्योधन आदि जो सत्त्वगुणसे हीन हैं, धर्मका आचरण भी नहीं करते, फिर भी वे उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होते जा रहे हैं, इसमें क्या कारण है?

इसपर लोमशजीने धर्मका रहस्य बताते हुए कहा—राजन्! अधर्ममें रुचि रखनेवाले लोग यदि उस अधर्मके द्वारा बढ़ते दिखायी दें तो इसके लिये किसी प्रकारका दुःख नहीं मानना चाहिये। पहले अधर्मके द्वारा मनुष्य बढ़ सकता है, फिर अपने मनोनुकूल सुख-सम्पत्तिरूप अभ्युदय देख सकता है, तत्पश्चात् वह अपने विपक्षियोंपर विजय भी पा सकता है, किंतु अन्तमें वह जड़-मूलसहित नष्ट हो जाता है—

वर्धत्यधर्मेण नरस्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥

(महा०वन० ९४।४)

हे राजन्! मैंने पहले देवयुगमें दैत्यों और दानवोंको अधर्मके द्वारा बढ़ते और पुनः नष्ट होते भी देखा है। अतः अधर्ममें कभी भी मन नहीं लगाना चाहिये। अधर्माचरणका परिणाम विनाश ही होता है। धृतराष्ट्रके पुत्र इस समय पाप और मोहके वशीभूत हैं, वे शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होंगे।

इस प्रकार वास्तविक स्थिति जानकर युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे प्रसन्न मनसे विभिन्न तीर्थोंमें भ्रमण करने लगे। लोमशजी ही बताते कि यहाँ यह तीर्थ है, इसका यह माहात्म्य है, यहाँ तुम तीर्थमें स्नान करो, देवताओं और पितरोंका तर्पण करो, देवदर्शन करो, दान-पुण्य करो। नैमिषारण्य, प्रयाग होते हुए वे अनेक तीर्थोंमें गये। तीर्थयात्राप्रसंगमें लोमशजीने अनेक आख्यान-उपाख्यान उन्हें सुनाये। यथा—अगस्त्यमुनिकी कथा, राम और परशुरामका चरित्र, दधीचिके अस्थिदान तथा वृत्रासुरवधकी कथा, राजर्षि सगरकी कथा, भगीरथके द्वारा गंगावतरणकी कथा एवं राजा रोमपादकी कथा, नर्मदा-माहात्म्य, च्यवन तथा सुकन्याकी कथा, राजा मान्धाता तथा उशीनरका वृत्तान्त, अष्टावक्र एवं जनकका संवाद और उत्तराखण्ड-यात्राकी दुर्गमता आदि। इस प्रकार युधिष्ठिर आदिको सभी तीर्थोंका दर्शन कराकर तथा अनेक धर्मोंका उपदेश देकर उनसे विदा लेकर लोमशजी देवताओंके परम पवित्र स्थानको चले गये—'**स लोमशः प्रीतमना जगाम दिवौकसां पुण्यतमं निवासम्॥**'* (महा०वन० १७६।२२)

लोमशरामायण

श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें लोमश-काकभुशुण्डि-संवाद आता है। यह प्रसंग श्रीतुलसीदासजीने इन्हीं लोमशजीद्वारा रचित लोमशरामायणसे लिया है। यह ग्रन्थ बत्तीस हजार श्लोकोंमें है। इसमें राजा कुमुद तथा उनकी पत्नी वीरमतीकी तपश्चर्याका वर्णन है। भगवान्‌से वर पाकर ये ही दशरथ तथा कौसल्याके रूपमें प्रकट हुए।

श्रीरामचरितमानसमें काकभुशुण्डिजीने गरुडजीको बताया कि मैंने सुमेरुपर्वतके शिखरपर बरगदकी छायामें लोमशमुनिको बैठे देखकर सिर नवाया और दीनवचन कहे—

मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिर नायउँ बचन कहेउँ अति दीन॥

(रा०च०मा० ७।११० ख)

तदनन्तर लोमशजीने भगवान् शिवसे प्राप्त रामकथाको काकभुशुण्डिजीको सुनाया और भक्तिका वरदान दिया—

* महाभारतके वनपर्वका एक अवान्तर पर्व तीर्थयात्रापर्व नामसे प्रसिद्ध है, इसमें पुलस्त्य, धौम्य तथा महर्षि लोमशजीद्वारा लगभग सौ अध्यायोंमें भारतवर्षके विविध तीर्थोंका माहात्म्य वर्णित है।

राम भगति अबिरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें॥

(रा०च०मा० ७। ११३। १६)

लोमशी शिक्षा

महर्षि लोमशजीके नामसे एक शिक्षासंग्रह (वेदांग ग्रन्थ) प्राप्त होता है, जो सामवेदके मन्त्रगत स्वर एवं व्यंजन वर्णोंके उच्चारणके सम्बन्धमें है। इसमें आठ खण्ड हैं, खण्डोंके अन्तर्गत श्लोक हैं। कुल श्लोकोंकी संख्या ७५ के आस-पास है।

आरण्यकमुनिको रामभक्तिका उपदेश

पूर्वकालकी बात है, आरण्यक नामके एक महात्मा हुए, वे तत्त्वज्ञानकी इच्छासे बहुत समयतक इधर-उधर घूमते रहे, किंतु किसी भी उपदेशसे उन्हें सन्तुष्टि नहीं हुई। सौभाग्यसे एक दिन लोमशमुनि स्वर्गलोक आदिमें भ्रमण करते हुए वहाँ आ पहुँचे। महर्षि लोमशजीको प्रणामकर आरण्यकमुनिने अपनी हृदयकी बात बतायी। तब लोमशजी बोले—हे महाभाग! संसारसमुद्रसे तरनेके लिये दान, तीर्थ, व्रत, नियम, यम, योग तथा यज्ञ आदि अनेकों साधन हैं, किंतु जो परम गोपनीय, परम कल्याण-कारक तथा सर्वोत्तम साधन है, वह है रामनामका जप। श्रीरामका स्मरण, जप और पूजन करके मनुष्य परमपदको प्राप्त होता है—यह सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका रहस्य है। एक ही देवता हैं—श्रीराम, एक ही व्रत है—उनका पूजन, एक ही मन्त्र है—उनका नाम तथा एक ही शास्त्र है—उनकी स्तुति—

एको देवो रामचन्द्रो व्रतमेकं तदर्चनम्।
मन्त्रोऽप्येकश्च तन्नाम शास्त्रं तद्ध्येव तत्स्तुतिः॥

(पद्मपु०पाता० ३५। ५१)

तदनन्तर लोमशजीने भगवान् श्रीरामके सगुणस्वरूपका ध्यान तथा सम्पूर्ण रामकथा उन्हें सुनायी और रामभक्ति एवं श्रीरामके दर्शनोंका आशीर्वाद भी दिया। उसीका यह प्रभाव हुआ कि मुनि आरण्यक अनन्य रामप्रेमी बन गये। उन्हें श्रीहनुमानजीके दर्शन हुए और उनकी कृपासे वे अपने आराध्य श्रीरामका दर्शन करने अयोध्या गये। भगवान्‌का दर्शन करके आरण्यकमुनि बोले—'प्रभो! आज मेरे नेत्र सफल हो गये; क्योंकि ये अपने आराध्यका दर्शन कर रहे हैं, हे देव! मैंने जो सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया था, वह आज सार्थक हो गया।' भक्तप्रेमी श्रीरामजीने बड़े आदरसे ब्राह्मणदेवताको मणिनिर्मित ऊँचे आसनपर बिठाया; उनका चरणोदक अपने मस्तक पर चढ़ाया और बोले—'ब्रह्मन्! आज मैं अपने कुटुम्ब और सेवकोंसहित पवित्र हो गया। स्वामिन्! मैं अश्वमेध-यज्ञ कर रहा हूँ। आपके चरण यहाँ आ गये, इससे अब यह यज्ञ पूर्ण हो जायगा।' ऐसा सुनकर गद्गद हो आरण्यकमुनिने प्रभुकी महिमा का बखान किया और अपनेको कृतार्थ माना। इसी बीच एक आश्चर्यजनक घटना घटी कि जब प्रभु मुनिके चरणकमलोंको पखार रहे थे, उसी समय मुनिका ब्रह्मरन्ध्र फूट गया और उससे

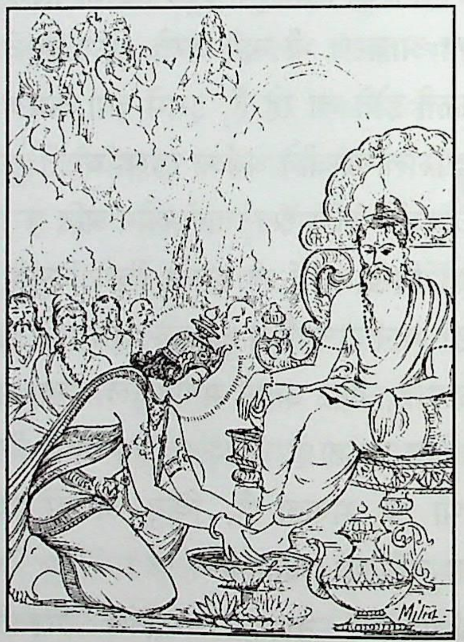

जो तेज निकला, वह श्रीरघुनाथजीमें समा गया। सरयूके तटवर्ती यज्ञमण्डपमें सब लोगोंके देखते-देखते आरण्यक-मुनिको सायुज्यमुक्ति प्राप्त हुई। आरण्यक मुनिकी इस सद्गतिमें महर्षि लोमशजीके आशीर्वादका ही प्रभाव था।

उपर्युक्त विवरणोंको देखनेसे लगता है कि महर्षि लोमशजीका दीर्घजीवन लोककल्याणके लिये समर्पित था, उनका ज्योतिषविषयक साहित्य तो अत्यल्प प्राप्त है, किंतु उनकी चर्यासे यह स्पष्ट है कि उनका खगोल एवं भूगोल, देश-काल तथा पौराणिक कथा-ज्ञान अत्यन्त विशद था। उनके उपदेश बड़े ही कामके हैं तथा उनकी रहनी-करनी सच्ची साधुताका सन्देश देती है।

महर्षि वाल्मीकिकृत वाल्मीकिरामायणमें ज्योतिषप्रकरण

कवीन्द्रं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीकथाम्।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः॥

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं। अपौरुषेय वेदोंके बाद लोकमें सर्वप्रथम काव्य-रचनाका श्रेय उन्हींको है। वाणीके अधिदेवता ब्रह्माजीकी प्रेरणासे उनके कण्ठसे अकस्मात् एक श्लोक*के रूपमें काव्यमयी सरस्वतीकी धारा प्रस्फुटित हुई, जिससे भगवान् श्रीरामकी दिव्य लीलाओंका आश्रय लेकर उन्होंने रामायण नामक महाकाव्यका प्रणयन किया। यह रामायण श्रीरामचरितमानस आदि परवर्ती रामकथापरक ग्रन्थोंका उपजीव्य तो है ही, साथ ही राजनीति, धर्मनीति, युद्धनीति, नगर-निर्माण-विद्या, विमान-विद्या, दिव्य शस्त्रास्त्र-साधनविद्या, अध्यात्म-विद्या आदिका कोश है। इसके श्रवणसे जन्म-जरा आदि अवस्थाओंका नाश तो होता ही है, मनुष्य नरसे नारायण बन जाता है। यह श्रेष्ठ काव्य वरदाता है और अपने आश्रयमें आये हुए सम्पूर्ण जगत्का तत्काल उद्धार कर देता है। इससे मनोभिलषितकी पूर्ति और श्रीरामचन्द्रजीके परमधामकी प्राप्ति होती है—

रामायणं नाम परं तु काव्यं
सुपुण्यदं वै शृणुत द्विजेन्द्राः।
यस्मिञ्छ्रुते जन्मजरादिनाशो
भवत्यदोषः स नरोऽच्युतः स्यात्॥
वरं वरेण्यं वरदं तु काव्यं
सन्तारयत्याशु च सर्वलोकम्।
सङ्कल्पितार्थप्रदमादिकाव्यं
श्रुत्वा च रामस्य पदं प्रयाति॥
(वा०रा०माहा० १। २७-२८)

वेदसम्मत होनेके कारण इस महाकाव्यमें वेदांगों—यथा—ज्योतिष आदिका भी सम्यक् वर्णन है। त्रिजटाका स्वप्न, श्रीरामका यात्राकालिक मुहूर्तविचार, विभीषणद्वारा लंकामें होनेवाले अपशकुनोंका वर्णन आदि प्रसंग महर्षि वाल्मीकिके ज्योतिर्विज्ञान-सम्बन्धी अप्रतिम ज्ञानके ज्ञापक एवं समर्थक हैं। यहाँ ग्रन्थके कतिपय ज्योतिष-प्रकरणोंका वर्णन प्रस्तुत है—

१-राजा दशरथका दुःस्वप्न—राजा दशरथद्वारा रामको बुलाकर कुछ आवश्यक बातें उनको युवराजपदपर अभिषिक्त करनेके पूर्व कही गयीं। इनमें भविष्य अथवा

ज्योतिषका आभास होता है। वे रामजीसे कहते हैं—श्रीराम! आजकल मुझे बड़े बुरे सपने दिखायी देते हैं। दिनमें वज्रपातके साथ-साथ भयंकर शब्द करनेवाली

* लौकिक संस्कृतका आदिश्लोक—
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ (वा०रा० १। २। १५)

उल्काएँ भी गिर रही हैं।

श्रीराम! ज्योतिषियोंका कहना है कि मेरे जन्मनक्षत्रको सूर्य, मंगल और राहु नामक भयंकर ग्रहोंने आक्रान्त कर लिया है। ऐसे अशुभ लक्षणोंका प्राकट्य होनेपर राजा आपत्तिमें पड़ जाता है। अन्ततोगत्वा उसकी मृत्यु भी हो जाती है।[१] अतः रघुनन्दन! तुम युवराजपदपर अपना अभिषेक करा लो। आज चन्द्रमा पुष्यसे एक नक्षत्र पहले पुनर्वसुपर विराजमान है। अतः निश्चय ही कल वे पुष्य नक्षत्रपर होंगे—ऐसा ज्योतिषी बता रहे हैं।[२] इसलिये तुम उस पुष्य नक्षत्रमें अपना अभिषेक करा लो।

२-रामके वनगमनके समय हुए अपशकुन—रामके वन जानेपर उस दिन अग्निहोत्र बन्द हो गया, गृहस्थोंके घर भोजन नहीं बना। सूर्यदेव अस्ताचलको चल दिये। हाथियोंने मुँहमें लिया चारा छोड़ दिया, गौओंने बछड़ोंको दूध नहीं पिलाया, पहले पुत्रको जनते हुए भी माता प्रसन्न नहीं हुई।

त्रिशंकु, मंगल, गुरु, बुध तथा अन्य समस्त ग्रह शुक्र, शनि आदि रातमें चन्द्रमाके पास वक्र गतिसे पहुँचकर क्रूर-कान्तियुक्त होकर स्थित हो गये। नक्षत्रोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी। ग्रह निस्तेज हो गये। वे सब-के-सब आकाशमें विपरीत मार्गमें स्थित हो धूमाच्छन्न प्रतीत हो रहे थे। आकाशमें छायी हुई मेघमाला वायुवेगसे उमड़े हुए समुद्र-जैसी लगती थी। नगरमें भूकम्प आ गया। समस्त दिशाएँ व्याकुल हो उठीं, उनमें अन्धकार छा गया। उस समय न कोई ग्रह और न ही कोई नक्षत्र प्रकाशित होता था।[३]

३-विभीषणद्वारा रावणसे लंकामें हो रहे अपशकुनोंका वर्णन—विभीषणजी लंकामें हो रहे अपशकुनोंका वर्णन करते हुए रावणसे कहते हैं—जबसे विदेहकुमारी सीता लंकामें लायी गयी हैं, तभीसे हमलोगोंको अनेक प्रकारके अमंगलसूचक अपशकुन दिखायी दे रहे हैं। मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक धधकानेपर भी अग्नि प्रज्वलित नहीं हो रही। उससे चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। उसकी लपटोंके साथ धुआँ उठता है, वह प्रकट होती है तो धुएँसे मलिन रहती है।

रसोईघरों, अग्निशालाओं तथा वेदाध्ययनके स्थानोंमें साँप देखे जाते हैं, हवनसामग्रियोंमें चींटियाँ पड़ी दिखायी देती हैं।

गायोंका दूध सूख गया है, गजराज मदरहित हो गये हैं, घोड़े दीन स्वरोंमें हिनहिनाते हैं, गधों-ऊँटों तथा खच्चरोंके रोंगटे खड़े हो जाते हैं, उनके नेत्रोंसे आँसू झरते हैं। विधिपूर्वक चिकित्सा करनेपर भी वे स्वस्थ नहीं होते। क्रूर कौए एकत्र होकर कर्कश स्वरमें काँव-काँव करते हैं। वे सब महलोंपर समूहरूपमें देखे जाते हैं। लंकापुरीके ऊपर झुण्ड-के-झुण्ड गीध मँडराते रहते हैं। सुबह-शाम सियारिनें नगरके समीप आकर अमंगलसूचक शब्द करती हैं। मांसभक्षी पशु-पक्षियोंकी जोर-जोरसे की जा रही चीत्कार बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान सुनायी देती है।[४] सीताके अपहरणके बाद उससे

---

१. अपि चाद्याशुभान् राम स्वप्नान् पश्यामि राघव । सनिर्घाता दिवोल्काश्च पतन्ति हि महास्वनाः ॥
अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणग्रहैः। आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याङ्गारकराहुभिः॥
प्रायेण च निमित्तानामीदृशानां समुद्भवे। राजा हि मृत्युमाप्नोति घोरां चापदमृच्छति॥ (वा०रा० २।४।१७—१९)

२. अद्य चन्द्रोऽभ्युपगमत् पुष्यात् पूर्वं पुनर्वसुम्। श्वः पुष्ययोगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्तकाः॥ (वा०रा० २।४।२१)

३. त्रिशङ्कुर्लोहिताङ्गश्च बृहस्पतिबुधावपि। दारुणाः सोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः॥
नक्षत्राणि गतार्चींषि ग्रहाश्च गततेजसः। विशाखाश्च सधूमाश्च नभसि प्रचकाशिरे॥
कालिकानिलवेगेन महोदधिरिवोत्थितः। रामे वनं प्रव्रजिते नगरं प्रचचाल तत्॥
दिशः पर्याकुलाः सर्वास्तिमिरेणेव संवृताः। न ग्रहो नापि नक्षत्रं प्रचकाशे न किञ्चन॥ (वा०रा० २।४१।११—१४)

४. यदाप्रभृति वैदेही सम्प्राप्तेह परंतप। तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्तान्यशुभानि नः॥
सस्फुलिङ्गः सधूमार्चिः सधूमकलुषोदयः। मन्त्रसंधुक्षितोऽप्यग्निर्न सम्यगभिवर्धते॥
अग्निष्टेष्वग्निशालासु तथा ब्रह्मस्थलीषु च। सरीसृपाणि दृश्यन्ते हव्येषु च पिपीलिकाः॥

होनेवाले अपशकुनरूपी दोष यहाँकी सारी राक्षसी जनता, नगर और अन्तःपुर—सभीके लिये उपलक्षित हो रहे हैं।

४-त्रिजटाका स्वप्न—विदेहकुमारीको अत्यन्त दुःखी देख त्रिजटाने उन्हें अपना स्वप्न सुनाया। वह कहने लगी—मैंने स्वप्नमें देखा रघुनाथजी आकाशगामी हाथीदाँतकी बनी शिबिका, जिसमें हजार घोड़े जुते थे, श्वेत पुष्पोंकी माला धारण किये तथा श्वेत वस्त्र पहने, लक्ष्मणके साथ लंकामें पधारे हैं। मैंने यह भी देखा कि सीता श्वेत वस्त्र पहने श्वेत पर्वतशिखरपर जो समुद्रसे घिरा है, बैठी हैं।[१] वहाँ वे रामजीसे मिलीं। साथ ही मैंने रघुनाथजीको चार दाँतोंवाले विशाल गजराजपर लक्ष्मणसहित आरूढ़ देखा।[२] सत्यपराक्रमी पुरुषोत्तम रामको लक्ष्मण और सीतासहित सूर्यतुल्य दिव्य पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो उत्तर दिशामें गमन करते हुए भी मैंने देखा।[३]

त्रिजटाने रावणके सभी पुत्रोंको मूँड़ मुड़ाये तेलमें नहाये देखा। उसने रावणको सुअरपर, इन्द्रजीतको सूँसपर, कुम्भकर्णको ऊँटपर सवार होकर दक्षिण दिशाको जाते देखा।[४]

साथ ही त्रिजटाने आगे कहा कि मैंने रावणद्वारा सुरक्षित लंकापुरीको श्रीरामदूत बनकर आये हुए वेगशाली वानरद्वारा जलाकर भस्म करते देखा।[५]

इन स्वप्नोंका फल वर्णन करते हुए त्रिजटाने कहा कि मुझे तो अब जानकीके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि उपस्थित दिखायी देती है। राक्षसराज रावणके विनाश तथा रघुनाथजीकी विजयमें कोई अधिक विलम्ब नहीं है—

अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थितम्।
राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च॥

(वा०रा० ५।२७।४९)

५-सीताको शुभ शकुनोंकी प्रतीति—व्यथितहृदय सती साध्वी शुभलक्षणा सीता जब पति-विरह और रावणके त्राससे अत्यन्त व्याकुल हो प्राण त्यागनेको उद्यत हुईं तो उन्हें उसी समय बहुत-से शुभ शकुनोंका आभास हुआ। उनका बायाँ नेत्र, बायीं भुजा, बायीं जाँघ अर्थात् बाँयें अंग फड़कने लगे; सोनेके समान रंगवाला रेशमी पीताम्बर तनिक-सा खिसक गया, जो भावी शुभकी सूचना देने लगा। बिम्बाफल-जैसे ओष्ठों, सुन्दर नेत्रों, मनोहर भौहों, धनुष-जैसी बाँकी बरौनियों तथा श्वेत उज्ज्वल दाँतोंसे सुशोभित उनका मुख राहुके ग्राससे मुक्त हुए चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित होने लगा।

गवां पयांसि स्कन्नानि विमदा वरकुञ्जराः। दीनमश्वाः प्रहेषन्ते नवग्रासाभिनन्दिनः॥
खरोष्ट्राश्वतरा राजन् भिन्नरोमाः स्रवन्ति च। न स्वभावेऽवतिष्ठन्ते विधानैरपि चिन्तिताः॥
वायसाः संघशः क्रूरा व्याहरन्ति समन्ततः। समवेताश्च दृश्यन्ते विमानाग्रेषु संघशः॥
गृध्राश्च परिलीयन्ते पुरीमुपरि पिण्डिताः। उपपन्नाश्च संध्ये द्वे व्याहरन्त्यशिवं शिवाः॥
क्रव्यादानां मृगाणां च पुरीद्वारेषु संघशः। श्रूयन्ते विपुला घोषाः सविस्फूर्जितनिःस्वनाः॥ (वा०रा० ६।१०।१४—२१)

१. गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम्॥ युक्तां वाजिसहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः। शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः॥
स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता। सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतपर्वतमास्थिता॥
रामेण संगता सीता भास्करेण प्रभा यथा। (वा०रा० ५।२७।९—१२)

२. राघवश्च पुनर्दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम्॥
आरूढः शैलसङ्काशं चकास सहलक्ष्मणः। (वा०रा० ५।२७।१२-१३)

३. ततोऽन्यत्र मया दृष्टो रामः सत्यपराक्रमः॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह वीर्यवान्। आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम्॥
उत्तरां दिशमालोच्य प्रस्थितः पुरुषोत्तमः। (वा०रा० ५।२७।१८—२०)

४. रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः। वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित्॥
उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रायातो दक्षिणां दिशम्। (वा०रा० ५।२७।३१-३२)

५. लङ्का दृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता। दग्धा रामस्य दूतेन वानरेण तरस्विना॥ (वा०रा० ५।२७।३८)

उनका शोक जाता रहा, सारी थकावट दूर हो गयी। मन शान्त हुआ, हृदय हर्षित हुआ और वे शुक्ल-पक्षमें उदित शीतरश्मि चन्द्रमासे सुशोभित रात्रिकी भाँति अपने मनोहर मुखसे अद्भुत शोभा पाने लगीं (सुन्दरका० सर्ग २९)।

६-महर्षि निशाकरका सम्पातिको भविष्यकी बातें बताना—गृध्रराज सम्पाति अपने भाई जटायुको जलांजलि देकर जब स्नान कर चुके, तब उस रमणीय विन्ध्यपर्वतपर वे समस्त वानर यूथपति उन्हें घेरकर बैठ गये। वानरोंमें अगुआ अंगदसे सम्पाति कहने लगे—प्राचीनकालमें सूर्यकी किरणोंसे झुलसकर मैं इस पर्वतपर गिरा। यहाँ महर्षि निशाकर (चन्द्रमा)-का आश्रम था। दोनों पंख जलनेके कारण मैं जड़वत् हो गया। ऐसी अवस्थामें मुनिने मुझे देखा। उन्होंने मुझे पहचान लिया; क्योंकि मैं और जटायु दोनों मनुष्यरूप धारणकर उनके चरणस्पर्श करने उनके पास जाया करते थे। ऋषिने मेरी इस अवस्थाका कारण जानना चाहा। तब मैंने उन्हें बताया—मैं और जटायु गर्वसे अपने पराक्रमकी थाह लेने सूर्यतक पहुँचनेके उपक्रमसे उड़े। उनके प्रचण्ड तेजसे भयभीत जटायु पृथ्वीपर लौटने लगा। उसे मैंने अपने पंखोंसे ढँक लिया। उसे सूर्यके तेजसे बचानेके प्रयासमें मेरे पंख झुलस गये तथा मैं यहाँ गिर पड़ा।

महर्षि निशाकर मुझे सान्त्वना देते हुए ध्यानमगन हो बोले—सम्पाते! तुम निश्चिन्त रहो। तुम्हारे दोनों पंख निकल आयेंगे, आँखें भी ठीक हो जायँगी तथा खोयी हुई प्राणशक्ति तथा पराक्रम भी लौट आयगा।

तपस्याद्वारा मैंने इन सब बातोंको प्रत्यक्ष जान लिया है, सुनो—इक्ष्वाकुवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाले दशरथ नामके प्रसिद्ध राजा होंगे। उनके एक तेजस्वी पुत्र श्रीरामके नामसे प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे।

वनवासकालमें जनस्थानमें रहते समय उनकी पत्नी सीताको राक्षसराज रावण हर ले जायगा। सीता बड़ी यशस्विनी और सौभाग्यवती होगी। यद्यपि रावण उसे अनेकों प्रकारके प्रयत्नोंद्वारा प्रलोभन देकर पटरानी होनेका आग्रह करेगा, पर वे साध्वी सीता उन्हें अस्वीकार करेंगी।

यह मालूम होनेपर कि सीता राक्षसका अन्न नहीं ग्रहण कर रहीं। देवराज इन्द्र उन्हें अमृतके समान खीर निवेदन करेंगे, जिससे उन्हें क्षुधा नहीं रहेगी। सीता उसे स्वीकारकर पहले उसमेंसे अग्रभाग श्रीरामके लिये निकालकर अर्पण करेंगी।

सम्पाते! रघुनाथजीके भेजे हुए दूत वानर यहाँ सीताकी खोज करते आयेंगे। तुम्हें उनको सीताका पता बताना होगा। अतः यहाँसे अन्य स्थानपर मत जाना। देश-कालकी प्रतीक्षा करते हुए यहीं वास करो।

मुनिसे मिले और उनसे उपर्युक्त बातें जाने आठ हजार वर्ष बीत चुके हैं।

धर्मज्ञ निशाकर महाप्रस्थानकर स्वर्ग चले गये। तभीसे मैं तर्क-वितर्कोंसे घिरा आपलोगोंकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ—

अष्टौ वर्षसहस्राणि तेनास्मिन्नृषिणा गिरौ।
वसतो मम धर्मज्ञे स्वर्गते तु निशाकरे॥

(वा०रा० ४।६०।९)

वहाँ एकत्र बैठे वानरोंके साथ सम्पाति इस प्रकार बातें कर रहे थे कि उन वनचारी वानरोंके समक्ष ही उनके दोनों पंख निकल आये। इससे सम्पाति बहुत हर्षित हुए। उन्हें युवावस्था-जैसा बल, पराक्रम पुनः प्राप्त हो गया, जैसा कि मुनि निशाकरने कहा था। वह बोला—वानरो! तुम सब प्रयत्न करो। निश्चय ही तुम्हें सीताका दर्शन होगा। मुझे पंखोंका प्राप्त होना तुम लोगोंकी कार्यसिद्धिका विश्वास दिलाता है।

तदनन्तर वायुके समान पराक्रमी वे श्रेष्ठ वानर अपने भूले हुए पुरुषार्थको पुनः पा गये और जनकनन्दिनी सीताकी खोजके लिये उत्सुक हो अभिजित् नक्षत्रसे युक्त समयमें दक्षिण दिशामें चल दिये।

आठ हजार वर्षपूर्व मुनि निशाकरद्वारा कही गयी भविष्यवाणी उनके भविष्यज्ञानकी ओर इंगित करती है।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिद्वारा रचित रामायण नामक महाकाव्य समस्त पापोंका नाश और दुष्ट ग्रहोंकी बाधाका निवारण करनेवाला है। यह वेदसम्मत है। इसके पठन, श्रवण और मननसे दुःस्वप्नोंका नाश हो जाता है। श्रीरामजीकी लीलाकथाओंसे युक्त यह ग्रन्थरत्न समस्त कल्याणमयी सिद्धियोंको देनेवाला है—

रामायणं महाकाव्यं सर्ववेदेषु सम्मतम्।
सर्वपापप्रशमनं दुष्टग्रहनिवारणम्॥
दुःस्वप्ननाशनं धन्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
रामचन्द्रकथोपेतं सर्वकल्याणसिद्धिदम्॥

(वा०रा०माहा० १। १९-२०)

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीने अपनी रामकथामें ज्योतिषतत्त्वोंका निरूपण तो किया ही है, साथ ही दुष्ट ग्रहों एवं दुःस्वप्नोंके शमनके साधनके रूपमें भी इस ग्रन्थरत्नको प्रस्तुत किया है। [सुश्री रामेश्वरीजी]

गोस्वामी तुलसीदासजीका ज्योतिष-विचार

विश्व-वाङ्मयके साहित्यकारोंमें गोस्वामी तुलसीदासजी शीर्षस्थ हैं। उन्होंने स्वयं अपनी रचनाओंका कहीं उल्लेख नहीं किया है, इसलिये उनकी प्रामाणिक रचनाओंके सम्बन्धमें अन्तःसाक्ष्यका अभाव है। तुलसीसाहित्यके प्रेमी अन्वेषकोंने इनके द्वारा रचित ग्रन्थोंके सम्बन्धमें बाबा बेनीमाधवदासकृत 'मूलगोसाईं चरित', शिवसिंह सेंगरकृत 'शिवसिंह सरोज', जार्ज ग्रियर्सनलिखित 'इण्डियन एन्टीक्वरी' में प्रकाशित 'नोट्स ऑन तुलसीदास' तथा 'एनसाईक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स', मिश्रबन्धुओंके 'हिन्दी नवरत्न' इत्यादिको ही आधार मानकर इनके ग्रन्थोंका नाम गिनाया है। उक्त ग्रन्थोंमें भी इनकी रचनाओंकी सूची-संख्यामें काफी वैविध्य है, जिसके चलते तुलसी-साहित्य-प्रेमी इनकी रचनाओंकी संख्यापर एकमत नहीं हैं, पर 'नागरी-प्रचारिणीसभा काशी' ने बृहत्शोधोपरान्त गोस्वामीजीकी रचनाओंकी सूची प्रकाशितकर जनमानसकी उक्त जिज्ञासाको शान्त किया है। 'नागरीप्रचारिणी सभा' द्वारा उनकी बारह रचनाएँ प्रामाणिक स्वीकार की गयी हैं। ये रचनाएँ हैं—१. श्रीरामचरितमानस, २. रामललानहछू, ३. वैराग्यसंदीपनी, ४. बरवैरामायण, ५. पार्वती-मंगल, ६. जानकी-मंगल, ७. रामाज्ञा-प्रश्न, ८. दोहावली, ९. कवितावली, १०. गीतावली, ११. श्रीकृष्णगीतावली तथा १२. विनय-पत्रिका। अधिकाधिक विद्वान् एवं रामायणी भी इन बारह कृतियोंको गोस्वामीजीकी कृति स्वीकार करते हैं।

उक्त ग्रन्थोंमें 'श्रीरामचरितमानस' अपनी प्रबन्धात्मकता, महाकाव्यात्मकता और आदर्श वर्ण्य-विषयके चलते विश्ववन्द्य है। 'रामललानहछू' विवाह-संस्कारके गीतोंका संकलन है, 'वैराग्यसंदीपनी' भवरस-विरतिका साधन-ग्रन्थ है, 'बरवैरामायण' बरवै छन्दमें लिखित रामकथात्मक लघु ग्रन्थ है, 'पार्वती-मंगल' गोस्वामीजीकी शिव-भक्तिका परिचायक है, 'जानकी-मंगल' जनकपुर-स्वयंवरसे सीताजीके अयोध्या-आगमनतकके वैदिक विधि-विधानोंका मंगल गायन है, 'दोहावली' के अधिकाधिक दोहे 'मानस' से लिये गये हैं, बाकी भक्ति, नीति और वैराग्यपरक हैं, 'कवितावली' में रामकथा कवित्त छन्दमें कही गयी है तो 'गीतावली' में पदों (गीतों)-में गायी गयी है, 'श्रीकृष्णगीतावली' में ब्रजप्रदेशमें उमड़ी तात्कालिक श्रीकृष्णभक्तिकी एक कड़ी है तो 'विनय-पत्रिका' गोस्वामीजीकी शरणागतिभक्तिका प्रपत्तिपरक अनूठा ग्रन्थ है।

गोस्वामी तुलसीदासरचित 'रामाज्ञा-प्रश्न' ज्योतिष-शास्त्रपद्धतिका अनूठा ग्रन्थ है। यूँ तो गोस्वामीजीका ज्योतिष-ज्ञान इनकी सभी रचनाओंमें झलक जाता है, पर 'रामाज्ञा-प्रश्न' इनके इस ज्ञानका प्रतिष्ठित ग्रन्थ है। सर्गों एवं सप्तकोंमें विभक्त इस सम्पूर्ण ग्रन्थकी रचना

दोहाछन्दमें हुई है। अन्य ग्रन्थोंकी भाँति इसकी भाषा भी बोल-चालमें प्रयुक्त सहज अवधी है। काव्यात्मकताकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण नहीं है; क्योंकि इसमें कथा-शृंखला एवं प्रसंग-कथनका अभाव है। यह राम-कथाके विविध प्रसंगोंकी मिश्रित रचना है। इसके अनेक दोहे वाल्मीकीय रामायणके श्लोकोंके अनुवादसे लगते हैं, पर जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये गोस्वामीजीने इसकी रचना की है, उस दिशामें यह अतिशय श्रेष्ठ एवं उपयोगी है।

गोस्वामीजीकी जीवनीपर प्रकाश डालनेवाले सभी ग्रन्थोंमें गंगाराम नामक उनके एक ज्योतिषी मित्रकी चर्चा मिलती है। बाबू शिवनन्दन सहाय, माताप्रसाद गुप्त, अमृतलाल नागर इत्यादि विद्वानोंके अनुसार गोस्वामीजी और गंगाराम बाल-सखा थे। विद्योपार्जनके बाद गोस्वामीजी भ्रमणशील हो गये, पर गंगाराम स्थायी रूपसे काशीके प्रह्लादघाटपर ही रहे। गोस्वामीजी अपने काशीवासके समय नियमित इनसे मिलते थे और दोनों सायंकालीन सन्ध्यावन्दनहेतु गंगापार जाते थे। गंगातटपर सन्ध्यादि नित्यकर्मसे निवृत्त हो सत्संग करते, फिर अपने-अपने आश्रमको लौट आते थे।

एक दिन सायंकाल गोस्वामीजी मित्र गंगारामके यहाँ पधारे, तब गंगाराम उखड़े मनसे बोले—आज मैं गंगाकी ओर नहीं जाऊँगा, मेरा मन कुछ ठीक नहीं है। ***'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी'*** कहनेवाले गोस्वामीजी अब उन्हें छोड़ कैसे सकते थे! उन्होंने बाहरी चबूतरेपर बैठते हुए मित्रके मनोमालिन्यका कारण पूछा। गंगारामने बताया—'गोस्वामीजी! राजघाटनिवासी नरेशके राजकुमार अपने कुछ मित्रोंके साथ वनमें आखेटपर गये हैं। दूतोंसे मिली खबरके अनुसार उनमेंसे एक बाघका शिकार हो गया है। पर बाघने किसे मारा है? इसकी सही सूचना नहीं है। दरबारमें आज मेरा बुलावा हुआ और शकुन विचारनेका आदेश मिला। मुझसे पूछा गया कि राजकुमार सकुशल हैं या नहीं? पर भाई! यह बात महाराजाओंकी है। कहा गया है कि उत्तर ठीक निकला तो एक लाख स्वर्णमुद्राएँ अन्यथा प्राणदण्ड। मैंने प्रश्न-लग्नके अनुसार शकुन विचारा, पर उत्तर स्पष्ट नहीं आया। मैंने एक दिनका समय लिया है। कल मुझे पूर्वाह्नमें उत्तर देना है। मित्र! मेरे ज्योतिष-ज्ञानने मुझे संकटमें डाल दिया है, पता नहीं कल क्या होगा?

गोस्वामीजी बोले—मित्र! ब्राह्मण हो, अपनी ब्रह्म-विद्यापर विश्वास करो। होनी तो नियत है, पर जीत तुम्हारी ही होगी। चलो, गंगामाता कल्याण करेंगी। गंगारामको मित्रकी बातोंसे दृढ़ता आयी। दोनों गंगातटकी ओर गये, फिर सन्ध्यावन्दनसे निवृत्त हो लौटनेके बाद गोस्वामीजी बोले—मित्र! तुम भोजनकर आरामसे सोओ, मैं तुम्हारा यह कार्य कर देता हूँ। गंगारामको गोस्वामीजीपर पूरा भरोसा था। हो क्यों नहीं, आत्मीय मित्र जो ठहरे। वे भोजनोपरान्त अपने कमरेमें आरामसे सो गये। गोस्वामीजीने बाहरी चबूतरेपर बैठकर लगातार छः घण्टोंके प्रयाससे एक पुस्तककी रचना की, जिसे हम रामाज्ञा-प्रश्नके नामसे जानते हैं।

प्रातः दोनों सन्ध्यावन्दनादिसे निवृत्त हुए तब गोस्वामीजीने कहा—मित्र! तैयार होकर राजदरबार जाओ और शकुन-विचारकर परिणाम सुना दो। राजकुमार सकुशल हैं, वे आज ही दूसरे पहरकी छठी घड़ीके भोगकालान्तर्गत राजमहलमें पधारेंगे। जबतक तुम वापस नहीं आओगे, मैं इसी चबूतरेपर बैठा तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।

गंगारामको गोस्वामीजीकी वाणीपर अटूट विश्वास था। वे जानते थे कि इनकी वाणी कभी असत्य हो ही नहीं सकती। उन्होंने सहर्ष राजदरबार जाकर शकुन-विचारका परिणाम घोषित किया। इनकी घोषणासे दरबार शोक-भयमुक्त हो गया, पर राजकुमारके आनेतक इन्हें कैदखानेमें डाल दिया गया।

दोपहरकी छठी घड़ीमें कुछ घुड़सवार मित्रोंके साथ राजकुमारने राजमहलके सिंहद्वारमें प्रवेश किया।

शोकसागरमें डूबे हुए राजमहलमें आनन्दकी लहरें उठने लगीं। बाजे बजने लगे, बन्दीजन विरुदावली बखानने लगे। महाराज दौड़े-दौड़े कैदखानेमें आये। वे अपराधबोधसे गड़े थे। उन्होंने गंगारामसे क्षमा-याचना की। ज्योतिषीका पूरा स्वागत हुआ। उन्हें प्रचुर मात्रामें अन्न-वस्त्रके साथ एक लाख स्वर्णमुद्राओंसे सम्मानित किया गया। राजकीय सम्मान प्राप्तकर राजकीय सुरक्षामें सभी सामग्रियोंके साथ गंगाराम जब अपने दरवाजेपर पधारे तो देखा, गोस्वामीजी चबूतरेपर उत्तराभिमुख बैठे उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे दौड़े और मित्रके चरणोंपर गिर पड़े।

कुशलक्षेमके बाद जब दोनों शान्त हुए तब गंगारामके पूछनेपर कि मित्र! तुमने किस विधिसे शकुन-विचारा? इसके उत्तरमें गोस्वामीजीने रामाज्ञा-प्रश्नकी हस्तलिखित पोथी उन्हें दिखा दी।

इस ग्रन्थमें सात सर्ग हैं। प्रत्येक सर्गमें सात-सात सप्तक हैं। सभी सप्तकोंमें सात-सात दोहे हैं। इसके सातवें सर्गके सातवें सप्तकके सभी दोहोंमें गोस्वामीजीने शकुन-प्रश्नका उत्तर प्राप्त करनेकी विधि बतलायी है। वे एक दोहेमें कहते हैं—

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारु मति, सादर सत्य सनेम॥

अर्थात् किसी शुभ दिन सन्ध्याके समय श्रद्धापूर्वक पोथीको प्रणामकर, उसे सादर निमन्त्रित करें। फिर प्रातःकाल पोथीकी विधिवत् पूजा करें। भगवान् श्रीराम, श्रीसीतामाता, श्रीलक्ष्मणजी एवं श्रीहनुमान्‌जीका स्मरण-ध्यानकर प्रसन्न मनसे शकुन-विचार करना चाहिये। इसके बाद शकुन-फल विचारनेकी जो विधि गोस्वामीजीद्वारा बतलायी गयी है, उसी विधिके माध्यमसे फलकी घोषणा करनी चाहिये।

इसके लिये लाल स्याहीसे कागजपर तीन वृत्तका निर्माण किया जाता है। तीनोंकी पहचान अलग-अलग हो, उसके लिये वृत्तोंके नीचे उनकी क्रम-संख्या—एक, दो और तीन लिख देना आवश्यक है। अब तीनों वृत्तोंके केन्द्रपर एक-एक छोटा वृत्त बनाया जाता है। फिर तीनों वृत्तोंको छः खण्डोंमें विभक्तकर, सबमें एकसे साततककी संख्या लिखी जाती है। किसी वृत्तमें कोई संख्या दुबारा नहीं होगी—

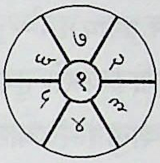

क्रम-०१

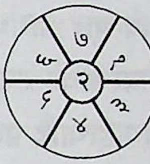

क्रम-०२

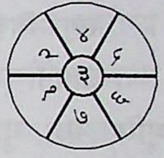

क्रम-०३

अब प्रश्नकर्ता अपने प्रश्नको मन-ही-मन स्मरण करते हुए तीनों वृत्तोंमें बारी-बारीसे किसी अंकपर पेंसिलकी नोक रखे। शकुन-विचारक यह ध्यानसे देखे कि प्रश्नकर्ताने क्रम-संख्या एक, दो एवं तीनके वृत्तोंमें क्रमशः किस-किस अंकपर पेंसिलकी नोंक रखी। उसे ठीकसे याद कर लेना चाहिये या कहीं नोट कर लेना चाहिये। प्रथम वृत्तका अंक सर्गका वाचक, दूसरे वृत्तका अंक उक्त सर्गके सप्तकका वाचक तथा तीसरे वृत्तका अंक उस सप्तकविशेषकी दोहा-संख्याका निर्धारक होता है।

प्रश्नकर्तासे अब प्रश्न कहनेके लिये कहा जाता है, फिर प्राप्त दोहेके सरलार्थसे प्रश्नके शुभ-अशुभ फलकी घोषणा की जाती है। प्रश्नके स्वभावके अनुकूल दोहा निकले, तब कार्यमें सफलता तथा कुसंगत अभिप्राययुक्त दोहा निकले तो कार्यकी असफलता समझनी चाहिये। गोस्वामीजीकी विशेष चेतावनी है कि एक दिनमें तीनसे ज्यादा प्रश्न शकुन-विचारहेतु इस ग्रन्थसे नहीं करना चाहिये तथा एक प्रश्न केवल एक बार ही करना चाहिये।

किस आशयका प्रश्न किस दिनको करना चाहिये, इसके लिये इसी ग्रन्थमें बताया गया है कि—

राज काज मनि हेम हय राम रूप रबि बार।
कहब नीक जय लाभ सुभ सगुन समय अनुहार॥

भगवान् श्रीरामके स्वरूपका ध्यान करके राज-काज, रत्नों, स्वर्णादि धातुओं एवं घोड़े आदि पशुओंसे सम्बद्ध प्रश्न रविवारको करना चाहिये।

रस गोरस खेती सकल बिप्र काज सुभ साज।
राम अनुग्रहँ सोम दिन प्रमुदित प्रजा सुराज॥

किसी रसदार वस्तु, गाय, कृषि, यज्ञादि कर्म एवं किसी भी शुभ कार्यसे सम्बद्ध शकुनका विचार सोमवारको करना चाहिये।

मंगल मंगल भूमि हित, नृप हित जय संग्राम।
सगुन बिचारब समय सुभ करि गुरु चरन प्रनाम॥

अपने गुरुदेवके चरणोंका स्मरण-वन्दन करते हुए भूमि-लाभ, युद्ध-विजय इत्यादि प्रश्नोंका शकुन-विचार मंगलवारको करना चाहिये।

बिपुल बनिज बिद्या बसन बुध बिसेषि गृह काजु।
सगुन सुमंगल कहब सुभ सुमिरि सीय रघुराजु॥

भगवान् श्रीराम एवं सीताका ध्यानकर सभी प्रकारके वाणिज्य, विद्या, वस्त्र एवं गृहसे सम्बन्धित प्रश्नका शकुन-विचार बुधवारको करना चाहिये—

गुरु प्रसाद मंगल सकल, राम राज सब काज।
जज्ञ बिबाह उछाह ब्रत, सुभ तुलसी सब साज॥

यज्ञ, विवाहादि उत्सव, व्रत एवं राजतिलक-सम्बन्धी शकुन-फलका विचार गुरुवारको करना चाहिये।

सुक्र सुमंगल काज सब कहब सगुन सुभ देखि।
जंत्र मंत्र मनि ओषधी सहसा सिद्धि बिसेषि॥

यन्त्र, मन्त्र, मणियों एवं औषधियोंसे सम्बद्ध शकुनका विचार शुक्रवारको करना चाहिये।

राम कृपा थिर काज सुभ, सनि बासर बिश्राम।
लोह महिष गज बनिज भल, सुख सुपास गृह ग्राम॥

लोहे, हाथी, भैंस-जैसी कालीवस्तुओंसे सम्बद्ध प्रश्नका शकुन-विचार शनिवारके दिन ही करना चाहिये।

कहते हैं कि उक्त ग्रन्थके आधारपर शकुन-विचारके फल-घोषणासे जो सम्पत्ति राजाद्वारा गंगारामको दी गयी, उस तमाम सम्पत्तिको उन्होंने लाकर गोस्वामीजीको समर्पित कर दिया। दोनों मित्रोंमें काफी देर विवाद चला। गोस्वामीजी कहते कि ये सारी सम्पत्ति राजदरबारसे आपको प्राप्त हुई है, इसलिये यह आपकी है, पर गंगाराम कहते कि यह सम्पत्ति आपके श्रमका ही फल है, इसलिये आपकी है। लम्बे विवादके बाद गंगारामको प्रसन्न करनेके लिये गोस्वामीजीने उनमेंसे दस सहस्र स्वर्णमुद्राएँ स्वीकार कर लीं। उन्हींसे उन्होंने दस स्थलोंपर दक्षिणाभिमुख हनुमान्‌जीकी मूर्ति स्थापितकर उनका मन्दिर बनवाया, जिनमें राजापुरका मन्दिर भी एक है। यह मन्दिर उनके सेवक-मित्र मेधाभगतकी देख-रेखमें बना था। प्रत्येक मन्दिरमें एक-एक हजार स्वर्णमुद्राएँ खर्च हुई थीं।

'रामाज्ञा-प्रश्न' के अतिरिक्त दोहावलीके कुछ दोहे भी गोस्वामीजीके ज्योतिषीय ज्ञानके परिचायक हैं। कौन-कौनसे नक्षत्र व्यापार प्रारम्भ करनेके लिये श्रेष्ठ होते हैं, उन नक्षत्रोंका नाम गिनाते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

श्रुति गुन कर गुन पु जुग मृग हय रेवती सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि धरु गएहुँ न जाइहि काउ॥

श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, अश्विनी, रेवती तथा अनुराधामें किया गया व्यापार एवं दिया गया धन, धनवर्द्धक होता है। किसी भी परिस्थितिमें यह सम्पत्ति डूब नहीं सकती।

ऊपर लिखित दोहेके भावके ठीक विपरीत भावसे सम्बद्ध निम्नलिखित दोहा है—

ऊगुन पूगुन बि अज कृ म आ भ अ मू गुनु साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो धन फिरि चढ़इ न हाथ॥

यानी उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, विशाखा, रोहिणी, कृत्तिका, मघा, आर्द्रा, भरणी, अश्लेषा और मूल नक्षत्रोंमें चोरी गया हुआ, छिना हुआ, उधार दिया हुआ, गाड़ा हुआ अर्थात् किसी प्रकारसे हाथसे निकला हुआ धन कभी भी वापस नहीं आता।

कौन-सी तिथि किस दिन पड़नेपर हानि एवं कष्टदायी बन जाती है, इससे सम्बन्धित एक दोहा भी दोहावलीमें मिलता है—

रबि हर दिसि गुन रस नयन मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब काज नसावनी होइ कुजोग बिचार॥

अर्थात् रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मंगलवारको दशमी, बुधवारको तृतीया, गुरुवारको षष्ठी, शुक्रवारको द्वितीया और शनिवारको सप्तमी तिथियाँ पड़ती हैं, तब ये कुयोगका सूचक और सर्व सामान्यके लिये हानिकारक योग बनाती हैं।

पतिके जीवनमें पत्नीकी तथा पत्नीके जीवनमें पतिकी भूमिकाके महत्त्वका प्रतिपादन करता हुआ दोहावलीका निम्नलिखित दोहा गोस्वामीजीके ज्योतिषीय ज्ञानका परिचायक है—

जनमपत्रिका बरति कै देखहु मनहिं बिचारि।
दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजति नारि॥

जन्मांगचक्रमें बारह प्रकोष्ठ ज्योतिषियोंके द्वारा बनाये जाते हैं। प्रत्येक प्रकोष्ठ जातकके विशेष भाव दशाका सूचक होता है। लग्न अर्थात् प्रथम स्थान जातककी दैहिक स्थितिका परिचायक है। इसके छठे स्थानमें ग्रहस्थिति एवं ग्रहदृष्टिसे जातकके शत्रु तथा आठवें स्थानमें ग्रहस्थिति एवं ग्रहदृष्टिसे जातककी मृत्युकी गणना की जाती है। इन दोनोंके मध्य सातवाँ स्थान पुरुषकी कुण्डलीमें पत्नीका तथा नारीकी कुण्डलीमें पतिका होता है। अर्थात् भयानक वैरी और मृत्युके बीच पति या पत्नीका स्थान होता है। यानी पत्नी शत्रु

और मृत्युके मध्य बैठ मध्यस्थता करती है। अगर पत्नी सुलक्षणा एवं पतिव्रता है तो पतिके शत्रु होते ही नहीं, अगर हुए भी तो वे ज्यादा कष्टदायक सिद्ध नहीं होंगे साथ ही पति दीर्घायु होता है, उसकी मृत्यु कालमृत्यु ही होती है। लेकिन अगर पत्नी दुष्टा, कुलक्षणी और पतिवंचक हुई; तब पतिके बड़े-बड़े भयकारी, कष्टदायक शत्रु हो जाते हैं तथा उसकी आयु छोटी हो जाती है; वह अल्पायुमें ही अकाल मृत्युको प्राप्त हो जाता है।

चन्द्रमा शुभ, शान्त एवं सौम्य ग्रह है। यह पृथ्वीपर अमृतकी वर्षाकर सबको दीर्घायु एवं आरोग्य प्रदान करता है, पर कुसंगतिमें आकर यह भी जातकके लिये घातक बन जाता है। दोहावलीमें इस आशयपर आधारित निम्नलिखित दोहा गोस्वामीजीके सूक्ष्म ग्रह-दशा-ज्ञानका परिचय देता है—

ससि सर नव दुइ छ दस गुन मुनि फल बसु हर भानु।
मेषादिक क्रम तें गनहि घात चंद्र जियँ जानु॥

अर्थात् मेषके प्रथम, वृषके पंचम, मिथुनके नवें, कर्कके दूसरे, सिंहके छठे, कन्याके दसवें, तुलाके तीसरे, वृश्चिकके सातवें, धनुके चौथे, मकरके आठवें, कुम्भके ग्यारहवें और मीनके बारहवें चन्द्रमा पड़े तो वे घातक ग्रह बन जाते हैं।

ऐसे ही यात्राके समय किन-किन वस्तुओंका दर्शन शुभ और मांगलिक होता है, इस आशयसे सम्बद्ध दोहावलीका निम्नलिखित दोहा है—

नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चक चाष।
दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहिं मन अभिलाष॥

अर्थात् यात्रापर निकलते समय नेवला, मछली, दर्पण, सफेद मुँहवाली चील, चकवापक्षी तथा नीलकण्ठके दर्शनसे यात्रा निर्विघ्न और सुखप्रद हो जाती है, उक्त छहोंको किसी भी दिशामें देखनेसे यात्रा मनवांछादायक हो जाती है।

उपर्युक्त तथ्योंके आधारपर गोस्वामी तुलसीदासजीके ज्योतिषीय ज्ञानकी विशदताका परिचय प्राप्त होता है। उन्हें ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थिति एवं उनकी प्रकृतिका कितना ऊँचा ज्ञान था, इसे देख आश्चर्य होता है। प्रचलित ज्योतिष-ग्रन्थोंसे अलग हटकर उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं मौलिक सभ्यताकी जीवनचर्याको सुखमय एवं उल्लासमय बनानेके लिये अपने इस ज्ञानको 'रामाज्ञा-प्रश्न' एवं 'दोहावली' में स्थापित किया है।

[डॉ० श्रीतारकेश्वरजी उपाध्याय]

सूरसाहित्यमें शकुन-अपशकुन

शकुन और अपशकुन भारतीय लोकजीवनके साथ इस प्रकार अभिन्न हो गये हैं कि आधुनिक युगकी घोर बौद्धिकता भी उनके अस्तित्वके लिये संकट नहीं बन पायी है। सूरने अपने काव्यमें यत्र-तत्र लोकविश्वासपर आधारित शकुनों और अपशकुनोंकी ओर संकेत दिया है। किसीके आगमनकी सम्भावनाकी प्रामाणिकता आँगनमें बैठे कागको उड़ाकर आँकनेकी लोकपरम्परा आज भी मृत नहीं है। गोपियाँ कृष्णके आगमनकी प्रतीक्षामें काग उड़ाती हैं, किंतु वह उड़ता नहीं है—

जहँ-तहँ काग उड़ावन लागीं, हरि आवत उड़ि जाहि नहीं।

इसी प्रकार एक गोपी दूसरी गोपीके आँगनमें कौएका बोलना सुनती है और उसे विश्वास दिलाती है—

तेरे आवेंगे आजु सखी, हरि खेलन कों फागु री।
सगुन संदेसौ हौं, सुन्यो तेरे आँगन बोलै कागु री॥

यदि 'काग' प्रियतमके आगमनकी प्रामाणिकताका बोध करा देता है तो विरहिणी प्रियतमके आनेके बाद उस सन्देशवाहक कागको विविध प्रकारसे पुरस्कृत करनेका वचन देती है—

जो गुपाल गोकुल कौं आवै ह्वै हैं बड़भाग।
दधि ओदन भरि दोनों दैहों अरु अंचल की पाग॥

नारियोंकी वाम भुजाका फड़कना भी शकुन माना जाता है। एक सखी दूसरीसे कहती है कि जब तेरी बाँयीं बाँह फड़क रही है तो तू क्यों नहीं कृष्णके पास चली जाती—

बात न धरति कान, तानती है भौंह बान।
तउ न चलति बाम अंखियाँ फरक रही॥

भ्रमरका गुनगुनाना भी शुभ शकुन माना जाता है। यदि भ्रमर किसी रमणीके कानके पास गुनगुनाता है तो यह इस बातका सूचक है कि कोई मनोवांछित सूचना मिलनेवाली है—

आजु कोउ नीकी बात सुनावै।
× × ×
भौंर एक चहुँ दिसि तैं उड़ि काननि लगि-लगि गावै।

सूरकाव्यमें अनेक अपशकुन भी वर्णित हैं। छींक लोकजीवनमें अपशकुन मानी जाती है। दावानल-पानके प्रसंगमें ज्यों-ही यशोदा भोजन करने रसोईघरमें आती हैं, त्यों-ही छींक होती है। इसी प्रकार जब कृष्ण यमुनामें कूद जाते हैं, तब यशोदा अनेक अपशकुनोंसे साक्षात्कार करती हैं—

जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं ग्वालि इक छींकी।
ठठकि रही द्वारे पर ठाड़ी, बात नहीं कुछ नीकी॥
आइ अजिर निकसी नंदरानी, बहुरि दोष मिटाइ।
मंजारी आगे ह्वै आई, पुनि फिरि आँगन आइ।
बायें काग, दाहिनें खर स्वर, व्याकुल घर फिर आई॥

नन्द भी इसी प्रकारके अनेक अपशकुन देखते हैं। कभी कुत्ता कान फड़फड़ाता है, कभी माथेपर होकर काग उड़ जाता है—

बैठत पौरि छींक भई बायें, दाहिनें धाय सुनावत।
फटकत स्त्रवन स्वान द्वारे पर, गारी करति लराई।
माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगन बहुतक पाइ।

लोकविश्वासोंपर आधारित शकुन और अपशकुनोंका काव्यमें चित्रण एक ओर सूरकी अनुभूतिकी प्रामाणिकताका सूचक है तो दूसरी ओर इससे यह भी ध्वनित होता है कि सूरका काव्य समाज-निरपेक्ष नहीं था। लोकजीवनकी अनेक परम्पराओं, विश्वासों और मान्यताओंका सूरने अपने काव्यमें विस्तृत वर्णन किया है। शकुन और अपशकुनसम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन इसी विस्तृत वर्णनकी एक झाँकीमात्र है। [लोकशास्त्र]

[प्रो० श्रीवेदप्रकाशजी शर्मा 'अमिताभ']

चन्द्रलोक-यात्रा और भारतीय शास्त्र

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

'अग्नीषोमात्मकं जगत्' के अनुसार संसार अग्नि और सोमरूप है। अग्नि ही सूर्यरूपमें व्याप्त होता है और सोम चन्द्रमाके रूपमें। सृष्टिमें दोनोंकी अनिवार्य आवश्यकता है। आध्यात्मिक भाषामें शिव-शक्ति या प्रकृति-पुरुष सम्पूर्ण विश्वके हेतु हैं। विद्युत्-प्रकाशमें भी ठंडा-गरम दो तारका योग अपेक्षित होता है। इसी कोटिमें अग्नि और सोमका प्रत्येक सृष्टिकार्यमें उपयोग होता है। प्रश्नोपनिषद्‌में कहा गया है कि 'प्रजाकामनासे प्रजापतिने तप करके मिथुन (जोड़ा) उत्पन्न किया। वह था रयि और प्राण। प्राणका स्थूल रूप आदित्य और रयिका चन्द्रमा है।* प्रत्यक्ष ही सूर्य और चन्द्रमाका सम्बन्ध सृष्टिसे है। अन्न-फलादि वस्तुओंके परिपाक तथा मनुष्यके स्वास्थ्यपर भी चन्द्र-सूर्यका प्रभाव पड़ता है। जैसे सूर्यमण्डलसे पृथक् भी सूर्यका प्रभाव रहता है, वैसे ही चन्द्रमण्डलसे पृथक् भी चन्द्रका प्रभाव पड़ता है। पाश्चात्य-पौरस्त्य दोनों ज्योतिषके अनुसार ग्रहोंकी विभिन्न स्थितियोंका प्रभाव हमारे लोकपर भी पड़ता है। अग्नि और सोमरूपसे सभी विश्वमें वे व्याप्त ही हैं। जैसे ईंधनके बिना अग्निका प्रज्वलन नहीं होता, घीके बिना दीपकका प्रज्वलन नहीं होता, उसी तरह सोमके अखण्ड धारापातके बिना सूर्यका भी प्रज्वलन नहीं हो सकता है, इसीलिये श्रीभागवतमें सोम या चन्द्रको सूर्यमण्डलके ऊपर बतलाया गया है; क्योंकि सोमका महान् अर्णव सर्वव्यापी है, परंतु उसका विशुद्ध रूप सूर्यमण्डलसे ऊपर है। फिर भी जिसकी पूर्णतामें पूर्णमासी होती है, वह दृश्य चन्द्रमा उसी महान् सोमार्णवका स्थूल रूप है। उपनिषदोंमें रयिका या सोमका ही रूपान्तर अन्न भी माना गया है।

'पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।'

(गीता)

भगवान् कहते हैं कि 'मैं रसात्मक सोमरूपसे सब अन्नादि ओषधियोंका पोषण करता हूँ।'

छान्दोग्यके अनुसार मनका अन्नमय होना बताया है। तभी अन्नके द्वारा उसका आप्यायन होता है। शुद्ध-अशुद्ध अन्नोंका मनपर शीघ्र ही असर पड़ता है। मनपर भंगपान या सुरापानका परिणाम तो सभीको विदित ही है। वेदोंमें सोम—चन्द्रको परमेश्वरके मनसे उत्पन्न हुआ कहा गया है। सभी जीवोंके सभी मनोंका वह वैसे ही अधिष्ठातृदेवता है, जैसे सूर्य प्राणियोंके चक्षुका अधिष्ठातृदेवता है।

कुछ लोग शास्त्रविरुद्ध होनेसे चन्द्रलोकपर मानवका इसी देहसे जाना असम्भव कहते हैं। अवश्य कहीं-कहीं प्रत्यक्ष भी शास्त्रविरुद्ध होनेसे अमान्य होता है। जैसे चन्द्रमाका स्थाली-जैसा प्रतीत होना प्रत्यक्ष है, फिर भी वह शास्त्रविरुद्ध होनेसे अमान्य है, परंतु अपरोक्षित प्रत्यक्ष ही शास्त्रविरुद्ध अमान्य होता है। **'आदित्यो यूपः'** के अनुसार आदित्य और यूपकी एकता शास्त्रसे प्रतीत होती है; परंतु वह प्रत्यक्ष होनेसे गौणार्थक माना जाता है। कृष्णल (स्वर्णखण्ड)-का श्रपण (पाक) विहित है, परंतु रूप, रस विपरिवृत्तिरूप पाक सम्भव न होनेसे वहाँ उष्ण करना ही अर्थ माना जाता है। अतः परोक्षित प्रत्यक्षका शास्त्रसे बाध नहीं होता। जैसे प्रत्यक्ष दृष्ट व्यभिचारका अपलाप करती हुई किसी स्त्रीने कहा कि 'मेरा पति मुझ पतिव्रताके वचनोंपर विश्वास नहीं करता, अपनी आँखके दो बुलबुलोंपर विश्वास करता है।' वैसे ही वचनके बलपर परोक्षित प्रत्यक्षका अपलाप करना सम्भव नहीं। हर एक प्रमाण अपने विषयमें ही शूर होते हैं। अतः प्रत्यक्षके विषयमें आगम अकिंचित्कर होता है। वैसे ही धर्म ब्रह्मादि आगमके विषयमें प्रत्यक्ष दुर्बल या बाधित है। तत्त्वमस्यादि आगमके सामने जीव-ब्रह्मके भेदविषयक प्रत्यक्षादि भी बाधित होते हैं; क्योंकि वहाँ उपक्रमादि लिंगोंसे अभेदमें ही आगम पर्यवसित है। **'आदित्यो यूपः'** आदि अर्थवाद हैं। उनका स्वार्थमें तात्पर्य नहीं है। अतः वे प्रत्यक्षसे बाधित होते हैं।

---

* तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति॥ आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः॥ (प्रश्नोपनिषद् ४-५)

स्थूल चन्द्र

इसके सिवा इस विषयमें शास्त्रका विरोध है भी नहीं। शास्त्र स्वयं स्थूल चन्द्रको दृश्य ही मानते हैं। प्राचीनकालमें भी रावणने चन्द्रलोकमें जाकर चन्द्रमापर बाणोंका प्रयोग किया था। ब्रह्माकी आज्ञासे लौट आया था। सप्तशतीका पाठ करनेवाला हर एक व्यक्ति पढ़ता है कि महिषासुरने सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु और चन्द्रका अधिकार स्वयं ले लिया था—

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति॥

हाँ, शास्त्रके अनुसार अग्निहोत्रादि कर्मकलापके अनुष्ठानार्थी धार्मिक लोगोंद्वारा प्राप्य चन्द्रलोक एक दिव्यधाम या स्वर्ग माना जाता है। वहाँ विविध प्रकारका सुख-वैभव माना जाता है। वह सत्कर्मके प्रभावसे ही प्राप्त होता है। उसे सर्वसाधारण-गम्य नहीं माना जाता।

इधर वर्तमान वैज्ञानिक चन्द्रलोक पहुँच गये। वहाँसे मिट्टी, पत्थर भी लाये हैं। यह विरोध अवश्य ही प्रतीत होता है। परंतु विचार करनेसे यह भी विरोध नहीं है। कारण कि वह दिव्य भोग या वैभव सूक्ष्म है, स्थूल नहीं; अतः उसकी प्राप्तिके लिये धर्म-कर्मानुष्ठान ही मार्ग है। जैसे जो पदार्थ सूक्ष्म वीक्षणोंसे दिखायी देता है, वह मात्र नेत्रोंसे नहीं दृष्ट होता। वैसे ही धर्मानुष्ठानसाध्य सूक्ष्म दिव्य पदार्थका दर्शन सूक्ष्म वीक्षणोंसे भी दृष्ट नहीं होता है। जैसे भूलोकमें भी काशी, वृन्दावनका दिव्यरूप सर्वसाधारणके लिये अगोचर है, वैसे ही चन्द्रलोककी सूक्ष्म विशेषता भी बाह्य चक्षु आदिसे अगम्य है।

कैलास पर्वतपर जब बिना उपासनाके रावण गया था तो उसको केवल बर्फ और पाषाण ही दृष्टिगोचर हुए थे। उपासनाके पश्चात् जानेपर उसे रत्नमय पाषाण और कल्पवृक्षोंका वन दृष्टिगोचर हुआ था। हरिदास स्वामीकी कृपासे अकबरको वृन्दावनका केशीघाट रत्नोंसे निर्मित दिखायी पड़ा था। इस तरह महान् सोमार्णवके स्थूलरूप दृष्ट चन्द्रमण्डलमें भी बहुत-सी दिव्यताओंके होनेपर भी वैज्ञानिकोंको उनका अनुभव नहीं हो सकता। उन्हें वहाँ मिट्टी एवं ज्वालामुखीका ही अनुभव हुआ है। यही स्थिति अन्य लोकोंके सम्बन्धमें है। कई लोक इतने उष्ण या शीत हैं या वायुहीन हैं कि वहाँ जीवन-तत्त्वका होना असम्भव समझा जाता है। परंतु जीवनका तत्त्व तो अभी वैज्ञानिकोंके लिये अगम्य ही है। शास्त्रोंके अनुसार तत्तल्लोकोंके अनुरूप ही वहाँके जीवन एवं शरीर भी होते हैं। इसीलिये जैसे पृथ्वीपर पार्थिव शरीर होता है, वैसे ही आदित्यमण्डलमें तैजस शरीर होते हैं। उनके लिये सूर्यका तेज असह्य नहीं है। इसके अतिरिक्त शास्त्रोंकी दृष्टिसे और युक्तिसे यह सिद्ध होता है कि परोक्ष या अपरोक्ष ज्ञानोंका सुख-दुःखसे क्या सम्बन्ध होता है। सुख-दुःखका सम्बन्ध पुण्य-पापसे होता है। इस दृष्टिसे प्राणियोंके पुण्य-पापके अनुसार ही जैसे सुख-दुख होते हैं, वैसे तदनुरूप ही ज्ञान भी होते हैं; क्योंकि अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थोंका प्रत्यक्ष अनुभव ही सुख-दुःखका मूल है। इसलिये किसीके लिये घृत-दुग्धकी नदियाँ दिखती हैं। इसीलिये तो हमारे लोकमें ही घृत-दुग्ध समुद्रोंका उपलम्भ नहीं है। जैसे प्रेत, पिशाच या दिव्य सिद्ध या देवता सामने रहनेपर भी नहीं परिलक्षित होते हैं, वैसे ही भूलोक-चन्द्रके दिव्य देवता या सिद्ध सामने होनेपर भी सर्वसाधारणको दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

दिव्य गंगा

इस लोकमें जैसे जलमयी गंगासे भिन्न एक दिव्य देवी गंगा भी है, वैसे स्थूल पृथ्वीसे भिन्न परमाणुरूप नित्य पृथ्वी सूक्ष्म है। वह सर्वसाधारणके लिये अगम्य है। वैसे ही देवीरूपा पृथ्वीदेवता भी है। वह दिव्य स्थूल साधनोंसे दृष्ट नहीं होती। इसी तरह स्थूल चन्द्रमण्डलसे भिन्न व्यापक सोममण्डल या चन्द्रमण्डल पृथक् है। वह व्यापक है। विशुद्धरूपमें वह सूर्यमण्डलके ऊपर करोड़ों मील दूर है, वह अमूलमय है। स्वर्गीय लोगोंका सम्बन्ध उससे है। साथ ही सूर्य-चन्द्रके अभिमानी दिव्य देवता भी पृथक् हैं। वे सूक्ष्म दिव्य हैं। उपासना एवं पुण्यसे ही दृष्ट होते हैं, अन्यथा नहीं। अर्जुनके सामने भगवान् थे। फिर भी वे

भगवान्‌के दिव्यरूपको देख नहीं सकते थे। जब भगवान्‌ने दिव्य दृष्टि दी, तभी उन्होंने भगवान्‌के दिव्य रूपको देखा—**'दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्'** 'मैं दिव्य चक्षु देता हूँ, उससे मेरे रूपको देखो।'

जलका एक रूप सूर्यकी किरणोंमें रहता है। वह बहुत सूक्ष्म होता है। दूसरा बादलोंमें रहता है। वह कुछ स्थूल है। शीतलकालमें शुष्क प्रदेशमें फैले हुए जलके ही व्यापक सूक्ष्मकण शैत्यके हेतु होते हैं। उसी तरह रात्रिमें भी ग्रीष्मकालमें तेजके परमाणु ही उष्माके हेतु होते हैं। बादलोंमें रहनेवाले जलकी अपेक्षा नदी-समुद्रादिके जल स्थूल हैं। बर्फ बननेपर उसमें स्थूलता आती है। बर्फ हजारों वर्षका हो जानेपर नीलमणि बन जाता है। तब यह विश्वास करना और भी कठिन हो जाता है कि यह भी सूर्यकी रश्मियोंमें रहा होगा। इस दृष्टिसे चन्द्रलोकके मिट्टी-पत्थर ही नहीं, भूलोकके भी मिट्टी-पत्थर कभी जल ही थे। वेदान्तानुसार **'अद्भ्यः पृथ्वी'** जलसे ही पृथ्वी बनती है। चन्द्रोदय होनेपर समुद्रमें उत्ताल तरंगें व्यक्त होती हैं। अतः समुद्रसे भी चन्द्रमण्डलका विशेष सम्बन्ध जोड़ा जाता है। किन्हीं पुराणोंके अनुसार चन्द्रमा भी क्षीरसमुद्र-मन्थनसे ही इतर रत्नोंके समान प्रकट हुआ था। कुछ भी हो, वैज्ञानिकोंकी चन्द्रलोक-यांत्रासे और धर्मोंके सामने कठिनाइयाँ अवश्य आ गयी हैं; किंतु वैदिक धर्मपर इससे कुछ भी विपरीत प्रभाव नहीं पड़ सकता है; क्योंकि अनेक बार लोक-लोकान्तरोंमें मनुष्योंका गमन भारतीय शास्त्रोंमें मान्य है। रघुवंशके अनुसार वसिष्ठके मान्त्रिक विधानोंके बलपर राजा रघुका रथ समुद्र, पर्वत तथा आकाशमें समानरूपसे जा सकता था। कर्दम-निर्मित पुष्पक-यानकी सर्वत्र अव्याहत गति थी। अर्जुन आदिका भी इन्द्रलोकका गमनागमन था ही। हाँ, इन लोगोंको वहाँकी दिव्यताका भी अनुभव होता था, परंतु अभी वैज्ञानिकोंको उन लोकोंकी दिव्यताका अनुभव नहीं हुआ; क्योंकि उसके लिये विशेष सदाचार एवं पवित्रता भी अपेक्षित है।

कमलाकरभट्टके अनुसार भी चन्द्रमण्डलके अतिरिक्त देवताविशेष चन्द्रादि मान्य हैं—

जपपूजनहेतोस्ते निर्मिता देवतांशकाः।
विधिना बिम्बरूपा ये तद्भिन्नास्त्वव्ययाः सदा॥

(सि० त० वि०)

अर्थात् जप-पूजाके लिये विधाताने बिम्बरूप ग्रहोंसे भिन्न उनके अधिष्ठातृदेवताओंको निर्मित किया है। वे सदा ही महाप्रलयपर्यन्त अवश्य रहते हैं।

नवग्रहोंकी उपासना

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)

हिन्दूजातिमें प्राचीनकालसे जो अनेक प्रकारकी धारणाएँ या प्रथाएँ प्रचलित हैं, उनमें नवग्रहोंकी उपासना भी है। यह केवल रूढिमात्र अथवा प्रथामात्र नहीं है, इसके मूलमें हमलोगोंके शरीरसे नवग्रहोंका सम्बन्ध और ज्योतिषकी दृष्टिसे सुपुष्ट विचार भी है। यह उक्ति प्रायः सर्वत्र प्रसिद्ध है कि **'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'** अर्थात् जो कुछ एक शरीरमें है, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें है और जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें है, वह एक शरीरमें भी है। हिन्दूशास्त्रोंके अनुसार यह सृष्टि केवल उतनी ही नहीं है, जितनी हमलोग देखते हैं। इन्द्रियोंसे जो कुछ देखा या सुना जाता है, वह तो बहुत ही स्थूल है। यन्त्रोंका तत्त्वविश्लेषण केवल जड़तत्त्वोंतक ही सीमित है, वह कभी चेतनाका साक्षात्कार नहीं कर सकता, क्योंकि वे यन्त्र स्वयं जड़ हैं। प्रत्येक स्थूल वस्तुके एक-एक अधिष्ठातृदेवता हैं—यह बात युक्ति, अनुभव और शास्त्रसे सिद्ध है। जैसे स्थूल नेत्रगोलक, जिन्हें हम देखते हैं, नेत्रके अधिभूतरूप हैं। नेत्र इन्द्रिय अध्यात्म है, जो कि इस स्थूल गोलकके द्वारा देखती है। इस दर्शनक्रियाका सहायक जो सूर्य है, वह नेत्रका अधिदैवरूप है। नेत्र-इन्द्रिय नेत्र-गोलकके द्वारा स्थूल रूपको देखे, यह सूर्यकी शक्तिकी सहायता लिये बिना असम्भव है। इसलिये नेत्रके अधिष्ठातृदेवता सूर्य हैं। सूर्यके भी तीन रूप हैं। जिस सूर्यको हमलोग देखते हैं, वह सूर्यका स्थूल अथवा अधिभूतरूप

है। दृश्यमान सूर्यमण्डलके अभिमानी देवताका नाम सूर्यदेवता है। उनका रथ सात घोड़ोंका है और अरुण उनके सारथि हैं। शनैश्चर, यमराज आदि उनकी सन्तान हैं। और भी देवताके रूपमें सूर्यका जितना वर्णन आता है, वह सब इस दृश्यमान सूर्यमण्डलके अभिमानी देवता ही हैं। सूर्यका अध्यात्मरूप है समष्टिका नेत्र होना। इन तीनों रूपोंको ध्यानमें रखनेसे ही शास्त्रोंमें जो सूर्यका वर्णन हुआ है, वह समझमें आ सकता है। यही बात सभी देवताओंके सम्बन्धमें समझ लेनी चाहिये।

अब यह बात सिद्धान्तसे मान ली गयी है कि सम्पूर्ण स्थूल जगत् सूक्ष्म जगत्का ही प्रकाशमात्र है। समष्टिके मनमें जो दर्शनकी इच्छा है, वही सूर्यके रूपमें प्रकट हुई है। जीवके मनमें जो दर्शनकी इच्छा है, वह नेत्र-इन्द्रियके रूपमें प्रकट हुई है। इन दोनोंके अभिमानी देवता हैं सूर्य, इसलिये नेत्र-इन्द्रियका सीधा सम्बन्ध सूर्यसे है। सूर्यकी प्रत्येक स्थितिका प्रभाव इस पृथिवीपर और इसपर रहनेवाले प्राणियोंपर पड़ता है। जैसे यह स्थूल शरीर ही जीव नहीं है उससे भिन्न है, वैसे ही यह दृश्यमान पृथिवी ही पृथिवीदेवता नहीं है, यह तो पृथिवीदेवताका शरीर है। इन सब स्थूलताओंका निर्माण सूक्ष्म जगत्की दृष्टिसे ही हुआ है। सूक्ष्म ही स्थूल बना है, इसलिये जो लोग सूक्ष्म जगत्पर विचार नहीं करते, केवल स्थूल जगत्में ही अपनी दृष्टिको आबद्ध रखते हैं, वे ठीक-ठीक इसका मर्म नहीं समझ पाते। जैसे पृथिवी, समुद्र, चन्द्रमण्डल, विद्युत्, उष्णता आदिसे सूर्यका साक्षात् सम्बन्ध है, वैसे ही उन पदार्थोंसे बने हुए मानवशरीरके साथ भी है। प्रत्येक शरीरकी उत्पत्तिके समय चाहे वह गर्भाधानका हो या भूमिष्ठ होनेका हो, सूर्य और इतर ग्रहोंका पृथिवीके साथ जैसा सम्बन्ध होता है और ग्रहचारपद्धतिके अनुसार उस प्रदेशमें उस प्रकृतिके शरीरपर उनका प्रभाव पड़ता है, वह जीवनभर किसी-न-किसी रूपमें चलता ही रहता है। ग्रहमण्डलकी स्थिति, देशविशेषपर उनका विशेष प्रभाव और देहगत उपादानोंकी विभिन्नताके कारण प्रत्येक शरीरका ग्रहोंके साथ भिन्न सम्बन्ध होता है और उसीके अनुसार फल भी होता है। प्रत्येक ग्रहके साथ पृथिवीका और उसपर रहनेवाली वस्तुओंका जो महान् आकर्षण-विकर्षण चल रहा है, उसके प्रभावसे कोई बच नहीं सकता और जगत्के परिवर्तनोंमें अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंमें, सुख-दुःखके निमित्तोंमें यह महान् शक्ति भी एक कारण है—इस सत्यको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसीसे योगसम्पन्न महर्षियोंने अपनी अन्तर्दृष्टिसे इस तत्त्वका साक्षात्कार करके जीवोंके हितार्थ इसे प्रकट किया है।

संसारमें जो घटनाएँ घटती हैं, उनके अनेक कारण बतलाये जाते हैं—जीवका प्रारब्ध अथवा पुरुषार्थ, समष्टिकर्ता ईश्वरकी इच्छा अथवा प्रकृतिका नियमित प्रवाह। इन घटनाओंके साथ ग्रहोंके आकर्षण-विकर्षणका क्या सम्बन्ध है? उपर्युक्त बलवान् कारणोंके रहते हुए जगत्के कार्योंमें वे क्या नवीनता ला सकते हैं? यह प्रश्न उठानेके पहले उन सबके एकत्वका विचार कर लेना चाहिये।

समष्टिकर्ताकी इच्छा ही प्रकृतिका प्रवाह है। प्रकृतिके सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रवाहोंके अनुसार ही ग्रहोंकी निश्चित गति और जीवोंका प्रारब्ध है। इन गति और प्रारब्धोंके अनुसार ही पुरुषार्थ और फल होते हैं। शरीरकी उत्पत्ति प्रारब्धके अनुसार होती है, जिसका जैसा कर्म, उसका वैसा शरीर। जिस शरीरमें प्रारब्धके अनुसार जैसी कामवासनाएँ रहती हैं, उस जीवनमें जैसी घटनाएँ घटनेवाली होती हैं, उसीके अनुसार उस शरीरके जन्मके समय वैसी ही ग्रहस्थिति रहती है। यों भी कह सकते हैं कि वैसी ग्रहस्थितिमें ही उसका जन्म होता है अथवा ग्रहोंकी एक स्थितिमें रहनेपर भी भिन्न-भिन्न देश और शरीरके भेदसे उनका भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। इसीसे ज्योतिषशास्त्रमें कहा गया है कि ग्रह किसी नवीन फलका विधान नहीं करते, अपितु प्रारब्धके अनुसार घटनेवाली घटनाको पहले ही सूचित कर देते हैं—'**ग्रहा वै कर्मसूचकाः**'। ग्रहोंकी स्थिति, गति, वक्रता, अतिचार आदिको जाननेवाला ज्योतिषी किसी भी व्यक्तिके जन्मसमयको ठीक-ठीक जानकर बतला सकता है कि इसके भविष्य-जीवनमें कौन-कौन-सी घटनाएँ घटित

होनेवाली हैं। स्थूल कर्मचक्रके अनुसार केवल इतनी ही बात है। गणितकी सत्यताको इस रूपमें पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने भी स्वीकार कर लिया है। पाश्चात्य देशोंमें ग्रहोंकी स्थितिका अध्ययन करके गणितके आधारपर फलित ज्योतिष उसी प्रकार प्रतिष्ठित किया गया है, जैसे हिन्दूशास्त्रोंमें। परंतु यह बात इतनेसे ही समाप्त नहीं हो जाती, इसके आगे भी कुछ है।

हिन्दुओंका देवता-विज्ञान इन स्थूल कार्यकारण-परम्परा और सम्बन्धोंसे और भी ऊपर जाता है। मानस-शास्त्रके वेत्ताओंने एक स्वरसे यह बात स्वीकार की है कि शुद्ध, परिपुष्ट एवं बलिष्ठ मनके द्वारा स्थूल जगत्में अघटित घटना भी घटित की जा सकती है। यदि हम उन सूक्ष्मताओंके भी अन्तःस्तलमें स्थित हो जायँ, जो स्थूल घटनाओंकी कारण हैं तो हम न केवल स्थूल जगत्में, बल्कि सूक्ष्म जगत्में भी परिवर्तन कर सकते हैं। इस मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि ग्रहोंके द्वारा भावी घटनाओंका ज्ञान हो जानेपर मानसिक साधनाके द्वारा उन्हें रोका भी जा सकता है। प्राचीन ऋषियों, योगियों और सिद्ध पुरुषोंके द्वारा ऐसा किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि मन ऐसी स्थितिमें भी जा सकता है, जहाँसे वह घटनाओंका विधान और अवरोध कर सकता है, परंतु सर्वसाधारणके पक्षमें यह बात दुःसाध्य है। इसलिये उन्हें ग्रहमण्डलाधिष्ठातृदेवताकी शरण लेनी पड़ती है। जिसके शरीरपर सूर्यग्रहका दुष्प्रभाव पड़ रहा है या पड़नेवाला है, वह यदि सूर्यमण्डलके अभिमानी देवताका आश्रय ले और पूजा-पाठ, जप आदिके द्वारा यह अनुभव कर सके कि सूर्यदेवता मुझपर प्रसन्न हैं, मेरा कल्याण कर रहे हैं और मुझे जीवनदान दे रहे हैं, तो बहुत अंशमें उसका अरिष्ट शान्त हो जायगा और वह अपनेको सूर्यग्रहजन्य पीड़ासे बचा सकेगा। ग्रहशान्तिकी ये दोनों प्रणालियाँ शास्त्रीय हैं—पहलीका नाम अहंग्रह-उपासना और दूसरीका प्रतीक-उपासना है, परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि ये सूर्यदेवता केवल उपासनाके लिये ही हैं। वास्तवमें समस्त देवताओंका अलग-अलग अस्तित्व है और सबके लोक, शक्ति, वाहन, क्रिया आदि अलग-अलग बँटे हुए हैं। जबतक विभिन्न शरीर, लोक, वस्तु और नक्षत्रमण्डल आदि पृथक्-पृथक् प्रतीत हो रहे हैं, इनके द्वारा पृथ्वीमण्डल प्रभावित हो रहा है, तबतक इनमें रहनेवाले देवताओंको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

वर्तमानकालमें सम्पूर्ण संसार राष्ट्रविप्लव, पारस्परिक द्रोह, पारिवारिक वैमनस्य, ईर्ष्या-द्वेष, रोग-शोक और उद्वेग-अशान्तिसे सर्वथा उपद्रुत हो रहा है। इसके अनेक कारणोंमें देवताओंकी उपेक्षा और उनसे प्राप्त होनेवाली सहायताको अस्वीकार कर देना भी है। अन्तर्जगत्के नियमानुसार देवताओंको जागतिक पदार्थोंके उत्पादन, विनिमय और वितरणका अधिकार प्राप्त है। मनुष्य देवताओंको सन्तुष्ट करें और देवता मनुष्योंको समृद्धि एवं अभिवृद्धिसे सम्पन्न करें, परंतु मनुष्योंने अपनी बुद्धि और पुरुषार्थका मिथ्या आश्रय लेकर स्वयं ही आत्मवंचना कर ली है, जिसका यह सब जो दुःख-दारिद्र्यके रूपमें दीख रहा है, फल है। वेदोंने और तदनुयायी शास्त्रोंने एक स्वरसे ग्रहशान्तिकी आवश्यकता स्वीकार की है। अथर्ववेदमें सब देवताओंकी पूजाके साथ-साथ ग्रह-शान्तिका भी वर्णन आता है—**शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा**। इत्यादि।

प्राचीन आर्योंमें इस वैदिक मर्यादाका पूर्णरूपसे पालन होता था, इसीसे वे सुखी थे। आज भी जहाँ प्राचीन प्रथाओंका पालन होता है, वहाँ प्रत्येक शान्तिक और पौष्टिक कर्ममें पहले नवग्रहकी पूजा होती है। यह ध्यान रखना चाहिये कि इस पूजाका सम्बन्ध उन-उन मण्डलोंमें रहनेवाले देवताओंसे है। यहाँ संक्षेपमें नवग्रहोंके ध्यान और मन्त्रका उल्लेख किया जाता है। पूजा-पद्धतिके अनुसार उनका अनुष्ठान करना चाहिये।

सूर्य

सूर्य ग्रहोंके राजा हैं। यह कश्यप गोत्रके क्षत्रिय एवं कलिंगदेशके स्वामी हैं। जपाकुसुमके समान इनका रक्तवर्ण है। दोनों हाथोंमें कमल लिये हुए हैं, सिन्दूरके समान वस्त्र, आभूषण और माला धारण किये हुए हैं।

ये जगमगाते हुए हीरेके समान, चन्द्रमा और अग्निको प्रकाशित करनेवाले तेज तथा त्रिलोकीका अन्धकार दूर करनेवाले प्रकाशसे सम्पन्न हैं। सात घोड़ोंके एकचक्र रथपर आरूढ़ होकर सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए, प्रकाशके समुद्र भगवान् सूर्यका ध्यान करना चाहिये। इनके अधिदेवता शिव हैं और प्रत्यधिदेवता अग्नि। इस प्रकार ध्यान करके मानस पूजा और बाह्य पूजाके अनन्तर मन्त्रजप करना चाहिये। सूर्यके अनेक मन्त्रोंमेंसे एक मन्त्र है—'**ॐ ह्रीं ह्रौं सूर्याय नमः।**'

चन्द्रमा

भगवान् चन्द्रमा अत्रिगोत्रीय हैं। यामुन देशके स्वामी हैं। इनका शरीर अमृतमय है। दो हाथ हैं—एकमें वरमुद्रा है, दूसरेमें गदा। दूधके समान श्वेत शरीरपर श्वेत वस्त्र, माला और अनुलेपन धारण किये हुए हैं। मोतीका हार है। अपनी सुधामयी किरणोंसे तीनों लोकोंको सींच रहे हैं। दस घोड़ोंके त्रिचक्र रथपर आरूढ़ होकर सुमेरुकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं। इनके अधिदेवता हैं उमादेवी और प्रत्यधिदेवता जल हैं। इनका मन्त्र है—'**ॐ ऐं क्लीं सोमाय नमः।**'

मंगल

मंगल भारद्वाज गोत्रके क्षत्रिय हैं। ये अवन्तिके स्वामी हैं। इनका आकार अग्निके समान रक्तवर्ण है, इनका वाहन मेष है, रक्तवस्त्र और माला धारण किये हुए हैं। हाथोंमें शक्ति, वर, अभय और गदा धारण किये हुए हैं। इनके अंग-अंगसे कान्तिकी धारा छलक रही है। मेषके रथपर सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए अपने अधिदेवता स्कन्द और प्रत्यधिदेवता पृथिवीके साथ सूर्यके अभिमुख जा रहे हैं। मंगलका मन्त्र है—'**ॐ हूँ श्रीं मङ्गलाय नमः।**'

बुध

बुध अत्रिगोत्र एवं मगधदेशके स्वामी हैं। इनके शरीरका वर्ण पीला है। चार हाथोंमें ढाल, गदा, वर और खड्ग है। पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं, बड़ी ही सौम्य मूर्ति है, सिंहपर सवार हैं। इनके अधिदेवता हैं नारायण और प्रत्यधिदेवता हैं विष्णु। इनका मन्त्र है—'**ॐ ऐं श्रीं श्रीं बुधाय नमः।**'

बृहस्पति

बृहस्पति अंगिरा गोत्रके ब्राह्मण हैं। सिन्धु देशके अधिपति हैं। इनका वर्ण पीत है। पीताम्बर धारण किये हुए हैं, कमलपर बैठे हैं। चार हाथोंमें रुद्राक्ष, वरमुद्रा, शिला और दण्ड धारण किये हुए हैं। इनके अधिदेवता ब्रह्मा हैं और प्रत्यधिदेवता इन्द्र। इनका मन्त्र है—'**ॐ ह्रीं क्लीं हूँ बृहस्पतये नमः।**'

शुक्र

शुक्र भृगु गोत्रके ब्राह्मण हैं। भोजकट देशके अधिपति हैं। कमलपर बैठे हुए हैं। श्वेत वर्ण है, चार हाथोंमें रुद्राक्ष, वरमुद्रा, शिला और दण्ड है, श्वेत वस्त्र धारण किये हुए हैं। इनके अधिदेवता इन्द्र हैं और प्रत्यधिदेवता चन्द्रमा हैं। इनका मन्त्र है—'**ॐ ह्रीं श्रीं शुक्राय नमः।**'

शनि

ये कश्यप गोत्रके शूद्र हैं। सौराष्ट्र प्रदेशके अधिपति हैं। इनका वर्ण कृष्ण है, ये कृष्ण वस्त्र धारण किये हुए हैं। चार हाथोंमें बाण, वर, शूल और धनुष हैं। इनका वाहन गृध्र है। इनके अधिदेवता यमराज और प्रत्यधिदेवता प्रजापति हैं। इनका मन्त्र है—'**ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शनैश्चराय नमः।**'

राहु

राहु पैठीनस गोत्रके शूद्र हैं। मलय देशके अधिपति हैं। इनका वर्ण कृष्ण है और वस्त्र भी कृष्ण ही है। इनका वाहन है सिंह। चार हाथोंमें खड्ग, वर, शूल और ढाल लिये हैं। इनके अधिदेवता काल हैं और प्रत्यधिदेवता सर्प हैं। इनका मन्त्र है—'**ॐ ऐं ह्रीं राहवे नमः।**'

केतु

ये जैमिनी गोत्रके शूद्र हैं। कुशद्वीपके अधिपति हैं। इनका वर्ण धुएँ-सा है और वैसा ही वस्त्र भी धारण किये हुए हैं। मुख विकृत है, गीध वाहन है। दो हाथोंमें वरमुद्रा तथा गदा है। इनके अधिदेवता हैं चित्रगुप्त तथा प्रत्यधिदेवता हैं ब्रह्मा। इनका मन्त्र है—'**ॐ ह्रीं ऐं केतवे नमः।**'

ये सभी ग्रह अपनी-अपनी गतिसे सूर्यकी ओर बढ़

रहे हैं। सबका मुख सूर्यकी ओर है। पृथिवीके साथ सबका सम्बन्ध है। प्रत्येक शान्ति और पुष्टिकर्ममें इनकी आराधना होती है। पृथक्-पृथक् अरिष्टके अनुसार भी इनकी पूजा की जाती है। इनमेंसे किसी एकको प्रसन्न करके उनसे वांछित फल भी प्राप्त किया जा सकता है। जिस ग्रहका जो वर्ण है, उसी रंगकी वस्तुएँ प्रायः पूजामें लगायी जाती हैं। मन्त्रका जितना जप होता है, उसका दशांश हवन होता है। हवनमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी समिधाएँ काममें लायी जाती हैं। सूर्यके लिये मदार (आक), चन्द्रमाके लिये पलाश, मंगलके लिये खैर, बुधके लिये चिचिड़ा (अपामार्ग), बृहस्पतिके लिये पीपल, शुक्रके लिये गूलर, शनैश्चरके लिये शमी और राहु-केतुके लिये दूर्वा एवं कुशका प्रयोग होता है। इस प्रकार पूजा करनेसे ये ग्रह सन्तुष्ट हो जाते हैं और किसी प्रकारका अनिष्ट न करके सब प्रकारके इष्टसाधन करते हैं।

नवग्रहकी दोष-शान्तिके लिये रत्न धारण किये जाते हैं—सूर्यके लिये माणिक्य, चन्द्रमाके लिये मोती, मंगलके लिये प्रवाल (मूँगा), बुधके लिये मरकतमणि (पन्ना), बृहस्पतिके लिये पुष्पराग, शुक्रके लिये हीरा, शनिके लिये नीलकान्तमणि, राहुके लिये गोमेद और केतुके लिये वैदूर्यमणि। इनके धारण करनेसे ग्रहोंके दोषकी शान्ति हो जाती है।*

ज्योतिषके एक ग्रन्थमें मैंने पढ़ा था कि जो लोग पुराणोंकी कथा सुनते हैं, इष्टदेवकी आराधना करते हैं, भगवान्‌के नामका जप करते हैं, तीर्थोंमें स्नान करते हैं, किसीको पीड़ा नहीं पहुँचाते हैं, सबका भला करते हैं, सदाचारकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते तथा शुद्ध हृदयसे अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उनपर अनिष्ट ग्रहोंका प्रभाव नहीं पड़ता। उनको पीड़ा न पहुँचाकर वे उन्हें सुखी करते हैं। उस श्लोकका अन्तिम चरण यह है—

नो कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहाः पीडनम्॥

ज्योतिषशास्त्र

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीदयानन्दजी सरस्वती, भारत धर्म महामण्डल)

ब्रह्माण्डकी समष्टि और व्यष्टिरूपसे यह संसार और पिण्डरूपी प्रत्येक मनुष्यका देह एकत्व-सम्बन्धयुक्त है। इसी कारण आर्यशास्त्रमें वर्णित है कि जो कुछ बाहर ब्रह्माण्डमें है, उन्हीं देवता, भूतसमूह और ग्रह-नक्षत्र आदिका केन्द्र सब इस देहमें स्थित है। शिवसंहितामें लिखा है—

देहेऽस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः॥

—ऐसा सिद्धान्त पश्चिमी विद्वानोंने भी किया है। फलतः मनुष्य अनन्त आकाशव्यापी सौरजगत्‌की एक क्षुद्र प्रतिकृति है। सौरजगत्‌के साथ इस प्रकार एकत्व-सम्बन्ध रहनेके कारण सौरजगत्‌के अनुसार उसमें परिवर्तन होना युक्तियुक्त है। जिस प्रकार प्राकृतिक अन्तर्राज्यकी मूलशक्ति चेतन और जड़रूपसे दो भागोंमें विभक्त है, उसी प्रकार प्रतिकृतिकी बहिःशक्ति भी सम और विषमरूपसे दो भागोंमें विभक्त है। इन्हीं दो प्रकारकी सम और विषम तडित् शक्तियोंद्वारा दो प्रकारके स्वतन्त्र कार्य हुआ करते हैं अर्थात् एक शक्तिद्वारा आकर्षण और दूसरी शक्तिद्वारा विकर्षणकी चेष्टा हुआ करती है। अपने इस विज्ञानका यह रहस्य है कि जिस प्रकार अन्तःकरणमें इन दोनों शक्तियों, इनके आकर्षण-विकर्षण, इनकी सहायतासे मानसिक प्रवृत्तिमें परिवर्तन एवं मनुष्योंकी आन्तरिक वृत्तियोंमें भी परिवर्तन उत्पन्न हुआ करते हैं, उसी नियमके अनुसार समष्टि ब्रह्माण्डकी शक्तियोंके

* 'सुश्रुत' (उ० २७। ४-५)-के अनुसार बालकोंपर आक्रमण करनेवाले नौ बालग्रह और हैं। ये दिव्य देहविशिष्ट हैं—इनमेंसे कुछ पुरुष हैं, कुछ स्त्रियाँ हैं। इनके नाम हैं—स्कन्द, स्कन्दापस्मार, शकुनिग्रह, रेवतीग्रह, पूतनाग्रह, अन्धपूतनाग्रह, शीतपूतना, रेवतीग्रह, मुखमण्डिकाग्रह और नैगमेषग्रह।

द्वारा भी इस बहिर्जगत्में सृष्टिस्थितिलयात्मक नाना प्रकारके परिवर्तन हुआ करते हैं। अपि च मनुष्यके अन्तःकरणमें जिस प्रकारसे ये शक्तियाँ विद्यमान हैं, उसी प्रकार ग्रह, सूर्य और नक्षत्र आदिमें भी विद्यमान हैं। उनकी इस प्रकारकी शक्तियोंका प्रभाव जैसे उनके ऊपर रहा करता है, उसी प्रकार जहाँतक उनकी शक्ति पहुँच सकती है, वहाँतकके अन्यान्य ग्रह-नक्षत्र तथा ग्रह-नक्षत्रवासी जीवसमूहपर भी यथाक्रम प्रभाव पड़ा करता है। इस वैज्ञानिक सिद्धान्तके अनुसार प्रत्यक्ष-सिद्ध गणितज्योतिषका तादात्म्य-सम्बन्ध अप्रत्यक्ष-सिद्ध फलित ज्योतिषके साथ रहना युक्ति और विज्ञानसे सिद्ध है।

ज्योतिषशास्त्रमें कहा गया है—

गणितं फलितञ्चैव ज्योतिषं तु द्विधा मतम्।

गणित और फलितरूपसे ज्योतिष दो प्रकारका है। प्राचीनकालमें इस अलौकिक विज्ञानकी चरम उन्नति भारतवर्षमें हुई थी एवं पूज्यपाद महर्षियोंमें अनेक इस दिव्य शास्त्रके आचार्योंकी श्रेणीमें दीख पड़ते हैं, उनमें बहुतेरोंकी ज्योतिषसंहिताएँ अबतक भी पायी जाती हैं। ज्योतिषशास्त्रप्रवर्तक आचार्योंके नाम इस प्रकार बताये गये हैं—

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठात्रिपराशराः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो गुरुः।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

यह शास्त्र अन्यान्य वेदांगोंकी अपेक्षा अतिविस्तृत और परम आवश्यकीय है। पूज्यपाद महर्षिगण भी षडंग-वर्णन करते समय षडंगज्योतिषमें आज्ञा कर गये हैं—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥

अर्थात् जैसे मयूरोंकी शिखा और सर्पोंकी मणि उनके सिरपर रहती है, उसी प्रकार वेदांगशास्त्रोंमें ज्योतिष सब अंगोंमें मुख्य है।

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥

वेद यज्ञोंके लिये प्रवृत्त हैं और यज्ञ कालके अनुसार किये जाते हैं। ज्योतिष कालनिर्णय करनेवाला शास्त्र है, इसको जो जानता है, वही यज्ञोंको जानकर कर सकता है।

यद्यपि सृष्टिके मूलकारणरूपी कारण ब्रह्म विश्वकर्ता सृष्टिसे अतीत हैं, परंतु कार्यब्रह्मरूप यह प्राकृतिक ब्रह्माण्ड देशकालसे परिच्छिन्न है। कर्मके साथ कालका साक्षात् सम्बन्ध रहनेके कारण कर्मको कालकी अधीनता माननी पड़ती है। फलतः कालज्ञानके साथ जो कर्म किया जाता है, उसका ही पूर्णरूपसे सुसिद्ध होना सम्भव है। ज्योतिष कालके स्वरूपका प्रतिपादक है और उत्तरांग फलितज्योतिष कालके अन्तर्गत विद्यमान रहस्योंका प्रकाशक है। इस कारण वेदोंके कर्मकाण्डका ज्योतिषशास्त्रके साथ अति घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है; क्योंकि कर्म जब कालके अधीन है तो कर्मकाण्ड भी ज्योतिषशास्त्रके अधीन रहकर करना हितकारी होगा। आजकल इस ज्योतिषशास्त्रकी घोर अवनति भी आर्यजातिके सदाचार और कर्मकाण्डकी हानिका प्रधान कारण है। गणितज्योतिषद्वारा बहिर्जगत् सम्बन्धीय ग्रह-नक्षत्रसमूहके परिवर्तन और कालके विभागका निर्णय किया जाता है और फलितज्योतिषद्वारा ग्रह-नक्षत्र आदिकी गतियोंकी सहायतासे इस जगत्के एवं इस जगत्सम्बन्धीय यावत् सृष्टि तथा मनुष्योंके आन्तरिक परिवर्तनोंका निर्णय हुआ करता है। ज्योतिषशास्त्रके ये दोनों ही अंग मानवगणके लिये बहुत ही उपकारी हैं। ज्योतिषग्रन्थोंमें इस शास्त्रकी सर्वोपरि आवश्यकता, सर्वजीवहितकारिता और सर्वशास्त्रोंमें प्रधानता वर्णित है। प्रथम तो ज्योतिषशास्त्रके अनेक प्रधान-प्रधान आर्षग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। यद्यपि अन्य वेदांगोंसे इस वेदांगके ग्रन्थ अब भी अधिक उपलब्ध

होते हैं, परंतु प्रधान-प्रधान सिद्धान्तग्रन्थोंमें बहुत-से लुप्त हो गये हैं, दूसरा इस शास्त्रका संस्कार बहुत दिनोंसे नहीं हुआ है। इस शास्त्रका अधिक सम्बन्ध आधिभौतिक सृष्टिके साथ रहनेके कारण प्रकृतिकी स्वाभाविक त्रिगुणात्मक चेष्टाके अनुसार ग्रह आदिकी गतिमें भी क्रमशः परिवर्तन होना स्वतः सिद्ध है। प्रत्येक शताब्दिमें ग्रह-नक्षत्रोंकी चालमें फेर पड़ जाया करता है, उस त्रुटिको दूर करनेके दो उपाय हैं, प्रथम योगदृष्टिद्वारा जिसका वर्णन योगदर्शनके तृतीयपादमें है और दूसरा उपाय यह है कि लौकिक बुद्धिद्वारा यन्त्रालय-निर्माणपूर्वक दृग्गणितकी सहायतासे संस्कार किया जाय। योगसहायताकी शैली इस समय लुप्तप्राय हो गयी है। ज्योतिषशास्त्रका आविर्भाव आदिकालमें आर्यजातिमें ही हुआ था, इसमें सन्देह ही क्या है? क्योंकि यह वेदांग है और परम्परारूपसे इस शास्त्रका ज्ञान भारतवर्षसे अन्यत्र विस्तृत हुआ है एवं अब उद्यमशील पाश्चात्य जातियोंने इसमें विशेष उन्नति की है। इस समय ज्योतिष-यन्त्रालय-निर्माणके विषयमें और दृग्गणितकी सहायतासे गणितज्योतिषके संस्कारके विषयमें पाश्चात्य जातियोंने बहुत कुछ उन्नति की है। उनकी गणना प्रत्यक्ष फलप्रद भी होने लगी है। आर्यजातिमें अनेकानेक विप्लव और दुर्दैवोंके कारण कई शताब्दियोंसे गणितज्योतिषकी सारणीका संस्कार नहीं हुआ है, इस कारण भारतवर्षमें ज्योतिष-यन्त्रालयके निर्माणद्वारा अपने प्राचीन ग्रन्थोंकी तथा पाश्चात्य जातिकी नवीन दृग्गणितकी शैलीकी सहायतासे इस शास्त्रके अभ्युदयमें यत्न करनेसे अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

ज्योतिर्विद्याके तत्त्वको न समझनेसे आजकल फलित ज्योतिषकी सत्यताके विषयमें बहुत सन्देह हो रहा है। जब कर्मके द्वारा ही जीवको सुख-दुःखकी प्राप्ति होती है तो जड़ग्रहोंका सम्बन्ध बीचमें मानकर जन्मपत्र बनाकर गृहस्थोंको सुख-दुःखके फन्देमें क्यों फँसाया जाय, ऐसा करना सर्वथा अनुचित है इत्यादि अनेक प्रकारकी शंकाएँ ही हो रही हैं, अतः यह विषय विचारनेयोग्य है। ग्रह जड़ हैं, या चेतन हैं, इसके विचारकी इस समय आवश्यकता नहीं। तथापि हिन्दुशास्त्रके मार्मिक सिद्धान्तोंके जाननेवाले लोग अवश्य स्वीकार करेंगे कि जड़ वस्तु जब निष्क्रिय है तो जितने जड़पदार्थ संसारमें काम करते हुए दिखायी देते हैं, उनमें कोई चेतनसत्ता अवश्य होगी, जिसके द्वारा ही उनमें नियमित कार्य होता रहता है। प्रकृति जड़ है, परंतु प्रकृतिमें चेतन परमात्माके रहनेसे ही प्रकृति नियमबद्ध कार्य करनेमें समर्थ हो रही हैं। अन्यथा 'अन्धगति' से कार्य होता और सृष्टि-स्थिति-प्रलयका धारावाहिक क्रम नहीं रहता; क्योंकि क्रमपरिवर्तन तथा कार्यशृंखला चेतनसत्ताकी स्थिति ही सूचित करती है। प्रकृतिमें परमात्मा न होते तो सृष्टिपरायण प्रकृति सृष्टि ही करती रहती, कभी प्रलय नहीं होता और कभी किसी प्रकारसे प्रलय होनेपर भी बराबर प्रलय ही रह जाता, उसका परिवर्तन नहीं होता; क्योंकि जड़शक्तिका बल अन्धबल है, उसमें भावान्तर या क्रम नहीं हो सकता है। रेलके इंजनमें गाड़ी खींचनेका बल है, परंतु चेतनरूपी चलानेवाला न हो तो इंजन खींचता ही रहता, कभी ठहरता नहीं। ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिये। इसी विज्ञानपर हिन्दूशास्त्रोंमें दैवी महिमाकी प्रतिष्ठा की गयी है। जितने भी जड़पदार्थ हैं, उनके चालककी अलग-अलग चेतनशक्तियाँ मानी गयी हैं, जिनको देवता कहा जाता है। उन्हींकी संचालनकारिणी चेतनशक्तिके द्वारा जड़-पदार्थोंमें ठीक-ठीक नियमित क्रिया होती है, अन्यथा प्रकृतिके किसी कार्यमें भी नियम नहीं रहता। अवश्य यह सब शक्ति ही भगवच्छक्ति है; क्योंकि सिवाय उनकी शक्तिके जड़चेतनात्मक जगत्‌में और कोई शक्ति नहीं है। वही शक्ति जड़पदार्थमें जड़शक्तिरूपसे, मनुष्योंमें मानवीय विविध शक्तिरूपसे, दैवीजगत् तथा ग्रहादिकोंमें देवतारूपसे या असुररूपसे, ज्ञानराज्यमें ऋषिशक्तिरूपसे और आधिभौतिक प्रकृतिमें पितृशक्तिरूपसे प्रकाशित है, जिससे

समस्त विश्वकी रक्षा और नियमित कार्यपरिचालन हुआ करता है। जलके भीतर जिस चेतनशक्तिके रहनेसे विश्वप्रकृतिके अन्तर्गत जलीय रस सर्वत्र ठीक काममें आता है, उसका नाम वरुणदेव है। वायुमें जिस चेतनशक्तिके रहनेसे ब्रह्माण्डव्यापी वायुके द्वारा जीवोंकी प्राणरक्षा होती है, उसको पवनदेव कहते हैं। इसी तरहसे पृथ्वीमें जिस चेतनशक्तिके रहनेसे वसुन्धरा सुजला सुफला शस्यश्यामला होकर अखिल जागतिक जीवोंकी रक्षा कर सकती है, उसे पृथ्वीमाता कहते हैं। इसी प्रकार और ग्रहोंमें भी समझना चाहिये अर्थात् तत्तद् ग्रहोंमें चेतनसत्ताके रहनेसे ही तदन्तर्गत जीवोंकी रक्षा हो सकती है, अन्यथा नहीं। यही आस्तिक हिन्दूशास्त्रका सिद्धान्त है। इसको पश्चिमी लोग अभीतक जान नहीं सके हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि स्थूलपदार्थोंमें बद्ध है, योगदृष्टि या अन्तर्दृष्टि उनमें नहीं है और भारतके दुर्भाग्यके कारण हिन्दूसन्तानोंमें भी यह ज्ञान दिनों-दिन नष्ट होता चला जाता है। अब इन ग्रह-उपग्रहोंके साथ जीवका क्या सम्बन्ध है, सो बताया जाता है।

भौतिक जगत् या स्थूल जगत् सूक्ष्मका ही विस्ताररूप होनेसे सूक्ष्मशक्तिका ही घनीभाव स्थूलशक्तिरूपसे प्रकट होता है, ऐसा सिद्धान्त पश्चिमी वैज्ञानिक लोगोंने भी किया है। अनन्त शून्य आकाशमें विराट्के गर्भमें अनन्तकोटि यह उपग्रह चन्द्र-सूर्य नक्षत्र आदिका जो नियमित निज-निज कक्षामें आवर्तन है, उसमें भी यही विश्वव्यापिनी शक्ति कार्य कर रही है। प्रत्येक ग्रह-उपग्रहके भीतर आकर्षण और विकर्षण, दो परस्पर विरुद्ध शक्तियाँ विद्यमान हैं। आकर्षणशक्तिद्वारा पदार्थ परस्पर आकृष्ट होते हैं और विकर्षणशक्तिद्वारा परस्पर पृथक् हो जाते हैं। इनमें किसी एकद्वारा भी या एकके प्रबल होनेपर भी संसारकी रक्षा नहीं हो सकती है। स्थिति दोनों शक्तियोंके सामंजस्यका फल है। अतः सिद्धान्त हुआ कि ग्रहोंमें परस्पर आकर्षण-विकर्षण बना हुआ है। जब ग्रह-उपग्रह आपसमें आकर्षण-विकर्षण करते हैं तो ग्रहोंके या उपग्रहोंके भीतर जो जीव हैं, उनपर भी उस आकर्षणकी या विकर्षणकी क्रिया असर करेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह बात सभी लोग जानते हैं कि पृथ्वीग्रहमें मध्याकर्षण शक्ति है, जिससे समस्त जीवोंको पृथ्वीमाता खींचती हैं। मानो पृथ्वी एक बड़ा भारी चुम्बक है, जिसकी शक्ति उत्तरकी ओरसे जारी है। इसी प्रकार और सब ग्रहोंमें या उपग्रहोंमें या अन्यान्य ज्योतिष्क पिण्डों (नाना प्रकारके ग्रहादि)-में समझना चाहिये। फलतः प्रकृतिके भीतर अण्डसे लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त कोई भी इस आकर्षण-विकर्षण-शृंखलासे बाहर नहीं है; क्योंकि मूल महाकर्षणशक्ति सर्वशक्तिमान् भगवान् हैं, जो समस्त संसारका अपनी ओर आकर्षण करते हैं, इसलिये ही उनका नाम हरि और कृष्ण है। उन्हींका ही महाकर्षण, कहीं मध्याकर्षण, कहीं चुम्बकाकर्षण, कहीं आकर्षण-विकर्षण आदि रूपोंसे संसारमें जारी है। यही स्थूल आकर्षण-विकर्षण सूक्ष्मराज्य अर्थात् मनोराज्यमें आकर राग-द्वेषरूपेण परिणत हो जाता है। जबतक जीव प्राकृतिक आकर्षण-विकर्षणमें रहता है, तबतक जीवका जीवत्व और वैषयिकभाव बना रहता है। जब जीव प्राकृतिक समस्त आकर्षण-विकर्षणके मूलमें भगवान्की सर्वशक्तिमयी महाकर्षणशक्तिको अनुभव कर लेता है, तब ही संसारसे वैराग्य अवलम्बन करके भक्तिमार्गके द्वारा मुक्त हो जाता है। परंतु ये सब तत्त्व भक्तिशास्त्रके हैं। सिद्धान्त यह है कि ग्रह-उपग्रह और समस्त ज्योतिष्कमण्डली, यथा—सूर्य-चन्द्र आदिके साथ जीवमात्रका ही आकर्षण-विकर्षण-सम्बन्ध प्राकृतिकरूपसे बना हुआ है। इस आकर्षण-विकर्षणका तारतम्य ग्रहों-उपग्रहोंकी अपनी-अपनी कक्षापर स्थितिके अनुसार हुआ करता है। दृष्टान्तरूपसे समझ सकते हैं कि चन्द्रके साथ पृथ्वीका और पृथ्वीस्थ सब जीवोंका आकर्षण सम्बन्ध है। यह आकर्षण सर्वदा रहनेपर भी पूर्णिमाके दिन चन्द्रके बहुत पास रहनेसे बहुत अधिक हो जाता

है, जिससे समुद्रका जल उछलने लगता है और मनुष्यके शरीर और मनमें भी भावान्तर होता है। इसे सभी लोग जानते हैं। स्थूल आकर्षण शरीरपर होता है। इसलिये पूर्णिमाके दिन ऋषियोंने उपवास-व्रत आदि करनेको लिखा है, अन्यथा रसाधिक्ययुक्त शरीरपर आकर्षण होनेसे मनुष्यशरीर बीमार हो सकता है। मनके देवता चन्द्र हैं। इसलिये मनके साथ भी अधिक आकर्षण-सम्बन्ध हो जानेसे मानसिक प्रेम-चांचल्य आदि पूर्णिमाके दिन स्वभावतः ही होते हैं। इसलिये व्रत, संयम, भगवद्ध्यान आदिकी विधि उस दिन ऋषियोंने बतायी है, जिससे अधिक आकर्षणका असर चित्तपर होकर उसकी अवनति न हो। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रहों-उपग्रहोंके साथ भी आकर्षण-सम्बन्ध है। अब कर्मके विषयपर विचार किया जाता है।

मनुष्यका शरीर प्रारब्धकर्मसे ही उत्पन्न होता है। पूर्वजन्मोंमें कृत कर्मोंमेंसे बलवान् फलोन्मुख कर्म प्रारब्ध बनकर जीवका स्थूल शरीर उत्पन्न करते हैं। प्रारब्ध कर्मके अनुसार ही मनुष्यको पिता-माता भी प्राप्त होते हैं। जाति, आयु और भोग सभी प्रारब्ध कर्मोंके फलरूप हैं। योगदर्शन (सा०पा० १३)-में लिखा है—

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः।'

प्रारब्धकर्मके मूलमें रहनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति, आयु और भोग उसीके परिणामरूपसे प्राप्त होते हैं। जब कर्मका सम्बन्ध शरीरसे हुआ और ग्रहोंका भी प्राकृतिक आकर्षण-विकर्षण-सम्बन्ध शरीरसे हुआ तो प्रारब्धकर्मके अनुसार मनुष्यके जन्मके समय ग्रह-उपग्रहोंकी स्थिति भी सम या विषम होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। जिसका प्रारब्धकर्म जिस प्रकार है, उसके जन्मके समय ग्रह-उपग्रहोंकी अनुकूल या प्रतिकूल स्थिति ठीक उसी कर्मके साथ सम्बन्धके अनुसार नभोमार्गमें हुआ करती है और आकर्षण, विकर्षणका प्रभाव भी ऐसा ही हुआ करता है, इसमें सन्देह नहीं। अतः जो लोग केवल कर्मको ही मानकर ग्रह-उपग्रहोंका सम्बन्ध उड़ा देते हैं, वे गलतीपर हैं; क्योंकि कर्मके ही अनुसार जीवके साथ प्राकृतिक आकर्षण-विकर्षण-सम्बन्धयुक्त ग्रह-उपग्रहोंकी स्थिति जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त रहा करती है और कर्मके परिवर्तनके अनुसार उनकी स्थिति और प्रभावमें भी परिवर्तन हुआ करता है। जब ज्योतिषी लोग ग्रह-उपग्रहोंके विषय गणितविद्याके द्वारा सब कुछ जान सकते हैं तो किस ग्रहकी कहाँपर स्थिति होनेसे कौन कर्म प्रबल या दुर्बल होना चाहिये, यह भी वे कह सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं हो सकता है; क्योंकि कर्मके साथ शरीरका और शरीरके साथ ग्रहोंका सम्बन्ध है। अब ग्रहशान्तिका क्या प्रयोजन या सम्बन्ध है, सो बताते हैं। यह बात विज्ञानसिद्ध है कि कर्म नष्ट न होनेपर भी अच्छे कर्मके द्वारा बुरे कर्म दब जाते हैं। अतः अगर किसी मनुष्यका कोई प्रारब्ध या क्रियमाण प्रबल कर्म अशुभ हुआ तो उसका ग्रह भी उसके अनुसार मन्द होगा अर्थात् जिस स्थानपर वह ग्रह उसीके कर्मानुसार रहेगा, उस स्थानसे उसके शरीर या मनपर आकर्षण-विकर्षणका कार्य मन्द करेगा। अब यदि ऐसा कोई अनुष्ठान या क्रिया हो, जिसके द्वारा वह असत् कर्म दब जाय, तो यह बात आवश्यक है कि मन्द कर्मके दब जानेसे उसका ग्रह भी शान्त हो जायगा अर्थात् मन्द-कर्मानुसार जो ग्रहोंके आकर्षण-विकर्षणका प्रभाव अशुभ था, वह सुधर जायगा। यही ग्रहशान्तिका तत्त्व है। फलितज्योतिषके इस तत्त्वको न जानकर अज्ञानी पुरुषोंने बहुत ही कोलाहल मचा रखा है और पाण्डित्याभिमानसे उन्मत्त होकर ग्रहोंके नामोंका धात्वर्थ बिगाड़कर कुछ-से-कुछ कर डाला है, परंतु धीर होकर विचार करनेसे यथार्थतत्त्व विदित होगा और वेदोक्त उन सब शान्तिपाठ या शान्तिक्रियाओंका ठीक-ठीक तात्पर्य हृदयंगम होगा। अथर्ववेद (१९।९।१०, १९।९।७, १९।७।५)-में लिखा है—

'शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।'

'शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः।'

'आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु॥'

ग्रह, चन्द्र, आदित्य और राहु हमारे लिये शान्तिदाता हों। मित्र, वरुण और विवस्वान् हमारा कल्याण करें। रेवती, अश्विनी, भरणी आदि हमको ऐश्वर्य और धन दें, इत्यादि बहुत शान्तिमूलक मन्त्र वेदमें मिलते हैं। इसी तरह अपदेवताकी भी शान्ति हो सकती है। अपदेवता दैवी जगत्‌की तामसिक शक्तियाँ हैं। जिस प्रकार ग्रहोंका स्वाभाविक सम्बन्ध जीवोंके साथ रहता है, उसी प्रकार उन सब तामसिक शक्तियोंका सम्बन्ध तामसिक कर्ममय प्रकृतिके साथ रहता है; क्योंकि दोनोंके ही तामसिक होनेसे उनमें प्राकृतिक मेल है। अतः मनुष्योंका प्रारब्ध या बलवान् क्रियमाणकर्म असत् अर्थात् तामसिक हो तो उन सब शक्तियोंका मनुष्यपर अत्याचार हो सकता है। इस अत्याचारकी शान्ति ग्रहशान्तिकी रीतिपर अच्छे सात्त्विक कर्म या अनुष्ठान करनेसे हो सकती है; क्योंकि पूर्वकथित विज्ञानानुसार अच्छे कर्मसे बुरे कर्म दब जायँगे और बुरे कर्मके दब जानेसे तामसिक शक्तियोंका प्रभाव जीवके ऊपर नहीं हो सकेगा। इसलिये अपदेवता पिशाचादिकी भी शान्ति वेदमें लिखी है। यजुर्वेद (३४।५१)-में लिखा है—

न तद्रक्षाꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥

जो सुवर्ण धारण करते हैं, राक्षस और पिशाच उनपर आक्रमण नहीं कर सकते। यह देवताओंका प्रथम तेज है। इस दाक्षायण तेजको जो धारण करता है, वह देवलोक, मनुष्यलोक—सकल स्थानोंमें दीर्घायु होता है। इन सब तामसिक कर्मोंको दूर करनेके लिये जो सात्त्विक अनुष्ठान होना चाहिये, उसको करनेवाला कोई न हो या जो करता है वह ठग हो, मतलबी हो, धूर्त हो या लुटेरा हो, इसका दोष शास्त्रपर नहीं आ सकता है। अर्वाचीन लोगोंने क्रियाकाण्ड करनेवाले आजकलके बहुत ठग लोगोंका दृष्टान्त देकर जो शास्त्रोंका खण्डन किया है, यह उनकी सर्वथा भूल है। संसारके नास्तिक होनेपर भी ईश्वरका अस्तित्व नष्ट नहीं होता, उनकी सत्ता ऐसी ही रहती है। इसलिये यदि क्रिया या अनुष्ठानका फल ठीक नहीं होता या ठग लोग दुनियामें लूटते-खाते हैं तो कर्तव्य है कि शास्त्रोंको न उड़ाकर उन ठगोंको सजा दें, उन्हें समाजसे बहिष्कृत करें और अच्छे पुरोहित तैयार करें। इस प्रकार दोष दूसरेपर डालना बुद्धिमत्ता एवं सद्विचार नहीं है।

इसी प्रकार फलितज्योतिषके जन्मपत्र आदिका ठीक-ठीक फल अगर नहीं मिलता तो इससे फलित ज्योतिष झूठा नहीं बन सकता है। ऐसा सिद्धान्त करना और कोलाहल मचाकर मनुष्यबुद्धिपर अज्ञानका प्रभाव डालना धर्मजगत्‌में महापाप है। ग्रहों, उपग्रहोंके साथ जीवका तथा कर्मका क्या सम्बन्ध रहता है, सो पहले ही दिखाया गया है, उसपर विचार करनेसे फलित ज्योतिषकी सत्यता मालूम हो जायगी। अब विचार करनेकी बात है कि किसलिये जन्मपत्र आजकल झूठे बनते हैं; क्योंकि ग्रहोंका आकर्षण और कर्मके साथ उनका सम्बन्ध ठीक हो तो जन्मपत्रमें भूल नहीं होनी चाहिये। भूल होनेके कई कारण हैं, सो बताये जाते हैं। पहला कारण तो यह है कि आजकल ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले योग्य लोग ही कम रह गये हैं। अधूरे पण्डितोंसे इस प्रकार जन्मपत्र बनवानेपर भूल तो हो ही जायगी और जन्मपत्र शोकपत्र हो जायगा, इसमें सन्देह क्या? परंतु बनानेवालेकी मूर्खताका दोष फलित ज्योतिषशास्त्रपर नहीं लगना चाहिये। किसी धूर्त या ठगने यदि ज्योतिषज्ञानका भान करके रुपया कमाया तो इससे ज्योतिषशास्त्र झूठा नहीं हो सकता। कर्तव्य है कि उन सब ठगोंका बहिष्कार करके शास्त्रको सच्चे विद्वानोंके हाथमें रखा जाय और उन्हींसे सब काम कराया जाय। दूसरा कारण यह है कि जन्मकालमें जिस होराके जिस मिनट या सेकण्डपर बालक भूमिस्थ होता है, उसको गृहस्थ लोग ठीक-ठीक विचारसे नहीं देखते। कई कारणोंसे दो-चार मिनट इधर-उधर हो ही

जाता है, इससे ग्रहोंके स्थानोंमें बहुत अन्तर पड़नेसे और उसी भ्रमपूर्ण समयके अनुसार जन्मपत्रके बननेसे जन्मपत्र झूठा होता है, इसका दोष गृहस्थपर है, फलितज्योतिषपर नहीं है। तीसरा और चौथा कारण पहले ही कहा गया है। यथा—तीसरा कारण, ज्योतिषशास्त्रके बहुत ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं, जिससे सब विषयका पता नहीं चलता है और गणितमें ही त्रुटि हो सकती है। चौथा कारण यह है कि प्राकृतिक परिवर्तनोंके अनुसार ग्रहोंकी भी गतिमें परिवर्तन हो गया है, इसको ठीक-ठीक जाननेके लिये या तो योगशक्ति या दृग्गणितकी सहायता चाहिये, सो दोनों ही बातोंका आजकल अभाव है। अतः फलितज्योतिषपर दोषारोप न करके उसका संस्कार किया जाय। धनी लोगोंका रुपया वृथा खर्च न होकर इस काममें लगना चाहिये। यन्त्रालय आदि बनना चाहिये। पाण्डित्याभिमानी लोगोंका मस्तिष्क शास्त्रके उड़ानेमें खर्च न होकर शास्त्रकी जो दुर्दशा हो रही है, उसके सुधारमें खर्च होना चाहिये। ऐसा करनेपर भारतका भाग्य सुप्रसन्न होगा और जन्मपत्र भी शोकपत्र न होकर यथार्थ जन्मपत्र हो जायगा।

अपौरुषेय वेदके गम्भीर अर्थ जाननेके लिये छहों वेदांगोंका तत्त्वनिर्णय और सम्यक् परिज्ञान अत्यावश्यक है, बिना छहों अंगोंके भलीभाँति जाने वेदपारावारमें प्रवेश करना असम्भव है। प्राचीनकालमें इन छहों अंगोंकी समान रूपसे उत्तम शिक्षा हुआ करती थी। इस कारण वैदिक ज्ञानके लाभ करनेमें प्रजा समर्थ होती थी। वेदांगमें परिगणित **शिक्षाशास्त्र** स्थूल अक्षरमय वेदकी स्थूल शक्तिके यथावत् प्रकाशका क्रम और प्रकाश करनेकी शैली बताकर स्थूल अक्षरमय वेदके यथार्थस्वरूपको प्रकट करानेमें पूर्णरूपसे सहायता देता है। **कल्पशास्त्र** वैदिक क्रियाकलापका रहस्य और वैदिक कर्मकाण्डकी यथाक्रम पद्धति सिखलाकर वैदिक क्रियाशक्तिकी पूर्णता करते हैं। **व्याकरणशास्त्र** वेदोक्त अक्षरयोजना, योजनाक्रम और योजनाक्रमसे अक्षरार्थनिर्णय कराकर वेदमें प्रवेश करनेका द्वार खोल देते हैं। **निरुक्तशास्त्र** वेदोक्त शब्दोंसे वेदसम्मत भावका पता बताकर शब्दकी सहायतासे अनादि, अनन्त और अलौकिक भावराज्यमें जिज्ञासुको प्रवेश कराते हैं। **छन्दःशास्त्र** स्थूल वेदमयी ऋचाओंकी अन्तर्निहित दैवी शक्तिका पता लगाकर उनके द्वारा दैवी कार्य लेनेकी शक्ति बतलाते हुए, उनके प्रयोग करनेका दैवीमार्ग बताते हैं। **ज्योतिषशास्त्र** साधकको जगत्के आधाररूपी कालका स्वरूप-ज्ञान कराकर कालसेवाकी रीति बताते हुए उसे वेदोक्त साधनादिमें सफलता पानेके उपयोगी बना देता है।

'मार्तण्डाय नमो नमः'

जय सूर्याय देवाय तमोहन्त्रे विवस्वते। जयप्रदाय सूर्याय भास्कराय नमोऽस्तु ते॥
ग्रहोत्तमाय देवाय जय कल्याणकारिणे। जय पद्मविकाशाय बुधरूपाय ते नमः॥
जय दीप्तिविधानाय जय शान्तिविधायिने। तमोघ्नाय जयायैव अजिताय नमो नमः॥
जयार्क जय दीप्तीश सहस्रकिरणोज्ज्वल। जय निर्मितलोकास्त्वमजिताय नमो नमः॥
गायत्रीदेहरूपाय सावित्रीदयिताय च। धराधराय सूर्याय मार्तण्डाय नमो नमः॥

अन्धकारको दूर करनेवाले तथा जय प्रदान करनेवाले विवस्वान् भगवान् सूर्यकी सदा जय हो। प्रकाश देनेवाले आप सूर्यदेवको नमस्कार है। ग्रहोंमें श्रेष्ठ, कल्याण करनेवाले तथा कमलको विकसित करनेवाले भगवान् सूर्यकी जय हो, ज्ञानस्वरूप भगवान् सूर्य! आपको नमस्कार है। शान्ति एवं दीप्तिका विधान करनेवाले, तमोहन्ता तथा विजयरूप भगवान् अजित! आपको बार-बार नमस्कार है। सहस्रकिरणोज्ज्वल, दीप्तिके स्वामी, संसारके निर्माता, ज्योतिरूप आप अजितको बार-बार नमस्कार है, आपकी जय हो। गायत्रीस्वरूपवाले, सावित्रीके स्वामी तथा पृथ्वीको धारण करनेवाले मार्तण्ड भगवान् सूर्यदेव! आपको बार-बार नमस्कार है। **(भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व)**

प्रारब्ध और पुरुषार्थ

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती, सिहोरनिवासी)

एक मदारीने एक सर्प पकड़ा, उसे अपनी झँपोलीमें बन्द किया और झोंपड़ीमें रख दिया। सर्प तो सुदामाके समान स्वभावसे ही 'मिले तो खाय, नहीं तो सुखसे पड़ा रहे।' वह उस झँपोलीमें आरामसे पड़ा रहता था। रात होनेपर एक महापुरुषार्थी चूहा पुरुषार्थ करनेके लिये बाहर निकला। चूहेका यह स्वभाव होता है कि कपड़ा पाया तो उसे ही कुतर जाय, दियेकी बत्ती खा जाय और जो मिले उसीको उठा ले जाय। उस चूहेकी दृष्टि झँपोलीपर पड़ी, उसने उसके ऊपर अपने पुरुषार्थकी आजमाइश की और देखते-देखते उसमें छेद करके भीतर घुस गया। सर्पको तो बैठे-बैठे ही भोजन मिल गया और बाहर निकलनेके लिये रास्ता भी प्राप्त हो गया। इसलिये आरामसे चूहेको खाकर वह उसके बनाये छेदके द्वारा बाहर निकल गया।

इस प्रकार कुछ लोग प्रारब्धको बलवान् कहकर उसके समर्थनमें उपर्युक्त दृष्टान्त-जैसे अनेकों दृष्टान्त पेश करते हैं और दूसरे लोग पुरुषार्थको बलवान् बतलाते हैं तथा उसके समर्थनमें अनेक उदाहरण देते हैं। दोनों पक्षोंके दृष्टान्त युक्तियुक्त तथा पुराण आदि सद्ग्रन्थोंके आधारपर होनेके कारण साधारण आदमी घबरा जाता है और निर्णय नहीं कर पाता कि वस्तुत: सच क्या है?

इस-जैसी ही एक चर्चा मैंने सुनी थी। एक भाई कहता था कि स्वप्नसृष्टि बलवान् है और दूसरा कहता था—नहीं, जाग्रत्सृष्टि ही बलवान् है। यह विवाद उग्ररूप धारण कर रहा था, इतनेमें एक ज्ञानी पुरुष वहाँ आये और बोले—विवाद न करो, तुम दोनों ही ठीक हो और फिर इस प्रकार समझाया—

स्वप्नकालमें स्वप्नसृष्टि बलवान् है; क्योंकि वहाँ जाग्रत्का कोई पदार्थ काम नहीं आता। स्वप्नके ज्वरको उतारनेके लिये स्वप्नकी ही दवा चाहिये, जाग्रत्की कोई दवा वहाँ काम नहीं आती। स्वप्नमें आपरेशन करना हो तो जाग्रत्के छुरी-कैंची काम नहीं देती, बल्कि स्वप्नकी ही छुरी-कैंची चाहिये। इसलिये स्वप्नकालमें स्वप्नसृष्टि बलवान् है। जाग्रत्कालमें भूख लगनेपर स्वप्नके पकवान कुछ काम नहीं देते तथा जाग्रत्कालकी बीमारीमें जाग्रत्कालकी ओषधि ही काम देती है। इसलिये जाग्रत्कालमें जाग्रत्सृष्टि ही बलवान् है। सारांश यह है कि जाग्रत्कालमें जाग्रत्सृष्टि बलवान् है और स्वप्नसृष्टि निर्बल है तथा स्वप्नकालमें स्वप्नसृष्टि बलवान् है और जाग्रत्सृष्टि निर्बल है। यही बात प्रारब्ध और पुरुषार्थकी है। अपने-अपने कालमें दोनों बलवान् हैं और दूसरेके कालमें दोनों निर्बल हैं।

अब इस बातको समझनेके लिये एक दूसरा दृष्टान्त लीजिये। एक गृहस्थके बँगलेमें एक अच्छा बगीचा है और उस बगीचेमें एक ओर एक प्रकारके फूल बहुत बड़ी संख्यामें हैं। उस गृहस्थसे मिलनेके लिये सबेरे एक भाई आता है और उन दूधके फेन-जैसे सफेद फूलोंको देखकर प्रसन्न हो जाता है। दस बजे एक दूसरा भाई आता है और वह गुलाबी रंगके फूलोंको देखकर हर्षित हो जाता है, फिर एक तीसरा भाई बारह बजे आता है, उसे टेसूके फूल-जैसे लाल रंगके फूल दिखायी देते हैं और उसको वह दृश्य बहुत सुन्दर लगता है। उसके बाद वे तीनों साथ बैठकर बातें करने लगे। सबेरे आनेवाला भाई बोला—'उस ओरके सफेद फूल बहुत सुन्दर लगते हैं।' तब दस बजे आनेवाले भाईने कहा—'जान पड़ता है आपकी आँखें कमजोर हैं, फूल तो गुलाबी हैं और आप सफेद कह रहे हैं।' इतनेमें तीसरा भाई बोल उठा—'आप दोनोंको नेत्र-दोष हो गया। मालूम है फूल तो खासे लाल टेसू-जैसे चटकीले हैं और आपलोग सफेद और गुलाबी बतला रहे हैं।' इस प्रकार तीनों आदमी एक-दूसरेकी दृष्टिको दोषी ठहराने लगे और विवाद बढ़ गया। गृहस्वामीने उनको शान्त करके समझाया कि 'भाइयो! आप तीनों ही सच कहते हैं। किसीकी भी दृष्टि दूषित नहीं हुई है। ये एक ही फूल

सबेरे सफेद रहते हैं, दस बजते-बजते गुलाबी रंगके हो जाते हैं और मध्याह्न होते-होते टेसूके जैसे लाल हो जाते हैं। समय-भेदसे एक ही फूल विभिन्न रंगके दीख पड़ते हैं।'

इसी प्रकार समय-भेदसे कर्मके भी तीन भेद किये जाते हैं। जैसे—

(१) क्रियमाण कर्म—मनुष्य समझ होनेके बादसे मृत्युपर्यन्त 'मैं कर्म करता हूँ'—इस प्रकारकी बुद्धि रखकर जो-जो कर्म करता है, उसे 'क्रियमाण कर्म' कहते हैं। क्रियमाण शब्द 'कृ' (करना) धातुसे कर्मणि प्रयोगमें वर्तमानकालिक कृदन्त है। अतएव इसका अर्थ हुआ—वर्तमानकालमें होनेवाला कर्म। मनुष्यका जीवनकाल ही वर्तमानकाल है, इसलिये उसके जीवनकालमें जो-जो कर्म होते हैं, वे सब क्रियमाण कर्म कहलाते हैं।

(२) संचित कर्म—क्रियमाण कर्म तो रोज हुआ करते हैं, उनमें कुछ तो भोग लिये जाते हैं और शेष प्रतिदिन इकट्ठा होते रहते हैं और इस प्रकार चित्तरूपी गोदाममें एकत्रित हुए कर्मोंको संचित कर्म कहते हैं। संचित शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'चि' (चयन यानी इकट्ठा करना) धातुसे भूत-कृदन्तमें बनता है। इसका अर्थ 'व्यवस्थापूर्वक इकट्ठा हुआ' होता है। यदि हम प्रतिदिन एक-एक रुपया एक पेटीमें छोड़ते जायँ और सालभरके बाद पेटी खोलें, तो उसमें जो रुपया निकलेगा, वह सब एक वर्षका संचित रुपया कहलायेगा।

(३) प्रारब्ध कर्म—चित्तमें अनेक जन्मोंके संचित कर्म ढेर-के-ढेर पड़े रहते हैं। वे जन्म-जन्मान्तरके संचित कर्म इतने अपार होते हैं कि सृष्टिके आरम्भसे प्रलयतक भोगनेपर भी समाप्त नहीं होते। इनमेंसे मनुष्यके मरनेके समय जो-जो कर्मफल देनेके लिये परिपक्व होते हैं, वे अलग निकाल लिये जाते हैं और उन कर्मोंका फल भोगनेके लिये जीवको तदनुकूल देह धारण करना पड़ता है। प्रारब्ध शब्द 'प्र' और 'आ' उपसर्गपूर्वक 'रभ्' (शुरू करना) धातुका भूतकृदन्त रूप है। अतः इसका अर्थ हुआ—भूतकालमें हुए कर्म। अतएव प्रारब्ध कर्म वे हैं, जो गत जन्मोंमें किये गये हैं और जिनका फल इस जन्ममें भोगना है। गत जन्मोंके कर्मोंको जहाँ 'प्रारब्ध कर्म' कहते हैं, वहाँ इस जन्मके क्रियमाणको बहुधा 'अनारब्ध कर्म' भी कहते हैं, यानी वर्तमान जन्ममें होनेवाले कर्म।

इस तरह कालभेदसे कर्मके तीन प्रकार हुए। अब इन कर्मोंका स्वरूप देखना है, जिससे इनके बलाबलका पता लग सकेगा।

(१) क्रियमाण कर्म—मनुष्य अपने जीवनकालमें कर्म करनेमें पूर्ण स्वतन्त्र है। तनिक भी पराधीन नहीं है। फिर भी इतना अवश्य है कि चित्तके ऊपर पड़े हुए संस्कार उसको तदनुरूप कर्म करनेके लिये ललचाते हैं। यानी चित्तमें जो अशुभ संस्कार होते हैं वे अशुभ कर्म करनेके लिये ललचाते हैं, परंतु उस लालचमें पड़ने या न पड़नेमें मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र है। जिसका निश्चय दृढ़ होता है, वह मनुष्य प्रलोभनोंसे नहीं ललचाता और ढीले-ढाले निश्चयवाला मनुष्य ललचा जाता है तथा पराधीन बन जाता है। इसको समझनेके लिये एक छोटा-सा चुटकुला—दन्तकथा नहीं अपितु सच्ची घटना सुनी हुई है, उसे बताता हूँ। सौराष्ट्रके एक छोटे राज्यकी पुराने जमानेकी बात है। बन्दरगाहके अधिकारके विषयमें अंग्रेजोंके साथ एक शर्तनामा तैयार करना था और इस कामके लिये सरकारी कर्मचारी उस राज्यमें आया था। दीवानको राज्यके हितके लिये उसमें कुछ छूट करानी थी। इसलिये उसने उस कर्मचारीको ललचानेकी चेष्टा की और कहा—'इतना काम आप कर दें तो मैं इसके बदले दस हजार रुपये आपको दूँ।' उस कर्मचारीने निषेधात्मक सिर हिलाया। दीवानने बीस हजार देनेके लिये कहा, तिसपर भी वह कर्मचारी राजी न हुआ। बीसकी जगह पचास हजार देनेके लिये तैयार होनेपर भी कोई फल न निकला। दीवानको तो किसी तरह काम बनाना था। इसलिये उसने एक मुश्त एक लाख देनेके लिये कहा। दीवानके मनमें आया कि अब तो वह कर्मचारी अवश्य झुकेगा और अपना काम बन जायगा,

परंतु उस कर्मचारीने दृढ़तापूर्वक नकारात्मक ही उत्तर दिया। दीवानके क्रोधका पार न रहा और वह गरजकर बोला—'साहब! इतना देनेवाला आपको कोई न मिलेगा, यह याद रखियेगा और फिर जैसी मर्जी हो वैसा कीजियेगा।' उत्तर देते हुए उस कर्मचारीने शान्तिसे कहा—'दीवान साहब! इतनी बड़ी रकम देनेवाले आप तो मुझे मिल ही गये। बल्कि कुछ और माँगू तो आप मुझे दे सकते हैं, ऐसा मैं समझता हूँ, परंतु लिख रखिये कि अपनी टेक रखनेमें इतनी बड़ी रकमको—इतने बड़े प्रलोभनको ठोकर मारनेवाला भी आपको दूसरा कोई न मिलेगा।'

यहाँ समझनेकी बात इतनी ही है कि प्रलोभनके वशमें होने-न-होनेके विषयमें मनुष्य पूर्णतया स्वतन्त्र है और उसका आधार उसके निश्चयके बलपर होता है। इसलिये यह बात निश्चय हो गयी कि वर्तमान जीवनमें कर्म करनेमें पुरुष सब प्रकारसे स्वतन्त्र है। शुभ पुरुषार्थ करके स्वर्ग प्राप्त करना हो तो यह उसके हाथमें ही है और अशुभकर्म करके नरकमें जाना हो तो इसके लिये भी वह स्वतन्त्र है तथा ईश्वरका भजन करके ज्ञान प्राप्तकर मुक्ति पानी हो तो इसके लिये भी वह स्वतन्त्र है। क्या करे और क्या न करे—यह पुरुषके हाथकी बात है और अपना मार्ग निश्चित करनेमें पुरुष शतप्रतिशत स्वतन्त्र है। सार यह है कि वर्तमान जीवनमें पुरुषार्थ परम बलवान् है और प्रारब्ध या दूसरी कोई सत्ता उसके मार्गको नहीं रोक सकती।

(२) प्रारब्ध कर्म—अब प्रारब्ध कर्मका स्वभाव देखिये। जिन-जिन कर्मोंका फल भोगनेके लिये जीवने उनके उपयुक्त शरीर धारण किया, उन-उन कर्मोंका फल उसे उस शरीरसे भोगना ही पड़ता है। इससे बचनेका कोई रास्ता नहीं है; क्योंकि भोगके सिवा दूसरी किसी रीतिसे प्रारब्धका नाश नहीं हो सकता। यह बात भलीभाँति समझनेकी है और इसे हम एक-दो सीधे दृष्टान्तोंसे समझें।

भादोंके महीनेके कृष्णपक्षमें राँधण छठ,* शीतला सप्तमी और जन्माष्टमीके त्योहार एक साथ आते हैं। एक गृहस्थको पैसेकी कमीके कारण राँधण छठके दिन क्षणिक वैराग्य उपजा, इसलिये उसने गृहिणीसे कह दिया कि कल शीतला सप्तमीके लिये मोटी रोटी तथा सागके सिवा और कुछ भी नहीं बनाना है। गृहिणीने वैसा ही किया। सप्तमीके दिन उसकी थालीमें ठण्डी रोटी डाल दी। उसको तो उस दिन माल उड़ानेकी आदत थी, इसलिये उसे इससे दुःख हुआ और अप्रसन्न मनसे उसने पत्नीसे कहा—'आज खुशीके दिन ऐसा भोजन?' तब पत्नीने उसको समझाते हुए कहा कि 'ऐसी रसोई बनानेके लिये तो आपने ही आज्ञा दी थी और अब खानेके समय घबराते क्यों हैं? यह तो ठीक नहीं है। आपकी ही आज्ञाके अनुसार सब किया गया है, इसलिये आपको कुछ भी बोले-चाले बिना थालीमें जो कुछ परोसा गया है, उसे आनन्दसे खा लेना चाहिये। अप्रसन्न होकर भोजन करेंगे तो भी तो इसीसे काम चलाना पड़ेगा। अप्रसन्न होनेसे कुछ बढ़िया भोजन तो थालीमें आ नहीं जायगा। इसलिये जो प्राप्त है, उसीको आनन्दसे खा लीजिये। कलके फलाहारमें जो कहियेगा, वह बना दूँगी और परसों पारणाके दिन भी आपके पसन्दकी रसोई तैयार करके परोस दूँगी; परंतु आज तो जो प्राप्त है उसीसे काम चलाना है, इसमें कोई फेर-फार नहीं हो सकता।'

इसी प्रकार जिस-जिस कर्मका फल भोगनेके लिये जीवने यह देह धारण की है, इस देहसे उसे उस-उस कर्मफलको भोगना ही पड़ेगा। इसीसे देहका एक अर्थसूचक नाम 'भोगायतन' भी है। अर्थात् गत जन्मोंके शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेका स्थान। जीवका वर्तमान देहसे जिस-जिस सुख-दुःखका भोग निर्मित हो चुका है, उस-उसको इस देहसे भोगे बिना छुटकारा नहीं है। भावी जीवनका निर्माण तो जीव अपनी इच्छाके अनुसार

* गुजरातमें शीतलाजीके लिये इस दिन रसोई बनायी जाती है और दूसरे दिन ठण्डी खायी जाती है। इस रसोई बनानेके दिनको 'राँधण छठ' कहते हैं। राजस्थानमें यह त्योहार 'बासेड़ा' के नामसे चैत्र कृष्णपक्षमें मनाया जाता है।

कर सकता है, परंतु निर्माण हो चुके भोगमें रंचमात्र भी फेरफार नहीं हो सकता।

इस विषयको और भी अधिक समझनेके लिये एक दूसरा दृष्टान्त लीजिये। एक बहुत ही छोटा राज्य है। राजाको किसी कारणवश ऐसी इच्छा हो जाती है कि इस साल एक बाजरेके सिवा दूसरा कुछ बोना ही नहीं है, इसी प्रकार बाड़ीमें भी साग-सब्जीके सिवा और कुछ भी नहीं बोना है। राजाने अपने राज्यमें यह आज्ञा निकाल दी। इससे उस वर्ष वहाँ बाजरा और साग-भाजीके सिवा और कुछ भी पैदा नहीं हुआ। कुछ समयतक राजाको अपने अहंकारके कारण यह बात अच्छी लगी, परंतु प्रतिदिन बाजरेकी रोटी और साग खाते-खाते वह भी ऊब गया। उसका समग्र परिवार और सारी प्रजा भी त्राहि-त्राहि पुकारने लगी, पर अब उपाय क्या है? अगले वर्षतक हँसकर या रोकर इसीसे काम चलाना है। दूसरी कुछ वस्तु आकाशसे उतर तो सकती नहीं, परंतु इस दुःखसे राजा और प्रजा दोनोंमें विवेक जाग्रत् हो गया और निश्चय किया गया कि अगले वर्ष फिर गत वर्ष-जैसा मूर्खतापूर्ण कदम नहीं उठाया जायगा और ऐसा निश्चय किया कि इस साल सभी प्रकारके अनाज बोये जायँगे, दलहन बोयेंगे, जाड़ेमें गेहूँ, चना और गन्ना भी बोयेंगे, जिससे भाँति-भाँतिकी खानेकी वस्तुएँ मिलेंगी और राजा-प्रजा सभी सुखसे रह सकेंगे।

इसी प्रकार जीवके लिये भी जिन सुख-दुःखादि भोगोंका निर्माण हो चुका है, उनको भोगनेपर ही छुटकारा मिल सकता है, बचनेका कोई उपाय है ही नहीं। परंतु दुःख आ पड़नेपर यदि विवेक उत्पन्न हो जाय तो भविष्यका निर्माण करनेके लिये स्वतन्त्र होनेके कारण वह सुखमय भविष्यका निर्माण कर सकता है।

और अधिक समझनेके लिये एक तीसरा दृष्टान्त लीजिये। बरसातके प्रारम्भमें बड़े-बड़े रसीले जामुन खानेको मिलते हैं, यह सोचकर एक आदमीने जामुन उगानेका निश्चय किया और बरसातमें एक बीज बो दिया। बीजसे अंकुर निकलकर बढ़ने लगा, समय आनेपर वह एक बड़ा पेड़ हो गया और उसमें जामुन भी फले। उसने तृप्तिपर्यन्त प्रतिदिन खूब आनन्दसे जामुन खाये। पर रोज-रोज जामुन खानेसे वह उकता गया और जामुनसे उसको अरुचि पैदा हो गयी। वह सोचने लगा कि इस पेड़पर यदि आम लगते तो ठीक था। उसने बहुतोंसे पूछा, परंतु इसका उपाय किसीने उसको नहीं बताया, बल्कि उलटे लोग मजाक करने लगे। एक विचारवान् पुरुषने उसको समझाया कि 'भाई, जामुनके पेड़पर तो जामुन ही लगता है, दूसरा कोई फल नहीं लगता। इसलिये आम खाने हों तो आमका पेड़ लगाओ, उसपर फल लगें तब सुखसे आम खाना, तबतक तो जामुनके सिवा दूसरा कुछ मिलनेवाला नहीं है।'

इसी प्रकार जो भोग इस देहके लिये निर्माण हो गया है, जबतक इस देहमें जीव है तबतक उसको भोग लेनेपर ही छुट्टी मिल सकती है। भविष्यका निर्माण करना तो उसके हाथकी बात है और अपनी इच्छाके अनुसार करनेमें वह स्वतन्त्र है। अर्थात् आम बोना चाहे तो आम बो सकता है और बबूल बोना चाहे तो भी उसको कोई रोक नहीं सकता, परंतु भूतकालको किसी प्रकार बदल नहीं सकता। बबूलके पेड़पर लाख प्रयत्न करनेपर भी आम नहीं लग सकता।

अब यह बात इतनी विस्तारपूर्वक क्यों समझायी गयी है, इसपर विचार करना है। मनुष्यको जब यह पक्का निश्चय हो जाता है कि मुझे जिस दुःखका भोग प्राप्त होता है, वह मेरे ही अपने विचारपूर्वक किये हुए कर्मोंका फल है तो फिर अपने ही किये कर्मोंका फल भोगनेमें मुझे घबराना क्यों चाहिये? जैसे सुखभोग मेरे ही कर्मोंका फल है, वैसे ही दुःखभोग भी मेरे ही किये कर्मोंका फल है—तब फिर सुख आनेपर हम क्यों भूल जायँ? और दुःख पड़नेपर मुरझायें क्यों? और फिर सुख-दुःख सदा रहनेवाले तो हैं नहीं, वे तो क्षण-क्षणमें बदला करते हैं, फिर सुख और दुःख दोनोंमें हम समान भाव क्यों न रखें? आखिरकार सुख और दुःख दोनों

ही तो अपनी ही कृति है न? तब फिर एकके लिये राग और दूसरेके लिये द्वेष किसलिये? इस प्रकार विचार करते-करते सुख-दुःखमें समता आ जाती है। इस प्रकारकी समता आ जाय तो समझ लीजिये कि मोक्षका द्वार ही खुल गया। श्रीभगवान् कहते हैं—

'इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।'

अर्थात् जिन मनुष्योंके मनमें सुख-दुःखके भोगमें समता आ गयी है, उन्होंने तो इहैव अर्थात् इसी जन्ममें या इस शरीरसे ही संसारको जीत लिया। अर्थात् जन्म-मरणके बन्धनसे वे मुक्त हो गये—जीवन्मुक्तकी दशाको प्राप्त हो गये। इतना महान् है प्रारब्धके रहस्यको जाननेका फल।

(३) संचित कर्म—यह कर्मका अक्षय भण्डार है। भोगनेसे कभी समाप्त होनेवाला नहीं है, फिर कर्मका एक सर्वमान्य नियम यह है कि **'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कोटिकल्पशतैरपि'**—अर्थात् कोई भी कर्म करोड़ों कल्प बीतनेपर भी बिना भोगे नाशको प्राप्त नहीं होता। तब फिर जीवकी मुक्तिकी आशा ही क्या? कर्मका भण्डार अक्षय है और उसको भोगते-भोगते जीव अनादि कालसे चौरासी लाख योनियोंमें शरीर धारण करता चला आ रहा है तो भी यह कर्मभण्डार आज भी अक्षयरूपमें भरा ही हुआ है। तब तो जीवकी मुक्तिका कोई साधन ही नहीं रहा। श्रीभगवान् कहते हैं कि जीवको निराश होनेकी कोई जरूरत नहीं। इसका भी रास्ता मैंने सोच रखा है—

'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।'

श्रीभगवान् कहते हैं कि अर्जुन! जैसे लौकिक अग्नि लकड़ीके ढेर-के-ढेरको क्षणभरमें जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि भी कर्मके महान्-से-महान् भण्डारको भी क्षणभरमें जला डालती है। घासकी चाहे जितनी बड़ी राशि हो, मीलोंतक फैली हो, तथापि दियासलाईकी एक ही बत्ती जलानेपर क्षणमात्रमें भस्मसात् हो जाती है। इसी प्रकार अनेक जन्मोंके शुभाशुभ कर्म ज्ञानाग्निकी एक ही चिनगारी पड़ते ही जलकर भस्म हो जाते हैं।

जब देखो, प्रारब्धकर्म तो भोग लेनेपर अपने-आप नाशको प्राप्त हो जायगा, इसमें कुछ हेर-फेर होनेवाला नहीं। संचितकी राशि ज्ञानाग्निसे भस्म हो जाती है, इससे फिर जीवको दूसरा देह धारण करनेका कोई कारण ही नहीं रहा। अतः सहज ही मुक्ति मिल गयी; क्योंकि जीवको शरीर धारण करना पड़ता है अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये, परंतु जब कर्म ही न रहा तो फिर क्या और किसका फल भोगनेके लिये जीवको देह धारण करना पड़ेगा अर्थात् ज्ञान होनेके बाद जीवको शरीर धारण नहीं करना पड़ता।

श्रुतिने जीवकी मुक्तिका यह साधन बताया है। वह कहती है—**'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।'** अर्थात् ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती। इसका कारण यह है कि कर्मके इस अक्षय भण्डारका नाश करनेके लिये दूसरा कोई साधन ही नहीं है। वह केवल ज्ञानसे ही भस्मसात् होता है। जबतक कर्म हैं तबतक उनको भोगनेके लिये शरीर धारण करना ही पड़ता है, फिर कर्म तो अक्षय हैं और बढ़ते ही जाते हैं, अतएव इस चक्करसे छूटनेका कोई दूसरा मार्ग नहीं है, यह श्रुतिका तात्पर्य है।

अब कर्मका बलाबल आसानीसे समझा जा सकता है—

(१) वर्तमान जन्ममें जीव पुरुषार्थ करनेमें सब प्रकारसे स्वतन्त्र है, उसको कोई रोक नहीं सकता।

(२) जिस-जिस कर्मका फल भोगनेके लिये जीवने यह शरीर धारण किया है, उन-उन निर्माण हो चुके हुए सुख-दुःखोंको इस वर्तमान शरीरसे भोगना ही पड़ेगा। भविष्यका निर्माण तो वह अपनी इच्छाके अनुसार कर सकता है, परंतु भूतकालके निर्माणको वह बदल नहीं सकता।

(३) संचित कर्मका भण्डार अक्षय है, वह भोगके द्वारा समाप्त होनेवाला नहीं है। इसलिये यदि जन्म-मरणके जंजालसे छूटना है तो जिस प्रकार हो सके तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जिससे ज्ञानरूपी अग्निसे सारे संचित कर्म जलकर भस्म हो जायँगे और जीवको पुनः शरीर धारण करना नहीं पड़ेगा।

कालविवेचन

(महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराज)

(१)

काल-संकर्षण

साधारण दृष्टिसे आलोचना करते समय यह जान पड़ता है कि विश्वमें दो विपरीत शक्तियाँ कार्य कर रही हैं। उनमें एक 'भगवत्-शक्ति' या 'अनुग्रह-शक्ति' के नामसे अभिहित है और दूसरी शक्तिका नाम 'कालशक्ति' या 'तिरोधान-शक्ति' है। पूर्ण परमतत्त्वमें ये दोनों शक्तियाँ परस्पर भेदरहित अभिन्न रूपमें स्वातन्त्र्य स्वरूप नाम ग्रहण करके कार्य करती हैं। किंतु परमेश्वर जब आत्मसंकोच करके जीवरूपमें आत्मप्रकाश करते हैं, तब शक्तिकी ये दोनों धाराएँ पृथक् हो जाती हैं। एक जीवभाव या पशुभावका पुष्टिसाधन करती है और दूसरी पशुभाव निवृत्त करके परम-स्वरूपमें प्रत्यावर्तन करनेमें सहायता करती है। अनुग्रह-शक्ति क्रमशः आत्माको परमस्वरूपमें पुनः प्रतिष्ठित करती है। कालशक्ति निरन्तर बहिर्मुख प्रेरणाके द्वारा जीवको संसारमें जकड़े रखती है। जो शक्ति क्रमशः कालको स्वाधिकारसे अपसारित करती है, उसका नाम है—'कालसंकर्षिणी शक्ति'। क्रम कालका धर्म है। काल-राज्यमें क्रमका अवलम्बन करके ही चलना पड़ता है। काल-संकर्षणका चरम लक्ष्य है—क्रमको अतिक्रम करके अक्रम-स्वरूपमें आत्मप्रकाश करना। काल-संकर्षणके फलसे क्रमशः कालसे क्षणकी प्राप्ति होती है। विश्वराज्य कालके अधीन है। इसी कारण इसमें निरन्तर परिणाम हो रहा है। इस परिणाममें क्रमका मात्रागत तारतम्य रहता है। भगवत्कृपाके प्रभावसे यह मात्रागत तारतम्य क्रमशः स्थूलसे सूक्ष्ममें परिणत होता है। चैतन्यकी अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है, कालकी मात्रा उतनी ही क्षीण होती जाती है। इसके फलस्वरूप कालके स्पर्शहीन चैतन्यस्वरूपमें कालगत मात्राका प्रभाव कुछ भी नहीं रहता। वहाँ एक ही क्षणमें अनादि-अनन्त महाकाल प्रकाशित हो उठता है। कालमें क्रम है, किंतु 'क्षण' में क्रम नहीं है। जब आवरण क्रमशून्य भावमें चला जाता है, तब एकमात्र क्षण ही वहाँ रह जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि एक ही क्षणमें समग्र विश्वका परिणाम संघटित हो जाता है। कालसे क्षणमें प्रविष्ट होनेके उपायका अवलम्बन कर पानेपर इच्छामात्रसे अविलम्ब क्षणमें प्रवेश हो जाता है। कालराज्यके विभिन्न स्तर हैं। प्रत्येक स्तरमें कालकी गतिमें मात्राका तारतम्य है। यह तारतम्य वेगकी न्यूनता अथवा अधिकतापर निर्भर करता है। जहाँ अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे कालकी मात्रा क्षीण हो जाती है, वहाँ कालसन्धि प्रकाशित होती है, वहाँ क्षणका प्रकाश सहज ही अनुभवमें आने लगता है। जिस स्थानमें या जिस अवस्थामें यह क्रम लुप्त हो जाता है, उस स्थानमें क्षणका प्रकाश अनिवार्य हो जाता है। क्षण जब स्थायी रूपमें प्रतिष्ठित होता है, तब वहाँ काल नहीं रहता। इस अवस्थाको 'काल-संकर्षिणी' की अवस्था कहते हैं। संवेगके तारतम्यके अनुसार इस अवस्थाके नाना प्रकारके भेद हो सकते हैं। 'क्रमहीन काल'का ही नाम 'क्षण' है। क्षण नित्य और स्वयंप्रकाश है। व्यवहार-भूमिमें कालका क्रम स्वीकार करना पड़ता है, परंतु क्षणिक ज्ञान व्यवहार-भूमिका विषय नहीं है। 'अनन्त काल' शब्दसे हमारा जो अभिप्राय होता है, वह एक दृष्टिसे क्षणके सिवा और कुछ नहीं है। कालसंकर्षिणीके प्रभावसे कालकी निवृत्ति हो जाती है। कालकी निवृत्तिके साथ-साथ अखण्ड स्वयंप्रकाशपूर्ण आत्मतत्त्व, निष्कल स्वातन्त्र्यमय प्रकाशरूपमें प्रस्फुटित होता है। कालकी मात्राके अनुसार उसके वेगकी न्यूनता या अधिकताका निरूपण किया जाता है। कालके साथ देशका ज्ञान नित्य संश्लिष्ट है, अतएव काल-निवृत्तिके साथ देश-निवृत्ति भी हो जाती है। तब आत्मा देश और कालसे मुक्त हो जाता है। इस अवस्थामें अपने संकल्पके अनुसार उसके

सामने कोई भी देश और कोई भी काल व्यक्त हो सकता है। इस प्रकार योगीका नित्यत्व और व्यापकत्व उसके निकट प्रकट हो जाता है।

(२)

कालका आवर्तन

कालकी गति आवर्तनशील है। इस आवर्तनमें सारा विश्व अपनी-अपनी मात्राके अनुसार आवर्तित होता रहता है। कालकी सरल गति भी है। उसमें काल महाकालरूपमें आत्मप्रकाश करता है। मायाराज्यको पार करनेपर कालकी वक्रगतिसे उद्धार पाना सम्भव होता है। तब सरल गतिका प्रकाश रहता है। इससे तीनों काल एक अखण्ड वर्तमान रूपमें प्रकाशित होते हैं। कालकी सरल गतिके बाद केन्द्रस्थानमें काल स्थिरत्व प्राप्त करता है। काल महाकालमें परिणत होकर कालातीत नित्य विराजमान परम पुरुषरूपमें आत्मप्रकाश करता है। कालकी वक्रताके चले जानेपर अनन्त आकाशकी अनन्त सत्ता निरावरण होकर वहाँ प्रकाशमान होती है। तब सर्वदेश और सर्वकाल एक महाबिन्दुके बीच प्रकाशमान हो जाता है अर्थात् तब योगीकी इच्छाके साथ-साथ तत्तत् देश और तत्तत् काल प्रकाशित होते हैं। तब व्यवधान अथवा दूरत्व नहीं रहता। आचार्य भर्तृहरि कहते हैं—

आविर्भूतप्रकाशानामनुपद्रुतचेतसाम्।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते॥

अर्थात् महाप्रकाशका आविर्भाव होनेपर किसी प्रकारका आवरण क्रिया नहीं कर सकता। आवरण तमोगुणका कार्य है। प्रकाशके आनेपर जैसे अन्धकार हट जाता है, ठीक उसी प्रकार महाप्रकाशके उदय होनेपर सब प्रकारके आवरण तिरोहित हो जाते हैं। चित्तकी चंचलता रजोगुणसे उत्पन्न होती है तथा महाप्रकाशका उदय होनेपर तमोगुणके समान रजोगुण भी अपसृत हो जाता है। तब चित्तमें चंचल भाव बिलकुल ही नहीं रहता। चंचलताशून्य चित्तके सामने निरावरण प्रकाशका आविर्भाव होनेपर विश्वमें कुछ भी अप्रत्यक्ष नहीं रह सकता। तब सब कुछ नित्य वर्तमान रूपमें उपलब्ध हो सकता है। किंतु यह उपलब्धि 'अहं' रूपमें न होकर 'अहं' के आगे स्थित 'इदं' रूपमें होती है। कालका चरम अवसान हो जानेपर और महाकालके निवृत्त हो जानेपर जो अवस्था अभिव्यक्त होती है, वह महासृष्टिके भी अतीत है। वही 'पूर्णाहन्ता-स्वरूप' है।

अमरत्वकी प्राप्ति और मृत्यु-विजय

साधारण स्थूल दृष्टिसे अमरत्वकी प्राप्ति और मृत्यु-विजय एक ही अवस्थाके दो नाम जान पड़ते हैं, परंतु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है; क्योंकि अमरत्वकी प्राप्तिकी अपेक्षा मृत्यु-विजय बहुत ही ऊँची अवस्था है। समुद्र-मन्थनके उपाख्यानसे जाना जाता है कि समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न अमृतका पान करके देवताओंने अमरत्व प्राप्त किया था; परंतु समुद्र-मन्थनसे ही उत्पन्न तीव्र हलाहल विषको ग्रहण करनेमें उनमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ। जिन्होंने उस हलाहलको पान करके पचा लिया था, उनकी स्थितिको केवल देवताओंके अनुरूप वर्णन करनेसे काम नहीं चलता। इसीलिये उनको 'मृत्युंजय', 'महादेव' कहा जाता है। कालरूपी मृत्युपर विजय प्राप्त किये बिना कोई 'मृत्युंजय' नहीं हो सकता। यह काल ही 'कालकूट' विष है। देवता लोग इसको पचा नहीं सकते। समस्त विश्व-सत्ताको मन्थन करके उसमेंसे सुन्दर और शोभन अंश जो ग्रहण करते हैं, वे दिव्य पुरुष हैं; किंतु इस मन्थनसे उत्पन्न विश्वकी अन्तर्वर्ती प्रतिकूल सत्ता, जिसको देवगण सहन नहीं कर सकते, उसको भी जो अम्लानवदन—प्रसन्न मुखसे पान करके मृत्युके ऊपर जय-ध्वजा फहराते हैं, वे 'मृत्युंजय' महादेव हैं। इसीका नाम है—स्वरूपका रूपान्तर-सम्पादन। कालपर विजय प्राप्त करना हो तो केवल निम्नस्तर त्यागकर उच्चस्तरमें गमन करनेसे काम नहीं चलेगा। दोनों स्तरोंका समीकरण करके दोनोंको एक करना आवश्यक है अर्थात् दृष्टान्तस्वरूप कहा जा सकता है कि अन्नमयसे प्राणमय स्तरमें जाकर तथा पूर्णतः प्राणमय स्तरमें तादात्म्य प्राप्त करनेसे काम नहीं

चलेगा। प्राणमयसे प्राणशक्ति लेकर अन्नमयमें अवरोहण करना होगा तथा अन्नमयको प्राणशक्तिके प्रभावसे प्राणमयरूपमें परिणत करना होगा। इस प्रकार बारंबार करते-करते एक ओर प्राणमय जैसे अन्नमय सत्तामें सत्तावान् होता है, दूसरी ओर वैसे ही अन्नमय भी प्राणमय सत्तामें सत्तावान् हो जाता है। पश्चात् ये दोनों एक हो जाते हैं।

इस विषयको समझानेकी सुविधाके लिये 'क' नाम रखा गया। इसके बाद 'क' ऊर्ध्वगतिके द्वारा मनोमयमें प्रवेश करता है और उसके साथ एक हो जाता है। तत्पश्चात् 'क' में अवतरण करके 'क' को भी मनोमय कर डालता है। धीरे-धीरे वह एक हो जाता है। उसका नाम 'ख' है। उसके बाद 'ख' ऊर्ध्वगतिके द्वारा विज्ञानमय कोषमें प्रवेश करता है और उसके साथ ऐक्य प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह उतरकर 'ख' के साथ एक हो जाता है। इस अवस्थाका नाम 'ग' है। इसके बाद 'ग' उत्थित होकर आनन्दमय कोषको स्पर्श करता है और उसको अपना लेता है। उसके बाद यह एकीभूत सत्ता विज्ञानमयमें अवतरण करती है और विज्ञानको अपने साथ अभिन्नरूपमें स्थापित करती है। इसका नाम 'घ' है। इसके परे भी अवस्था है। जिसको 'घ' कहा गया, वह एक ही साथ अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनन्दमय सत्ता है। किंतु यह अचित्-स्वरूप है। इसके बाद 'घ' चित्-स्वरूप आत्मामें प्रवेश करके उसके साथ एक हो जाता है। उसके बाद चित्स्वरूप आत्मा अवतरण करके अचित्के साथ एक हो जाता है। तब चित् और अचित्का अथवा आत्मा और शरीरका भेद नहीं रहता। यहाँतक सम्पन्न होनेपर चित् और अचित्का भेद कट जाता है तथा स्थूल और सूक्ष्मका भी भेद नहीं रह जाता। विभिन्न खण्ड सत्तामेंसे सब प्रकारका पार्थक्य तिरोहित होकर एक अखण्ड सत्ता विद्यमान हो जाती है। यही यथार्थ सिद्धावस्था है। इसीके दूसरे नाम 'कालजय' या 'मृत्युंजयत्व' की प्राप्ति है। यह देवावस्थासे बहुत ऊँची अवस्था है; क्योंकि देवावस्थामें अमरत्वकी प्राप्ति तो होती है, किंतु मृत्युपर जय प्राप्त नहीं है। अमर लोग मृत्युसे डरकर दूर ही रहते हैं। इसीसे कहा जाता है कि देवगण भी मृत्युके अधीन हैं। सोमपान या अमृतपानके द्वारा देवगण जो अमरत्व प्राप्त करते हैं, वह केवल दीर्घजीवनकी प्राप्तिमात्र है। महाप्रलय या अतिमहाप्रलयमें इस दीर्घजीवनका भी अवसान हो जाता है; किंतु मृत्युंजय-अवस्था कालातीत है। उसमें मृत्यु ही नहीं रहती। सिद्धगणका सिद्धत्व इस मृत्युंजयत्वकी सामर्थ्यके ऊपर निर्भर करता है। केवल मृत्युंजयत्व चरम सिद्धि नहीं है। गीता (१४।२)-में जो कहा है—

'सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।'

यह इसी 'कालातीत मृत्युंजय' अवस्थाका वर्णन है।

(३)

काल और महाकालका रहस्य

काल और महाकालके रहस्यके सम्बन्धमें संक्षेपमें कुछ कहा जाता है। काल और महाकाल स्वरूपतः एक ही वस्तु हैं। तथापि दोनोंमें पार्थक्य है। जगत्के परिणामके मूलमें कालकी शक्ति क्रिया करती है। प्रकृतिके परिणामशीला होनेपर भी सृष्टिकी धारा कालके द्वारा ही नियन्त्रित होती है। पातंजलदर्शनके दृष्टिकोणसे ज्ञात होता है कि प्रकृति परिणामिनी है। यह परिणाम दो प्रकारका है। एक परिणाम, 'सदृश परिणाम' के नामसे ख्यात है। दूसरेका नाम 'विसदृश परिणाम' है। गुणत्रयकी साम्यावस्था ही प्रकृतिका स्वरूप है। वैषम्यावस्थामें सृष्टिका उदय होता है। लयके समय सत्त्व सत्त्वरूपमें, रजः रजोरूपमें और तमः तमोरूपमें 'सदृश परिणाम' को प्राप्त होता है। इस परिणामके साथ भी कालका सम्बन्ध है। इस परिणामके समय सारे कर्म-संस्कार परिपक्व होते हैं और सृष्टिकी उन्मुखावस्थाका उदय होता है। सृष्टिके नियामकके रूपमें कालके न रहनेपर प्रलयके अन्तमें सृष्टिके आरम्भ होनेका कोई निर्देश न रहता। प्रकृतिका परिणाम स्वभावसिद्ध होनेपर भी गुणका परिपाक कालसापेक्ष है। गुणके परिपाकके बिना 'विसदृश परिणाम' अथवा 'तत्त्वान्तर परिणाम'

नहीं होते। तत्त्वान्तर परिणामकी सम्भावना न रहनेपर सृष्टिका उदय असम्भव हो जाता है। सृष्टिके मूलमें कर्मसंस्कार रहता है, यह सत्य है; किंतु अपक्व संस्कारसे सृष्टि नहीं होती। इसके लिये कालकी अपेक्षा है। इसी कारण महाभारतमें कहा है कि—

'कालः पचति भूतानि।'

'तत्त्वान्तर परिणाम' के तीन प्रकार हैं—धर्म, लक्षण और अवस्था। प्रकृति धर्मी है। वह जो धर्मरूपमें परिणत होती है, वही उसका प्रथम परिणाम है। यह धर्म उसके बाद काल-परिणामके अधीन हो जाता है। 'काल-परिणाम' को 'लक्षण-परिणाम' कहते हैं। अनागत, वर्तमान और अतीत—ये तीन लक्षण हैं। इनका त्रिकाल (तीन काल)-के नामसे वर्णन किया जाता है। धर्म सबसे पहले अनागत लक्षणमें प्रवेश करता है। उसके बाद अनागत धर्म अर्थात् भविष्य धर्म वर्तमान रूपमें परिणत हो जाता है। अनागतको करण व्यापारके द्वारा वर्तमानमें परिणत करना पड़ता है। अकृत्रिम रूपमें यह स्वभावतः होता है। कृत्रिम रूपमें मनुष्य इसे कर सकता है या किया करता है। अनागत-अवस्थामें जो सत्ता रहती है, वर्तमान अवस्थामें भी सत्ता वही रहती है। परंतु अनागत-अवस्थामें वह अव्यक्त होती है। करण आदि अभिव्यंजकके द्वारा अभिव्यंजित होकर वह वर्तमान रूपमें स्थित होती है। यहाँ याद रखना चाहिये कि करण व्यापार अनागत सत्ताको अभिव्यक्त करके वर्तमानमें व्यक्त करता है, यह सत्य है। किंतु केवल धर्म सत्ताको अव्यक्त-अवस्थासे व्यक्त नहीं कर सकता। धर्म-परिणाम कालसे संश्लिष्ट हुए बिना अनागत लक्षण-परिणामके रूपमें परिणत नहीं हो सकता। लक्षण-परिणाम वस्तुकी व्यापक सत्ता है। वह परिणामशील होकर भी जबतक अव्यक्त रहती है, तबतक उसमें क्षणिक परिणामका उदय नहीं होता। वर्तमान लक्षणमें प्रतिक्षण परिणाम सम्भव है। इसीका नाम 'अवस्था-परिणाम' है। अतीत लक्षणमें क्षणिक परिणामका सन्धान नहीं मिलता। अनागत और अतीत, दोनों क्षेत्रोंमें ही क्षणिक परिणाम नहीं होता। कालक्रमको अवलम्बन करके परिणाम कार्य-सम्पादन करता है। इस क्रमके द्वारा ही पूर्वापर अनुभव होता है। वस्तुतः यह क्रम क्षणका ही क्रम है। योगीके सिवा दूसरा कोई 'क्षणका क्रम' नहीं समझ सकता। वस्तुतः एक ही क्षणमें समस्त जगत् परिणाम अनुभव करता है। योगीकी दृष्टिमें काल बौद्ध पदार्थ है। बुद्धिके बाहर काल नहीं है, क्रम है। क्षणके क्रमके अनुसार कालका परिणाम होता है। क्षण और उसके ऊपर योगी 'विवेकज ज्ञान' प्राप्त कर सकता है। 'विवेकज ज्ञान' विवेकज्ञान नहीं है, वह उससे पृथक् है। यह 'अनौपदेशिक प्रातिभ ज्ञान' है। इस प्रातिभ ज्ञानसे त्रिकालका पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होता है। उसमें कोई क्रम नहीं रहता। वह शब्दजनित ज्ञान नहीं है। अतएव उसमें क्रमका प्रश्न ही नहीं उठता।

तान्त्रिक दृष्टिके अनुसार काल और महाकालमें पार्थक्य है। पूर्णत्वमें जानेके मार्गमें कालराज्यको भेद करके महाकालमें प्रवेश होता है। उसके बाद महाकालका भी भेद करके पूर्ण अहंतामय अखण्ड राज्यमें प्रवेश होता है। जैसे महाप्रलयका विवरण सुननेमें आता है, वैसे ही महासृष्टिका सन्धान भी शास्त्रोंमें उपलब्ध है। महासृष्टिमें न तो अतीत, अनागत, वर्तमानका कोई भेद है तथा न उसमें कोई भी परिणाम है। अनन्त सृष्टिकी सम्पूर्ण सत्ता ही वहाँ नित्य वर्तमानरूपमें प्रकाशित है। परंतु यह अनन्त सृष्टि इदं रूपमें प्रकाशित है, अहं रूपमें नहीं। जो कोई जो कुछ खोजेगा, वहाँ उसको वही मिलेगा। वहाँ किसी वस्तुका अभाव नहीं है। वहाँ अतीत भी वर्तमान है, अनागत भी वर्तमान है और वर्तमान भी वर्तमान है। हमारे परिचित वर्तमानमें क्षणिक परिणाम है, परंतु वहाँ वह भी नहीं है।

हमारा परिचित विश्व कालराज्यमें अवस्थित है। जिसको ब्रह्माण्ड कहा जाता है, वह कालके अधीन है; क्योंकि इसकी भी सृष्टि, स्थिति और संहार है। ब्रह्माण्डकी संख्या असंख्य है, पर सर्वत्र यही नियम है। ब्रह्माण्डकी समष्टिको लेकर प्रकृत्यण्डकी सृष्टि होती है। प्रकृत्यण्ड भी असंख्य हैं। वहाँ भी कालका परिणाम

है और उनका भी सृष्टि-संहार है। समस्त प्रकृत्यण्डकी समष्टिको मायाण्ड कहते हैं। समस्त मायाण्डमें एक ही स्वभाव है। मायाके ऊर्ध्वमें शाक्ताण्ड है। वहाँ कालकी गति अन्य प्रकारकी है। वहाँ निम्न स्तरकी भाँति सृष्टि-संहार नहीं होता, तथापि सृष्टि-संहार है।

कालकी आलोचना करते समय सृष्टि और संहारके विषयमें प्रसंगतः आलोचना करना आवश्यक है। सबसे पहले संहारके विषयमें कुछ कहना संगत जान पड़ता है; क्योंकि संहारके बाद ही सृष्टिका उन्मेष बुद्धिमें आरूढ़ होता है। प्राचीन आचार्योंने प्रलयको चार भागोंमें विभक्त किया है, अवश्य ही वह है आपेक्षिक रूपमें ही। उनमें एक 'नित्य प्रलय' है। दूसरा 'नैमित्तिक प्रलय', तीसरा 'प्राकृतिक प्रलय' अथवा 'महाप्रलय' है और चौथा 'आत्यन्तिक प्रलय' या 'मोक्ष' है। नित्य प्रलय सर्वदा और सर्वत्र सूक्ष्म रूपसे चलता रहता है। निद्राकी अवस्था भी एक प्रकारका प्रलय है। सारे जगत्‌में निरन्तर इस प्रकारका प्रलय चलता रहता है। नित्य प्रलय जगत्‌की निरन्तर विनश्वरताको प्रमाणित करता है। इस ब्रह्माण्डके अधिपतिका नाम हिरण्यगर्भ या ब्रह्मा है। श्रुतिके अनुसार उनकी आयु सौ वर्ष है। यह उनके निजी मानके अनुसार अथवा दिव्य मानके अनुसार है, ऐसा समझना चाहिये। जिसको हम ब्रह्माण्ड समझते हैं; वह इस हिरण्यगर्भका ही शरीर है। ब्रह्माकी आयुका अवसान हो जानेपर ब्रह्माके देहकी समाप्ति हो जाती है। इसीको 'महाप्रलय' कहते हैं। इसी समय ब्रह्माकी जीवन्मुक्त-अवस्थाका अवसान हो जाता है और वे परब्रह्मके साथ तादात्म्यको प्राप्त हो जाते हैं। अबतक ब्रह्मलोकमें जो लोग रहते थे, उन सभीको लेकर वे ब्रह्ममें प्रविष्ट हो जाते हैं। परंतु ब्रह्मलोकमें सब लोग एक ही अवस्थामें हों, ऐसी बात नहीं है। सालोक्यसे सायुज्यपर्यन्त सभी अवस्थाएँ वहाँ हैं। महाप्रलयके बाद नवीन सृष्टि दूसरे ब्रह्माको लेकर होती है। इसी प्रकार अनादिकालसे होता आ रहा है और अनन्त कालतक होता रहेगा। ब्रह्माण्डके ध्वंसरूपी इस प्रलयको 'प्राकृतिक प्रलय' कहते हैं। प्रचलित भाषामें इसका नाम 'महाप्रलय' है। इस अवस्थामें प्राचीन जगत्‌की सृष्टिका अवसान तथा नवीन जगत्‌का अभ्युत्थान होता है।

ब्रह्माके दिनके अन्तमें अर्थात् ब्रह्माके निद्राकालमें जो प्रलय होता है, उसका नाम 'नैमित्तिक प्रलय' है। नैमित्तिक प्रलय दो प्रकारका होता है—आंशिक और पूर्ण। आंशिक प्रलय कब होता है?—इसके उत्तरमें आचार्यगण कहते हैं कि एक-एक मन्वन्तरके बाद यह हुआ करता है। ब्रह्माके एक दिनको 'कल्प' कहते हैं। कल्पके अन्तमें जो प्रलय होता है, उसका नाम 'कल्प प्रलय' है। एक कल्पमें अर्थात् ब्रह्माके एक दिनमें चतुर्दश मनुओंका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। ७१००० महायुगमें एक-एक मनुका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। एक मनुके अवसानमें एक प्रलयावस्था उदय होती है। तत्पश्चात् द्वितीय मनुका उदय होता है, इत्यादि। इस प्रकार चतुर्दश मनुका आयुष्काल पूर्ण होनेपर ब्रह्माका एक दिन पूर्ण होता है। 'मन्वन्तर प्रलय' से 'कल्प प्रलय' व्यापक है और 'कल्प प्रलय' से 'महाप्रलय' व्यापकतर होता है। एक-एक मन्वन्तरमें मनुके साथ इन्द्र, ऋषि, देवर्षि और पितृगणका परिवर्तन होता है। मन्वन्तर प्रलयमें पृथिवी जलमग्न हो जाती है। तब भूर्लोकसे भुवर्लोक और स्वर्लोकका सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। महर्लोककी अवस्था अविकृत रहती है। पूर्ण नैमित्तिक प्रलयके समय कल्पका अन्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्माके एक दिनका अवसान हो जाता है, अतएव समस्त सृष्टिमें निद्राका भाव प्रबल हो जाता है। ब्रह्माके निद्रागत होनेके कारण कल्प प्रलयमें सारा जगत् सुप्त हो जाता है। उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक नहीं रहते, दग्ध हो जाते हैं। महर्लोकके ऋषिगण तापके कारण जनलोकमें चले जाते हैं। इसके बाद नीचेके तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं। तब ब्रह्माण्डकी प्राणशक्तिको आकर्षण करके भगवान् विष्णु शेषशय्यापर शयन करते हैं। यह उनकी 'योगनिद्रा' है।

'नित्य प्रलय' और 'आत्यन्तिक प्रलय' पिण्डके साथ संश्लिष्ट हैं, किंतु 'नैमित्तिक प्रलय' का सम्बन्ध ब्रह्माण्डके साथ है।

देश-काल-तत्त्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

देश और कालके सम्बन्धमें हमलोगोंका जो ज्ञान है, वह बहुत सीमित और संकुचित है। हमलोग प्रायः इस स्थूल देशको ही देश और युग, वर्ष आदि स्थूल कालको ही काल समझते हैं। इनकी गहराईमें नहीं जाते। देश क्या वस्तु है, उसका मूल स्वरूप क्या है, समय या काल क्या वस्तु है और उसका मूल स्वरूप क्या है, इसे ठीक-ठीक हृदयंगम कर लेनेपर देश और कालविषयक हमारा अधूरा ज्ञान बहुत अंशोंमें पूर्ण हो सकता है और हमारी दृष्टि सीमित देश और परिमित कालसे परे पहुँच जा सकती है।

विचारणीय विषय यह है कि हम जिस आकाशादिको देश और युग, वर्ष, मास, दिन आदिको काल समझते हैं, वह देश-काल तो प्रकृतिसे उत्पन्न है और प्रकृतिके अन्तर्गत है। परंतु महाप्रलयके समय जब यह कार्यरूप सम्पूर्ण जगत् अपने कारणरूप प्रकृतिमें लय हो जाता है, उस समय देश-कालका क्या स्वरूप होता है? वह देश-काल प्रकृतिका कार्य होता है या कारण?

इस प्रश्नपर विचार करनेसे यह प्रतीत होता है कि स्थूल देश-काल जिस प्रकृतिरूप देश-कालमें लय हो जाता है, वह प्रकृतिरूप देश-काल तो प्रकृतिका स्वरूप ही है और इस प्रकृतिका जो अधिष्ठान है अर्थात् यह प्रकृति अपने कार्य सम्पूर्ण जड़ दृश्यवर्गके लय हो जानेके बाद भी जिसमें स्थित रहती है, वह अधिष्ठान प्रकृतिका कार्य कभी नहीं हो सकता। वह तो सबका परम कारण है और सबका परम कारण वस्तुतः एकमात्र विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही है। उस विज्ञानानन्दघन परमात्माके किसी अंशमें मूलप्रकृति या माया स्थित है। वह प्रकृति कभी साम्यावस्थामें रहती है और कभी विकारको प्राप्त होती है। जिस समय वह साम्यावस्थामें रहती है, उस समय अपने कार्य समस्त जड़ दृश्यवर्गको अपनेमें लीन करके परमात्माके किसी एक अंशमें स्थित रहती है और जिस समय वही परमात्माके सकाशसे विषमताको प्राप्त होती है, उस समय उससे परमात्माकी अध्यक्षतासे संसारका सृजन होता है। सांख्य और योगके अनुसार सत्त्व, रज, और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिके स्वरूप हैं, परंतु गीता आदि वेदान्तशास्त्रोंके अनुसार ये प्रकृतिके कार्य हैं।

गुणाः प्रकृतिसम्भवाः। (गीता १४।५)

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥ (१३।१९)

प्रकृतिमें विकार होनेपर पहले सत्त्वगुणकी उत्पत्ति होती है, फिर रजोगुणकी और उसके बाद तमोगुणकी। सत्त्वगुणसे बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियाँ, रजोगुणसे प्राण और कर्मेन्द्रियाँ तथा तमोगुणसे पंचस्थूलभूतोंकी उत्पत्ति हुई है। इन्हीं भूतोंमें आकाश है और यही आकाश* हमारे इस व्यक्त स्थूल देशका आधार है। इसी प्रकार हमारा युग, वर्ष, मास, दिन आदिरूप स्थूल काल भी प्रकृतिसे प्रादुर्भूत है। यह देश-कालका स्थूल रूप है। यह जड़ और अनित्य है। सबका अधिष्ठान होनेसे परमात्मा ही सबको सत्ता और स्फूर्ति देता है, इस प्रकार वह समस्त ब्रह्माण्डमें प्रत्येक वस्तुमें व्याप्त होनेपर भी इस स्थूल देश-कालसे और इस देश-कालके कारणरूप प्रकृतिसे भी परे है। स्थूल देशकालको तो हमारी इन्द्रियाँ और मन समझ सकते हैं, परंतु सूक्ष्म देश-कालतक उनकी पहुँच नहीं है। महाप्रलयके समय प्रकृति जिस परमात्मामें स्थित रहती है और जबतक स्थित रहती है, वह अधिष्ठानरूप देश

* यह आकाश प्रकृतिका कार्य होनेसे उत्पत्ति, स्थिति और लय धर्मवाला है। माया यानी प्रकृति इसका आधार है। प्रकृतिका आधार विज्ञानानन्दघन परमात्मा है, यह पोलरूपी आकाश मूल तन्मात्रारूप आकाशका एक स्थूल स्वरूप है। यह पोल समष्टि अन्तःकरणमें है, समष्टि अन्तःकरण मायामें है और माया परमात्मामें वैसे ही है, जैसे स्वप्नका देश-काल स्वप्नद्रष्टा पुरुषके अन्तर्गत रहता है। वस्तुतः यह आकाश या पोल परमात्माका संकल्पमात्र है। इस संकल्पका अभाव होनेपर, जिसका संकल्प है, वह अपनी प्रकृतिसहित स्वयं अधिष्ठानरूपसे रहता है, वह किस प्रकार रहता है, सो नहीं बतलाया जा सकता; क्योंकि वह वाणीका विषय नहीं है।

और काल वास्तवमें परमात्मा ही है। वही मूल महादेश और महाकाल है। वह चेतन, उपाधिरहित, नित्य, निर्विकार और अव्यभिचारी है। वह कालका भी महाकाल* और देशका भी महादेश है, सारे काल और देश एक उसीमें समा जाते हैं। परमात्माका यह नित्य सनातन, शाश्वत और चिन्मय स्वरूप ही देश-कालका आधार है। यह सदा-सर्वदा एकरस है। अव्याकृति मूलप्रकृति महाप्रलयके समय इसी परमात्मारूप देश-कालमें रहती है। हमारी बुद्धिमें आनेवाला यह मायारचित जड़ और अनित्य देश-काल तो बुद्धिका कार्य है और बुद्धिके अन्तर्गत है। बुद्धि स्वयं मायाका कार्य है। इस मायाके स्वरूपको बुद्धि नहीं बतला सकती; क्योंकि यह बुद्धिसे परे है। बुद्धिका कारण है। इस मायाके दो रूप माने गये हैं—एक विद्या, दूसरा अविद्या। समष्टिबुद्धि विद्यारूपा है और जिसके द्वारा बुद्धि मोहको प्राप्त हो जाती है, वह अज्ञान ही अविद्या है। अस्तु,

उपर्युक्त विवेचनके अनुसार देश-कालके ये तीन भेद होते हैं—

१-नित्य महादेश या नित्य महाकाल।

२-प्रकृतिरूप देश या प्रकृतिरूप काल।

३-प्राकृत यानी प्रकृतिका कार्यरूप स्थूल देश या स्थूल काल।

इनमें पहला चेतन, नित्य, अविनाशी, अनादि और अनन्त है। शेष दोनों जड़, परिवर्तनशील, अनादि और सान्त हैं।

जिसको सनातन, शाश्वत, अनादि, अनन्त, कालस्वरूप, नित्य, ज्ञानस्वरूप और सर्वाधिष्ठान कहते हैं। निर्विकार परमात्माका वह स्वरूप ही मूल नित्य महादेश और महाकाल है।

महाप्रलयके बाद जितनी देर प्रकृतिकी साम्यावस्था रहती है, वही प्रकृतिरूप काल है और अपने कार्यरूप समस्त स्थूल दृश्यवर्गको धारण करनेवाली होनेसे यह कारणरूपा मूलप्रकृति ही प्रकृतिरूप देश है।

आकाश, दिशा, लोक, द्वीप, नगर और कल्प, युग, वर्ष, अयन, मास, दिन आदि स्थूल रूपोंमें प्रतीत होनेवाला प्रकृतिका कार्यरूप यह व्यक्त देश-काल ही स्थूल देश और स्थूल काल है।

इस कार्यरूप देश या स्थूल कालकी अपेक्षा तो बुद्धिकी समझमें न आनेवाला प्रकृतिरूप देश-काल सूक्ष्म और पर है; और इस प्रकृतिरूप देश-कालसे भी वह सर्वाधिष्ठानरूप देश-काल अत्यन्त सूक्ष्म, परातिपर और परम श्रेष्ठ है; जो नित्य, शाश्वत, सनातन, विज्ञानानन्दघन परमात्माके नामसे कहा गया है। वस्तुतः परमात्मा देश-कालसे सर्वथा रहित है, परंतु जहाँ प्रकृति और उसके कार्यरूप संसारका वर्णन किया जाता है, वहाँ सबको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला होनेके कारण उस सबके अधिष्ठानरूप विज्ञानानन्दघन परमात्माको ही देश-काल बतलाया जाता है। संक्षेपमें यही देश-कालतत्त्व है।

क्षयान्ता निचयाः सर्वे पतनान्ताः समुच्छ्रयाः। संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥
उच्छ्रयान् विनिपातांश्च दृष्ट्वा प्रत्यक्षतः स्वयम्। अनित्यमसुखं चेति व्यवस्येत् सर्वमेव च॥
अर्थानामार्जने दुःखमार्जितानां तु रक्षणे। नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःखभाजनम्॥

सारे संग्रहोंका अन्त विनाश है, सारी उन्नतियोंका अन्त पतन है, संयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है। उत्थान और पतनको स्वयं ही प्रत्यक्ष देखकर यह निश्चय करे कि यहाँका सब कुछ अनित्य और दुःखरूप है। धनके उपार्जनमें दुःख होता है, उपार्जित हुए धनकी रक्षामें दुःख होता है, धनके नाश और व्ययमें भी दुःख होता है, इस प्रकार दुःखके भाजन बने हुए धनको धिक्कार है। **[महाभारत]**

* यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः। मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥ (कठ० १।२।२५)

जिस आत्माके ब्राह्मण और क्षत्रिय—ये दोनों भात हैं और मृत्यु जिसका उपसेचन (शाक-दाल आदि) है, वह जहाँ है, उसे इस प्रकार (ज्ञानीके सिवा और) कौन जान सकता है?

काशीके मध्ययुगीन ज्योतिषी

(महामहोपाध्याय पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

काशी ज्ञानकी खान है। अन्य विद्याओंकी भाँति काशीमें ज्योतिषशास्त्रकी भी समृद्ध परम्परा रही है। १६वीं से लेकर १८वीं शतीतक तीन सौ वर्षोंमें काशीने महनीय ज्योतिर्विदोंको जन्म दिया है, जिनकी कृतियाँ अखिल भारतीय ख्यातिसे मण्डित हैं। इन दैवज्ञोंने ज्योतिर्विद्याको नये आयाम दिये, नूतन शास्त्रीय ग्रन्थोंका प्रणयन किया तथा इसे पूर्ण प्रतिष्ठित किया।

ऐसे दैवज्ञोंमें **मकरन्द**का नाम अग्रगण्य है। इन्होंने काशीमें ही सूर्यसिद्धान्तके अनुसार तिथ्यादिके साधनके निमित्त अपने नामसे प्रसिद्ध मकरन्द नामक ग्रन्थका प्रणयन किया। ग्रन्थमें दी गयी सारणीसे इसका आरम्भ १४०० शकसे होता है। फलतः यही इसका रचनाकाल है—सन् १४७८ ई०। यदि ग्रन्थके आरम्भ-कालमें इनका वय चालीस वर्ष माना जाय तो इनका जन्मकाल सन् १४३८ ई० में अनुमानतः सिद्ध है। इसके ऊपर **दिवाकरदैवज्ञ**रचित 'विवरण' तथा **विश्वनाथ**कृत 'उदाहरण' प्रकाशित है। पंचांगके निर्माणके निमित्त यह महान् उपयोगी है।

मध्ययुगमें काशीमें महाराष्ट्रीय ब्राह्मणोंके अनेक कुल काशीवास करनेकी दृष्टिसे यहाँ आकर निवास करने लगे थे। उनमें **अनन्तदैवज्ञ**का वंश ज्योतिर्विद्याके उन्नयन तथा प्रचारणमें विशेषरूपेण प्रख्यात हुआ। ये अनन्तदैवज्ञ विदर्भ (वर्तमान बरार) प्रान्तके अन्तर्गत धर्मपुरके निवासी थे। इनके पिताका नाम **चिन्तामणि-दैवज्ञ** था। अपने पुत्रके उल्लेखानुसार इन्होंने दो ग्रन्थोंका निर्माण किया था—(१) जातक-पद्धति तथा (२) कामधेनु-गणितकी टीका। कामधेनु-गणित प्रसिद्ध लेखक **बोपदेव**के पुत्र **महादेव**की प्रख्यात रचना है। इसीके ऊपर **अनन्तदैवज्ञ**ने अपनी टीका लिखी थी। अपने पुत्र **नीलकण्ठ**के द्वारा प्रणीत ताजिक नीलकण्ठीकी रचनाके समय (१५०९ शक सन् १५८७ ई०) अनन्त जीवित थे।

अनन्तदैवज्ञके दो पुत्र थे—(१) नीलकण्ठ तथा (२) राम। **नीलकण्ठदैवज्ञ** अकबर बादशाहके दरबारके प्रधान पण्डित थे। इसका उल्लेख इन्हींके पुत्र **गोविन्द-दैवज्ञ**ने मुहूर्तचिन्तामणिकी टीका पीयूषधाराके आरम्भमें किया है।

अकबरके दरबारमें रहते समय नीलकण्ठने अरबी-ज्योतिषका गम्भीर अध्ययन किया और उसीका परिणत फल था—ताजिक नीलकण्ठीका प्रणयन। यह ग्रन्थ फलादेशके लिये ज्योतिषियोंका कण्ठहार है। नीलकण्ठकी दूसरी रचना है—जातकपद्धति, जिसमें ६० श्लोक हैं और जो मिथिलाप्रान्तमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है। नीलकण्ठीका रचनाकाल १५०९ शक संवत् (सन् १५८७ ई०) है।

नीलकण्ठके अनुज थे **रामदैवज्ञ**, जिनकी रचना मुहूर्तचिन्तामणि मूहुर्त-विषयमें समस्त भारतवर्षमें नितान्त लोकप्रिय तथा आदरणीय ग्रन्थरत्न है। इसका रचनाकाल १५२२ शक सन् १६०० ई० है। इन्होंने अकबर बादशाहके कृपापात्र जयपुरनरेश **रामनृपति**के सन्तोषार्थ १५१२ शाके (सन् १५९० ई०) रामविनोद नामक करण-ग्रन्थका भी प्रणयन किया। राजपूतानेमें इस ग्रन्थका बहुल प्रचार है और वहाँके ज्योतिषी इसीके अनुसार पंचांग बनाते हैं। सुनते हैं, इनकी तीसरी रचना मन्त्र-प्रकाश नामक ग्रन्थ है। अकबरके ही प्रख्यात मन्त्री टोडरमलके प्रसन्नतार्थ इन्होंने टोडरानन्द नामक ज्योतिष-ग्रन्थका भी निर्माण किया।

रामदैवज्ञके ही भ्रातुष्पुत्र **गोविन्ददैवज्ञ**ने अपने पितृव्य रामदैवज्ञकृत मुहूर्तचिन्तामणिकी पीयूषधारा टीकाका प्रणयन काशीमें ही १५२५ शाके अर्थात् सन् १६०३ ई० में किया। यह टीका मुहूर्तके विषयमें अनेक उपयोगी तथ्योंका वर्णन प्राचीन आचार्योंके वचनोंकी सहायतासे करती है।

इसी वंशके समान ही **बल्लाल ज्योतिषी**का कुल

भी ज्योतिर्विद्याके उन्नयन तथा उपबृंहणके कारण काशीस्थ दैवज्ञोंमें अतिशय प्रसिद्ध है। बल्लाल की धर्मपत्नीका नाम गोजि था। बल्लाल स्वयं गणक थे एवं महादेव शंकरके बड़े नैष्ठिक भक्त तथा उपासक थे। इनके पाँच पुत्र हुए जिनके नाम हैं—राम, कृष्ण, गोविन्द, रंगनाथ और महादेव। इन पंचभ्राताओंमें द्वितीय **कृष्ण** तथा चतुर्थ **रंगनाथ** अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं ग्रन्थ-निर्माण-कुशलताके कारण काशीके ज्योतिर्विदोंमें मूर्धन्य स्थान पानेके योग्य हैं।

कृष्णदैवज्ञ—इन्होंने भास्कराचार्यके बीजगणितकी अनेक विशेषताओंसे मण्डित बीजांकुरा अथवा नवांकुरा नाम्नी महनीय टीकाकी रचना की। यह टीका समस्त ज्योतिर्विदोंके द्वारा समादृत तथा सम्मानित व्याख्या मानी जाती है। ग्रन्थके आदिमें अपने गुरुके तथा अन्तमें अपने वंशका वर्णन बड़ी सुन्दरतासे किया गया है। परंतु ग्रन्थके प्रणयनका काल निर्दिष्ट नहीं है। इनके अनुजके जन्मकालसे इनका अनुमित जन्मसमय १४८७ शाके अर्थात् सन् १५६७ ई० सुधाकर द्विवेदीने माना है। इन्होंने श्रीपतिपद्धतिकी टीका एवं छादक-निर्णय नामक ग्रन्थोंका प्रणयन किया था। रंगनाथके कथनानुसार ये जहाँगीर बादशाहके दरबारमें विश्वस्त पण्डितपदपर अधिष्ठित थे।[१]

रंगनाथदैवज्ञ—ये कृष्णदैवज्ञके तृतीय भ्राता थे। इन्होंने सूर्यसिद्धान्तकी 'गूढार्थप्रकाशक' नामक टिप्पणी १५२२ शाके (सन् १६०३ ई०) में अकबरके राज्यके अन्तिम वर्षोंमें बनायी।

इनके पुत्र **मुनीश्वर** भी अपने युगके विद्वान् ज्योतिर्विद् थे। इस टिप्पणीकी रचनाके समय ही मुनीश्वरका जन्म हुआ था। इसलिये रंगनाथने अपने ग्रन्थको मुनीश्वरका 'सहज' या साथ उत्पन्न होनेवाला भाई कहा है—

गूढप्रकाशकं दृष्ट्वा रङ्गनाथभवं भुवि।
मुनीश्वरस्य सहजं लभन्तां गणकाः सुखम्॥

मुनीश्वरने भास्कराचार्यके दोनों प्रख्यात ग्रन्थ लीलावती तथा सिद्धान्तशिरोमणिके ऊपर अपनी टीका लीलावतीपर निसृष्टार्थदूती तथा सिद्धान्तशिरोमणि पर मरीचि[२] नामक व्याख्या लिखी। यह मरीचि प्रमेयोंके बाहुल्य, प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धरण एवं सिद्धान्तोंके तर्कयुक्त विवरणके कारण भाष्य नामसे अभिहित किया जाता है। इसके दो खण्ड हैं—पूर्वार्धकी रचना १५५७ शक (सन् १६३५ ई०)-में तथा उत्तरार्धका निर्माण तीन साल बाद १५६० शक (सन् १६३८ ई०)-में हुआ। मुनीश्वरको शाहजहाँ बादशाहका आश्रय प्राप्त था। इन्होंने दो स्वतन्त्र ग्रन्थोंका भी प्रणयन किया था—(१) सिद्धान्तसार्वभौम (सिद्धान्तज्योतिषका मौलिक ग्रन्थ) स्वोपज्ञ टीकाके साथ। ग्रन्थका रचनाकाल १५६८ शक (सन् १६४६ ई०), टीकाका निर्माणकाल १५७२ शक (सन् १६५० ई०) है। (२) पाटीसार (पाटीगणितपर स्वतन्त्र ग्रन्थ)।

मुनीश्वर १७वीं शतीके ज्योतिर्विदोंमें अति-उन्नत स्थानके अधिकारी माने जाते थे।

काशीमें ही एक अन्य महाराष्ट्रीय ब्राह्मण-कुलने ज्योतिर्विद्याके संवर्धनमें अभूतपूर्व योगदान किया है। इस वंशका मूलस्थान गोदावरी नदीके तटपर अवस्थित गोल नामक ग्राम था। वहींसे आकर यह वंश काशीमें निवास करने लगा। इस वंशके **नृसिंहदैवज्ञ** अपनी प्रतिभा तथा उत्कृष्ट ज्योतिषविषयक वैदुष्यके कारण १७वीं शतीके पूर्वार्धमें काशीके दैवज्ञोंमें नितान्त विश्रुत थे। पचीस वर्षके वयमें इन्होंने सूर्यसिद्धान्तकी टीका सौरभाष्यका तथा पैंतीस सालकी उम्रमें भास्करके सिद्धान्तशिरोमणिकी वासनावार्तिक नामक प्रमेय-विशेषगर्भित व्याख्याका प्रणयन किया। इनका जन्म १५०८ शक (सन् १५८६ ई०)-में हुआ। नृसिंहदैवज्ञके ही अनुज **शिवदैवज्ञ**ने ज्योतिषशास्त्रके विशेष अध्यापक होनेके नाते अपनी पूरी आयु अध्यापन-कार्यमें ही व्यतीत की। इनकी केवल दो रचनाओंका उल्लेख मिलता है—गणितमें अनन्तसुधारस

१. सार्वभौमजहाँगीरविश्वासास्पदभाषणम्। यस्य तं भ्रातरं कृष्णं बुधं वन्दे जगद्गुरुम्॥ (सूर्यसिद्धान्तटिप्पणी)
२. पण्डित केदारदत्त जोशीने अपनी हिन्दी विवृतिके साथ इस भाष्यका संस्करण दो भागोंमें प्रकाशित किया है।

ग्रन्थकी विवृति तथा फलितमें मुहूर्तचूडामणि नामक ग्रन्थ।

नृसिंहदैवज्ञके ही ज्येष्ठ आत्मज **दिवाकरभट्ट**का जन्म १५२८ शक (सन् १६०६ ई०)-में काशीमें हुआ था। इन्होंने अपने सुयोग्य पितृव्य शिवदैवज्ञसे ज्योतिर्विद्याका गाढ़ अनुशीलन किया था। ग्रन्थोंकी रचना करनेमें इनकी पटुता नितान्त अभिनन्दनीय है—

(१) पद्धति-प्रकाश (अपरनाम पद्मजातक)—यह जातक-पद्धति केशव तथा श्रीपतिदैवज्ञकी जातक-पद्धतिका अनुसरण करती है।

(२) मकरन्द-विवरण।

(३) प्रौढ मनोरमा (केशवरचित पद्धतिकी टीका), इसका रचनाकाल १५४८ शाके (सन् १६२६ ई०) उल्लिखित है।

(४) गणित-तत्त्व-चिन्तामणि (अपने ही ग्रन्थ पद्धतिप्रकाशकी उदाहरणसम्पन्न टीका)।

कमलाकरभट्ट—नृसिंहदैवज्ञके द्वितीय पुत्र, दिवाकरके अनुज तथा शिष्य प्रख्यात ज्योतिर्विद् कमलाकर भट्टके जन्मसंवत्का उल्लेख नहीं मिलता। अपने अग्रज एवं गुरु दिवाकरभट्टके जन्मसे यदि इनका जन्म दस सालके बाद हुआ हो तो इनका अनुमित जन्मकाल सन् १६१६ ई० है।

'मरीचिभाष्य' के निर्माणके बीस वर्षके बाद ४२ वर्षके वयमें काशीमें ही कमलाकरभट्टने अपने प्रख्यात ग्रन्थ सिद्धान्त-तत्त्व-विवेकका १५८० शाके (सन् १६५८ ई०)-में प्रणयन किया। इनका यह ग्रन्थ प्रचलित सूर्यसिद्धान्तके अनुसार सौरतत्त्वका विवेचन करनेवाला है। ये गोलविषयके विशेषज्ञ विद्वान् थे। कमलाकरभट्टके लगभग तीस साल पूर्व ही **विट्ठल दीक्षित**ने काशीमें रहकर अपने दो ग्रन्थों—मुहूर्तकल्पद्रुम तथा इसकी व्याख्या मंजरीका प्रणयन १५४९ शाके (सन् १६२५ ई०)-में किया था।

इन मान्य ज्योतिर्विदोंने काशीमें जिस गणितीय पाण्डित्यकी परम्परा स्थापित की, वह आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है। [काशीकी पाण्डित्य-परम्परा]

नवग्रहों के वैदिक मन्त्र

सूर्य—ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ (यजु० ३३। ४३, ३४। ३१)

चन्द्र—ॐ इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳराजा॥ (यजु० १०। १८)

भौम—ॐ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति॥ (यजु० ३। १२)

बुध—ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥ (यजु० १५। ५४)

गुरु—ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥ (यजु० २६। ३)

शुक्र—ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥ (यजु० १९। ७५)

शनि—ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ (यजु० ३६। १२)

राहु—ॐ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥ (यजु० ३६। ४)

केतु—ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥ (यजु० २९। ३७)

सच्चिदानन्दके ज्योतिषी

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

सर्वव्यापक, निरंजन, निर्गुण, अजन्मा, हर्ष-विषादसे रहित, नाम-रूप-रहित परब्रह्म परमात्मा जब भक्तिके वशीभूत होकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीअयोध्यामें माता श्रीकौसल्याजीकी गोदमें श्रीरामरूपमें अवतरित हुए, तब अयोध्यानगरी एक अलौकिक शोभाको प्राप्त हुई। जहाँपर अलौकिक शोभाधाम सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं बालरूपसे खेल रहे हों, वहाँकी छविका क्या कहना! सुर-नर-मुनि सभी अयोध्यानगरीके सौभाग्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहे थे और भगवान्‌की रूप-माधुरीका पान करनेके लिये तथा परमानन्दका रसास्वादन करनेके लिये मनुष्यरूपमें अयोध्याकी गलियोंमें चक्कर लगाया करते थे। अखिलभुवनपति भगवान् महेश्वर भी उस समय सुरम्य कैलासधाममें टिक न सके, वह उन्हें अयोध्याके मुकाबले सूना, नीरस-सा लगने लगा। उन्होंने काकभुशुण्डि तथा कुछ अन्यान्य प्रेमी ऋषि-मुनियोंका एक दल संगठित किया और अयोध्यानगरीमें आकर निवास किया। इस रहस्यको उस समय कोई नहीं जानता था। भगवान् शंकर अपने दलके साथ राजमहलके इर्द-गिर्द चक्कर लगाया करते थे कि किसी तरह प्रभुके बालरूपकी झाँकी मिल जाय।

एक दिन उन्होंने अपने साथियोंको तो बाल शिष्योंका रूप धारण कराया और स्वयं एक वयोवृद्ध अनुभवी ज्योतिषी बन बैठे। इस तरह दिव्य वेश बनाकर अपनी मण्डलीसहित वे राजभवनके द्वारपर पहुँचे। उस समयका वर्णन भक्तप्रवर श्रीतुलसीदासजी अपनी गीतावलीमें इस प्रकार करते हैं—

अवध आजु आगमी एकु आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुतन्ह परिचौ पायो॥ १॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।
सँग सिसुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो॥ २॥
पायँ पखारि, पूजि दियो आसन असन बसन पहिरायो।
मेले चरन चारु चार्‌यो सुत माथे हाथ दिवायो॥ ३॥
नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक, नयन जल छायो।
लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो॥ ४॥
जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिस सीय-स्वयंबर गायो।
राम, भरत, रिपुदवन, लखनको जय सुखु सुजस सुनायो॥ ५॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो।
सनमान्यो महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो॥ ६॥

राजभवनके रनिवासमें खबर पहुँची कि आज अवधपुरीमें एक सामुद्रिक ज्योतिषी आये हैं, जो हथेली देखकर ही सारे गुण बता देते हैं। उनके कथनकी सत्यताका परिचय बहुत-से लोगोंको मिला है। वे बूढ़े ब्राह्मण बड़े ही प्रामाणिक हैं। उनका बड़ा सुन्दर 'शंकर' नाम है और उनके साथ कई बालक शिष्य भी हैं। यह सुनकर माता कौसल्याजीने ज्योतिषीको भीतर महलमें बुला भेजा। ज्योतिषीके आनेपर उन्होंने ब्राह्मणके पैर धोये, पूजा की, आसनपर बैठाया, भोजन कराया और वस्त्र प्रदान किया, फिर उनके सुन्दर चरणोंमें चारों बालकोंको रखकर उनके सिरपर हाथ रखवाया। उन बालकोंको नखसे शिखतक निहारकर ब्राह्मणदेवताके शरीरमें रोमांच हो आया और नेत्रोंमें जल भर गया। फिर वे गोदमें ले-लेकर उनके करकमल देखने लगे। उस समय अपने आराध्यदेवको साकार मूर्तिमें और सो भी अपनी गोदमें पाकर उनके हृदयमें आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने उनके जन्म लेनेके कारणसे लेकर भविष्यमें श्रीविश्वामित्रजीकी यज्ञरक्षाके मिससे श्रीसीताजीके स्वयंवरमें पधारनेतकको कथा सुनायी तथा राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके भावी जय, सुख और सुयशका वर्णन किया। यह सुनकर सारा रनिवास आनन्दमग्न हो गया; क्योंकि ज्योतिषीजीकी बात सबके हृदयको प्रिय लगनेवाली थी। उन्होंने उन विप्रप्रवरका अत्यन्त सम्मान किया और वे भी अतृप्त नयनोंसे सच्चिदानन्दकी सच्चिदानन्दमयी छविको मुँह फिरा-फिराकर निरखते हुए मन-ही-मन गुणगान करते हुए और ऊपरसे उन्हें आशीर्वाद देते हुए अपने धामको वापस चले गये।

भविष्यवाणियाँ, जो अक्षरशः सत्य सिद्ध हुईं

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

पुराणों-धर्मशास्त्रोंमें ज्योतिषियोंद्वारा की गयी भविष्यवाणियोंके अक्षरशः सत्य सिद्ध होनेकी अनेकानेक घटनाएँ आयी हैं। यह भी सत्य है कि कलियुगके वर्तमान माहौलमें तन्त्र-मन्त्र एवं भविष्यवाणीके नामपर ठगीकी घटनाएँ होती रहती हैं, पर मैंने अपने जीवनमें कुछ भविष्यवाणियाँ अक्षरशः सत्य पायीं, जिनमेंसे दोका यहाँ वर्णन प्रस्तुत है—

(१)

ब्रह्मचारी जीवनदत्तजी महाराजके ब्रह्मलोक-प्रयाणकी भविष्यवाणी

यह श्रीसांगवेद महाविद्यालय नरवर (बुलन्दशहर)-के प्राचार्य, नैष्ठिक बालब्रह्मचारी अनन्तश्रीविभूषित पं० श्रीजीवनदत्तजी महाराजके ब्रह्मलोक-प्रयाणसे लगभग २५ वर्ष पूर्व की गयी भविष्यवाणीसे सम्बन्धित है।

प्रातःस्मरणीय ब्रह्मचारीजी महाराजके सान्निध्यमें ही श्रीसांगवेद महाविद्यालयमें धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजने स्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी महाराजसे विद्याध्ययन किया था। महान् विरक्त सन्त श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज तथा स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज भी प्रायः वहाँ आकर कई-कई दिनोंतक साधनामें लगे रहते थे। पण्डित श्रीजीवनदत्तजी महाराजकी शास्त्रसम्मत जीवनचर्यासे सभी प्रभावित थे।

अनूपशहर-खुर्जाके क्षेत्रमें उन दिनों पण्डित श्रीरामस्वरूप ज्योतिषीजीकी बहुत ख्याति थी। कहा जाता था कि वे त्रिकालदर्शी हैं तथा जो भी भविष्यवाणी कर देते हैं, वह पूरी होती है।

सम्वत् १९९० की बात है। पण्डित श्रीरामस्वरूपजी अचानक नरवरस्थित महाविद्यालय आये, वे पूज्य पण्डित जीवनदत्तजी महाराजके दर्शनको उनकी कुटियामें पहुँचे। उन्होंने अत्यन्त विनम्रतासे कहा—'महाराज आपको अभी अनेक वर्षोंतक गायत्री माँकी साधना तथा असंख्य संस्कृतज्ञ तैयार करने हैं। मैं भविष्यवाणी कागजपर लिखकर देता हूँ कि आपका ब्रह्मलोक-प्रयाण चैत्र कृष्ण दशमी, गुरुवार, सम्वत् २०१२ को प्रातःकाल साढ़े आठ बजे होगा। आपकी कुटियामें एक एकाक्ष (एक आँखवाला) साधु आकर जैसे ही आपको प्रणाम करेगा कि उनको देखते ही आप 'ॐ' का उच्चारण करते हुए अपना शरीर त्याग देंगे।' भविष्यवाणी लिखे कागजको शिष्यने एक सन्दूकचीमें रख लिया गया।

भाद्रपद शुक्ला १४ सम्वत् २०१२ को अकस्मात् पूज्य ब्रह्मचारीजी महाराजको शीतज्वर हो गया। शिष्योंने अनेक वैद्योंको बुलाकर चिकित्सा करायी। औषधि चलती रही, महाराजजीने बीमारीमें भी गायत्रीमन्त्रका जप तथा अन्य नित्यकर्म जारी रखा। औषधियोंसे लाभ नहीं हो पा रहा था, परिणामतः शरीर दुर्बल होता चला गया।

इधर त्रिकालदर्शी ज्योतिषी पं० रामस्वरूपजीद्वारा घोषित तिथि निकट आ पहुँची। फर्रूखाबादसे एक एकाक्षी साधु नरवर पहुँचे। वे पूज्य ब्रह्मचारीजीके तपस्यामय जीवन एवं पाण्डित्यकी ख्याति सुनकर दर्शनोंके लिये आये थे। वे रात्रिमें नरौरामें ठहरे। प्रातःकाल वहाँसे नरवर पहुँचे और श्रीगंगाजीमें स्नान करके श्रीब्रह्मचारीजीकी कुटियामें पहुँचे। उस समय वे गीताका दूसरा अध्याय सुन रहे थे। उन्होंने जैसे ही पूज्य ब्रह्मचारी महाराजको प्रणाम किया कि महाराजश्रीने उन एकाक्षी साधुसे आँख मिलाते ही 'हरिः ॐ' का उच्चारण किया और ब्रह्मलोक प्रयाण कर गये।

शिष्यने पेटिकामेंसे त्रिकालदर्शी पण्डित रामस्वरूपजीके हाथसे लिखा कागज निकालकर देखा तो उसमें जो भविष्यवाणी लिखी थी, वह अक्षरशः सत्य पायी। उन एकाक्षी साधुको देखनेके लिये भीड़ उमड़ पड़ी।

मुझे बादमें एक दिन त्रिकालदर्शी पं० रामस्वरूपजीके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा—'संयमपूर्ण जीवनमें शिथिलता आ जानेके कारण अब मेरी भविष्यवाणीकी शक्ति क्षीण हो गयी है। संयमहीनता तमाम अर्जित दैवी शक्तियोंको लील डालती है।'

(२)

ज्योतिषी पं० परमानन्दजीकी भविष्यवाणी

सन् १९७४ ई० में मेरे दामाद हापुड़निवासी

महेन्द्रकुमार अचानक अस्वस्थ हो गये। सिरमें भारी पीड़ा एवं चक्कर आनेकी शिकायत थी। जाँच करानेपर पता चला कि मस्तिष्कमें ट्यूमर है तथा उसका निदान ऑपरेशनसे ही सम्भव है। हमलोग चि० महेन्द्रको वैल्लूर ले जानेकी तैयारीमें लग गये। उस समय वहाँ स्थित एक अस्पताल मस्तिष्कके ऑपरेशन और चिकित्साके लिये प्रसिद्ध था। इधर संकटनिवारणके लिये मैंने धर्मसंघके दिल्लीस्थित आश्रममें जाकर पं० श्यामलाल शर्मा व्याकरणाचार्यजीसे प्रार्थना की कि वे विद्वान् ब्राह्मणोंसे संकटनिवारणार्थ जप-अनुष्ठानकी व्यवस्था करनेकी कृपा करें।

उन दिनों अलमोड़ाके पर्वतीय क्षेत्रके एक गाँवके निवासी पण्डित परमानन्दजी ज्योतिषाचार्य अचानक पिलखुवा आ गये। वे एक मन्दिरमें ठहरे थे। वे जन्मपत्री देखनेमें सिद्धहस्त थे। उन्होंने महेन्द्रकी जन्मपत्री देखते ही कहा—इसके सिरमें फोड़ा है। शल्य-क्रियासे ठीक होगा। २ सितम्बरको दिल्लीमें तेजधारवाले अस्त्रसे उसे निकाल दिया जायगा। कुछ दिन अस्पतालमें रहनेके बाद २१ सितम्बरको यह सकुशल हापुड़ अपने घर लौट आयेगा। ज्योतिषी महाराजने कहा—'मेरी बातको कागजपर नोट कर लें।' उन्होंने एक कागजपर एक मन्त्र लिखकर दिया तथा कहा—'अपनी पुत्रीसे इसका जप कराना। सब ठीक हो जायगा।'

महेन्द्रकी बीमारी और ज्योतिषीकी भविष्यवाणीके सम्बन्धमें मेरे पुत्रने अपने अनन्य मित्र तथा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के सम्पादक श्रीजोशीजीसे इसकी चर्चा की। उन्होंने कहा कि हमारे एक निकट सम्बन्धी डॉ० पन्त मस्तिष्क-ट्यूमरके विशेषज्ञ हैं। तुम महेन्द्रको दिल्ली बुला लो। हम साथ ले जाकर डॉ० पन्तसे परामर्श करेंगे। हमें एवं महेन्द्रको साथ लेकर वे ऑल इण्डिया मेडिकल इंस्टीट्यूट गये। जाँचके बाद उसे दाखिल कर लिया गया तथा बताया कि सितम्बरके पहले सप्ताहमें ऑपरेशन होगा। अचानक १ सितम्बरको महेन्द्रके सिरकी पीड़ा बढ़ गयी। मुँहसे झाग आने लगे, डॉक्टरोंकी टीमने जाँचके बाद कहा कि ऑपरेशन कल ही २ सितम्बरको करना पड़ेगा। २ सितम्बरको ऑपरेशन हो गया। महेन्द्रकी तबियत ठीक होने लगी। महेन्द्रके बड़े भाई दिल्लीमें रहते थे। उन्होंने अस्पतालसे छुट्टी मिलनेके बाद महेन्द्रको अपने घर आराम करनेके लिये रोक लिया तथा कहा—'एक बार फिर अस्पतालमें डॉक्टरोंसे जाँच करानेके बाद ही हापुड़ लौटना ठीक रहेगा। २१ सितम्बरको उसे जाँचके बाद हापुड़ लाया गया।

ज्योतिषाचार्य पं० परमानन्दजीद्वारा लिखा कागज आलमारीसे निकालकर देखा गया तो उसमें साफ लिखा था—२ सितम्बरको शल्य-चिकित्सा सम्पन्न होगी तथा महेन्द्र दिल्लीसे २१ सितम्बरको सकुशल हापुड़ लौट आयेगा। उनकी भविष्यवाणी बिलकुल सत्य सिद्ध हुई।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

पंचांगश्रवणका माहात्म्य

तिथिवारं च नक्षत्रं योगः करणमेव च। यत्रैतत्पञ्चकं स्पष्टं पञ्चाङ्गं तन्निगद्यते॥
जानाति काले पञ्चाङ्गं तस्य पापं न विद्यते। तिथेस्तु श्रियमाप्नोति वारादायुष्यवर्धनम्॥
नक्षत्राद्धरते पापं योगाद्रोगनिवारणम्। करणात्कार्यसिद्धिः स्यात्पञ्चाङ्गफलमुच्यते॥
पञ्चाङ्गस्य फलं श्रुत्वा गङ्गास्नानफलं लभेत्।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण—इन पाँचोंका जिसमें स्पष्ट मानादि रहता है, उसे पंचांग कहते हैं। जो यथासमय पंचांगका ज्ञान रखता है, उसे पाप स्पर्श नहीं कर सकता। तिथिका श्रवण करनेसे श्रीकी प्राप्ति होती है, वारके श्रवणसे आयुकी वृद्धि होती है, नक्षत्रका श्रवण पापको नष्ट करता है, योगके श्रवणसे रोगका निवारण होता है और करणके श्रवणसे कार्यकी सिद्धि होती है। यह पंचांगश्रवणका फल कहा गया है। पंचांगके फलको सुननेसे गंगास्नानका फल प्राप्त होता है।

गीतामें ज्योतिष

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

महाप्रलयपर्यन्तं कालचक्रं प्रकीर्तितम्।
कालचक्रविमोक्षार्थं श्रीकृष्णं शरणं व्रज॥

ज्योतिषमें काल मुख्य है अर्थात् काल को लेकर ही ज्योतिष चलता है। उसी कालको भगवान्ने अपना स्वरूप बताया है कि 'गणना करनेवालोंमें मैं काल हूँ'—**'कालः कलयतामहम्'** (१०। ३०)। उस कालकी गणना सूर्यसे होती है। इसी सूर्यको भगवान्ने **'ज्योतिषां रविरंशुमान्'** (१०। २१) कहकर अपना स्वरूप बताया है।

सत्ताईस नक्षत्र होते हैं। नक्षत्रोंका वर्णन भगवान्ने **'नक्षत्राणामहं शशी'** (१०। २१) पदोंसे किया है। इनमेंसे सवा दो नक्षत्रोंकी एक राशि होती है। इस तरह सत्ताईस नक्षत्रोंकी बारह राशियाँ होती हैं। उन बारह राशियोंपर सूर्य भ्रमण करता है अर्थात् एक राशिपर सूर्य एक महीना रहता है। महीनोंका वर्णन भगवान्ने **'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्'** (१०। ३५) पदोंसे किया है। दो महीनोंकी एक ऋतु होती है, जिसका वर्णन **'ऋतूनां कुसुमाकरः'** पदोंसे किया गया है। तीन ऋतुओंका एक अयन होता है। अयन दो होते हैं—उत्तरायण और दक्षिणायन; जिनका वर्णन आठवें अध्यायके चौबीसवें-पचीसवें श्लोकोंमें हुआ है। इन दोनों अयनोंको मिलाकर एक वर्ष होता है। लाखों वर्षोंका एक युग होता है।* जिसका वर्णन भगवान्ने **'सम्भवामि युगे युगे'** (४। ८) पदोंसे किया है। ऐसे चार (सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि) युगोंकी एक चतुर्युगी होती है। ऐसी एक हजार चतुर्युगीका ब्रह्माका एक दिन (सर्ग) और एक हजार चतुर्युगीकी ही ब्रह्माकी एक रात (प्रलय) होती है, जिसका वर्णन आठवें अध्यायके सत्रहवें श्लोकसे उन्नीसवें श्लोकतक किया गया है। इस तरह ब्रह्माकी सौ वर्षकी आयु होती है। ब्रह्माकी आयु पूरी होनेपर महाप्रलय होता है, जिसमें सब कुछ परमात्मामें लीन हो जाता है। इसका वर्णन भगवान्ने **'कल्पक्षये'** (९। ७) पदसे किया है। इस महाप्रलयमें केवल 'अक्षयकाल'-रूप एक परमात्मा ही रह जाते हैं, जिसका वर्णन भगवान्ने **'अहमेवाक्षयः कालः'** (१०। ३३) पदोंसे किया है।

तात्पर्य यह हुआ कि महाप्रलयतक ही ज्योतिष चलता है अर्थात् प्रकृतिके राज्यमें ही ज्योतिष चलता है, प्रकृतिसे अतीत परमात्मामें ज्योतिष नहीं चलता। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह इस प्राकृत कालचक्रसे छूटनेके लिये, इससे अतीत होनेके लिये अक्षयकालरूप परमात्माकी शरण ले।

देवब्राह्मणवन्दनाद्गुरुवचःसम्पादनात्प्रत्यहं साधूनामभिभाषणाच्छ्रुतिरवश्रेयस्कथाकर्णनात्।
होमादध्वरदर्शनाच्छुचिमनोभावाजपाद्दानतो नो कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहाः पीडनम्॥

देवताओं और ब्राह्मणोंकी वन्दना करनेसे, गुरुकी आज्ञाका पालन करनेसे, प्रतिदिन सज्जनोंके साथ वार्ता करनेसे, वेदोंकी कल्याणकारी कथाओंका श्रवण करनेसे, हवन करनेसे, यज्ञका दर्शन करनेसे, अन्तःकरण पवित्र रखनेसे, भगवन्नामजप तथा दान करनेसे कभी भी ग्रह पुरुषको पीड़ा नहीं पहुँचाते, अपितु उसका सदा कल्याण ही करते हैं। (बृहद्दैवज्ञरंजन ३२। ६७)

* सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्षोंका 'सत्ययुग', बारह लाख छियानबे हजार वर्षोंका 'त्रेतायुग', आठ लाख चौंसठ हजार वर्षोंका 'द्वापरयुग' और चार लाख बत्तीस हजार वर्षोंका 'कलियुग' होता है।

भगवान् रामका जन्मकाल एवं जन्मकुण्डली

श्रीरामको सभी लोग मर्यादापुरुषोत्तम मानते हैं; किंतु कुछ लोग श्रीरामको अवतारी पुरुष न मानकर केवल 'महामानव' ही मानना चाहते हैं। इसी सन्दर्भमें श्रीरामके जन्मकाल आदिपर कई विचारधाराओंसे विचार होने लगा है। सर्वप्रथम यहाँपर कुछ पाश्चात्य ऐतिहासिकोंके विचारोंका उल्लेख किया जा रहा है। जोन्स नामक एक अंग्रेज इतिहासज्ञने श्रीरामका जन्मकाल ई०पू० २०२९ वर्ष स्वीकार किया है। दूसरे पाश्चात्य इतिहासज्ञ विद्वान् टॉडने ईसापूर्व ११०० वर्ष श्रीरामका जन्म-समय निर्धारित किया है। वैंथली नामक पाश्चात्य इतिहासज्ञने उनका जन्मकाल ईसापूर्व ९५० वर्ष ही अंगीकार किया है और विल्फर्ड नामक इतिहासज्ञने ईसापूर्व १३६० वर्ष रामका जन्मकाल माना है। इस प्रकार सभी पाश्चात्य इतिहासज्ञ विद्वानोंने अपने-अपने अध्ययनके आधारपर श्रीरामका जन्म-समय ईसाके पूर्व मानकर अपनी मान्यताकी 'इतिश्री' कर दी।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके जन्मकालके विषयमें भारतीय इतिहासज्ञोंके विचार भी मतभेदसे परिपूर्ण हैं। मतभेद होना स्वाभाविक और अनिवार्य भी है; क्योंकि त्रेतायुगकी बातको वर्ष-गणनामें आबद्ध करना सरल नहीं है।

श्रीरामके जन्मकालके निर्णयके लिये भारतीय ज्योतिषकी गणना ही सर्वथा मान्य हो सकती है। संत तुलसीदासजीने ज्योतिषकी आधारशिलाको सन्देहास्पद स्थितिमें रख दिया। उनका कहना है—

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥
नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥

(रा०च०मा० १।१९०; १।१९१।१)

—इस उल्लेखसे वास्तविक वर्षका ज्ञान प्राप्त करना सरल नहीं है। केवल चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि और अभिजित् नक्षत्रके संकेतसे वर्षका वास्तविक ज्ञान कठिन है।

इस सम्बन्धमें आदिकविने जो संकेत दिया है, वह अन्धकारमें 'प्रकाश-स्तम्भ' का कार्य करता है। आदिकविने लिखा है—'श्रीरामके जन्मकालके समय (महाराज दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञ-समाप्तिके बाद बारह मास बीतनेपर) चैत्र शुक्ल नवमीके दिन, पुनर्वसु नक्षत्रके समय, कर्क-लग्नमें, पाँच ग्रह जब अपने-अपने उच्चमें स्थित थे, गुरु चन्द्रमाके साथ थे, उसी समय श्रीरामका अवतार हुआ'—

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥

नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह॥

(वा०रा० १।१८।८-९)

वाल्मीकिजीने अपनी रामायणमें पाँच ग्रहोंको उच्चका और गुरु एवं चन्द्रमाको एक साथ बतलाकर ज्योतिषके ज्ञाताओंके लिये 'मार्ग' प्रकाशमय बना दिया। संत कवि तुलसीदासजीने अन्य प्रमाणोंके आधारपर अभिजित् नक्षत्रका उल्लेख किया है। अब प्रश्न होता है कि उस समय कौन-से पाँच ग्रह उच्चके थे। इस सम्बन्धमें कई प्रमाणोंके आधारपर यही अवगत होता है कि रवि, भौम, गुरु, शुक्र और शनि उच्चके थे। अर्थात् रवि मेषके थे, मंगल मकरके, गुरु कर्कराशिस्थ थे, शुक्र मीनके और शनि तुलाके थे।

भारतीय विचारधाराके आधार

श्रीरामके जन्मकाल-निर्णयमें भारतीय विचारधाराके लिये वाल्मीकि-रामायणके ये दो श्लोक दो प्रकाश-स्तम्भ हैं। भारतीय गणितज्ञ और फलितज्ञ यह मानते हैं कि स्थूल रीतिसे एक राशिपर सप्तर्षिगण लगभग सवा २ सहस्रवर्ष, वरुण १४ वर्ष और शनि लगभग ढाई वर्षतक रहता है। इसी प्रकार सूर्य एक राशिपर एक मास और गुरु एक राशिपर प्रायः एक वर्ष रहते हैं। सूर्य, गुरु और शनिके विचारसे पाँचों उच्चस्थ ग्रहोंकी गणना करनेमें सरलता हो जाती है और इस हिसाबसे श्रीरामचन्द्रजीका जन्मकाल आजसे १,८५,५८,११२ वर्ष पूर्व हुआ था।

आगे दिये गये जन्मांगमें पाँच ग्रहोंकी उच्चता तो वाल्मीकिके वचनोंसे प्रमाणित हो जाती है, किंतु बुध और राहु तथा केतुकी स्थितिमें मतभेद है। बहुत-से विद्वान् बुधको एकादश भावमें, राहुको तृतीय भावमें और केतुको नवम भावमें मानते हैं।

श्रीरामका जन्मांग

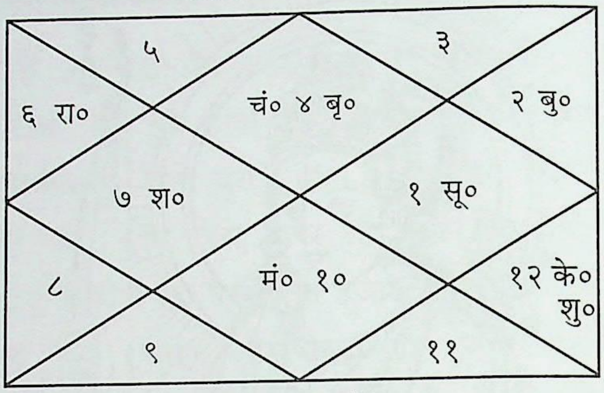

पाँच उच्चस्थ ग्रहोंका प्रभाव

राजा श्रीराम और रामराज्यकी तुलना अन्य किसी राजा और किसी राज्यसे नहीं की जा सकती; न तो श्रीराम-जैसा राजा होगा, न रामराज्य-जैसा सुखदायी राज्य। पुराणोंके उल्लेखसे अवगत होता है कि श्रीरामने राजा बननेपर ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। यह सब पाँच उच्चस्थ ग्रहोंका प्रभाव था। यद्यपि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी विशेषता पाँच उच्चस्थ ग्रहोंसे नहीं थी, ग्रह तो उन्हींके प्रभावसे प्रभावित थे, तथापि लौकिक विचारधारासे उन पाँचों उच्चस्थ ग्रहोंने भी अपना प्रभाव दिखलाया। मंगल भी उच्चस्थ थे। मंगल शुभद ग्रह नहीं हैं। अतः मंगलने मर्यादापालक श्रीरामके जीवनमें स्त्री-विषयक कष्ट दिया। पुनर्वसुके चतुर्थ चरणमें श्रीराम अवतरित हुए और पुनर्वसुके चौथे चरणके कारण गुरुकी दशा चार वर्ष शेष रही। गुरुके बाद ही शनिदेवकी महादशा प्रारम्भ होती है, जो १९ वर्षतक चलती है। बुधकी महादशामें मर्यादापालक श्रीरामको वनमें जाना पड़ा था और पुराणोंके उल्लेखानुसार (मानसके अनुसार नहीं) बुधकी महादशामें ४१ वर्षकी अवस्थामें वनयात्रा समाप्त हुई थी। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी कुण्डलीके अनुसार उनके आविर्भावकालका संक्षेपमें विचार किया गया। [आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री]

भगवान् श्रीकृष्णका जन्मपत्र

मेरे गुरुवर, परमपद-प्राप्त, सकल शास्त्र-निष्णात, पूज्यपाद पण्डित श्रीगंगासहायजी महाराजने श्रीमद्भागवतकी 'अन्वितार्थ-प्रकाशिका' टीकामें दशम स्कन्धके तृतीय अध्यायकी व्याख्या करते समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके जन्मोत्सवपर लिखते हुए 'खमाणिक्य' ज्योतिष-ग्रन्थके आधारपर भगवान्‌की जन्मपत्रीके विषयमें एक श्लोक उद्धृत किया है। उसमें लिखा है—

उच्चस्थाः शशिभौमचान्द्रिशनयो लग्नं वृषो लाभगो
जीवः सिंहतुलालिषु क्रमवशात्पूषोशनोराहवः।
नैशीथः समयोऽष्टमी बुधदिनं ब्रह्मर्क्षमत्र क्षणे
श्रीकृष्णाभिधमम्बुजेक्षणमभूदाविः परं ब्रह्म तत्॥

इसीसे मिलता हुआ एक पद्य मेरे मित्र मुखिया मन्नालालजीने 'चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता' से निकालकर मुझे बतलाया है। यह पद्य महात्मा सूरदासजीका है। श्लोक और पद्यका आशय एक है। पद्य इस तरह है—

नन्दजू मेरे मन आनन्द भयो, मैं सुनि मथुराते आयो;
लगन सोधि ज्योतिषको गिनि करि, चाहत तुम्हहि सुनायो।
सम्बत्सर 'ईश्वर' को भादों, नाम जु कृष्ण धर्‍यो है;
रोहिणि, बुध, आठै अँधियारी, 'हर्षन' जोग पर्‍यो है।
बृष है लग्न, उच्चके 'उडुपति', तनको अति सुखकारी;
दल चतुरंग चलै सँग इनके, ह्वैहैं रसिकबिहारी।
चौथी रासि सिंहके दिनमनि, महिमण्डलको जीतैं;
करिहैं नास कंस मातुलको, निहचै कछु दिन बीतै।
पञ्चम बुध कन्याके सोभित, पुत्र बढ़ैंगे सोई;
छठएँ सुक्र तुलाके सनिजुत, सत्रु बचै नहिं कोई।
नीच-ऊँच जुवती बहु भोगैं, सप्तम राहु पर्‍यो है;
केतु 'मुरति' में स्याम बरन, चोरीमें चित्त धर्‍यो है।
भाग्य-भवनमें मकर महीसुत, अति ऐश्वर्य बढ़ैगो;
द्विज, गुरुजनको भक्त होइकै, कामिनि-चित्त हरैगो।
नव-निधि जाके नाभि बसत हैं, मीन बृहस्पति केरी;
पृथ्वी-भार उतारैं निहचै, यह मानो तुम मेरी।
तब ही नन्द-महर आनन्दे, गर्ग-पूजि पहरायो;
असन, बसन, गज, बाजि, धेनु, धन, भूरि भँडार लुटायो।
बंदीजन द्वारै जस गावै जो जाँच्यो सो पायो;
ब्रजमें कृष्ण-जन्मको उत्सव, 'सूर' बिमल जस गायो।

उक्त संस्कृत-श्लोक और सूरदासजीके इस पदके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जन्मकुण्डली* यह है—

श्लोक और पदमें ग्रह-नक्षत्रादिका साम्य है, किंतु

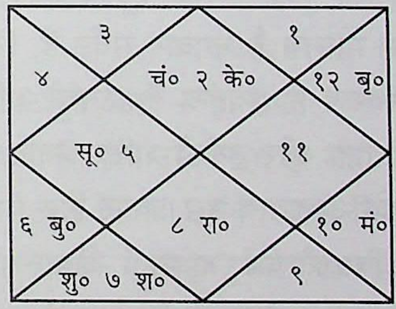

महात्मा सूरदासजीने ग्रहोंका फलादेश भी स्पष्ट कर दिया है। इस फलादेशका कोई अंश ऐसा नहीं, जो श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्रसे मेल न खाता हो। सच पूछो तो उनके बृहत् चरित्रको ज्योतिषके ब्याजसे एक ही पदमें देकर सूरने सागरको गागरमें भर दिया है।

[पं० श्रीलज्जारामजी मेहता]

* भगवान् श्रीकृष्णकी एक अन्य जन्मकुण्डली भी प्राप्त है, जो कर्णाटकके इतिहास और ज्योतिषके विद्वान् श्री वी० एच० वडेर, एम०ए० महोदयसे प्राप्त हुई है, वह इस प्रकार है—

जन्मकुण्डली—

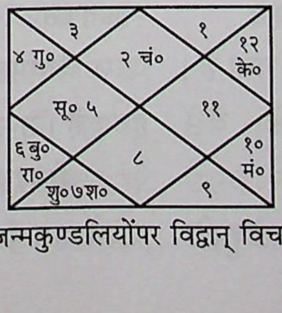

इन दोनों जन्मकुण्डलियोंपर विद्वान् विचार कर सकते हैं।

आशीर्वाद

ज्योतिषशास्त्रका वैशिष्ट्य

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

भगवत्पाद शंकराचार्यके ब्रह्मसूत्रभाष्यकी व्याख्याके प्रारम्भमें आचार्य वाचस्पतिमिश्रने लिखा है कि—

षड्भिरङ्गैरुपेताय विविधैरव्ययैरपि।
शाश्वताय नमस्कुर्मो वेदाय च भवाय च॥

इसमें उन्होंने वेद और ईश्वरका साम्य बतलाया है। ईश्वरके छः अंग हैं और वेदके भी छः अंग हैं। ईश्वर अव्यय है और वेद भी अव्यय है।

ईश्वरके छः अंग हैं—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥

(वायुपुराण पू० १२। ३१)

इसका मतलब है भगवान् सर्वज्ञ हैं, नित्यतृप्त हैं, नित्य ज्ञानस्वरूप हैं, स्वतन्त्र हैं, उनकी शक्तिका ह्रास कभी नहीं होता और उनकी शक्ति अनन्त है।

ईश्वरके अव्ययत्व इस प्रकार हैं—

ज्ञानं विरागतैश्वर्यं तपस्सत्यं क्षमा धृतिः।
स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च॥
अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शङ्करे॥

वैसे ही वेदमें 'च' 'तु' इत्यादि अव्यय हैं और— **'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषं तथा। कल्पश्चेति षडङ्गानि'** वचनके अनुसार वेदके छः अंग हैं।

ये छः अंग इस वचनके अनुसार हैं—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तः कल्पोऽथ उच्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्॥

इनमें ज्योतिषको वेदका नेत्रस्थानीय कहा गया है। जैसे शरीरके अवयवोंमें आँखका प्राधान्य है, वैसे ज्योतिषका भी वेदांगोंमें प्राधान्य है।

ज्योतिष वेदका अंग कैसे होता है, इस प्रश्नके उत्तरमें यों कहा गया है—

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता
यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्यात्
वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात्॥

अर्थात् वेद में मनुष्यके श्रेयके लिये कई कर्म कहे गये हैं। उन कर्मोंको विहित कालमें ही करना चाहिये। उस कालका ज्ञान ज्योतिषसे ही होता है। इसलिये ज्योतिषको वेदांग बतलाया गया है।

वेदांगोंमें ज्योतिषका प्राधान्य भी—

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः॥

—इस वचनमें कहा गया है। शरीरमें आँखके अतिरिक्त सारे इन्द्रियोंके रहनेपर भी बिना आँखके मनुष्य कुछ भी कर नहीं पाते हैं, वैसे ही वेदांगोंमें चक्षुःस्थानीय ज्योतिषका महत्त्व है। सूर्य और चन्द्रकी गतिके अनुसार ही इस शास्त्रकी प्रवृत्ति है। इसीलिये कहते हैं—

'प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।'

ज्योतिषशास्त्रमें मुख्यरूपसे दो विषय होते हैं—एक काल है और दूसरा फल। सम्वत्सर, मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करणका ज्ञान ज्योतिषशास्त्रसे ही होता है और मनुष्यके शुभाशुभ फलका ज्ञान भी इस ज्योतिषशास्त्रसे ही मिलता है। एक व्यक्ति जिस समय पैदा होता है, उस समयके अनुसार उस व्यक्तिका भविष्य ज्योतिषशास्त्रसे कह सकते हैं। जैसे भगवान् श्रीरामचन्द्रका जन्म चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, पुनर्वसु नक्षत्रमें हुआ है। उस समयके अनुसार वे सर्वलोकेश्वर हुए थे।

श्रीमद्रामायणमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके जन्मके बारेमें इस प्रकार कहा गया है—

ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु॥
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याजनयद्रामं सर्वलक्षणसंयुतम्॥

यहाँ चैत्रमास कहनेसे सूर्य मेषराशिमें है, यह निश्चित होता है। पुनर्वसु नक्षत्र कहनेसे चन्द्र कर्कटक-राशिमें है, यह निश्चित होता है। चन्द्रके साथ बृहस्पतिके रहनेसे गुरु भी कर्कटकराशिमें है, यह निश्चित होता है। यद्यपि कौन-कौन ग्रह उच्चस्थानमें हैं, यह वहाँ नहीं कहा गया है तथापि अनुमानसे निश्चय कर सकते हैं। सूर्य मेषराशिमें होनेसे वह उच्चस्थानमें है। गुरु कर्कटकराशिमें रहनेसे वह उच्चस्थानमें है। चन्द्र कर्कटकमें है, वह उसका उच्चस्थान नहीं है। बुध हमेशा सूर्यके समीप रहता है, इसीलिये वह भी उच्चस्थानमें नहीं है। बाकी अंगारक, शुक्र और शनि उच्चस्थानमें हैं।

ग्रहोंके उच्चस्थान—

'अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीराः झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः।'

—इस वचनमें कहे गये हैं। इसके अनुसार मेषमें सूर्य, मकरमें कुज, कर्कटकमें गुरु, मीनमें शुक्र और तुलामें शनि उस समयमें थे। इसीलिये पंचग्रह उच्चस्थानमें रहे थे।

ग्रहोंके उच्चस्थानमें रहनेका फल यों कहा गया है—

एकग्रहोच्चजातस्य सर्वारिष्टविनाशनम्।
द्विग्रहोच्चे तु सामन्तस्त्रिग्रहोच्चे महीपतिः।
चतुर्ग्रहोच्चे सम्राट् स्यात् पञ्चोच्चे लोकनायकः॥

इसीलिये भगवान् श्रीरामचन्द्रको इस ज्योतिषशास्त्रसे उनके जन्मकालके अनुसार ही लोकनायक समझा गया था। इसीलिये महर्षिने उपर्युक्त श्लोकमें **'सर्वलोक-नमस्कृतम्' 'जगन्नाथम्'** इन विशेषणोंका प्रयोग किया।

वैसे ही नष्ट वस्तुकी प्राप्ति होगी या नहीं, यह भी ज्योतिषशास्त्रके अनुसार कहा जा सकता है। इसका भी एक उदाहरण श्रीमद्रामायणमें उपलब्ध है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताजीके आज्ञानुसार सीता और लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यके लिये निकले थे। उनके वनवासके समय रावणने सीताका अपहरण किया। श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ सीताका अन्वेषण करते हुए जटायुके पास आये थे। जटायुके मुँहसे रक्त निकल रहा था। उसे देखकर श्रीरामचन्द्रजीने अनुमान किया कि जटायुने ही सीताका संहार किया है, तब वे बहुत क्रुद्ध थे।

तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन्।
अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम्॥
यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम्॥
त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा॥
सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे प्रभो।
विध्वंसितरथच्छत्रः पतितो धरणीतले॥
रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि॥

(वा०रा० ३। ६७। १४—१७, २०)

तब जटायुने कहा—'हे राम! रावणने सीताका अपहरण किया है। मैंने उसे देखते ही सीताको बचानेके लिये रावणसे युद्ध किया। उसके रथको गिराया। उसके धनुष और बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उसके सारथीको मार डाला। जब मैं थक गया था, तब रावणने खड्गसे मेरे दोनों पक्षोंको काट डाला। इसलिये मैं तुम्हारा उपकारक हूँ। मुझे मत मारो।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बहुत खिन्न हुए और जटायुको गले लगाकर रोये।

तब जटायुने कहा—

येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः।
विप्रणष्टं धनं क्षिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते॥
विन्दो नाम मुहूर्तोऽसौ न च काकुत्स्थ सोऽबुधत्।

(वा०रा० ३। ६८। १२-१३)

जिस मुहूर्तमें रावणने सीताका अपहरण किया है, उसका नाम 'विन्द' कहते हैं। उस मुहूर्तमें जो कुछ भी वस्तु अपहृत हो, वह उसके स्वामीको अवश्य मिलेगी;

लेकिन सीतापहरणके समयमें रावणको यह नहीं सूझा था। इससे यह ज्ञात होता है कि विन्द नामक मुहूर्तमें अपहृत वस्तु उसके स्वामीको अवश्य प्राप्त होती है।

मुहूर्त माने दो घटी हैं। दिनमें पन्द्रह मुहूर्त होते हैं—

रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च तथा सारघटः स्मृतः।
सावित्रो वैश्वदेवश्च गान्धर्वः कुतपस्तथा॥
रौहिणस्तिलकश्चैव विजयो नैर्ऋतस्तथा।
शम्बरो वारुणश्चैव भगः पञ्चदशः स्मृतः॥

इनमें ग्यारहवाँ मुहूर्त जो विजय नामसे कहा गया है, उसीको विन्द कहते हैं। जटायुका यह वचन सत्य हो गया। भगवान्‌ने सीताको एक सालके अन्दर ही प्राप्त कर लिया।

ऐसे ज्योतिषशास्त्रके अध्ययनसे बहुत विषय ज्ञात होते हैं। ज्योतिषशास्त्रके मूलग्रन्थ यद्यपि संस्कृत भाषामें हैं तथापि कई भाषाओंमें उनका अनुवाद हो गया है। यही उसका सर्वाधिक प्रचारका निदर्शन है। ज्योतिषशास्त्रका अध्ययन करके लोग परोपकार करें।

भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंके आत्मा हैं। वे पृथ्वी और द्युलोकके मध्यमें स्थित आकाशमण्डलके भीतर कालचक्रमें स्थित होकर बारह मासोंको भोगते हैं, जो सम्वत्सरके अवयव हैं और मेष आदि राशियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे प्रत्येक मास चन्द्रमानसे शुक्ल और कृष्ण दो पक्षका, पितृमानसे एक रात और एक दिनका तथा सौरमानसे सवा दो नक्षत्रका बताया जाता है।

सूर्यकी किरणोंसे एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। उनकी चाल बहुत तेज है, इसलिये वे सब नक्षत्रोंसे आगे रहते हैं। ये सूर्यके एक वर्षके मार्गको एक मासमें, एक मासके मार्गको सवा दो दिनोंमें और एक पक्षके मार्गको एक ही दिनमें तय कर लेते हैं। ये कृष्णपक्षमें क्षीण होती हुई कलाओंसे पितृगणके और शुक्लपक्षमें बढ़ती हुई कलाओंसे देवताओंके दिन-रातका विभाग करते हैं तथा तीस-तीस मुहूर्तोंमें एक-एक नक्षत्रको पार करते हैं। अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण ये ही समस्त जीवोंके प्राण और जीवन हैं।

चन्द्रमासे तीन लाख योजन ऊपर अभिजित्‌के सहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं। भगवान्‌ने इन्हें कालचक्रमें नियुक्त कर रखा है, अतः ये मेरुको दायीं ओर रखकर घूमते रहते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र दिखायी देते हैं। ये वर्षा करनेवाले ग्रह हैं, इसलिये लोकोंको प्रायः सर्वदा ही अनुकूल रहते हैं।

शुक्रके अनुसार ही बुधकी गति भी समझ लेनी चाहिये। ये चन्द्रमाके पुत्र बुध शुक्रसे दो लाख योजन ऊपर हैं। ये प्रायः मंगलकारी ही हैं; किंतु जब सूर्यकी गतिका उल्लंघन करके चलते हैं, तब बहुत अधिक आँधी, बादल और सूखेके भयकी सूचना देते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर मंगल हैं। वे यदि वक्रगतिसे न चलें तो एक-एक राशिको तीन-तीन पक्षमें भोगते हुए बारहों राशियोंको पार करते हैं। ये अशुभ ग्रह हैं और प्रायः अमंगलके सूचक हैं। इनके ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर भगवान् बृहस्पति हैं। ये यदि वक्रगतिसे न चलें तो एक-एक राशिको एक-एक वर्षमें भोगते हैं।

बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर दिखायी देते हैं। ये तीस-तीस महीनेतक एक-एक राशिमें रहते हैं। अतः इन्हें सब राशियोंको पार करनेमें तीस वर्ष लग जाते हैं। ये प्रायः सभीके लिये अशान्तिकारक हैं। इनके ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर सप्तर्षि दिखायी देते हैं। ये सब लोकोंकी मंगल-कामना करते हुए भगवान् विष्णुके परम पद ध्रुवलोककी प्रदक्षिणा किया करते हैं।

सप्तर्षियोंसे तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुवलोक है। इसे भगवान् विष्णुका परम पद कहते हैं। यहाँ उत्तानपादके पुत्र परम भगवद्भक्त ध्रुवजी विराजमान हैं। [श्रीमद्भागवत]

ज्योतिषके बहुविध रूप एवं उनकी उपादेयता

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)

सनातन वैदिक परम्पराके ऋषियोंने जिन चतुर्दश विद्याओंका निर्देश किया है, वे हैं—

षडङ्गमिश्रिता वेदा धर्मशास्त्रं पुराणकम्।
मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याश्चतुर्दश॥

चारों वेद, छः वेदांग, धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा एवं न्याय। वेदके छः अंगोंमें ज्योतिषको वेदका नेत्र माना गया है—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
येषां साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

(पाणिनीय शिक्षा)

आर्षप्रज्ञामण्डित तपःपूत साधकोंका कहना है कि जिस प्रकार मनुष्यको नेत्रके अभावमें लोकका कोई भी दृश्य दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार ज्योतिषज्ञानके अभावमें यज्ञादि काल-निर्धारण, बहुविध संस्कार, विद्यामुहूर्त, व्रत-त्योहार, वास्तु, मूर्तिप्रतिष्ठा, सामुद्रिक-शास्त्र, अंग-विद्या, स्वप्नविचार, शकुनापशकुन, विवाह, उपनयन, चौलकर्म, पुरुष-स्त्री-लक्षणबोध, रेखादिफल और स्वरविद्याप्रभृति किसी भी प्रकारके कार्य और उसके मुहूर्तका सम्यग्रूपेण परिज्ञान नहीं हो पाता।

यह वह शास्त्र है, जिसके आधारपर मनुष्यको उसके जन्म-जन्मान्तरीय कर्मोंके सुपरिणाम और दुष्परिणामका ज्ञान होता है तथा दुष्परिणामोंसे बचावहेतु उपायोंका निर्देश किया जाता है। विद्वानोंने इसे प्रत्यक्ष शास्त्रके रूपमें स्वीकार किया है—

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥

वस्तुतः भूत, वर्तमान और भविष्यत्—तीनों कालोंके प्रत्यक्षीकरणमें यह विद्या चक्षुरूपात्मिका है। एतावता इसका प्राधान्य स्वयंसिद्ध है तथा होरा, संहिता और सिद्धान्तादि स्कन्धत्रयात्मकत्वात् इसकी व्यापकता विद्वज्जन-समुदायमें सर्वविदित है। विपश्चिज्जनसमूहका मानना है कि गणित एक प्रामाणिक ज्ञानशाखा है, जो ज्योतिषशास्त्रका ही एक अंग है, चाहे वह अंकगणित हो, रेखागणित हो अथवा बीजगणित, सभीका समावेश इसीके अन्तर्गत होता है। इसकी व्यापकता और लोकप्रियता इसीसे प्रमाणित है कि इसके सिद्धान्तोंका उल्लेख वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों, रामायण, महाभारत, काव्यों एवं अन्य ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होता है तथा इसका सम्बन्ध खगोल, भूगोल, मनोविज्ञान, प्राणिशास्त्र, वनस्पतिविज्ञान, जीवन-विज्ञान, समाजशास्त्र, शरीरविज्ञान, आयुर्वेद, वास्तु, सैन्यशास्त्र एवं लोकजीवन आदि सभीके साथ है।

प्रकृत ज्ञानशाखाके चाहे जिस किसी संविभागको केन्द्रमें रखकर विचार किया जाय, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष-रूपसे अन्य संविभागोंकी आवश्यकता उसके लिये अनिवार्य हो जाती है; क्योंकि यहाँ संहिता, होरा और सिद्धान्त—तीनोंका परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक ओर जहाँ किसी जातकके जीवन-सम्बन्धी फलादेशके लिये उसके जन्मकालको ध्यानमें रखकर भयात, भभोग, ग्रहोंकी दशाएँ, अन्तर्दशाएँ तथा जातकपर पड़नेवाले उनके प्रभावोंका अध्ययन किया जाता है, विस्तृत कुण्डलियाँ बनायी जाती हैं, वहीं इस कार्यके सिद्ध्यर्थ गणितके सुदीर्घ सिद्धान्तोंका अनुपालन भी किया जाता है। अतः ज्योतिषके स्कन्धत्रयकी अन्यो-न्याश्रयता स्वयंसिद्ध है।

कालके अध्ययनका शास्त्र होनेके कारण यह कालविज्ञान भी कहा जाता है। सामान्यतया पृथ्वी सूर्यके तेजसे सर्वाधिक प्रभावित है। अतः सूर्य नामक ग्रहको केन्द्रमें रखकर सर्वविध गणना सम्पन्न की जाती है। अतः इस शास्त्रमें एक सिद्धान्त ही सूर्यसिद्धान्तकी संज्ञासे संज्ञित है। इसी प्रकार जगत्का इतिहास जाननेके लिये कालगणनाहेतु इसी शास्त्रका आश्रय लिया जाता है; क्योंकि वर्तमान एवं मध्यकालीन इकाइयोंके पूर्व

कालकी प्राचीन इकाइयोंका विधान ज्योतिषके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होता। अतः कालगणना-सम्बन्धी ऐतिहासिकताकी दृष्टिसे भी ज्योतिषकी महत्ताको नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

वास्तुशास्त्रीय विधानोंको ही देखें तो प्रसिद्ध स्थपति आचार्य विश्वकर्मा भवननिर्माणके आरम्भ किये जानेवाले महीनोंका विधान करते हैं तथा तत्सम्बद्ध फलादेश भी करते हैं। यथा—

चैत्रे शोककरं विद्यात् वैशाखे च धनागमम्।
ज्येष्ठे गृहाणि पीड्यन्ते आषाढे पशुनाशनम्॥
श्रावणे सुखसम्पत्तिः शून्यं भाद्रपदे भवेत्।
कलहश्चाश्विने मासे कार्तिक्ये भृत्यनाशनम्॥

इसी प्रकार जल, दुर्ग, भवन, मन्दिर अथवा स्थापत्यकी अन्य सभी शाखाओंमें समय-समयपर विधीयमान कार्योंके लिये ज्योतिषने न केवल मासोंका निर्देश किया है, प्रत्युत दिन, नक्षत्र, ग्रह, तारा, योग, करण तथा तत्सम्बद्ध फलोंका भी निर्देश किया है।

स्वास्थ्यविज्ञानका विधायक आयुर्वेद केवल उपवेद ही नहीं, प्रत्युत स्वयं पंचम वेद माना गया है, किंतु वहाँ भी औषधियोंके निर्माण और ग्रहणके लिये कालशास्त्र ही विधान करता है। लोकोपकारक ज्योतिषने ग्रहोंकी दिशाओं, प्रकृति, रंग, संगति तथा प्रभावकी जैसी विवेचना की है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। प्रत्यक्ष फल-विधायक होनेसे यह प्राचीन कालसे ही अत्यन्त लोकप्रिय शास्त्र रहा है। यही कारण है कि चिरकालसे राजा-महाराजा अपने राज्योंमें ज्योतिर्धर विद्वानोंको संरक्षण प्रदान किया करते थे तथा उनमें भी दैवज्ञोंको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

शकुनापशकुन-प्रतिपादनके प्रसंगमें यदि काल-शास्त्रियोंने श्वान, विडाल, छिपकली, पशु, पक्षी, श्रृगाल और मत्स्यादिको महत्त्व प्रदान किया है तो अन्यान्य दृष्टियोंसे बहुविध वनस्पतियोंको भी महत्ता दी है। विद्वानोंका मत है कि यदि कन्याके विवाहमें मंगलादि ग्रहोंके कारण अवरोध आ रहा हो तो कात्यायनीदेवीकी उपासना कदलीकी शुष्कपत्तियोंद्वारा निर्मित आसनपर बैठकर करनी चाहिये। इसी प्रकार शनिग्रहकी शान्तिके लिये अश्वत्थवृक्षके मूलमें जल देना और तत्सम्बद्ध आराधना करनी चाहिये इत्यादि।

इस प्रकार वेदमूलकत्वात् ज्योतिष न केवल स्वयं लोक एवं शास्त्रीय गरिमासे मण्डित है, प्रत्युत वह बहुविध शास्त्रोंसे अन्तःसम्बद्ध भी है। यह एक ओर जहाँ लोकहितविधायक है, वहीं अध्यात्मोपासना एवं साधनादिका आधार भी है। जिस प्रकार वेदके पुरुषसूक्तमें **'सहस्रशीर्षा०'** आदि मन्त्रोंका, वास्तुमें वास्तुपुरुषका, व्याकरणमें शब्दब्रह्मका एवं काव्यशास्त्रमें काव्यपुरुषका निरूपण है, उसी प्रकार ज्योतिषमें भी कालपुरुषकी वैज्ञानिक परिकल्पना है।

यहाँ भारतीय सनातन चिन्तनसरणिके अन्य शास्त्रोंकी भाँति विषयके प्रतिपादनार्थ समास एवं व्यास—द्विविध शैलियोंका उपयोग दृष्टिगोचर होता है। व्यासशैलीकी दृष्टिसे देखें तो जातकके कल्याणहेतु अष्टोत्तरी, विंशोत्तरी आदि दशा-महादशा, भावों, प्रभावों तथा परिणामोंकी प्राप्तिके लिये कहीं लंकोदयादि सिद्धान्तोंका प्रयोग होता दिखता है तो कहीं अन्यान्य गणितीय विधियोंका। कहना न होगा कि जिस प्रकार यज्ञीय विधियोंके अन्तर्गत वेदी, कुण्ड आदिके निर्माणमें रेखागणितीय सिद्धान्त प्रयुक्त होते हैं, उसी प्रकार बगलामुखी, श्रीयन्त्र, कालिकायन्त्र एवं अन्य सभी यन्त्रोंके निर्माणसे लेकर छायापुरुषके विधानपर्यन्त ज्योतिषके रेखागणितीय सिद्धान्त ही प्रयोगमें लाये जाते हैं। इसी प्रकार लौकिक भूम्यादि-मापन, मार्ग-आसन, शय्या, आसन्दिकाकी संरचनासे लेकर तान्त्रिक-साधना और वैदिक विधानोंतक ज्योतिषशास्त्रीय नियम-परिनियमोंकी व्यापकता किसी भी सारस्वतोपासकसे अविदित नहीं है। वेदांग होनेके कारण यह आमुष्मिक भी है; क्योंकि वैदिक निर्देशोंके अनुपालनसे ही पारलौकिक सिद्धि सम्भव है, जिसमें कहीं-न-कहीं प्रकृत कालविज्ञानकी भूमिका अवश्यम्भावी है। **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'** आपस्तम्बश्रौतसूत्रकी इस उक्तिके आधारपर ब्राह्मणग्रन्थ भी वेद हैं, जो समग्र कर्मकाण्डका विधान करते हैं और वे कर्म ज्योतिषशास्त्रद्वारा

निर्दिष्ट नियमोंके अनुरूप हैं। अत: यह वेदांग जगत्के सामान्यातिसामान्य भौतिकतासे लेकर स्वर्गादिप्राप्तिपर्यन्त उपयोगी है। कठोपनिषद्में तो त्रिणाचिकेतसंज्ञक अग्नि **'या इष्टिका यावतीर्वा यथा वा'** के विधानावसरपर इष्टिकाओंके आकारका आधारनिर्धारण भी इसी ज्योतिषके माध्यमसे होता है।

जहाँतक ज्योतिषकी समासशैलीका प्रश्न है तो रमलविद्या, यवनज्योतिष, अंकविद्या, स्वरशास्त्र, रेखाविज्ञान, अंगविद्या और लक्षणविचारप्रभृति ऐसी अनेक ज्ञानपद्धतियाँ हैं, जिनके द्वारा संक्षिप्त रूपसे तत्काल फलादेश किया जाता है। सामुद्रिकशास्त्रके शिवस्वरोदयाध्यायमें भगवान् शिव भगवती पार्वतीके जिज्ञासाभरे प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहते हैं—

शृणु त्वं कथितं देवि देहस्थं ज्ञानमुत्तमम्।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रणीयते॥
स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम्।
स्वरे च सर्वत्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम्॥
स्वरहीनश्च दैवज्ञो नाथहीनं यथा गृहम्।
शास्त्रहीनं यथा वक्त्रं शिरोहीनञ्च यद्वपुः॥
नाडीभेदं तथा प्राणतत्त्वभेदं तथैव च।
सुषुम्नामिश्रभेदञ्च यो जानाति स मुक्तिगः॥

(सामुद्रिकशास्त्र, उत्तरार्ध १४—१७)

अर्थात् हे देवि! तुम मेरे द्वारा कथित उत्तम ज्ञानको सुनो, जिसके ज्ञानमात्रसे सर्वज्ञता प्राप्त होती है। सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, गान्धर्वशास्त्र और सम्पूर्ण त्रिलोकी—ये सब स्वरमें ही हैं और स्वर ही आत्मस्वरूप है। स्वरसे हीन दैवज्ञ, स्वामीसे हीन गृह, शास्त्रविहीन मुख और सिरसे हीन देह शोभित नहीं होता। जो मनुष्य नाड़ी, प्राणतत्त्व और सुषुम्ना आदि नाड़ियोंके भेदको जानता है, वह मुक्तिको प्राप्त होता है।

यहाँतक कि समुद्रमुनिके अनुसार तो साकार अथवा निराकार दोनों ही स्थितियोंमें स्वरबल (वायुबल) शुभ होता है—

साकारे वा निराकारे शुभं वायुबलात्कृते।

(सामुद्रिकशास्त्र, उत्तरार्ध, श्लोक १८)

तथा समस्त शास्त्र, पुराणादि, स्मृति और वेदांगपूर्वक स्वरज्ञानके परे अन्य कुछ भी नहीं है—

सर्वशास्त्रपुराणादिस्मृतिवेदाङ्गपूर्वकम्।
स्वरज्ञानात्परं तत्त्वं नास्ति किञ्चिद्वरानने॥

(सामुद्रिकशास्त्र, उत्तरार्ध, श्लोक २४)

ऋषि समुद्रके अनुसार यात्रा, दान, हलप्रवहण, बीजवपन, साधना, युद्ध, योगाभ्यास, सौम्य एवं कठिन कार्य इडा, पिंगला और सुषुम्नासे सम्बद्ध सूर्य-चन्द्र स्वरोंके आधारपर करना चाहिये। इसी प्रकार शिवदर्शन, आनन्दप्राप्ति, सर्वज्ञतासाधन आदिकी भी व्यवस्थाओंपर यहाँ प्रामाणिक रूपसे प्रकाश डाला गया है और इस शास्त्रके रोगप्रकरणमें रोगों तथा कालप्रकरणमें मृत्युके लक्षणोंका किया गया विधान कालविज्ञानकी अद्भुत उपलब्धि है। साथ ही स्वराभ्यासके द्वारा योगी बनने एवं अमर होनेकी विधियोंका भी इस ज्ञानशाखामें वर्णन प्राप्त होता है—

गगनात् स्त्रवते चन्द्रः कायपद्मानि सिञ्चयेत्।
कर्मयोगात्सदाभ्यासैरमरः शशिसंश्रयात्॥
शशाङ्कं वारयेद्रात्रौ दिवा वार्यो दिवाकरः।
इत्याभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः॥

(सामुद्रिकशास्त्र, उत्तरार्ध, श्लोक २८-२९)

अर्थात् आकाशमें गमन करनेसे चन्द्रमाकी किरण नीचे गिरकर देहरूपी कमलोंको सींचती है, इस प्रकार कर्मयोगसे योगी चन्द्रमाका आश्रय लेनेसे अभ्यासके द्वारा अमर हो जाता है। जो रात्रिमें चन्द्रस्वरका और दिनमें सूर्यस्वरका निवारण करता है—इस प्रकार अभ्यासमें तत्पर वह योगी ही योगी है, इसमें सन्देह नहीं।

ऋषि समुद्रका मानना है कि जिस मनुष्यका रात्रिमें चन्द्रस्वर और दिनमें सूर्यस्वर सतत चलता रहे तो उसकी मृत्यु छः मासमें हो जाती है। जिस मनुष्यके श्वासकी गति दो अहोरात्र पिंगलामें रहे तो तत्त्वके ज्ञाताओंने उस मनुष्यका जीवन दो वर्षका कहा है और जिस मनुष्यका प्राणवायु तीन रात्रितक एक ही नासिकाके पुटमें स्थिर होकर चले तो विद्वान् मनुष्य उसकी अवस्था एक वर्ष कहते हैं—

रात्रौ चन्द्रो दिवा सूर्यो वहेद्यस्य निरन्तरम्।
जानीयात्तस्य वै मृत्युः षण्मासाभ्यन्तरे भवेत्॥
अहोरात्रद्वयं यस्य पिङ्गलायां सदा गतिः।
तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः॥
त्रिरात्रे वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः।
तदा संवत्सरायुस्तं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

(सामुद्रिकशास्त्र, उत्तरार्ध)

ध्यातव्य है कि इसी ग्रन्थमें स्वरसिद्धिके लिये अनेक उपाय भी बताये गये हैं, जिनके अनुपालनसे व्यक्ति मृत्युपर विजय प्राप्त कर सकता है—

येषां हृदि स्फुरति शाश्वतमद्वितीयं
तेजस्तमोनिवहनाशकरं रहस्यम्।
तेषामखण्डशशिरम्यसुकान्तिभाजां
स्वप्नेऽपि न भवति कालभयं नराणाम्॥

(सामुद्रिकशास्त्र, उत्तरार्ध, श्लोक ७२)

अर्थात् जिनके हृदयमें अनादि अद्वितीय गोपनीय तेज (शिवस्वरोदय ज्ञान) स्फुरित होता है, उन अखण्डित चन्द्रमय सुन्दर नरोंको स्वप्नमें भी कालका भय नहीं रह जाता। इसमें जहाँ एक ओर स्वरमीमांसाके प्रकरणमें प्रमुख पाँचों तत्त्वों, तत्त्वोंके सृष्टिकर्म, द्वीपों, नाडियों, रंगों, आकृतियों, गुणों एवं सभी ग्रहों, नक्षत्रोंका समावेश कर लिया गया है, वहीं मृत्युके लक्षणोंका भी प्रतिपादन किया गया है, जिसका ज्ञान प्राप्तकर व्यक्ति उससे सुरक्षाके उपाय कर सकता है।

स्वप्नदर्शनके प्रकार और परिणामपर भी दैवज्ञोंने सविस्तार प्रकाश डाला है, जो ज्योतिषके अतिरिक्त संसारके अन्य किसी भी चिन्तनमें दृष्टिगोचर नहीं होता। यद्यपि ऐसे चिन्तन ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणोंमें प्राप्त होते हैं, किंतु वे विचार भी ज्योतिषतत्त्वमूलक ही हैं। यथा—

स्वप्ने हसति यो हर्षाद्विवाहं यदि पश्यति।
नर्तकं गीतमिष्टञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम्॥

(सामुद्रिकशास्त्र, दुःस्वप्नप्रकरण, श्लोक २)

अर्थात् जो स्वप्नमें प्रसन्नतया हँसता है और विवाह तथा नर्तकको देखता है या अभिलषित गीत सुनता है तो उसपर विपत्ति आती है। किंतु—

स्वप्ने तु ब्राह्मणश्रेष्ठः समाश्लिष्यति यं नरम्।
तीर्थस्नायी भवेत् सोऽपि निश्चितञ्च श्रियान्वितः॥

(सामुद्रिकशास्त्र, स्वप्नाध्याय, श्लोक ४७)

अर्थात् स्वप्नमें श्रेष्ठ ब्राह्मण जिस नरको लिपटा लेता है तो निश्चयेन वह लक्ष्मीवान् होकर तीर्थस्नायी होता है।

प्रस्तुत ज्योतिर्विज्ञानमें किसी भी व्यक्तिके जीवनसे सम्बद्ध शुभाशुभ फलज्ञान और उसकी प्राप्तिके लिये अन्य विधियाँ भी वर्णित हैं, यथा—तिल और रेखाएँ। शरीरके विभिन्न भागोंमें विद्यमान तिल और रेखाओंकी स्थिति, संख्या, रंग और आकृतियाँ अनेकविध परिणामोंके सूचक होते हैं। इसके लिये बहुत गणित तथा कुण्डली-ज्ञान अथवा सुदीर्घ अध्ययनकी आवश्यकता नहीं होती। परिश्रमपूर्वक ध्यान देने तथा किसी गुरुके साथ बैठकर उसकी कृपा प्राप्तकर ज्ञानप्राप्तिके द्वारा भी तिल तथा रेखाओंसे प्राप्त दुष्परिणामोंसे अपनी रक्षा की जा सकती है। जैसे—महर्षि समुद्र ललाटमें ७ रेखाओंका मुख्यतया विधान करते हैं, जिनके ऊपरसे क्रमशः नाम हैं—

१-शनिस्वामिनी, २-गुरुस्वामिनी, ३-मंगलस्वामिनी, ४-सूर्यस्वामिनी, ५-भृगुस्वामिनी, ६-बुधस्वामिनी तथा ७-चन्द्रस्वामिनी।

इन रेखाओंके आकार, लम्बाई, स्थिति और ग्रहनामोंके अनुरूप फलादेश किया जाता है। इसी प्रकार हस्त और चरणकी रेखाएँ भी पृथक्-पृथक् फल प्रदान करती हैं तथा नेत्रोंके आकार, रंग, कर्ण, ओष्ठ, नासिका एवं दन्तादि अंगोंकी आकृतियाँ भी अलग-अलग फल प्रदान करती हैं, जिन्हें ज्ञान और अभ्यासके द्वारा जाना जा सकता है।

इसी प्रकार शरीरके विभिन्न अंगोंमें स्थित चिह्नों और तिलोंके स्वरूप और स्थितियाँ भी तत्सम्बद्ध मानवके जीवनके सन्दर्भमें बहुत कुछ फलोंकी संसूचना देते हैं। यहाँतक कि चिह्नोंके द्वारा जातककी राशि, लग्न और नक्षत्रका ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है और मनुष्यके सन्तानसंख्या, दाम्पत्यसुख, भ्राता, भगिनी, स्त्री, सम्पत्ति और चरित्रका ज्ञान भी ज्योतिषीको हो जाता है।

न केवल इतना ही, प्रत्युत एक अंगमें विद्यमान तिल अन्य सुनिश्चित तथा निर्धारित अंगपर स्थित तिलका सूचक होता है। यथा—

दक्षाम्बपातस्य च शेषदेशे
नासान्तिके चेत्तिलको विभाति।
कटिप्रदेशस्य च निम्नभागे
चिह्नं तिलाद्यं कथितं नरस्य॥

(सामुद्रिकशास्त्र, श्लोक १८)

अर्थात् यदि दाहिने नेत्रप्रान्तके नासाके समीप तिलादि चिह्न हों तो उस व्यक्तिके कमरके निचले भागमें तिल अवश्य होगा।

इसी प्रकार शरीरके कुछ अंगोंकी रचना, चिह्न और रेखाओंके स्वरूप, उनकी लम्बाई, चौड़ाई और लक्षण भी व्यक्तिके स्वरूप, व्यक्तित्व, आचारशीलता, प्रकृति तथा सफलता-असफलताके सूचक होते हैं, जिनका वर्णन अनेक ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक देखा जा सकता है। यथा—

कनिष्ठिकानामिका यस्या यदि माध्यमिका तथा।
भूमिं न स्पृशते सा स्त्री विज्ञेया व्यभिचारिणी॥

(अंगविद्या, श्लोक २९)

अर्थात् जिस स्त्रीकी कनिष्ठिका, अनामिका और मध्यमा अँगुलि भूमिका स्पर्श न करे, उसे व्यभिचारिणी जानना चाहिये।

अरेखं बहुरेखं वा येषां पाणितले नृणाम्।
ते स्युरल्पायुषो निःस्वा दुःखिता नात्र संशयः॥

(अंगविद्या, श्लोक ३९)

अर्थात् जिनके हाथमें अत्यल्प अथवा बहुसंख्यक रेखाएँ हों, वे लोग अल्पायु, निर्धन तथा दुःखी होते हैं।

विद्वानोंका मत है कि अंगविद्याके ज्ञानपूर्वक ग्राह्याग्राह्य वर-वधूका परीक्षण सरलतासे सम्भव है। इसी तरह अंगविद्यानुमोदित लक्षणोंके आधारपर व्यक्तिकी आयु, धन, जीवन, विद्या, प्रगति, उन्नति, अवनति, सन्तति और वन्ध्यात्व आदिके सन्दर्भमें भी फलादेश किया जाता है। यथा—

प्रलम्बबाहुरैश्वर्यं प्राप्नुयाद् गुणसंयुतम्।
ह्रस्वबाहुर्भवेद् दासः परप्रेषकस्तथा॥

(अंगविद्या, श्लोक १२८)

अर्थात् लम्बी भुजाओंवाला पुरुष सर्वगुणों और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होता है तथा ह्रस्व बाहुवाले दास और दूत होते हैं।

इसी प्रकार नीची हथेलीवाले पितृसुखसे वंचित होते हैं तथा सम्पूर्ण करतल यदि अँगुलियोंकी ओर झुका हो तो वे धनी होते हैं एवं उत्तान हथेलीवाले दानशील होते हैं (अंगविद्या, श्लोक ३३)।

हाथमें स्निग्ध, गहरी रेखाएँ धनिकोंकी होती हैं; रूखी एवं अस्पष्ट रेखाएँ तथा छिद्रयुक्त अँगुलियाँ निर्धनोंकी होती हैं, किंतु जिनकी अँगुलियाँ परस्पर मिली हुई हों, वे धनसंचयी होते हैं (अंगविद्या, श्लोक १३६)।

हस्तपादगत रेखाओंके द्वारा निर्मित आकृतियोंके आधारपर भी दैवज्ञोंने ढेर सारे फलादेश किये हैं। जैसे—मत्स्य, स्वस्तिक, कमल, शंख, छत्र, चक्र, कच्छप, हाथी, घोड़ा, वृषभ, वीणा, माला, हल, अंकुश, वृक्ष, गदा, रथ, मृदंग, खड्ग और धनुषप्रभृति आकृतियाँ यदि जातकके लिये शुभ हैं तो गधा, कुत्ता, शृगाल और सर्प आदिके चिह्न अशुभ हैं।

ज्योतिषके ग्रन्थोंमें स्त्री-पुरुषके शुभाशुभ लक्षणोंका सम्यग्तया विधान है, जो विवाहके लिये सावधानीहेतु तथा आदर्श दाम्पत्यके लिये परम लाभप्रद है। इस शास्त्रमें मानवजातिके प्रत्येक अंगोंके प्रकार, वर्ण, स्वरूप एवं तज्जन्य फलोंका जैसा सांगोपांग चित्रांकन किया गया है, वैसा अन्यत्र सर्वथा सुदुर्लभ है।

इस प्रकार ज्योतिष नामसे लोकमें ख्यात यह कालविज्ञान वैश्विक कल्याणके सम्पादनार्थ मानवजातिके लिये ऋतम्भरा प्रज्ञासे संवलित ऋषियोंद्वारा करुणापूर्वक प्रदान किया गया अक्षुण्ण वरदान है, जो अपने बहुविध रूपोंद्वारा अनन्तकालसे कोटि-कोटि जनसम्मर्दका अनवरत मंगलविधान करता आ रहा है और करता रहेगा। कालसे

सम्बद्ध यह शास्त्र एक ओर जहाँ दैवी उपासना, कृतज्ञता, अर्चना, वनस्पतिसेवन, प्राणिहित, परोपकार, उत्तम कार्य, बाह्याभ्यन्तरीय पर्यावरणसंरक्षण तथा वैदिक सिद्धान्तानुमोदनका विधायक है; वहीं स्वप्नफल, नक्षत्रों, स्वरफल एवं ग्रहोपग्रहोंके प्रभाव, शकुनापशकुनों एवं लक्षणानुरूप लक्ष्योंका निरूपक भी है। एतदनुसार सूर्यकी तेजस्विता, चन्द्रमाकी स्निग्धता एवं त्वरापूर्ण गतिशीलता जातकको सर्वाधिक प्रभावित करती हैं, अतः फलादेश करते समय जन्मचक्रके अन्तर्गत इनकी स्थितिपर प्रधानतया विचार होता है। किसी भी जातकके लिये प्रत्येक ग्रहोपग्रह अपनी स्थितियों, ग्रहमैत्री तथा ग्रहशत्रुताके आधारपर फल देते हैं। इसीलिये कभी सौम्य ग्रह अच्छे फलका दाता होते हुए भी प्रतिकूल फल देने लगते हैं तो कभी क्रूर ग्रहोंकी सूचीमें स्थित ग्रह भी अनुकूल फल प्रदान करते हैं।

ध्यातव्य है कि ज्योतिषके सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्तिको आगामी सुखोंकी वृद्धि, मंगलकी प्राप्ति एवं अमंगलसे रक्षाका विधान करते हैं और इसके लिये अनेकविध उपाय भी बताते हैं। यही कारण है कि ज्योतिष समूची दुनियामें चिरकालसे उपादेय शास्त्रके रूपमें सर्वथा समादृत रहा है और रहेगा।

नवग्रहोंका स्वरूप

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः। सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात् सदा रविः॥
श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेताश्वः श्वेतवाहनः। गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी॥
रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः। चतुर्भुजः रक्तरोमा वरदः स्याद् धरासुतः॥
पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः। खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः॥
देवदैत्यगुरू तद्वत् पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ। दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू॥
इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः। बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतस्तथा॥
करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः। नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते॥
धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः। गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः॥

सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुते रथपर आरूढ़ रहते हैं। चन्द्रमा गौरवर्ण, श्वेत वस्त्र और श्वेत अश्वयुक्त हैं। उनका वाहन—श्वेत अश्वयुक्त रथ है। उनके दोनों हाथ गदा और वरदमुद्रासे युक्त बनाने चाहिये। धरणीनन्दन मंगलकी चार भुजाएँ हैं। उनके शरीरके रोएँ लाल हैं, वे लाल रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं और उनके चारों हाथ क्रमशः शक्ति, त्रिशूल, गदा एवं वरमुद्रासे सुशोभित रहते हैं। बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीर-कान्ति कनेरकी पुष्प-सरीखी है। वे भी चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल, गदा और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी करनी चाहिये। उनकी चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शनैश्चरकी शरीर-कान्ति इन्द्रनीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। राहुका मुख भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, ढाल, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती हैं तथा वे नील रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा)-में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं। केतु बहुतेरे हैं। उन सबोंकी दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूम्रवर्णके हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन रहते हैं। [मत्स्यपुराण]

ज्योतिषदर्शन

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)

१. ज्योतिष

ऋक्, यजुः, साम और अथर्वसंज्ञक चार वेद हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिषसंज्ञक छः वेदांग हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र चार उपांग हैं। उपपुराणोंका पुराणोंमें अन्तर्भाव युक्त है। वैशेषिकशास्त्रका न्यायमें अन्तर्भाव है। महाभारत और रामायणसंज्ञक इतिहासद्वयका सांख्य, पातंजल, पाशुपत और वैष्णवागमोंका अभ्युदय-निःश्रेयसप्रद धर्मशास्त्रोंमें अन्तर्भाव युक्त है।

उक्त रीतिसे चतुर्विध वेद, षडंग, पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्यासंस्थान हैं—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति १। ३)

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥

(महाभारत-आश्वमेधिकपर्व अ० ९२ दाक्षिणात्य)

आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्रसहित उक्त चतुर्दश (१४) विद्यासंस्थान अष्टादश (१८) सिद्ध होते हैं—

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेत्यनुक्रमात्।
अर्थशास्त्रं परं तस्माद्विद्या ह्यष्टादशस्मृताः॥

(शिवपुराण वाय० २। २३)

सीतोपनिषद्के अनुसार उक्त चतुर्दश (१४) विद्यासंस्थानके अतिरिक्त अयन (१५)-संज्ञक उपांग एवं साम्प्रदायिक आचाररूप समयाचार (१६)-के साथ संगति साधनेवाले निबन्धग्रन्थ (१७) तथा इतिहास (१८), वास्तुवेद (१९), धनुर्वेद (२०), गान्धर्ववेद (२१), आयुर्वेद (२२)-संज्ञक उपवेद; दण्ड (२३), नीति (२४), व्यापारविद्या (२५), वायुजयविद्या (२६)-नामक बारह विद्याओंका उल्लेख है। निबन्धग्रन्थका समयाचारमें तथा इतिहासका पुराणमें अन्तर्भाव कर लेनेपर चौबीस (२४)-विद्यासंस्थान सिद्ध होते हैं।

शुक्रनीतिके अनुसार विद्याके बत्तीस प्रभेद इस प्रकार हैं—

ऋग्यजुः साम चाथर्व वेदा आयुर्धनुः क्रमात्।
गान्धर्वश्चैव तन्त्राणि उपवेदाः प्रकीर्तिताः॥
शिक्षा व्याकरणं कल्पो निरुक्तं ज्यौतिषं तथा।
छन्दः षडङ्गानीमानि वेदानां कीर्तितानि हि॥
मीमांसातर्कसाङ्ख्यानि वेदान्तो योग एव च।
इतिहासाः पुराणानि स्मृतयो नास्तिकं मतम्॥
अर्थशास्त्रं कामशास्त्रं तथा शिल्पमलङ्कृतिः।
काव्यानि देशभाषावसरोक्तिर्यावनं मतम्॥
देशादिधर्मा द्वात्रिंशदेता विद्याभिसंज्ञिता।

(शुक्रनीति ४। ३। २६—३०)

ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व—ये चार वेद हैं। क्रमशः आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा तन्त्र (स्थापत्य-वेद)—ये चार उपवेद हैं। शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्द—ये वेदोंके षडंग हैं। मीमांसा, न्याय, सांख्य, वेदान्त, योग, इतिहास, पुराण, स्मृति, नास्तिकमत, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलंकारशास्त्र, काव्य, राष्ट्रभाषा, सूक्तिशास्त्र, यवनोंका मत तथा वैदेशिक धर्मग्रन्थ—ये बत्तीस विद्या नामसे जाने जाते हैं।

आयुर्वेदो धनुर्वेदो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रं च तत्सर्वमग्निहोत्रकृते कृतम्॥
छन्दः शिक्षा च कल्पश्च तथा व्याकरणानि च।
शास्त्रं ज्योतिर्निरुक्तं चाप्यग्निहोत्रकृते कृतम्॥
इतिहासपुराणं च गाथाश्चोपनिषत् तथा।
आथर्वणानि कर्माणि चाग्निहोत्रकृते कृतम्॥

(महाभारत-आश्वमेधिकपर्व अ० ९२ दाक्षिणात्य)

आयुर्वेद, धनुर्वेद, मीमांसा, विस्तृत न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र, छन्द, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, इतिहास, पुराण, गाथा, उपनिषत् और अथर्ववेदके विहित कर्म भी अग्निहोत्रको जानकर उसके सम्पादनके लिये हैं।

दर्शादि वैदिक कर्मांग हैं। उनके अनुष्ठानके लिये कालज्ञान अपेक्षित है। कालज्ञानके लिये भगवान् आदित्य और गर्गाचार्यादिविरचित ज्योतिषका ज्ञान अपेक्षित है। जिससे तिथि, नक्षत्र, योग, मुहूर्त, करण और ग्रहोंकी गतिद्वारा कालज्ञान अर्थात् समय-निर्धारण होता है और जिसके संहिता, होरा तथा गणित—ये तीन स्कन्ध हैं, उसे ज्योतिष कहते हैं—

तिथिनक्षत्रयोगानां मुहूर्तकरणात्मकम्।
कालस्य वेदनार्थं तु ज्योतिर्ज्ञानं पुरानघ॥

(महाभारत-आश्वमेधिकपर्व अ० ९२ दाक्षिणात्य)

हे अनघ! तिथि, नक्षत्र, योग, मुहूर्त और करणरूप कालका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पूर्वकालमें ज्योतिःशास्त्रका निर्माण हुआ।

ध्यान रहे;

परीक्ष्यकारी युक्तश्च स सम्यगुपपादयेत्।
देशकालावभिप्रेतौ ताभ्यां फलमवाप्नुयात्॥

(महाभारत-शान्तिपर्व १३७। २४)

जो पुरुष प्रामाणिक निरीक्षण-परीक्षणकर सतत संयत और सावधान रहनेवाला है, वह अभीष्ट देश और कालका सम्यक् उपयोग करनेमें समर्थ होता है और उनके सहयोगसे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है।

एतौ धर्मार्थशास्त्रेषु मोक्षशास्त्रेषु चर्षिभिः।
प्रधानाविति निर्दिष्टौ कामे चाभिमतौ नृणाम्॥

(महाभारत-शान्तिपर्व १३७। २३)

ऋषियोंने धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा मोक्षशास्त्रमें इन देश और कालको कार्यसिद्धिका प्रधान उपाय बताया है। मनुष्योंकी कामनासिद्धिमें भी ये देश और काल ही प्रधान माने गये हैं।

काष्ठाः कला मुहूर्ताश्च दिवा रात्रिस्तथा लवाः।
मासाः पक्षाः षड् ऋतवः कल्पः संवत्सरास्तथा॥
पृथिवी देश इत्युक्तः कालः स च न दृश्यते।
अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं ध्यायते यच्च तत्तथा॥

(महाभारत-शान्तिपर्व १३७। २१-२२)

काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, रात, लव, मास, पक्ष, छः ऋतु, सम्वत्सर और कल्प—इन्हें काल कहते हैं तथा पृथ्वीको देश कहा जाता है। इनमें देशका तो दर्शन होता है, परंतु काल दृष्टिगोचर नहीं होता। अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये जिस देश और कालको उपयोगी मानकर उसका विचार किया जाता है, उसको ठीक-ठीक ग्रहण करना चाहिये।

आत्मा, देश, काल, उपाय, कृत्य तथा सहाय-नामक षड्वर्ग नीतिद्वारा संचालित होनेपर उन्नतिके कारण होते हैं। अभिप्राय यह है कि देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण तथा वासनाबीज अज्ञान-समवेत आत्मा, प्राची आदि दिक्, काशी आदि क्षेत्ररूप देश, भूत-भविष्यत्-वर्तमान तथा प्रातः-मध्याह्न-सायं आदि काल, कार्यसाधक प्रकाररूप उपाय, देश-काल-पात्रा-नुरूप कार्यविशेषरूप एवं द्रव्य, आचार्य, मन्त्री-पत्नी, परिकरादि सहायकका उपयोग, प्रयोग, विनियोग कर्मसिद्धिके षड्वर्ग हैं—

आत्मा देशश्च कालश्चाप्युपायाः कृत्यमेव च।
सहायाः कारणं चैव षड्वर्गो नीतिजः स्मृतः॥

(महाभारत-शान्तिपर्व ५९। ३२)

२. कालस्वरूप

ब्रह्मके मूर्त तथा अमूर्त दो रूप हैं। जो मूर्त है, वह असत्य है और जो अमूर्त है, वह सत्य है। सत्-संज्ञक अमूर्त ब्रह्मज्योति है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च। अथ यन्मूर्तं तदसत्यम्। यदमूर्तं तत्सत्यं, तद् ब्रह्म तज्ज्योतिः।' (मैत्रायण्युपनिषत् ५.३)

अक्षरसंज्ञक ब्रह्मसे कालका उद्भव मान्य है—

'अक्षरात्सञ्जायते कालः' (अथर्वशिर उपनिषत्)

ब्रह्मके काल तथा अकाल दो रूप हैं। जो आदित्यके पूर्व है, वह अकाल अकल है और जो आदित्यके पश्चात् है, वह काल सकल है। जो संवत्सर है, वह सकलका रूप है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे कालश्चाकालश्च। अथ यः प्रागादित्यात्सोऽकालोऽकलः। अथ य आदित्यात्पश्चात् स कालः सकलः। सकलस्य वा एतद्रूपं यत्संवत्सरः।' (मैत्रायण्युपनिषत् ६।१५)

कालसंज्ञक आदित्यकी उपासना करे। आदित्य ब्रह्म है—

'कालसंज्ञमादित्यमुपासीतादित्यो ब्रह्म।' (मैत्रायण्युपनिषत् ६।१६)

पंच स्थूल भूत, पंच सूक्ष्म भूत, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय तथा मन-बुद्धि-चित्त-अहंकारसंज्ञक अन्तःकरण-चतुष्टय—ये चौबीस तत्त्व प्रकृतिके कार्य हैं। प्रकृतिसंज्ञक प्रधान पचीसवाँ तत्त्व काल है—**'यः कालः पञ्चविंशकः'** (श्रीमद्भागवत ३।२६।१५)।

किसी भी व्यक्ति तथा वस्तुका उद्भव, उसकी स्थिति तथा उसका लय किसी देश और कालमें ही सम्भव है। किसी भी कार्यका उपादान उसका देश है। जैसे कि घटका उद्भव-स्थिति-लयस्थानरूप उपादान मृत्तिका उसका देश है। किसी भी कार्यके उद्भव-स्थिति तथा लयका क्षण उसका काल है। कारणको कार्यकी संरचनाके अनुरूप और कार्यको उसकी स्थिति तथा कारणभावापत्तिके अनुरूप क्रियाशील करनेवाला काल है। त्रिगुणकी साम्यावस्था मूलप्रकृतिमें महासर्गके प्रारम्भमें क्षोभ उत्पन्नकर उसे सर्गके अनुरूप करनेवाला काल है—

'कालाद्गुणव्यतिकरः' (श्रीमद्भा० २।५।२२)।

प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि।
चेष्टा यतः स भगवान् काल इत्युपलक्षितः॥

(श्रीमद्भा० ३।२६।१७)

सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर मूल देश और उनका ईक्षणरूप संकल्प मूल काल है। अतएव जगत् बनानेवाला निमित्त तथा बननेवाला उपादान स्वयं सर्वेश्वर है—

'तदात्मानः स्वयमकुरुत' (तैत्तिरीयोपनिषत् २।७।१), **'कालश्च हेतुश्च'** (श्रीमद्भा० ११।२८।१८), **'कालः कलयति प्रकाशयति यः तथा हेतुः कारणं च यत् तदेव। उपादानकारणं निमित्तं प्रकाशकं च ब्रह्म।'** (श्रीधरी)

जिस प्रकार मृत्तिका स्निग्धता नामकी घटोत्पादिनी शक्तिके द्वारसे घट होती है; उसी प्रकार सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर प्रधानसंज्ञक त्रिगुणमयी प्रकृतिरूपा मायाशक्तिके द्वारसे कार्यात्मक जगत् होता है। सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर और प्रकृतिरूपा मायाशक्ति, तद्वत् पुरुषका प्रभाव अर्थात् सर्वेश्वरकी संहारणी शक्ति तथा प्रकृतिरूपा माया तथा पुरुषका संयोग काल है—

'प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम्।'

(श्रीमद्भा० ३।२६।१६)

'कालो मायात्मसम्बन्धः' (सूतसंहिता २, ज्ञानयोगखण्ड २।१०)।

प्रधानं पुरुषं चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम्।
तयोरनादिर्निर्दिष्टः कालः संयोजकः परः॥
त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम्।

(अद्भुतरामायण १२।८१)

उक्त रीतिसे कलनात्मिका शक्ति तथा उससे अवच्छिन्न चैतन्य काल है—

'कालः कलयतामहम्॥' (गीता १०।३०)

कालका भी काल परमेश्वर क्षणादिरूपसे प्रसिद्ध अक्षीण काल है—

'अहमेवाक्षयः कालः॥' (गीता १०।३३)

किसी भी कार्यकी उत्पत्ति तथा स्थितिस्थानरूप उपादान उसका देश है; तद्वत् किसी भी कार्यका लयस्थानरूप उपादान उसका काल है। जब सन्निकट निर्विशेषरूप उपादान अपने सन्निकट सविशेषरूप कार्यके विशेष गुणको ग्रस लेता है, तब ग्रस्त गुण वह कार्य-कारणभावापन्न हो जाता है। अतः किसी भी कार्यका उपादानरूप कारण उसका काल मान्य है। यथा; जल

पृथ्वीके विशेष गुण गन्धका जब अपहरण कर लेता है, तब पृथ्वी जल हो जाती है। इसी प्रकार जब जलके विशेष गुण रसका तेज अपहरण कर लेता है, तब जल तेज हो जाता है। जब वायु तेजके विशेष गुण रूपका अपहरण कर लेता है, तब तेज वायु हो जाता है। वायुके विशेष गुण स्पर्शका जब आकाश अपहरण कर लेता है, तब वायु आकाश हो जाता है। आकाशके विशेष गुण शब्दका जब अहंकार अपहरण कर लेता है, तब आकाश अहंकार हो जाता है। अहंकारके विशेष गुण मध्यमा वाक्का जब महत् अपहरण कर लेता है, तब अहंकार महत् हो जाता है। महत्के विशेष गुण पश्यन्ती वाक्का जब अव्याकृत अपहरण कर लेता है, तब महत् अव्याकृत हो जाता है। अव्याकृतके विशेष गुण परा वाक्का जब परब्रह्म अपहरण कर लेता है, तब अव्याकृत परब्रह्म होकर अवशिष्ट रहता है। (श्रीमद्भा० १२।४, सुबालोपनिषत्)

उक्त रीतिसे सर्व देश, काल तथा वस्तुका मूल अव्याकृत तथा परम मूल परब्रह्म सिद्ध है। उसीसे ज्योतिष आदि सर्व शास्त्रोंकी प्रवृत्ति तथा उसीमें सर्व शास्त्रोंका पर्यवसान है।

३. कालाभिव्यंजक

अग्निसे सम्बद्ध ऋक् सर्व रूप (मूर्ति)-का उद्भासक है। वायुसे सम्बद्ध यजुः सर्व गतिका संचालक है। सूर्यसे सम्बद्ध साम सर्व तेजका सम्पादक है।

'ऋग्भ्यो जातान् सर्वशो मूर्तिमाहुः, सर्वा गतिर्याजुषी है व शश्वत्। सर्वं तेजः सामरूप्यं हि शश्वत्, सर्वं ह्येतद् ब्रह्मणैव प्रसृष्टम्॥' (तैत्तिरीयसंहिता)

चन्द्रसे सम्बद्ध अथर्व सर्व अन्न और आनन्दका निर्वाहक है। **'आथर्वणां चन्द्रमा दैवतम्'** (प्रणवोपनिषत्) **'सोमः शक्त्यमृतमयः, रसशक्तिश्च सोमात्मा'** (बृहज्जाबालोपनिषत् १, २)।

मार्कण्डेयमहापुराणके अनुसार कला, काष्ठा, निमेषादिरूप कालरूपसे अग्नि ही उल्लसित है—

कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासि जगत्प्रभो।
त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान्॥

(मार्कण्डेयमहापुराण ९९।५१)

वायु और आदित्यका साहचर्य है। आदित्यमण्डलसे समुद्भूत आदित्यरश्मियोंपर समारूढ अर्थात् सूर्यकिरणोंके समाश्रित महान् वायुकी आकाशमें सर्वत्र गति अद्भुत आश्चर्य है—

यतो वायुर्विनिःसृत्य सूर्यरश्म्याश्रितो महान्।
विजृम्भत्यम्बरे तत्र किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महाभारत-शान्तिपर्व ३६२।४)

कालकारण सूर्य कालाभिव्यंजक तथा ब्रह्मरूपसे उपास्य हैं—

'सूर्यो योनिः कालस्य' (मैत्रायण्युपनिषत् ६।१४) **'कालसंज्ञमादित्यमुपासीत। आदित्यो ब्रह्म।'** (मैत्रायण्युपनिषत् ६।१६)

'आथर्वणां चन्द्रमा दैवतम्' (प्रणवोपनिषत्) के अनुसार अथर्ववेदका प्रादुर्भाव चन्द्रमासे हुआ। अथर्वके नौ प्रभेद मान्य हैं। अथर्व सौम्य है। पवित्रव्रत धारण करनेवाली कालविभागके ज्ञापनमें नियुक्त सोमकी सत्ताईस पत्नियाँ—दक्षकन्याएँ लोकव्यवहारका निर्वाह करनेवाली नक्षत्रवाचक नामोंसे प्रसिद्ध हैं—

सप्तविंशतिः सोमस्य पत्न्यो लोकस्य विश्रुताः।
कालस्य नयने युक्ताः सोमपत्न्यः शुचिव्रताः॥
सर्वा नक्षत्रयोगिन्यो लोकयात्राविधानतः।

(महाभारत-आदिपर्व ६६।१६, १७)

घ्राण, रसना, नेत्र, त्वक् तथा श्रोत्रसंज्ञक पंच ज्ञानेन्द्रिय और मन, चित्त, अहं एवं बुद्धिसंज्ञक अन्तःकरणचतुष्टय—ये नौ आध्यात्मिक धरातलपर कालविभाग करनेवाली शक्तियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, संकल्प, स्मरण, गर्व, निश्चय—ये नौ आधिभौतिक धरातलपर कालविभाग करनेवाली शक्तियाँ हैं। अश्विनी (धरित्री), वरुण (जल), सूर्य (तेज), वायु, दिक् (आकाश), चन्द्रमा, वासुदेव, रुद्र, ब्रह्मा—

ये नौ आधिदैविक धरातलपर कालविभाग करनेवाली शक्तियाँ हैं। अतएव अथर्ववेदके नौ प्रभेद हैं।

धर्म, काम, अर्थसाधक वसु तथा वासुकि, मोक्षार्थ बोधप्रदायक अनन्त तथा कपिल और पुरुषार्थसाधक काल—ये सात पृथ्वीके धारक हैं—

धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः॥

४. कालावयव

पृथ्वी, जल, तेज, वायुसंज्ञक भूतचतुष्टयके सूक्ष्मतम अविभाज्य और असंस्पृष्ट चरण-विभागका नाम परमाणु है। उसका भोग करनेमें अर्थात् उसे पार करनेमें सूर्यको जितना समय लगता है, उसे परमाणुकाल कहते हैं। अणु, त्रसरेणु, त्रुटि, वेध, लवक्रमसे एक निमेषकी प्राप्ति होती है। ७२०० (सात हजार दो सौ) परमाणुओंका मात्रासंज्ञक एक निमेष होता है। तदनन्तर क्षण, काष्ठा, लघु, दण्ड (नाडिका), मुहूर्त, प्रहर (याम), दिन, रात्रि, पक्ष, मास, अयन, वर्षसंज्ञक कालावयवकी क्रमशः प्राप्ति होती है। मानवोचित गणनाके अनुसार ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष सृष्टिकी और तद्वत् महाप्रलयकी अवधि होती है।

एक वर्षमें बारह महीने होते हैं। चन्द्रमा आदि ग्रह, अश्विनी आदि नक्षत्र तथा समस्त तारामण्डलके अधिष्ठाता भगवान् सूर्य कालस्वरूप हैं। वे परमाणुसे लेकर संवत्सर (वर्ष)-पर्यन्त कालमें द्वादशराशिपर सम्पूर्ण भुवनकोशकी निरन्तर परिक्रमा किया करते हैं। सूर्य, बृहस्पति, सवन, चन्द्रमा और नक्षत्रसम्बन्धी महीनोंके भेदसे यह वर्ष ही सम्वत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर कहा जाता है।

इन पाँच प्रकारके वर्षोंकी प्रवृत्ति करनेवाले सूर्यदेव पंचभूतोंमें तेजःस्वरूप हैं। ये अपनी कालशक्तिसे बीजादि पदार्थोंकी अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्तिको अनेक प्रकारसे कार्योन्मुख करते हैं। ये पुरुषोंकी मोहनिवृत्तिके लिये उनकी आयुका क्षय करते हुए आकाशमें विचरते रहते हैं। ये ही सकाम पुरुषोंके लिये यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि मंगलमय फलोंका विस्तार करते हैं। उपहारादि समर्पण करके ये पूजा करनेयोग्य हैं—

यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन् स्वशक्त्या
पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः।
कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वं-
स्तस्मै बलिं हरत वत्सरपञ्चकाय॥

(श्रीमद्भा० ३। ११। १५)

नाम-रूपात्मक जगत्‌में अनुगत सत्य, शिव, सुन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरसंज्ञक ग्रहसे भावित गृहीत प्रह्लाद-सदृश भक्तपर क्रूरग्रहकी दाल नहीं गलती—

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया।
कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्॥

(श्रीमद्भा० ७। ४। ३७)

ग्रह, भेषज, जल, पवन तथा पट आदि सुयोग प्राप्तकर दुःखापहारक सुखकारक सुवस्तु होते हैं—

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥

(रा०च०मा० १। ७ क)

नवग्रहोंकी समिधाएँ

हवनकर्ममें नवग्रहोंके निमित्त भिन्न-भिन्न समिधाओंसे हवन-कार्य किया जाता है।

मदार, पलाश, खैर, चिचिड़ा, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश—ये क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु ग्रहोंकी समिधाएँ हैं—

अर्कः पलाशखदिरावपामार्गोऽथ पिप्पलः। औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्॥

(मत्स्यपु० ९३। २७)

ज्योतिषशास्त्रकी उपादेयता

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्दसरस्वतीजी महाराज)

ज्योतिषशास्त्रमें प्रधान ग्रह सूर्य और चन्द्र माने गये हैं। सूर्यको पुरुष और चन्द्रमाको स्त्री अर्थात् पुरुष और प्रकृतिके रूपमें इन दोनों ग्रहोंको माना है। पाँच तत्त्वरूप भौम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि बताये गये हैं। इन प्रकृति और पुरुषके तत्त्वोंसे सम्बद्ध ही सारा ज्योतिष-चक्र है। अत: संक्षेपमें ही कहा जा सकता है कि पारिभाषिक दृष्टिसे भारतीय ज्योतिषशास्त्र अध्यात्मशास्त्र है।

मनुष्यके समस्त कार्य ज्योतिषके द्वारा ही चलते हैं। व्यवहारके लिये अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सव, तिथि आदिका परिज्ञान इसी शास्त्रसे होता है। यदि मानव-समाजको इसका ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्योहार, महापुरुषोंके जन्मदिन तथा अपनी प्राचीन गौरव-गाथाका इतिहासप्रभृति किसी भी बातका ठीक-ठीक पता न लग सकेगा और न कोई उचित कृत्य ही यथासमय सम्पन्न किया जा सकेगा। शिक्षित या सभ्य समाजकी तो बात ही क्या, भारतीय अपढ़ कृषक भी व्यवहारोपयोगी ज्योतिष-ज्ञानसे परिचित है, वह भलीभाँति जानता है कि किस नक्षत्रमें वर्षा अच्छी होती है, अत: कब बोना चाहिये, जिससे फसल अच्छी हो। यदि कृषक ज्योतिषशास्त्रके उपयोगी तत्त्वोंको न जानता तो उसका अधिकांश परिश्रम निष्फल जाता।

कुछ महानुभाव यह तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि आजके वैज्ञानिक युगमें कृषिशास्त्रके मर्मज्ञ असमयमें ही आवश्यकतानुसार वर्षाका आयोजन या निवारणकर कृषिकर्मको सम्पन्न कर लेते हैं, इस दशामें कृषकके लिये ज्योतिष-ज्ञानकी आवश्यकता नहीं, पर उन्हें यह न भूलना चाहिये कि आजका विज्ञान भी प्राचीन ज्योतिषका लघु शिष्य है। ज्योतिषशास्त्रके तत्त्वोंसे पूर्णतया परिचित हुए बिना विज्ञान भी असमयमें वर्षाका आयोजन और निवारण नहीं कर सकता है। वास्तविक बात यह है कि चन्द्रमा जिस समय जलचर राशि, जलचर नक्षत्रोंपर रहता है, उसी समय वर्षा होती है। वैज्ञानिक प्रकृतिके रहस्यको प्राप्तकर जब चन्द्रमा जलचर नक्षत्रोंका भोग करता है, वृष्टिका आयोजन कर लेता है। वाराहीसंहितामें कुछ ऐसे सिद्धान्त आये हैं, जिनके द्वारा जलचर चान्द्र नक्षत्रोंके दिनोंमें वर्षाका आयोजन किया जा सकता है।

सारांश यह कि जलचर चन्द्रमाके तत्त्वोंको जानकर जलचर नक्षत्रोंके दिनोंमें उन तत्त्वोंका आयोजनकर असमयमें वृष्टि कार्य कर लेता है। इसी प्रकार वृष्टिका निवारण जलचर चन्द्रमाके जातीय परमाणुओंके विघटनद्वारा सम्पन्न किया जा सकता है। प्राचीन ज्योतिषके अंग संहिताशास्त्रमें इस प्रकार चर्चाएँ भी आयी हैं। भद्रबाहु-संहिताके शुक्रचार-अध्यायमें शुक्रकी गतिके अध्ययनद्वारा वृष्टिका निवारण किया गया है। अतएव यह मानना पड़ेगा कि ज्योतिष-तत्त्वोंकी जानकारीके बिना कृषिकार्य सम्यक्तया सम्पन्न करना सम्भव नहीं।

आयुर्वेद तो ज्योतिषका अभिन्न अंग है। ज्योतिष-विज्ञानके बिना औषधियोंका निर्माण यथासमय सम्पन्न नहीं किया जा सकता। कारण स्पष्ट है कि ग्रहोंके तत्त्व और स्वभावको प्राप्तकर उन्हींके अनुसार उसी तत्त्व और स्वभाववाली दवाका निर्माण करनेसे वह दवा विशेष गुणकारी होती है। जो भिषक् इस शास्त्रके ज्ञानसे अपरिचित रहते हैं, वे सुन्दर और अपूर्व गुणकारी दवाओंका निर्माण नहीं कर सकते। एक अन्य बात यह है कि इस शास्त्रके ज्ञानद्वारा रोगीकी चर्या और चेष्टाको अवगतकर बहुत कुछ अंशोंमें रोगकी मर्यादा जानी जा सकती है। 'संवेगरंगशाला' नामक ज्योतिष-ग्रन्थमें रोगीकी रोग-मर्यादा जाननेके अनेक नियम आये हैं। अतएव जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष-तत्त्वोंको जानकर चिकित्साकर्मको सम्पन्न करता है, वह अपने इस कार्यमें अधिक सफल होता है।

मानवके समक्ष जहाँ दर्शन नैराश्यवादकी धूमिल रेखा अंकित करता है, वहाँ ज्योतिष कर्तव्यके क्षेत्रमें

लाकर उपस्थित करता है। भविष्यको अवगतकर अपने कर्तव्योंद्वारा उसे अपने अनुकूल बनानेके लिये ज्योतिष प्रेरणा करता है। यही प्रेरणा प्राणियोंके लिये दुःख-विघातक और पुरुषार्थ-साधक सिद्ध होती है। पारमार्थिक दृष्टिसे परिशीलन करनेपर भारतीय ज्योतिषका रहस्य परम ब्रह्मको प्राप्त करना है। यद्यपि ज्योतिष तर्कशास्त्र है, इसका प्रत्येक सिद्धान्त सहेतुक बताया गया है, पर तो भी इसकी नींवपर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि इसकी समस्त क्रियाएँ बिन्दु-शून्यके आधारपर चलती हैं; जो कि निर्गुण, निराकार ब्रह्मका प्रतीक है। बिन्दु दैर्घ्य और विस्ताररहित अस्तित्ववाला माना गया है। यद्यपि परिभाषाकी दृष्टिसे स्थूल है, पर वास्तवमें यह अत्यन्त सूक्ष्म, कल्पनातीत निराकार वस्तु है। केवल व्यवहार चलानेके लिये हम उसे कागज या स्लेटपर अंकित कर लेते हैं। आगे चलकर यही बिन्दु गतिशील होता हुआ रेखारूपमें परिवर्तित होता है अर्थात् जिस प्रकार ब्रह्मसे **'एकोऽहं बहु स्याम'** कामनारूप उपाधिके कारण मायाका आविर्भाव हुआ है, उसी प्रकार बिन्दुसे एक गुण—दैर्घ्यवाली रेखा उत्पन्न हुई है। अभिप्राय यह है कि भारतीय ज्योतिषमें बिन्दु ब्रह्मका प्रतीक और रेखा मायाका प्रतीक है—इन दोनोंके संयोगसे ही क्षेत्रात्मक, बीजात्मक एवं अंकात्मक गणितका निर्माण हुआ है। भारतीय ज्योतिषका प्राण यही गणितशास्त्र है।

इन्द्रियोंद्वारा होनेवाला ज्ञान अपूर्ण होनेके कारण कदाचित् ज्ञानान्तरसे बाधित हो सकता है। कारण स्पष्ट है कि इन्द्रियज्ञान अव्यवहित ज्ञान नहीं है, इसीसे इन्द्रियानुभूतिमें भेदका होना सम्भव है। ज्योतिषका ज्ञान आगम ज्ञान होते हुए भी अतीन्द्रिय ज्ञानके तुल्य सत्यके निकट पहुँचानेवाला है। इसके द्वारा मनकी विविध प्रवृत्तियोंका विश्लेषण जीवनकी अनेक समस्याओंके समाधानको करना है। चित्तविश्लेषणशास्त्र फलितज्योतिषका एक भेद है। फलितांग जहाँ जीवनके अनेक तत्त्वोंकी व्याख्या करता है, वहीं मानसिक वृत्तियोंका विश्लेषण भी। यद्यपि यह विश्लेषण साहित्य और मनोविज्ञानके विश्लेषणसे भिन्न होता है, पर इसके द्वारा मानव-जीवनके अनेक रहस्यों एवं भेदोंको अवगत किया जा सकता है।

कर्म-मीमांसा

एक बार हिमालयपर्वतपर विराजमान भगवान् महेश्वरसे देवी पार्वतीने पूछा—भगवन्! आपने बताया कि मनुष्योंकी जो भली-बुरी अवस्था है, वह सब उनकी अपनी ही करनीका फल है, किंतु लोकमें यह देखा जाता है कि लोग समस्त शुभाशुभ कर्मको ग्रहजनित मानकर प्रायः उन ग्रह-नक्षत्रोंकी ही आराधना करते रहते हैं, क्या उनकी मान्यता ठीक है? देव! मेरे इस सन्देहका निवारण करनेकी कृपा करें। इसपर महादेवजी बोले—

स्थाने संशयितं देवि शृणु तत्त्वविनिश्चयम्॥

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव शुभाशुभनिवेदकाः। मानवानां महाभागे न तु कर्मकराः स्वयम्॥
प्रजानां तु हितार्थाय शुभाशुभविधिं प्रति। अनागतमतिक्रान्तं ज्योतिश्चक्रेण बोध्यते॥
किंतु तत्र शुभं कर्म सुग्रहैस्तु निवेद्यते। दुष्कृतस्याशुभैरेव समवायो भवेदिति॥
केवलं ग्रहनक्षत्रं न करोति शुभाशुभम्। सर्वमात्मकृतं कर्म लोकवादो ग्रहा इति॥

देवि! तुमने उचित सन्देह उपस्थित किया है। इस विषयमें जो सिद्धान्त मत है, उसे सुनो। महाभागे! ग्रह और नक्षत्र मनुष्योंके शुभ और अशुभकी सूचनामात्र देनेवाले हैं। वे स्वयं कोई काम नहीं करते हैं। प्रजाके हितके लिये ज्यौतिषचक्र (ग्रह-नक्षत्र-मण्डल)-के द्वारा भूत और भविष्यके शुभाशुभ फलका बोध कराया जाता है, किंतु वहाँ शुभ कर्मफलकी सूचना उत्तम (शुभ) ग्रहोंद्वारा प्राप्त होती है और दुष्कर्मके फलकी सूचना अशुभ ग्रहोंद्वारा। केवल ग्रह और नक्षत्र ही शुभाशुभ कर्मफलको उपस्थित नहीं करते हैं। सारा अपना ही किया हुआ कर्म शुभाशुभ फलका उत्पादक होता है। ग्रहोंने कुछ किया है—यह कथन लोगोंका प्रवादमात्र है। (महा० अनु० अ०१४५)

जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यका व्रतादि-विषयक कपाल (स्पर्श)-वेध सिद्धान्त

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)

'प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रम्'—ज्योतिषशास्त्र वेदका अंगभूत प्रत्यक्ष शास्त्र है। ज्योतिषशास्त्रसे भूत-वर्तमान-भविष्यका यथार्थ परिज्ञान होता है। इस शास्त्रसे समस्त नक्षत्र-मण्डलोंका सम्यक् ज्ञान होता है। भविष्यमें होनेवाले सूर्य-चन्द्र-ग्रहणका पूर्वमें ही समग्र विवेचन प्रस्तुत कर दिया जाता है। आगे कब-किस मासमें पुरुषोत्तममास (अधिकमास) होगा, इसकी ज्योतिष-शास्त्रविद् अपनी भावपूर्ण अभिव्यक्ति पहले ही कर देते हैं। यज्ञोपवीत-मुहूर्त, विवाह-मुहूर्त, गृह-निर्माण अर्थात् शिलान्यास-मुहूर्त, गृहप्रवेश-मुहूर्त, भद्राका परिबोध, अभिजित् मुहूर्त, सूर्य उत्तरायण किंवा दक्षिणायन, सूर्योदय एवं सूर्यास्त इत्यादिका सम्यक् ज्ञान, दिन-रात्रिका समय-बोध ज्योतिषशास्त्रसे ही होता है। यात्रार्थ प्रस्थानका मुहूर्त, दिग्शूल-ज्ञान, शकुन-विचारमें खंजन पक्षी अर्थात् शकुन चिड़िया, नकुल-दर्शन, कल्पकल्पान्तरोंका, युग-युगान्तरोंका एवं जन्म-जन्मान्तरोंका परिबोध ज्योतिषशास्त्रसे ही सम्भव है।

सौ वर्षके पंचांगमें भविष्यकी समस्त कालचक्रकी घटनाओंका उल्लेख है। वि०सं० २००१ से उसका शुभारम्भ है, जिसे गत वि०सं० २०७० व्यतीत हुए और अब वर्तमानसे अग्रिम ३० वर्ष अवशिष्ट हैं। उसमें तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, सूर्योदय-समय, सूर्यास्त-समय, दिनांक, सम्वत्, उत्सव, महोत्सव, जयन्तियाँ, पंचक, षड्-ऋतु-वर्णन, वर्षाका भविष्य-वर्णन, विविध मुहूर्तोंका परिज्ञान आदि भविष्यका विवेचन पहलेसे ही सन्निहित है। सूर्य-चन्द्र-ग्रहणका स्पष्ट पहलेसे ही निर्दिष्ट है, किस दिशासे ग्रहणका स्पर्श होगा, कितने समयतक रहेगा एवं खण्डग्रास किंवा पूर्णग्रास होगा। कबतक स्पर्शकाल और शुद्धिकाल आदि सभी भविष्य विषयोंका सुस्पष्ट संकेत किया गया है, जो सर्वांशमें तथ्यपूर्ण होता है।

सुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यने एकादशी, जयन्तियाँ, पाटोत्सव-व्रतादिमें कपालवेध अर्थात् स्पर्शवेधको ही अनेक पुराणादि शास्त्रोंके उद्धरणसे प्रमाणित किया है, जो सर्वांशतः ग्राह्य है। यह सिद्धान्त ज्योतिषशास्त्रसे सम्बद्ध है और कपालवेध (स्पर्शवेध) वर्णन एवंविध है, यथा—पद्मपुराणके इन वचनोंसे कपालवेधका स्पष्ट निर्देश है—

अर्द्धरात्रं स्पृशेत्पूर्णापक्षवृद्धिर्यदाग्रतः।
कपालवेधिनी सा च शुद्धां भद्रामुपोषयेत्॥
अर्द्धरात्रमतिक्रम्य दशमी दृश्यते यदि।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्॥

भविष्यपुराणके व्यासजीके इस वचनसे अवगत करें—

उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे।
निम्बार्को भगवान् येषां वाञ्छितार्थप्रदायकः॥
एकादशी भवेत्पूर्णा परतो द्वादशी भवेत्।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्॥

उपर्युक्त वचनोंका यही भाव है कि ४५ घटीसे एक पल भी यदि अधिक हो जाय तो पूर्व तिथिका अग्रिम तिथिसे स्पर्श हो जाता है, अतः अग्रिम तिथिसे वेध हो जानेसे उस तिथिमें व्रत न करके उसके आगेकी तिथिमें व्रतविधान है। वह चाहे एकादशी व्रत हो या जयन्तियाँ एवं पाटोत्सव आदिका व्रत हो, सभीमें यही विधान विहित है। एकादशी पूर्व तिथिसे विद्धा नहीं है, किंतु महाद्वादशीका यदि योग आ जाय तो तब **'तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्'** के वचनानुसार एकादशीको छोड़कर द्वादशीमें व्रत करें तथा एकादशी शुद्ध है और महाद्वादशीका सुयोग बन जाय तो एकादशीका व्रत करें और महाद्वादशीका भी व्रत करें। जो व्यक्ति दो दिन व्रत न कर सके तो वह एकादशीका त्याग कर सकता है, किंतु महाद्वादशीको कदापि न छोड़े, उसी दिन व्रत करे। जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी, उन्मीलिनी, वंजुलिनी, त्रिस्पृशा और पक्षवर्धिनी—ये अष्ट महाद्वादशी हैं।

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रका विलक्षण प्रभाव है। इस आगामी वर्षमें विश्वविख्यात 'कल्याण' मासिक-पत्रके विशेषाङ्कके रूपमें 'ज्योतिषतत्त्वाङ्क' का प्रकाशन किया जा रहा है, जो निश्चय ही महत्त्वपूर्ण होगा। इससे ज्योतिषके चमत्कारी प्रभावका अध्येताओंको सम्यक् परिज्ञान होगा।

काल और कालातीत चिन्तन

(परमपूज्य संत श्रीहरिहरजी महाराज दिवेगाँवकर)

जब भी किसी बात (घटना)-की हम याद करते हैं तो सहजरूपसे उस समयकी भी याद आती है, जब वह घटना घटी थी। कई घटनाएँ ऐसी होती हैं, उनसे भी कालका पता चलता है कि ये घटनाएँ किस कालमें घटी होंगी। वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति, घटना, विचार, भाव—इनपर कालका बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। कालके वशमें सदाचारियोंको भी सदाचरण करना कठिन हो जाता है। कालकी हम चर्चा बहुत करते हैं, पर काल हमारे हाथमें नहीं है।

हमारे हाथमें तो सिर्फ क्षण ही है, बस। क्षण भी ऐसा चंचल प्रतीत होता है कि 'यह रहा क्षण' ऐसा भी नहीं कह सकते। इसका मतलब क्षण अशाश्वत है, पर ऐसा नहीं है, किंतु क्षणकी क्षणरूपता अशाश्वत ही है। पर यह क्षण जो है, वह पूरा किसपर होता है? कालका परिवर्तन किस अधिष्ठानपर होता है? जैसे केन्द्रमें कुछ हो तो ही चक्र पूर्ण होता है, वैसे कालके केन्द्रमें क्या है? कालका मध्य क्या है? दो क्षणोंके बीचका अन्तराल क्या है? दो क्षणोंके बीचका अन्तराल हम जान भी नहीं पाते, इतना सूक्ष्म होता है।

इसे जानना इसलिये भी कठिन है कि हम क्षण या कालके बाहरी रूपमें ही उलझे हैं। कालका गहनतम रूप प्रकट तो नहीं है। जो बुद्धिसे जाना जाय और जिसकी गिनती की जा सके, कालका तो यही रूप हम जानते हैं।

जिस प्रकार रास्तेपर वाहन या गाड़ियाँ जा रही हों तो हम देख सकते हैं कि गाड़ियाँ चल रही हैं; क्योंकि रास्ता स्थिर है। अगर रास्ता भी भागे? तो फिर मुश्किल हो जायगी।

वैसे ही यह कालका चक्र जो चल रहा है, वह तो अनित्य प्रतीत होता है, लेकिन जिस परमात्मारूप अधिष्ठानपर यह कालचक्र चल रहा है, वह परमात्मा नित्य शाश्वत है, अखण्ड है और इसीलिये कालातीत भी है।

परमात्मा कालके रूपमें होते हुए भी कालसे परे है। इसीलिये अक्षय है। जीवको कालका सम्बन्ध जन्मसे शुरू होता है, मगर परमात्माका तो जन्म ही नहीं है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४। ६)

कालका परिवर्तन जीव उपाधिरूपमें होनेके कारण ही सत्य मानता है और खुदको कालके अधीन मानता है, परंतु वही जो उपाधिरहित होकर अपने पूर्णस्वरूपको पहचाने तो वह कालातीत रूपका अनुभव करता है, परंतु वहाँ अनुभव भी शेष नहीं रहता। कालातीतका मतलब कालसे भिन्न नहीं, अपितु कालके आदि, मध्य और अन्तमें इन भेदोंसे रहित। भेद मिथ्या ही हैं, मगर स्वरूपका ज्ञान नहीं होनेके कारण सत्य प्रतीत होते हैं। मिथ्या विकार भी सत्य आभासित होते हैं।

उस कालातीत परमात्माका चिन्तन नहीं किया जा सकता। कालका चिन्तन भी करना कठिन बात है और कालको परमात्मा अथवा आत्मस्वरूपमें स्थित सन्तोंके बिना कौन पूरी तरहसे जानता है?

कालातीत परमात्मतत्त्व समझानेसे भी कहाँ समझमें आता है?

कठोपनिषद् (१। २। ८)-में यमाचार्य नचिकेताको कहते हैं—

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्॥

हम कालको तर्कसे समझ सकते हैं, परंतु तर्क भी कालको पूर्णरूपसे समझनेके लिये पर्याप्त नहीं है; क्योंकि काल भी उसी कालातीत परमात्मतत्त्वकी सत्तासे चलता है। उसको जाने बिना कालको जानना सचमें जानना है ही नहीं। अज्ञानका सूक्ष्म रूप ही 'हम जानते हैं' यह है।

कालकी गति स्वयं कालकी नहीं है। कालातीत

तत्त्व ही कालको गति प्रदान करता है।

विश्वके रूपमें हमें दिख रहे, देखनेकी क्षमता देनेवाले और दिखनेके लिये प्रकाशरूप भी वही परमतत्त्व है।

ऋग्वेदसंहिता (१।५०।४)-में मन्त्र है—**तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम्।**

वहीं सायणाचार्य भाष्यमें कहते हैं—

तथा च स्मर्यत योजनानां सहस्त्रं द्वे द्वे शते द्वे च योजने।
एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते॥

सार यह है कि गति प्रदान करनेवाला परमात्मा है। जिससे सूर्य गतिमान् होता है और कालको नापा जाता है। उसी अनन्त तत्त्वसे जो किसी तरह नापा नहीं जा सकता, वह कालातीत है। यह कोई अराजकता नहीं है। एक विशेष नियमसे बँधा हुआ है, वह नियम काल है और नियन्ता है कालातीत परमात्मतत्त्व। इसमें विश्व तो आभास है और सत्य है परमात्मा—केवल परमात्मा।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

नवग्रहपीडाहरस्तोत्र

ग्रहोंके द्वारा उत्पन्न पीड़ाका निवारण करनेके लिये ब्रह्माण्डपुराणोक्त इस स्तोत्रका पाठ लाभदायक है, इसमें सूर्यादि नौ ग्रहोंसे क्रमशः एक-एक श्लोकके द्वारा पीड़ा दूर करनेकी प्रार्थना की गयी है—

ग्रहाणामादिरादित्यो लोकरक्षणकारकः। विषमस्थानसम्भूतां पीडां हरतु मे रविः॥ १॥
रोहिणीशः सुधामूर्तिः सुधागात्रः सुधाशनः। विषमस्थानसम्भूतां पीडां हरतु मे विधुः॥ २॥
भूमिपुत्रो महातेजा जगतां भयकृत् सदा। वृष्टिकृद् वृष्टिहर्ता च पीडां हरतु मे कुजः॥ ३॥
उत्पातरूपो जगतां चन्द्रपुत्रो महाद्युतिः। सूर्यप्रियकरो विद्वान् पीडां हरतु मे बुधः॥ ४॥
देवमन्त्री विशालाक्षः सदा लोकहिते रतः। अनेकशिष्यसम्पूर्णः पीडां हरतु मे गुरुः॥ ५॥
दैत्यमन्त्री गुरुस्तेषां प्राणदश्च महामतिः। प्रभुः ताराग्रहाणां च पीडां हरतु मे भृगुः॥ ६॥
सूर्यपुत्रो दीर्घदेहा विशालाक्षः शिवप्रियः। मन्दचारः प्रसन्नात्मा पीडां हरतु मे शनिः॥ ७॥
अनेकरूपवर्णैश्च शतशोऽथ सहस्त्रदृक्। उत्पातरूपो जगतां पीडां हरतु मे तमः॥ ८॥
महाशिरा महावक्त्रो दीर्घदंष्ट्रो महाबलः। अतनुश्चोर्ध्वकेशश्च पीडां हरतु मे शिखी॥ ९॥

ग्रहोंमें प्रथम परिगणित, अदितिके पुत्र तथा विश्वकी रक्षा करनेवाले भगवान् सूर्य विषमस्थानजनित मेरी पीड़ाका हरण करें॥ १॥ दक्षकन्या नक्षत्ररूपा देवी रोहिणीके स्वामी, अमृतमय स्वरूपवाले, अमृतरूपी शरीरवाले तथा अमृतका पान करानेवाले चन्द्रदेव विषमस्थानजनित मेरी पीड़ाको दूर करें॥ २॥ भूमिके पुत्र, महान् तेजस्वी, जगत्को भय प्रदान करनेवाले, वृष्टि करनेवाले तथा वृष्टिका हरण करनेवाले मंगल [ग्रहजन्य] मेरी पीड़ाका हरण करें॥ ३॥ जगत्में उत्पात करनेवाले, महान् द्युतिसे सम्पन्न, सूर्यका प्रिय करनेवाले, विद्वान् तथा चन्द्रमाके पुत्र बुध मेरी पीड़ाका निवारण करें॥ ४॥ सर्वदा लोककल्याणमें निरत रहनेवाले, देवताओंके मन्त्री, विशाल नेत्रोंवाले तथा अनेक शिष्योंसे युक्त बृहस्पति मेरी पीड़ाको दूर करें॥ ५॥ दैत्योंके मन्त्री और गुरु तथा उन्हें जीवनदान देनेवाले, ताराग्रहोंके स्वामी, महान् बुद्धिसम्पन्न शुक्र मेरी पीड़ाको दूर करें॥ ६॥ सूर्यके पुत्र, दीर्घ देहवाले, विशाल नेत्रोंवाले, मन्दगतिसे चलनेवाले, भगवान् शिवके प्रिय तथा प्रसन्नात्मा शनि मेरी पीड़ाको दूर करें॥ ७॥ विविध रूप तथा वर्णवाले, सैकड़ों तथा हजारों आँखोंवाले, जगत्के लिये उत्पातस्वरूप, तमोमय राहु मेरी पीड़ाका हरण करें॥ ८॥ महान् शिरा (नाड़ी)-से सम्पन्न, विशाल मुखवाले, बड़े दातोंवाले, महान् बली, बिना शरीरवाले तथा ऊपरकी ओर केशवाले शिखास्वरूप केतु मेरी पीड़ाका हरण करें॥ ९॥

ज्योतिषतत्त्वविमर्श

(आचार्य श्रीशशिनाथजी झा)

ज्योतिष वह विद्या या शास्त्र है, जिसमें आकाशमें स्थित ग्रह, नक्षत्र आदिकी गति, परिमाण, दूरी आदिका निश्चय किया जाता है। **'ज्योतिः अस्ति यस्य ज्योतिः अच्।'** नभमण्डलमें स्थित ज्योतिः (ग्रह-नक्षत्र)-सम्बन्धी विविधविषयक विद्याको ज्योतिर्विद्या कहते हैं और जिस शास्त्रमें उसका उपदेश या वर्णन रहता है, वह ज्योतिषशास्त्र कहलाता है—**'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रं ज्योतिःशास्त्रम्'** अर्थात् जिस शास्त्रके द्वारा सूर्य आदि ग्रहोंकी गति, स्थिति आदि तथा गणित, जातक आदिका सम्यक् ज्ञान हो, उस शास्त्रको ज्योतिःशास्त्र कहते हैं।

ज्योतिष वेदका एक अंग है। 'अंग' शब्दका अर्थ सहायक होता है अर्थात् वेदोंके वास्तविक अर्थका बोध करानेवाला। **'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि'** अर्थात् जिन उपकरणोंकी सहायतासे किसी तत्त्वविशेषका परिज्ञान हो, उन्हें अंग कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि वेदोंके यथार्थ ज्ञानमें और उनमें वर्णित विषयोंके प्रतिपादनमें सहयोग प्रदान करनेवाले समर्थ शास्त्रका नाम वेदांग है।

वेद संसारका प्राचीनतम धर्मग्रन्थ है, जो ज्ञान-विज्ञानमय एवं अत्यन्त गम्भीर है। अतः वेदकी वेदताको जाननेके लिये शिक्षा आदि छः अंगोंकी प्रवृत्ति हुई है। मुण्डकोपनिषद् (१।१।४-५)-में इन्हें अपरा विद्याका रूप बताया गया है—**'द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च॥ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते॥'** साधनभूत धर्मके ज्ञानके हेतु होनेसे षट्-अंगोंसहित कर्मकाण्डोंको आथर्वणिक लोगोंने अपरा विद्या माना है और परम पुरुषार्थभूत ब्रह्मके ज्ञानके हेतु (उपाय) होनेसे उपनिषदोंको परा विद्या कहा है।

पाणिनीय शिक्षा ग्रन्थमें कहा गया है कि वेदरूप पुरुषके दोनों पैर छन्द हैं, दोनों हाथ कल्प हैं, आँखें ज्योतिष हैं, कान निरुक्त हैं, नाक शिक्षा है और मुख व्याकरण है। इस प्रकार सांगवेदका अध्ययन करनेवाला ब्रह्मलोकमें पूजित होता है।[1]

'लक्षं तु वेदाश्चत्वारः लक्षं भारतमेव च' (चरणव्यूह ५।१)। विश्ववन्द्य वेदमें एक लाख मन्त्र हैं, जिनमें कर्मकाण्डके ८० हजार, उपासनाकाण्डके १६ हजार और ज्ञानकाण्डके ४ हजार मन्त्र हैं। अतः स्पष्ट है कि वेदोंमें कर्मकाण्डभागकी ही प्रधानता है अर्थात् यज्ञभाग ही वेदोंका मुख्य विषय है। अतएव भास्कराचार्यने अपने सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थमें कहा है कि वेद यज्ञ-कर्ममें प्रवृत्त होते हैं और यज्ञ कालके आश्रित होते हैं तथा ज्योतिषशास्त्रसे कालका ज्ञान होता है, इससे ज्योतिषका वेदांगत्व सिद्ध होता है।[2]

जिस प्रकार व्याकरण वेदपुरुषका मुख है, उसी प्रकार ज्योतिषको उसका नेत्र कहा गया है—**'ज्योतिषामयनं चक्षुः'**। नेत्रोंके बिना जिस प्रकार कोई मनुष्य स्वयं एक पैर भी नहीं चल सकता, उसी प्रकार ज्योतिषशास्त्रके बिना वेदपुरुषमें अन्धता आ जाती है।

---

१. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

२. वेदास्तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण। शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्यात् वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात्॥

वेदमें यज्ञको श्रेष्ठतम कर्म बताया गया है—**'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'** और यज्ञका विधान विशिष्ट कालकी अपेक्षा रखता है। कहनेका आशय यह है कि निश्चित रूपसे तिथि, नक्षत्र, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सरके समस्त अंशोंके साथ यज्ञ-यागके विधान वेदोंमें प्राप्त होते हैं।

उनके उपयोगके लिये ज्योतिषका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये विद्वान् ज्योतिषशास्त्रको 'काल-विज्ञापक शास्त्र' कहते हैं; क्योंकि मुहूर्त निकालकर की जानेवाली यज्ञादि क्रिया विशेष फलदायिका होती है। अतएव वेदांग ज्योतिषका कथन है कि जो मनुष्य ज्योतिषशास्त्रको अच्छी तरह जानता है, वही यज्ञके यथार्थ स्वरूपका ज्ञाता होता है—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥

इस प्रकार यज्ञों एवं संस्कारोंकी समस्त क्रियाएँ निश्चित मुहूर्तोंपर निश्चित कालावधिमें सम्पन्न करना आवश्यक है। इनके ज्ञानहेतु ज्योतिषशास्त्रीय पंचांग ही एकमात्र आधार है। किसी भी धार्मिक अनुष्ठानके सम्पादनमें तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—इन पाँच अंगोंको ध्यान में रखा जाता है। पंचांगद्वारा संस्कारों, यज्ञानुष्ठानों एवं यात्रादि कार्योंसे सम्बन्धित मुहूर्तोंका ज्ञान होता है। अतएव प्रत्येक वेदसे सम्बन्धित ज्योतिष-शास्त्रका अध्ययन वैदिक कालसे ही प्रचलित रहा है।

प्राचीनकालमें चारों वेदोंके अलग-अलग ज्योतिष थे, उनमें अभी सामवेदका ज्योतिष अनुपलब्ध है। अन्य तीन वेदोंके ज्योतिष प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

ऋग्वेद—आर्च ज्योतिष—पद्य-संख्या-३६।

यजुर्वेद—याजुष ज्योतिष—पद्य-संख्या-३९।

अथर्ववेद—आथर्वण ज्योतिष—पद्य-संख्या-१६२।

आर्च ज्योतिष और याजुष ज्योतिषमें प्रायः समानता ही है। कहीं-कहीं इतिहासमें आथर्वण ज्योतिषको छोड़कर दो ज्योतिषोंका ही उल्लेख मिलता है। संख्याके विषयमें भी मतान्तर है। याजुष ज्योतिषकी पद्य-संख्या ऊपर ३९ कही गयी है, कहीं-कहीं ४९ है। इसी प्रकार आथर्वण ज्योतिषके स्थानपर अथर्व ज्योतिष यह नाम भी मिलता है।

ज्योतिषशास्त्र वेदकी निर्मल दृष्टिके रूपमें प्रसिद्ध है। इसका सम्बन्ध यज्ञादि तथा गृह्यादि [जन्मसे मरणतक]-के समस्त कर्मोंके साथ है अर्थात् जीवनोपयोगी सभी कर्म, जिनमें मानवमात्र सफलताकी कामना करता है, ज्योतिषशास्त्रसे सम्बद्ध हैं। नेत्रांग होनेके कारण ज्योतिषका स्थान सर्वोपरि माना गया है। वेदांग ज्योतिषके रचयिता महात्मा लगधने वेदांगोंमें ज्योतिषको सर्वोत्कृष्ट मानते हुए कहा कि जिस प्रकार मयूरकी शिखा उसके सिरपर ही रहती है, सर्पोंकी मणि उनके मस्तकपर ही निवास करती है, उसी प्रकार षडंगोंमें ज्योतिषको सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्नि संस्थितम्॥

काश्यपके मतानुसार ज्योतिषशास्त्रके अट्ठारह प्रवर्तकाचार्य हैं—

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिमनुरङ्गिराः॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

पुलस्त्य और पौलिश-भेदसे पराशरने ज्योतिषशास्त्रके उन्नीस प्रवर्तकाचार्य बताये हैं—

विश्वसृङ्नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवनः कश्यपो भृगुः॥
पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिशः शौनकोऽङ्गिराः।
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्योतिःप्रवर्तकाः॥

देवर्षि नारदने अपनी नारदसंहितामें सूर्यको छोड़कर सत्रह प्रवर्तक आचार्य कहे हैं, परंतु पंचवर्षयुग-वर्णन-युक्त वेदांग ज्योतिषके निर्माता महात्मा लगधकी चर्चा ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकके रूपमें संहिताकारोंने नहीं की है।

इन ज्योति:शास्त्रके प्रवर्तक आचार्योंके सिद्धान्तों एवं संहिताके ग्रन्थोंकी अनुपलब्धताके कारण इनके समयादिका निरूपण करना अत्यन्त कठिन है।

सिद्धान्त, संहिता और होरारूप इस शास्त्रको वेदका निर्मल चक्षु कहा गया है। इसके बिना श्रुति-स्मृतिपुराणोपपादित श्रौत-स्मार्तका कोई भी कर्म सिद्ध नहीं हो सकता। जगत्‌के हितके लिये ही ब्रह्माजीने इस शास्त्रका निर्माण किया। जैसा कि देवर्षि नारदजीने अपनी संहितामें कहा है—

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपस्कन्धत्रयात्मकम् ।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिश्शास्त्रमकल्मषम्॥
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिध्यति।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा॥

आचार्य वराहमिहिरने भी कहा है कि अनेक भेदोंसे युक्त ज्योतिषशास्त्रके तीन विभाग—संहिता, तन्त्र और होरा हैं। जिसमें सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्रके विषयोंका वर्णन हो, उसको 'संहिता' कहते हैं। जिसमें गणितद्वारा ग्रहगतिका निर्णय किया गया हो, उसको 'तन्त्र' कहते हैं। इसके अतिरिक्त जातकके मुहूर्त आदिका निर्णय जिसमें हो, उसको 'होरा' कहते हैं।*

वेदोंमें प्रसंगानुसार ज्योतिषविषयक चर्चाएँ उपलब्ध हैं, स्वतन्त्र अध्याय या प्रकरणके रूपमें नहीं, परंतु आजके विकसित एवं विशाल ज्योतिर्विज्ञानका आदिबीज वेदमें ही है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि
सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो
अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्॥

(अथर्व० १९।७।१)

अर्थात् द्युलोक-सौरमण्डलमें चमकते हुए विशिष्ट गुणवाले अनेक नक्षत्र हैं, जो साथ मिलकर अत्यन्त तीव्रगतिसे टेढ़े-मेढ़े चलते हैं। सद्बुद्धिकी इच्छा करता हुआ मैं प्रतिदिन उनको पूजता हूँ, जिससे मुझे सुखकी प्राप्ति हो।

इस प्रकार इस मन्त्रमें नक्षत्रोंको सुख तथा सुबुद्धि देनेमें समर्थ माना गया है। यह सुमति मनुष्योंको नक्षत्रोंकी पूजासे प्राप्त होती है। यह मनुष्योंपर नक्षत्रोंका प्रभाव हुआ, जिसे ज्योतिषशास्त्र ही मानता है।

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे
अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति
सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु॥

(अथर्व० १९।८।१)

अर्थात् जिन नक्षत्रोंको चन्द्रमा समर्थ करता हुआ चलता है, वे सब नक्षत्र मेरे लिये आकाशमें, अन्तरिक्षमें, जलमें, पृथ्वीपर, पर्वतोंपर और सब दिशाओंमें सुखदायी हों।

वेदोंमें इन नक्षत्रोंकी संख्या २८ बतायी गयी है। इनके नाम अथर्ववेदके १९वें काण्डके ७वें सूक्तमें मन्त्रसंख्या २ से ५ तक (४ मन्त्रोंमें) दिये गये हैं। अश्विनी, भरणी आदि २८ नाम वही हैं, जो ज्योतिषग्रन्थोंमें हैं। इस प्रकार नक्षत्रोंके नाम तथा क्रममें सम्पूर्णतः समानता है। अतः निष्कर्षमें हम कह सकते हैं कि ज्योतिषका मूलाधार वेद ही है।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥

(अथर्व० १९।८।२)

अर्थात् अट्ठाईस नक्षत्र मुझे वह सब प्रदान करें, जो कल्याणकारी और सुखदायी हैं। मुझे प्राप्ति-सामर्थ्य और रक्षा-सामर्थ्य प्रदान करें। दोनों अहोरात्र (दिन-रात)-को नमस्कार है।

इस मन्त्रमें योग और क्षेमकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना है। साधारणतया जो वस्तु मिली नहीं है, उसको प्राप्त करनेका नाम 'योग' है—**'अनुपलब्धलाभो योगः'** और

---

* ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं तत्कात्स्न्योंपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता।
स्कन्धेऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ होरान्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोऽपरः॥

जो वस्तु मिल गयी है, उसकी रक्षा करना ही 'क्षेम' है—'**लब्धस्य परिपालनं क्षेमः।**' अर्थात् नक्षत्रोंसे योगक्षेम देनेकी प्रार्थना से स्पष्ट है कि नक्षत्र प्रसन्न होकर योगक्षेम दे सकते हैं। इस प्रकार इस मन्त्रका भी ज्योतिषसे सीधा सम्बन्ध है। इस मन्त्रमें जो 'अहोरात्र' पद आया है, उसका ज्योतिषके होराशास्त्रमें बहुत महत्त्व है। जैसे—

अहोरात्राद्यन्तलोपाद्धोरेति प्रोच्यते बुधैः।
तस्य हि ज्ञानमात्रेण जातकर्मफलं वदेत्॥

अर्थात् 'अहोरात्र' पदके आदि 'अ' और अन्तिम 'त्र' वर्णके लोपसे होरा शब्द बनता है। इस होरा (लग्न)-के ज्ञानमात्रसे जातकका शुभाशुभ कर्मफल कहना चाहिये।

परम ज्ञानविज्ञानविशारद भारतीय ऋषि-मुनियोंका यह मानना था कि आकाशीय पिण्डोंका प्रभाव सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर पड़ता है अर्थात् अन्तरिक्षसे आनेवाले अन्तर्ग्रहीय दुष्प्रभाव हमारे जीवनको प्रभावित करते हैं। अतएव उन्होंने यह व्यवस्था दी थी कि सूर्य एवं चन्द्रग्रहणके समय बालक, वृद्ध और रोगीसे अतिरिक्त व्यक्तिको क्रमशः १२ एवं ९ घंटे पूर्व भोजनादिका परित्याग कर देना चाहिये। कारण ग्रहणके समय खान-पान करनेसे शरीरपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ग्रहणके अवसरपर पवित्र नदियों आदिमें स्नान करनेकी परम्परा है, जिसका संकेत तत्त्ववेत्ताओंने '**सर्वं गङ्गासमं तोयम्**' आदि कहकर दिया। वैज्ञानिकोंका भी मत है कि प्रवाहित जलमें प्राण-ऊर्जाकी प्रचुरता होती है। ग्रहणके समय शरीरपर वायुमण्डलीय विषाणुओंका आक्रमण होता है। नदीमें स्नान करनेसे उसकी प्राण-ऊर्जा विषाणुओंको समाप्त कर देती है। पूर्वमें कुछलोग ग्रहणकालिक स्नान, हवन, भजन, दान एवं पुनर्स्नान-जैसे कृत्योंको महत्त्वहीन बताकर उपहास उड़ाते थे, परंतु विभिन्न वैज्ञानिकोंके सैद्धान्तिक निष्कर्षसे इस बातकी सम्पुष्टि होती है कि ये सभी आध्यात्मिक क्रियाएँ वैज्ञानिकतासे जुड़ी हैं, जो शारीरिक सुरक्षा एवं उपचारकी सशक्त एवं सक्षम माध्यम हैं।

इस प्रकार पूर्वोक्त सभी तथ्योंका ज्ञान अध्यात्म-सम्मत ज्योतिर्विद्याके द्वारा ही सम्भव है। ज्योतिर्विज्ञानके सूक्ष्म अध्ययन एवं समुचित प्रयोगसे दैवज्ञको मानव-जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंके बारेमें गहरी अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

संस्कृत-वाङ्मयमें मानवमात्रकी प्रत्यक्षानुभूतिका एकमात्र निर्विवाद विषय ज्योतिषशास्त्र ही है। इसका सम्बन्ध भारतीय समस्त शास्त्रोंसे है। इसमें सन्दिग्धता या अप्रत्यक्षता नहीं है, वरन् यह युक्तियुक्त एवं प्रत्यक्ष है। चन्द्र-सूर्यके सुखद सान्निध्यसे एवं प्रत्यक्ष फल देनेके कारण ही यह अन्य शास्त्रोंसे अधिक विश्वसनीय माना गया है—

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥

यही एक शास्त्र है, जिसमें जन्मसे लेकर मरणतकके सभी शुभाशुभ कर्मोंके मुहूर्तोंका और ग्रहोंके गोचर आदिके फलोंका तत्तद्देशानुसार विचार किया गया है। यद्यपि यह सामान्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक मानव अपने-अपने क्षेत्रसे सम्बन्धित पक्षका पक्षपाती होता है, परंतु यज्ञ, तप, दान, व्रतोपवास, पर्वादि सकल कर्मोंका मूल होनेके कारण अन्य शास्त्रोंकी अपेक्षा ज्योतिषशास्त्रका अध्ययन अधिक आवश्यक है। वेद-वेदांग-उपनिषद्-दर्शन-पुराणेतिहासका एकमात्र उद्देश्य यही है कि सभी मानव यज्ञ-तप-दान-व्रतादिकी साधनाद्वारा ईश्वरकी प्राप्ति करें। अतः स्पष्ट है कि समयपर किया हुआ कर्म ही सफल होता है, अकालमें किया हुआ कर्म निष्फल होते हुए कुफलको देनेवाला होता है। कहा भी गया है—'**समय एव करोति बलाबलम्।**' अतएव कालात्मक ज्योतिषशास्त्रका पग-पगपर प्रयोजन स्पष्टतया सिद्ध है। इसके ज्ञानके बिना वैदिक तथा लौकिक कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता।

ज्योतिषशास्त्र-तत्त्ववर्णन

(गोपदरेणु श्रीमंगलतीर्थजी महाराज)

ज्योतिषशास्त्रको परब्रह्म परमात्माके मुखसे निकले अपौरुषेय वेदका नेत्र कहा गया है, जिसका वर्णन सबसे पहले ब्रह्माजीने स्वयं किया है और जिसके ज्ञानमात्रसे मनुष्योंको धर्मसिद्धि प्राप्त हो जाती है। ज्योतिषशास्त्र भारतीयोंकी अमूल्य निधि है। यह जितना व्यापक है, उतना व्यावहारिक भी है। प्रयोगात्मक दृष्टिसे वैज्ञानिकों तथा विद्वानोंकी गवेषणात्मक उत्कण्ठाकी परितृप्तिके लिये इसमें अक्षुण्ण वस्तुभण्डार उपलब्ध है।

वेदांग ज्योतिषके अनुसार ज्योतिष समस्त वेदांगोंमें शिर:स्थानीय है। जिस प्रकार मयूरकी शिखा उसके सिरपर रहती है। सर्पोंके सिरमें ही मणियाँ होती हैं, उसी प्रकार षडंगोंमें ज्योतिष शिरस्थानमें ही प्रतिष्ठित है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि संस्थितम्॥

ज्योतिषशास्त्र तीन स्कन्धोंवाला है और चार लाख श्लोकोंमें वर्णित है। गणित, जातक (होरा) और संहिता इसके तीन स्कन्ध हैं। गणितमें योग, अन्तर, गुणन, भजन, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल—ये परिकर्म कहे गये हैं, साथ ही इसमें ग्रहोंकी चाल और स्फुटक्रियाका वर्णन है। ज्योतिषमें अनुयोग (देश, दिशा और कालज्ञान), चन्द्र और सूर्यग्रहण, उदय, अस्त, छायाधिकार, चन्द्रशृंगोन्नति (द्वितीयाको चन्द्रोदय होता है, उसमें कभी चन्द्रमाका दक्षिण सींग और कभी उत्तर सींग (नोक) ऊपरको उठा रहता है, उसीको 'चन्द्रशृंगोन्नति' कहा गया है।) आदिके परिणामका विचार किया गया है। साथ ही इसमें ग्रहयुति (ग्रहोंका योग) तथा पात (महापात—सूर्यचन्द्रमाके क्रान्तिसाम्य)-का साधनप्रकार कहा गया है।

जातकस्कन्धमें राशिभेद, ग्रहयोनि (ग्रहोंकी जाति, रूप और गुण आदि), वियोनिजज्ञान, जन्मफल, गर्भाधान, अरिष्ट, आयुर्दाय, दशाक्रम, कर्माजीव (आजीविका), अष्टकवर्ग, राजयोग, नाभसयोग, चन्द्रयोग, प्रव्रज्यायोग, राशिशील, ग्रहदृष्टिफल, ग्रहोंके भावफल, आश्रययोग, प्रकीर्ण, अनिष्टयोग, स्त्रीजातकफल, निर्याण (मृत्युविषयक विचार), नष्ट-जन्म-विधान (द्रेष्काणके द्वारा अज्ञात जन्म-कालको जाननेका प्रकार) तथा द्रेष्काणोंके स्वरूप—इन सब विषयोंका वर्णन है। राशिमें तृतीय भाग (१० अंश)-की द्रेष्काण संज्ञा है।

संहितास्कन्धमें ग्रहचार (ग्रहोंकी गति), वर्षलक्षण, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त, उपग्रह, सूर्यसंक्रान्ति, ग्रहगोचर, चन्द्रमा और ताराका बल, सम्पूर्ण लग्नों तथा ऋतुदर्शनका विचार, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन, मौंजीबन्धन (वेदारम्भ), क्षुरिकाबन्धन, समावर्तन, विवाह, प्रतिष्ठा, गृहलक्षण, यात्रा, गृहप्रवेश आदिका मुहूर्तविचार, तत्काल वृष्टिज्ञान, कर्मवैलक्षण्य तथा उत्पत्तिका लक्षण—इन सब विषयोंका वर्णन है।

गणित, सिद्धान्त और फलितके साथ ही प्रश्न और शकुनरूपमें विस्तृत होकर ज्योतिषशास्त्र पंचस्कन्धात्मक हो गया।

इन शास्त्रोंपर अनेक स्वतन्त्र रचनाएँ भी हैं। समय-समयपर इस शास्त्रमें अनेक संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन हुए हैं। आचार्य वराहमिहिरने होराशास्त्रमें नवीन समन्वयकी प्रणाली चलायी।

ज्योतिषके इतिहासमें उत्तर-मध्यकालके अन्तमें गणित ज्योतिषकी परिभाषा विस्तृत होनेकी अपेक्षा संकुचित दिखलायी पड़ती है; क्योंकि इस युगमें क्रियात्मक ग्रहगणितको छोड़ वासनात्मक (उपपत्ति-विषयक) ग्रहगणितका ही आश्रय ज्योतिषियोंने ले लिया था, जिससे वास्तविक ग्रहगणितका विकास कुछ रुक-सा गया।

यद्यपि करणग्रन्थोंकी सारणियाँ तैयार की गयीं, किंतु आगे आकाशनिरीक्षण और व्यक्तक्रियात्मक ग्रहगणितके अभावमें सारणियोंमें संशोधन न हो सका।

इस प्रकार गणित ज्योतिषकी परिभाषा कभी शैशव और कभी यौवनके साथ अठखेलियाँ करती रही।

संहिताशास्त्रकी परिभाषाका क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। कुछ जैनाचार्योंने जीवनोपयोगी आयुर्वेदकी चर्चाएँ भी संहिताके अन्तर्गत रखी हैं। १२वीं और १३वीं शतीमें इस शास्त्रकी परिभाषा इतनी विकसित हुई कि जीवनसे सम्बद्ध सभी उपयोगी लौकिक विषय इसके अन्तर्गत आ गये।

ईसवी सन्‌की पाँचवीं और छठी शतीमें केवल पृच्छकके उच्चारित अक्षरोंपरसे फल बतलाना ही प्रश्नशास्त्रके अन्तर्गत था, लेकिन आगे जाकर इस शास्त्रमें तीन सिद्धान्तोंका प्रवेश हुआ—१-प्रश्नाक्षरसिद्धान्त, २-प्रश्नलग्नसिद्धान्त और ३-स्वरविज्ञानसिद्धान्त।

वराहमिहिरके पुत्र पृथुयशाके समयसे प्रश्नलग्नवाले सिद्धान्तका प्रचार भारतमें जोरोंसे हुआ है। ९वीं, १०वीं और ११वीं शतीमें इस सिद्धान्तको विकसित होनेके लिये पूर्ण अवसर मिला। चर्या, चेष्टा, हाव-भाव आदिके द्वारा मनोगत भावोंका वैज्ञानिक दृष्टिसे विश्लेषण करना भी इस शास्त्रके अन्तर्गत आ गया।

'शकुन' इसका अन्य नाम 'निमित्तशास्त्र' भी मिलता है। पूर्वमध्यकालतक इसने पृथक् स्थान प्राप्त नहीं किया था, अपितु संहिताके अन्तर्गत ही इसका विषय आता था। ईसवी सन्‌की १०वीं, ११वीं शताब्दियोंमें इस विषयपर स्वतन्त्र विचार होने लग गया, जिससे इसने अलग शास्त्रका रूप प्राप्त कर लिया। आगे चलकर इस शास्त्रकी परिभाषा और भी अधिक विकसित हुई और इसकी विषयसीमामें प्रत्येक कार्यके पूर्वमें होनेवाले शुभाशुभोंका ज्ञान प्राप्त करना भी आ गया।

भारतीय ज्योतिषका रहस्य

प्रायः समस्त भारतीय विज्ञानका लक्ष्य एकमात्र अपनी आत्माका विकासकर उसे परमात्मामें मिला देना या तत्तुल्य बना लेना है। दर्शन या विज्ञान सभीका ध्येय विश्वकी गूढ़ पहेलीको सुलझाना है। ज्योतिष भी विज्ञान होनेके कारण इस अखिल ब्रह्माण्डके रहस्यको व्यक्त करनेका प्रयत्न करता है।

ज्योतिषशास्त्रका अन्य नाम ज्योतिःशास्त्र भी सुननेमें आता है, जिसका अर्थ प्रकाश देनेवाला या प्रकाशके सम्बन्धमें बतलानेवाला शास्त्र होता है अर्थात् जिस शास्त्रसे संसारका मर्म, जीवन-मरणका रहस्य और जीवनके सुख-दुःखके सम्बन्धमें पूर्ण प्रकाश मिले, वह ज्योतिषशास्त्र है।

भारतीय ज्योतिषशास्त्रके निर्माताओंके व्यावहारिक और पारमार्थिक ये दो लक्ष्य रहे हैं। ग्रह-रश्मियोंका प्रभाव केवल मानवपर ही नहीं, अपितु वन्य, स्थलज एवं उद्भिज्ज आदिपर भी अवश्य पड़ता है। ज्योतिषशास्त्रमें मुहूर्त-समय-विधानकी जो कर्मप्रधान व्यवस्था है, उसका रहस्य इतना ही है कि गगनगामी ग्रह-नक्षत्रोंकी अमृत, विष एवं अन्य उभय गुणवाली रश्मियोंका प्रभाव सदा एक-सा नहीं रहता। गतिकी विलक्षणताके कारण किसी समयमें ऐसे नक्षत्र या ग्रहोंका वातावरण रहता है, जो अपने गुणों और तत्त्वोंकी विशेषताके कारण किसी विशेष कार्यकी सिद्धिके लिये ही उपयुक्त हो सकते हैं।

अस्तु, विभिन्न कार्योंके लिये मुहूर्तशोधन अन्धश्रद्धा या विश्वासकी चीज नहीं है, अपितु विज्ञानसम्मत रहस्यपूर्ण है। हाँ, कुशलपरीक्षणके अभावमें इन चीजोंकी परिणामविषमता दिखलायी पड़ सकती है।

भारतीय ज्योतिषके लौकिक पक्षमें एक रहस्यपूर्ण बात यह है कि ग्रह फलाफलके नियामक नहीं हैं, अपितु सूचक हैं अर्थात् ग्रह किसीको सुख-दुःख नहीं देते, अपितु आनेवाले सुख-दुःखकी सूचना देते हैं। यद्यपि यह पहले कहा गया है कि ग्रहोंकी रश्मियोंका प्रभाव पड़ता है, पर यहाँ इसका सदा स्मरण रखना होगा कि विपरीत वातावरणके होनेपर रश्मियोंके प्रभावको अन्यथा भी सिद्ध किया जा सकता है। जैसे अग्निका स्वभाव जलानेका है, पर जब चन्द्रकान्तमणि या विशेष वनस्पति हाथमें ले ली जाती है तो वही अग्नि जलानेके कार्यको नहीं करती, उसकी दाहक शक्ति मणि या जड़ी-बूटीके कारण क्षीण हो जाती है।

अतएव ज्योतिषका प्रधान उपयोग यही है कि ग्रहोंके स्वभाव और गुणोंद्वारा अन्वय-व्यतिरेकरूप कार्यकारणजन्य

अनुमानसे अपने भावी सुख-दुःखप्रभृतिको पहलेसे अवगतकर अपने कार्योंमें सजग रहना चाहिये, जिससे आगामी दुःखको सुखरूपमें परिणत किया जा सके।

भारतीय ज्योतिषके रहस्यको यदि एक शब्दमें व्यक्त किया जाय तो यही कहा जायगा कि चिरन्तन और जीवनसे सम्बद्ध सत्यका विश्लेषण करना ही इस शास्त्रका आभ्यन्तरिक मर्म है। संसारके समस्त शास्त्र जगत्के एक-एक अंशका निरूपण करते हैं, पर ज्योतिष आन्तरिक एवं बाह्य जगत्से सम्बद्ध समस्त ज्ञेयोंका प्रतिपादन करता है।

मैथमैटिक्स—गणितका सच्चा रहस्य भी तभी खुल सकेगा, जब वह गुप्त-लुप्त ज्योतिष-अंशके प्रकाशमें जाँची और जानी जायगी।

ज्योतिषकी उपयोगिता

मनुष्यके आज भी समस्त कार्य ज्योतिषके द्वारा ही चलते हैं। व्यवहारके लिये अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सव, तिथि आदिका परिज्ञान इसी शास्त्रसे होता है। शिक्षित या सभ्य समाजकी तो बात ही क्या, भारतीय अनपढ़ कृषक भी व्यवहारोपयोगी ज्योतिषज्ञानसे परिचित हैं, वे भलीभाँति जानते हैं कि किस नक्षत्रमें वर्षा अच्छी होती है और बीज कब बोना चाहिये, जिससे कि फसल अच्छी हो। यदि कृषक ज्योतिषशास्त्रके उपयोगी तत्त्वोंको न जानते तो उनका अधिकांश श्रम निष्फल हो जाता।

अन्वेषणकार्यको सम्पन्न करना भी ज्योतिषज्ञानके बिना सम्भव नहीं। आजतक जितने भी नवीन अन्वेषक हुए हैं, वे या तो ज्योतिषी होते थे अथवा अपने साथ किसी ज्योतिषीको रखते थे।

आयुर्वेद तो ज्योतिषका चचेरा भाई ही है। ज्योतिष-विज्ञानके बिना औषधियोंका निर्माण यथासमय गुणयुक्त नहीं किया जा सकता। कारण एकदम स्पष्ट है कि ग्रहोंके तत्त्व और स्वभावको ज्ञातकर उन्हींके अनुसार उसी तत्त्व और स्वभाववाली औषधिका निर्माण करनेसे वह विशेष गुणकारी हो जाती है। जो इन दोनोंका ज्ञान रखते हैं, वे अद्भुत कार्य कर सकते हैं। जो भिषक् ज्योतिष-शास्त्रके ज्ञानसे अपरिचित रहते हैं, वे सुन्दर और अपूर्व गुणकारी औषधि-निर्माण नहीं कर सकते।

एक अन्य बात यह है कि इस शास्त्रके ज्ञानके द्वारा चिकित्सक रोगीके रोगका मूल कारण ज्ञातकर सफल हो सकता है। इस शास्त्रकी सबसे बड़ी उपयोगिता यही है कि यह समस्त मानवजीवनके प्रत्यक्ष और परोक्ष रहस्योंका विवेचन करता है और प्रतीकोंद्वारा समस्त जीवनको प्रत्यक्षरूपमें उस प्रकार प्रकट करता है, जिस प्रकार दीपक अन्धकारमें रखी हुई वस्तुको दिखलाता है। मानवका कोई भी व्यावहारिक कार्य इस शास्त्रके ज्ञानके बिना नहीं चल सकता।

भारत-भारती

(श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त)

वृत्तान्त पहले व्योम का प्रकटित हमीं ने था किया, वह क्रान्तिमण्डल था हमीं से अन्य देशों ने लिया।
थे आर्य्यभट, आचार्य भास्कर-तुल्य ज्योतिर्विद यहाँ, अब भी हमारे 'मानमंदिर' वर्णनीय नहीं कहाँ ?॥
जिस अंक-विद्या के विषय में वाद का मुँह बन्द है, वह भी यहाँ के ज्ञान-रवि की रश्मि एक अमन्द है।
डर कर कठोर कलंक से, वा सत्य के आतंक से—कहते अरब वाले अभी तक 'हिन्दसा' ही अंक से॥
उन 'सुल्व-सूत्रों' के जगत् में जन्मदाता हैं हमीं, रेखागणित के आदि ज्ञाता या विधाता हैं हमीं।
हमको हमारी वेदियाँ पहले इसे दिखला चुकीं—निज रम्य-रचना हेतु वे रेखागणित सिखला चुकीं॥
आकार देख प्रकार थे हम जान जाते आप ही, वे शास्त्र 'सामुद्रिक' सरीखे थे बनाते आप ही।
विज्ञान से भी 'फलित ज्योतिष' हो रहा अब सिद्ध है, यद्यपि अविज्ञों से हुआ वह निन्द्य और निषिद्ध है॥

[प्रेषक—श्रीत्रिलोचनप्रसादजी व्यास]

ज्योतिषशास्त्र एवं मानव-जीवन

(डॉ० श्रीगिरिजाशंकरजी शास्त्री)

भारतीय मनीषियोंने विश्ववाङ्मयके प्रत्येक क्षेत्रमें अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिन्तनका असीम परिचय दिया है। जहाँ दर्शनके क्षेत्रमें अद्वैतवाद, साहित्यके क्षेत्रमें ध्वनि-सिद्धान्त, व्याकरणके क्षेत्रमें भाषाकी विशुद्धताहेतु शब्दोंकी निष्पत्ति, संगीतके क्षेत्रमें सप्तस्वर तथा आयुर्वेदके क्षेत्रमें नाडी-विज्ञानकी शिक्षा दी, वहीं उन्होंने व्यवहार-प्रवर्तनके लिये ज्योतिषशास्त्रकी गणित एवं फलितपद्धति जगत्को प्रदानकर सदाके लिये ऋणी बना दिया। भारतीयोंके चिन्तनके मूलाधार वेद हैं। वेद धर्म और सदाचारके साथ-साथ कौटुम्बिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक विचारधाराओंके स्रोत भी हैं। भारतीय विद्याएँ वेदोंसे ही प्रकट हुई हैं। षड्वेदांग वेदोंको प्रकाशित करनेमें अपना पृथक्-पृथक् योगदान देते हैं, अतएव इनको वेदका अंग कहा जाता है। '**अङ्ग्यन्ते प्रकाश्यन्ते वेदाः अनेन इति वेदाङ्गाः।**' ज्योतिषशास्त्रकी नेत्र-संज्ञा यज्ञ-यागादि अनुष्ठानोंके लिये कालको प्रकाशित करनेके कारण ही है। वेदके अन्य अंगोंकी अपेक्षा अपनी विशेष योग्यताके कारण ही ज्योतिषशास्त्र वेदभगवान्का प्रधान अंग—निर्मलचक्षु बन गया है और इसका अन्य कारण यह भी है कि भविष्य जाननेकी इच्छा सभी युगोंमें मनुष्योंके मनमें सर्वदा प्रबल रही है, जिसकी परिणति यह ज्योतिषशास्त्र है। कृषि, व्यापार, उद्योग, यज्ञ, सदाचार, धर्म, व्यवसाय तथा जीवन-यात्राहेतु शुभकाल-निर्णयके लिये ज्योतिष ही एकमात्र साधन है। कर्मोंका कौन काल श्रेष्ठ है, कौन मुहूर्त उत्तम है, इसे व्याकरणादि शास्त्रोंसे नहीं जाना जा सकता। कृषि आदि कर्मोंमें जौ, चना, मटर, गेहूँ, धान आदिका काल अलग-अलग है। इसी तरह मुहूर्तकी उपयोगिता यज्ञादि कर्मके लिये है। सुन्दर (शुभ) समय जाननेके लिये कालमानका जानना आवश्यक होता है। काल भी शुभाशुभमिश्रित रहता है, जैसे सृष्टि-निर्माणमें ब्रह्माजीने अच्छे-बुरे दोनोंको मिलाकर अर्थात् गुणदोषमयी सृष्टि बनायी है, उसी प्रकार काल भी गुणदोषयुक्त है। कोई भी काल न तो सर्वथा निर्दोष है और न ही सर्वथा गुणवान्। जैसा कि आचार्य बृहस्पतिका कथन है—

स्वभावादेव कालोऽयं शुभाशुभसमन्वितः।
अनादिनिधनः सर्वो न निर्दोषो न निर्गुणः॥

(बृहस्पतिसंहिता १।१४)

ऐसी स्थितिमें शुभाशुभ सूक्ष्मकालका निर्धारण आवश्यक हो जाता है। भारतीय ज्योतिर्विदोंने त्रुटिसे लेकर प्रलय अर्थात् कल्पान्तपर्यन्त गणनाओंको सूक्ष्म विधिसे निकालनेका स्तुत्य कार्य किया है। भारतीय मनीषी आदिकालसे ही लौकिक एवं पारलौकिक सुख-प्राप्तिहेतु यज्ञानुष्ठान करना अपना परम कर्तव्य मानते रहे हैं। कौन यज्ञ कब सम्पादित किये जायँ—इसका ज्ञान सूर्य एवं चन्द्रमाकी गति, स्थिति एवं भिन्न-भिन्न तिथियों और नक्षत्रोंपर आधारित थी, जिसकी अभिव्यक्ति अन्य किसी शास्त्रके वशमें नहीं थी, यही कारण है कि वसिष्ठादि ऋषियोंने इस शास्त्रको कालविधायक शास्त्र कहा है—

क्रतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः
कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः।
शास्त्रादमुष्मात्किल कालबोधो
वेदाङ्गतामुष्य ततः प्रसिद्धा॥

(वसिष्ठसंहिता १।४)

अतएव कालविधायकशास्त्रको जाननेके पूर्व कालका ज्ञान आवश्यक है।

कालतत्त्व—ब्रह्म ही काल, निर्गुण, निराकार, अनादि, अनन्त, विभु एवं सर्वशक्तिमान्के रूपमें संस्कृत वाङ्मयमें सदैवसे व्यवहृत होता रहा है। यही कालतत्त्व त्रिगुणात्मिका प्रकृति (अजाशक्ति)-के द्वारा चराचर जगत्की रचना, पालन एवं संहार करता है। त्रिगुणात्मिका

प्रकृति जब साम्यावस्थामें होती है, तब अव्यक्तरूपमें रहती है और जब क्षुभित होती है अर्थात् जब गुणवैषम्य होता है, तब वही प्रकृति सृष्टिके रूपमें व्यक्त हो जाती है। उस समय ग्रह-नक्षत्रोंके संयोगसे निराकार काल साकार हो जाता है, जिसकी गणना यह शास्त्र करता है। कहा भी गया है—**'कालाधीनं जगत् सर्वम्'**। प्राणियोंके व्यावहारिक अथवा पारमार्थिक सभी कार्य कालाधीन हैं और काल ज्योतिषशास्त्रके अधीन है। अत: ज्योतिषशास्त्र लौकिक-पारलौकिक सभी कार्योंहेतु मुहूर्त निर्धारित करता है। वैसे तो कालकी विवेचना प्राय: सभी शास्त्रोंमें मिलती है, किन्तु ज्योतिषशास्त्र कालका सम्यक् विवेचन करनेके कारण उसका पर्याय ही बन गया है। कालकी क्या परिभाषा है? इस विषयमें आचार्योंका कथन है कि दृश्य प्रपञ्चमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो चल न हो, यदि उसमें परिवर्तन नहीं होगा तो वह दृश्य नहीं होगी। इसी परिवर्तनके ज्ञानका जो हेतु है, उसीको काल कहते हैं। यह काल अद्वितीय, सर्वव्यापी तथा नित्य है। भूत, भविष्य, वर्तमान—ये कालके व्यावहारिक एवं उपाधिगत (औपाधिक) भेद हैं। परमार्थत: काल एक ही है। काल विभु है, अत: महान् है। काल अपने निजी स्वरूपमें अतीत, वर्तमान अथवा भविष्य नहीं होता। इस कालमें उत्पन्न होनेवाली क्रियाओंका ही भूत, वर्तमान, भविष्य होता है। इन क्रियाओंका आश्रयभूत काल ही तीन खण्डोंमें बाँटा जाता है। कालके ही वशीभूत होकर ब्रह्मा सृष्टि रचते हैं, विष्णु पालन करते हैं तथा शिव संहार करते हैं। वर्षा, शीत, ग्रीष्म, प्रात:-सायं, दिन-रात्रि, शिशिर, हेमन्त, वसन्त आदि कालके ही रूप हैं। इसीमें समस्त प्राणी जन्मते-मरते हैं। कालानुसार ही वृक्षोंमें फल-फूल आते हैं। बीजांकुरण भी कालानुसार ही होता है। संस्कृत-मनीषी महाकवि भर्तृहरिने सत्य ही कहा है—

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा किल सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥

(नीतिशतकम् ९७)

अर्थात् मनुष्यका सुन्दर रूप, कुल, शील, विद्या, सेवा आदि कोई काम नहीं आता, परन्तु तपसे अर्जित प्रारब्ध (भाग्य) ही समय आनेपर काम आता है और वृक्षकी भाँति नाना प्रकारके फल देता है।

अथर्वाऋषिके अनुसार काल सबका ग्रहीता, दाता एवं कर्ता है। मास, पक्ष कालके शरीर हैं, दिन-रात्रि वस्त्र हैं, ऋतुएँ इन्द्रियाँ हैं। यही कालसंज्ञक ब्रह्म है। काल ही समस्त प्राणियोंकी अवस्थामें उलट-फेर करता है। कालकी महिमासे पराजित होकर जीव कुछ भी नहीं कर पाता। यह काल ही प्राणिमात्रकी गति है। कालकी गतिका उल्लघंन करना असम्भव है। कालक्रमसे ही ब्रह्मा, इन्द्र, भूपति आदि पद प्राप्त होते हैं। कालसे पीड़ित प्राणीको विद्या, तप, दान, मित्र, बन्धु, बान्धव भी कष्टसे नहीं बचा पाते। जीव जब कालसे आक्रान्त होता है, तब बुद्धि संकटमें पड़कर फटी-सी रह जाती है। कालके असहयोगसे सुखद कर्म भी दु:खदायी प्रतीत होते हैं। काल निरन्तर सतर्कताके साथ जागता रहता है। यह सभी प्राणियोंके प्रति समदर्शी है। कालका किसीके द्वारा भी परिहार नहीं किया जा सकता। यह श्वास-प्रश्वासका हिसाब लगाकर प्राणियोंको सुख-दु:ख देता है। योगवासिष्ठके वैराग्य-प्रकरणके २३वें सर्गमें भगवान् राम मुनि वसिष्ठसे कहते हैं कि सर्व पदार्थोंसे महाभयंकर यह काल ही संहारकर्ता महारुद्र है, जो इस दृश्यमात्र संसारकी सत्ताको कवल करनेको उद्यत है। यह काल बड़े-बड़े बुद्धिमानों और बलवानोंकी भी क्षणभर प्रतीक्षा नहीं करता, अपितु तत्काल ही मार देता है। यह काल अनन्त ब्रह्माण्डोंको कवल करके स्वयं विश्वरूप हो रहा है। सूर्यकी गतिरूपी क्रियाके औपाधिक रूपसे कल्प, युग-वर्षादि नामोंसे यह काल प्रकट है, परन्तु यथार्थमें अलक्ष्य रूपसे सबको दबाये हुए है। अतिरमणीय सुन्दराकृतिवाले तथा सुमेरु-जैसे बड़े-बड़े पदार्थोंको भी यह काल ऐसे निगल जाता है, जैसे गरुड़जी सर्पोंको। निर्दय, कठिन, क्रूर, कर्कश, कृपण और उदार ऐसा आजतक कोई नहीं है, जिसको यह काल निगलता न

हो। अनन्त लोकोंके समूहोंको इस महाभक्षी कालने स्वाहा कर दिया तथापि तृप्त नहीं हुआ। हरण करना, नाश करना, भक्षण करना, मारना तथा अन्य प्रकारकी क्रियाओंका करना—यह सब कालके अधीन है। नाना रूपधारी यह संसाररूपी महानृत्य है, जिसमें कालरूपी नट है। इस जगत्‌में पृथ्वी, जल, तेज, वायु—ये चार प्रकारके सूक्ष्म-स्थूल भूत हैं, उन सबको विदीर्ण करके काल निरन्तर ऐसे भक्षण कर जाता है, जैसे—दाडिमको शुक। यह काटनेसे नहीं कटता, भस्म होनेपर भी नहीं जलता और दृश्य होनेपर भी नहीं दीख पड़ता। हे मुने! यह काल तो सब धूर्तोंका शिरोमणि है। यह काल सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होनेपर भी प्राणियोंको शुभाशुभ फल उनके कर्मानुसार ही देता है। अतएव कर्मको जानना भी अत्यावश्यक है।

कर्म-सिद्धान्त

तपःपूत ऋषियोंने अपने चिन्तनद्वारा यह प्रमाणित किया है कि मनुष्यके जीवनमें कर्मका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्राणियोंका सम्पूर्ण जीवन तथा मरणोत्तर जीवन कर्म-तन्तुओंसे बँधा हुआ है। कर्म ही प्राणियोंके जन्म, जरा, मरण तथा रोगादि विकारोंका मूल है। न्यायसूत्र (१।१।२) जन्म और दुःखोंका हेतु कर्मको ही स्वीकार करता है। संसारके समस्त भूत, भविष्य एवं वर्तमान घटनाओंका सूत्रधार यह कर्म ही है। आस्तिकदर्शनोंमें तो यहाँतक कहा गया है कि कर्मके भ्रूभंगमात्रसे ही सृष्टि एवं प्रलय होते हैं। ग्रह, नक्षत्र, तारागणोंकी स्थिति, गति और विनाश भी कर्माधीन ही है। भगवान् शंकरके घरमें अन्नपूर्णाजी हैं तथापि भिक्षाटन करना पड़ता है। यह कर्मकी ही विडम्बना है—

सीमन्तिनी यस्य गृहेऽन्नपूर्णा
त्रैलोक्यरक्षां कुरुतेऽन्नदानैः।
भिक्षाचरः सोऽपि कपालपाणिः
ललाटलेखो न पुनः प्रयाति॥

जन्मान्तरोपार्जित कर्मसे ही जीवात्माको शरीर धारण करना पड़ता है। जन्म प्राप्तकर वह नित्य नये कर्मोंको करता रहता है, जो उसके अगले जन्मका कारण बन जाते हैं। इस प्रकार कर्मसे जीवात्माकी तथा जीवात्मासे ही पुनः कर्मकी उत्पत्ति होती है। बीजांकुरन्यायके अनुसार कर्म और जीवात्माकी यह परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है। अतएव यह कहना किसीके लिये भी सम्भव नहीं है कि कौन पहले हुआ। बीज पहले या वृक्ष—ये अनादिके विषय हैं। अनादि कहते ही उसे हैं, जो बुद्धिग्राह्य न हो। कर्म एवं कर्मफल जीवात्माके आश्रित रहते हैं। यदि पूर्वजन्ममें कर्मोंका सम्बन्ध न माना जाय, तब नवजात शिशुके हस्त-पाद-ललाटादिमें ऐश्वर्य-दारिद्र्यादिसूचक शंख, चक्र, मत्स्य, कमल आदि चिह्न कैसे आ जाते हैं, उस समयतक तो उसका कोई कर्म भी नहीं रहता। हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश, मोह, ममता, सुख, दुःख सभी इसीमें प्रतिष्ठित हैं। अतएव प्राणियोंको जो भी सुख-दुःखादि प्राप्त होते हैं, वह उसका अपना ही कर्म होता है। इसी तथ्यके आधारपर योगसूत्रकार भगवान् पतंजलिने कहा है कि कर्मका मूल अविद्याके रहनेपर ही जन्म, आयु और सुख-दुःखादि भोग प्राप्त होते हैं और ये ही कर्मविपाक हैं—**'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः'** (योगसूत्र २।१३)। अब प्रश्न बनता है कि यदि कर्म ही जन्म, आयु, भोगका मूल है, तब ग्रह-नक्षत्रोंका क्या प्रयोजन? क्या ग्रह-नक्षत्र प्राणियोंके सुख-दुःखादि, जीवन-मरणके हेतु नहीं हैं और यदि ग्रह-नक्षत्र कारण हैं, तब कर्म-राशियोंकी स्वीकृति व्यर्थ सिद्ध होगी? इस विषयमें कथ्य यह है कि स्वरूप, स्वभाव, गुण एवं गति आदिसे नियत ग्रह-नक्षत्रादि जीवनफल कर्मादिकी विविधताके हेतु नहीं हो सकते। ग्रह-नक्षत्रोंके अतिरिक्त हेतुवैषम्य एवं फलवैषम्यके लिये अवश्य कोई अन्य कारण मानना पड़ेगा और वह कारण प्रारब्ध-क्रियमाण-संचित आदि कर्म ही हैं, अन्यथा कर्मकी निष्फलता सिद्ध होगी, तब इस स्थितिमें वेदादि शास्त्रोंमें प्रतिपादित विधि-निषेधात्मक समस्त कर्म व्यर्थ सिद्ध होंगे। अतएव यह कथन अधिक तर्कसंगत है कि स्वकृतकर्मके कारण ही ग्रह-नक्षत्रादि जन्मांगमें तत्तद् स्थानोंमें अवस्थित होकर अनुकूल-

प्रतिकूल फलदाता बन जाते हैं। तब पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि कर्म एवं ग्रह—दोनों कैसे सुख-दुःखके हेतु हो सकते हैं? उत्तर होगा—सुखदुःखात्मक फलका उपादानकारण कर्म है, जबकि ग्रह-नक्षत्रादि निमित्त कारण हैं। कर्मोंके अनुसार ही जातकोंकी ग्रहस्थितियाँ बनती हैं। कर्मोंमें कुछ कर्म दृढ़ होते हैं, कुछ अदृढ़ तथा कुछ दृढ़ादृढ़। इन कर्मफलोंकी व्याख्या करते हुए आचार्य श्रीपति कहते हैं—

दशाप्रभेदेन विचिन्तयेत् दृढं
दृढेतरं चाष्टकवर्गगोचरैः।
दृढादृढं योगवशेन चिन्तये-
दिति त्रिधा जातकसूक्ष्मसंग्रहः॥

अर्थात् विंशोत्तरी आदि दशाओंद्वारा दृढ़ कर्मफलोंका ज्ञान, अष्टक वर्ग तथा गोचरद्वारा अदृढ़ कर्मफलोंका ज्ञान होता है, जबकि नाभसादि योगोंद्वारा दृढ़ादृढ़ कर्मफलोंका ज्ञान जातक (फलित ज्योतिष)-द्वारा जाना जाता है।

ज्योतिषका स्वरूप

आकाशमें बिखरे हुए मुक्ताकणोंकी भाँति प्रतीत होनेवाले प्रकाशमान तारक-पुंज अपनी स्वच्छ किरणोंसे भूस्थित प्राणियोंके हृदयोंको आप्लावित करते हुए रहस्यमय प्रतीत होते हैं। मानव आदिकालसे ही इन ग्रह-नक्षत्रोंके रहस्योंको जाननेका प्रयत्न करता रहा है। इनके विषयोंमें बहुत कुछ जाना भी जा चुका है, किन्तु ज्ञात रहस्योंसे भी बहुत अधिक रहस्य अधुनापि अज्ञात ही है। तपःपूत ऋषियों, महर्षियोंने अपनी योगज दृष्टिसे यह सुनिश्चित किया कि आकाशस्थ प्रकाशमान पिण्ड दो रूपोंमें सदैव दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ तो अपना स्थान परिवर्तित करते रहते हैं, जबकि दूसरे पिण्ड सदैव एक स्थितिमें बने हुए परिभ्रमण करते रहते हैं। जिनमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं दिखायी पड़ता, उनकी संज्ञा नक्षत्र है। इसीका निरुक्तकार यास्कने निर्वचन करते हुए **'न क्षतेः गति कर्मणः'** कहा है और जो प्रकाशपिण्ड परिवर्तन करते हुए प्रतीत होते हैं, उनकी संज्ञा ग्रह है—**'गृह्णन्ति इति ग्रहाः'** अर्थात् जो नक्षत्रोंको ग्रहण करते हुए चलते हैं। नक्षत्रोंके ग्रहणके साथ-साथ ये ग्रहगण जागतिक समस्त पदार्थोंको भी ग्रहण करते हैं। इन्ही ज्योतिर्मय ग्रहनक्षत्रादि पिण्डोंका सम्यक् बोध करानेवाला शास्त्र ही ज्योतिष शब्दसे अभिहित होता है और ये ही नक्षत्र एवं ग्रह ज्योतिषशास्त्रके मूल हैं।

ज्योतिषशास्त्रकी व्युत्पत्ति

'ज्योतिष' शब्दकी व्युत्पत्ति **'द्युतेरिसिन्नादेश्च जः'** कहकर की गयी है। अर्थात् **'द्युत् दीप्तौ'** धातुसे इसिन् प्रत्यय तथा दकारको जकारादेश करके ज्योतिष् या ज्योतिः शब्द बना, पुनः **'अर्शआदिभ्योऽच्'** से अच् प्रत्यय करके ज्योतिष अकारान्त शब्द निर्मित हुआ है। पुनः **'तदधिकृत्य कृतो ग्रन्थः'** इस पाणिनीय सूत्रसे अण् प्रत्यय करनेपर ज्यौतिष शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होगा ज्योतिषसम्बन्धी सिद्धान्त या ग्रन्थ। 'शास्त्र' शब्दकी व्युत्पत्ति दो प्रकारसे की जाती है—(१) **'शासनात् शास्त्रम्'** अर्थात् करणीय-अकरणीय कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें जो आज्ञा दे, वह शास्त्र है। (२) **'शास्त्रत्वं शंसनादपि'** अर्थात् किसी उद्देश्यविशेषसे जो सम्पूर्ण अर्थोंका ज्ञान करा दे, वही शास्त्र है। दोनों व्युत्पत्तियोंके आधारपर यह कहा जा सकता है कि जो किसी वस्तुके स्वरूपको ठीक-ठीक समझा दे अर्थात् जो सत्यका ज्ञान करा दे, उसे शास्त्र कहते हैं। अतएव ज्योतिषशास्त्रका अर्थ हुआ—ग्रह-नक्षत्रादि प्रकाशपिण्डोंके माध्यमसे सत्यका ज्ञान तथा अज्ञानादिकी निवृत्ति। मीमांसक कहते हैं कि **'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः'** अर्थात् शब्द और अर्थ एक साथ प्रकट हुए हैं। शब्दकी उत्पत्तिके साथ ही अर्थ भी उत्पन्न होता है। इसी नियमके अनुसार ऋषियोंने नक्षत्रों, ग्रहों एवं राशियोंका ज्योतिष नामकरण किया। आकाशमें जिन तारापुंजोंकी आकृति घोड़ेके मुखसदृश दृष्टिगोचर हुई, उसका नाम अश्विनी, जिन नक्षत्र-समूहोंकी योनिसदृश आकृति बनी है, उसकी

भरणी, क्षुरकके आकृतिकी कृत्तिका, लालवर्ण होनेसे रोहिणी, मृगका सिर प्रतीत होनेसे मृगशिरा—इसी तरह २७ नक्षत्रोंके नाम तथा उनके देवताओंको ऋषियोंने योगज प्रत्यक्षसे जाना तथा उसका उल्लेख यथास्थान वैदिक साहित्यमें किया है। इसी तरह ग्रहोंको आकाशमें चलनेके कारण खेचर कहा और ग्रहोंके नामकरण भी किये गये हैं, जैसे—सूर्य सरकता हुआ प्रतीत होता है, अतएव **'सरणात् इति सूर्यः।'** सूर्यको आत्मा कहा है तथा मनको आह्लादकता प्रदान करनेके कारण चन्द्रमाकी संज्ञा 'मन' है, यह चन्द्रमा समष्टिका मन है। चन्द्रमाके समीप उसका बेटा बुध बहुत खोजके बाद (सूक्ष्म होनेसे) जाना गया, अतएव इसे बुद्धि या वाणी कहा गया है। अत्यन्त श्वेत (सित)-को शुक्र जलीय होनेसे काम कहा है। पृथ्वीके सदृश गुणधर्मवाला तथा जलते हुए अंगारसदृश प्रतीत होनेवाला भूपुत्र भौम या अंगारक मंगल है। सर्वाधिक विस्तृत एवं पीतवर्णी ग्रहको गुरु (ज्ञान) कहा और धीरे-धीरे चलनेवालेका मन्द या शनैश्चर (भृत्य) नामकरण महर्षियोंद्वारा किया गया। जिन ऋषियोंने नक्षत्रों एवं ग्रहोंका नामकरण उनकी आकृतियोंके आधारपर किया था, उन्हींके द्वारा राशियोंका नामकरण किया गया। इसकी सत्यता सूर्यादि अष्टादश प्रवर्तकोंके उपलब्ध ग्रन्थोंमें अद्यापि सुरक्षित है। अतएव यह कथन कि राशियोंका ज्ञान भारतीयोंको मिस्र, बेबीलोन अथवा यूनानियोंने कराया था, उचित प्रतीत नहीं होता। जिन महर्षियोंने आकाशमें तारोंके समूहको प्रत्यक्षकर उनकी अश्विन्यादि नक्षत्र-संज्ञाएँ दी थीं, उन्हींके द्वारा सतत आकाश-निरीक्षणमें जब कुछ नक्षत्रोंके समूहसे विशेष आकृतियाँ भेड़, बैल, स्त्री-पुरुषका जोड़ा तथा केकड़े आदिके समान प्रतीत हुईं, तभी उनका आकृत्यानुसार मेष-वृषभादि नामकरण किया गया था। जैसा कि ज्योतिषमनीषी आचार्य वराहमिहिरने राशिका पर्याय क्षेत्र, गृह, ऋक्ष, नक्षत्र, भ, भवन आदि कहा है—

'राशिक्षेत्रगृहर्क्षभानि भवनं चैकार्थसम्प्रत्ययाः।'

ज्योतिषशास्त्रकी प्राचीनता

पाश्चात्य विद्वानोंने भारतीय ज्योतिषशास्त्रका प्रारम्भ पाँचवी शताब्दीसे माना है। जबकि भारतीय सिद्धान्त ज्योतिषकी नींव **'तुष्यन्तु दुर्जनन्यायेन'** माननेपर भी ईसवी सन्से पाँच हजार वर्षपूर्व ही स्थापित हो चुकी थी। ऋग्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, शतपथब्राह्मण, ऐतरेयब्राह्मण, बौधायनशुल्बसूत्र, यास्ककृत निरुक्त एवं महामुनि पाणिनिकृत अष्टाध्यायी, कात्यायनकृत वार्तिक तथा भगवान् पतंजलिकृत महाभाष्य, योगसूत्र, आयुर्वेद, आचार्य पिंगलकृत पिंगलसूत्र, कौटिलीय अर्थशास्त्र, महात्मा लगधकृत आर्चज्योतिष, महात्मा शुचिकृत याजुषज्योतिष तथा महर्षि कश्यपकृत आथर्वणज्योतिषके साथ-साथ सौर, पैतामह, वासिष्ठ आदि सिद्धान्त, पुराण तथा इतिहासग्रन्थ—रामायण, महाभारत—ये सभी ईसवी सन्से बहुत पहले प्रकाशमें आ चुके थे। इन सभी ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र ज्योतिषके पारिभाषिक शब्द ही नहीं, अपितु काल-विवेचनके साथ-साथ फलोंका आदेश भी वर्णित है। यहाँ एकाध उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। शतपथब्राह्मणमें कृत्तिका तारापुंजका उदय ठीक पूर्वमें होनेका उल्लेख है। शतपथब्राह्मणकालमें ही मधु-माधव आदि वैदिक मासोंके नाम चैत्र, वैशाखादि मास रखे जा चुके थे। जैसा कि शतपथब्राह्मण (११। १। १। ७)-में कहा गया है—

'सासौ वैशाखस्यामावस्या तस्यामादधीत्'

तैत्तिरीयसंहितामें चैत्री पूर्णिमाको संवत्सरकी पहली रात्रि माना गया है—

'मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यच्चित्रा पौर्णमासः'

(तैत्तिरीयसंहिता ४। १४)

जबकि शतपथब्राह्मण फाल्गुनी पूर्णिमाको ही संवत्सरकी पहली रात्रि मानता है—**'एषा हि संवत्सरस्य प्रथमा रात्रिर्या फाल्गुनी पौर्णमासी।'** (शतपथब्राह्मण ६। २। २। १८) इससे यह सिद्ध है कि तैत्तिरीयसंहिताके वसन्तसम्पातसे शतपथब्राह्मणका वसन्तसम्पात तीन नक्षत्र पीछे हट गया था। अब यह सर्वविदित है कि वसन्तसम्पात प्रत्येक ७२वें वर्षमें एक दिन पीछे हट जाता है। यह

वसन्तसम्पात ९६० वर्षोंमें एक नक्षत्र पीछे हटता है, अतएव तैत्तिरीयसंहिताका समय शतपथब्राह्मणके समयसे लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि भारतीयोंको ज्योतिषशास्त्रके वैज्ञानिक स्वरूपका ज्ञान अर्थात् ग्रहों-नक्षत्रोंकी आकाशीय स्थितिका ज्ञान छठीं शताब्दी ईसवीमें आचार्य वराहमिहिर एवं आर्यभटके समयसे हुआ और इन आचार्योंने हिपार्कस तथा टालमी आदि यूरोपियन ज्योतिर्विदोंके ग्रन्थोंसे ज्ञानार्जन किया। पाश्चात्योंका कथन है कि भारतीयोंको छठी शताब्दीसे पूर्व ग्रहोंके शीघ्र फल एवं मन्द फलके संस्कारोंद्वारा ग्रहोंकी ठीक स्थितिका ज्ञान, रेखागणितका ज्ञान, कोणमापन-विधि तथा वेध-प्रक्रिया आदिका ज्ञान नहीं था। पाश्चात्य विद्वानोंका यह कथन भ्रमात्मक है या तो वे भारतीय ऋषियों, आचार्योंके ग्रन्थोंसे अपरिचित थे अथवा अपनेको श्रेष्ठादि सिद्ध करनेके लिए ऐसा उन्होंने कहा है, कारण, भारतीयोंको प्राचीनकालमें (ऋग्वेद-कालमें) ग्रहगणित तथा तिथि, चन्द्र, नक्षत्र-सम्बन्धका ज्ञान था। ऋग्वेद (१।१५५।६)-में दीर्घतमाऋषिने खगोलीय वृत्तके ९०-९० अंशोंके चार भाग कर लिये थे—

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं
न वृत्तं व्यतीरवीविपत्।

विश्वमें वैदिक ऋचाओंकी दशगुणोत्तर प्रणालीका व्यवहार होना इस बातका प्रमाण है कि जगत्को गणित भारतने ही सिखाया। प्राचीन सूर्यसिद्धान्त तथा पिंगलसूत्रमें शून्यका उल्लेख है, जबकि यूनानमें शून्यका ज्ञान अरबवासियोंद्वारा दसवीं शताब्दीमें हुआ और अरब ज्योतिषियोंने यह ज्ञान भारतीयोंसे प्राप्त किया था। ईसवी सन् पूर्व तीसरी शताब्दीमें विद्यमान रेखागणितका प्रसिद्ध विद्वान् यूक्लिड संख्याओंके जोड़, घटाना, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल आदिकी विधियोंसे सर्वथा अनभिज्ञ था। ईसापूर्व पाँचवी शताब्दीमें भारतका पर्यटन करनेवाले पैथागोरसने अपनेसे ८०० वर्षपूर्वके बौधायनशुल्बसूत्रमें वर्णित **'समकोणत्रिभुजमें कर्णवर्ग = भुजवर्ग + कोटिवर्ग'**को भारतसे ही जानकर इसकी उपपत्ति अपनी समुन्नत रेखागणितकी युक्तिसे की। अतएव यह कहना समीचीन है कि भारतवर्षमें ईसवी सन्‌से बहुत पूर्व ही ज्योतिषशास्त्रके वैज्ञानिक स्वरूपका विकास हो चुका था।

ज्योतिषशास्त्रके भेद

आदिकालमें ज्योतिषशास्त्रके शकुन, स्वप्न, अंगस्फुरण, छींक, शारीरिक लक्षण, हस्तरेखा, सामुद्रिक-शास्त्र, नाडी-ज्ञान, स्वरविज्ञान आदि अनेक भेद थे, किन्तु नारद एवं गर्ग आदि आचार्योंके समयतक यह तीन स्कन्धोंमें विभक्त हो गया था और सम्पूर्ण भेद इन्हीं तीन शाखाओंमें अन्तर्निहित हो गये। ज्योतिषशास्त्रकी तीन शाखाएँ हैं—१. गणित या सिद्धान्तज्योतिष, २. फलित या जातक (होरा) ज्योतिष तथा ३. संहिताज्योतिष। सिद्धान्तज्योतिषका मुख्य प्रयोजन काल (समय)-की गणना, ग्रह-नक्षत्रोंकी गतियोंका सूक्ष्म अध्ययन, फलित ज्योतिषद्वारा प्राणियोंकी लोकयात्रा अर्थात् पृथ्वीलोकमें जन्मसे मृत्युपर्यन्त होनेवाले शुभाशुभ फलोंका विवेचन तथा संहिताज्योतिषका मुख्य ध्येय विश्वमें होनेवाले भूकम्प, भूस्खलन, ज्वालामुखी, यान-दुर्घटना, चक्रवात, मौसमकी अनुकूलता या प्रतिकूलताके साथ-साथ समस्त दिव्यान्तरिक्षभौमादि उत्पातोंका बोध कराना था। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि त्रिस्कन्ध ज्योतिषशास्त्रसे ही आज गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, भूगोलशास्त्र, मनोविज्ञान, जीवविज्ञान, रसायनविज्ञान, पदार्थविज्ञान, मौसमविज्ञान, कृषिविज्ञान, रत्नविज्ञान, वास्तुविज्ञान तथा शिल्पादि सभी आधुनिक विज्ञान निर्गत हुए हैं।

ज्योतिषशास्त्रका प्रयोजन

लगधाचार्य एवं महर्षि वसिष्ठका कथन है कि ज्योतिषशास्त्र कालनिर्धारक शास्त्र है, जबकि महर्षि पाराशर आयुष्य एवं लोकयात्रा इसका मुख्य प्रयोजन मानते हैं। पाराशरहोराशास्त्रमें मैत्रेयजीने पाराशरमुनिसे ज्योतिषका प्रयोजन बताते हुए कहा है—

आयुश्च लोकयात्रा च द्वे शास्त्रेऽस्मिन् प्रयोजनम्।
निश्चेतुं को नु शक्नोति वसिष्ठो वा बृहस्पतिः॥

किं पुनर्मनुजास्तत्र विशेषात्तु कलौ युगे॥

देवर्षि नारदने श्रौत एवं स्मार्त कर्मोंकी सिद्धिहेतु ज्योतिषकी रचना मानी है। वराहमिहिरका कहना है कि पूर्वजन्ममें प्राणियोंद्वारा जो शुभाशुभ कर्म किया गया है, उसको यह शास्त्र उसी प्रकार व्यक्त कर देता है, जिस प्रकार अन्धकारमें अदृश्य पदार्थोंको दीपक। बृहज्जातकके टीकाकार भट्टोत्पल इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि कुछ कर्म दृढमूलक होते हैं और कुछ शिथिलमूलक। दृढमूलक कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है, जबकि शिथिलमूलक कर्मोंका फल इस शास्त्रके द्वारा जानकर दान, जप, तप, हवन आदिके द्वारा निवारित किया जा सकता है। श्लोक है—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

भास्कराचार्यने तो यहाँतक कहा—**'यो ज्योतिषं वेद नरः स सम्यक् धर्मार्थमोक्षं लभते यशश्च॥'** अर्थात् चतुर्विध पुरुषार्थकी प्राप्ति इसका मुख्य प्रयोजन है। जबकि चतुर्विंशतिमतकारका कहना है कि गणितसे समयकी सिद्धि होती है और उस कालमें देवता स्थित होते हैं। समयपर दी गयी एक आहुति भी कल्याणप्रद होती है। जबकि असमयकी करोड़ों आहुतियाँ व्यर्थ हो जाती हैं। यदि समय व्यतीत होनेपर दान, होम, जप आदि किया जाय तो जैसे ऊसरमें बीज व्यर्थ चला जाता है, वैसे ही असमयमें किये गये दान, हवन, जप आदि व्यर्थ हो जाते हैं।*

ज्योतिर्विवरण ग्रन्थमें भी कहा गया है कि ज्योतिषशास्त्र पुण्यप्रद तथा स्वतःप्रामाण्य शास्त्र है, प्रत्यक्षता ही इसका आधार है—

ज्योतिःशास्त्रमिदं पुण्यं प्राहुर्नयविदो बुधाः।
स्वतःप्रामाण्यमस्यास्ति सत्यं प्रत्यक्षतो यतः॥

सांसारिक व्यवहारमें मास, वर्ष, वार, तिथि, नक्षत्र आदिका प्रयोजन सर्वविदित ही है—ये सभी ज्ञान ज्योतिषके अधीन हैं। अन्यत्र कहा गया है कि **'ज्योतिषशास्त्राध्ययनेन सत्यविषये ज्ञानं दृढं भवति'** अर्थात् ज्योतिषशास्त्रके अध्ययनसे सत्यविषयमें ज्ञान दृढ़ हो जाता है। ज्योतिषशास्त्रका प्रयोजन कालज्ञान, कृत कर्मोंका शुभाशुभ परिणाम, आयुष्यज्ञान तथा प्रकृतिके रहस्योंका बोध कराना है। दैवज्ञ नारदका कथन है कि श्रौत एवं स्मार्त कर्मोंकी सम्पन्नताहेतु ब्रह्माजीने इस निर्मल, अकल्मष चक्षुःभूत ज्योतिषशास्त्रको इस धराधामपर प्रकट किया है। दिक्-देश-कालका सूचक यह शास्त्र व्रत, यज्ञ, तप, दान, उपवासादिका मूल है। अतएव सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, स्मृतियाँ तथा इतिहास-पुराणादिकोंका भी निष्कर्ष यही है कि यज्ञ-याग, अनुष्ठान, व्रत, तप, नियम आदिके द्वारा भगवान्‌का भजन, पूजन ही जीवोंका प्रधान कर्तव्य है। तब यह उपासना यदि सुन्दर शुभ समयमें की जाय तो पूर्णतया सफल होती है और यदि अशुभ कालमें की जाय तो तादृश सफलता नहीं मिलती। अतः यह सत्य है कि ज्योतिषशास्त्रका मुख्य प्रयोजन कालका विवेचन, कर्मोंके शुभाशुभ फलोंका निर्धारण, राष्ट्र या विश्वका शुभाशुभ फलबोध, यज्ञकालका निर्णय, सूर्यचन्द्रादि ग्रहणोंका ज्ञान, ग्रहगतिनिर्णय, अध्ययन-अनध्यायका काल, संक्रान्तिनिर्णय, व्रत-पर्व-त्योहारके निर्णयके साथ-साथ षोडशसंस्कारोंके शुभकालोंका निर्णय करना है।

वेदादि शास्त्रोंमें ज्योतिषफलादेशके बीज

फलित ज्योतिषका प्रथम उद्घोष तो वेदोंने किया है—

उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः। शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्॥ नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः। शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा। शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः॥ (अथर्ववेद १९। ९)

यान्येव देव नक्षत्राणि तेषु कुर्वीत यत्कारी

---

* गणितात्सिद्ध्यते कालः काले तिष्ठन्ति देवताः। वरमेकाहुतिः काले नाकाले कोटिसम्मिताः॥
अतीतानागते काले दानहोमजपादिकम्। ऊषरे वापितं बीजं तद्वद् भवति निष्फलम्॥

स्यात्। पुण्याह एव कुरुते॥ (तै०ब्रा० १।१-२)

पारस्करसूत्र (१।१६ के भाष्यमें लल्लाचार्यके वचन)-में मूलनक्षत्रका फल इस प्रकार बताया गया है—

तदाद्यपादके पिता विपद्यते जनन्यथ। तृतीयके धनक्षयश्चतुर्थके शुभावहम्॥

वाल्मीकीय रामायणमें महाराज दशरथ रामका राज्याभिषेक करनेका हेतु बताते हुए कहते हैं कि हे राम! ज्योतिषियोंका कहना है कि मेरे जन्म-नक्षत्रको सूर्य, मङ्गल और राहु नामक भयंकर ग्रहोंने आक्रान्त कर लिया है, अतएव बड़ी विपत्ति आनेवाली है—

अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणग्रहैः।
आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याङ्गारकराहुभिः॥

(वाल्मीकिरामायण २।४।१८)

फलित ज्योतिषके मान्यतानुसार यदि दो या तीन पापग्रह नक्षत्रको पीड़ित करें तो जातक निश्चित ही महान् संकटमें पड़ जाता है।

मनुका कथन है कि आकार, इंगित, गमन, चेष्टा, भाषण तथा नेत्र एवं मुखके विकारोंसे (मनुष्योंका) भीतरी भाव मालूम होता है—

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः॥

(मनुस्मृति ८।२६)

व्यवहारमें भी मनुष्यको देखकर ही मालूम पड़ जाता है—यह क्रोधी है, यह कामी है, यह लोभी है, यह शान्त है, यह धूर्त है, यह उदार है इत्यादि। भीतरके जो भाव होते हैं, वे चेहरेपर प्रकट हो जाते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीताके चौदहवें गुणत्रयविभागयोग नामक अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने सत्त्व, रज, तम आदि तीनों गुणोंका स्वरूप और उनके प्रभाव तथा तीनोंके फलोंका विवेचन करते हुए यह भी बताया है कि सत्त्वगुणसे ज्ञान और सुख, रजोगुणसे लोभ, प्रवृत्ति, कर्मोंका आरम्भ, अशान्ति और स्पृहा होती है, जबकि तमोगुणकी वृद्धिमें अप्रकाश, अप्रवृत्ति, मोह, प्रमाद, आलस्य एवं निद्राकी वृत्ति हो जाती है। इन वृत्तियोंका फल बताते हुए कहा है कि सत्त्वगुणकी स्थितिमें मृत्यु होनेपर ऊर्ध्व (स्वर्गादि) लोकोंकी प्राप्ति, राजसकी स्थितिमें मनुष्यलोकमें जन्म तथा तमोगुणकी वृत्तिमें अधोगति अर्थात् पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि योनियोंमें जाना होता है। गीताके इस उपदेशमें ज्योतिषशास्त्रके फलादेशका मूल छिपा हुआ है। ज्योतिषशास्त्रके आचार्योंने सूर्य-चन्द्रमा एवं बृहस्पतिको सत्त्वगुणी, बुध एवं शुक्रको रजोगुणी तथा मंगल और शनिको तमोगुणी कहा है—'**चन्द्रार्कजीवा ज्ञसितौ-कुजार्कि यथाक्रमं सत्त्वरजस्तमांसि**' किसी भी जातकके जन्मांगमें ग्रहोंका बलाबल देखकर यह निश्चित हो जाता है कि जातकके जीवनमें किन गुणोंकी प्रधानता होगी और मरणान्तर जीवनकी स्थिति क्या होगी?

भगवान् पतंजलिने भी अपने योगसूत्रमें '**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**'के साथ-साथ अनेक ऐसे सूत्रोंका उल्लेख किया है, जिससे व्यक्तिके अतीत एवं भविष्यके जीवनको जाना जा सकता है। यथा—

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्॥

(विभूतिपाद सूत्र १८)

अर्थात् संस्कारके साक्षात् करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान होता है तथा—

'प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्॥'

(विभूतिपाद सूत्र १९)

अर्थात् दूसरेके चित्तकी वृत्तिके साक्षात् करनेसे पर चित्तका ज्ञान होता है।

चरकसंहितामें महर्षि चरकने परलोक और पुनर्जन्मको आप्तागम प्रमाणोंसे सिद्ध किया है। आचार्यका कथन है कि वेदके प्रमाणसे पुनर्जन्मकी स्थापना होती है। माता और पितासे भिन्न रूपवाली सन्तानका उत्पन्न होना, एक ही माता-पितासे उत्पन्न होनेवाली सन्तानोंके वर्ण, स्वर, आकृति, मन, बुद्धि और भाग्यमें भिन्नता होना, उच्च और नीच कुलमें जन्म होना, दासता और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होना, आयुका सुखकर और दुःखकर होना, आयुर्मानमें विषमता होना, ऐसे फलकी प्राप्ति होना जिसका उत्पादक कर्म इस जन्ममें नहीं किया गया है, बिना सिखाये ही

नवजात शिशुमें रोने, स्तन पीने, हँसने और डरनेकी प्रवृत्ति होना, शरीरमें राज्यकारक और दारिद्र्यकारक सामुद्रिक-शास्त्रोक्त लक्षणोंकी उत्पत्ति होना, कर्मके समान होनेपर भी फलमें भिन्नता होना, किसी कर्ममें बुद्धिका विशेष रूपसे प्रवृत्त होना और किसी कर्ममें प्रवृत्त न होना इत्यादि बातें पूर्वजन्म एवं परलोकको प्रमाणित करती हैं।*

ज्योतिषशास्त्रकी प्रामाणिकता

ज्योतिषको वेदका नेत्र कहनेका अन्य कारण इसकी दिव्य दृष्टि भी है। यह शास्त्र केवल वेदोंका ही नेत्र नहीं है, अपितु यह लोकका भी नेत्र है। अपनी इसी दिव्य दृष्टिके बलपर ही ज्योतिषशास्त्रवेत्ताको भूत, भविष्यके साथ अतीन्द्रिय पदार्थोंका भी प्रत्यक्ष बोध हो जाता है। योगीके समान ही ज्योतिर्विद्‌को भी शास्त्रचिन्तनद्वारा परोक्ष विषय भी अपरोक्ष हो जाते हैं। जब भगवान् पतंजलि कहते हैं कि **'सूर्ये संयमात् भुवनज्ञानम्'** तथा **'चन्द्रे संयमात् ताराव्यूहज्ञानम्'** तब ज्योतिर्विद् भी तो शास्त्रके माध्यमसे इन्हीं सूर्यचन्द्रादि ग्रह-नक्षत्रोंका अहर्निश चिन्तन करता हुआ एक प्रकारसे संयम ही तो करता है। महर्षि चरकका कथन है कि **'प्रत्यक्षं हि अल्पमप्रत्यक्षम् अनल्पम्'** अर्थात् प्रत्यक्ष तो थोड़ा ही है जबकि अप्रत्यक्ष तो बहुत अधिक है। ज्ञानके विषय अपरिमित हैं, अतएव जो पदार्थ इन्द्रिय-ज्ञानसे परे हैं, उन पदार्थोंका बोध करानेवाला अतीन्द्रिय ज्ञानसम्पन्न, दिव्य दृष्टिवाला यही ज्योतिषशास्त्र है। **'न हि कस्तूरिकागन्धः शपथेन विभाव्यते।'** अर्थात् कस्तूरीमें गन्ध है—यह बतानेके लिये शपथ लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। ज्योतिषशास्त्रके आदेशोंका सद्यः फलित होना ही इसकी महत्ताको सर्वातिशायी बना देता है। जैसा कि कथन भी है—

सद्यः फलति गान्धारी मासमेकं पुराणकम्।
वेदाः फलन्ति कालेन ज्योतिर्वैद्यो निरन्तरम्॥

अन्य शास्त्रोंमें वर्णित फलोंकी प्राप्तिहेतु दूसरे जन्मोंकी आवश्यकता होती है। मृत्युके पश्चात् होनेवाले फलोंमें अविश्वास होना भी स्वाभाविक है, किंतु ज्योतिषके फलादेश इसी जीवनमें अपना फल देकर शास्त्रकी प्रामाणिकता सिद्ध कर देते हैं, जिससे मृत्युके पश्चात् परलोक एवं इहलोकमें सुख-दुःखादि कर्मफलोंकी प्राप्तिमें विश्वास सहज ही हो जाता है।

मानव-जीवनपर ग्रहोंका प्रभाव

ज्योतिषशास्त्रके वाक्य केवल विश्वास करानेके लिये ही नहीं होते, अपितु वस्तुका साक्षात्कार कराते हैं। ज्योतिषशास्त्र **दशमस्त्वमसि**की भाँति दसवें पुरुषपर विश्वास ही नहीं; अपितु साक्षात्कार भी करा देता है। प्रत्यक्ष तो वही है, जो वस्तुका साक्षात्कार करा दे और यह सामर्थ्य एकमात्र ज्योतिषशास्त्रमें ही है। कारण यह प्रत्यक्ष शास्त्र है। अन्य शास्त्रोंको प्रत्यक्ष नहीं दिखाया जा सकता, किंतु ज्योतिषमें वर्णित ग्रह, नक्षत्र आदिको प्रत्यक्ष खुले नेत्रोंसे आकाशमें देखा जा सकता है। अतः ज्योतिष प्रामाणिक शास्त्र है। सूर्यकी किरणों और चन्द्रमाकी किरणोंका अनुभव तो प्राणी प्रत्यक्ष करते ही हैं, इसी प्रकार अन्य भौमादि ग्रहोंका भी प्रभाव भले ही प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर न होता हो, किंतु होता अवश्य है। औषधियोंमें सार चन्द्रमाकी किरणोंके प्रभावसे ही है। ग्रहोंमें मुख्य सूर्य है। सूर्यका प्रभाव स्थावर-जंगम सभीपर पड़ता है। उसी प्रकार मनुष्योंपर भी पड़ता है। कमलपुष्प, सूरजमुखीपुष्प, सूर्यकान्तमणि, आतसी शीशा, सूर्यकी किरणोंसे प्रभावित होनेपर अपना प्रभाव दिखाते हैं। स्वाती नक्षत्रके सूर्यमें वर्षाका जल सीपमें मोती प्रकट कर देता है। सूर्यके कारण परिवर्तित ऋतुओंमें ही वृक्ष, पौधे, वनस्पतियाँ, औषधियाँ समयानुसार पुष्पित एवं फलित होती हैं। सूर्य प्रकृष्ट ज्ञान, बुद्धि, हृदय, नेत्र तथा अस्थिपर विशेष प्रभाव देता है। सूर्यकी किरणोंके प्रवेशमात्रसे ही बन्द भवनोंके जीवाणु, कीटाणु स्वतः विनष्ट हो जाते हैं। रात्रिकालमें शयनावस्थाके समय जीव निष्प्राण-से हो

* 'प्रत्यक्षमपि चोपलभ्यते—मातापित्रोर्विसदृशान्यपत्यानि, तुल्यसम्भवानां वर्णस्वराकृतिसत्त्वबुद्धिभाग्यविशेषाः, प्रवरावरकुलजन्म, दास्यैश्वर्यं, सुखासुखमायुः, आयुषो वैषम्यम्, इहाकृतस्यावाप्तिः, अशिक्षितानां च रुदितस्तनपानहासत्रासादीनां प्रवृत्तिः, लक्षणोत्पत्तिः, कर्मसादृश्ये फलविशेषः, मेधा क्वचित् क्वचित् कर्मण्यमेधा, जातिस्मरणम्, इहागमनमितश्च्युतानां च भूतानां, समदर्शने प्रियाप्रियत्वम्।' (चरकसंहिता सूत्रस्थान ११। ३०)

जाते हैं और सूर्योदयके साथ जागते हैं तथा सम्पूर्ण दिनपर्यन्त समस्त जीव-जन्तु अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। सूर्य ही **'सस्यमिव मर्त्यः पच्यते'** की भाँति जैसे पेड़-पौधोंको जीवनदान देता हुआ वर्धित करता है, उसी प्रकार मानव-जीवनको भी। सूर्यके प्रकाशमें ही नेत्र देख पाते हैं। क्रोधावस्थामें नेत्रोंमें लालिमा आ जाती है। सूर्यग्रहणको निर्निमेष देखनेसे नेत्रान्धता आ जाती है। इसी प्रकार मनुष्यमें जो चैतन्यता प्राकृतिक बुद्धि है, वह सूर्यके तेजसे है। इसीलिये गायत्रीमन्त्र-जपका प्रभाव अचिन्त्य कहा गया है। जबतक आत्मा है, तभीतक शरीर चैतन्य है अन्यथा शव है। सूर्यके तेजसे ही चन्द्रमा भी प्रकाशित होता है। सूर्य स्वयंप्रकाश है, जबकि चन्द्रमा प्रकाशहेतु सूर्यपर आश्रित है।

चन्द्रमा सूर्यकी रश्मियोंसे आह्लादकता प्रदान करता है, उसीसे जलमय भी बन जाता है। चन्द्रमाके कारण ही समुद्रमें ज्वार आता है। पूर्णिमा तथा अमावस्या तिथिपर उन्माद, पागलपन, बलात्कार, चोरी आदिकी घटनाओंमें वृद्धि प्रत्यक्ष देखी जाती है। चन्द्रमा ही प्रत्येक जीवोंका मन है, यह अन्तःकरण भी है। समस्त इन्द्रियोंका स्वामी भी यही है। सूर्यके साथ इसे राजाकी संज्ञा प्राप्त है। वराहमिहिरका कथन है—

आश्रित्य चन्द्रस्य बलाबलानि
ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि।
मनः समेतानि यथेन्द्रियाणि
कर्मार्हतां यान्ति न केवलानि॥

(योगयात्रा मिश्रकाध्याय श्लोक २४)

अर्थात् जैसे मनके संयोगके बिना इन्द्रियाँ अपने कार्योंमें प्रवृत्त नहीं होतीं, उसी प्रकार भौमादि समस्त ग्रह भी चन्द्रमाकी अपेक्षा रखते हैं। चन्द्रमाका ही समागम ग्रहोंको चेष्टाबल देता है। विवाह-मेलापकमें चन्द्रमाकी ही प्रधानता रहती है। लग्न तो शरीर है, जबकि चन्द्रमा मन। अतएव मेलापक स्त्री-पुरुषके मनका होता है। विवाह-मुहूर्तमें स्त्रियोंको गुरुबलकी तथा पुरुषोंको सूर्यबलकी प्रधानता दी गयी, लेकिन वर एवं कन्या दोनोंके चन्द्रबलकी स्थितिमें ही विवाह-मुहूर्त सभी आचार्योंको मान्य है—**'द्वयोर्चन्द्रबलं श्रेष्ठम्'**। अतएव शरीरस्थ मनके साथ चन्द्रमाका सम्बन्ध तथा ग्रहोंसे चन्द्रबलका सम्बन्ध जातकोंपर चन्द्रमाके प्रभावको प्रकट करता है। चन्द्रमा एवं मंगल—ये दोनों नारियोंके प्रतिमास रजोदर्शनके कारण होते हैं। चन्द्रमा जल (रक्त) है तथा मंगल अग्नि (पित्त)। इस पित्तरूपी मंगलसे जब रक्तरूपी चन्द्रमा क्षुभित होता है, तब स्त्रियोंको रजोदर्शन होता है, यदि वह गर्भिणी, रोगिणी, बालिका या वृद्धा न हो।

कुजेन्दुहेतुः प्रतिमासमार्तवं
गते तु पीडर्क्षमनुष्णदीधितौ।

(बृहज्जातक ४।१)

वराहमिहिर कहते हैं कि किस ग्रहकी दशा या प्रभाव जातकपर है, उसका चेहरा देखते ही ज्ञात हो जाता है—

छायां महाभूतकृतां च सर्वेऽ-
भिव्यञ्जयन्ति स्वदशामवाप्य।
क्ष्वम्ब्वग्निवाय्वम्बरजान्गुणांश्च
नासास्यदृक्त्वक्छ्रवणानुमेयान्॥

(बृहज्जातक ८।२१)

अर्थात् जिस मनुष्यकी जन्म-दशा आदिका ज्ञान नहीं है, उसकी कान्ति देखकर दशा अथवा ग्रहके प्रभावको जाना जा सकता है। ग्रह अपने-अपने महाभूत (पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश)-को अपनी दशा-गोचरादिके समय प्राणियोंके शरीरमें प्रकट करते हैं।

इसी प्रकार मंगल ग्रह सेनापति है, सत्त्व है तथा अग्नितत्त्वप्रधान है। इसका व्यापक प्रभाव जातक-जातिकाओंके दाम्पत्य-जीवनमें देखा जाता है। इसीसे मंगली दोष होता है। बुध पृथ्वीतत्त्वप्रधान है, यह अपने शुभाशुभ प्रभावद्वारा वाणी, स्नायु, बुद्धि तथा विवेकको प्रभावित करता है। गुरु आकाशतत्त्ववाला ग्रह है, इसके प्रभावसे जातक ज्ञानी, धर्मात्मा, तपस्वी, संन्यासी, शिक्षक, उपदेशक तथा सर्वगुणसम्पन्न होते हैं—ऐसा लोकमें प्रत्यक्ष देखा जाता है। शुक्र जलतत्त्वका ग्रह है, कामका प्रतीक भी है, इससे प्रभावित जातक भोगी,

सुखी, धन-संग्रही, विज्ञानवेत्ता, समाज-सुधारक, साहित्य-संगीत-कलाविद् एवं कवि देखे जाते हैं। शनि वायुतत्त्वप्रधान है, इसके प्रभाववाले जातक सामान्य मजदूरसे लेकर न्यायालयीय कार्योंमें कार्य करनेवाले वकील, दलाल, शिल्पज्ञ, इन्जीनियर, न्यायाधीशतक होते हैं।

ग्रहोंका स्वरूप, राशियोंका स्वरूप, ग्रहोंका वर्ण, धातु, तत्त्व, स्थान, दिशा, अवस्था, दृष्टि, चर, स्थिर, द्विस्वभाव, स्त्री, पुरुष, नपुंसक संज्ञा, ह्रस्वादि संज्ञा, कफ-वात-पित्तादि धातुओंका प्रभाव तदनुसार ही जातकोंपर दृष्टिगोचर होता है। किस नक्षत्रमें कितने तारे हैं, मूलादि गण्डान्त क्यों कहे गये? पंचक क्या है? भद्रा कैसे प्रभावी होती है? इनके फल क्या हैं? विस्तारपूर्वक फलित ज्योतिषमें वर्णन है। फलित ज्योतिषमें ग्रहानुसार ही फल कहे जाते हैं। जिस कालमें जिस किसी जातकका जन्म होता है, उस समय तत्तद् स्थानस्थित ग्रह अपनी स्थिति, गति, प्रकृतिके अनुसार अपना प्रभाव जातकपर जीवनपर्यन्त डालते हैं।

फल बतानेहेतु अनेक प्रकारकी विधियाँ दीर्घकालतक आचार्योंद्वारा विकसित की गयीं, जिनमें मुख्यत: जातक, ताजिक, प्रश्न, केरली, नाडी, शकुन, स्वप्न, रमल, स्वर, अंक, लक्षण, सामुद्रिक तथा संहिताज्योतिष प्रधान हैं। इन सभी विधियोंमें जातककी प्रधानता है, जो वैदिककालसे अद्यावधि निर्बाधरूपसे प्रचलित है। फलादेशहेतु आचार्योंद्वारा तनु, धन, सहज, सुहृद्, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय एवं व्यय आदि द्वादश भावोंको निर्धारित किया गया है, जिनमें प्राय: जगत्‌के समस्त व्यवहार गृहीत हो जाते हैं। जन्म-समयमें जैसी ग्रहस्थिति रहती है, उसीके अनुसार मृत्युपर्यन्त प्राणियोंका शुभाशुभ फल निर्णीत होता है, अनेक मत-मतान्तर **'नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्'** तथा **'नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्'**के कारण फलकथनमें वैचित्र्य स्वाभाविक है। एक ही समय-स्थानमें जन्म लेनेपर भी फलोंमें अन्तर आनेका कारण बताते हुए महर्षि पाराशर कहते हैं कि अनेक जन्मोंमें किये गये संचित कर्मोंका जब मिश्रण हो जाता है, तब वह फलादेशमें भी ग्रहोंकी गतियोंका संकरण-भेद कर देता है।*

तथापि ज्योतिषशास्त्रके फलादेश प्राय: सत्य घटित होते हैं। लिपिदोषोंसे विकृत होनेपर भी हजारों वर्षोंसे भृगुसंहिताका वर्तमानमें भी उसी प्रकारसे फल घटित होना इस बातका प्रमाण है। इस शास्त्रमें मुनि-मतोंके अनेकत्वका समन्वय करके तदनुसार फलादेश करनेवाले ज्योतिर्विद् कम ही रह गये हैं। अत: यदि फल सत्य घटित नहीं होता तो शास्त्रका दोष न होकर शास्त्रमर्मको न जाननेवाले फलितज्ञोंका है। तथापि सूक्ष्म अनुमानको ही निर्णय मानकर संसार चल रहा है। अतएव ज्योतिर्विदोंके मतसे जो फल कहे जाते हैं, यदि सर्वदा तद्रूप न भी हों तो भी परिभाषान्तररूपमें घटित होते हैं। जिन फलोंमें अधिक मत (प्रमाण) मिलते हैं, वे अवश्य ही घटित होते हैं। अच्छे ज्योतिषी कुण्डली देखकर आयु, विद्या, यश, बल आदिको आसानीसे बता देते हैं। होराशास्त्रके स्वाध्यायमात्रसे ही फलादेश सर्वथा शुद्ध नहीं रह सकता, इसके लिये ग्रह-नक्षत्रोंके बलाबल-विचारके साथ दैवीसाधनाकी भी आवश्यकता रहती है और दैवीसाधना भी तबतक फलीभूत नहीं होती, जबतक गुरु (आचार्य)-चरणोंमें बैठकर शास्त्रकी ग्रन्थियोंको सुलझा न लिया जाय। ज्योतिष केवल धनार्जनके लिये ही नहीं, अपितु इसका अध्ययन वेदाङ्गकी रक्षाके लिये भी करना चाहिये। ज्योतिषशास्त्र कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणिकी भाँति है, जिसके सम्यक् ज्ञान एवं प्रयोगसे पृथ्वीलोकमें यश, अर्थ, धर्म तथा कामकी प्राप्तिके साथ परम पुरुषार्थ—मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है। अतएव महात्मा लगधका यह कथन कि यह शास्त्र सभी शास्त्रोंका मूर्धन्य है, सर्वथा सत्य है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥

(आर्चज्योतिष ३५)

* संकरात्तु फलानां च ग्रहाणां गतिसंकरात्।
नान्येयमीदृशस्येति परिच्छेत्तुं मलं नरा:। कलौ युगे ततोऽल्पैव बुद्धि: पापोत्तरा नरा:॥

ज्योतिष—मानवका परम हितैषी पथ-प्रदर्शक

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०, डी०एस-सी०)

भारतीय आर्ष मनीषाने शास्त्रोंको छ:की संख्यामें परिगणितकर सन्तोष नहीं किया, अपितु उनका मानवके साथ अभिन्न तादात्म्य स्थापित करनेके लिये उन्हें पुरुषरूपमें इस दृष्टिसे प्रस्तुत किया, जिससे भगवान् बादरायणकी वाणीसे नि:सृत—**'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्'** की अन्वर्थकता उजागर हो और वह सहजतासे मानवके साथ तादात्म्य स्थापितकर अपनी महत्ता अथवा विशेषता उसे हृदयंगम करा सके। शास्त्रोंमें कहा गया है—**'अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मन:'**। कुछ ऐसी ही स्थिति शास्त्र-पुरुषकी रही। वह मानवके हित-साधनके लिये सदैव उद्विग्न रहा।

आर्ष मेधाने शास्त्रको मानवीय रूपमें अभिव्यक्तकर ही विराम नहीं किया, अपितु विभिन्न शास्त्रोंको विभिन्न महत्त्वपूर्ण मानवीय अंगोंके रूपमें प्रस्तुतकर उसकी महत्ता उजागर करनेका स्तुत्य प्रयास किया। इसी प्रयासके फलस्वरूप ज्योतिषकी अभिव्यक्ति नेत्ररूपमें हुई।

'नि: प्रापणे' धातुसे निष्पन्न नेत्रका अर्थ है—वह इन्द्रिय, जो सामने विद्यमान वस्तु या दृश्यको आत्मसात्कर मन-मस्तिष्कको उसके स्वरूप, रंग, गुण आदिसे यथावत् परिचित कराये।

मानव ही नहीं, सभी शरीरधारी प्राणियोंके पास दो-दो स्थूल नेत्रगोलक हैं। ज्योतिष नेत्रवान् नहीं, स्वयं नेत्ररूप है। नेत्रवान् प्राणियोंके नेत्र स्थूल नेत्र हैं। ये गोलक उत्पादक (Generator)-की शक्तिसे ही परिचालित होते हैं अर्थात् ईश्वरीय नेत्ररूपी उत्पादकसे ही इन्हें देखनेकी शक्ति मिलती है, बिना उसकी सहायताके ये न देख सकते हैं, न रंगोंका अन्तर जान सकते हैं, न स्वयंका मार्ग जान सकते हैं, न किसीको मार्ग दिखा सकते हैं। दूसरे शब्दोंमें नेत्र रहते हुए भी नेत्रधारी प्राणी दिनमें सूर्यके प्रकाशकी सहायताके बिना नहीं देख सकते, रात्रिमें चन्द्रमाका प्रकाश देखनेमें उनकी सहायता करता है तथा उक्त दोनोंकी अविद्यमानतामें अग्नि, दीपक, मशाल, टॉर्च, विद्युत्-बल्ब आदि आग्नेय उपकरण उसकी सहायता करते हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि तीनों ही ईश्वरीय नेत्र हैं, मूल उत्पादक हैं। इसीलिये ईशस्तुतिमें कहा गया है—

वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनम्।

दूसरी ओर आत्मज्योतिसे ज्योतित दिव्य नेत्ररूप है—ज्योतिष। वह स्वयं ही इतना समर्थ है कि तीनों कालोंमें घटित होनेवाली घटनाओंको हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष देखकर मानवको अतीतसे शिक्षा लेने, वर्तमानको सँवारने तथा भविष्यमें सावधानी बरतनेका सन्देश देता है। दूसरे शब्दोंमें ज्योतिषरूपी नेत्र स्थूल नेत्र नहीं, अपितु अपनी आभासे स्वयं प्रकाशित दिव्य नेत्र हैं। इसीलिये स्थूल नेत्रगोलकोंसे जो दिखायी नहीं देता, वही ज्योतिषरूपी नेत्रके लिये प्रत्यक्ष दृश्य होता है।

ज्योतिष मानवका परम हितैषी पथप्रदर्शक है। वह एक सच्चे मित्रकी भाँति आपद्ग्रस्त मानवके दैहिक, दैविक, भौतिक विपद्-कारणको जानकर उसे उससे उबरनेका उपाय बताता है।

उदाहरणके लिये यात्राको लीजिये। मानवको निज जीवनकालमें विभिन्न कारणोंसे विभिन्न यात्राएँ करनी पड़ती हैं। तीर्थयात्रा, विदेशयात्रा, आजीविका-प्राप्तिहेतु की जानेवाली यात्रा, साक्षात्कार आदिमें भाग लेनेके लिये की जानेवाली यात्रा, व्यापारके लिये की जानेवाली यात्रा आदि-आदि। यात्रा करनेवाला चाहता है कि उसकी यात्रा सुखद और सफल हो, परंतु कई बार ऐसा होता नहीं। कभी धनहानि, कभी प्राणहानि, कभी रोगप्रकोप, कभी अनपेक्षित घटनाओंका सामना आदि करना पड़ जाता है। ऐसे संकटमें पड़कर मानव किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। तब ज्योतिषकी शरणमें जानेपर वह उसे बताता है कि यदि मनुष्य दिक्शूल, कालराहु, योगिनी, चन्द्रमाकी मेरे द्वारा निर्दिष्ट स्थितिको ध्यानमें रख यात्रा करे तो न

केवल इन आपदाओंसे बच सकता है, अपितु यात्राद्वारा उद्देश्यमें सफलता भी मिल जाती है।

दिक्शूल, जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है, तत्तद् दिशाकी यात्रा करनेपर शूलकी चुभन-जैसी कष्ट-प्राप्तिकी सम्भावना। दिक्शूल कब किस दिशामें रहता है, इसका निदर्शन इस प्रकार किया गया है—सोम-शनिको पूर्वमें, रवि-शुक्रको पश्चिममें, गुरुवारको दक्षिणमें, मंगलवार-बुधवारको उत्तर दिशामें। जिन दिनोंमें जिस दिशामें दिक्शूल हो, उस दिशाकी ओर यात्रा नहीं करनी चाहिये।

यदि यात्राके उद्देश्यमें पूर्ण सफलता पानेकी उत्कट कामना हो तो योगिनीको पीठके पीछे लेकर यात्रा करनी चाहिये; क्योंकि—

योगिनी सुखदा वामे पृष्ठे वाञ्छितदायिनी।
दक्षिणे धनहन्त्री च सम्मुखे मरणप्रदा॥

अर्थात् यात्राकालमें योगिनी यात्रीके बायीं ओर रहनेपर यात्राको सुखद बना देती है, पीठपीछे रहनेपर अभिलषित अभिलाषा पूर्ण कर देती है, परंतु दायीं ओर रहनेपर धनकी हानि करती है और सामने रहनेपर मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट देती है।

योगिनी प्रतिपदा और नवमी तिथिको पूर्वमें, षष्ठी और चतुर्दशीको पश्चिममें, द्वितीया और दशमीको उत्तरमें एवं पंचमी और त्रयोदशीको दक्षिणमें रहती है।

इसीसे मिलती-जुलती स्थिति कालराहुकी है। वह शनिवारको पूर्वमें, मंगलवारको पश्चिममें, गुरुवारको दक्षिणमें तथा रविवारको उत्तरमें रहता है। कहा है—

अर्कोत्तरे वायुदिशां च सोमे
भौमे प्रतीच्यां बुधनैर्ऋते च।
याम्ये गुरौ वह्निदिशां च शुक्रे
मन्दे च पूर्वे प्रवदन्ति कालः॥

यदि दिक्शूल, योगिनी, कालराहु आदिकी अनुकूलता सुलभ न हो और यात्रा करना अनिवार्य हो तो और कुछ न सही, एकमेव चन्द्रको ही सामने रखकर यात्रा करनेका प्रयास करना चाहिये; क्योंकि कहा है—'**हरति सकलदोषं चन्द्रमा सम्मुखस्थः**।'

चन्द्रमा कब सामने रहेगा—यह यात्राकी दिशा तथा चन्द्रकी विद्यमानताकी दिशाकी स्थितिसे जाना जा सकता है। मेष, सिंह तथा धनु राशिका चन्द्रमा पूर्व दिशामें रहता है। वृषभ, कन्या तथा मकर राशिका चन्द्र दक्षिणमें रहता है। मिथुन, तुला और कुम्भ राशिका चन्द्र पश्चिम दिशामें रहता है तथा कर्क, वृश्चिक और मीन राशिका चन्द्र उत्तर दिशामें रहता है—

मेषे च सिंहे धनु पूर्वभागे
वृषे च कन्या मकरे च याम्ये।
युग्मे तुला कुम्भसु पश्चिमायां
कर्कालिमीने दिशि चोत्तरस्याम्॥

यदि चन्द्रमाको सामने रखकर यात्रा की जायगी तो यात्राके उद्देश्यकी पूर्तिकी सम्भावना पर्याप्त सीमातक बढ़ जाती है।

अर्थलाभार्थ की जानेवाली यात्रा चन्द्रको सामने लेकर करनी चाहिये तथा सुख और सम्पत्ति-प्राप्तिकी कामनासे की जानेवाली यात्रामें चन्द्रको अपने दायें भागमें रखना चाहिये। चन्द्रको पीठ पीछे अथवा अपने बायीं ओर लेकर यात्रा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि पृष्ठभागस्थित चन्द्र मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट देता है एवं वामभागस्थ चन्द्र धनहानि करता है—

सम्मुखे अर्थलाभाय दक्षिणे सुखसम्पदः।
पृष्ठतो मरणं चैव वामे चन्द्रे धनक्षयः॥

केवल यही नहीं, ज्योतिष इससे भी एक पग आगे बढ़कर मानवजीवनका पूरा रेखाचित्र प्रस्तुत करते हुए बताता है—जब जीव माँके गर्भमें आता है, तभी विधाताद्वारा निम्न पाँच बातें उसके भाग्यमें लिख दी जाती हैं—

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥

अर्थात् उसकी आयु अल्प, मध्य, दीर्घ कैसी या कितनी होगी? यह जीव अच्छे या बुरे कैसे कर्म करेगा? धन किस प्रकार, कितने परिमाणमें प्राप्त करेगा? विद्या कौन-सी और कितनी पढ़ेगा तथा अन्तमें प्राणत्याग किस प्रकार करेगा?

यहीं ज्योतिष कहता है—सबसे पहले आयुपर ही ध्यान देना चाहिये। आयुके बिना सभी पदार्थ बेकार हैं। वाल्मीकिरामायणके सुन्दरकाण्डमें आता है—**'जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येत्।'**

पर आयुकी वृद्धि हो कैसे—इसका समाधानात्मक उत्तर मनुस्मृति इस प्रकार देती है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

अर्थात् जो व्यक्ति सभीको प्रणाम करता है, नित्य वृद्धोंकी सेवामें तत्पर रहता है, उसकी चार चीजें बढ़ती हैं—आयु, विद्या, यश और बल। अभिवादन सभी प्राणियोंका क्यों? इसका उत्तर श्रीमद्भागवत देता है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४१)

अर्थात् यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी, समुद्र—सब-के-सब भगवान्‌के शरीर हैं। सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् प्रकट हैं—ऐसा समझकर वह जो कोई भी उसके सामने आ जाता है—चाहे वह प्राणी हो या अप्राणी—उसे अनन्यभावसे—भगवद्भावसे प्रणाम करना चाहिये।

ज्योतिष आयु घटानेवाले कारणोंसे बचनेका परामर्श इस प्रकार देता है—

षष्ठीषु तैलं पलमष्टमीषु
क्षौरक्रिया नैव चतुर्दशीषु।
स्त्रीसेवनं नष्टकलासु पुंसाम्
आयुः क्षयार्थं मुनयो वदन्ति॥

अर्थात् षष्ठीके दिन तेलका भोजनमें प्रयोग करना अथवा लगाना, अष्टमीको माँस खाना, चतुर्दशीको क्षौर बनवाना तथा अमावास्याको स्त्रीप्रसंग करना आयुको घटा देता है।

समष्टिरूपमें कहा जा सकता है कि विश्वासपूर्वक ज्योतिषके निर्देशोंको आत्मसात्‌कर यदि व्यक्ति जीवन-यापन करे तो जीवनके वास्तविक सुखका आनन्द ले सकता है।

ज्योतिर्विज्ञानकी उपादेयता

(डॉ० श्रीविद्याभास्करजी वाजपेयी)

भारतीय सनातन वाङ्मयके प्राचीनतम ग्रन्थ हैं—ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद। इन वैदिक संहिताओंके साथ ब्राह्मणग्रन्थ भी हैं। इनमें यज्ञोंका सविस्तार वर्णन है। ब्राह्मणोंके अन्तिम भाग आरण्यकोंमें स्वतन्त्र रूपसे दार्शनिक प्रश्नोंपर विचार किया गया है। उपनिषदोंमें ज्ञानकाण्डका निरूपण है। वेदांगोंके रूपमें सूत्र-साहित्यका विस्तार हुआ, जिसके चार विभाग हैं—(१) श्रौतसूत्रमें यज्ञोंका विधान तथा वर्गीकरण किया गया है। (२) गृह्यसूत्रमें गृहस्थसे सम्बन्ध रखनेवाले संस्कारों तथा कर्मकाण्डका वर्णन है। (३) धर्मसूत्रमें सामाजिक, राजनैतिक एवं वैधानिक व्यवस्था दी गयी है। भारतीय इतिहासमें कानूनी साहित्यका श्रीगणेश यहींसे होता है। धर्मसूत्रका विस्तार स्मृतियोंके रूपमें हुआ। (४) शुल्बसूत्रमें रेखिकीय गणित वर्णित है। वेदांग छः हैं—शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष। ज्योतिष अर्थात् नक्षत्रों और ग्रहोंकी गतिका शास्त्र।

ज्योतिषको वेदपुरुषका चक्षु माना गया है। इसके ज्ञानके बिना वैदिक कार्य अन्धकारपूर्ण हैं। वेदांग ज्योतिषके रचयिताका नाम 'लगध' था। प्राचीनकालमें ज्योतिर्विज्ञान विज्ञानसम्मत था। भारतीय संस्कृतिका अध्ययन करनेवाले विदेशी विद्वानोंने इस विद्यासे प्रभावित होकर अपनी-अपनी भाषाओंमें इसका अनुवाद किया है।

भारतवर्षका जिन-जिन देशोंसे व्यापारिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सम्बन्ध था; वहाँके लोग यहाँ आये और अपने

निरीक्षण तथा अनुभवोंको पुस्तकके रूपमें लिखकर ले गये। सबसे पुराने लेखक और यात्री यूनानी थे। ईसापूर्व सातवीं शतीसे दूसरी शतीतक बेबीलोनमें इस ज्योतिषविद्याका बहुत प्रचार हुआ। वहाँसे यहूदियों और मिस्रवासियोंने इसे अपनाया। मध्य एशियाकी प्राचीन 'एजटिक' एवं 'मय' संस्कृतियोंमें भी ज्योतिर्विद्या प्रचलित थी। पीछे ग्रीकवासियोंमें यह विशेष लोकप्रिय हुई। मुसलिम ज्योतिषाचार्योंमें 'इब्नबतूता' और 'अलबरूनी' का नाम उल्लेखनीय है। भारतकी यात्रापर आये इन विद्वानोंने अन्य भारतीय विद्याओंके साथ ज्योतिषविद्याका भी अध्ययन किया। अरब देशोंने इसके विस्तारकी योजना बनायी। अलबरूनी महमूद गजनवीके साथ भारत आया था। ज्योतिषशास्त्रसे प्रभावित होकर उसने भारतीय ज्योतिषमें पौलिश-सिद्धान्त एवं ब्रह्मगुप्तका विवेचन करते हुए अरबी भाषामें प्रामाणिक ग्रन्थकी रचना की। सन् १०३१-३२ ई०में उसने अरबी भाषामें 'इण्डिका' नामक ग्रन्थ लिखा। अलबरूनी संस्कृत तथा ज्योतिषशास्त्र दोनों ही विषयोंका मर्मज्ञ था। उसके मूल ग्रन्थ 'इण्डिका' को विश्वमें बड़ी ख्याति मिली। जर्मनीके विद्वान् 'एडवर्ड सी० सात्रो' इण्डिकामें वर्णित सूक्ष्म ज्योतिर्विज्ञानके सूत्रोंसे विशेष प्रभावित हुए। उन्होंने इण्डिकाका रूपान्तर जर्मन भाषामें कराया। भारतके ज्योतिर्विज्ञानसे प्रभावित होकर कई जर्मन विद्वान् भारत आये और प्राचीन वैदिक ग्रन्थोंका अध्ययन करते रहे, साथ ही अपने साथ अनेक दुर्लभ ग्रन्थ ले भी गये।

'अलबरूनी' के अतिरिक्त 'अलफजारी', 'याकूब-बिन-तारिक', 'सब अलहसन' नामक अरबी विद्वानोंकी गणना ज्योतिष-विशेषज्ञोंमें की जाती है। यूनानके विद्वान् यवनाचार्य भी दीर्घकालतक भारतमें रहे और ज्योतिर्विज्ञानका अध्ययन करते रहे। वे अरबी, संस्कृत और यूनानी भाषाके विशेषज्ञ थे। इनकी कारिकाएँ प्रसिद्ध हैं। इनके ग्रन्थोंमें 'बृहत्-यवन-जातक' और 'लघु यवन-जातक' प्रसिद्ध हैं। वराहमिहिर-जैसे प्रख्यात विद्वान्ने अपनी पुस्तक 'बृहज्जातक' और 'बृहत् संहिता' में यवनाचार्यका वर्णन बड़े ही सम्मान और विस्तारसे किया है। अनुमानतः ईसापूर्वसे ही यूनानी और अरबी विद्वानोंकी अभिरुचि भारतीय ज्योतिर्विज्ञानमें थी। इसी कारण समय-समयपर वे अध्ययनके लिये आते रहे। अकबरके नवरत्नोंमें अब्दुल रहीम खानखाना न केवल भारतीय संस्कृतिके पुजारी और कवि थे, बल्कि महान् ज्योतिर्विद् भी थे। उनकी रचनाएँ 'खेटकौतुकम्' और 'द्वाविंशद्योगावली' आज भी ज्योतिषशास्त्रके अध्येताओंका मार्गदर्शन करती हैं।

यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि विदेशी पर्यटक और विद्वान् छलसे, बलसे और धनका प्रलोभन दिखाकर हमारा ज्ञान-भण्डार उठा ले गये और हम आँखें मूँदे बैठे ही रहे। हमारी आँखें तब खुलीं, जब वही ज्ञानराशि विदेशी भाषाविदोंने अपने ढंगसे हमारे सामने प्रस्तुत की।

वैदिक साहित्यमें जिन विद्याओंका आकलन हुआ है, उनमें ज्योतिर्विज्ञान और चिकित्साशास्त्र मुख्य हैं। ग्रीक विद्वान् मार्सेली फिकिनों (सन् १४३३-१४९९ ई०)-ने ज्योतिर्विज्ञानपर एक पुस्तक लिखी—'लिबर्डीविटा', जिसमें अन्तर्ग्रहीय प्रभावोंका विस्तृत उल्लेख है। प्रसिद्ध विद्वान् 'पैरासेल्सस' ने ज्योतिर्विज्ञानका उपयोग चिकित्सा-जगत्के लिये लाभप्रद बताया है। उसका कहना था कि 'मैक्रोकास्मिक' प्रभावके अनुसार मनुष्य-शरीरपर 'माइक्रोकास्मिक' प्रभाव पड़ते रहते हैं तथा चिकित्साशास्त्रसे उसका घना सम्बन्ध है। उन्होंने शरीरके अवयव एवं ग्रह-नक्षत्रोंका सम्बन्ध सूचित करनेवाली तालिका बनायी। फलतः अन्तर्ग्रहीय शक्तियोंका शरीरकी क्रियाओं एवं औषधियोंपर होनेवाले प्रभावके अनेक प्रयोगोंका संकलन ज्योतिर्विज्ञानके रूपमें सामने आया।

पैरासेल्सस अपने समयके प्रख्यात चिकित्साशास्त्री थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दि फण्डामेण्डो सेपियेण्टी'में लिखा है कि 'प्रचलित चिकित्सा-प्रणालीने मनुष्यके स्थूल शरीरकी जानकारी उपलब्ध की है, किंतु मनुष्यशरीरमें निवास करनेवाली चेतन सत्ताकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, जो व्यष्टिमें होते हुए भी समष्टिके चैतन्य प्रवाहोंसे अन्योन्याश्रित रूपसे जुड़ी हुई है और भले-बुरे प्रभावोंसे प्रभावित होती है।' उनका मानना है कि 'असाध्य शारीरिक रोगोंको दूर करनेके लिये शरीर-निदान, मनोविश्लेषणके साथ-साथ अन्तर्ग्रहीय प्रभावोंकी जानकारी प्राप्त करना अतीव आवश्यक

है; क्योंकि पृथ्वी सौरमण्डलके अन्यान्य ग्रहोंसे जुड़ी हुई है तथा उनकी गति और स्थितिसे प्रभावित होती है। अस्तु, मानवीय स्वास्थ्य मात्र पृथ्वीके वातावरणसे ही सम्बन्धित नहीं, अपितु अन्तर्ग्रहीय परिस्थितियोंसे भी जुड़ा है।' इस सम्बन्धमें विस्तृत प्रकाश डालनेवाली पुस्तक 'एस्ट्रोनामिया' कितने ही गूढ़ रहस्योंका उद्घाटन करती है।

पुस्तकमें वर्णित तथ्योंके अनुसार शरीरके स्थूल, सूक्ष्म, जड़, चेतन आदि घटकोंका सम्बन्ध विभिन्न ग्रहोंसे सतत बना हुआ है। सात ग्रहोंका स्वरूप इस प्रकार है—

सूर्य—यह प्राणतत्त्वका अधिष्ठाता है। यह हमारे जीवनमें क्रियाशक्ति, प्राणशक्तिके रूपमें परिलक्षित होता है।

चन्द्रमा—यह मनका अधिष्ठाता है। यह चिन्तन-प्रक्रियाको प्रतिक्षण प्रभावित करता है।

मंगल—यह इच्छा, वासना, कामसे सम्बन्धित है।

बुध—बुध मनकी विविध क्षमताओंसे सूक्ष्मरूपसे जुड़ा है।

गुरु (बृहस्पति)—यह आध्यात्मिक शक्ति, संवेदना, भावना तथा श्रद्धाको प्रभावित करता है।

शुक्र—शुक्र अन्तर्मुखी प्रवृत्तियोंको जन्म देता है।

शनि—यह प्रकृतिका अधिष्ठाता तथा पृथ्वीतत्त्व-प्रधान ग्रह है। इन्द्रियगम्य सभी पदार्थ इसके अन्तर्गत आते हैं।

पैरासेल्ससका मत है कि 'ज्योतिर्विज्ञान मात्र आकाशीय पिंडोंकी गति, स्थितिकी जानकारीतक ही सीमित नहीं है, वरन् ग्रहोंके पृथ्वीके वातावरण एवं प्राणियोंपर पड़नेवाले प्रभावोंका अध्ययन, विश्लेषण और परस्पर आदान-प्रदानसे लाभ उठाना भी इसका उद्देश्य है।'

यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि 'यदि अन्यान्य ग्रह पृथ्वीके जीवनको प्रभावित करते हैं तो उनका प्रभाव सर्वत्र एक-सा क्यों नहीं होता?'

इसके उत्तरमें पैरासेल्ससका कहना है कि 'जिस प्रकार एक ही भूमिमें बोये गये आम, नीम, बबूल अपनी प्रकृतिके अनुसार गुण-धर्मोंका चयन कर लेते हैं और सोनेकी खदानकी ओर सोना, चाँदीकी ओर चाँदी तथा लोहेकी खदानकी ओर लौहकण आकर्षित होते हैं। जैसे आकाशमें संव्याप्त ईथरतत्त्वमें फैले विभिन्न प्रसारणमें रेडियो मात्र उस स्टेशनकी आवाज ग्रहण करता है, जहाँसे उसकी सूईका सम्बन्ध जुड़ा होता है, ठीक उसी प्रकार पृथ्वीके जीवधारी विश्वचेतनाके अथाह सागरमें रहते हुए भी अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुरूप अन्तर्ग्रहीय अनुदानोंको ग्रहण करते हैं तथा भले-बुरे प्रभावोंसे प्रभावित होते हैं। उदाहरणार्थ पूर्णिमाके दिन जब चन्द्रमा पूर्ण यौवनपर होता है तो वह मन:स्थितिपर प्रभाव डालता है; लेकिन वह प्रभाव एकसमान नहीं होता। कमजोर और असन्तुलित मन:स्थितिके व्यक्तियोंमें इसकी प्रतिक्रिया अधिक दिखायी देती है, अपेक्षाकृत सन्तुलित दृढ़ मन:स्थितिवालोंके।'

भारतीय ज्योतिष-विज्ञानकी ही भाँति पाश्चात्य ज्योतिर्विद् एवं चिकित्साशास्त्री 'डेविड कान्वे' ने अपनी पुस्तक 'मैजिक ऑफ हर्ब्स' में मनुष्यके शरीर और उसके विभिन्न भागोंपर ग्रहों, राशियोंका तारतम्य एवं प्रभाव इस प्रकार दर्शाया है—

(१) मेष राशिका अधिपति मंगलग्रह शरीरके मस्तिष्कीय क्रिया-कलापोंसे सम्बन्धित है।

(२) वृष राशिका अधिपति शुक्र है। इसका सम्बन्ध शरीरके ग्रीवा-कण्ठसे है।

(३) मिथुन राशिका अधिपति बुध है। इसका सम्बन्ध छाती और पेटसे है।

(४) कर्क राशिका अधिपति चन्द्रमा है। इसका सम्बन्ध शरीरके पृष्ठभागसे है।

(५) सिंह राशिका अधिपति सूर्य है। इसका सम्बन्ध शरीरके हृदय, मेरुदण्ड तथा कोहनीसे नीचेके भागसे है।

(६) कन्या राशिके अधिपति ग्रह बुधका सम्बन्ध पेडू तथा जननांगसे है। इसके अतिरिक्त हाथ, आँतें तथा विसर्जन-तन्त्रसे भी इसका सम्बन्ध है।

(७) तुलाके अधिपति ग्रह शुक्रका सम्बन्ध शरीरके पिछले भाग तथा मूत्राशय-तन्त्रसे है।

(८) वृश्चिकका अधिपति ग्रह मंगल है। इसका सम्बन्ध पेडू तथा जननांगसे है।

(९) धनु राशिका अधिपति गुरुग्रह है। इसका सम्बन्ध जाँघ, नितम्ब तथा यकृत्से है।

(१०) मकर राशिका अधिपति शनि है। इसका सम्बन्ध घुटनों तथा अस्थि-संस्थानसे है।

(११) कुम्भका अधिपति ग्रह शनि है। इसका सम्बन्ध चर्म तथा टखनोंसे है।

(१२) मीन राशिका अधिपति गुरु ग्रह है। इसका सम्बन्ध पैर तथा नाड़ी-संस्थानसे है।

'बोस इन्स्टीट्यूट-कोलकाता' के 'माइक्रोबॉयोलाजी' के दो वैज्ञानिकोंका निष्कर्ष है कि सौरमण्डलके विकिरणसे वायुमण्डलके जीवाणुओंका नियन्त्रण होता है। १६ फरवरी सन् १९८० ई०के पूर्ण सूर्यग्रहणके अवसरपर कलकत्ताके प्रख्यात 'बोटेनिकल गार्डन' के वायुमण्डलमें बैक्टीरिया, फंजाई एवं घातक जीवाणु प्रचुर मात्रामें पाये गये। सूर्यग्रहणसे पूर्व और उसके बाद विभिन्न जीवाणुओंका अध्ययन करनेपर पाया गया कि सूर्यग्रहणके समय न केवल इनकी संख्यामें वृद्धि हुई, अपितु इनकी मारक क्षमता भी पहलेसे अधिक थी। इस तथ्यकी पुष्टि रीवाँ विश्वविद्यालयके 'विक्रम फिजिक्स सेण्टर ऑफ इन्वायरमेण्टल बॉयोलाजी' के वैज्ञानिकोंके प्रयोगोंसे हुई। इन वैज्ञानिकोंने देखा कि सूर्य-ग्रहणके अवसरपर पानीको खुला छोड़ देनेपर उसमें विभिन्न प्रकारके विषाणु और जीवाणु वायुमण्डलसे आकर उसे विषाक्त कर देते हैं, जबकि अन्य अवसरोंपर ऐसा नहीं होता।

भारतीय ऋषियोंका निर्देश है कि सूर्य और चन्द्रग्रहणके समय किसी भी प्रकारका अन्न अथवा आहार ग्रहण न किया जाय। पानी आदिका पीना भी वर्जित है। उस दिन उपवास करनेकी भी परम्परा चली आ रही है। तत्त्वविद् ऋषि पृथ्वीपर पड़नेवाले अन्तर्ग्रहीय दुष्प्रभावोंसे परिचित थे। वे यह भी जानते थे कि ग्रहणके समय खान-पान करनेसे शरीरपर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। अन्तरिक्षसे आनेवाले दुष्प्रभावोंसे बचावके लिये व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तरपर उपासना, साधनाके सूक्ष्म उपचार किये जाते थे, जो आज भी विभिन्न स्थानोंपर व्यक्तिगत रूपसे प्रचलित हैं। सूर्य एवं चन्द्रग्रहणके अवसरपर नदियों आदिमें स्नानकी परम्परा है, जो पूर्णतया वैज्ञानिक है। वैज्ञानिकोंका निष्कर्ष है कि 'प्रवाहित जलमें प्राण-ऊर्जाकी प्रचुरता होती है।' ग्रहणके समय शरीरपर पड़नेवाले वायुमण्डलीय विषाणुओंका आक्रमण होता है। नदीमें स्नान करनेसे उसकी प्राण-ऊर्जा विषाणुओंको समाप्त कर देती है। इस अवसरपर उपवास, स्नान, उपासना आदि कृत्योंको कुछ लोग महत्त्वपूर्ण नहीं मानते थे, पर नवीन वैज्ञानिक तथ्य इस बातकी पुष्टि करते हैं कि ये सभी क्रियाएँ वैज्ञानिक हैं, जो शारीरिक सुरक्षा एवं उपचारके सशक्त एवं सक्षम माध्यम हैं। अस्तु, स्थूल अध्ययन, विश्लेषण एवं उपचारके लिये किये गये प्रयत्नोंके साथ-साथ अन्तर्ग्रहीय प्रभावोंकी जानकारी रखना तथा उपचारके उपाय ढूँढ़ना भी आवश्यक हो जाता है। कहना न होगा कि यह समस्त जानकारी अध्यात्मसम्मत ज्योतिर्विज्ञानके द्वारा ही सम्भव है।

मनुष्यकी प्रकृति एवं उसके स्वभावका गहरा सम्बन्ध ज्योतिर्विज्ञानसे है, जिसके अन्तर्गत पिण्ड और ब्रह्माण्ड, व्यष्टि और समष्टि, आत्मा और परमात्माके सम्बन्धोंका अध्ययन सम्मिलित रूपसे किया जाता है। ग्रह, नक्षत्र, तारे, राशियाँ, मन्दाकिनियाँ, नीहारिकाएँ एवं मनुष्य, प्राणी, वृक्ष, चट्टानें आदि विश्वब्रह्माण्डीय घटक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे एक-दूसरेको प्रभावित एवं आकर्षित करते हैं। इन ग्रह, नक्षत्रोंका मानव-जीवनपर सम्मिलित प्रभाव पड़ता है। वे कभी कष्ट दूर करते हैं तो कभी कष्ट देते भी हैं। ये तत्त्व मनुष्यकी सूक्ष्म रचना एवं मन:संस्थानपर प्रभाव डालते हैं। ज्योतिर्विज्ञानके अध्ययन एवं उपयोगसे दैवज्ञको मानव-जीवनके सभी क्षेत्रोंके बारेमें गहरी अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

आरम्भिक कालमें ज्योतिर्विज्ञान अध्यात्मविज्ञानकी ही एक शाखा थी। इसे एक पवित्र विद्या माना जाता था, जिसका स्वरूप स्पष्टत: धर्मविज्ञानपर आधारित था, परंतु मध्यकालमें ज्योतिर्विज्ञानपर अनेक आघात हुए। अल्पज्ञ तथा निहित स्वार्थी लोगोंके हाथों पहुँच जानेपर इस विद्याकी अवनति हुई। ज्योतिषकी मूलभूत तत्त्व-मीमांसा एवं उसके आध्यात्मिक तत्त्व-दर्शनसे उस समयके

ज्योतिषी बहुत अंशोंमें अनभिज्ञ थे। उन्होंने ज्योतिर्विद्याके केवल उन सिद्धान्तोंपर अमल किया, जिसका मेल नये यान्त्रिक भौतिक विज्ञानके तथ्योंसे बैठता था। उस समय केवल वही सिद्धान्त मान्य रहे, जो दृश्यजगत्की बाह्य भौतिक घटनाओं एवं तथ्योंपर आधारित थे। 'केपलर' ने ज्योतिष-विज्ञानको ग्रहोंकी चालपर आधारित माना, इस कारण भी ज्योतिर्विज्ञानकी दुर्गति हुई। यथार्थमें सृष्टिके रचना-क्रमको समझाने तथा मानवी आत्मसत्ताके विराट् स्वरूपसे परिचित कराने एवं उसका सदुपयोग करनेके उद्देश्यसे ही ज्योतिर्विज्ञानकी प्रतिष्ठा हुई थी, परंतु वर्तमान समयमें ज्योतिषका स्वरूप ही बदल गया। आजकलके प्रचलित फलित-ज्योतिष एवं अंकज्योतिषके आधारपर लोगोंको उनके भविष्यको बताकर ग्रह-नक्षत्रोंके बुरे प्रभाव समझाकर एवं डरा-धमकाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना तथाकथित ज्योतिषियोंका उद्देश्य बन गया है। इस माध्यमसे अर्थोपार्जन करना उनकी प्रवृत्ति बन गयी है। यह प्रचलन एक प्रकारसे ज्योतिर्विज्ञानका परिहास करना है। लाभके स्थानपर इससे लोगोंको अनेक परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं।

अतीत कालमें ज्योतिर्विद्याका न केवल सैद्धान्तिक ज्ञान-विज्ञान विश्वभरमें लोकप्रिय हुआ वरन् अनेक स्थानोंपर अन्तरिक्षीय गतिविधियोंके अध्ययन, पर्यवेक्षणके लिये विलक्षण वेधशालाओंका भी निर्माण हुआ। जिनकी निर्माण-प्रक्रिया और उनमें सन्निहित विशेषताएँ अभी भी वैज्ञानिकोंके लिये रहस्यमय बनी हुई हैं। मिस्रके विश्वप्रसिद्ध पिरामिडोंकी रचना सूर्य-चन्द्र एवं ग्रह-नक्षत्रोंकी वेधशालाके रूपमें की गयी है। इसकी पुष्टिमें अनेक तथ्य मिले हैं, जो यह बताते हैं कि इन पिरामिडोंकी रचना गणितीय आधारपर हुई है। ब्रिटिश टापूमें स्थित उत्तरी स्कॉटलैण्ड 'पोर्टुगल' से लेकर 'बरमूडा' तकके पच्चीस सौ किलोमीटर क्षेत्रफलवाले स्थानको किन्हीं अन्तर्ग्रहीय शक्तियोंका केन्द्र माना गया है। वहाँ नौ सौ विशालकाय पत्थर सूर्यके विभिन्न अंशोंपर खड़े हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि किसी समय यह स्थान अन्तरिक्षीय विज्ञानकी वेधशाला रहा होगा। इन पत्थरोंके माध्यमसे प्रति नौवर्षीय सौर-मण्डल-चक्रकी गतियोंका अध्ययन किया जा सकता है।

भारतमें अनेक स्थानोंपर ऐसी वेधशालाएँ स्थापित थीं, किंतु विदेशियोंने आक्रमणकर देशकी सभी महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक निधियोंको नष्ट किया, जिनमें वेधशालाएँ भी थीं। अनेक विद्वानोंने अपनी खोजद्वारा बताया है कि दिल्लीकी कुतुबमीनार किसी समय विश्वकी प्रख्यात वेधशाला थी, जिसे बादमें मुगलोंने तुड़वा दिया। उस वेधशालाका अब मेरुस्तम्भ 'कुतुबमीनार' ही बचा है। इस महान् स्तम्भका निर्माण अन्तरिक्षीय अध्ययनके लिये सम्राट् विक्रमादित्यके नवरत्नोंमें प्रख्यात ज्योतिर्विद् आचार्य वराहमिहिरद्वारा सम्राट्के सहयोगसे कराया गया था। दिल्लीके निकट बसा मिहिरावली (महरौली) ग्राम आचार्य वराहमिहिरके नामपर बसाया गया था।

अनुमानतः बाइस सौ वर्ष पूर्व वराहमिहिरने सत्ताईस नक्षत्रों, सात ग्रहों एवं ध्रुवतारेका बोध करनेके लिये तथा सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करनेके लिये बड़े सरोवरके मध्य जलमें इस मेरुस्तम्भका निर्माण कराया था। इस मेरुस्तम्भकी ऊँचाई मेरुपर्वतकी ऊँचाईके अनुपातमें ली गयी थी। सात ग्रहोंके अनुसार इसकी सात मंजिलें और नीचेसे ऊपरतक सत्ताईस नक्षत्रोंको देखनेके लिये सत्ताईस रोशनदान (गवाक्ष) बने थे। स्तम्भनिर्माणमें भीतर काले पत्थरोंका प्रयोग हुआ है ताकि भीतर बिलकुल अँधेरा रहे। इस स्तम्भका प्रमुख द्वार ध्रुव—उत्तरकी ओर है। इसकी नींव सोलह गज गहरी और ऊँचाई लगभग चौरासी गज थी। इस स्तम्भका झुकाव पाँच अंश दक्षिणकी ओर है। ऊपरी झुकावको अंग्रेजोंद्वारा तुड़वा दिये जानेसे इसकी ऊँचाई इस समय मात्र छिहत्तर गज रह गयी है। मेरुस्तम्भकी अन्य विशेषताओंमें एक यह भी है कि इक्कीस जूनको बारह बजे दोपहरमें इसकी छाया पृथ्वीपर नहीं पड़ती। छाया न पड़नेका कारण यही है कि इक्कीस जूनको सूर्य भूमध्यरेखासे २३.५° अक्षांश उत्तरकी ओर होता है।

देहली भूमध्यरेखासे २८.५ अक्षांश उत्तरकी ओर है। इन दोनों अक्षांशोंमें ५ अंशका अन्तर है। इसी

तथ्यको ध्यानमें रखते हुए ज्योतिष-गणनाके अनुसार स्तम्भ-निर्माणमें ऊपरी हिस्सेको ५ अंश दक्षिणकी ओर झुकाव दे दिया गया था। ब्रिटिश शासनकालके इंजीनियर इस स्तम्भके टेढ़े होनेका रहस्य न जान सके और यह समझकर कि नीचे खिसकनेसे स्तम्भ झुक गया है तथा गिरनेका खतरा है। अतः भारको हल्का करनेके लिये ऊपरी खण्डको तुड़वाकर गिरवा दिया।

वराहमिहिरके समयमें इस स्तम्भके चारों ओर सत्ताईस अन्य वेधशालाएँ थीं, जिन्हें सत्ताईस मन्दिरोंका रूप दिया गया था। इन मंदिरोंको मुसलिम आक्रमणकारी कुतुबुद्दीनने तुड़वाकर मस्जिदमें परिवर्तित करानेका प्रयास किया तथा उसपर अपना नाम खुदवा दिया। इन सब तोड़-फोड़के बावजूद भी स्तम्भके ध्वंसावशेष अभी भी किसी समयकी वेधशाला होनेका आभास कराते हैं। साथ ही अपनी विचित्रताओंसे वैज्ञानिकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं।

भारतमें प्रादुर्भूत होकर ज्योतिर्विज्ञान विश्वभरमें फैला था। इस महान् विद्याके विकासके प्रमाण भारतमें ही नहीं, विश्वके विभिन्न स्थानोंपर विभिन्न भाषाओंमें लिपिबद्ध हैं तथा अपनी विलक्षणताके लिये अनेक प्रकारकी वेधशालाओंके अवशेषके रूपमें विद्यमान हैं, जो किसी समयकी ज्योतिर्विज्ञानकी उपयोगिता एवं उपादेयताका बोध कराते हैं। इस महान् विज्ञानको पुनर्जीवित करनेकी दिशामें विज्ञ मनीषियोंद्वारा प्रयास किया जाना चाहिये।

'प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रम्'

(श्रीपंकजकुमारजी झा, नव्यव्याकरणाचार्य)

वेदांगोंमें ज्योतिषका महत्त्वपूर्ण स्थान है। महर्षि पाणिनिने ज्योतिषको वेदपुरुषका नेत्र कहा है— **'ज्योतिषामयनं चक्षुः'**, जैसे मनुष्य बिना चक्षु-इन्द्रियके किसी दर्शनीय वस्तुका दर्शन करनेमें असमर्थ होता है, ठीक वैसे ही वेदशास्त्र या वेद-शास्त्रविहित कर्मोंको जाननेके लिये ज्योतिषका अन्यतम महत्त्व सिद्ध है। भूतल, अन्तरिक्ष और भूगर्भके प्रत्येक पदार्थोंका त्रैकालिक यथार्थ ज्ञान जिस शास्त्रसे हो, वह ज्योतिषशास्त्र है। ज्योतिष ज्योतिका शास्त्र है। ज्योति आकाशीय पिण्डों, नक्षत्रों और ग्रहादिसे आती है, परंतु ज्योतिषमें सभी पिण्डोंका अध्ययन नहीं होता। यह अध्ययन केवल सौरमण्डलतक ही सीमित है। ज्योतिषका मूलभूत सिद्धान्त है कि आकाशीय पिण्डोंका प्रभाव सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर पड़ता है। इस प्रकार मानव-संसारपर भी इन नक्षत्रों एवं ग्रहों आदिका प्रभाव पड़ता है और इस प्रभावको देखने या जाननेके लिये हमें ज्योतिषरूपी नेत्रकी आवश्यकता होती है। **'धातवः अनेकार्थाः'** के सिद्धान्तानुसार **'दृशिर् प्रेक्षणे'** तथा दृश् धातु ज्ञानार्थक होनेसे ज्योतिषशास्त्रसे त्रैकालिक प्रभावको जाना जा सकता है, इसीलिये यह भगवान् वेदका प्रधान अंग—नेत्र है। अतः अन्य शास्त्रोंकी अपेक्षा इसकी विशेष महत्ता सर्वविदित है, कहा भी गया है—

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥

अर्थात् समस्त शास्त्र अप्रत्यक्ष हैं तथा विभिन्न शास्त्रोंमें एक-दूसरेके मतोंके खण्डन-मण्डनके कारण विवादमात्र ही है, परंतु एक ज्योतिषशास्त्र ही ऐसा है, जो प्रत्यक्ष है, जिसके साक्षी चन्द्र तथा सूर्य हैं। वेदमें भी कहा गया है कि **'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत'** चन्द्रमा वेदभगवान्के मनसे उत्पन्न हुए हैं तथा वेदके नेत्रोंसे सूर्यकी उत्पत्ति कही गयी है। वेदकी प्रवृत्ति यज्ञके सम्पादनके लिये है और यज्ञका विधान विशिष्ट समयोंकी अपेक्षा रखता है। यज्ञ-यागके लिये समय-शुद्धिकी बड़ी आवश्यकता रहती है। यज्ञके लिये उपयुक्त समय, वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, नक्षत्र, पक्ष, दिन, रात आदिका मान ज्योतिषके द्वारा ही सम्भव है। अतः उक्त नियमोंके निर्वाहके लिये ज्योतिषका ज्ञान नितान्त आवश्यक है। **'वेदाङ्गज्योतिष'** में भी ज्योतिषको

वेदका सर्वोत्तम अंग कहा गया है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्॥

(वे० ज्यो० ६)

अर्थात् वेदांगज्योतिषकी सम्मतिमें ज्योतिष समस्त वेदांगोंमें मूर्धस्थानीय है। जिस प्रकार मयूरकी शिखा उसके सिरपर रहती है, सर्पोंकी मणि उनके मस्तकपर निवास करती है, उसी प्रकार षडंगोंमें ज्योतिषको सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। यज्ञके कुछ विधान ऐसे हैं, जिनका सम्बन्ध सम्वत्सर से है और कुछका ऋतुसे। तैत्तिरीयब्राह्मणका कथन है कि **'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत। ग्रीष्मे राजन्य आदधीत। शरदि वैश्य आदधीत।'** अर्थात् ब्राह्मण वसन्तमें अग्निका आधान (स्थापन) करें, क्षत्रिय ग्रीष्ममें तथा वैश्य शरद्-ऋतुमें आधान करें। कुछ यज्ञ विशिष्ट मासों तथा विशिष्ट पक्षोंमें किये जाते हैं। **'एकाष्टकायां दीक्षेरन् फाल्गुनी पूर्णमासे दीक्षेरन्।'** (ता० ब्रा० ५।९।१७) प्रात:काल तथा सायंकालमें प्रत्येक अग्निहोत्रीको अग्निमें दुग्ध या घृतसे हवन करनेका विधान है—**'प्रातर्जुहोति सायं जुहोति।'** (तै० ब्रा० २।१।२) कहनेका तात्पर्य यह है कि नक्षत्र, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु तथा सम्वत्सर कालके समस्त खण्डोंके साथ यज्ञ-यागका विधान वेदोंमें पाया जाता है। इन नियमोंके यथार्थ निर्वाहके लिये ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान नितान्त आवश्यक तथा उपादेय है। इसीलिये **'वेदाङ्गज्योतिष'** का तो यह आग्रह है कि जो व्यक्ति ज्योतिषको भलीभाँति जानता है, वही यज्ञका यथार्थ ज्ञाता है—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥

(वे. ज्यो. ३)

यज्ञकी सफलता केवल उचित विधानमें ही नहीं है, प्रत्युत उचित नक्षत्र तथा उचित समयमें ही करनेसे होती है। इसीलिये असुरोंकी परिभाषा देते हुए श्रुतिका वचन है कि **'ते असुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्राः। यच्च किञ्चाकुर्वत तां कृत्यामेवाकुर्वत॥'**

अर्थात् वे असुर यज्ञसे हीन होते हैं, दक्षिणासे विरहित होते हैं, नक्षत्रसे रहित होते हैं, जो कुछ वे करते हैं, वे कृत्याको ही समर्पित करते हैं। इसके ठीक विपरीत देवताओंकी स्थिति है, वे उचित समयमें दक्षिणाके साथ यज्ञका सम्पादन करते हैं; क्योंकि शास्त्रोंमें कहा गया है कि **'मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः।'** अर्थात् दक्षिणासे रहित यज्ञ निष्फल होता है। वेदमें इसका वर्णन होनेसे यद्यपि यह शास्त्र वेदके समान अपौरुषेय है, फिर भी कालक्रमसे इसके प्रवर्तक अष्टादश मुनि कहे गये हैं, यथा—

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

सूर्य, ब्रह्मा, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पौलिश, च्यवन, यवन, भृगु तथा शौनक—ये अट्ठारह ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक हुए। ज्योतिषके प्रथम आचार्य ब्रह्मा हुए। उन्होंने अपने पुत्र वसिष्ठको ज्योतिषविद्या सिखायी, जो 'वासिष्ठ सिद्धान्त' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। एक दूसरी परम्पराके अनुसार सूर्यने मयको पढ़ाया, जिसे 'सूर्यसिद्धान्त' कहा जाता है। श्रीपराशरके अनुसार पितामह ब्रह्माने वेदोंसे लेकर ज्योतिषशास्त्रको विस्तारपूर्वक कहा है—**'वेदेभ्यश्च समुद्धृत्य ब्रह्मा प्रोवाच विस्तृतम्॥'** (बृ०पा०हो० शा०, उ० २१।३) ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण एवं इतिहासादि विविध प्राचीनतम ग्रन्थोंमें ज्योतिषका विशद वर्णन मिलता है। अतः इसकी प्राचीनता एवं उपादेयता सिद्ध होती है। उन्हीं ग्रन्थोंके आधारपर विश्वके अनेक आचार्योंने ज्योतिषसम्बन्धी अनेक ग्रन्थोंको बनाकर इसका प्रचार और प्रसार किया। जिस ज्योतिषज्ञानके बिना मानव जातिके नित्य-नैमित्तिक कार्य ही नहीं चल सकते, उसका लक्षण क्या है? क्या मानवका ज्योतिषज्ञान अपरिवर्तनशील है, जिसका कोई सनातन स्वरूपसे प्रमाण उपस्थित किया जा सकता हो? ये विषय

विचारणीय हैं। अतः ज्योतिषज्ञानके स्वरूपका वर्णन करते हुए महर्षि नारद कहते हैं—

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमनुत्तमम्॥

(ना०सं० १।४)

अर्थात् सिद्धान्त, संहिता और होरारूप स्कन्धत्रयात्मक ज्योतिषशास्त्र वेदभगवान्का निर्मल नेत्रस्वरूप अत्युत्तम विज्ञान है। भास्कराचार्यने 'सिद्धान्तशिरोमणि' के गणिताध्यायमें सिद्धान्तका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥

(सि० शि० ग० ६)

अर्थात् त्रुटिकालसे लेकर प्रलयके अन्तकालतक (त्रुटि, लेखक, विनाडी, नाडी, अहोरात्र, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, सत्यादि चारों युग, स्वायम्भुवादि चौदह मनु और ब्राह्म दिन-रात्रि, कल्प)-की गणना, मूर्तामूर्त द्विविध काल, मानकथन, नौ प्रकारके कालमान (ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, गुरु, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र)-के भेद, ग्रहचार—सूर्यादि ग्रहोंकी चाल, व्यक्ताव्यक्त द्विविध गणित, दिशा-देश और संस्थान, कक्षादि और वेधद्वारा ग्रह-नक्षत्रादिके स्थान, रेखा-चाप-गोल एवं सरल त्रिकोणसम्बन्धी गणित, प्रतिभा ज्ञान, खगोल-भूगोल-ग्रहगोलादि ज्ञान, पंचांगगणित, श्रृंगोन्नति, ग्रहयुति, ग्रहणोदयास्तादि-स्पष्टीकरण, क्रान्ति, शर आदिके ज्ञापक तथा क्षणादि अहोरात्रपर्यन्त कालके ज्ञापक तथा जल, बालुका एवं कील आदिद्वारा स्वयंचालित विविध यन्त्रोंके बनानेकी विधि और उपयोगका जिसमें वर्णन हो, उस गणितशास्त्रको ज्योतिषशास्त्रका 'सिद्धान्त-स्कन्ध' कहते हैं।

ज्योतिषशास्त्रके 'संहितास्कन्ध' का वर्णन आचार्य वराहमिहिरने महर्षियोंके मतानुसार अपनी 'बृहत्संहिता' में विस्तारके साथ किया है—इसमें ग्रह-संचार, विश्वका शुभाशुभ फलविवेक, अर्घकाण्ड, उदकार्गल, भूकम्पोल्कापात, केतूदय, परिवेष, नीहार, गन्धर्वादि नगरका विचार, वायसविरुत, शिवारुत, मृग-अश्व-गो-गज-कूर्म-कुक्कुटादि की चेष्टा, रत्नपरीक्षा एवं शाकुनादि विविध विषयोंके साथ मानवजातिके सभी व्यावहारिक विषयोंका वर्णन है। अतएव इस ज्योतिषशास्त्रके द्वितीय स्कन्धका दूसरा नाम 'व्यवहारशास्त्र' भी रखा गया है।

तीसरे होरास्कन्धका लक्षण बलभद्रमिश्रने अपने होराशास्त्रमें कश्यपके वचनके आधारपर लिखा है—इसमें मुहूर्त, वास्तुगोचर, जातक, ताजिक, प्रश्न, स्वर, शाकुन, रमल, सामुद्रिकादि राशिभेद, ग्रहयोनि, गर्भ-ज्ञान, लग्नज्ञान, आयुर्दाय, दशाभेद, अन्तर्दशादि, प्रवज्या-योग, राशिशील, दृष्टिग्रहभावफल, स्त्रीजातक, नष्ट-जातक, निर्याण तथा द्रेष्काणादि फलोंका विचार आदिका वर्णन किया गया है। होरा स्कन्धका दूसरा नाम है 'जातक' अथवा यों कहें कि होरास्कन्धका प्रधान अंग जातक है।

जन्मकालके आधारपर जो शुभाशुभ फल-निर्णय करनेवाला ग्रन्थ हो, उसको जातक कहते हैं। इस शास्त्रका प्रयोजन व्यावहारिक और पारमार्थिक जगत्में समान रूपसे है। अखिल ब्रह्माण्डके चराचर जीवोंमें पंचमहाभूत, तीन गुण और सप्त धातुओंकी जो न्यूनाधिकता देखी जाती है, उसका कारण ग्रह-नक्षत्रोंका प्रभाव ही है। आधानकालिक एवं जन्मकालिक ग्रहोंके प्रभावानुसार प्रत्येक पदार्थके स्वरूप, स्वभाव, गुण और कर्म आदि होते हैं। कहा भी गया है—

एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम्।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम्॥

(लघुजातक ४।८)

गुरुशशिरवयः सत्त्वं रजः सितज्ञौ तमोऽर्कसुतभौमौ।
एतेऽन्तरात्मनि स्वां प्रकृतिं जन्तोः प्रयच्छन्ति॥

(लघुजातक ६।१)

पूर्वजन्मार्जित कर्मानुरूप प्रत्येक जीवका प्रारब्ध

बनता है और उसके अनुसार जीवनपर्यन्त सुख-दुःख होते हैं। कब किस तरहका सुख या दुःख, शुभ या अशुभ प्राणीको होगा, उसका द्योतक ज्योतिषशास्त्र है। वर्तमान जीवनके अतिरिक्त भूत एवं भविष्यत् जीवनका भी ज्ञान इस शास्त्रसे होता है। इसी कारण ज्योतिषशास्त्रमें तीन जन्मका शुभाशुभ फल ग्रह-नक्षत्रके अनुसार बताया गया है। लघुजातक ग्रन्थमें जन्मकालिक ग्रह-स्थितिवश समस्त जीवनका शुभाशुभ फल वर्णित है, अतः यह शास्त्र प्रारब्धफल—कर्मप्रकाशक है—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

(लघुजातक १।३)

विविध वर्णात्मक ग्रहोंकी किरणोंमें अनेक तरहकी शक्तियाँ हैं। अतः उनके अनुसार प्रत्येक पदार्थकी स्थिति बदलती रहती है। जिस समय जिस वस्तुके ऊपर शुभ ग्रहकिरण पड़ती है, उस समय उस पदार्थकी अभिवृद्धि एवं दुष्ट किरणवश हानि होती है। सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, समर्घ, महर्घ, सुवायु, दुस्सहवायु, महामारी, उत्पात एवं रोगादि भी ग्रह-किरणाधीन होते हैं। उन शुभाशुभ किरणोंका ज्ञान ज्योतिषशास्त्रसे ही होता है। अतः ज्योतिषके साथ जागतिक सभी पदार्थोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है। शुभ मुहूर्तमें जो कार्यारम्भ होता है, वह निर्विघ्न सफल होता है, दुष्ट मुहूर्तमें नहीं। इसलिये व्यावहारिक सभी कार्योंमें इस शास्त्रका प्रयोजन है। श्रौत और स्मार्तकर्म तो इसके बिना हो ही नहीं सकते। जैसा कि महर्षि नारदने कहा है—

विनैतदखिलं श्रौतस्मार्तकर्म न सिद्ध्यति।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा रचितं पुरा॥

(ना०सं० १।७)

अर्थात् इस ज्योतिषशास्त्रके बिना हमारे श्रौत और स्मार्तकर्म सिद्ध नहीं हो सकते। अतएव जगत्के हित-साधनके लिये ब्रह्माजीने इसकी प्रथम रचना की। ज्योतिषको अतीन्द्रिय दिव्य ज्ञान कहा गया है, अतः इसके अध्ययनसे पारमार्थिक चरम फल जो अपवर्ग है, वह भी प्राप्त होता है—

ज्योतिषचक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्।
ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेद स याति परमां गतिम्॥
न च साम्वत्सरपाठी नरके परिपच्यते।
ब्रह्मलोके प्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति ज्योतिषके द्वारा जितनी सुलभ है, उतनी अन्य शास्त्रसे नहीं। अर्थ-प्राप्ति तो इसके श्रीगणेशसे ही देखनेमें आती है। स्वार्थरहित शुभ मुहूर्तमें यज्ञादि कार्यारम्भ कराना एवं अशुभ ग्रहकी शान्त्यादि बतलाकर मानवकी सेवा करना यह परोपकाररूप सर्वश्रेष्ठ धर्म है। ज्योतिषके फलादेशसे ख्याति होती है और उससे काम (अभिलाषा) एवं शास्त्रके तत्त्वज्ञानसे मोक्ष होता है। विषयी, जिज्ञासु और मुमुक्षु प्राणियोंमें अर्थकी प्राप्तिसे विषयी, प्रत्यक्ष प्रमाणसे जिज्ञासु और आध्यात्मिक दृष्टिसे मुमुक्षु अपनी-अपनी अभीष्ट सिद्धि पाकर प्रसन्न होते हैं। इस कारण यह शास्त्र सर्वोपयोगी है। मुमुक्षुके लिये यह आध्यात्मिक शास्त्र है; क्योंकि इसके अध्ययनसे काल—ब्रह्मका अनुभव होता है। ज्योतिषमें काल ब्रह्म और गति माया है। गतियुक्त काल अर्थात् सोपाधिक काल विश्वकी सृष्टि, स्थिति और विनाशका हेतु है। श्रुति भी कहती है—**'कालो ब्रह्म। काले सर्वं प्रतिष्ठितम्।'** पुराण भी इसका समर्थन करता है, जैसे—**'कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः। अग्नीषोमात्मकं जगत्'** इत्यादिके अनुसार सूर्य अग्नि और चन्द्रमा सोम है। इन दोनोंसे पंचमहाभूत कुजादि ग्रह हुए और उसके बाद क्रमसे सृष्टिका विकास हुआ। चित्तकी एकाग्रतासे आत्मज्ञान होता है, अतः इस शास्त्रमें अष्टांगयोगके स्थानमें गणित परिकर्माष्टक है; क्योंकि गणितमें चित्तकी एकाग्रता होती है। इसमें फलित कर्मकाण्ड, गणित उपासनाकाण्ड और सिद्धान्त ज्ञानकाण्ड है। व्यक्त गणितमें व्यक्त (साकार)-की उपासनासे अव्यक्त (ब्रह्म)-का और अव्यक्त गणितमें अव्यक्तकी उपासनासे व्यक्तका ज्ञान कराया गया है। बीजगणितका समीकरण सभी वेदान्तोंका समर्थन करता

है। यह विशेषता किसी अन्य शास्त्रमें भी नहीं। उपनिषद्में ब्रह्मको **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** कहा गया है और गणितमें ऋणात्मकरूपको छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा साबितकर उसे सिद्ध किया गया है—

शून्याँल्लघीयान् ऋणरूपराशिः
महाननन्ताद्गणितेन यस्माद्।
सिद्ध्यत्ययं युक्तित एव तस्माद्
अणोरणीयान् महतो महीयान्॥

रेखागणित सांख्यदर्शनका प्रतिपादन करता है। न्याय एवं वैशेषिक दर्शनमें जिस तरह पदार्थके साधर्म्य-वैधर्म्य-ज्ञानसे अपवर्ग कहा गया है, उसी तरह ग्रहरूप पदार्थके ज्ञानसे ज्योतिषमें आत्मज्ञान बताया गया है। बाह्य जगत्की जो खगोल, ग्रहगोल एवं भूगोलादिकी रचना है, वह आन्तरिक जगत्में भी है, अतः मुमुक्षु प्राणी ज्योतिषके अध्ययनसे आन्तरिक उपासनाद्वारा निरुपाधिक कालब्रह्मका अनुभव करते हैं। महर्षियोंने अध्यात्मज्ञानद्वारा अखिल ब्रह्माण्डका यथार्थ वर्णन किया है। योगदर्शनमें कहा गया है कि—**'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्' 'चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्' 'ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्'** (योग० सू० विभूति० पा० २६, २७, २८) अर्थात् सूर्यमें संयम (धारणा, ध्यान और समाधि)-का अभ्यासी दिव्य दृष्टिसे चतुर्दश भुवनोंको देखता है। चन्द्रमें संयम करनेसे ताराव्यूहका ज्ञान होता है। ध्रुवमें संयम करनेसे ताराओंकी गतिका ज्ञान होता है। यह शास्त्र अध्यात्ममूलक है, इसके प्रत्येक विचार रहस्यात्मक, व्यंग्यार्थप्रतिपादक हैं। दार्शनिक दृष्टिसे ज्योतिष एक समन्वयात्मक विशेष दर्शन सिद्ध होता है। अतः इसकी प्रत्यक्षता निर्विवाद सिद्ध है।

'ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र है'

(श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी शास्त्री, वरिष्ठ धर्माधिकारी)

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥

कहा गया है कि शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द आदि शास्त्रोंमें ज्योतिषशास्त्रको छोड़कर अन्य शास्त्रोंमें बहुत विवाद है, शास्त्रार्थ है। अतः वे अप्रत्यक्ष हैं, परंतु ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र है। सूर्य, चन्द्रमा इसके साक्षी हैं।

उदाहरणके लिये सूर्यसिद्धान्तादिसे रचित पंचांगोंमें कभी कोई तिथि दो-दो हो जाती हैं—दो दिन चतुर्थी, अष्टमी, एकादशी तो कभी किसी तिथिका क्षय भी हो जाता है। प्रति तीसरे चान्द्रवर्षमें एक अधिकमास आता है। १९, १४१ वर्षोंमें क्षयमास आता है, फिर संसर्पमास भी आता है। इन मासों एवं तिथियोंके घटते-बढ़ते ही पंचांगमें अष्टमी, अमावस्या या पूर्णिमा जब होती है, उस दिन प्रातःकालसे ही समुद्रोंमें ज्वार-भाटे आने लगते हैं। अष्टमीको अर्द्ध चन्द्र और पूर्णिमाको सूर्यास्त होते ही पूर्ण चन्द्रके दर्शन होते हैं और अमावस्याको चन्द्र-दर्शन नहीं होता। कृष्ण चतुर्थीको निर्दिष्ट समयपर चन्द्रदर्शन होता है। सूर्य और चन्द्रग्रहण भी पंचांगमें निर्दिष्ट समयपर दृष्टिगोचर होते हैं।

यही नहीं १३ दिनके पक्ष, अधिक, क्षय तथा संसर्प मासके चलते सौरमास, चान्द्रमास, सावनमास तथा नाक्षत्रमासमें पड़नेवाले योग, तिथि एवं नक्षत्र मिलते हैं। यथा—चैत्रकी पूर्णिमाको चित्रा नक्षत्र, वैशाखकी पूर्णिमाको विशाखा, ज्येष्ठकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा आदि। फिर जब रोहिणीमें सूर्य १५ दिनके लिये आते हैं, उन दिनों खूब तपते हैं, गर्मी खूब पड़ती है, धनु राशिके १५ अंशमें सूर्यके आनेपर और २५ अंश मकर राशितक ४० दिन खूब हिमपात, खूब शीत, ठण्ड पड़ती ही है। मघा नक्षत्रमें होनेवाली वर्षाके जलसे कृमि, कीट, पतंगोंकी अत्यधिक उत्पत्ति होती है। वृक्ष जो जड़ हैं, उनसे भी ज्योतिषकी प्रत्यक्षता सिद्ध होती है। जब स्वाती नक्षत्रमें

सूर्य आते हैं—इन दिनोंकी वर्षासे कदली वृक्षोंमें कर्पूरकी उत्पत्ति होती है। स्वातीकी जलवृष्टिकी बूँद सीपमें पड़नेपर वह मुक्ता बन जाती है, जब पपीहा पानी पिये, तब स्वाती नक्षत्रकी वर्षा है, यह स्पष्ट माना जाता है।

छः ऋतुओंमें ऋतुओंके नामके अनुकूल प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। शरद्-पूर्णिमाको शुभ्र चन्द्रिका इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

ज्योतिषके योगानुसार **'चलति अंगारके वृष्टिः'** के प्रमाणसे जिस दिन मंगल ग्रह एक राशिसे दूसरी राशिमें जाते हैं, उस दिन निश्चित वर्षा होती है। बुध-शुक्रके उदय-अस्तमें भी वर्षा होती है। इससे ज्योतिषकी प्रत्यक्षता प्रमाणित होती है।

अब थोड़ा जन्मकुण्डलियोंपर भी विचार करें। जिनकी जन्मकुण्डलीमें तुलाके सूर्य हैं, उनको नेत्र-विकार, रक्त-विकार, दाद, खाज, खुजली आदि चर्मरोग होता है। चन्द्रमा जिनका वृश्चिक राशिमें होगा, विशेषकर रोगभाव (षष्ठ या अष्टम भाव)-में होगा, उनको शीत, कफ, खाँसी, निमोनिया, पथरीका रोग देखा जाता है। मंगल कर्क राशिमें ६-८ भावमें रक्तदोष, अर्शरोग उत्पन्न करता है, यदि २८ अंशमें कर्कका मंगल किसी भावमें है तो वह उस भावके प्रभावकी हानि करता है। सप्तम भावमें स्त्री या पतिको तथा दशम भावमें राज्यसे व्याधियाँ उत्पन्न करता है, परंतु मकरका मंगल यदि राज्यभावमें है तो **'दशमे अङ्गारको यस्य राजयोगं वदन्ति'** के प्रमाणसे राज्यसे मान, धन एवं अधिकारप्रद भी होता है। बुध ६-८वें भावमें मीन राशिका हो तो मधुमेह, पौरुषग्रन्थिकी समस्या उत्पन्न करते हैं। बृहस्पति कर्कके लग्न एवं केन्द्रमें हो तो राज्य, धन-धान्य, मान, प्रतिष्ठा खूब देते हैं और कन्या राशि या मकर राशिके होकर जिस भावमें बैठते हैं, उस भावकी हानि करते हैं। शुक्र कन्या राशिके ६-८वें भावमें हों तो नेत्र एवं गुप्तरोग तथा शुक्रसम्बन्धी रोग करते हैं, महिलाओंको श्वेत प्रदर एवं आन्तरिक रोगकी उत्पत्तिके कारक होते हैं।

शनि मेषका जिस भावमें होगा, उसके शुभफलकी हानि करता है, यदि पंचम भावमें होगा तो पुत्रसुखमें बाधक रहेगा, परंतु **'तुलाकोदण्डमीनानां लग्नसंस्थे शनैश्चरे करोति भूपतिं जातम्'** के अनुसार राज्याधिकार-प्रद भी होता है। राहु यदि १२वें भावमें है तो पसलीमें पीड़ा, विद्याभावमें है तो काँखमें पीड़ा, अष्टम भावमें है तो उदर-विकार करता है। इसी प्रकार केतु ग्रह धनभावमें होगा तो मुखरोग, सहज भावमें बाहुपीड़ा, लग्नमें है तो स्त्रीको पीड़ाप्रद होता है।

ग्रहोंकी उच्च-नीच राशियों, अंशों, दृष्टियोंपर विचारकर जब फल कहा जाता है तो वह अक्षरशः सत्य होता है, स्पष्ट है—

ग्रहाः राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहाः राज्यं हरन्ति च।
ग्रहैर्व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

ग्रहोंका प्रभाव सभीपर पड़ता है, इनके प्रभावसे कोई बच नहीं सकता, अतः ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र है।

ज्योतिष-गौरव

(ज्योतिषाचार्य पं० श्रीशंकरलालजी गौड़ 'शम्भूकवि')

सृष्टि के आरंभ से होती रहीं यहाँ खोज हैं।
चतुर्दश सुविद्या राष्ट्र की, चौंसठ कला अम्भोज हैं॥
देवर्षि नारद गर्ग मुनि, इस शास्त्र के आचार्य थे।
गुरुवर वशिष्ठ श्रेष्ठ के, अद्भुत विवेकी कार्य थे॥
केतकर वेंकटेश शास्त्री, वास्तविक गुणी सुयज्ञ थे।
आर्यभट्ट आचार्य भास्कर वाराह गणपति विज्ञ थे॥
भारत है धन गुणीजन का अति अनुपम भंडार।
फिर मेरी गणना कहाँ जो कहि पाऊँ पार॥

ज्योतिषशास्त्रका सामान्य परिचय

(प्रो० श्रीचन्द्रमौलीजी उपाध्याय, ज्योतिषाचार्य, पी-एच०डी०)

समग्र संसारके अविरल प्रवाहको प्रवाहित करनेवाले निःशेष ज्ञानके आदि स्रोतरूपी वेदपुरुषके विशालकाय शरीरमें **'वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषम्'** (सिद्धान्त-शिरोमणि, काल० ११) इत्यादि वाक्योंके द्वारा नेत्ररूपमें ज्योतिषशास्त्र परिलक्षित है। सामान्य परिभाषाके अनुसार ज्योतिषशास्त्रको ग्रह-नक्षत्रोंकी गति, स्थिति एवं फलसे सम्बन्धित शास्त्र कहा जाता है, जैसा कि नृसिंहदैवज्ञने भी कहा है—

'ज्योतींषि ग्रहनक्षत्राण्यधिकृत्य कृतो ग्रन्थो ज्योतिषम्।'

ग्रह-नक्षत्रोंके द्वारा हमें कालका ज्ञान होता है एवं इस चराचर जगत्में सबसे अधिक शाश्वत एवं गतिशील वस्तु काल ही है। इसीके अन्तर्गत संसारके सभी क्रिया-कलाप कार्यान्वित होते हैं। कालके अनुसार ही प्राणिमात्रका जन्म एवं कालानुरोधेन ही अन्त होता है, जैसा कि वर्णन भी प्राप्त है—**'कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।'** हमारी भारतीय संस्कृतिमें वेदविहित यज्ञादि शुभ कार्योंकी समग्र व्यवस्था वेदांग शास्त्रोंके माध्यमसे सम्पादित होती है, जिसमें यज्ञादि कार्योंकी सफलता शुभ कालाधीन तथा शुभ कालज्ञानकी व्यवस्था ज्योतिषशास्त्राधीन होनेसे ही इसे वेदपुरुषके नेत्ररूपमें प्रतिष्ठित किया गया है—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥

अतः ज्योतिषशास्त्रकी सार्वभौम उपयोगिता तथा महत्ता स्वयं ही सिद्ध होती है। वर्तमान विज्ञानके गणित आदि प्रायः सभी विषय बीजस्वरूप ज्योतिषशास्त्रमें अन्तर्निहित हैं। भारतीय परम्पराके अनुसार इस प्राचीन वैज्ञानिकशास्त्रकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके द्वारा हुई है। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्माजीने सर्वप्रथम नारदजीको ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान प्रदान किया तथा नारदजीने इस लोकमें ज्योतिषशास्त्रका प्रचार-प्रसार किया। मतान्तरसे ऐसा भी स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि इस शास्त्रका ज्ञान भगवान् सूर्यने मयासुरको प्रदान किया। आचार्य कश्यप अष्टादश आचार्योंको ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक मानते हैं—

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः।
रोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

ज्योतिषशास्त्रके भेद—ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्त-संहिता-होरारूपी तीन विभाग प्राचीनकालसे आचार्योंने उपस्थापित किये हैं। वराहमिहिरने **'ज्योतिषशास्त्र-मनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्'** कहते हुए स्कन्ध-त्रयात्मक ज्योतिषशास्त्रको अनेक भेदोंसे युक्त माना है। कुछ आचार्योंने केरलि एवं शकुनका पृथक् ग्रहण करते हुए इस शास्त्रको पंचस्कन्धात्मक माना है—

पञ्चस्कन्धमिदं शास्त्रं होरागणितसंहिताः।
कैरलिः शकुनश्चैव ज्योतिःशास्त्रमुदीरितम्॥

परंतु केरलि एवं शकुनका भी होरा एवं संहिता स्कन्धके अन्तर्गत ही सन्निवेश होनेके कारण मुख्यतया उसके तीन ही विभाग परम्परामें प्राप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त विषय-विभाजनकी दृष्टिसे कुछ आचार्योंने इसके छः अंगोंकी भी चर्चा की है, परंतु वस्तुतः सिद्धान्त, संहिता, होरा स्कन्धके अन्तर्गत ही ज्योतिषके सभी विषय समाहित हो जाते हैं।

अतः प्राचीनकालसे लेकर अर्वाचीन कालतक आचार्योंने ज्योतिषके तीन स्कन्धोंको ही परिगणित किया है—

(१) सिद्धान्त स्कन्ध—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालगणना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितैश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥

अर्थात् ज्योतिषशास्त्रके जिस स्कन्धके अन्तर्गत सूक्ष्मतमसे महत्तमकालकी गणना तथा मानोंके भेद, ग्रहोंके चार, द्विविध गणित (व्यक्त एवं अव्यक्त), ग्रहर्क्षोंसे सम्बन्धित सभी प्रश्नोंके उत्तर, ग्रह-नक्षत्रोंकी गति-स्थिति एवं यन्त्र-परिचय आदि वर्णित हो, उसे सिद्धान्त स्कन्ध कहते हैं। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त स्कन्धमें प्रमेय-विवरण, सृष्टि-

विचार, खगोल एवं भूगोल-विषयक चिन्तन, ग्रह-नक्षत्रोंके वेध-यन्त्रोंके विज्ञानका विचार, ग्रहण-विचार, दिग्देश-कालगणना इत्यादि विषयोंका सैद्धान्तिक एवं गणितीय विचार किया जाता है।

सिद्धान्त स्कन्धको गणित स्कन्धके नामसे भी जाना जाता है। सूक्ष्म विभाजनकी दृष्टिसे गणित स्कन्धके भी पुनः तीन विभाग माने जाते हैं, जो सिद्धान्त, तन्त्र एवं करणरूपमें प्रतिष्ठित हैं। सिद्धान्तभागमें ग्रहगणितगणना कल्पारम्भकालसे, तन्त्रभागमें युगारम्भकालसे एवं करण-विभागमें अभीष्ट शकसे की जाती है।

सिद्धान्त स्कन्धके प्रसिद्ध ग्रन्थ—सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि, सिद्धान्ततत्त्वविवेक, पंचसिद्धान्तिका, सिद्धान्तशेखर एवं आर्यभटीयम् इत्यादि हैं।

(२) संहिता स्कन्ध—संहिता स्कन्धमें ग्रह-नक्षत्रोंके द्वारा भूपृष्ठपर पड़नेवाले सामूहिक प्रभावका विवेचन किया जाता है। इस स्कन्धको भौतिक एवं वैश्विक ज्योतिष भी कहा जाता है। संहिता स्कन्धके विषयमें वराहमिहिरने लिखा है—

ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्,
तत्कात्स्न्योंपनयनस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता।

वस्तुतः सिद्धान्त और होरा स्कन्धोंका संक्षेपमें समवेत विवेचन ही संहिता है। संहिता स्कन्धमें ग्रहोंकी गति, ग्रहयुति, मेघलक्षण, वृष्टि-विचार, उल्का-विचार, भूकम्प-विचार, जलशोधन, विभिन्न शकुनोंका विचार, वास्तुविद्या तथा ग्रहणादिका समस्त चराचर जगत्पर पड़नेवाला सामूहिक प्रभाव इत्यादिका विचार किया जाता है। संहिताके विषयोंको भी तीन प्रकारसे विभाजित किया जा सकता है, यथा—(१) पंचांगविषयक, (२) राष्ट्रविषयक, (३) व्यक्तिविषयक।

(क) पंचांगविषयक—तिथि-वार-नक्षत्र-करण-योगके द्वारा समष्टिगत चिन्तन पंचांगविषयक संहिताके विषय होते हैं। इसके अन्तर्गत मुहूर्त आदिका विधान होता है।

(ख) राष्ट्रविषयक—प्राकृतिक उत्पात-भूकम्प-वर्षा इत्यादि विषयोंका चिन्तन राष्ट्रविषयक संहिता विभागमें समाहित होते हैं।

(ग) व्यक्तिविषयक—यात्रा-शकुन, स्त्री-पुरुष-लक्षणका चिन्तन आदिके विषय इस विभागमें होते हैं।

संहिता स्कन्धके प्रमुख ग्रन्थ—गर्गसंहिता, वसिष्ठसंहिता, नारदसंहिता आदि आर्षग्रन्थ तथा बृहत्संहिता, अद्भुतसागर इत्यादि पौरुष ग्रन्थ हैं। आचार्य वराहमिहिरके बृहत्संहिताको संहिता स्कन्धका सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

(३) होरा स्कन्ध—सिद्धान्त एवं संहिता स्कन्धकी अपेक्षा सरल होने एवं साक्षात् समाजसे सम्बद्ध होनेके कारण ज्योतिषशास्त्रके तीनों स्कन्धोंमें सर्वाधिक लोकप्रियता होरा स्कन्धकी है। मानव-जीवनके जन्मसे लेकर मृत्यु-पर्यन्त सभी प्रश्नोंका समाधान जन्मकालिक एवं प्रश्नकालिक ग्रहस्थितिके आधारपर होरा स्कन्धके द्वारा किया जाता है। यह स्कन्ध मानव-जीवनके सम्भाव्य अशुभोंको ग्रह-नक्षत्रोंके द्वारा जानकर उनके निवारणहेतु वेदविहित समाधान प्रस्तुत करता है। होरा शब्दकी उत्पत्ति अहोरात्रसे होती है, जो कि दिनसूचक शब्द है। अहोरात्रके पूर्व और पर वर्णके लोप करनेसे 'होरा' शब्द बनता है—

'होरेत्यहोरात्र विकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्॥'

होरा स्कन्धमें मेषादि द्वादश राशियों, सत्ताईस नक्षत्रों एवं सूर्यादि नवग्रहोंकी परस्पर स्थिति-गति-दृष्टि-योगसम्बन्धवशात् मानवमात्रपर पड़नेवाले शुभाशुभ फलका पूर्ण विवरण समाहित है। अतः इसे जातकशास्त्र भी कहा जाता है।

होरा स्कन्धके प्रसिद्ध ग्रन्थ—बृहत्पाराशर-होराशास्त्र, बृहज्जातक, जातकपारिजात, फलदीपिका, सारावली, जैमिनिसूत्र इत्यादि हैं।

ज्योतिषशास्त्रके षडंग—ज्योतिषशास्त्रके भेदोंको यदि और विस्तारित किया जाय तो इसके मुख्यतया छः अंग दृष्टिगत होते हैं—

जातकगोलनिमित्तप्रश्नमुहूर्त्ताख्यगणितनामानि ।
अभिदधतीह षडङ्गान्याचार्या ज्योतिषे महाशास्त्रे॥

(प्रश्नमार्ग)

अर्थात् जातक, गोल, शकुन, प्रश्न, मुहूर्त और गणित—ये मुख्यतः छः अंग माने गये हैं। वस्तुतः ये छः अंग स्कन्धत्रयके अन्तर्गत ही आते हैं, परंतु विस्तृत व्याख्याहेतु इनका विभाजन पृथक्-पृथक् किया गया है। इनका संक्षेपमें विवरण इस प्रकार है—

(१) जातकशास्त्र—जातकके जन्मकालिक ग्रहस्थितिके अनुसार उसके वर्तमान-भूत-भविष्यके शुभाशुभ फलका ज्ञान हमें जातकशास्त्रके माध्यमसे होता है।

(२) गोल—

दृष्टान्त एवावनिभग्रहाणां संस्थानमानप्रतिपादनार्थम्।
गोलः स्मृतः क्षेत्रविशेष एव प्राज्ञैरतः स्याद् गणितेन गम्यः॥

(प्रश्नमार्ग)

अर्थात् गोल एक प्रकारका क्षेत्र-विशेष है, जिसमें आकाशीय ग्रहस्थितिका प्रत्याभास करके ग्रहगणितको समझा जाता है।

(३) शकुनशास्त्र—शकुनशास्त्रको निमित्तशास्त्र भी कहा जाता है। मानवद्वारा आचरित पूर्वजन्म एवं वर्तमान जीवनके शुभाशुभ कार्योंकी सूचना तत्कालमें व्यक्तिके आसपास हो रहे क्रियाकलापोंके द्वारा शकुनशास्त्रके माध्यमसे दी जाती है, यथा—

अन्यजन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम्।
यत्तस्य शकुनः प्रोक्तं निवेदयेत् पृच्छताम्॥

शकुनके दो भेद माने जाते हैं—(१) शुभ शकुन, (२) अशुभ शकुन।

(४) प्रश्नशास्त्र—प्रश्नशास्त्र ज्योतिषशास्त्रका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रश्नशास्त्रके माध्यमसे प्रश्नकर्ताके प्रश्नोंका उत्तर तात्कालिक ग्रहस्थितिके द्वारा दिया जाता है। प्रश्नशास्त्रके द्वारा प्रश्नकुण्डली बनाकर शंकाओंका समाधान किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत आयु-निर्णय, रोग-निर्णय, आजीविका-सम्बन्धी निर्णय, विवाह, सन्तान-सुख, जय-पराजय-विचार, वृष्टि-विचार, यात्रा-विचार, नष्ट वस्तुका ज्ञान-सम्बन्धी निर्णय इत्यादि समस्त जनसामान्योपयोगी प्रश्न समाहित होते हैं।

(५) मुहूर्त—ज्योतिषके छः अंगोंमें अत्यन्त प्रमुख अंग है मुहूर्त। तिथि-वार-नक्षत्र-योग और करण—ये पंचांगके पाँच अंग माने जाते हैं, इन्हींके आधारपर शुभाशुभ मुहूर्तका निर्णय किया जाता है। वर्तमानकालमें चाहे कोई भी कार्य हो, उसके लिये मुहूर्तकी अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि शुभ मुहूर्तमें किया गया कार्य शुभ-फलदायक होता है एवं अपनी पूर्णताको प्राप्त करता है।

(६) गणित—गणित ज्योतिषशास्त्रका सर्वाधिक वैज्ञानिक अंग माना जाता है। वर्तमानकालमें जो गणितकी विधा फल-फूल रही है, उसके मूलमें ज्योतिषशास्त्रका गणित अंग है। चाहे अंकगणित हो, बीजगणित हो, रेखागणित हो, इन सबका विस्तृत विवेचन यहाँ उपलब्ध है। सामान्यतः गणित विभागको ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्त स्कन्धके अन्तर्गत माना जाता है। इस भागके प्रत्येक पहलूका सोपपत्तिक वर्णन उपलब्ध होता है। आजके विज्ञानका मूल आधार भी ज्योतिषशास्त्रका सिद्धान्त भाग ही है।

ज्योतिषशास्त्रका मानव-जीवनमें महत्त्व—अपने उत्पत्तिकालसे ही ज्योतिषशास्त्र प्राणिमात्रके लिये अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण रहा है। यह मानवके जन्मसे लेकर उसकी मृत्युतकके विविध प्रश्नोंका समाधान प्रस्तुत करते हुए सफल जीवन जीनेका मार्ग प्रशस्त करता है। जन्मकालसे ही ज्योतिषशास्त्रकी उपयोगिता आरम्भ हो जाती है; क्योंकि आजन्म मृत्युपर्यन्त षोडश संस्कार एवं श्रौत-स्मार्त कर्मोंहेतु शुभकालका निर्देश ज्योतिषशास्त्रके बिना सम्भव नहीं है। इसीलिये इसकी महत्ताको प्रतिपादित करते हुए नारदसंहितामें नारदजीने लिखा है—

विनैतदखिलं कार्यं श्रौतस्मार्तं न सिद्ध्यति।

आचार्य भट्टोत्पलने इसकी आवश्यकताको प्रतिपादित करते हुए स्पष्टरूपमें कहा है कि—

सर्वारम्भश्च जगतो लोके च विविधाः क्रियाः।

इसके अतिरिक्त सम्प्रति जीविका-निर्धारण, रोग-परिज्ञान, कृषि, अर्थ, मौसमविज्ञान, प्राकृतिकोत्पात, पर्यावरण-प्रदूषण एवं सामाजिक सन्तुलनके क्षेत्रमें भी ज्योतिषशास्त्रके द्वारा विस्तृत अध्ययन एवं शोधपूर्वक लाभ पहुँचाया जा सकता है। रोग-परिज्ञानके क्षेत्रमें चिकित्सा-ज्योतिषके अन्तर्गत विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें प्रचलित परियोजनाओंके परिणाम अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

इन्हीं सब विशेषताओंके कारण ज्योतिषशास्त्रको सभी शास्त्रोंमें उत्तमस्थान प्रदान करते हुए आचार्योंने लिखा है कि—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्नि संस्थितम्॥

(वेदांगज्योतिष)

ज्योतिष—ईश्वरीय ज्ञान

(श्रीबिमलकुमारजी लाभ, एम०एस-सी०)

ज्योतिष ईश्वरीय ज्ञान है। ज्योतिषकी उपयोगिता व्यक्तिके माताके गर्भमें आनेसे लेकर अन्तिम समयतक है। उसके आधारपर किसी भी व्यक्तिकी समस्याओंका समाधान होता है।

वेदके छ: अंगोंमें ज्योतिष प्रमुख अंग है, जिसे नेत्र कहा गया है। जैसे प्रकाशमें प्रत्येक वस्तु देखी जा सकती है, वैसे ही वेदके नेत्ररूपी ज्योतिषसे कुछ भी छिपा नहीं है। ज्योतिषके अनुसार कुण्डली व्यक्तिके पूरे जीवन, चरित्र और घटनाक्रमका दर्पण है, भारतीय ज्योतिषमें नौ ग्रहोंकी प्रधानता है, वे हैं सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु।

आकाशमण्डलमें ९ ग्रह, २७ नक्षत्र और १२ राशियाँ अपनी-अपनी कक्षामें गतिशील हैं। वे सब व्यक्तिविशेषपर कितना, कब और कैसा प्रभाव डालेंगे, यही ज्योतिषशास्त्रका विशेष क्षेत्र है।

ज्योतिषका इतिहास अति प्राचीन है। ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थितिका उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है। इसीके आधारपर लोकमान्य तिलकजीने यह निश्चित किया कि वेद इतने हजार वर्ष पुराने तो होने ही चाहिये।

ज्योतिषसम्बन्धी सर्वाधिक गहरी मान्यताएँ भारतमें पैदा हुईं। सच तो यह है कि ज्योतिषके कारण ही गणितका जन्म हुआ और ज्योतिषकी गणनाके लिये ही सबसे पहले गणितका जन्म हुआ, इसलिये अंकगणितमें जो अंक हैं, वे भारतीय हैं। सारी दुनियाकी भाषाओंमें एकसे लेकर नौतक जो गणनाके अंक हैं, वे जगत्की समस्त भाषाओंमें भारतीय हैं। साथ ही दुनियामें जो नौ डिजिट या नौ अंक स्वीकृत हो गये हैं, वे नौ अंक भारतमें पैदा हुए और धीरे-धीरे सारे जगत्में फैल गये। जिसे अँगरेजीमें नाइन कहते हैं, वह संस्कृतके नव शब्दका ही रूपान्तर है। जिसे एट कहते हैं, वह संस्कृतके अष्ट शब्दका ही रूपान्तर है। एकसे लेकर नौतक जगत्की समस्त सभ्य भाषाओंमें गणितके नौ अंकोंका ही प्रचलन है, वह भारतीय ज्योतिषके प्रभावसे ही हुआ।

भारतसे ज्योतिषकी पहली किरण सुमेरकी सभ्यतामें पहुँची। सुमेरवासियोंने सबसे पहले पश्चिम जगत्के लिये ज्योतिषका द्वार खोला तथा सबसे पहले नक्षत्रोंके वैज्ञानिक अध्ययनकी आधारशिला रखी। उन्होंने सात-सात सौ फीट ऊँची मीनारें बनायीं, जिनपर चढ़कर सुमेरके पुरोहित चौबीसों घण्टे आकाशका अध्ययन करते थे।

ज्योतिषशास्त्रका ही एक भाग है—जन्मकुण्डली। जन्मकुण्डलीको अँगरेजीमें कहते हैं—होरोस्कोप। यह यूनानी होरोस्कोपका रूप है, जिसका अर्थ होता है—'मैं देखता हूँ, जन्मते हुए ग्रहोंको।'

जब एक बच्चा जन्म लेता है, उस समय आकाश-मण्डलमें ग्रहोंकी स्थितिकी जानकारी जन्म-कुण्डलीसे मिलती है अर्थात् जन्मकुण्डली आकाश-मण्डलस्थित ग्रहोंका ज्ञान है। इसीके आधारपर बच्चेका भूत, वर्तमान और भविष्य जाना जाता है। लेकिन इसके लिये बच्चेका ठीक जन्मसमय जानना जरूरी है, तभी उचित जन्मकुण्डली बनेगी और उसके बारेमें ज्योतिषीय अध्ययन सही होगा। ज्योतिषमें सत्य भविष्यवाणीकी क्षमता है, पर यह इस बातपर निर्भर करता है कि ज्योतिषीका अध्ययन एवं अनुभव कितना है।

ज्योतिषके दो भाग हैं—गणित और फलित। गणित अर्थात् खगोलविद्याद्वारा आकाशमण्डलमें स्थित ग्रहोंकी दूरी एवं अवस्थाका ज्ञान होता है। पंचांग इसके द्वारा ही बनाया जाता है। बाकी फलितमें ग्रहोंके आधारपर फलादेश किया जाता है।

गणित एक गणनात्मक प्रक्रिया है, जिसकी जगह कम्प्यूटरने ले ली है। यह गणितके लिये निःसन्देह लाभकारी है; क्योंकि कम्प्यूटर मनुष्यसे अधिक तेज गतिसे सही और सूक्ष्म गणित कर लेता है। ज्योतिषशास्त्रका चमत्कारी पक्ष है—फलादेश। फलादेश ईश्वरकी कृपापर आधारित है। यह कृपा आपके द्वारा की हुई ईश्वरीय आराधनापर निर्भर है। अगर आप ध्यानसे देखें तो कम्प्यूटरसे एक ही जन्मतिथि, जन्मसमय और जन्म-स्थानमें जनमे जितने जातकोंकी जितनी भी जन्मकुण्डलियाँ निकलेंगी, फलादेश सबोंमें एक-सा होगा। इसीसे यह गलत प्रमाणित हो जाता है। मुख्य रूपसे एक ही लग्नकी कुण्डलियाँ तो लाखों हो सकती हैं, पर फलादेश सबोंका अलग-अलग होगा। फलादेश केवल लग्नपर निर्भर नहीं करता—यह ग्रहोंकी स्थिति, दृष्टियोग, बलों, नक्षत्र आदिपर निर्भर करता है। ग्रह एवं नक्षत्रकी भिन्नतासे फलादेश अलग-अलग होंगे। अतः कम्प्यूटरद्वारा फलादेश सत्यसे परे होता है।

शास्त्रोंमें दैवज्ञकी बड़ी महिमा आयी है। इसलिये कहा गया है—

नासांवत्सारिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते॥

अर्थात् जिस जगह फलादेश कहनेवाला ज्ञानी ज्योतिषी न हो, वहाँ वैभवकी कामनावाले व्यक्तिको नहीं रहना चाहिये। जिस स्थानपर नेत्ररूपी ज्योतिषी रहता है, वहाँ पाप नहीं रह सकता।

प्राचीन समयसे ही दैवज्ञोंद्वारा जन्मकुण्डलीका निर्माण होता आया है। वाल्मीकीय रामायणमें भगवान् रामके जन्मकालीन ग्रहयोगोंका वर्णन है। यदुवंशियोंके पुरोहित दैवज्ञ गर्गजीके नामसे कौन अपरिचित है। प्रायः सभी लोग अपने सन्तानकी जन्मकुण्डली बनवाते हैं और उसके भविष्यकी जानकारीके प्रति उत्सुक रहते हैं। उच्च शिक्षितवर्गमें ज्योतिषको ब्लफ कहनेका फैशन-सा हो गया है, पर वे भी लुके-छिपे प्रतिदिन अपना राशिफल समाचारपत्रों या दूरदर्शनमें देखते हैं, साथ ही विशेषकर अपने ऊपर कोई आपत्ति आनेपर ज्योतिषियोंके पास जाते हैं और उनसे सहायताकी याचना करते हैं।

सच तो यह है कि तानाशाह हिटलर भी बड़े सैनिक अभियानोंके शुरू करनेका मुहूर्त निकलवाता था। इसके लिये वह अपने निजी ज्योतिषीद्वारा शत्रुके सेनापतिकी कुण्डलियोंके ग्रहोंका तुलनात्मक विश्लेषण करवाता था। इंग्लैण्डने भी सम्भावित हमलोंका अनुमान लगानेके लिये द्वितीय महायुद्धमें ज्योतिषीकी सेवाएँ ली थीं। अमेरिकी राष्ट्रपतिकी दिनचर्या ज्योतिषीकी सलाहपर कराये जानेका रहस्योद्‌घाटन ह्वाइट हाउसके चीफ ऑफ स्टाफ डोनाल्ड रीगनने की। फिलीपीन्स और इण्डोनेशियामें राजनैतिक जीवनमें शुभ अंकोंका पूरा असर है। जापानमें आज भी शादी आदिके लिये लोग शुभ दिन निकलवाते हैं। अपने भारतमें तो जन्मसे लेकर मृत्युतक ज्योतिषीसे सलाह ली जाती है। अब तो बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ आवेदककी योग्यताके साथ-साथ जन्मकुण्डलीसे ग्रहोंके बारेमें जानकारी हासिल कर रही हैं कि आवेदक कम्पनीके लिये भाग्यशाली होगा या नहीं। अपराध-अनुसन्धानके क्षेत्रमें पेचीदा मामलोंमें अब जाँच एजेन्सियाँ भी ज्योतिषीसे ग्रहनक्षत्रका सहारा ले रही हैं। अनुसन्धानकी इस विधाको फोरेंसिक एस्ट्रालॉजीका नाम दिया गया है।

ज्योतिषके अनेक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष लाभ हैं। विपत्तिकी घड़ियोंमें ज्योतिष एक श्रेष्ठ मित्र होता है। जन्मपत्रिका दर्शाती है कि ज्योतिष न केवल एक श्रेष्ठतम विज्ञान है, अपितु यह संकटकी घड़ियोंसे बचाव भी करता है। यह न केवल मानवोंके भविष्यकथनतक ही सीमित है, अपितु विश्वभरके घटनाक्रम भी इस शास्त्रद्वारा जाने जा सकते हैं।

ज्योतिष एक प्रामाणिक शास्त्र है

(डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग)

मैं स्वयं ज्योतिषशास्त्रकी ज्ञाता नहीं हूँ, परंतु मेरे बाबूजी स्वतन्त्रतासेनानी होनेके साथ-साथ बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य, योगाचार्य, शास्त्रके ज्ञाता तथा भगवद्भक्त थे। उनके द्वारा बताये गये ग्रह-योगादिको मैंने सदा प्रमाणित होते देखा है। यद्यपि ज्योतिषशास्त्रके विषयमें प्रायः लोगोंको यह भ्रम रहता है कि यह पण्डितोंका पैसा कमानेका साधन है, ये लोग भोले-भाले लोगोंको ग्रहदशाका भय दिखलाकर तरह-तरहसे उनसे पैसा लूटते हैं, आदि-आदि।

परंतु मैंने बाबूजीके बताये ग्रहयोग आदिको सदैव सत्य प्रमाणित होते देखा है। उनकी बतायी गणना और फलित कभी गलत नहीं हुए। जहाँतक मेरा अनुभव और विश्वास है, ज्योतिषीय गणना सही है, इसके लिये आवश्यक है कि ज्योतिषी स्वयं ईमानदार, निर्लोभी, सत्यान्वेषी, कुशल गणितज्ञ, ईश्वरीय अस्तित्वके प्रति आस्थावान्, आध्यात्मिक प्रकृतिका, निरहंकारी, निःस्वार्थ तथा आत्मबलसे युक्त हो। बाबूजीमें ये गुण विद्यमान थे। वे जन्मपत्रिका देखनेका शुल्क भी नहीं लेते थे। उनका ज्योतिषज्ञान स्वान्तःसुखाय था और वे पत्रिका देखकर जन्मपत्रिका दिखानेवाले व्यक्तिको ऐसे सरल, अचूक तथा अनोखे उपाय बताते थे कि उसे आश्चर्य होता था। बाबूजीका बताया उपाय करनेपर उसका कष्ट दूर हो जाता था। इस आलेखमें ऐसी ही कुछ घटनाएँ प्रस्तुत हैं—

[१]

एक बार बाबूजीके एक मित्र बाबूजीसे बोले—पोद्दारजी! मेरे पैरोंमें बहुत दिनोंसे दर्द है। चलने-फिरनेमें भी तकलीफ होती है। मैं बहुत इलाज करा चुका हूँ, ठीक ही नहीं होता। बाबूजीने कहा—भाई! तुम अपनी जन्मपत्री लाना, देखकर कुछ बताऊँगा। दोस्त उनकी बात सुनकर हँस पड़े, पैरदर्द और जन्मपत्रीका क्या रिश्ता? बाबूजी बोले—तुम लाना तो सही, फिर बताऊँगा। आखिर वे अपनी जन्मपत्री ले ही आये। बाबूजीने ध्यानसे पत्रिका देखी और बोले, देखो दोस्त! मैं जो उपाय बताता हूँ, वह कर लोगे तो पैरदर्द ठीक हो जायगा। दोस्तने कहा—इतने इलाज तो करा चुका, अब तुम्हारा उपाय भी कर लूँगा, बताओ।

बाबूजीने बताया, शुक्रवारके दिन एक सुन्दर-सी पूरे छापेकी रंगीन साड़ी लाकर अपनी पत्नीको देना। उस समय शुक्र ग्रहको प्रसन्न करनेके लिये मनमें **'ॐ शुं शुक्राय नमः'** यह मन्त्र जपते रहना। हाँ, साड़ी ऐसी लाना कि पत्नी देखकर खुश हो जाय। मित्र बोले—वाह! यह तो बड़ा बढ़िया उपाय बताया। पैसा भी खर्च हुआ तो घरका घरमें ही। उन्होंने यह उपाय किया तो सचमें ही उनके पैरोंका दर्द बिलकुल ठीक हो गया।

[२]

बाबूजीके पास एक महाशय अपने बेटेकी जन्मपत्री लेकर आये। उनके बेटेको नकल करनेके अपराधमें १२वीं बोर्डकी परीक्षासे उस वर्षके लिये निकाल दिया गया था। बेटेका साल खराब होनेके कारण पिता बहुत परेशान थे। बाबूजीने उनके बेटेकी जन्मपत्री देखी, फिर उस बेटेको भी बुलवाया। बेटा आया। वह बाबूजीके पैरोंपर गिरकर रो पड़ा। बाबूजीने उसको सान्त्वना देते हुए कहा—देखो बेटा! मैं तुम्हें उपाय बता रहा हूँ, तुम्हारा साल खराब होनेसे बच सकता है, लेकिन पहले तुम्हें वचन देना पड़ेगा। उस लड़केने तुरंत कहा—मैं आपकी हर बात मानूँगा। आप मेरा साल बर्बाद होनेसे बचा लीजिये।

बाबूजीने कहा—पहले यह प्रतिज्ञा करो कि आगेसे मैं कभी नकल नहीं करूँगा, पूरी मेहनतसे पढ़ूँगा, अपने शिक्षकोंका पूरा आदर करूँगा। लड़का बोला—मैं सच्चे मनसे आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ, फिर बाबूजीने उसे

मंगलका मन्त्र **'ॐ अं अंगारकाय नमः'** का जप करनेको कहा तथा छोटे भाईसे झगड़ना बन्दकर, उसे प्रसन्न करनेके लिये कुछ गुड़-चॉकलेट आदि लाल रंगकी वस्तुएँ खानेको देनेके लिये कहा।

उस लड़केने पूरी ईमानदारीसे विश्वासके साथ वह उपाय किया। कुछ ही दिनोंमें बड़े चमत्कारिक ढंगसे उसे पुनः परीक्षा देनेका अवसर मिल गया और उसका साल खराब होनेसे बच गया।

[३]

इसी प्रकार हमारी बुआजी, जिन्होंने हाथरस शहरमें एक कन्याविद्यालय खोला, उन्हें किसी झूठे आक्षेपमें कुछ लोगोंद्वारा मुकदमेमें फँसा दिया गया। बुआजी बहुत परेशान हो गयीं। उन दिनों हाथरसमें केवल तहसील थी। उन्हें मुकदमेकी तारीखपर हर बार अलीगढ़ जाना पड़ता था। जिला न्यायालय तब अलीगढ़में था। अलीगढ़में बुआजी मुकदमा हार गयीं। उन्हें इलाहाबाद उच्च न्यायालयमें अपील करनी पड़ी। परेशान होकर बुआजी बाबूजीके पास आयीं और कहने लगीं—मुरली! अब तू ही कुछ उपाय बता।

बाबूजीने बुआजीकी जन्मपत्रिका देखी। उसमें राहुकी दशा थी। पाँचके अंकसे उसका कुछ सम्बन्ध था (इसकी स्थिति विस्तारसे बताना मेरे लिये कठिन है; क्योंकि मैं स्वयं ज्योतिष नहीं जानती)। उन्होंने बुआजीको कहा—तू **'ॐ रां राहवे नमः'** का जप करते हुए रविवारको लाल चर्चमें पाँच लाल गुलाबका गुच्छा ईसामसीहके आगे चढ़ा देना। बस तू इस बार जीत जायगी। एक बात बताना चाहती हूँ कि बाबूजी पत्रिका देखकर जो भी उपाय बताते थे, स्वयं पूरी आस्था तथा विश्वासके साथ बताते थे। उन्होंने बुआजीसे कहा—तू एक रात पहले चर्च जाकर पता कर लेना कि मेरे फूल चढ़ानेपर पादरीको कोई आपत्ति तो नहीं है। उनकी स्वीकृति लेकर ही फूल चढ़ाना।

बुआजीने रातमें चर्च जाकर पादरी साहबसे फूल चढ़ानेकी अनुमति ले ली। पादरीने लाल फूलोंके गुच्छे चढ़ानेको कहा। बोले—खुले फूल न चढ़ायें। बुआजीने अगली सुबह राहुके बीजमन्त्रका मनमें जप करते हुए पाँच लाल गुलाबोंका गुच्छा चढ़ाया और प्रार्थना की कि कृपा करके मेरा संकट दूर करें और अन्ततः उन शत्रुभावी लोगोंने अगली तारीखपर अपना मुकदमा वापस ले लिया। बुआजीको इस बातपर बड़ा आश्चर्य हुआ, परंतु उन्हें भाईके बताये उपायपर विश्वास भी था।

तात्पर्य यह है कि बाबूजी पत्रिका देखकर बड़े साधारण उपाय बताते थे, जिससे व्यक्तिकी परेशानियाँ तथा कष्ट दूर हो जाते थे। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जिनका उल्लेख करना इस आलेखमें सम्भव नहीं। बाबूजी प्रश्नकुण्डली बनाकर पूर्णतः सही-सही विवरण देते और कोई कठिनाई होनेपर उसका जो समाधान देते, वह भी सही ही बैठता।

[४]

एक घटना तबकी है, जब मैं स्कूलमें पढ़ती थी। किसी त्योहारका अवसर था। शायद गंगादशहरा था। एक वृद्ध विधवा ब्राह्मणी घरपर माँसे मिलने आयी। जब वह वापस लौटने लगी तो उसकी चप्पलें घरमेंसे गायब थीं। चप्पलें न मिलनेपर वह आँखोंमें आँसू लाकर बाबूजीसे बोली—मैं तो पड़ोसनसे चप्पल माँगकर पहन आयी थी, अब मैं गरीब उसकी चप्पल कहाँसे लाकर दूँगी? उसको दुःखी देखकर हम बच्चे बाबूजीसे मजाकके लहजेमें बोले—बाबूजी! प्रश्नकुण्डलीसे इन मिश्रानीजीकी चप्पल मिलनेका उपाय बता दीजिये न....।

बाबूजीने सचमुच पंचांग निकाला और कुण्डली बनाने लगे। फलित निकाला और मिश्रानीजीसे बोले—'बाई! आपकी चप्पलें अभी घरसे बाहर नहीं गयीं। घरमें ही छिपी हैं, ढूँढ़ो।' उसने सब जगह चप्पलें ढूँढ़ीं, लेकिन नहीं मिलीं। हम बच्चे फिर बाबूजीके पीछे लगे, बाबूजी और बताइये, कहाँ हैं, किस दिशामें हैं? बाबूजीने कुण्डली देखकर विचार किया और बोले—

चप्पलें नीचेकी मंजिलमें हैं, पूर्व दिशामें हैं, लोहेके पास हैं। फिर विचारकर बोले—छोटा बालक छोटी जातिका, साँवले रंगका आ रहा है। इतना सुनकर सबको अन्दाज हो गया कि चप्पलें किसने चुरायी हैं। बाबूजी फिर बोले—चप्पलें चोरकी माँको ही मिलेंगी।

सब सोच-विचारकर उन्होंने नौकरको भेजकर हमारी बर्तनवाली महरीको बुलवाया। महरी नौकरके साथ ही घर आ गयी। उसे सारी बात बतायी। वह तो सब सुनकर तैशमें आ गयी और गंगामैयाकी कसम खाकर बोली—लालाजी, मेरा लड़का चप्पलें घर नहीं ले गया। भले ही मेरे हाथपर गंगाजल रख दो। बाबूजीने उसे काफी समझाया और कहा—देखो भाई, चप्पलें तो तुम्हारे लड़केने ही उठायी हैं। उसने यहीं हमारे घरमें ही छिपा दी हैं। तुम कोशिश करो, ढूँढ़ो, शायद तुम्हें कहीं मिल जाय। उसने हो सकता है कि नीचेके कमरेमें छिपा दी हों।

उस बाईने काफी ढूँढ़ा। तब उसे लोहेकी आलमारीके नीचे कुछ काला-सा दिखा। वह आलमारी नीचेके कमरेमें वर्षोंसे अप्रयुक्त रखी थी। बाईने आलमारीके नीचे बाँस डाला तो वे चप्पलें निकल आयीं। वह ब्राह्मणी चप्पलें मिलनेपर खुशी-खुशी उन्हें पहनकर चली गयी। बर्तनवाली बाई शर्मिन्दा होकर माफी माँगने लगी।

बाबूजीका प्रश्नकुण्डलीका गणित स्वयं प्रमाणित हो गया। ऐसे अनेक अवसर आये जब उनका बताया ग्रहोंका उपाय सफल हुआ और प्रश्नकुण्डलीका गणित भी सही बैठा।

ज्योतिर्विज्ञान—भौतिक उन्नति तथा आध्यात्मिक उन्नयन

(प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम', डी०लिट०)

मानवजीवनके सर्वतोमुखी विकासके लिये भौतिक सम्पन्नताके साथ-साथ आध्यात्मिक चिन्तनशीलता परम अपेक्षित है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

(शु०यजु० ४०। १४)

ज्योतिर्विज्ञान प्रमुख वेदांग होनेके कारण सफल-सार्थक जीवनविषयक उपर्युक्त सत्याधृत महती अवधारणाको व्यावहारिक रूप प्रदान करनेका अप्रतिम माध्यम है।

न केवल जन्मसे मृत्युतक, अपितु जन्मपूर्वसे मृत्युके अनन्तरकी समस्त गतिविधियोंका सम्यक् विवेचन एवं समुचित दिशानिर्देशन जिस शास्त्रका आश्रय ग्रहणकर किया जाता है, उसकी संज्ञा है—ज्योतिर्विज्ञान। वस्तुतः मानवजीवनसे सम्बद्ध ऐसे अनेक अनुपेक्षणीय प्रश्न हैं, जो ज्योतिषशास्त्रके बिना उत्तरित नहीं हो सकते। यथा—

मनुष्यके प्रादुर्भावका प्रयोजन क्या है? नक्षत्र, ग्रह तथा राशिके अनुसार उसके जीवनकी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ किस प्रकारकी हैं? प्रतिकूलताको अनुकूलतामें परिवर्तित करनेके लिये कौन-से उपाय फलप्रद हो सकते हैं? निर्धारित अवधितक रहकर मनुष्य धराधामको छोड़कर कहाँ चला जाता है? शरीरत्यागके उपरान्त उसकी क्या गति होती है? उसका पृथ्वीपर आना-जाना बन्द हो जाता है या आने-जानेका क्रम लगा ही रहता है? कर्मानुसार उसका जन्म पुनः कहाँ और किस रूपमें होता है? जन्म-जन्मान्तरके रहस्यको कैसे जाना जा सकता है? आदि।

निस्सन्देह, किसी भी क्षेत्रमें सच्ची प्रगतिके लिये काल एवं क्रिया-संचालनका सम्यक् ज्ञान अत्यावश्यक है। कालज्ञान रहनेपर कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होकर सुपरिणामदायक होता है। ऐसा नहीं होनेसे निरर्थक परेशानियोंका सामना करना पड़ता है और उसका फल भी अनिष्टकारक हो जाता है। अतएव ऋद्धि-सिद्धिके निमित्त ज्योतिषके दोनों रूपोंको अपनाना अर्थात् गणित तथा फलितके अनुसार विकासपथपर अग्रसर होना सर्वथा श्रेयस्कर है।

प्रशस्ततम कर्म—यज्ञादिसे लेकर अन्य तत्सम सत्कार्यों—नामकरण, अक्षरारम्भ, अन्नप्राशन, मुण्डन, उपनयन, मण्डप-निर्माण, विवाह, द्विरागमन, तडाग-मन्दिर-विद्यासंस्थान-निर्माण, उद्योग एवं कृषिकार्यारम्भ, नवान्न-भक्षण, अष्टयाम-नवाह्न और व्यापक स्तरपर भागवत-रामायणपाठ आदि श्रेष्ठ आयोजनोंके निमित्त शुभ मुहूर्तका निर्धारण अनिवार्य है। मुहूर्त-निर्धारण न तो वेदद्वारा हो सकता है और न ही पुराणोंके आधारपर। ज्योतिषशास्त्रके अतिरिक्त कोई अन्य शास्त्र इसके लिये उपयोगी नहीं हो सकता। अधिमास-विधानद्वारा पर्व-त्योहार तथा अन्य समस्त मांगलिक कार्योंका क्रम सुनिश्चित रहता है।

ज्योतिर्विज्ञानका मूलाधार है—सौरमण्डल। उसमें आत्मतत्त्वके रूपमें सुप्रतिष्ठित रहनेके कारण भगवान् सूर्यनारायण तो सर्वप्रमुख हैं ही, अन्य ग्रहों एवं उनके उपग्रहोंका भी अपना विशिष्ट स्थान है। सभी ग्रह देवता हैं। चन्द्रमा मनके देवता हैं। शुभ यात्राके लिये चन्द्रमा-विचार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सुगम रूपमें इसका विचार निम्न प्रकारसे किया जा सकता है—

पूर्व—	१ मेष,	५ सिंह,	९ धनु।
दक्षिण—	२ वृष,	६ कन्या,	१० मकर।
पश्चिम—	३ मिथुन,	७ तुला,	११ कुम्भ।
उत्तर—	४ कर्क,	८ वृश्चिक,	१२ मीन।

अब जिस दिशामें—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—यात्रा करनी हो, उधर मुख करके खड़े हो जायँ। पंचांगमें '**चन्द्राशयः**' के अन्तर्गत प्रतिदिनके अनुसार राशिके अनुरूप चन्द्रमाका स्थान अंकित रहता है। यदि चन्द्रमा सम्मुख पड़े तो अत्युत्तम, दक्षिण रहे तो उत्तम, परंतु पीठपर पड़े या वाम रहे तो यात्रा नहीं करनी चाहिये। वैसे अत्यावश्यक रहनेपर अमृतघटी अथवा माहेन्द्रयोग निकालकर यात्रा करनेसे भी शुभ-ही-शुभ होता है। अमृतघटी और माहेन्द्रयोग प्रतिदिन रहा करता है। उसमें तिथि, वार, दिक्शूल, करण आदिका विचार नहीं किया जाता। महाकाल भगवान् शिवकी कृपासे सर्वमंगल-ही-सर्वमंगल हो जाया करता है—

ज्योतिषां ग्रहशास्त्राणां सारमुद्धृत्य यत्नतः।
क्रियते मिहिरेणेदं नराणां हितकाम्यया॥
न वारतिथिनक्षत्रं न योगः करणं तथा।
शिवस्याज्ञां समासाद्य देवकार्यं विचारयेत्॥
माहेन्द्रे विजयो नित्यममृते कार्यशोभनम्।

(माहेन्द्रादियोगचक्रम्)

दिनमें सूर्योदय-समयानुसार और रातमें सूर्यास्त-समयानुसार दण्डोंको जोड़ना चाहिये। ढाई दण्डोंका एक घण्टा होता है।

ज्ञातव्य है कि योगविज्ञानने मनुष्यशरीरके अन्दर भी आकाशकी परिकल्पना की है और उसपर बाह्याकाशस्थित ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों और ऋतुओंके प्रभावोंको स्पष्टतया दर्शाया है। ग्रहोंके बुरे प्रभावोंके शान्त्यर्थ नवग्रहपूजन एवं नवग्रहहवनकी विधि भी बतायी गयी है। शीघ्रतामें सुप्रभावके लिये तन्त्रका भी आश्रय लिया जाता है। इसीसे सफल ज्योतिर्विद् बननेके लिये ज्योतिषशास्त्र, योगशास्त्र तथा तन्त्रशास्त्रको जाननेके साथ-साथ पूजा-अर्चा, उपासना, साधना और सिद्धिकी प्राप्ति भी अपेक्षित है। आचारवान् होना तो अनिवार्य है ही। वाक्सिद्धिके लिये अनिवार्यता है—सत्यवचन और सदाचारकी।

मंगलरूप गणेश, कल्याणस्वरूप भगवान् शिव, परिपालक विष्णु, अधिष्ठात्री—काली, लक्ष्मी, सरस्वती एवं प्रत्यक्ष देवता सूर्यकी आराधना करनेसे दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। ऐसा हो जानेसे बिना कुण्डली और हस्तरेखा देखे पूर्ण सत्य फलकथन किया जाता है। नारद, वसिष्ठ, अगस्त्य, गर्ग, वेदव्यासप्रभृति ज्योतिर्विद् दिव्यदृष्टिसम्पन्न थे।

संसारके सबसे महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य-जैसे ज्योतिर्विद् हों तो 'त्रुटि' सिद्धान्तके अन्तर्गत कालके १/२४००० सेकेण्डपर विचारकर इष्टकालको सुनिश्चित करते हुए अवश्य सही-सही फलकथन किया जा सकता है, परंतु सामान्यतया ऐसा होता नहीं है। जन्म-समय अंकित करनेमें अधिकांश लोगोंद्वारा पूरी सतर्कता नहीं

बरती जाती। इसीसे फलकथनकी सत्यता शतप्रतिशत सिद्ध नहीं होती। इसके अतिरिक्त ज्योतिषग्रन्थोंमें अंकित ग्रह-नक्षत्र-राशिफलोंको समान रूपसे प्रायः सबकी कुण्डलियोंमें उतार दिया जाता है। ज्ञातव्य है कि प्रत्येक व्यक्तिका प्रारब्ध, ग्रहदशा, नक्षत्र-प्रभाव एवं राशिफल-चक्र अलग-अलग हुआ करता है। अक्षरानुसार 'सी' अक्षरसे आरम्भ होनेवाले नामको कुम्भ राशिके अन्तर्गत रखकर विद्यार्थियोंके परीक्षाफलके सम्बन्धमें भविष्य-कथन किया गया था। 'सी' अक्षरसे आरम्भ होनेवाले एक विद्यार्थीका परीक्षाफल घोषित हुआ—प्रथम वर्गमें प्रथम, पर 'सी' से आरम्भ होनेवाले दूसरे विद्यार्थीका परीक्षाफल घोषित हुआ असफल। राशिके साथ ग्रहोंको मिलाकर जन्म-नक्षत्रपर सम्यक् विचार करना भी आवश्यक है। शनिग्रहको सामान्यतः दरिद्रता और बाधाका हेतु माना जाता है, परंतु लग्नविचारसे यदि शनिदेव मकर एवं तुलाराशिके हों या फिर सूर्यको देख रहे हों तो वे धन, यश, मान, सर्वोच्च सफलता, उच्चतम पद आदिके प्रदाता भी हो जाते हैं। '**ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा**'—इस हनुमन्मन्त्र (अगस्त्य-संहिता)-का पाठ किया जाय तो उन्नतिके सम्बन्धमें कहना ही क्या! क्रियमाणकर्म प्रारब्धसे अधिक प्रबल हो जाता है।

वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र धर्मशास्त्रका नियामक तथा चिकित्साशास्त्रका पथ-प्रदर्शक होता है। आरोग्यके सम्बन्धमें उसका निर्देश अतिकल्याणकारी हुआ करता है। धर्मसे अलग होनेपर धन सर्वनाशका कारण बन जाता है—'**धर्मार्थे न्यायमुत्सृज्य न तत् कल्याणमुच्यते**' (महा० शान्ति० २९४। २५)। ज्योतिषशास्त्रज्ञ एवं धर्मशास्त्रज्ञ वेदव्यासजीने कहा है कि आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्रादि परमात्माके अधीन ही तो हैं—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४१)

सब कुछ जाननेका एक ही उपाय है और वह है पराविद्या—'**अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते**' (मुण्डकोपनिषद् १। १। ५)। ज्योतिर्विज्ञानकी अन्यतम आध्यात्मिक मान्यता भी यही है।

ज्योतिषकी उपादेयता और इसके ज्ञानकी आवश्यकता

(श्रीमेघराजजी अग्रवाल)

ज्योतिषद्वारा भविष्यकी जानकारी मिलनेपर हम इस जीवनकी कठोर और यातनाप्रद विपत्तिको एक सीमातक उसी प्रकार अपने अनुकूल बना सकते हैं, जैसे नक्शा या परिचय पाकर हम किसी नये स्थानका सुगमतासे दर्शन कर सकते हैं। भटकाव या दिशा-भेदसे बच सकते हैं। दुनियामें कष्टोंकी कमी नहीं तो उपायोंकी भी कमी नहीं। औषधियोंका विधिसे प्रयोग, मन्त्रोपासना, रत्नधारण, यन्त्र एवं तन्त्र—ये सब मनुष्यके कल्याणके लिये, हमें सुखी बनानेके लिये रचे गये हैं। बात इतनी-सी ही है कि हम अपनी विषमताका निदान कैसे और कितना कर सकते हैं तथा उसका उपचार करनेकी ललक और साहस हममें कितना है?

ज्योतिषशास्त्र प्रकटमें सूर्योदय, सूर्यास्त, ग्रहण, राशि आदिका हमें ज्ञान दिलाता है; भविष्यमें होनेवाले ग्रहण, हमारी स्थिति आदिका ज्ञान कराता है। हर व्यक्ति अपने-अपने लिये ग्रहजनित अनिष्टकारी फलका ज्योतिषमें बताये समाधानद्वारा निराकरणकर अपने निजी जीवनका पथ-प्रदर्शन कर लेता है। जैसे बल्ब, पंखे आदि उपकरण विद्युत्की क्रियाके परिणाम हैं, स्वयं संचालित नहीं होते, उसी तरह हम ज्योतिषके अनुसार ही अपना जन्मकाल एवं भविष्यका कार्य जानते हैं। मृत्यु निश्चित है तो भी ज्योतिषद्वारा कुछ हदतक

जन्मकुण्डली उम्र बता देती है। पूर्व-अनुमानसे वर्षा, गर्मीका बढ़ना-घटना बताया जाता है, वह भी ज्योतिषका ही अंग तो है। जैसे कोई व्यक्ति गंगाकी धारामें बहकर उसके यात्रापथ तथा विविध भौगोलिक प्रभावोंको भोगनेको बाध्य है। उसी प्रकार हम अपने जन्मकाल, जन्मस्थान, जन्मकारणके स्वयंसिद्ध प्रभावोंको भोगनेको बाध्य हैं। इस यात्रामें प्रभावोंका आकलन करके सुरक्षित तथा सुविधाजनक रूपसे गन्तव्यतक पहुँचना हमारी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिताका परिचायक होता है। इसके लिये ज्योतिषके ज्ञानकी आवश्यकता एवं उपादेयता सिद्ध होती है।

मैं अपने जीवनकी एक घटनासे इसे माननेको बाध्य हूँ। मेरे जन्मके समय ही एक विद्वान् पण्डितजीद्वारा जन्मपत्री बनायी गयी, जो आज भी मेरे पास है, उसमें उपसंहारमें लिखा है, पूर्वजन्ममें इसके हाथसे एक गर्भिणी हिरणीकी आखेटमें हत्या हो गयी, इसलिये सन्तान होनेमें शंका है, पर सन्तानगोपाल आदिका उपाय करनेसे कुछ फल भगवान्‌की दयासे हो सकता है। शादीके बाद लगभग १५ वर्षतक कोई सन्तान नहीं हुई, बादमें वाराणसी जाकर सन्तानगोपालका पाठ, पूजन एवं अन्य धार्मिक कार्योंको किया गया। ईश्वरकी कृपासे एक कन्या हुई, बादमें फिर कोई सन्तान नहीं हुई। वह सन्तान ज्ञानवती, बुद्धिमती हुई पुत्रकी तरह। आज भी लगभग ४४ वर्षकी उम्र है। वह पुत्र, पुत्रियों, पतिके साथ सुखी एवं स्वस्थ है। हम भी पति-पत्नी ७४ वर्षकी उम्रमें भी सकुशल रहकर ईश्वरभक्ति, सत्संग, जप-ध्यानकर अपना जीवनयापन कर रहे हैं। यह ज्योतिषकी उपादेयता एवं ज्ञानका ही परिणाम है। हमारे कर्मानुसार हमारे भविष्यकी व्यवस्था होती है। श्रीरामचरितमानसमें वर्णन है कि राजा दशरथजीने अपने अन्तिम कालमें श्रवणकुमारकी बाणसे हत्या एवं उनके पिताद्वारा दिये शापका स्मरणकर कौसल्याजीसे सारा वृत्तान्त बताया था—

तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥

(रा०च०मा० २।१५५।४-५)

पूर्वजन्ममें प्राणियोंके द्वारा जो भी शुभाशुभ कार्य किये गये हैं, उन कर्मोंके फलोंको प्राणी इस जन्ममें या अगले जन्ममें किस प्रकार भोगकर समाप्त करेगा, यही ज्योतिष हमें बतलाकर रास्ता प्रशस्त करता है। जैसे अन्धकारमें पड़ी हुई वस्तुको दीपकका प्रकाश बतलाता है, उसी तरह हम अनजान मनुष्योंको ज्योतिष ज्ञान कराकर सचेत करता है।

कहा गया है, पाश्चात्य ज्योतिषी कीरोने अपनी पुस्तकमें उल्लेख किया है कि जब वे भारत-भ्रमण करने आये थे तो कुछ ब्राह्मणोंने प्रकृतिके गूढ़ रहस्योंका ज्ञान उन्हें कराया था। भारतमें यह ज्योतिषशास्त्र पूर्वकालसे ही है। यह भी सत्य है कि ज्योतिष कठिन विषय है। इसे समझना सबके वशकी बात नहीं है। जन्मपत्रिका बनाना आसान नहीं। फिर बनाकर देखना एवं समझना और भी कठिन है। गणितकी जटिल प्रक्रियासे निकलकर फलितके जालमें मनुष्य फँस जाता है। इसलिये इसके महान् जानकारसे ही हमें अपनी समस्याओंकी जानकारी एवं समाधान जानना चाहिये।

आजकल भविष्यकी जानकारी लेना रिवाज हो गया है। कोई हस्तरेखासे, कोई जन्मपत्रिकासे, कोई अंक ज्योतिषसे तो कोई तान्त्रिकोंसे भविष्यको जाननेका प्रयास करता है। कुछ लोग इसे व्यापार बनाकर भ्रमित करते हैं या भविष्यको अन्धकारमय बतलाकर भयभीत करते हैं। इनसे सावधान ही रहना चाहिये। जप, ध्यान, स्वाध्याय, ईश्वरभक्तिद्वारा जैसी भी हमारी स्थिति है, उसे आनन्दमय, सुखमय बना सकते हैं। इसीलिये कहा गया है कि *'हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।'* भविष्यको अनुकूल बनाकर सन्तोषकर प्रतिकूलतामें भी अनुकूलताका दर्शन कर सकते हैं। ज्योतिषकी यही उपादेयता उसे आजकी आवश्यकताकी ओर ले जाती है।

ज्योतिषविद्या सत्कर्मकी उत्प्रेरिका है

(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०)

'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रं ज्योतिषम्' अर्थात् सूर्यादि ग्रह एवं कालका बोध करानेवाली विद्या ज्योतिष है। यह वेदके छः अंगोंमेंसे एक है। वेदोंके छः अंगों या उपकारकोंका विवरण इस प्रकार है— शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष। मन्त्रोंके उचित उच्चारणके लिये शिक्षाका, कर्मकाण्ड और यज्ञीय अनुष्ठानके लिये कल्पका, शब्दोंके रूप-ज्ञानके लिये व्याकरणका, अर्थ-ज्ञानार्थ शब्दोंके निर्वचनके लिये निरुक्तका, वैदिक छन्दोंके ज्ञानहेतु छन्दका और अनुष्ठानोंके उचित काल-निर्णयके लिये ज्योतिषका उपयोग मान्य है।

ज्योतिषशास्त्रका ज्ञाता ही यज्ञोंका यथार्थ ज्ञाता कहा गया है, यथा—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥

(वेदांग ज्योतिष ३)

'ज्योतिष' वेदपुरुषका चक्षु है—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

(पाणिनीय शिक्षा ४१-४२)

'ज्योतिष' को वेदपुरुषका चक्षु कहनेका तात्पर्य स्पष्ट है कि जिस प्रकार चक्षुर्विहीन व्यक्ति अपने कार्य-सम्पादनमें असमर्थ रहता है, उसी प्रकार ज्योतिष-ज्ञानसे रहित पुरुष वैदिक कार्योंमें सर्वथा अन्धा रहता है।

ज्योतिषका उद्भव-स्थान योग-विज्ञान है। योगियोंने योगाभ्यासके द्वारा शरीरके भीतर ही सौरमण्डलके दर्शन किये और तदनुसार आकाशीय सौर-मण्डलकी व्यवस्था की। ऋग्वेद और शतपथब्राह्मण के अध्ययनसे स्पष्ट है कि आजसे हजारों वर्ष पूर्व भारतीयोंने खगोल और ज्योतिषशास्त्रका मन्थन किया था। ज्योतिषसे सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन दो ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं। इनमेंसे ऋग्वेदसे सम्बन्धित 'आर्च ज्योतिष' है। इसमें ३७ श्लोक हैं। यजुर्वेदसे सम्बन्धित 'याजुष ज्योतिष' है। इसमें ४३ छन्द हैं। वेदांग ज्योतिषके कर्ताका नाम 'लगध' भी आर्च ज्योतिषग्रन्थमें उल्लिखित है। यथा—

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः॥

(आर्च ज्योतिष २)

जीवनसे सम्बन्धित सत्यका विश्लेषण ज्योतिषशास्त्र कराता है। 'भारतीय संस्कृति' मानवको सही मानव बनानेकी निर्देशिका है। ऋग्वेद स्वयं कहता है कि **'मनुर्भव'** (ऋक्० १०।५३।६) अर्थात् हे मनुष्यो! सही मानव बनो। मनुष्यको सही मानव बनानेके लिये गृह्यसूत्रोंमें नियम एवं विधि-विधानसे सोलह संस्कारोंकी सम्यक् विवेचना है। ज्योतिषशास्त्रकी इन संस्कारोंके सम्पादनमें प्रमुख एवं महनीय भूमिका है। सोलह संस्कारोंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गर्भाधान-संस्कार है। ज्योतिष कहता है कि गर्भाधान शुभ मुहूर्त एवं शोभन काल या शुभ समयमें ही करणीय है। शोभन समय ज्योतिषके आधारपर ही ज्ञातव्य है। अच्छे समयमें किया गया आधान जातकके जन्म-संस्कारको शोभन बनाता है। अच्छे या बुरे ग्रह निजस्वरूपानुसार जातकके स्वरूपपर अवश्य प्रभाव डालते हैं। यथा—

'एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम्।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम्॥'

(लघुजातक ४।८)

देवी कैकसी और महर्षि विश्रवाका असमयमें सहवास-कार्य इसका उल्लेखनीय उदाहरण है। इसी

प्रकार महर्षि कश्यप और दितिका असामयिक सम्मिलन दैत्य-सन्ततिके प्रभवका कारण बना। महर्षि वेदव्यासने भी अपनी माँ सत्यवतीद्वारा सन्तति-उत्पत्तिके लिये प्रेरणा दिये जानेपर उन्हें प्रदूषित समयका प्रज्ञान करानेका उपक्रम किया था, किंतु उपेक्षा करनेसे धृतराष्ट्र-जैसे अनादृत पुत्रकी प्राप्तिका कुफल उन्हें भोगना पड़ा था।

अच्छी सन्ततिप्राप्तिहेतु ज्योतिषशास्त्रद्वारा निर्दिष्ट समय ही श्रेयस्कर एवं उपादेय होता है। गर्भाधान-संस्कारके लिये सर्वथा उपयुक्त समयका परिज्ञान होना ही चाहिये तभी मानव एवं दैवी शक्तिसम्पन्न सन्ततिकी प्राप्ति होती है। श्रेष्ठ सन्ततिप्राप्तिहेतु गर्भाधानके समय संस्कारविषयक मुहूर्तका विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

व्यक्तिका श्रेष्ठ भूषण शील है। कहा भी गया है कि—

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्॥

(नीतिशतकम् ८३)

शीलवान् सन्तानकी प्राप्तिके लिये शुभ यज्ञ या शुभकर्म अपेक्षित है। राजा दशरथकी वांछा सुपुत्रप्राप्तिकी थी। उन्होंने अपने गुरुप्रवर महर्षि वसिष्ठके आदेशानुसार उक्त कार्यहेतु ज्योतिषशास्त्रद्वारा निर्दिष्ट शुभ समयमें यज्ञ सम्पन्न कराया था, यथोल्लेख है—

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥

(रा०च०मा० १।१८९।५)

ज्योतिषनिर्दिष्ट शुभ समयसे शुभयज्ञकी सम्पन्नतासे शुभ समयमें गर्भाधानसे राजा दशरथके घर पुत्रोत्पत्तिके समय सभी ज्योतिषीय अंग अनुकूल बन गये थे, यथा उल्लेख है—

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥

(रा०च०मा० १।१९०)

ज्योतिषद्वारा निर्दिष्ट शुभ समयके अनुपालनसे राजा दशरथकी चारों सन्ततियाँ रूप, शील और समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न थीं—

चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥

(रा०च०मा० १।१९८।६)

'ज्योतिष' विज्ञानसम्मत शास्त्र है। यह शुभ नक्षत्र, शुभ ग्रह, शुभ तिथि, शुभ वार और शुभ योगका परिज्ञान कराते हुए व्यक्तिको उसके भलेके लिये अपने उक्त शुभ पंचांगोंमें सुकर्म करनेके लिये उत्प्रेरित करता है। व्यक्तिके सत्कर्म या दुष्कर्म ही उसके साथ जाते हैं। कहा भी गया है कि **'धर्म एव अनुगच्छति'** अर्थात् व्यक्तिके साथ उसका धर्म-कर्म ही अनुसरण करता है।

'ज्योतिष' हमारे जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्तके समस्त कार्य-कलापोंका हस्तामलक दर्शन कराता है। कहा भी गया है—

कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहाः कर्मफलप्रदाः॥
सृष्टिरक्षणसंहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः।

(बृहस्पतिसं० १।६-७)

स्पष्ट है कि जब सब कुछ ग्रहादिके अधीन है तो हम अच्छे ग्रह-नक्षत्रका परिज्ञानकर अच्छे कार्योंमें संलग्न क्यों न हों? सभी मनुष्योंको गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्त समस्त कार्योंको शुभ समयमें करना चाहिये, तभी व्यक्ति मनस्विता, तपस्विता, तेजस्विता, ओजस्विता और यशस्वितासे सम्पन्न होकर अपना मानव-जीवन धन्य बनाता है।

'ज्योतिषशास्त्र' व्यक्तिके पुनर्जन्मको भी प्रकाशित करता है। जन्मांग या जन्मपत्री व्यक्तिके पूर्वजन्मका दर्पण होती है। दैवज्ञ वराहमिहिरने बृहज्जातकमें उल्लेख किया है कि सूर्य और चन्द्रमामें जो बली हो, वह यदि बृहस्पतिके द्रेष्काणमें स्थित हो तो जीव देवलोकसे, यदि चन्द्रमा या शुक्रके द्रेष्काणमें हो तो पितृलोकसे, सूर्य या मंगलके द्रेष्काणमें स्थित हो तो तिर्यग्लोकसे तथा शनि या बुधके द्रेष्काणमें हो तो जीव नरकलोकसे आया हुआ

होता है—

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः।
दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितत्र्यंशनाथाः
प्रवरसमकनिष्ठास्तुङ्गह्रासादनूके ॥

(बृहज्जातक, नैर्याणिकाध्याय १४)

व्यक्तिके आगामी जन्मको भी ज्योतिषके माध्यमसे सहज ही जाना जा सकता है। आचार्य वराहमिहिर ने अपने ज्योतिष-ग्रन्थ बृहज्जातकमें उल्लेख किया है कि जन्मलग्नसे ६।७।८ स्थानमें जो ग्रह बलवान् हो, उसका जो लोक हो, उस लोकमें मरणोपरान्त व्यक्ति जाता है। यदि ६।७।८ इन स्थानोंमें ग्रह नहीं हों तो छठवें, आठवें भावगत द्रेष्काणके स्वामियोंमें जो बली हो, उसका जो लोक कहा गया है, उस लोकमें व्यक्ति गमन करता है। (बृहज्जातक २५।१५)

पूर्वजन्म और परलोकगमनके विषयमें ज्योतिषाचार्य मन्त्रेश्वरजीका विचार भी महत्त्वपूर्ण है। उनके मन्तव्यसे नवमेशके अनुसार जातकके पूर्वजन्मका ज्ञान तथा पंचमेशके अनुसार परलोकका विचार करना चाहिये। यथोक्त है—

धर्मेश्वरेणैव हि पूर्वजन्म-
वृत्तं भविष्यज्जननं सुतेशात्।
तदीशजातिं तदधिष्ठितर्क्ष-
दिशं हि तत्रैव तदीशदेशम्॥

(फलदीपिका १४।२४)

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र जीवके जन्म-जन्मान्तरोंका प्रत्यक्ष दर्पण है। व्यक्ति श्रेष्ठ और उत्कृष्ट लोक एवं यशस्वी योनिको प्राप्त करे, इस हेतु ज्योतिषविद्या हमें आगाह भी करती है और उच्चस्थ ग्रहयोगमें सत्कार्य करनेके लिये उत्प्रेरित भी करती है। श्रेष्ठ पुरुषका जन्म कालपुरुषके उत्तमांगकी रश्मियोंके स्पर्शसे होता है। कालपुरुषके मध्यमांगकी रश्मियोंके प्रभावसे मध्यबुद्धि या मन्दमति, अल्पतावाली ग्रहरश्मियोंके प्रभावसे उदासीन बुद्धि एवं अधमांग रश्मिवाले ग्रहोंके प्रभावसे विवेकशून्य या हीन आचरणवाले व्यक्ति जन्म लेते हैं। ग्रहोंके ज्ञानसे तदनुसार उच्च ग्रहोंमें कार्योंके व्यवहरण या सम्पादनसे हीन वर्णमें भी उच्च ग्रहकी रश्मियोंके प्रभावसे श्रेष्ठ श्रीसम्पदा-सुबुद्धि-सदाचरणसंयुक्त व्यक्ति प्रभव पा जाता है। ऐसा प्रभव कुलका दीपक बनकर महान् यशस्वी होता है। स्पष्ट है कि गगनगामी ग्रह-नक्षत्र अपनी उच्चस्थितिमें होनेपर जातकपर विशेष प्रभाव डालते हैं एवं उसे विद्या, बुद्धि, विवेक तथा ऐश्वर्यसम्पन्न बनाते हैं। अतएव विशेष विशिष्ट कार्योंके लिये ग्रह-नक्षत्रोंकी उच्चता देखना तथा शुभ मुहूर्त-शोधन अत्यन्त आवश्यक है। गर्भाधान एवं गर्भस्थ शिशुके संस्कारोंके लिये ग्रह, नक्षत्र, तिथि, वार, योगकी उच्चता एवं अनुकूलता अपरिहार्य है।

'ज्योतिष' ज्ञाननेत्र है, जो हमें दिखा देता है कि अमुक करणीय कर्म है और अमुक अकरणीय। यह जीवनसे सम्बद्ध सत्यासत्यका सुबोध कराता है। विवेकी पुरुष ज्योतिषज्ञानसे करणीय ही ग्रहण करते हैं। अस्तु, ज्योतिषविद्या सत्कर्मकी उत्प्रेरक बनकर दिशाज्ञान कराकर अभीष्टकी प्राप्तिका साधन बताती है।

'ज्योतिषशास्त्र' पूर्ण परिपक्व ज्ञान है। इस विषयकी अपरिपक्वता सत्योन्मेषकी प्राप्तिमें बाधक होती है। यथासमय, यथोचित कार्योंकी सम्पन्नताके लिये ज्योतिषज्ञान परमोपयोगी सिद्ध होता है। भारतीय परम्परामें साढ़े तीन मुहूर्त ऐसे सिद्ध सुकीर्तित हैं, जिनमें पवित्र मनसे एवं प्रसन्न चित्तसे सम्पादित कार्य अवश्य ही शुभ फलप्रदायी होते हैं। ये शुभ सिद्ध मुहूर्त इस प्रकार हैं—अक्षयतृतीया, विजयादशमी (दशहरा), दीपावलीके उपरान्त प्रतिपदाका अर्धदिन तथा बसन्तपंचमी।

ज्योतिषविद्या अभीष्ट सिद्धिहेतु सत्कर्मकी सम्यक् सुबोधिका एवं उत्प्रेरिका है। इस विद्याकी उपयोगिता ज्ञान और विज्ञान तथा व्यवहार और अध्यात्म सभी क्षेत्रोंमें सिद्ध हो चुकी है। मौसमकी जानकारीका प्रमुख आधार ज्योतिष ही है। वर्षाकी सम्भावनाएँ, बीजवपन, कूपखनन, गृहनिर्माण, जनन-प्रजनन, उत्सव-महोत्सव-

आयोजन, विद्याप्राप्ति, जय-विजय, यज्ञ-अनुष्ठान एवमेव व्यक्तिके जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त सभी कार्योंके शुचिपूर्ण एवं शोभन सम्पादनके लिये ज्योतिष परम सहायक बनकर मार्गदर्शन कराता है। कहते हैं कि 'विजयश्री'-प्राप्तिहेतु युधिष्ठिरके नामसे महाभारतके युद्ध-प्रारम्भका मुहूर्तशोधन ज्योतिषविद्यासुविज्ञ पाण्डुपुत्र सहदेवने किया था। स्पष्ट है कि ज्योतिषविद्याका मर्मज्ञ पण्डित तमावृत वस्तुको भी दिखलाता है। यह विद्या भूत, वर्तमान और भविष्यकी दिग्दर्शिका है।

निष्कर्ष यह है कि ज्योतिषविद्या सभी वस्तुओंके, सभी विद्याओंके एवं लोक तथा परलोकके परिज्ञानके लिये भी प्रदीपका कार्य करती है। यह अभीष्टका बोध कराती है एवं सत्कर्मके लिये उत्प्रेरक बनकर मानवमात्रके कल्याणकी श्रेष्ठ साधनरूपा है।

मानव-जीवन और ज्योतिष

(डॉ० श्रीहरिकृष्णजी छँगाणी)

मानव स्वभावसे ही अन्वेषक प्राणी है। वह संसारकी प्रत्येक वस्तुके साथ जीवनका तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। अपनी इसी प्रकृतिके कारण वह शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञानद्वारा प्राप्त अनुभवोंको ज्योतिषकी कसौटीपर कसकर देखना चाहता है कि ज्योतिषका मानव-जीवनमें क्या स्थान है?

ज्योतिषविज्ञान क्या है? मानव उसमें अधिक अभिरुचि क्यों लेता है? इसलिये कि वह देखता है कि प्रकृतिमें निहित शक्ति उसके जीवनपर महान् प्रभाव डाल रही है। एक व्यक्ति धनवान्-गृहमें जन्म लेता है तो दूसरा भिखारीकी झोंपड़ीमें। एक अपना जीवन दुःखपूर्ण व्यतीत करता है और दूसरा सानन्द। इसका कारण क्या है? कारण स्पष्ट है—प्रकृतिमें निहित शक्ति यह सब प्रभाव डाल रही है। तब इस अदृश्य शक्तिको जाननेका क्या साधन है? साधन है—ज्योतिषविज्ञान। इस विज्ञानके अन्तर्गत उस समूची प्रक्रियाका प्रतिपादन आ जाता है, जिससे मनुष्यके जीवनमें आनेवाले हर्ष-विषाद, हानि-लाभ, उत्थान-पतन आदिको पहलेसे ही जाना जा सकता है।

वेदके छः अंगोंमेंसे ज्योतिषशास्त्र भी एक अंग है। ज्योति शब्दका अर्थ है—प्रकाश। प्रकाशसे हमारा तात्पर्य ईश्वरीय प्रकाशसे है, जिससे समस्त चराचर जगत् प्रकाशित है। इस प्रकाशका सम्बन्ध नेत्रसे भी है। उस जगन्नियन्ता परमात्माका नेत्र सूर्य है—'**चक्षोः सूर्योऽजायत।**' इसके अतिरिक्त '**ज्योतिषं वेदचक्षुः**' कहकर ज्योतिषको वेदपुरुषका नेत्र कहा गया है। इस शास्त्रमें प्राणियोंकी जन्मकाल-सम्बन्धी ग्रहस्थितिसे उनके जीवनमें घटित होनेवाले शुभाशुभ कार्योंका निर्देश किया गया है। आचार्य वराहमिहिर कहते हैं—'पूर्वजन्ममें जो शुभाशुभ कर्म किया जाता है, उसको यह शास्त्र उसी प्रकार स्पष्ट कर देता है, जिस प्रकार घनान्धकारमें अदृश्य पदार्थोंको दीपक प्रकाशित कर देता है।'

मनुष्यकी अपना भविष्य जाननेकी इच्छा उतनी ही पुरातन है, जितना कि स्वयं मनुष्य। 'To know the future has been the greatest ambition of man'.

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम्॥

अर्थात् जो सर्व-संग परित्यागकर वनका आश्रय ले चुके हैं, ऐसे राग-द्वेषशून्य, निष्परिग्रह मुनिजन, सन्त एवं महात्मा भी ज्योतिषशास्त्रवेत्ताओंसे भविष्य ज्ञात करनेके लिये उत्सुक रहते हैं, तब साधारण संसारी प्राणीकी तो चर्चा ही क्या?

विश्वमें प्राणिमात्रके जीवनका स्तर अनन्त ब्रह्माण्डके प्राकृतिक प्रभावपर ही अवलम्बित है। इसमें सन्देह नहीं है; क्योंकि '**यद् ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे**' इस सिद्धान्तसे यह स्पष्ट विदित होता है कि जिन तत्त्वोंसे ब्रह्माण्डका सृजन हुआ है, उन्हीं तत्त्वोंसे ब्रह्माण्डगत समग्र पिण्डोंका भी सृजन हुआ है। ग्रहोंका प्रभाव जीवनपर पड़ता है, यह कल्पना नहीं प्रत्यक्ष सत्य है। समुद्रमें ज्वार-भाटेका कारण चन्द्रमा ही माना जाता है। चन्द्रमाके ही प्रभावसे

समुद्रमें ज्वार-भाटा आता है, इस तथ्यको सभी वैज्ञानिक स्वीकार कर चुके हैं।

मनुष्यके शरीरमें ८० प्रतिशत जल है, अत: चन्द्रमाका प्रभाव मनुष्यके कार्यकलापोंपर होना निश्चित है। अमावस्या एवं पूर्णिमाको फाइलेरियाकी वृद्धिसे ज्ञात होता है कि इस रोगमें भी प्रधान कारण चन्द्रमा है। अमेरिकामें हुए एक सर्वेक्षणके अनुसार अधिकांश हत्याकाण्ड एवं अपराध अमावास्या और पूर्णिमाको ही होते हैं। डॉ० बुड़ाईके अनुसार मनुष्योंमें कामुकता, पागलपन एवं मिरगीका दौरा उन्हीं दिनोंके आसपास चलता रहता है। सूर्यका प्रभाव भी स्पष्ट है। सूर्यकी गतिके अनुसार सूर्यमुखी नामक पुष्पमें परिवर्तन आता है। वह सूर्यकी ओर घूम जाता है। रूसके वैज्ञानिकोंने खोज की है कि जब आकाशमें सूर्यग्रहण होता है तो पक्षी जंगलमें २४ घण्टे पूर्व कलरव करना बन्द कर देते हैं। जंगलके सभी जानवर किसी अज्ञात भयसे ग्रसित होकर भयभीत हो जाते हैं। कुमुदिनी नामक पुष्प केवल चन्द्रकिरणोंसे ही खिलता है। इस पुष्पका रात्रिमें खिलना एक विशेष अर्थ रखता है। इसी प्रकार कमल दिनमें खिलता है और रातमें सम्पुटित हो जाता है। सूर्य एवं चन्द्रग्रहणके विषयमें गणना कई वर्ष पूर्व कर ली जाती है। अत: सिद्ध हो जाता है कि ग्रहोंका प्रभाव मनुष्य, पशु-पक्षी, स्थावर और जंगम सभीपर पड़ता है। यह शास्त्र प्रत्यक्ष है, जिसके गवाह सूर्य और चन्द्र सर्वदा घूम-घूमकर लोगोंको साक्षी देते हैं—**'प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यस्य साक्षिणौ।'**

ज्योतिषशास्त्र एवं चिकित्साशास्त्रका सम्बन्ध भी प्राचीनकालसे चला आ रहा है। एक चिकित्सकके लिये यह आवश्यक है कि वह ज्योतिषी भी हो। इससे उसे रोग-निदानमें सरलताका अनुभव होता है। आज अमेरिकामें अधिकतर डॉक्टर मेडिकल एस्ट्रोलॉजीका अध्ययन कर रहे हैं। सम्प्रति चिकित्साविज्ञानने वैज्ञानिक यन्त्रोंद्वारा जैसे एक्स-रे, रक्त-परीक्षण और रक्तचाप-परीक्षण आदिसे नि:सन्देह ही रोग-निदानकी दिशामें बहुत सुधार किया है, परंतु किसीकी बीमारीका उदय व्यक्तिके मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व, स्वभाव और अंग-रचनाओंके विश्लेषणपर आधारित होता है। उसके लिये जन्मकुण्डली ही व्यक्तिके स्वरूपका उद्‌घाटन कर सकती है। इस प्रकार रोग-निदानमें भी ज्योतिष-शास्त्रका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

प्राय: भविष्यवाणियाँ गलत होनेपर ज्योतिषशास्त्रको दोष दिया जाता है, परंतु गलत भविष्यवाणियोंके कारण इस प्रकार हैं—जन्म-समयका सही नहीं होना, गणितकी अशुद्धि, ज्योतिर्विद्‌का अल्पज्ञान।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तने अपनी पुस्तक 'भारत-भारती' में ठीक ही कहा है—

'विज्ञान से भी 'फलित ज्योतिष' हो रहा अब सिद्ध है।
यद्यपि अविज्ञों से हुआ वह निन्द्य और निषिद्ध है॥'

'सनातन काल-चेतना'

(आचार्य श्रीपानसिंहजी रावत)

न विद्यमान मैं सर्ग आदि में, केवल जागरण छवि मान।
था उद्‌भासित प्रतिफल कल्पों के, आदि-मध्य-अवसान॥
आदि सर्ग शिशुरूप मुदित, नयनों में नीरवताभर।
जगा रहा उन्मन्य अवस्था में, निज सहचर को ज्योतिर्धर॥
सर्ग मध्य में एक सचेतन, लहर-पुंज है विहँस रहा।
उस प्रभुतापूरित अन्तर में, नव उत्साह है दमक रहा॥
वह विराट् चेतन आभा का, कर वसुधा-अन्तर में नर्त्तन।
चाह रहा आलोक घोलना, संचारित प्रतिपल परिवर्त्तन॥
प्रतिपूरित चेतन प्राणों में, प्रतिदान हो रहा नूतन।
किन्तु विलसती अन्तस्तल में, काल-चेतना दिव्य सनातन॥

ज्योतिषनिरूपण—भ्रान्तिनिवारण

(एकराट् पं० श्रीश्यामजीतजी दूबे 'आथर्वण')

सृष्टिके दो सूत्र हैं—सूर्य और प्रकृति। सूर्य ही प्रकाशका एकमात्र स्रोत (सूत्र) है। प्रकृति ही गुणों (सत्, रज, तम)-का स्रोत (स्थान) है। **द्योतते इति ज्योतिः।** जिसमें चमक है, वह ज्योति है। **सूर्यो ज्योतिः**—यह वेदवचन है। **ज्योतिरेव ज्योतिषः।** ज्योति और ज्योतिषमें अभेद है, जैसे सूर्य एवं उसके प्रकाशमें। इसी प्रकार प्रकृति एवं उसके गुण अभिन्न हैं। जो सूर्यको जानता है, वह ज्योतिषी है और जो प्रकृतिको जानता है, वह भी ज्योतिषी है। सूर्यमें ज्योति है। चन्द्रमामें ज्योत्स्ना है। स्वस्फूर्त प्रकाशको ज्योति और परस्फूर्त प्रकाशको ज्योत्स्ना कहते हैं। ज्योति=ज्ञान। ज्योतिसे तमका नाश होता है। ज्ञानसे अज्ञान दूर होता है। ज्योति+णिनि=ज्योतिषी—ज्ञानी, प्रकाशयुक्त। सूर्य परम ज्योतिषी है। इस सूर्यका उदय जिसके हृदयाकाशमें हुआ है, वही ज्ञानी या ज्योतिषी है।

व्यक्ताव्यक्त प्रकृति महामाया जगन्माता विश्वात्मिका-द्वारा प्रतिपल ज्योतिषशास्त्रका उत्सर्जन नानाभाँति होता रहता है। प्रकृतिकी भाषा क्रियात्मक है। प्रकृतिके अवयव पंचभूतादिके माध्यमसे घटित होनेवाली घटनाओंका परिज्ञान अनेकों जनों, मुनियों, मनीषियोंको हुआ। इन्होंने उसे सम्यक् रूपसे प्रस्तुत किया। इसे ज्योतिषशास्त्रका नाम दिया गया है। जिससे लोगोंके मन-बुद्धिपर शासन किया जाय, उसका नाम शास्त्र है। ज्योतिषशास्त्र सर्वाधिक प्रभावशाली होनेसे समस्त शास्त्रोंमें सर्वोपरि एवं अग्रगण्य है। इसकी अनेक विधाएँ, शाखाएँ हैं।

इतिहास, पुराण, रामायण, तन्त्र एवं इतर ग्रन्थोंमें एतत्सम्बन्धी प्रचुर सामग्री है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनिके प्रत्यक्ष गोचर तथा राहु-केतुके अप्रत्यक्ष प्रभावकी संयुक्त विधासे ग्रहनक्षत्रजन्य ज्योतिषका आविष्कार हमारे पूर्वजोंने किया। इस ज्योतिषवृक्षका मूल सिद्धान्त है, तना संहिता है, फल भविष्यकथन है। जैसे फलहीन वृक्ष व्यर्थ है, वैसे ही फलितशास्त्र (परिणामवाचन)-के बिना ज्योतिष बुद्धिका बोझ है। फलित मनुष्यका मार्गदर्शक है। समाजमें फलितज्ञ आदरणीय है। शुष्क ज्ञान, जिसका जीवनमें उपयोग नहीं है, त्याज्य है। जीवनके संवर्धन, मार्गदर्शनहेतु उपयोगी समस्त ज्ञान ज्योतिषकी परिधिमें आता है। यह ज्योतिषीय ज्ञान व्यावहारिक होनेसे वरेण्य एवं वर्ण्य है। इसीका वर्णन ज्योतिर्विद् महर्षियोंने किया है।

माताके गर्भसे बाहर आनेवाला शरीरधारी जीव जातक कहलाता है। समयसापेक्ष ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थितिसे जातकके विषयमें जो कुछ कहा जाता है, उसकी सत्यताका आधार सिद्धान्त एवं लोकव्यवहारसे युक्त ऊहा एवं सत्यनिष्ठा है। असत्यमें प्रतिष्ठित व्यक्तिका ज्ञान अफल होता है, वाणी विफल होती है, क्रिया निष्फल होती है। ज्योतिषी सत्यके प्रति दृढ़-संलग्न होता है, वह सत्यचर्यामें रहता है और निर्भय तथा निर्लोभ होता है।

नवग्रह, द्वादश भाव एवं द्वादश राशियोंके त्र्यम्बकसे ज्योतिष-पुरुषका शरीर बनता है। यह ज्योतिषपुरुष ही काल है। इसका ज्ञाता कालज्ञ कहलाता है। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु नवग्रह हैं। ये सभी उदय एवं अस्त होते रहते हैं। उदय=दृश्य। अस्त=अदृश्य। राहु-केतु उदयास्तसे परे हैं, छाया ग्रह हैं। होनामात्र इनकी वास्तविकता है। अति प्रभावशाली होनेसे ये सतत मान्य हैं। इनका कोई अपना घर नहीं है। ये किरायेके घरमें अथवा बलात् दूसरेके घरमें रहते हैं। ये सदैव वामावर्त (वक्री) रहते हैं। ये स्थिर गतिसे चलते हैं तथा प्रत्येक राशिमें १८ महीने रहते हैं। सूर्य सदैव स्थिर स्वभावका तथा चन्द्रमा अस्थिर स्वभावका है। बुध और बृहस्पति नित्य द्विस्वभावके हैं। शुक्र, शनि, मंगल—ये तीनों कभी स्थिर और कभी अस्थिर स्वभाव रखते हैं। राहु-केतुका अपना कोई स्वभाव नहीं। ये जिस राशिमें रहते हैं, उसीके स्वभावको अपना लेते हैं।

नवग्रहोंमें दो वर्ग हैं—देव, दैत्य। सूर्य, मंगल, शुक्लपक्षका चन्द्रमा, बृहस्पति, केतु देववर्गमें आते हैं। शुक्र, शनि, बुध, राहु, कृष्णपक्षका चन्द्रमा दैत्यवर्गमें आते हैं। किसीसे वैर न रखनेवाला चन्द्रमा दोनों पक्षोंमें मान्य है। चन्द्रमा=मन। प्रत्येक व्यक्तिका मन कभी देव तो कभी दैत्यके गुणोंवाला होता है। वृद्धिको प्राप्त चन्द्रमा देव है। ह्रासमाण चन्द्रमा दैत्य है। मेष-वृश्चिक, धनु-मीन, कर्क-सिंह राशियाँ देववर्गकी हैं। वृष-तुला, मिथुन-कन्या, मकर-कुम्भ राशियाँ दैत्यवर्गकी हैं। कर्कराशिवाला व्यक्ति शुक्लपक्षी होनेपर देववर्गमें तथा कृष्णपक्षी होनेपर दैत्यवर्गमें गिना जाता है। स्वभाव-निर्धारणमें यह विशेष ध्यातव्य है। राहु-केतु कुटिल ग्रह हैं। लग्न या चन्द्रमाके साथ रहनेपर ये स्वभावनियन्ता होते हैं। केतु प्रकाश है। राहु अन्धकार है। उच्चतर ज्ञान केतु है। निम्नतर विद्या राहु है। दोनों गूढ ग्रह हैं तथा अपने-अपने वर्गमें बलिष्ठ हैं। मंगलका पोष्य केतु है। शनिका पोष्य राहु है। शरीरमें कटिके ऊपरका भाग केतु है, नाभिके नीचेका भाग राहु है। सिरके केश केतु हैं, अधो स्थानके बाल राहु हैं। व्यक्तिकी भूमिपर पड़ती छाया राहु है तथा पानी या दर्पणमें पड़ती छाया केतु है। राहु सदा अधोगामी मूल है तो केतु उपरिगामी तना। केतु दिन है। राहु रात्रि है। केतु आत्मगौरव है। राहु आत्माभिमान है। राहु-केतुके इस भेदको जो जाने, वही ज्योतिषमें निष्णात है।

स्वयंको जानना ही ज्योतिषशास्त्रका लक्ष्य है। बाह्य ऐश्वर्यके लिये ज्योतिष नहीं है, स्वयंमें निहित आन्तरिक ऐश्वर्यके दर्शनके लिये ज्योतिष है। सुपात्रको सब कुछ मिलता है, कुपात्रको कुछ नहीं मिलता। इस सत्यघोषको कौन नकारेगा? व्यक्तिको सर्वप्रथम अपना लग्न जानना चाहिये। लग्न=जन्मसमय—पूर्वी क्षितिजमें उदित राशि। १२ राशियाँ होनेसे १२ लग्न हैं। इसे भूलग्न कहते हैं। चन्द्रमा जन्मसमयमें जिस राशिमें होता है, उसे चन्द्रलग्न कहते हैं। राशि-चक्रकी आदिराशि मेष है। इसकी ब्रह्मलग्न संज्ञा है। प्रकृति/महत्तत्त्व/मस्तिष्कसंरचनाका ज्ञान यहाँसे होता है। इन तीन लग्नोंके समवेत अध्ययनसे व्यक्तिको अपनी प्रकृतिका बोध होता है। बोधके पश्चात् तदनुकूल कर्म करनेसे मोक्षका मार्ग प्रशस्त होता है। यही ज्योतिषीय ज्ञानकी सार्थकता है। ज्योतिषमें आत्मनिष्ठा सर्वोपरि है, वस्तुनिष्ठा गौण है। जो स्वयं अन्धा है, वह दूसरेको क्या दिशानिर्देश देगा? स्वयंके लिये ज्योतिष अपनाना साधु है, परार्थ असाधु है।

प्रत्येक ग्रहके भाव या राशिजन्य बारह फल हैं। नवग्रहों एवं बारह भावों या राशियोंके योगसे १२×९=१०८ फल या परिणाम होते हैं। जिसे इसका पूर्ण ज्ञान है, उसे श्री१०८ के अलंकरणसे भूषित माना जाता है। ज्योतिषके व्यापारी एवं ज्योतिषके आचारी अलग-अलग हैं। दोनोंका कोई मेल नहीं। ज्योतिषके फलकथनमें पाराशरपद्धति सर्वतोमुख एवं विश्वमान्य है। विंशोत्तरीदशापद्धतिका विज्ञान अत्यन्त गूढ़ है। २७ नक्षत्रोंपर ९ ग्रहोंका स्वामित्व तथा प्रत्येक ग्रहकी दशावर्षसंख्या बौद्धिक तर्कसे परे है। सटीक फल देनेसे यह सुमान्य है। यह सर्वविदित एवं प्रायोगिक सत्य है। दशान्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशापर्यन्त गणना केवल विंशोत्तरी प्रणालीमें है। इससे व्यवस्थामें अव्यवस्था तथा अव्यवस्थामें व्यवस्थाका परिज्ञान होता है। प्रत्येक शुभमें अशुभ तथा अशुभमें शुभका होना इसका प्रमाण है। निश्चिततामें अनिश्चितता तथा अनिश्चिततामें निश्चितता अथवा अप्रत्याशित फलका होना ज्योतिषसे प्रमाणित है। प्रत्येक जातकको अकालमृत्युका सामना करना पड़ता है। प्रत्येक जातककी मृत्यु चन्द्रमाकी प्राणदशामें होती है। यह घटी-पलात्मक होती है। इसमें वेदवाक्य प्रमाण हैं—**'चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः'** (अथर्व० १४।१।२४ एवं ७।८५।२)। चन्द्रमाके द्वारा दीर्घायुका उल्लंघन—नाश किया जाता है। अर्थात् चन्द्रमा अकालमृत्युका कारक है। चन्द्रमा (मन) प्रतिक्षण क्षीण या वृद्धिको प्राप्त होता रहता है। इसलिये यह आयुका हारक अथवा कारक है। जातककी मृत्यु तो निश्चित है, आयु निश्चित

नहीं है। आयुका संकोच एवं विस्तार जातकके अधिकारमें है। आयु (जीवन-विस्तार)-का आधार उसके पूर्वजन्मके कर्मफल हैं। हम अपने एवं अपने लोगोंके वर्तमान कर्मोंसे अपनी आयुका नाशन एवं वर्धन करते रहते हैं। विकर्मसे आयुका संकोच होता है। सुकर्मसे आयुका विस्तार होता है। इस सत्यसे जो परिचित है, वही सच्चा ज्योतिषी है।

आयुकी सूक्ष्म गणना करना व्यर्थ किंवा सुमूर्खता है। स्थूलरूपसे दीर्घायु, मध्यायु एवं अल्पायुका ज्ञान ही पर्याप्त है। तन्यका परिमापन करनेसे क्या लाभ? विषादसे आयु क्षीण होती है, प्रसादसे आयु बढ़ती है। विषाद एवं प्रसादका वासस्थान मन है। **'चन्द्रमा मनसो जातः'** (अथर्व० १९।६।७)। मनसे स्थूल शरीर प्रभावित होता है। स्थूल शरीर या लग्नका कारक सूर्य है। सूर्य आत्मा (शरीर, प्राण) है। कथन है—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (यजु० १३।४६)। इसलिये कुण्डलीमें चन्द्रमा एवं सूर्यकी स्थिति एवं बलका आकलनकर आयुकी ऊहा करनी चाहिये। महर्षि पराशरके अनुसार कलियुगमें मनुष्यकी सामान्य आयु १२० वर्ष है। प्रत्येक ग्रह एक निश्चित आयु देता है। सूर्य ६ वर्ष, चन्द्रमा १० वर्ष, मंगल ७ वर्ष, राहु १८ वर्ष, गुरु १६ वर्ष, शनि १९ वर्ष, बुध १७ वर्ष, केतु ७ वर्ष, शुक्र २० वर्ष है। सबका योग १२० वर्ष है। इसपर क्यों कहना अनुचित है। यह है और ध्रुव सत्य है।

वैवाहिक सम्बन्धोंमें कुण्डली-मिलान एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। आधुनिक समयमें कुल एवं गुणोंको प्रधानता न देकर अर्थ एवं स्वार्थको वरीयता दी जा रही है। विवाहमें अवरोध डालनेके लिये कुण्डलीका उपयोग हो रहा है। विवाह अब क्रय-विक्रयका सेतु एवं पाखण्डका प्रतीक है। कन्याके विवाहके सन्दर्भमें नाडीका विचार किया जाता है, किंतु अब कन्याका विवाह होता कहाँ है? इसलिये वर्ण, वैश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गण एवं भकूटपर्यन्त गुणोंका विचार करना समीचीन है। यहाँतक २८ गुण ही बनते हैं। नाड़ीके स्थानपर द्विजोंको गोत्रका विचार करना चाहिये। समगोत्रके विवाहसे उत्पन्न जातक वर्णसंकर होता है और वह श्राद्धके अयोग्य होता है। इससे कुलमें पितृदोषकी सृष्टि होती है। इससे कुलधर्म नष्ट होता है। विवाह कुलधर्मकी रक्षाके लिये किया जाता है। विवाह मात्र दो शरीरोंका मिलन नहीं, अपितु दो अन्तःकरणोंका या संस्कारोंका मिलन है। विवाह केवल उत्सव नहीं, संस्कार या पाणिग्रहण (आजीवन सहयोगनिर्वाहकी प्रतिज्ञा) है। इस पवित्र बन्धन (जो अग्निके साक्ष्यमें होता है)-का हमें सम्मान करना चाहिये। ज्योतिष इसमें सहायक है।

अपकृष्ट ज्योतिषियोंने कालसर्पयोग नामसे एक भय रचा है, जो वस्तुतः है नहीं। यह अविचार्य है। कुज (मंगल)-दोषका विचार विवाहपूर्व कन्याके विवाहके प्रसंगमें देखा जाता है। जब कोई कन्या रही नहीं तो ऐसी वयस्काके विवाहहेतु यह भी अब अविचार्य ही प्रतीत होता है। दाम्पत्यजीवनमें जो घटित होता है, वह होकर ही रहेगा। इसका निवारण नहीं है। इसके समाधानहेतु प्रशस्त उपाय करनेमें क्या जाता है? जो, जब, जहाँ होना है, वह पूर्वनिश्चित है। यह सब कुण्डलीगत ग्रहोंके अनुसार होगा। अतएव सब कुछ सहज होते देना चाहिये। जीवनमें ज्योतिषका उपयोग दालमें नमकके समान स्वादवर्धनार्थ है, न कि उदरभरणार्थ। दाम्पत्यका निर्वाह सन्तोष, सहनशीलता, सदाचरणसे होता है। दाम्पत्यक्लेश स्वार्थपरता, सेवाहीनता एवं पारस्परिक छिन्द्रान्वेषणसे होता है। कुण्डलीसे समाधान नहीं है। भाग्यका विधान अटल है। युगल-दम्पती यदि अपनेको एक खूँटे (ईश्वर—इष्ट)-से बाँध लें तो शुभ घटित होता है। जितने भी ज्योतिषीय उपाय हैं, वे सब तात्कालिक हैं। उग्र पुरुषार्थसे अभीष्ट-सिद्धि होती है। मनुष्य स्वयं भाग्यविधाता है, काल इसका प्रस्तोता है।

प्रत्येक कुण्डली गुणदोषयुक्त होती है। कुण्डलीमें पाँच ग्रहोंके उच्चमें होनेका जो फल है, वही फल पाँच ग्रहोंके नीचमें होनेका भी है। दोनों स्थितियोंमें जीवन कण्टकाकीर्ण होता है तथा प्रशस्तिपूर्ण भी। एकपक्षीय

दृष्टिसे कुण्डलीपर कभी विचार नहीं करना चाहिये, हर कोणसे कुण्डलीको देखना है। कारणका ज्ञान होनेपर ही निवारणका प्रयास करना साधु है। कुण्डलीमें सदैव आशाकी किरण खोजनी चाहिये। यह किरण नहीं है तो इसे उत्पन्न करना चाहिये। सकारात्मक दृष्टि लभ्य एवं प्रशस्त्य है। प्रश्न पूछा जाता है। उसका उत्तर दिया जाता है। प्रकृति पूछती है, प्रकृति उत्तर देती है। प्रकृतिके उत्तरमें समाधान होता है। ऐसा तब होता है, जब दोनों कुटिल न हों। ***'संत सरल चित जगत हित'***(रा०च०मा० १। ३ ख)। सन्त सदैव समाधान देता है। किसे? जो उसकी शरणमें जाता है। अहंकारी कभी शरणमें नहीं जाता। शरणागतका उद्धार होता है, अभिमानीका पतन। ज्योतिषी क्या करेगा? मानवकृत समस्याका समाधान मानुषज्योतिषीके पास है। प्राकृतिक समस्याका हल केवल प्राकृतिक सन्तके पास है।

लोकमें प्रश्न पूछा जाता है। समाधानयुक्त उत्तरके लिये लोकमें प्राच्य प्रचलित अनेक साधन हैं। यथा—

१-जन्मकुण्डलीके ग्रहोंके आधारपर।
२-प्रश्नलग्नकी कुण्डली बनाकर।
३-शारीरिक संरचनाको ध्यानमें रखकर।
४-आंगिक चेष्टाओंका अवलोकनकर।
५-मुखमण्डलपर उपस्थित भावको पढ़कर।
६-हाथकी रेखाओंको अच्छी तरह देखकर।
७-व्यक्तिकी वेषभूषा एवं अलंकरणसे।
८-व्यक्तिकी स्वाभाविक चाल या गतिसे।
९-व्यक्तिकी नाड़ीकी गतिको जानकर।
१०-व्यक्तिके मुखसे निकले हुए वाक्यसे।
११-व्यक्तिके आवास एवं तद्धृत वस्तुओंको देखकर।
१२-तात्कालिक शकुन या प्राकृतिक घटनाओंसे।
१३-स्वयंके श्वास-प्रश्वास या स्वरज्ञानसे।
१४-स्वप्नमें घटित दृश्योंके आधारपर।
१५-अदृश्य शक्तियोंके संवादसे।
१६-कालदर्शनकी सिद्धिसे।
१७-सहज अनुभूत अन्तर्ज्ञानसे।

शिवजी आदि ज्योतिषी (ज्ञानी) हैं। पार्वतीजी आदि प्रष्टा हैं। गरुड़जी महाज्ञानी हैं। काकभुशुण्डिजी अज्ञानभंजक हैं। ये गरुड़के प्रश्नोंका उत्तर देते हैं। गरुड़का समाधान हो जाता है। पार्वतीजीका भी समाधान होता है। वे कहती हैं—***'नाथ कृपाँ मम गत संदेहा'*** (रा०च०मा० ७। १२९। ८)। शिवजी वास्तविक ज्योतिषी (ज्ञानी) हैं। काकभुशुण्डिजी परम सन्त हैं। ये दोनों सूर्यरूप हैं अर्थात् सकल विश्वके अवलोकनकर्ता—द्रष्टा, वेत्ता हैं। इन्हें हम सादर नमन करते हैं।

ज्योति भीतर है। ज्योति बाहर है। बाहरकी ज्योति भीतरकी ज्योतिको प्रकट करनेके लिये उत्प्रेरकमात्र है। ज्योतिका मूल ऊपर है। इसकी शाखाएँ (किरणें) नीचेतक फैली हैं। इतनामात्र ज्योतिष है—

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥

(गीता १५। १)

ज्योतिका मूल सूर्य ऊपर है। इस सूर्यकी शाखाएँ (किरणें) नीचे भूमितक फैली हैं। यह सूर्य अश्वत्थ **(अश्नाति अन्धकारम्)** अर्थात् अन्धकारका अशन-भक्षण करनेवाला शाश्वत है। पृथ्वीको आच्छादित करनेवाले चन्द्र, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि आदि ग्रह पर्ण (रक्षक) हैं। जो इस तथ्यको जाने, उसे ब्रह्मवेत्ता कहते हैं। अन्य प्रकारसे ज्ञानका मूलस्रोत मस्तिष्कदेहोपरि सिरमें है। इससे निकली हुई तन्त्रिकाएँ देहांगोंमें नीचेतक फैली हुई हैं। संवेदनाका भक्षण करनेसे यह मस्तिष्क अश्वत्थ है। यह आजीवन अक्षीण रहता है। शरीरमें फैली समस्त ग्रन्थियाँ इसकी पोषक (पर्ण) हैं। इसका बोध जिसे है, वह वेदज्ञ ज्योतिषी है। यह शरीर वेद है। इसका कारक लग्नपति सूर्य है। इसका मूल सिर है, दोनों हाथ एवं दोनों पैर इसकी शाखाएँ हैं। यह देह सन्ततिप्रवाहके कारण अव्यय/अविनाशी है। त्वचा, नख, केश, रोमादि इसके पर्ण हैं। इसका ज्ञाता ब्रह्मज्ञ है। ज्योतिष-पुरुषका वर्णन करते हुए भागवतकार

कहते हैं—

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः॥

(श्रीमद्भा० ८।१६।३१)

जिसके दो सिर (उत्तरायण, दक्षिणायन) हैं, उस पुरुषको नमस्कार। उस पुरुषके तीन पैर (ब्रह्मलोकको छूनेवाला, अन्तरिक्षमें फैलनेवाला, भूलोकतक आनेवाला प्रकाश) हैं। उसके चार सींगें (प्रातःकालीन, मध्याह्निक, सायंकालीन, आर्धरात्रिक—निशीथ स्थितियाँ) हैं। वह तन्तुमान् (सर्वव्यापी) है। उसके सात हाथ (सप्तवर्णक्रम इन्द्रचापरूप) हैं। वह यज्ञस्वरूप (सहजप्रकाशदाता) है। वह सदैव त्रयीविद्यात्मक है। (सत्, रज, तमसे उपवीत) है। यह ज्योतिपुरुष सूर्य ही है। वेद इसका उद्घोष इस प्रकार करता है—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश॥

(ऋक्० ४।५८।३)

परमात्मा सूर्य एकमात्र ज्योतिपुरुष है। यह चार सींगोंवाला है—चारों दिशाओंके अन्धकारका छेदन करता रहता है। इसके तीन पैर हैं—इसकी किरणें भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोकतक गतिशील हैं। यह दो शीर्षवाला है—छः मास उत्तरगोलमें तथा छः मास दक्षिणगोलमें रहता है। इसके सात हाथ हैं—इसका प्रकाश सप्त वर्णोंवाला है। यह ज्योतिपुरुष त्रिधाबद्ध है—चर, अचर एवं द्विस्वभावराशियोंमें विचरता है अथवा पूर्वी क्षितिजसे उदित होता है तथा पश्चिमी क्षितिजमें समा जाता है और आकाशके मध्यमें चरमको प्राप्त होता है। यह पुरुष वृषभ है—वर्षाका कारक है तथा प्रकाशमान है। इसके आगमनका स्वागत करनेके लिये खगगण शब्द करते या चहचहाते हैं। यह ज्योतिपुरुष महान् देवता है। यह सभी मर्त्यों अथवा प्राणियोंमें सतत प्रविष्ट है। जो इस ज्योतिपुरुष सूर्यको नहीं जानता, वह श्रेष्ठ ज्योतिषी नहीं है।

अधिकांश विख्यात ज्योतिषी अपने ज्योतिष-व्यवसायमें तन्त्रका आश्रय लेते हैं। ज्योतिष विद्या है, तन्त्र विज्ञान है। टोना-टोटका भी विज्ञान है। प्रेतविद्याका प्रयोग भी विज्ञान है। इन मायावी विद्याओंका ज्योतिषके स्थानपर या ज्योतिष नामसे प्रयोग किया जाता है। यह सब अद्भुत, किंतु सत्य तथा बुद्धिको चमत्कृत करनेवाला है। इसके व्यापारमें कुटिलता एवं दाँव-पेच अधिक है। समस्त अपकर्म, कुकर्म इनकी छायामें किये जाते हैं। ऐसे क्षुद्र लोग आध्यात्मिक पुरुष या सिद्धके रूपमें पूजे जाते हैं। इनमेंसे अपवादरूपमें कुछ अच्छे होते हैं। इन विद्याओंसे सम्पन्न लोग काम, क्रोध, मोह, मत्सर, मद, लोभसे ग्रसित होकर जघन्य निन्द्य कर्मोंमें संलग्न रहकर ज्योतिषदूषणके रूपमें जी रहे हैं। इन छद्म ज्योतिषियोंसे सदा सावधान रहनेकी आवश्यकता है। जीवनके अन्त्यभागमें ये दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। इनके वंशोंका उच्छेद होना देखा जाता है। पापकर्मसे प्राप्त धन एवं कीर्ति दोनों उनके लिये अशुभ होते हैं।

सुकृतिसे सौभाग्य, दुष्कृतिसे दुर्भाग्यका होना सहज है। ज्योतिषी जब अपना भाग्य नहीं सुधार सकता तो औरोंका क्या ठीक करेगा? दुःखके बीजसे सुखका अंकुर फूटता है। सुखके फलमें दुःखकी गुठली होती है। दुःख-सुख दोनों सहजात एवं अन्योन्याश्रित हैं। दुःखसे बचना सम्भव नहीं। सुख पानेके उपक्रममें दुःख मिलता है। दुःख बिना प्रयत्न किये ही मिलता है। कुण्डलीमें छः भाव सुखके तथा छः भाव दुःखके हैं। जीवनके सन्तुलनके लिये यह प्राकृतिक व्यवस्था है। सुख प्रयत्न करनेपर भी नहीं मिलता। जैसे बिना प्रयत्न दुःख मिलता है, वैसे ही बिना प्रयत्न सुख मिलता है। इसे जानना चाहिये और जानकर शान्त रहना चाहिये। **'चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च'** जो हम बोते या भूमिको देते हैं, वह हमें कई गुना होकर मिलता—वापस लौटता है। इस न्यायसे सुख दूसरोंको बाँटेंगे तो वह कई गुना होकर हमारे पास आयेगा। यदि हम दूसरोंको दुःख देंगे तो वह भी कई गुना होकर हमारे पास आता है। यही वास्तवमें ज्योतिष है। हम अपने

सुख-दुःख, सौभाग्य-दुर्भाग्यके स्वयं उत्तरदायी हैं। विधाता या अन्य किसीपर आरोप मढ़ना असमीचीन है—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

(अध्यात्मरामायण २।६।६)

स्वकर्मसूत्रसे हमारी जन्मकुण्डली बनी है। इस बातको गोस्वामीजी इस प्रकार कहते हैं—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

(रा०च०मा० २।९२।४)

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥

(रा०च०मा० २।१५०।५-६)

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

(रा०च०मा० २।२१९।४)

ज्योतिषशास्त्र कर्मफलसूचक शास्त्र है। कर्मफल अटल एवं भोग्य है। इसे बिना भोगे छुटकारा नहीं है। भले ही किसी एक जातकका कर्मफल दूसरा भोगे, पर बलात् नहीं स्वेच्छासे। सन्तजन ऐसा करते हैं। इसलिये कर्मको भोगके कारणके रूपमें जानना चाहिये। यद्यपि इसकी गति बड़ी गहन है—**'कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं.... गहना कर्मणो गतिः'**। (गीता ४।१७)

किस जन्मका कर्मफल भोगा है? किस कारण यह कर्म हुआ? यह सब जानना कठिन है। कर्मविपाक प्रारब्ध है।

ज्योतिष सत्-शास्त्र है, धर्मसे संवलित एवं मर्यादित है। ज्योतिषी धर्मज्ञ होता है। धर्मनिरपेक्ष धर्मकी अवहेलना करता है। धर्मनिरपेक्षता पापकी जननी है। ज्योतिष धर्मसापेक्ष शास्त्र है। इस शास्त्रको हमारा सहस्र नमस्कार।

सबको अपना भविष्य जाननेकी इच्छा होती है। ज्योतिष जिज्ञासुके लिये है। जातकको स्वयंके बारेमें जाननेका उद्योग करना स्वाभाविक है। कुण्डलीमें भूतसे भविष्यपर्यन्त सम्पूर्ण वृत्त समाहित है। आत्मज्ञान ज्योतिष है। आत्मज्ञानीके सम्मुख मैं सतत विनत एवं प्रणत हूँ—**यस्मै कस्मै तस्मै ज्योतिषे नमः।**

भूकम्प एवं वैदिक ज्योतिष—एक समीक्षा

(आचार्य श्रीअश्विनीकुमारजी मिश्र)

वैदिक ज्योतिषके प्राचीन संहिताकारोंने अपने ग्रन्थोंमें 'मेदिनी ज्योतिष' से सम्बन्धित विषयोंपर अनेकानेक सूत्र एवं सिद्धान्तोंका सारगर्भित विवेचन किया है। इन ऋषि-मनीषियोंमें गर्ग, नारद एवं वराहमिहिरने अपनी संहिताओं क्रमशः गर्गसंहिता, नारदीय संहिता एवं बृहत्संहितामें भूकम्पके परिप्रेक्ष्यमें निम्न महत्त्वपूर्ण विषयोंपर विस्तृत विवेचन किया है—

(१) नक्षत्रमण्डल, (२) दिग्दाह-लक्षण, (३) उल्का-लक्षण एवं (४) परिवेष-लक्षण।

आचार्य गर्गकी संहितामें वर्णित तिथियोंका भूकम्पसे निश्चित सम्बन्ध वैज्ञानिक शोधमें सटीक एवं महत्त्वपूर्ण पूर्वसूचकके रूपमें प्रतिस्थापित हुआ है।

प्राकृतिक आपदाओंमें सबसे भयावह एवं व्यापक क्षतिकारक है भूकम्पकी त्रासदी। भारतवर्षमें सम्भावित भूकम्पक्षेत्रके रूपमें एक बड़ा भाग पूर्वनिश्चित किया गया है।

भूकम्पसे सम्बन्धित वैदिक ज्योतिषीय सूत्र एवं सिद्धान्त वर्तमान वैज्ञानिक शोधोंमें पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हुए हैं। हालहीमें किये गये एक विस्तृत वैज्ञानिक शोधमें मद्रास विश्वविद्यालयके भूगर्भशास्त्रियोंने पाया है—

१-जब पृथ्वी, सूर्य एवं चन्द्रमा भचक्र-परिक्रमाकी अपनी स्वाभाविक स्थितियोंमें ०-१८०° का कोण निर्माण करते हैं तो पृथ्वीपर गुरुत्वाकर्षणका दबाव क्रमशः बढ़ने लगता है।

२-फलस्वरूप पृथ्वी अपनी स्वाभाविक परिभ्रमण गतिमें परिवर्तन करनेको बाध्य हो जाती है, जिसके कारण टेकटानिक पर्तोंका सरकना सम्भव होता है।

३-शोधमें समस्त विश्वमें विगत १०० वर्षोंके भूकम्पोंकी परीक्षा की गयी एवं यह निष्कर्ष निकला कि भूकम्पके साथ क्षेत्रविशेषकी अक्षांश एवं देशान्तर रेखाओंका एवं झटकेके रिक्टर स्केलपर मापी गयी तीव्रताका उस क्षेत्रविशेषके सन्दर्भमें ग्रहोंकी स्थिति महत्त्वपूर्ण रही है।

४-इस बातकी सम्भावनाको भी स्वीकार किया गया कि ग्रह-स्थितियोंका समय-समयपर किया गया अवलोकन एवं भूगर्भसम्बन्धी ज्ञानका समुचित प्रयोग भूकम्पके होनेसे एक मास पहले भूकम्पके बारेमें पूर्वसूचनाका माध्यम बन सकता है।

महर्षि गर्गद्वारा सम्पादित एवं अनुमोदित सिद्धान्त इस प्रकार है—

अमावस्या अथवा पूर्णिमा तिथियाँ एवं इन तिथियोंके पहले अथवा बादकी दो तिथियाँ भूकम्पके परिप्रेक्ष्यमें महत्त्वपूर्ण होती हैं। इस सन्दर्भमें लगातार अनुसन्धान करते हुए विश्व के महत्त्वपूर्ण देश सोवियत रूसने इन सिद्धान्तोंका सफल परीक्षण किया। उनके तथ्यपूर्ण शोधमें निष्कर्ष निकला कि—

(क) विश्वमें होनेवाले ५५.८ प्रतिशत भूकम्प इन तिथियोंमें ही हुए।

(ख) चतुर्दशी एवं प्रतिपदा तिथियोंपर विश्वमें ३३.५ प्रतिशत भूकम्प आये।

(ग) १७ प्रतिशत भूकम्प पूर्णिमा एवं प्रतिपदा तिथियोंपर घटित हुए हैं।

एक अन्य शोधमें शनि ग्रह एवं भूमध्यरेखाकी दूरीकी एक निश्चित डिग्रीमें ग्रहोंकी स्थितियोंको भूकम्पका कारण पाया गया।

शोध-प्रकरणमें क्रूर ग्रहोंका प्रभाव, वृष एवं वृश्चिक राशियोंमें ग्रहोंका स्थित होना, चन्द्रमाका पीड़ित होना, चन्द्रमा एवं बुधका एक नक्षत्रगत होना, वायु एवं पृथ्वी-तत्त्वोंकी विवेचना आदि महत्त्वपूर्ण पूर्वसूचक पाये गये हैं।

महर्षि वराहमिहिरने अपनी चिर-परिचित रचना 'बृहत्संहिता' में नक्षत्रोंके समूहको चार मण्डलोंमें बाँटा है। यथा—

(१) वायव्यमण्डल, (२) आग्नेयमण्डल, (३) इन्द्रमण्डल एवं (४) वरुणमण्डल।

इन मण्डलोंमें अलग-अलग नक्षत्रोंके समूहका वर्णन नारदीय संहितामें किये गये वर्गीकरणसे पूर्णरूपेण मिलता है।

नक्षत्रोंका ग्रहोंसे सीधा सम्बन्ध होता है एवं प्रत्येक राशिमें ९ नक्षत्रचरणों यानि २$^{१}/_{४}$ नक्षत्रका मान निर्धारित किया गया है।

भूकम्पकी वेलामें जिन ग्रहोंकी स्थितियाँ इस विपदाका कारण बनती हैं, उन ग्रहोंकी स्थितिमें नक्षत्रोंकी स्थिति भी उतनी ही विपदाके कारणमें योगदान करती है।

चन्द्रमाको 'नक्षत्रराज' के नामसे भी जाना जाता है एवं भूकम्पकी स्थितिमें पीड़ित चन्द्रके ज्योतिषीय निर्णयमें सम्बन्धित नक्षत्रोंका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

एतदर्थ भूकम्पके कारणोंकी मीमांसामें इन नक्षत्र-मण्डलोंकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है, जिसका विवेचन भारतीय वैदिक ज्योतिष ग्रन्थोंमें किया गया है।

भूकम्पसे सम्बन्धित पूर्व सूचनासम्बन्धी विषयोंकी जानकारी प्राप्त करनेहेतु सूर्य ग्रहके केन्द्र स्थानोंमें (१, ४, ७, १०) भ्रमणसे सम्बन्धित कुण्डली बनाना एक आवश्यक कार्य माना गया है।

सूर्यग्रह अपनी निश्चित परिक्रमाके क्रममें 'रविमार्ग' पर चलते हुए मेष, कर्क, तुला एवं मकर राशियोंकी कक्षाओंमें प्रवेश करता है। इन ४ राशियोंमें सूर्यप्रवेश-कुण्डली भूकम्पसम्बन्धी पूर्वसूचनाका महत्त्वपूर्ण निर्देशक माना गया है।

भारतवर्ष या वर्तमान भारतका जन्म लग्न 'मकर' सर्वसम्मतिसे मान्य है। आचार्य वराहमिहिर, महर्षि गर्ग,

एवं महर्षि नारदने अपनी संहिताओंमें नक्षत्र-मण्डलोंका विवेचन करते हुए कतिपय राज्योंके प्राचीन नामोंका भी उल्लेख किया है।

महर्षियोंने अपनी संहिताओंमें नक्षत्रमण्डलमें होनेवाले भूकम्पके सम्बन्धमें सात दिवस पूर्व सूचनाके बारेमें चर्चा की है। वैज्ञानिक उपलब्धियोंके आधारपर इस समय सीमाका विस्तार सम्भव है, ऐसा माना गया है। वैदिक ज्योतिष ग्रन्थोंमें भूकम्पसे सम्भावित आक्रान्त-क्षेत्रोंके बारेमें भी चर्चा की गयी है, जिसे साधारण रूपमें ग्रहण-दृश्य क्षेत्रकी संज्ञा दी गयी है; क्योंकि भूकम्पोंका सीधा सम्बन्ध सूर्य एवं चन्द्रग्रहणसे जुड़ा हुआ है एवं ग्रहण-दृश्यताके आधारपर ही सम्भावित क्षेत्रका निर्णय अपेक्षित है।

भारतीय वैदिक ज्योतिषके वे सूत्र एवं सिद्धान्त, जो भूकम्प से जुड़े हैं, उनका वैज्ञानिकोंद्वारा विस्तृत विश्लेषण किया गया है। पाश्चात्य ज्योतिषीय ग्रन्थोंमें एवं प्रकृत व्यवहारमें भी इनका समुचित प्रयोग किया गया है। समस्त विश्वमें इन सिद्धान्तों एवं सूत्रोंको सारगर्भित पाया गया है। वैज्ञानिक शोध-प्रक्रियामें ग्रहोंकी स्थितियोंका पूर्ण विवेचन किया गया है, किंतु नक्षत्र-मण्डलोंके प्रभावके सम्बन्धमें विस्तृत अथवा पर्याप्त चर्चा नहीं की गयी है।

महर्षियोंने अपनी संहिताओंमें पुनः भूकम्प अथवा 'आफ्टर शॉक' की भी चर्चा की है एवं उनकी विशिष्ट अवधियाँ भी पूर्वनिश्चित की हैं। प्रत्येक नक्षत्रका समय-मान लगभग निश्चित किया गया है एवं भूकम्पकी पूर्व-सूचनाके परिप्रेक्ष्यमें यह समय काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

भारतीय ज्योतिषकी प्राचीनतापर विदेशी विद्वानोंके अभिमत

(डॉ० श्रीनेमिचन्द्रजी शास्त्री, ज्योतिषाचार्य)

भारतीय ज्योतिषको प्राचीन और मौलिक केवल भारतीय विद्वान् ही सिद्ध नहीं करते, अपितु अनेक विदेशी विद्वानोंने भी इसकी प्राचीनता स्वीकार की है। यहाँ कुछ विद्वानोंके मत दिये जाते हैं—

१. अलबरूनीने लिखा है कि 'ज्योतिषशास्त्रमें हिन्दूलोग संसारकी सभी जातियोंसे बढ़कर हैं। मैंने अनेक भाषाओंके अंकोंके नाम सीखे हैं, पर किसी जातिमें भी हजारसे आगेकी संख्याके लिये मुझे कोई नाम नहीं मिला। हिन्दुओंमें अठारह अंकोंतककी संख्याके लिये नाम हैं, जिनमें अन्तिम संख्याका नाम परार्ध बताया गया है।'

२. प्रो० मैक्समूलरने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि 'भारतवासी आकाशमण्डल और नक्षत्रमण्डल आदिके बारेमें अन्य देशोंके ऋणी नहीं हैं। इन वस्तुओंके मूल आविष्कर्ता वे ही हैं।'

३. फ्रांसीसी पर्यटक फ्राक्वीस वर्नियर भी भारतीय ज्योतिष-ज्ञानकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि 'भारतीय अपनी गणनाद्वारा चन्द्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहणकी बिलकुल ठीक भविष्यवाणी करते हैं। इनका ज्योतिषज्ञान प्राचीन और मौलिक है।'

४. फ्रांसीसी यात्री टरवीनियरने भी भारतीय ज्योतिषकी प्राचीनता और विशालतासे प्रभावित होकर कहा है कि 'भारतीय ज्योतिष-ज्ञानमें प्राचीनकालसे ही अतीव निपुण हैं।'

५. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटैनिकामें लिखा है कि 'इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे (अँगरेजी) वर्तमान अंक-क्रमकी उत्पत्ति भारतसे है। सम्भवतः खगोल-सम्बन्धी उन सारणियोंके साथ जिनको एक भारतीय राजदूत ईसवी सन् ७७३ में बगदादमें लाया, इन अंकोंका प्रवेश अरबमें हुआ। फिर ईसवी सन्‌की ९वीं शतीके प्रारम्भिक कालमें प्रसिद्ध अबुजफर मोहम्मद अल् खारिज्मीने अरबीमें उक्त क्रमका विवेचन किया और उसी समयसे अरबोंमें उसका प्रचार बढ़ने लगा। यूरोपमें शून्यसहित यह सम्पूर्ण अंक-क्रम ईसवी

सन्‌की १२वीं शतीमें अरबोंसे लिया गया और इस क्रमसे बना हुआ अंकगणित 'अल गोरिट्मस' नामसे प्रसिद्ध हुआ।'

६. कॉण्ट ऑर्मस्टर्जनने लिखा है कि 'वेलीद्वारा किये गये गणितसे यह प्रतीत होता है कि ईसवी सन्‌से तीन हजार वर्षपूर्वमें ही भारतीयोंने ज्योतिषशास्त्र और भूमितिशास्त्रमें अच्छी पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी।'

७. कर्नल टॉडने अपने 'राजस्थान' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि 'हम उन ज्योतिषियोंको कहाँ पा सकते हैं, जिनका ग्रहमण्डल-सम्बन्धी ज्ञान अब भी यूरोपमें आश्चर्य उत्पन्न कर रहा है।'

८. मिस्टर मारिया ग्राह्मकी सम्मति है कि 'समस्त मानवीय परिष्कृत विज्ञानोंमें ज्योतिष मनुष्यको ऊँचा उठा देता है। ····इसके प्रारम्भिक विकासका इतिहास संसारकी मानवताके उत्थानका इतिहास है। भारतमें इसके आदिम अस्तित्वके बहुत-से प्रमाण मौजूद हैं।'

९. मिस्टर सी० वी० क्लार्क एफ०जी०एफ० कहते हैं कि 'अभी बहुत वर्ष पीछेतक हम सुदूर स्थानोंके अक्षांश (Longitudes)-के विषयमें निश्चयात्मक रूपसे ज्ञान नहीं रखते थे, किंतु प्राचीन भारतीयोंने ग्रहण-ज्ञानके समयसे ही इन्हें जान लिया था। इनकी यह अक्षांश, रेखांशवाली प्रणाली वैज्ञानिक ही नहीं, अचूक है।'

१०. प्रो० विल्सनने कहा है कि 'भारतीय ज्योतिषियोंको प्राचीन खलीफों विशेषकर हारूँरशीद और अलमायनने भलीभाँति प्रोत्साहित किया। वे बगदाद आमन्त्रित किये गये और वहाँ उनके ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ।'

११. डॉक्टर राबर्टसनका कथन है कि '१२ राशियोंका ज्ञान सबसे पहले भारतवासियोंको ही हुआ था। भारतने प्राचीन कालमें ज्योतिर्विद्यामें अच्छी उन्नति की थी।'

१२. प्रो० कोलब्रुक और बेवर साहबने लिखा है कि 'भारतको ही सर्वप्रथम चान्द्रनक्षत्रोंका ज्ञान था। चीन और अरबके ज्योतिषका विकास भारतसे ही हुआ है। उनका क्रान्तिमण्डल हिन्दुओंका ही है। निस्सन्देह उन्हींसे अरबवालोंने इसे लिया था।'

१३. विख्यात चीनी विद्वान् लियाँग चिचावके शब्दोंमें 'वर्तमान सभ्य जातियोंने जब हाथ-पैर हिलाना भी प्रारम्भ नहीं किया था, तभी हम दोनों भाइयों (चीन और भारत)-ने मानव-सम्बन्धी समस्याओंको ज्योतिष-जैसे विज्ञानद्वारा सुलझाना आरम्भ कर दिया था।'

१४. प्रो० वेलस महोदयने प्लेफसर साहबकी कुछ पंक्तियाँ उद्‌धृत की हैं, जिनका आशय है कि ज्योतिष-ज्ञानके बिना बीजगणितकी रचना कठिन है। विद्वान् विल्सन कहते हैं कि 'भारतने ज्योतिष और गणितके तत्त्वोंका आविष्कार अति प्राचीनकालमें किया था।'

१५. डी० मार्गनने स्वीकार किया है कि 'भारतीयोंका गणित और ज्योतिष यूनानके किसी भी गणित या ज्योतिषके सिद्धान्तकी अपेक्षा महान् है। इनके तत्त्व प्राचीन और मौलिक हैं।'

१६. डॉ० थीबो बहुत सोच-विचार और समालोचनाके अनन्तर इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि 'भारत ही रेखागणितके मूल सिद्धान्तोंका आविष्कर्ता है। इसने नक्षत्र-विद्यामें भी पुरातन कालमें ही प्रवीणता प्राप्त कर ली थी, यह रेखागणितके सिद्धान्तोंका उपयोग इस विद्याको जाननेके लिये करता था।'

१७. वर्जेस महोदयने सूर्यसिद्धान्तके अँगरेजी अनुवादके परिशिष्टमें अपना मत उद्‌धृत करते हुए बताया है कि भारतका ज्योतिष टालमीके सिद्धान्तोंपर आश्रित नहीं है, अपितु इसने ईसवी सन्‌के बहुत पहले ही इस विषयका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिषशास्त्रका उद्भवस्थान भारत ही है। इसने किसी देशसे सीखकर यहाँ प्रचार नहीं किया है। श्रीलोकमान्य तिलकने अपनी 'ओरियन' नामक पुस्तकमें बताया है कि भारतका नक्षत्र-ज्ञान, जिसका कि वेदोंमें वर्णन आता है, ईसवी सन्‌से कम-से-कम पाँच

हजार वर्ष पहलेका है। भारतीय नक्षत्रविद्यामें अत्यन्त प्रवीण थे। अतएव बेबिलोन या यूनान अथवा ग्रीससे भारतमें यह विद्या नहीं आयी है। ईसासे पूर्व इस शास्त्रमें आदान-प्रदान भी नहीं हुआ, किंतु ईसवी सन् २—६ शतीतक विदेशियोंके अत्यधिक सम्पर्कके कारण पर्याप्त आदान-प्रदान हुआ है। पाश्चात्य सभ्यताके स्नेही कुछ समालोचक इसी कालके साहित्यको देखकर भारतीय ज्योतिषको यूनान या ग्रीससे आया बतलाते हैं।

बेबिलोनी भाषाके कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जो संस्कृतमें ज्यों-के-त्यों पाये जाते हैं, ज्योतिषशास्त्रमें इन शब्दोंका प्रयोग देखकर इसे बेबिलोनसे आया हुआ सिद्ध करनेकी असफल चेष्टा कुछ समीक्षक करते हैं, किंतु ज्योतिषके मूलबीजों और अपनी परम्पराके अवलोकनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विज्ञान भारतीय ज्योतिषियोंके मस्तिष्ककी ही उपज है। हाँ, जैसे इस देशने अरब आदिको इस विज्ञानकी शिक्षा दी, उसी प्रकार यूनान और बेबिलोनसे पुराना सम्पर्क होनेके कारण कुछ ग्रहण भी किया। पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि ये देश ही इस विज्ञानके लिये भारतके गुरु हैं।

जी०आर०के० ने अपनी 'हिन्दू एस्ट्रॉनॉमी' नामक पुस्तकमें बताया है कि 'भारतने टालमीके ज्योतिष-सिद्धान्तका उपयोग तो कल ही किया है, किंतु प्राचीन यूनानी सिद्धान्तोंकी परम्पराका निर्वाह ही बहुत कालतक करता रहा है। इसके मूलभूत सिद्धान्त यवनोंके सम्पर्कसे ही प्रस्फुटित हुए हैं। राशियोंकी नामावली भी भारतीय नहीं है' आदि। गम्भीरतासे सोचनेपर तथा इस शास्त्रके इतिहासका अवलोकन करनेपर यह धारणा भ्रान्त सिद्ध हो जाती है। अत: ईसवी सन्‌से कम-से-कम दस हजार वर्ष पहले भारतने ज्योतिषविज्ञानका आविष्कार किया था।

जन्मान्तरीय शुभ कर्मका फल

प्रतिष्ठानपुरके राजा सातवाहन आखेटके लिये वनमें जाकर अपने सैनिकोंसे पृथक् होकर मार्ग भूल गये। वनमें भटकते समय उन्हें एक भीलकी झोपड़ी दीखी। भूखे-प्यासे राजा उस झोपड़ीपर पहुँचे। वनवासी भील राजाको क्या पहचाने; किंतु उसने अतिथिका स्वागत किया। दूसरा कुछ तो उसके पास था नहीं, उसने जल तथा सत्तू दिया। सत्तू खाकर राजाने भूख मिटायी।

भीलकी झोपड़ी छोटी थी। शीतकालकी रात्रि थी। संयोगवश वर्षा भी प्रारम्भ हो गयी। भीलने अतिथिको झोपड़ीमें सुलाया और स्वयं बाहर वर्षामें भीगता रहा। उसे सर्दी लगी और वह रात्रिमें ही मर गया।

प्रात:काल सैनिक अपने नरेशको ढूँढ़ते वहाँ पहुँच गये। राजाने बड़े सम्मानसे भीलकी अन्तिम क्रिया करायी। भीलकी पत्नीका पता लगाकर उसे बहुत धन दिया। यह सब करके राजा नगर लौट तो आये; किंतु चित्तको शान्ति नहीं मिली। उनको यह चिन्ता रात-दिन सताने लगी—'मेरे कारण उस भीलकी मृत्यु हुई।'

राजाको चिन्तासे दुर्बल होते देखकर महापण्डित ज्योतिर्विद् वररुचि उनको लेकर नगरसेठके घर गये। नगरसेठका नवजात पुत्र राजाके सामने लाया गया तो

पण्डितजीके आदेशपर बोल उठा—'राजन्! मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। आपको सत्तू देनेके कारण मैं यहाँ नगरसेठका पुत्र बना और उसी पुण्यके प्रभावसे मुझे पूर्वजन्मका स्मरण है।'

भारतीय कालगणना

(पं० श्रीसीतारामजी स्वामी, एम०ए०, बी०एड०, ज्योतिषाचार्य)

विश्वगुरु भारत ज्ञानके क्षेत्रमें सदासे अग्रगण्य रहा है। भूमण्डल एवं अन्तरिक्षका सूक्ष्म ज्ञान हमारे ऋषि-मुनियोंने प्राप्तकर विश्वको दिया। ब्रह्मगुप्त, आर्यभट, भास्कराचार्य आदि गणितज्ञोंने ग्रहों एवं नक्षत्रों-सम्बन्धी अपूर्वज्ञान प्राप्तकर ज्योतिषविज्ञानके क्षेत्रमें विश्वका मार्गदर्शन किया। हमारे ज्योतिर्विदोंने नक्षत्रों, ग्रहों एवं राशियोंका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। उनकी गति, उनके परिभ्रमण एवं परिक्रमणके मार्गका अवलोकनकर उनके आधारपर कालगणनाका सिद्धान्त निर्धारित किया। वेद और पुराण इसके साक्षी हैं। विश्वने उन सिद्धान्तोंको कालान्तरमें परखा और सही पाया तथा स्वीकारा। यह निर्विवाद सत्य है कि आजका साधनसम्पन्न विज्ञान भी प्राचीन भारतके उस सूक्ष्मतम ज्ञानतक नहीं पहुँच पाया है।

सप्ताहके दिनोंका नामकरण

सप्ताहके दिन जिन्हें हम रविवार, सोमवार आदि नामसे पुकारते हैं, क्या किसी वैज्ञानिक आधारपर आधारित हैं? रविवारके बाद सोमवार एवं सोमवारके पश्चात् मंगलवार ही क्यों आता है? क्या आपने कभी इसपर विचार किया? सम्भवतः आप सोचते होंगे कि यह एक मनगढ़न्त क्रम है, जो आदिकालसे चला आ रहा है। कोई पाश्चात्य सभ्यताप्रेमी यह भी कह सकता है कि वारोंके इस क्रमको हमने पश्चिमसे प्राप्त किया, पर इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि कैलेण्डरके लिये सारा विश्व भारतका ऋणी है। केवल वार एवं मास ही नहीं, बल्कि घण्टा (आवर्स), मिनट, सेकेण्डतक भारतीय पंचांगका ही रूप है।

अथर्ववेदके 'अथर्व-ज्योतिष' में वारोंके नाम एवं क्रमका स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुधबृहस्पतिः।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्तदिनाधिपाः॥

(अथर्वज्योतिष ९३)

यह ग्रन्थ कम-से-कम पाँच हजार वर्ष पुराना है, जबकि पश्चिमी देश वारोंके नामोंका प्रयोग दो सहस्र वर्षोंसे कर रहे हैं। अतः निश्चित रूपसे सप्ताहके वारोंका नामकरण-संस्कार भारतमें हुआ तथा शेष विश्वने भारतसे ही तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया।

वारोंका क्रम कैसे बना?

हमारे ऋषि-मुनियोंने ठोस वैज्ञानिक आधारपर सप्ताहके वारोंका क्रम निर्धारित किया है। पृथ्वी और सूर्यसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले सात ग्रहोंकी कक्षाओंके अनुसार सात वार निश्चित किये गये हैं, जो सम्पूर्ण विश्वमें प्रचलित हैं। वार शब्द (वासर) दिनका ही संक्षिप्त रूप है। आज भी कई समाचार पत्र रविवारीय अंकके स्थानपर रविवासरीय अंक लिखते हैं। एक अहोरात्र (दिन-रात) एक वासर अर्थात् एक दिन होता है। अहोरात्रसे ही होरा शब्द लिया गया है, जो कालमानकी एक छोटी इकाई है। होरा एक अहोरात्रका २४वाँ भाग होता है, जिसे अँगरेजीमें ऑवर्स कहते हैं। दिन-रातमें २४ घण्टे होते हैं। अतः एक होरा एक घण्टे अथवा २$^{१}/_{२}$ घटीके बराबर होता है। इसी होरासे वारोंकी गणना प्रारम्भ हुई। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय ज्योतिषमें सम्पूर्ण गणना पृथ्वीको केन्द्र मानकर की गयी है, जबकि वास्तवमें सौर-परिवारका केन्द्र सूर्य है, जिसके चारों ओर अपनी-अपनी कक्षाओंमें पृथ्वीसहित समस्त ग्रह परिक्रमण करते हैं, पर भारतीय ज्योतिष दृश्य-स्थितिको स्वीकारता है। पृथ्वीसे देखनेपर विभिन्न राशियोंमेंसे अन्य ग्रहोंकी भाँति सूर्य भी परिक्रमण करता हुआ प्रतीत होता है। अतः सूर्यको भी ज्योतिर्विज्ञानमें एक ग्रह मान लिया गया है। अन्तरिक्षमें ग्रहोंकी कक्षाओंकी वास्तविक स्थिति निम्न प्रकार है—

'सूर्य, बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि।'

वास्तवमें यही कक्षा-क्रम सप्ताहके वारोंके क्रमका

आधार है। सृष्टिके प्रारम्भिक दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा रविवारको प्रात: समस्त ग्रह मेषराशिके प्रारम्भिकभाग अश्विनी नक्षत्रपर थे, जैसा कि 'कालमाधव-ब्रह्मपुराण' की निम्न पंक्तियोंसे प्रमाणित होता है—

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रे तत्तदा सूर्योदये सति॥
प्रवर्तयामास तदा कालस्य गणनामपि।
ग्रहान्नागानृतून्मासान् वत्सरान्वत्सराधिपान्॥

उस दिनसे गणनाकर भारतीय ज्योतिर्विदोंने सौर-मण्डलका केन्द्र होनेके कारण सूर्यको प्रथम होराका स्वामी माना। तत्पश्चात् ग्रहोंके दृश्य-कक्षानुसार द्वितीय एवं तृतीय होराका स्वामी क्रमश: शुक्र और बुधको स्वीकारा। चन्द्रका मानवजीवनमें महत्त्व होनेके कारण उपग्रह होते हुए भी उसे चतुर्थ होराका अधिपति माना। तत्पश्चात् बायीं क्षितिजसे दाहिनी क्षितिजकी ओर बढ़ते हुए पंचम होराका स्वामी शनि, छठी होराका स्वामी गुरु तथा सातवीं होराका स्वामी मंगलको स्वीकार किया। इस प्रकार इन सातों ग्रहोंको होराका अधिपति मानकर प्रत्येक दिन सूर्योदयके समय जिस ग्रहकी होरा होती है, उस दिनका नाम उस ग्रहके नामपर रख दिया गया।

चूँकि एक अहोरात्रमें २४ घण्टे होते हैं अर्थात् २४ होरा होती हैं, अत: दूसरे दिनका नाम २५वीं होराके अधिपतिके नामपर रख दिया गया तथा २५वीं होराको उस दिनकी प्रथम होरा मानकर अगली २५वीं होराके स्वामीके नामपर तृतीय वारका नाम रख दिया गया। इसी क्रमसे सातों वारोंका नामकरण-संस्कार एवं क्रमका निर्धारण हुआ। सूर्यसे गणना करनेपर २५वीं होराका स्वामी चन्द्र होता है, अत: रविवारसे अगला दिन सोमवार हुआ। सोमवारकी होराओंकी गणना करनेपर २५वीं होराका स्वामी मंगल आता है। इसी क्रमसे सातों वारोंका क्रम एवं नामका निर्धारण किया गया।

साप्ताहिक वारोंके नामकरणकी सारणी

प्रथम दिनका नाम प्रथम होराधिपतिके नामपर तथा दूसरे दिनका नामकरण उससे २५वीं होराके अधिपति ग्रहके नामपर हुआ। अत: २५ में ७ का भाग देनेपर शेष ४ बचते हैं अर्थात् किसी भी दिनकी होरासे ४ तक गिननेपर चौथी होरा जिस ग्रहकी होगी, दूसरे दिनका नाम भी उसी ग्रहके नामपर होगा। निम्न सारणीसे यह सरलतासे जाना जा सकता है—

दिनोंका क्रम दिनाधिपति	१ रविवार	२ सोमवार	३ मंगलवार	४ बुधवार	५ गुरुवार	६ शुक्रवार	७ शनिवार
सूर्य	प्रथम वार	१		२		३	
शुक्र		२		३		४ छठा वार	१
बुध		३		चौथा वार ४	१		२
चन्द्र (सोम)		दूसरा वार ४	१		२		३
शनि			२		३		सातवाँ वार ४
गुरु			३		पाँचवाँ वार ४	१	
मंगल			तीसरा वार ४	१		२	

सप्ताह, पक्ष और मास

सूर्यादि सात वारोंके क्रमानुसार एक चक्र पूर्ण होनेके कालका नाम सप्ताह है। सप्ताहसे अगली कालावधि पक्ष है। चन्द्रकलाओंकी वृद्धिसे शुक्ल-पक्ष तथा ह्रासके कृष्णपक्षका निर्धारण हुआ। पक्षके समान तिथि और मासका ज्ञान भी चन्द्रसे ही हो सकता है। चन्द्रमाको देखकर सर्वसाधारण बतला सकता है कि आज अमावस्या है या पूर्णिमा? अतः साधारणतया व्यवहारमें चान्द्रतिथि एवं चान्द्रमासका ही प्रयोग होता है।

बार्हस्पत्य आदि नौ मासोंमेंसे अग्रांकित चार प्रकारके मासका ही प्रयोग व्यवहारमें होता है—

१. सौरमास—इस मासका सम्बन्ध सूर्यसे है। पृथ्वीकी वार्षिक गतिके कारण सूर्य विभिन्न राशियोंको भोगता हुआ प्रतीत होता है। सूर्य एक राशिमें जितनी अवधितक रहता है उस अवधिको एक सौरमास कहा जाता है। राशियोंकी लम्बाईमें अन्तर होनेके कारण सौर मास कम-से-कम २९ दिन तथा अधिक-से-अधिक ३२ दिनका होता है। बारह सौरमास अर्थात् एक वर्षका मान ३६५ दिन ६ घण्टे ९ मिनट १०.८ सेकेण्ड होता है।

२. चान्द्रमास—शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे अमावस्या-तक एक चान्द्रमास माना जाता है। अमावस्याको सूर्य-चन्द्र एक राशिके समान अंशपर होते हैं, अतः सूर्य-चन्द्रमाका अन्तर ही चान्द्रमास कहलाता है। चान्द्रमास २९ दिन ३१ घटी ५० पल ७ विपल ३० प्रतिविपलका होता है।

३. नाक्षत्रमास—चन्द्रमाद्वारा २७ नक्षत्रोंको पार करनेके कालको नाक्षत्रमास कहते हैं। नाक्षत्रमास २७ दिन १९ घटी १७ पल ५८ विपल का होता है।

४. सावनमास—३० दिनका माना जाता है।

लोकव्यवहार एवं पंचांगोंमें चान्द्रमासको स्वीकारा गया है। यह मास वास्तवमें अमावस्यासे अगले दिन अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे प्रारम्भ होकर अमावस्याको समाप्त होता है। तभी पूर्णिमाको १५ तथा अमावस्याको ३० अंकसे प्रकट किया जाता है। सभी पंचांगोंमें विक्रम सम्वत् चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे प्रारम्भ होकर अगले चैत्रकी अमावस्याको पूर्ण होता है, पर लोकव्यवहारमें चान्द्रमास पूर्णिमाके अगले दिन कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे शुक्लपक्षकी पूर्णिमातक माना जाता है।

महीनोंका नामकरण

चान्द्रमासोंके नाम नक्षत्रोंके नामपर रखे गये हैं। पूर्णिमाको जो नक्षत्र होता है, उस नक्षत्रके नामपर उस मासका नाम रख दिया गया। चन्द्रमा चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको अश्विनी नक्षत्रपर प्रकट हुआ था तथा पूर्णिमाको चित्रा नक्षत्रपर आया। इस कारण प्रथम मासका नाम चैत्र पड़ा। अगले मासकी पूर्णिमाको विशाखा नक्षत्र होनेसे उस मासका नाम वैशाख रख दिया गया। इसी प्रकार पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र होनेसे ज्येष्ठ, पूर्वाषाढ़ासे आषाढ़, श्रवण नक्षत्रसे श्रावण, पूर्वा भाद्रपदसे भाद्रपद, अश्विनीसे आश्विन, कृतिकासे कार्तिक, मृगशिरासे मार्गशीर्ष, पुष्य नक्षत्रसे पौष, मघासे माघ एवं पूर्वाफाल्गुनीसे फाल्गुन नाम रखा गया।

भारतीय संस्कृतिमें सूर्य एवं चन्द्र दोनोंको समान महत्त्व दिया गया है। महीनोंके रूपमें जहाँ चान्द्रमासको प्रधानता दी गयी है, वहाँ वर्षके रूपमें सौरवर्षको स्वीकारा गया है। सौरवर्ष ३६५$^1/_4$ दिनके लगभग तथा चान्द्रमास ३५४ दिनके लगभग होता है। यदि इन दोनोंमें एकरूपता नहीं लायी जाय तो हमारे त्योहार भी मोहर्रमकी भाँति कभी ग्रीष्मऋतुमें तथा कभी शिशिर-ऋतुमें आयेंगे, ऐसा न हो, इसलिये निरयन सौरवर्ष एवं चान्द्रवर्षके लगभग ११ दिनके अन्तरको मिटानेके लिये अधिकमास या मलमासकी व्यवस्था की गयी। ३२ मास १६ दिन ४ घटी उपरान्त अधिकमास पुनः आता है। अधिकमास ज्ञात करनेहेतु वर्तमान शक-सम्वत्‌मेंसे ९२५ घटायें। शेषमें १९ का भाग दें। यदि शेष ३ बचे तो चैत्र, ११ बचे तो वैशाख, ८ बचे तो ज्येष्ठ, १६ बचे तो आषाढ़, ५ बचे तो श्रावण, १३ बचे तो भाद्रपद, २ शेष

रहे तो आश्विनमासकी वृद्धि होगी। अन्य संख्या शेष रहे तो अधिकमास नहीं होगा। माघ, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन—ये नौ मास ही अधिकमास होते हैं; क्योंकि कुम्भसे तुलातक सौरमास चान्द्रमाससे बड़ा होता है। अतः इन मासोंमें ऐसा समय उपस्थित होता है कि चान्द्रमासकी दो अमावस्याओंके बीच संक्रान्ति नहीं पड़ती। अतः वह चान्द्रमास अधिकमास हो जाता है। इसी प्रकार वृश्चिक, धनु एवं मकर—ये तीन सौरमास चान्द्रमाससे छोटे होते हैं। इसी कारण कार्तिक, मार्गशीर्ष एवं पौषमास कभी भी अधिकमास न होकर क्षयमास होते हैं; क्योंकि इन तीन मासोंमें दो अमावस्याओंके बीच दो सौर-संक्रान्ति आ जाती है। चान्द्रमासके दो लगातार अमावस्याओंके मध्यमें यदि सूर्यसंक्रान्ति (सूर्यका एक राशिसे दूसरी राशिमें प्रवेश) न आये, तो अधिकमास होता है। दो अमावस्याओंके मध्य दो संक्रान्तिका आना क्षयमास कहलाता है। क्षयमास १४१ वर्ष अथवा १९ वर्ष बाद आता है। जिस वर्षमें क्षयमास आता है, उस वर्षमें दो अधिकमास अवश्य होते हैं। प्रथम अधिकमास क्षयमासके ३ मास पूर्व तथा दूसरा अधिकमास क्षयमासके ३ मास पश्चात् आता है।

तिथि

सूर्य और चन्द्रके बीचकी १२ डिग्री दूरीको एक तिथि कहा जाता है। अमावस्याको सूर्य और चन्द्र एक राशिके समान अंशपर होते हैं। ०° से १२° तक दूरी प्रतिपदा, १२° से २४° तक द्वितीया, २४° से ३६° तक दूरी होनेपर तृतीया होती है। इसी प्रकार पूर्णिमाको सूर्य परस्पर १८०° तक (अन्तर) शुक्लपक्ष तथा १८०° से (उलटे) ०° तक कृष्णपक्ष होता है। १८०° से १६८° तक कृष्णपक्षकी प्रतिपदा, १६८° से १५६° तक द्वितीया, दूसरे रूपमें इस क्रमकी प्रस्तुति इस प्रकार भी हो सकती है। चूँकि क्रान्तिवृत्तमें कुल ३६०° ही हो सकते हैं तथा पूर्णिमाको चन्द्र सूर्यसे १८०° पर होता है। अतः १८०° से १९२° तक कृष्णपक्षकी प्रतिपदा, १९२° से २०४° तक द्वितीया होगी। इस प्रकार १८०° से ३६०° तक कृष्णपक्षकी क्रमशः प्रतिपदासे अमावस्यातककी तिथियाँ होंगी।

चन्द्रकी दैनिक औसत गति ८०० कला अर्थात् १३$^{१}/_{२}$° मानी गयी है, जिसमें ह्रास और वृद्धि दृष्टिगोचर होती है; क्योंकि सूर्यके चारों ओर घूमती हुई पृथ्वीको समान एवं विपरीत दिशामें चलकर चन्द्र पार करता है। यही कारण है कि तिथिमान भी घटता-बढ़ता रहता है। कभी तो तिथि २१ घण्टेके लगभग हो जाती है तो कभी २६ घण्टेके लगभगतक की। चन्द्र एक दिनमें जबतक १३$^{१}/_{२}$° चलता है, सूर्य तबतक १° आगे बढ़ जाता है। अतः सूर्य और चन्द्रका एक दिनमें पारस्परिक अन्तर १२° रहता है। अतः प्रतिदिन एक तिथि होती है तथा इसी प्रकार क्रम चलता रहता है।

तिथि-वृद्धि एवं तिथि-क्षय

यदि किसी दिन सूर्योदयसे कुछ समय पश्चात् कोई तिथि प्रारम्भ होकर दूसरे दिनके सूर्योदयसे पूर्व ही समाप्त हो जाय तो उस तिथिको क्षय माना जाता है। यदि किसी दिन सूर्योदयसे पूर्व ही कोई तिथि प्रारम्भ होकर अगले दिन सूर्योदयके बाद भी चालू रहती है तो उस दिन तिथिकी वृद्धि हो जाती है।

पृथ्वीकी धुरी तिरछी होनेके कारण उसकी वार्षिक गतिके फलस्वरूप सूर्य दिनांक २२ जूनको कर्करेखापर दृष्टिगोचर होता है तथा २१ दिसम्बरको मकररेखापर। इस अवधिको दक्षिणायन कहते हैं। अर्थात् कर्करेखासे दक्षिणायनकी ओर (मकररेखातक) सूर्यका प्रस्थान दक्षिणायन कहलाता है। दिनांक २२ दिसम्बरसे सूर्य उत्तरमें गमन करता है तथा २१ जूनको कर्करेखापर पुनः दृष्टिगोचर होने लगता है। यह छः मासका समय उत्तरायण कहलाता है। विषुवत्‌रेखासे कर्करेखातक सूर्यके गमन एवं कर्करेखासे विषुवत्‌रेखापर लौटनेके कालको उत्तरगोल तथा विषुवत्‌रेखासे मकररेखातक जाने एवं मकररेखासे वापस विषुवत्‌रेखापर आनेतकके कालको दक्षिणगोल कहते हैं।

आज प्राय: सभी देश वर्षको कालगणनाकी एक बड़ी इकाई तथा शताब्दीको बहुत बड़ी इकाई मानते हैं, पर प्राचीन भारतवर्ष वर्षके बाद युग (१२ वर्ष), पितृवर्ष (३० वर्ष), देववर्ष (३६० वर्ष), ब्रह्मावर्ष, विष्णुका वर्ष आदि अनेक बड़ी-से-बड़ी कालगणनाकी इकाइयोंसे परिचित था।

आज हम समयकी सूक्ष्म इकाई सेकेण्डको मानते हैं, पर ज्योतिर्विज्ञानमें इससे कहीं अधिक सूक्ष्मतर कालगणनाकी इकाइयाँ विद्यमान हैं।

इसी प्रकार ग्रहोंकी स्थिति, गति, दूरी आदिके लिये केवल डिगरी शब्दका प्रचलन है, जबकि भारतीय ज्योतिर्विज्ञान डिगरीके ६०वें भागको कला तथा कलाके ६०वें भागको विकलाके नामसे प्रतिपादितकर सूक्ष्म ज्ञान प्रदान करता है।

इस प्रकार यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय कालगणना विश्वकी प्राचीनतम, सूक्ष्मतम, शुद्धतम तथा विश्वसनीय गणना है। यह हमारी संस्कृतिकी अनुपम देन है। हम सबका यह कर्तव्य है कि हम भारतीय काल-गणनाका सही ज्ञान अपनी भावी पीढ़ीको करायें, ताकि वे पश्चिमके अन्धभक्त न बनकर भारतीय संस्कृति एवं ज्ञानकी महानताको स्वीकारते हुए उसके संरक्षण एवं संवर्द्धनका सतत प्रयास करते रहें।

ज्योतिषीय कालपरिमाण

(श्रीजगदीशप्रसादजी तिवारी)

काल शब्द दो रूपोंमें प्रयुक्त होता है—१-भूतों (जीवों)-का प्राणान्त अर्थात् मृत्यु। इसके देवता यमराज हैं। २-कार्यसम्पादनके लिये समयका निर्धारण, जिसकी गणना किसी इकाईके नामसे की जा सके। यह गणनात्मक काल है। ज्योतिषमें गणनात्मक कालका प्रयोजन है।

गणनात्मक काल दो प्रकारका है। १-स्थूलकाल (मूर्तकाल) तथा २-सूक्ष्मकाल (अमूर्तकाल)। स्थूलकालकी गणना जगत्व्यवहारमें की जाती है। सूक्ष्मकालकी गणना व्यवहारमें कठिन है। यह कालकी सूक्ष्म इकाई है। प्राणादिको सूक्ष्मकाल कहा जाता है। इसकी सूक्ष्मतम इकाई परमाणु या त्रुटि है। स्थूलकालकी महत्तम इकाई कल्प है। यहाँ संक्षेपमें कालगणनाका मान प्रस्तुत है—

१ परमाणु	= कालकी सूक्ष्मतम अवस्था
२ परमाणु	= १ अणु
३ अणु	= १ त्रसरेणु
३ त्रसरेणु	= १ त्रुटि
१० त्रुटि	= १ प्राण
१० प्राण	= १ वेध
३ वेध	= १ लव
३ लव	= १ निमेष
१ निमेष	= १ पलक झपकनेका समय
२ निमेष	= १ विपल
३ निमेष	= १ क्षण
५ निमेष	= २$\frac{१}{२}$ त्रुटि
२$\frac{१}{२}$ त्रुटि	= १ सेकण्ड
२० निमेष	= १० विपल=४ सेकण्ड
५ क्षण	= १ काष्ठा
१५ काष्ठा	= १ दण्ड=१ लघु
२ दण्ड	= १ मुहूर्त
१५ लघु	= १ घटी=१ नाड़ी
१ घटी	= २४ मिनट
३ मुहूर्त	= १ प्रहर
२ घटी	= १ मुहूर्त=४८ मिनट
१ प्रहर	= १ याम
६० घटी	= १ अहोरात्र (दिन-रात)
८ प्रहर	= १ अहोरात्र
१५दिन-रात	= १ पक्ष

२ पक्ष = १ मास
२ मास = १ ऋतु
३ ऋतु = ६ मास
६ मास = १ अयन
२ अयन = १ वर्ष
६ ऋतु = १ वर्ष
१ वर्ष = १ संवत्सर=१ अब्द
१० अब्द = १ दशाब्द
१०० अब्द = १ शताब्द

घटी, घटिका, घड़ी, नाड़ी, नाड़िका, दण्ड—ये समानार्थक हैं।

६० तत्प्रति विकला= १ प्रति विकला
६० प्रति विकला = १ विकला
६० विकला = १ कला
६० कला = १ अंश (डिग्री)
३० अंश = १ राशि
१२ राशि = १ भचक्र, भगण

अन्य कालगणनाक्रम

१ त्रुटि = कमलपत्रको सूईकी नोंकसे एक बार छेदनेका समय
६० त्रुटि = १ रेणु
६० रेणु = १ लव
६० लव = १ लीक्षक (१/१५ सेकण्ड)
६० लीक्षक = १ प्राण (४ सेकण्ड)
१ प्राण = १० विपल (४ सेकण्ड)
६० विपल = १ पल
६० पल = १ घटी (२४ मिनट)
१ घटी = १ नाड़ी (२४ मिनट)
१ नाड़ी = १ दण्ड (२४ मिनट)
६० घटी = १ दिन-रात (२४ घण्टे)
३० दिन-रात = १ मास
१२ मास = १ वर्ष
१ मास = पितरोंका एक दिन-रात
१ वर्ष = देवताओंका एक दिन-रात

अन्य कालगणनाक्रम

१ निमेष =१ पलक झपकनेका समय
३ निमेष =१ क्षण
५ क्षण =१ काष्ठा
१५ निमेष =१ काष्ठा
३० काष्ठा =१ कला
३० कला =१ मुहूर्त
३० मुहूर्त =१ दिन-रात
१५ दिन-रात =१ पक्ष
२ पक्ष =१ मास
कृष्णपक्ष =पितरोंका १ दिन
शुक्लपक्ष =पितरोंकी १ रात
२ मास =१ ऋतु
३ ऋतु =१ अयन=६ मास
२ अयन =१ वर्ष
६ ऋतुएँ =१ वर्ष
१ मास =पितरोंका १ दिन-रात
१ वर्ष =देवताओंका १ दिन-रात
उत्तरायन =देवताओंका १ दिन
दक्षिणायन =देवताओंकी १ रात

अन्य कालप्रमाण

१०० त्रुटि =१ लव=१ तत्पर
३० लव =१ निमेष
१० गुरु अक्षर =१ प्राण=१ असु
४५ निमेष =१ प्राण
६ प्राण =१ पल=१ बिनाडी=१ विघटिका=१ विघटी
१० विपल =१ प्राण=१ असु
६० विनाडी =१ नाडी=१ घटी=१ दण्ड
६० नाडी =१ नक्षत्र दिन=१दिन-रात
७½ घटी =१ प्रहर
८ प्रहर =२४ घंटा=१ दिन-रात=२४ होरा
२ घटी =१ मुहूर्त
३० मुहूर्त =१ दिन-रात

७ दिन	= सप्ताह, २ सप्ताह=१ पक्ष
३० दिन	= १ मास, २ पक्ष = १ मास
१२ मास	= १ वर्ष
३० अहोरात्र	= १ सावन मास
३० सावनदिन	= १ सावन मास
३० चन्द्रतिथि	= १ चान्द्र मास
१ संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तितक	= १ सौर मास
१२ मास	= १ वर्ष=१ दिव्य दिन
३६० वर्ष	= १ दिव्य वर्ष

युगप्रमाण

सत्ययुग = ४००० देवतावर्ष। सत्ययुगकी पूर्व सन्ध्या= ४०० देवतावर्ष। सत्ययुग की अन्तिम सन्ध्या=४०० देवतावर्ष। सत्ययुग=१४४००००+१४४०००+१४४००० =१७२८००० (सत्रह लाख अट्ठाईस हजार) मानववर्ष।

त्रेतायुग = ३००० देवतावर्ष। त्रेतायुगकी पूर्व सन्ध्या= ३०० देवतावर्ष। त्रेतायुगकी अन्तिम सन्ध्या=३०० देवतावर्ष। कुल १०८००००+१०८०००+१०८००० =१२९६००० (बारह लाख छियानबे हजार) मानववर्ष।

द्वापरयुग = २००० देवतावर्ष। द्वापरकी पूर्व सन्ध्या=२०० देवतावर्ष। द्वापरयुगकी अन्तिम सन्ध्या=२०० देवतावर्ष। कुल ७२००००+७२०००+७२०००=८६४००० (आठ लाख चौसठ हजार) मानववर्ष।

कलियुग = १००० देवतावर्ष। कलियुगकी पूर्व सन्ध्या=१०० देवतावर्ष। कलियुगकी अन्तिम सन्ध्या=१०० देवतावर्ष। कुल ३६००००+३६०००+३६०००= ४३२००० (चार लाख बत्तीस हजार) मानववर्ष।

चतुर्युगी = देवताओंके १२००० वर्ष। मनुष्योंके ४३२०००० वर्ष (तिरालीस लाख बीस हजार मानववर्ष)।

कलियुगसे दुगुना द्वापरयुग, तिगुना त्रेतायुग और चौगुना सत्ययुग होता है। एक चतुर्युगी कलियुगसे दस गुनी होती है।

विश्वसृष्टिमान = ईसवी सन् २०१३ में कलियुगको प्रारम्भ हुए ५११४ वर्ष हो गये हैं। विश्व-सृष्टिके १९७२९४९११४ वर्ष (एक अरब सत्तानबे करोड़ उनतीस लाख, उनचास हजार एक सौ चौदह वर्ष) बीत चुके हैं। अभी २८वाँ चतुर्युग चल रहा है। यह वैवस्वत नामका सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

मन्वन्तर

१ महायुग (चतुर्युगी)=४३२०००० मानव वर्ष।

७१.४३ महायुग=१ मन्वन्तर (१ मनुका जीवन-काल)।

१००० महायुग=१ कल्प=ब्रह्माका १ दिन (४३२००००००० मानव वर्ष) ब्रह्माकी १ रात=१ कल्प।

३६० कल्प=ब्रह्माका १ वर्ष।

ब्रह्माकी आयु=१०० ब्राह्मवर्ष=३६०×१००=३६००० कल्प।

१ मन्वन्तर=१००० चतुर्युगीका चौदहवाँ भाग=१७१०३ दिव्य वर्ष।

१ मन्वन्तर=२ ब्राह्म अयन। उत्तरायण=ब्रह्मलोकका प्रकाशमार्ग।

दक्षिणायन=ब्रह्मलोकका धूम्रमार्ग।

मन्वन्तरका उत्तरायण=एक मनुकी पूर्ण आयु।

मन्वन्तरका दक्षिणायन=अन्य मनुका जीवनकाल।

ब्रह्माका १ वर्ष=दस हजार अस्सी मनुओंकी आयुके बराबर।

१ कल्प=१४ मन्वन्तर।

मनुओंके नाम

मनु १४ हैं। उनके नाम हैं—(१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) उत्तम, (४) तामस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत, (८) सावर्णि, (९) दक्षसावर्णि, (१०) ब्रह्मसावर्णि, (११) धर्मसावर्णि, (१२) रुद्रसावर्णि, (१३) देवसावर्णि तथा (१४) इन्द्रसावर्णि।

वर्तमान कालमें सातवें वैवस्वत मनुका काल चल रहा है। प्रथम छः मनुओंके काल व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमान सातवें मनुकालके २७ महायुग बीत चुके हैं, २८वाँ महायुग चल रहा है, जिसके प्रथम तीन युग

(सत्ययुग, त्रेता और द्वापरयुग) बीत चुके हैं और चौथा युग 'कलियुग' चल रहा है। अभी कलियुगका प्रथम चरण है। ब्रह्माका द्वितीय परार्ध है। श्वेतवाराह नामका कल्प है और वैवस्वत नामका मन्वन्तर है।

ईसवी सन्, विक्रम सम्वत्, शक सम्वत्, हिजरी सन् आदिमें सामंजस्य

ईसवी सन् + ५७ = विक्रम सम्वत्।
ईसवी सन् (-) ७८ = शक सम्वत्।
शक सम्वत् + ७८ = ईसवी सन्
विक्रम सम्वत् (-) ५७ = ईसवी सन्
विक्रम सम्वत् (-) १३५ = शक सम्वत्
ईसवी सन् (-) ५८३ = हिजरी सन्
हिजरी सन् (-) १० = फसली सन्
फसली सन् (-) १ = बँगला सन्
शक सम्वत् (-) ५०० = हिजरी सन्

दिन, मास एवं वर्षज्ञान

मासोंकी गणना चान्द्र माससे तथा वर्षकी गणना सौर माससे की जाती है। दिनसे मास और माससे वर्ष बनते हैं। दिन, मास एवं वर्ष चार-चार प्रकारके होते हैं—सावन, सौर, चान्द्र तथा नाक्षत्र।

प्रचलित ईसवी सन्, सम्वत्सर आदि

ईसवी सन्—ईसामसीहके जन्मदिनसे माना जाता है। जनवरी माहसे प्रारम्भ होकर दिसम्बर माहतक १२ माहका है।

राष्ट्रीय सम्वत्—भारतमें केन्द्र सरकारके निर्णयके अनुसार २२ मार्च १९५७ से शक सम्वत्को 'राष्ट्रीय सम्वत्' घोषित कर रखा है। यह प्रतिवर्ष २२ मार्चसे प्रारम्भ होता है।

विक्रम सम्वत्—यह सम्वत् उज्जयिनीके सम्राट् विक्रमादित्यने चलाया था। यह प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला प्रतिपदासे प्रारम्भ होता है। इसमें दिन, वार और तिथिका प्रारम्भ सूर्योदयसे माना जाता है।

शक सम्वत्—यह सम्वत् शालिवाहन नामक नृपतिने चलाया था। इसे अब राष्ट्रीय सम्वत्की मान्यता है। एक अन्य मान्यताके अनुसार कनिष्क प्रथमको इस संवत्का प्रवर्तक माना जाता है।

बँगला सम्वत्—बँगला सम्वत् मेषकी संक्रान्तिसे प्रारम्भ होता है। मीनकी संक्रान्तिसे बंगाली चैत्रमास तथा मेषकी संक्रान्तिसे वैशाख मास प्रारम्भ होता है। वर्षारम्भ संक्रान्तिके दूसरे दिनसे पहली तारीख गिनते हैं। बंगला सम्वत्में कभी २९, ३०, ३१ या ३२ दिन भी एक महीनेमें पड़ सकते हैं। बंगाली सन्में ५१५ जोड़नेसे शक संवत् और ५९३-९४ जोड़नेसे ईसवी सन् आता है।

इस्लामी हिजरी सन्—इसकी उत्पत्ति अरब देशमें हुई थी। भारतमें इसका प्रचार मुसलमानी राज्यकालसे हुआ है। 'हिजरत' का अर्थ है 'संकटमें देशत्याग'। पैगम्बर मुहम्मद साहब १५ जुलाई सन् ६२२ ई० तदनुसार शाके ५४४ श्रावण शुक्ल, गुरुवारकी रात्रि (मुसलमानोंकी शुक्रवारकी रात)-को अपने वतन मक्काको छोड़कर मदीना चले गये थे। पैगम्बर साहबके हिजरतकी यह घटना ही इस सन्का आरम्भकाल है। इसीलिये इसे 'हिजरी' सन् कहते हैं। इसमें चान्द्र वर्ष ३५४ या ३५५ दिन का होता है। इसमें अधिकमास नहीं होता। महीनेका आरम्भ शुक्लपक्षकी प्रतिपदा या द्वितीयाके चन्द्रदर्शनके बाद होता है। महीनेके दिनोंको पहला चाँद, दूसरा चाँद आदि कहते हैं। एक मासमें २९ या ३० चाँद दिन होते हैं। इसमें वार और तारीखका प्रारम्भ सूर्यास्तसे होता है।

मुहर्रम महीनेसे जिलहिजतक १२ महीने होते हैं। १२ महीनोंके नाम इस प्रकार हैं—

(१) **मुहर्रम**—हजरत मुहम्मद हुसैन इसके प्रवर्तक हैं। हजरत मुहम्मद साहबके कोई बेटा नहीं था। इनकी बेटीके बेटे हुसैन साहबको 'यजीद' नामके बादशाहने लड़ाईमें मार दिया था। वह मुहर्रम महीनेकी दसवीं तारीख थी। तबसे इसी तारीखको ताजिये निकाले जाते हैं। (२) **सफर**—खाली महीना। इसमें कोई त्योहार नहीं है। (३) **रबी-उल-अव्वल**—इस महीनेमें हजरत

मुहम्मद साहबका जन्मदिन १२ तारीखको 'ईद-ए-मिलाद' के नामसे मनाया जाता है। (४) **रबी-उल-आखर**—खाली, कोई त्योहार नहीं। (५) **जमादे-उल-अव्वल**—खाली, कोई त्योहार नहीं। (६) **जमादे-उल-आखर**—खाली, कोई त्योहार नहीं। (७) **रज्जब**—अजमेर शरीफमें उर्सका मेला लगता है। (८) **साबान**—१४वीं तारीखको 'शब्बेबरात' मनायी जाती है। (९) **रमजान**—इस महीनेमें रोजे रखते हैं। (१०) **सब्बाल**—एक तारीखको 'ईद-उल-फितर' (मीठी ईद)-का त्योहार मनाया जाता है। (११) **जिलकाद**—खाली, कोई त्योहार नहीं। (१२) **जिलहिज**—१०वीं तारीखको 'ईद-उल-जुहा' (बकरीद)-का त्योहार मनाया जाता है।

संवत्सर—ये ६० हैं। एकके बाद दूसरा संवत्सर आता है। इन संवत्सरोंके नाम एवं क्रम निश्चित हैं। ६०वें संवत्सरकी समाप्तिपर प्रथम संवत्सर पुनः चालू हो जाता है। जब वर्तमान सृष्टिकी रचना हुई थी, तबसे प्रथम संख्याका संवत्सर चला था। यह क्रम अभी भी चालू है।

६० संवत्सरोंके नाम तथा क्रम इस प्रकार हैं—(१) प्रभव, (२) विभव, (३) शुक्ल, (४) प्रमोद, (५) प्रजापति, (६) अंगिरा, (७) श्रीमुख, (८) भाव, (९) युवा, (१०) धाता, (११) ईश्वर, (१२) बहुधान्य, (१३) प्रमाथी, (१४) विक्रम, (१५) विषु, (१६) चित्रभानु, (१७) स्वभानु, (१८) तारण, (१९) पार्थिव, (२०) व्यय, (२१) सर्वजित्, (२२) सर्वधारी, (२३) विरोधी, (२४) विकृति, (२५) खर, (२६) नन्दन, (२७) विजय, (२८) जय, (२९) मन्मथ, (३०) दुर्मुख, (३१) हेमलम्ब, (३२) विलम्ब, (३३) विकारी, (३४) शर्वरी, (३५) प्लव, (३६) शुभकृत्, (३७) शोभन, (३८) क्रोधी, (३९) विश्वावसु, (४०) पराभव, (४१) प्लवंग, (४२) कीलक, (४३) सौम्य, (४४) साधारण, (४५) विरोधकृत्, (४६) परिधावी, (४७) प्रमादी, (४८) आनन्द, (४९) राक्षस, (५०) नल, (५१) पिंगल, (५२) काल, (५३) सिद्धार्थ, (५४) रौद्रि, (५५) दुर्मति, (५६) दुंदुभि, (५७) रुधिरोद्गारी, (५८) रक्ताक्ष, (५९) क्रोधन तथा (६०) अक्षय।

महीना (मास)—मास १२ हैं। ये एकके बाद एक क्रमसे आते हैं। इनके नाम एवं क्रम निश्चित हैं। एक वर्ष या सम्वत्में १२ मास होते हैं। इनके नाम हैं—(१) चैत्र, (२) वैशाख, (३) ज्येष्ठ, (४) आषाढ़, (५) श्रावण, (६) भाद्रपद, (७) आश्विन, (८) कार्तिक, (९) मार्गशीर्ष, (१०) पौष, (११) माघ तथा (१२) फाल्गुन। प्रत्येक मासमें ३० तिथि होती है। किसी-किसी मासमें तिथि-क्षय तथा तिथि-वृद्धि भी होती है। कभी-कभी मास-वृद्धि तथा मास-क्षय भी होता है।

चान्द्रमासोंके २ प्रकार—चान्द्रमास २ प्रकारके हैं। ये दोनों प्रकार दक्षिण या उत्तर भारतमें, कहीं-न-कहीं, व्यवहारमें लिये जाते हैं।

(१) **अमान्तमास**—यह शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे अमावस्यातकका ३० तिथियोंका होता है और अमावस्याको समाप्त होता है।

(२) **पूर्णिमान्तमास**—यह कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे पूर्णमासीतकका ३० तिथियोंका होता है और पूर्णमासीको समाप्त होता है।

पूर्णमासीको १५वीं और अमावस्याको ३०वीं तिथि होती है।

मासोंमें क्षय-वृद्धि-क्रम

अधिकमास—जिस चान्द्रमासमें सूर्यकी संक्रान्ति नहीं होती, उसे अधिकमास कहते हैं। जिस राशिपर सूर्य जाता है, वह उस राशिकी संक्रान्ति कहलाती है। अर्थात् जब दो पक्षोंमें लगातार सूर्य-संक्रान्ति नहीं होती, तब वह अधिकमासकी संज्ञामें आता है। इसे मलमास और पुरुषोत्तममास भी कहते। हर तीसरे वर्ष चान्द्र एवं सौर वर्षोंके समयान्तरका सामंजस्य करनेके लिये अधिमास करनेका विधान है।

क्षयमास—जिस चान्द्रमासके दोनों पक्षमें सूर्य-संक्रान्ति होती है, उसे क्षयमास कहते हैं। क्षयमास केवल कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष—इन तीन महीनोंमेंसे किसी एक महीनेमें पड़ता है, वर्षके अन्य मासोंमें नहीं। जिस वर्ष क्षयमास होता है, उस एक वर्षके भीतर दो अधिकमास होते हैं।

सौरमास और संक्रान्ति—सूर्य जब एक राशि पारकर आगामी राशिपर गति करता है, उसे उस राशिकी सूर्य-संक्रान्ति कहते हैं। सूर्यकी प्रत्येक महीनेमें एक संक्रान्ति (एक राशिसे दूसरी राशिमें प्रवेश) होती है। यह संक्रान्ति प्रायः हर अँगरेजी महीनेकी १५ तारीखके आसपास होती है।

पक्ष—पक्ष दो हैं, कृष्णपक्ष तथा शुक्लपक्ष। ये १५-१५ तिथियोंके होते हैं। कृष्णपक्ष पितरोंका दिन तथा शुक्लपक्ष पितरोंकी एक रात्रि होती है।

अयन—ये २ (दो) हैं। उत्तरायण तथा दक्षिणायन। ये छः-छः मासके होते हैं। एक वर्षमें २ अयन होते हैं। सूर्यकी मकर-संक्रान्तिसे मिथुन-संक्रान्तितक उत्तरायण तथा सूर्यकी कर्क-संक्रान्तिसे धनु-संक्रान्तितक दक्षिणायन होता है। उत्तरायण देवताओंका एक दिन तथा दक्षिणायन देवताओंकी एक रात्रि होती है।

गोल—गोल दो हैं। उत्तर गोल (उत्तरी ध्रुव) तथा दक्षिण गोल (दक्षिणी ध्रुव)। छः राशियाँ—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह और कन्या उत्तर गोलमें है तथा शेष छः राशियाँ—तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन दक्षिण गोलमें हैं। पृथ्वीके मध्यमें पूर्वसे पश्चिम (या पश्चिमसे पूर्व) एक कल्पित रेखा है। जिसे भूमध्य (Equater) रेखा कहते हैं। इस रेखाके ऊपर, उत्तरमें उत्तर गोल तथा नीचे दक्षिणमें दक्षिण गोल है। इनके ध्रुव-स्थानको उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव कहते हैं।

ऋतुएँ—एक वर्षमें छः ऋतुएँ होती हैं। प्रत्येक ऋतु दो-दो मासकी होती है। ये क्रमशः आती-जाती हैं। इनके नाम हैं—(१) **वसन्तऋतु**—फाल्गुन, चैत्र (फरवरी-मार्च)-में। (२) **ग्रीष्मऋतु**—वैशाख, ज्येष्ठ (अप्रैल-मई)-में। (३) **वर्षाऋतु**—आषाढ़-श्रावण (जून-जुलाई)-में। (४) **शरद्‌ऋतु**—भाद्रपद, आश्विन (अगस्त-सितम्बर)-में (५) **शिशिरऋतु**—कार्तिक, मार्गशीर्ष (अक्टूबर-नवम्बर)-में तथा (६) **हेमन्तऋतु**—पौष, माघ (दिसम्बर-जनवरी)-में।

तिथि—चन्द्रमाकी एक कलाको तिथि कहते हैं। तिथियाँ १ से ३० तक एक मासमें ३० होती हैं। ये पक्षोंमें विभाजित हैं। प्रत्येक पक्षमें १५-१५ तिथियाँ होती हैं। इनकी क्रम-संख्या ही इनके नाम हैं। ये हैं—(१) प्रतिपदा, (२) द्वितीया, (३) तृतीया, (४) चतुर्थी, (५) पंचमी, (६) षष्ठी, (७) सप्तमी, (८) अष्टमी, (९) नवमी, (१०) दशमी, (११) एकादशी, (१२) द्वादशी, (१३) त्रयोदशी, (१४) चतुर्दशी तथा (१५) पूर्णिमा और (३०) अमावस्या। शुक्लपक्षकी अन्तिम तिथि १५वीं पूर्णमासी या पूर्णिमा है तथा कृष्णपक्षकी अन्तिम तिथि ३०वीं अमावस्या है।

जिस दिन सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशिपर होते हैं, तब वह तिथि अमावस्या होती है। उस दिन सूर्य और चन्द्रमाका गति अन्तर शून्य अक्षांश होता है।

जिस दिन सूर्य और चन्द्रमा आमने-सामने अर्थात् ६ राशि या १८० अंशके अन्तरपर होते हैं, वह तिथि पूर्णमासी कहलाती है।

अमावस्या तिथिके दो प्रकार हैं। (१) सिनीवाली अमावस्या। जो चतुर्दशी तिथिमिश्रित हो। (२) कूहू अमावस्या। जो प्रतिपदामिश्रित हो।

पूर्णमासीके दो प्रकार हैं। (१) 'अनुमति' पूर्णिमा तथा 'राका' पूर्णिमा।

तिथिनिर्माण—चन्द्रमाकी गति सूर्यसे प्रायः तेरह गुना अधिक है। जब इन दोनोंकी गतिमें १२ अंशका अन्तर आ जाता है, तब एक तिथि बनती है। इस प्रकार ३६० अंशवाले 'भचक्र' (आकाश-मण्डल)-में ३६०÷१२=३० तिथियोंका निर्माण होता है। एक मासमें ३० तिथियाँ बनती हैं। यह नैसर्गिक क्रम निरन्तर चालू है।

तिथिक्षय-वृद्धि—एक तिथिका मान १२ अंश होता है, कम न अधिक। सूर्योदयके साथ ही तिथि-नाम एवं संख्या बदल जाती है। यदि किसी तिथिका अंशादि मान आगामी सूर्योदयकालसे पूर्व ही समाप्त हो रहा होता है तो वह तिथि समाप्त होकर आनेवाली तिथि प्रारम्भ मानी जायगी और सूर्योदयकालपर जो तिथि वर्तमान है, वही तिथि उस दिन आगे रहेगी। यदि तिथिका अंशादि मान आगामी सूर्योदयकालके उपरान्ततक, चाहे थोड़े ही कालके लिये सही रहता है तो वह तिथि-वृद्धि मानी जायगी। यदि दो सूर्योदयकालके भीतर दो तिथियाँ आ जाती हैं तो दूसरी तिथिका क्षय माना जायगा और उस क्षयतिथिकी क्रमसंख्या पंचांगमें नहीं लिखते, वह तिथि अंक छोड़ देते हैं। आशय यह है कि सूर्योदयकालतक जिस भी तिथिका अंशादि मान वर्तमान रहता है। चाहे कुछ मिनटोंके लिये ही सही, वही तिथि वर्तमानमें मानी जाती है। तिथि-क्षय-वृद्धिका आधार सूर्योदयकाल है।

तिथि और तारीख—तिथि और तारीखमें अन्तर है। एक सूर्योदयकालसे अगले सूर्योदयकालतकके समयको तिथि कहते हैं। तिथिका मान रेखांशके आधारपर विभिन्न स्थानोंपर कुछ मिनट या घण्टा घट-बढ़ सकता है। तारीख आधी रातसे अगली आधीराततकके समयको कहते हैं। तारीख २४ घण्टेकी होती है। यह आधी रात १२ बजे प्रारम्भ होकर दूसरे दिन आधी रात १२ बजे समाप्त होती है। यह सब स्थानोंपर एक समान २४ घण्टेकी है।

प्रारम्भकाल—तिथिका आरम्भ, वारका आरम्भ तथा दिनका आरम्भ उस स्थानपर सूर्योदयसे होता है। अँगरेजी तारीखका आरम्भ आधी रातसे होता है। अँगरेजी वर्ष जनवरीसे आरम्भ होता है। विक्रम सम्वत्का आरम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे होता है। मासका आरम्भ कृष्ण प्रतिपदासे होता है। पक्षका आरम्भ प्रतिपदासे होता है। वारका आरम्भ रविवारसे होता है। दिनका आरम्भ सूर्योदयसे होता है। रात्रिका आरम्भ सूर्यास्तसे होता है। 'करण' का आरम्भ कृष्णपक्ष प्रतिपदामें 'बालव' से तथा शुक्लपक्ष प्रतिपदामें 'किंस्तुघ्न' से होता है। राशियोंका आरम्भ मेष राशिके शून्य अंशसे होता है। नक्षत्रोंका आरम्भ अश्विनी नक्षत्रके शून्य अंशसे होता है। योगका आरम्भ 'विष्कम्भ' योगसे होता है। उत्तरायणका आरम्भ मकर राशिसे तथा दक्षिणायनका आरम्भ कर्क राशिसे होता है। संवत्सरका आरम्भ 'प्रभव' से होता है। कालका आरम्भ 'परमाणु' या 'त्रुटि' से होता है। युगका आरम्भ सत्ययुगसे होता है। मन्वन्तरोंका आरम्भ स्वायम्भुव मनुसे होता है। इसलामी हिजरी सन्का आरम्भ 'मुहर्रम' से होता है। ऋतुओंका प्रारम्भ बसन्तसे होता है।

दिनमान-रात्रिमान

सूर्योदयसे सूर्यास्ततकका समय 'दिन' तथा सूर्यास्तसे अगले सूर्योदयतकका समय 'रात्रि' है। पंचांगोंमें मुख्य-मुख्य स्थानोंके दैनिक सूर्योदय एवं सूर्यास्तकाल दिये हुए होते हैं। २१ मार्च तथा २२ सितम्बरको प्रतिवर्ष दिन-रात बराबर होते हैं। २१ जूनको सबसे बड़ा दिन तथा सबसे छोटी रात होती है तथा २३ दिसम्बरको सबसे बड़ी रात तथा सबसे छोटा दिन होता है। उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुवपर छः-छः महीनेके दिन और रात होते हैं।

करण—तिथिके आधे भागको 'करण' कहते हैं। ये दो होते हैं (१) पूर्वार्द्ध तथा (२) उत्तरार्द्ध। एक चान्द्रमासमें ३० तिथियाँ और ६० करण होते हैं। चन्द्र और सूर्यके भोगांशोंके बीच ६ अंशका अन्तर एक करण है। करण ११ हैं। उनमें पहले ७ करण 'चर' करण तथा अन्तिम ४ करण 'स्थिर' करण हैं। इनके नाम हैं—(१) बव, (२) बालव, (३) कौलव, (४) तैतिल, (५) गर, (६) वणिज, (७) विष्टि, (८) शकुनि, (९) चतुष्पद, (१०) नाग और (११) किंस्तुघ्न। एक पक्षमें स्थिर करण एक-एक बार ही आते हैं जबकि चर करण एक पक्षमें चार-चार बार आते हैं। करणोंका क्रम स्थिर है एक करणके बाद

दूसरा करण स्वतः ही आता है। तिथिसंख्या १५ पूर्णमासी तथा ३० अमावस्याकी है।

वार (दिन) (Days)

वार ७ हैं। ये क्रमवार आते-जाते हैं। इनके नाम हैं—(१) रविवार, (२) चन्द्रवार या सोमवार, (३) मंगलवार या भौमवार, (४) बुधवार, (५) गुरुवार या बृहस्पतिवार, (६) शुक्रवार तथा (७) शनिवार। इन वारोंके नाम ग्रहोंके प्रथम होरा (घण्टा)-के आधारपर रखे गये हैं। ग्रहोंकी स्थिति आकाशमें पृथ्वीसे ऊपर इस प्रकार है—सबसे निकट चन्द्रमा, उससे ऊपर बुध, उससे ऊपर शुक्र, उससे ऊपर सूर्य, सूर्यसे ऊपर मंगल, मंगलसे ऊपर गुरु और सबसे ऊपर शनि। एक दिन-रातमें २४ होरा होते हैं। घण्टाका नाम ही होरा है। सृष्टि-रचनाके समय सर्वप्रथम सूर्यका प्रथम होरा (घण्टा) उदय हुआ, अतः प्रथम दिनका नाम 'रवि होरा' के आधारपर 'रविवार' रखा गया। २४ होराओंमें सातों ग्रहोंके २४÷७=३, (तीन) फेरोंके बाद, चौथे फेरेमें पहला होरा चन्द्रमाका पड़ा तो अगले वारका नाम चन्द्रमापर चन्द्रवार अर्थात् सोमवार रखा गया। इसके बाद क्रमशः मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और अन्तमें शनिका प्रथम होरा आनेपर इन ग्रहोंके नामपर शेष वारोंके नाम रखे गये। यह नामकरण सर्वत्र प्रचलित है। इनका क्रम नहीं बदलता।

'होरा' काल

'अहोरात्र' शब्दमेंसे प्रथम तथा अन्तिम अक्षर हटाकर जो शब्द बनता है, वह 'होरा' है। होराका मान १ घण्टेके बराबर है। एक दिन-रातमें २४ होरा होते हैं। होराका निर्माण ग्रहोंके आधारपर है। मुख्य ग्रह ७ हैं। आकाशमें ग्रहोंकी स्थिति ऊपरसे नीचे—शनि, गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र तथा चन्द्रमा है। सातों ग्रहोंके दिन-रातके २४ होराओंमें तीन-तीन फेरोंके बाद ३ होरा और बचते हैं। इस प्रकार चौथे ग्रहके होरामें दूसरे दिनका प्रथम होरा प्रारम्भ होता है। जिस ग्रहका प्रथम होरा आरम्भ होता है, वह होरा उसी ग्रहका माना जाता है।

प्रातःकाल—प्रतिदिन सूर्योदयसे ४८ मिनट पूर्व।

अरुणोदयकाल—सूर्योदयसे १ घण्टा १२ मिनट पूर्व।

उषाकाल—सूर्योदयसे २ घण्टा पूर्व।

अभिजित्काल—दोपहर ११.३६ बजेसे १२.२४ बजेतक बुधवारको वर्जित।

प्रदोषकाल—प्रतिदिन सूर्यास्तके ४८ मिनट बादतक।

गोधूलिकाल—प्रतिदिन सूर्यास्तके २४ मिनट पहले तथा २४ मिनट बादतक।

राहुकाल—प्रतिदिन १½-१½ घण्टेका। रविवारको १६:३० से १८ बजेतक। सोमवारको ७:३० से ९.०० बजेतक। मंगलवारको १५:०० से १६:३० बजेतक। बुधवारको १२:०० से १३:३० बजेतक। गुरुवारको १३:३० से १५:०० बजेतक। शुक्रवारको १०:३० से १२:०० बजेतक तथा शनिवारको ९:०० से १०.३० बजे प्रातःतक रहता है।

गुलिककाल—प्रतिदिन १½-१½ घण्टेका। रविवारको १५:०० से १६:३० बजेतक। सोमवारको १३:३० से १५:०० बजेतक। मंगलवार १२:०० से १३:३० बजेतक। बुधवार १०:३० से १२:०० बजेतक। गुरुवार ९:०० से १०:३० बजेतक। शुक्रवार ७:३० से ९:०० बजेतक तथा शनिवारको ६.०० से ७.३० बजे प्रातःतक होता है।

यमगण्डकाल—प्रतिदिन १½-१½ घण्टेका। रविवारको १२:०० से १३:३० बजेतक। सोमवारको १०:३० से १२:०० बजेतक। मंगलवारको ९:०० से १०:३० बजेतक। बुधवारको ७:३० से ९:०० बजेतक। गुरुवारको ६:०० से ७:३० बजेतक। शुक्रवारको १५:०० से १६:३० बजेतक तथा शनिवारको १३:३० से १५:०० बजेतक होता है।

इसलामी एवं रोमन-कैलेण्डरका स्रोत

(पं० श्रीविनयजी झा)

६२२ ईसवीमें हजरत मुहम्मदके मक्कासे मदीना हिजरत (प्रवास, हटना)-के उपलक्ष्यमें हिजरी साल आरम्भ किया गया, किंतु यह कार्य हजरत मुहम्मदने नहीं, उक्त घटनाके १६-१७ वर्षोंके पश्चात् खलीफा उमरने किया।

हिजरी साल चान्द्रमासपर आधारित है। इसका एक वर्ष १२ चान्द्रमासोंका होता है, जो लगभग ३५४ सौर दिनोंके तुल्य है। फलस्वरूप सौरवर्ष और हिजरी चान्द्रवर्षमें लगभग ११ दिनोंका अन्तर रहता है। यही कारण है कि इसलामी व्रतों और त्यौहारोंकी तिथि सौर कैलेण्डरकी तुलनामें प्रत्येक वर्ष ११ दिनोंकी गतिसे पीछे खिसकती रहती है।

खलीफा उमरके कार्यकालमें बसराके प्रशासक (गवर्नर) अबू मूसा अल-अशरीने उमर इब्न-अल-खत्तबको पत्र लिखा कि खलीफाके आदेशोंमें दिनांक नहीं रहनेके कारण किस क्रममें उन्हें लागू किया जाय? यह पता करना सम्भव नहीं रहता। इस शिकायतके बाद खलीफा उमरने मुसलिम विद्वानोंकी बैठक बुलायी। सर्वसम्मतिसे निर्णय लिया गया कि मुसलमानोंका अपना कैलेण्डर होना चाहिये, किंतु इस विषयपर न तो कुरानमें कोई निर्देश था और न ही हजरत मुहम्मदने स्पष्ट तौरपर कुछ कहा था। अतः मुसलिम कैलेण्डर कबसे आरम्भ हो, इसपर बहुत वाद-विवाद हुआ। तीन प्रमुख प्रस्ताव आये—हजरत मुहम्मदके जन्मदिनसे मुसलिम कैलेण्डरकी वर्षगणना आरम्भ की जाय, उनकी मृत्युसे वर्षगणना आरम्भ हो या फिर मक्कासे मदीना उनके और समस्त अनुयायियोंके हिजरतसे वर्षगणना आरम्भ की जाय। अलीद्वारा प्रस्तावित तीसरे प्रस्तावको स्वीकृति मिली। हिजरतसे मुसलिम कैलेण्डर आरम्भ होनेके कारण इसका नाम 'हिजरी' रखा गया।

फिर प्रश्न उठा कि हिजरी कैलेण्डरका वर्षारम्भ किस माससे हो? एक प्रस्ताव था कि रबी-अल-अव्वलसे वर्षका आरम्भ हो, दूसरा प्रस्ताव रजब मासका था, तीसरा प्रस्ताव धू अल हिज्ज और चौथा प्रस्ताव रमदान (रमजान)-के पक्षमें था। उध्मान (उस्मान)-ने मुहर्रम मासका प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

हजरत मुहम्मदका हिजरत रबी-अल-अव्वल मास की आठवीं तिथिमें हुआ था, फिर भी हिजरी कैलेण्डरका वर्षारम्भ उससे दो मास पहले मुहर्रमकी पहली तिथिसे माना गया, शुक्रवार १६ जुलाई सन् ६२२ ईसवी (जूलियन कैलेण्डर)-से। हिजरी कैलेण्डरसे पहले अरबोंमें कौन-सा कैलेण्डर प्रचलित था और वर्षका पहला मास कौन-सा था—इसपर उस समयके अरब लेखक कुछ नहीं बताते। इसलामसे पहलेकी सारी बातोंको मिटानेके लिये यह भी आवश्यक था कि उनकी चर्चा ही नहीं की जाय। वर्षका पहला मास कौन-सा था, इसपर हम आगे प्रकाश डालेंगे।

हिजरी कैलेण्डर अरबमें आकाशसे अकस्मात् नहीं टपका। अरबोंमें पहलेसे जो प्रथाएँ प्रचलित थीं, उन्हींके आधारपर हिजरी कैलेण्डर बनाया गया। इसमें मासोंके नाम इसलामकी उत्पत्तिसे बहुत पहलेसे ही अरबोंमें प्रचलित थे। कई मासोंके नाम ऋतुओं और उनसे सम्बद्ध परिघटनाओंपर आधारित हैं। किंतु ऋतुओंका सम्बन्ध सौरवर्षसे रहता है, चान्द्रवर्षसे नहीं। चान्द्रवर्षपर आधारित हिजरी कैलेण्डरका मासनाम भले ही ऋतुओंसे सम्बन्ध रखते हों, पर चान्द्रवर्षपर आधारित इसलामी कैलेण्डरमें मासोंका ऋतुओंसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा। परंतु हिजरी कैलेण्डर आरम्भ होनेसे पहले अरबोंमें सौरवर्षका प्रचलन था, यह मासनामोंके अर्थोंसे स्वतः स्पष्ट है।

हिजरी कैलेण्डरका पहला मास है मुहर्रम-उल-हरम, इसीका संक्षिप्त नाम है मुहर्रम। यह 'हराम' शब्दसे सम्बद्ध है, जिसका अर्थ है वर्जित, खास तौरपर हिंसावर्जित। इसलामसे पहले अरबोंमें वर्षके चार मास पवित्र माने जाते थे, जिनमें युद्ध वर्जित थे, किंतु कौन-कौनसे मास पवित्र माने जायँगे, यह प्रत्येक वर्ष बदलता

रहता था। इनमें वर्जित मासोंमें पहला था मुहर्रम। इसकी विशेष पवित्रताके लिये ही इसे हिजरी वर्षका पहला मास माना गया।

हिजरी कैलेण्डरका दूसरा मास है शफर—पूरा नाम शफर-उल-मुजफ्फर। इसी माससे अरब कबीलोंमें युद्धका समय आरम्भ होता था। इसे पहले अशुभ मास माना जाता था, किंतु इसलाममें इसे सामान्य मास माना गया।

हिजरी कैलेण्डरके तीसरे और चौथे मास हैं—रबी-अल-अव्वल और रबी-अल-आखिर/थानी, जिनके अर्थ हैं वसन्तका पहला और वसन्तका आखिरी (दूसरा) मास। नामकरणके समय निश्चित ही वसन्तका समय रहा होगा।

हिजरी कैलेण्डरके पाँचवें और छठे मास हैं—जमादि या जुमाद-अल-अव्वल और जमादि या जुमादि अल-आखिर या जुमादि, अल-थानीका अर्थ है ग्रीष्मका पहला और ग्रीष्मका आखिरी (दूसरा) मास। गुमादा जुमादाका अरबी भाषामें अर्थ है शुष्क। अरबीकी पूर्वी बोलियोंमें थानीका उच्चारण सानी है, अतः भारत-जैसे देशोंमें जुमादि अल-थानीको जुमादि अस्-सानी कहते हैं, जिसका प्रचलित रूप है जमादि उस्सानी (उर्दूमें यही उच्चारण प्रचलित है)।

हिजरी कैलेण्डरका सातवाँ मास है रजब, पूरा नाम रजब-अल-मुजरब, अर्थात् आदर करना, जिसका पूरा नाम था 'रजब-अल-फर्द', फर्द का अर्थ है अकेला। चार पवित्र मासोंमेंसे एक यह भी था, जिनमें इसलामसे पहले युद्ध वर्जित था, किंतु अन्य तीन पवित्र मास एकके बाद एक लगातार थे, जबकि यह मास अकेला था, अतः इसे फर्द कहा गया। बोलचालमें यह रज्जब कहलाता है।

हिजरी कैलेण्डरका आठवाँ मास है शबान, पूरा नाम शबान-उल-मुअज्जम, निर्बाध वृद्धि।

नौवाँ मास है रमदानु, जो पूर्वी अरबमें रमजान कहलाता है, पूरा नाम है रमदान-उल-मुबारक। यह नाम रमदासे बना है, जिसका अर्थ है तीव्र गर्मी।

दसवाँ मास है शव्वाल, पूरा नाम है शव्वाल-उल-मुकर्रम अर्थात् टूटना या उठना।

हिजरी कैलेण्डरका ग्यारहवाँ मास है धू-अल-किदाह, जो कादा शब्दसे बना है, जिसका अर्थ है बैठना। युद्ध-वर्जनाके मासोंमें यह तीसरा मास था। इस मासमें क्रियाकलापोंपर विराम लगाकर लोग हज्जके लिये बैठकर तैयारी करते थे। यह एक पवित्र मास भी था। धू-अल-किदाहको पूर्वी अरबीमें जुल्काद और उर्दूमें जिल्काद कहते हैं। धूको कहीं थू तो कहीं जू या जि पढ़ा जाता है।

हिजरी कैलेण्डरका बारहवाँ मास है—धू-अल-हिज्जाह, जो युद्ध-विरामवाला अन्तिम पवित्र मास था। इसी मासमें इसलामसे पहलेके अरब लोग मक्काकी हज-यात्रा करते थे, जिसपर इसका नाम पड़ा है। उर्दूमें धू-अल-हिज्जाहका अपभ्रंश है जेलहिज या जिलहिज।

मासोंके नामोंकी जाँचमें हम पाते हैं कि इसलामसे पहले भी अरबोंमें सौरवर्षपर आधारित कैलेण्डर प्रचलित था; क्योंकि ऋतुओंपर आधारित मासनाम चान्द्रवर्षके कैलेण्डरमें सम्भव ही नहीं है। इतना ही नहीं, मासनामोंकी अरबी पद्धति वैदिक पद्धतिसे साम्य रखती है। उदाहरणार्थ, हिजरी कैलेण्डरके तीसरे और चौथे मास हैं रबी अल-अव्वल और रबी अल-आखिर, जिनके अर्थ हैं वसन्तका पहला और वसन्तका आखिरी (दूसरा) मास। इस प्रकार पाँचवें और छठे मास हैं जुमादि या जुमाद-अल-अव्वल और जुमादि-अल-आखिरका अर्थ है—ग्रीष्मका पहला और ग्रीष्मका आखिरी (दूसरा) मास। अतः वसन्त-१, वसन्त-२, ग्रीष्म-१, ग्रीष्म-२ जैसे मासनाम प्रचलित थे। तैत्तिरीय संहिता (४।४।१४ तथा ४।४।११)-में मासोंके नाम दो-दोके जोड़ेमें हैं। वसन्तमें मधु और माधव, ग्रीष्ममें शुक्र और शुचि, वर्षामें नभस् और नभस्य, शरद्में इष और ऊर्ज, हेमन्तमें सहस् और सहस्य, तथा शिशिरमें तपस् और तपस्य। प्रारम्भिक अरबोंमें मासनामोंके बदले ऋतुनाममें 'प्रथम' एवं 'अन्तिम' लगाकर मासका बोध कराया जाता था। यह वैदिक

परिपाटी ही थी। यजुर्वेदके साक्ष्य देखें—

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू (तैत्ति०सं० ४।४।११), **मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू** (वाजसनेयीसं० १३।२५), **नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू** (वाजसनेयीसं० १४।१५)।

किंतु वैदिक पद्धतिसे अरबी परम्पराका कई महत्त्वपूर्ण बिन्दुओंपर अन्तर भी था। इसलामसे पहले चार पवित्र मास परिवर्तनशील थे, किंतु कुरानके आदेशके बाद मासोंके क्रमको स्थिर कर दिया गया। जकात,हज्ज, रमदान/रमजान, विधवाका शोककाल आदि इसलामी पर्व और प्रथाओंका कैलेण्डरसे सम्बन्ध होनेके कारण मासोंको स्थिर किया गया और मलमास हटाया गया। चार पवित्र मासोंके अन्तिम रूपसे नियमित किये जानेके बादका हिजरी मासोंका क्रम इस लेखमें दिया गया है। इसलामसे पहलेके कालमें पवित्र मासोंका क्रम कैसा था, इसके पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। बादमें रमदान/रमजानको पवित्रतम मास माना जाने लगा, इसलामपूर्वके पवित्र मासोंका महत्त्व घट गया। किंतु निम्नोक्त मासक्रमकी जाँच करें तो इसलामसे पहलेका कुछ अनुमान निकाला जा सकता है—

१-मुहर्रम	युद्धवर्जित पवित्र मास
२-शफर	हवाकी आवाज/सीटी
३-रबी'-अल-अव्वल	वसन्त-१
४-रबी'-अल-आखिर	वसन्त-२
५-जुमाद'-अल-अव्वल	ग्रीष्म-१
६-जुमादि'-अल-आखिर	ग्रीष्म-२
७-रजब	आदर करना, अकेला पवित्र मास
८-श' बा' न	वृद्धि या शाखाओंमें बँटना
९-रमजान	गर्म मास

१०-शव्वाल-उठना/टूटना

११-धू-अल-किदाह (जिल्काद) बैठनेका पवित्र मास

१२-धू-अल-हिज्जाह (जेल्हिज) हज्जका पवित्र मास

जिल्काद (११ वाँ), जेल्हिज (१२ वाँ) और मुहर्रम (पहला मास)—तीन पवित्र मास लगातार क्रमसे हैं। रजब एकमात्र ऐसा पवित्र मास है, जो अन्य पवित्र मासोंसे अलग-थलग पड़ा है। रजबसे पहलेके मासोंके नाम ऋतुओंपर आधारित हैं, जिससे निष्कर्ष निकलता है कि रजब अरबोंमें इसलामसे पहलेके कालमें वर्षाका पहला मास था अर्थात् सौरमानका श्रावणमास रजब कहलाता था। सौरमासीय श्रावण अरबोंका अकेला पवित्र मास था, जिस कारण इसे रजब फर्द (अकेला आदरवाला मास) भी कहते थे। अन्य पवित्र मास हर वर्ष बदलते रहते थे, इस प्रक्रियाको हजरत मुहम्मदने स्थिर किया। वर्षाकारी श्रावणको पवित्र मासकी प्रथाका ऐसे क्षेत्रमें विशेष महत्त्व होना स्वाभाविक ही था, जो बूँद-बूँदके लिये तरसता हो।

अकबरने जब भारतमें हिजरी वर्षमें मलमास जोड़कर फसली साल आरम्भ किया तो इसका वर्षारम्भ श्रावण ही रखा गया। आज भी मिथिलाके बहुत-से हिन्दू ऐसे हैं, जो हिन्दू वर्षका आरम्भ चैत्रके बदले श्रावणसे बननेवाले अकबरी फसली पंचांगके ही समर्थक हैं।

हिजरी कैलेण्डरमें मुहर्रमसे वर्षका आरम्भ था। कुरान (सूरा-९ अत् तौबा, आयत ३६)-में मलमासका निषेध है। हजरत मुहम्मद इब्न अब्दुल्लाकी मृत्यु ८ जून सन् ६६२ ईसवीको हुई। उनके जीवनके अन्तिम वर्षमें चान्द्रमासवाले हिजरी वर्षका आरम्भ वासन्त मेषारम्भ (१९ मार्च, सन् ६३२, १६:०६ मक्का समय)-के पास पड़ा था (सूर्यसिद्धान्तीय अमावस, मक्का समयानुसार १५:४८ बजे, २६ मार्च सन् ६३२ ईसवी)। उससे पिछले वर्षतक अरबोंमें मलमासका प्रचलन था। इससे निष्कर्ष निकलता है कि उससे पहले सौरवर्षका प्रचलन रहनेके कारण अरबोंका वर्षारम्भ वासन्त मेषारम्भके पासवाले अमावससे ही आरम्भ हुआ करता था। यह विशुद्ध भारतीय पद्धति है।

उपर्युक्त गणना सूर्यसिद्धान्तीय पद्धतिद्वारा की गयी है, यदि आधुनिक विज्ञानके सूत्रोंद्वारा दृक्पक्षीय गणना करें तो तिथियोंमें नगण्य अन्तर मिलेगा, किंतु स्पष्टसूर्य

और स्पष्टचन्द्रमें कुछ अन्तर दिखेगा। भौतिक पिण्डोंकी आकाशीय स्थितिके लिये दृक्पक्ष उचित है, किंतु फलितकी दृष्टिसे सूर्यसिद्धान्तीय पद्धति सर्वत्र श्रेष्ठ सिद्ध होती है। अत: यहाँ हम सूर्यसिद्धान्तीय पद्धतिका ही आश्रय ले रहे हैं, जिसका प्रमाण आगे स्वत: स्पष्ट होगा।

हजरत मुहम्मदने अरब कैलेण्डरमें जो परिवर्तन किये, उन्हें हटाकर हम प्राचीन अरब कैलेण्डर बना सकते हैं। पहला परिवर्तन यह करना है कि मलमासोंको सम्मिलित किया जाय। दूसरा यह कि वर्षका आरम्भ सदैव मेषारम्भके पासकी अमावास्यासे किया जाय। मेषारम्भ सायन लें कि निरयन इसपर बहस हो सकती है, लेकिन सायन कैलेण्डर आधुनिक वैज्ञानिकोंकी जिद है, प्राचीन समाजोंपर इसे थोपना अनुचित है। प्राचीन अरबोंमें सूर्यसिद्धान्तीय निरयन पद्धति शतप्रतिशत लागू थी।

प्राय: सारे अरबक्षेत्र रोमन साम्राज्यके अंग थे, अत: मुहर्रमसे वर्षका आरम्भ माननेकी जो प्रथा रोमनोंमें थी, वही अरबोंमें भी हो तो आश्चर्यकी बात नहीं। इन सबका मूल स्रोत प्राचीन सुमेरकी सभ्यतामें था, जहाँ सौरवर्ष और चान्द्रमासपर आधारित कैलेण्डर प्रयोगमें थे, और जिनके मासनामोंका वही अर्थ था, जो भारतीय ज्योतिषमें बारह राशियोंका है।

अरबमें चान्द्रमासकी प्रणाली और ईदकी प्रथा भी रोमनोंसे ही उधार ली गयी थी। प्राचीनतम रोमन मास चान्द्रमास थे और सभी मासोंकी १५ तारीखको ईदपर्व (ides, प्राचीन उच्चारण idus) मनाया जाता था, जो पहले पूर्णिमाकी तिथिको ही कहते थे। प्राचीनतम रोमन कैलेण्डरमें मार्चसे वर्षका आरम्भ माना जाता था। मासोंके नाम थे—Martius (३१ दिन), Aprillis (३० दिन), Maius (३१ दिन), lunius (३० दिन), Quintilis (३१ दिन), Sextilis (३० दिन), September (३० दिन), October (३१ दिन), November (३० दिन), December (३० दिन)। पाँचवेंसे दसवें मासोंके नाम संख्यावाचक थे। यह सूची उस कालकी है, जब मासोंके मान चान्द्रमासके नहीं रह गये थे, किंतु प्रारम्भिक कालमें रोमन मास चान्द्रमास ही थे। बादमें पाँचवें और छठे मासोंके नाम रोमन सीजरोंके नामपर क्रमश: जुलाई और अगस्त कर दिये गये। उपर्युक्त सूचीके अनुसार दस मासोंमें ३०४ दिन ही थे, जनवरी और फरवरीकी गणना वर्षमें नहीं थी। आधुनिक यूरोपीय विद्वानोंकी यही मान्यता है कि प्रारम्भिक रोमन वर्षमें दस मास ही थे, जिसमें रोमन राजा नूमा पोम्पिलियसने ईसापूर्व ७१३ में कैलेण्डरके अन्तमें जनवरी और फरवरी जोड़े। रोमनोंमें समसंख्यावाले मासको अशुभ माना जाता था। अत: नूमा पोम्पिलियसने मासोंके मान २९ और ३१ दिनके कर दिये, और चान्द्रवर्षसे मेल बिठानेके लिये कुछ मासोंमें दिन घटा दिये—Martius (३१ दिन), Aprilis (२९ दिन), Maius (३१ दिन), lunius (२९ दिन), Quintilis (३१ दिन), Sextilis (२९ दिन), September (२९ दिन), October (३१ दिन), November (२९ दिन), December (२९ दिन), Januarius (२९ दिन), Februarius (२८ दिन)। फरवरीको दो भागोंमें बाँटा गया, प्रथम भाग २३ दिनोंका था और दूसरा भाग ५ दिनोंका था; क्योंकि २४ फरवरीसे धार्मिक वर्षका आरम्भ माना जाता था। सौर वर्षसे चान्द्रमासका मेल बिठानेके लिये फरवरीके प्रथम भागके बाद अर्थात् धार्मिक वर्षके अन्तमें २७ दिनोंका मलमास जोड़ा जाता था और फरवरीके दूसरे भागके ५ दिन मलमासमें ही सम्मिलित कर लिये जाते थे।

यूरोपीय विद्वानोंकी इस मान्यतामें त्रुटि यह दिखती है कि प्राचीन रोमनोंका धार्मिक वर्षारम्भ फरवरीमें था, किंतु फरवरी मासका पहले अस्तित्व ही नहीं था। आधुनिक यूरोपीय और अमेरिकी विद्वान् प्राचीन समाजोंकी धार्मिक मान्यताओंको समझनेमें रुचि नहीं रखते, जिस कारण प्राचीन लोगोंके बारेमें भ्रान्त धारणाओंको ऐतिहासिक

तथ्यका रूप दे दिया जाता है।

सायन वर्षका आरम्भ २२ मार्चसे होता है। जूलियन और वर्तमान मानक कैलेण्डरमें १३ दिनोंका अन्तर है। जूलियन कैलेण्डरके अनुसार सायन वर्षारम्भ ९ मार्चसे होना चाहिये। २४ फरवरीसे वर्षारम्भका सीधा अर्थ है कि वर्षका आरम्भ और वर्षका मान सायन नहीं था। मलमासद्वारा रोमके लोग चान्द्रमासोंका सौरमाससे मेल बिठाते थे, अतः वर्षमान सौर था, चान्द्र नहीं। यह सौरवर्ष सायन नहीं था, यह तय है, अतः इसके निरयन होनेकी सम्भावना है, जिसपर आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् विचार ही नहीं करना चाहते।

ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दीसे ही रोमनोंमें चान्द्रमासका प्रयोग बन्द करनेके प्रयास आरम्भ हो गये थे। किंतु व्यवहारमें चान्द्रमासों और मलमासोंका प्रयोग होता रहा।

रोमनोंने १ जनवरीको बादमें वर्षका आरम्भ बना दिया, जो आजकल सूर्यसिद्धान्तीय गणनानुसार निरयन उत्तरायणका आरम्भ है, ग्रेगोरियन संशोधनके बाद १३ दिन जुड़नेसे अब यह १४ जनवरीको पड़ता है। इसलामपूर्व अरबोंमें वर्षमान और सौरवर्षका आरम्भ मुहर्रम था, जो वसन्तारम्भसे दो मास पहले था, अर्थात् वैदिक शिशिरका प्रथम मास सौर मुहर्रम था। आजसे ६२२ ईसवीमें निरयन मेषारम्भ जूलियन २० मार्चको था। शुक्रवार १६ जुलाई सन् ६२२ ईसवी (जूलियन कैलेण्डर)-को हिजरीका पहले सालका पहला दिन था और निरयन सूर्य कर्कमें २३ अंशपर थे, किंतु परिभाषाके अनुसार तब शिशिरका आरम्भ होना चाहिये। अतः अरबी मासोंका नामकरण इसलामसे बहुत पहले हुआ था।

कालगणना और विक्रमसंवत्

(पं० श्रीबालकृष्णजी कौशिक)

विश्वमें सामान्यतः तीन प्रकारकी कालगणनाएँ प्रचलित हैं। ईसाइयोंकी कालगणना सूर्यपर आधारित होती है, उनका सौरवर्षानुसार ३६५$\frac{1}{4}$ दिनमें वर्ष-चक्र पूर्ण होता है। जनवरीसे दिसम्बरतक ३६५ दिन पूर्ण होते हैं एवं चौथे वर्ष फरवरीमें १ दिन बढ़ाकर इस चौथाई भागको पूर्ण दिन बनाकर कालगणनाको सही किया जाता है। यद्यपि हिन्दू महीनोंके आधारपर इनमें भी प्रतिमाह १-२ दिनकी घट-बढ़ की जाती है, इसलिये जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, अगस्त, अक्टूबर, दिसम्बर आदि ७ माह ३१ दिनके एवं अप्रैल, जून, सितम्बर, नवम्बर आदि ४ माह ३० दिन एवं फरवरी २८ या २९ दिनका करके वर्षमान सन्तुलित किया जाता है।

पारसी लोगोंका वर्ष १२×३० दिन=३६० दिनका होता है एवं अन्तिम ५ दिन ५ दिनकी गाथाके रूपमें वर्षके अन्तमें होते हैं, इस प्रकार ३६५ दिन होते हैं। दिनके $\frac{1}{4}$ भागको १२० वर्ष बाद एक अधिकमास (३० दिनका) मानकर वर्ष-चक्रको पूर्ण किया जाता है। इस प्रकार यह भी सौर गणनाके अनुकूल ही रहता है।

मुसलिम-अरबी कालगणना चान्द्रमानसे होती है, इसका सौरमानसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। चन्द्रदर्शनानुसार इनका माह २९ या ३० दिनका होता है। द्वितीयाको चन्द्रदर्शन होनेपर ३० दिनका तथा तृतीयाको चन्द्रदर्शन होनेपर २९ दिनका माह होता है। अलग-अलग देशोंमें चन्द्रदर्शनमें भिन्नता होनेपर वर्ष-गणनामें १ दिनका अन्तर भी सम्भव है। इस प्रकार मुसलिम हिजरी वर्ष सामान्यतः ३५४ दिनका होता है। अन्य संवत्सरोंसे इसमें ११ दिनका अन्तर होता है। प्रत्येक ३२$\frac{1}{2}$ वर्षोंमें इनका एक वर्ष अन्य संवत्सरमानसे बढ़ जाता है। बादशाह औरंगजेबने तो चन्द्रोदयमान ज्ञात करके गणितसे पहले तारीख निश्चित करनेका निषेध किया था। हिजरी सन्में ६ माह ३० दिनके तथा ६ माह २९ दिनके क्रमशः होते हैं।

इस प्रकार ईसाई कालगणना सूर्यसे एवं मुसलिम कालगणना चन्द्रमासे चलती है, सम्भव है ठण्डे देशोंमें सूर्यको एवं अरब आदि गरम जलवायुवाले देशोंमें चन्द्रमाको महत्त्व दिया गया। भारतीय मनीषियोंने सूर्य एवं चन्द्र दोनोंको महत्त्व दिया। अतः सौरमान एवं चान्द्रमानसे प्रतिवर्ष पड़नेवाले ११ दिनके अन्तरको प्रत्येक तीसरे वर्ष अधिकमास बनाकर सौरमानके समतुल्य किया गया एवं तिथिमानको घटा-बढ़ाकर क्षयतिथि, वृद्धितिथि करके महीनोंको सन्तुलित किया गया।

सौरमान एवं चान्द्रमानका ऐसा अद्भुत समन्वय भारतीय ऋषियोंने किया कि उसे अँगरेज एवं अरबी विद्वान् भी समझनेमें विफल रहे। भारतीय विद्वानोंने जो कालगणनाका मार्ग अपनाया, उसमें न केवल सूर्य, चन्द्र अपितु अन्य सात ग्रहोंको भी महत्त्व दिया। सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहणकी सैकड़ों वर्षपूर्व सटीक भविष्यवाणी करना भारतीय कालगणनाका प्रत्यक्ष, प्रबल, अद्वितीय वैज्ञानिक प्रयोग है। १४ जनवरीको मकरसंक्रान्ति होना भी सामान्यतः स्पष्ट प्रमाण है। यही कारण है कि भारतीय त्योहार एवं पर्व एक निश्चित ऋतुमें ही आते हैं। मुसलिम त्योहार रोजे, ईद, ताजिया अलग-अलग ऋतुओंमें आते रहते हैं। कभी रोजे गर्मीमें, कभी सर्दीमें। जबकि भारतीय त्योहार होली, दीपावली आदि एक निश्चित मौसममें ही आते हैं। वस्तुतः वर्तमान पीढ़ीको हमारे पूर्वज ऋषियोंके प्रति कृतज्ञ होना चाहिये।

भारतीय कालगणनामें शालिवाहन शक-संवत् एवं विक्रम-संवत्सरका ही अधिक महत्त्व रहा है। शालिवाहन शक-संवत् चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे प्रारम्भ होकर अमावस्यान्त होता है। वराहमिहिरने अपनी पुस्तक पंचसिद्धान्तिकामें 'शक' शब्दका प्रयोग किया है—**'सप्ताश्विवेद'** (४२७)-**संख्यं शककालमपास्य चैत्र-शुक्लादौ'**। (पंचसिद्धान्तिका १।८)

इसके अलावा श्रीकृष्णसंवत्, बौद्धसंवत्, कलिसंवत्, जैन या महावीरसंवत् एवं मौर्यसंवत्, बँगलासंवत्, राष्ट्रीयसंवत्, फसली सन् आदि भी प्रचलित हैं।

भारतमें अन्य संवतोंकी अपेक्षा विक्रमसंवत्का ही प्रचार अधिक है। इस संवत्का प्रारम्भ कलि-संवत्के ३०४४ वर्ष व्यतीत होनेपर शालिवाहन शकसे १३५ वर्षपूर्व तथा ईस्वी सन्से ५७ वर्षपूर्व चैत्र शुक्ल प्रतिपदा बुधवारको चान्द्रमानसे तथा मेषसंक्रमण (सौरमान) -से हुआ था। उत्तर गुजरातमें इस संवत्के अमावस्यान्त तथा शेष भारतमें पूर्णिमान्त माह होते हैं। नेपालदेशमें भी अमान्त माह प्रचलित हैं। राजस्थानमें यह वर्ष रामनवमीको बसना-पूजन करके और गुजरातमें महालक्ष्मी-पूजा करके कार्तिक शुक्ल प्रतिपदासे व्यापारी लोग मनाते हैं।

महाराज विक्रमादित्य बड़े पराक्रमी, यशस्वी, विद्वान्, वीर एवं प्रजावत्सल शासक थे। उन्होंने इस विक्रम-संवत्को शास्त्रीय विधिसे प्रचलित किया। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी सम्पूर्ण प्रजाके सम्पूर्ण ऋणको अपने राज्यकोषसे चुकाकर प्रजाको ऋणमुक्त किया था। वे अपने सुखके लिये राज्यकोषसे धन नहीं लेते थे। संयमी राजा अपने पीनेके लिये जल स्वयं क्षिप्रा नदीमें स्नान करके लाया करते थे। उन्होंने सदैव पृथ्वीपर शयन किया। ऐसे चक्रवर्ती सम्राट्ने अपना सम्पूर्ण जीवन प्रजाहितमें व्यतीत किया, जिनके धर्मबलकी यशकीर्तिपताकाके रूपमें आज भी विक्रमसंवत् भारतमें प्रचलित है। सभी भारतीय पंचांग विक्रमसंवत्के आधारपर ही बनते हैं एवं भारतीय पर्व-त्योहारोंका यह निर्णायक आधार है।

प्रारम्भिक शताब्दियोंमें विक्रमसंवत्को मालव संवत् भी कहा जाता था। विक्रमसंवत्का सायन और निरयन दोनों प्रकारसे व्यवहार सुगम है। इसके सौरमास और दिनोंकी गणना तो ईसवी सन्से भी अधिक शुद्ध तथा सुगम है। वस्तुतः आज भी विक्रमसंवत् भारतीय काल-गणनाका मुख्य आधार बना हुआ है।

[(क) फलितविचार]

होरास्कन्धविमर्श

(डॉ० श्रीअशोकजी थपलियाल)

अनेक रहस्योंसे युक्त ज्योतिषशास्त्र ज्ञानका महासमुद्र है। ब्रह्माण्डके अनेक तत्त्वोंके रहस्योद्घाटनमें प्रवृत्त ज्योतिषशास्त्रमें ग्रह-नक्षत्र, धूमकेतु, उल्कापात आदि ज्योति:पदार्थोंके स्वरूप, गति एवं स्थित्यादिका निरीक्षण करनेपर ये तारे क्या वस्तु हैं? इनमें पूर्वकी ओर गतिमान् ज्योति:पुंज क्या हैं? चन्द्रका स्वरूप प्रतिदिन क्यों बदलता रहता है? स्वच्छ पूर्णिमाकी रात्रिको कभी चन्द्र धूमिल या कुछ देरके लिये अदृश्य-सा क्यों हो जाता है? स्वच्छ दिनमें कभी-कभी सूर्यकी प्रभा क्षीण क्यों पड़ जाती है? ऋतुओंके आवागमनका चक्र कैसे चलता है? इत्यादि क्या? क्यों? और कैसे?-जैसे प्रश्नोंने मानव-मनको उद्वेलित किया। इन्हीं प्रश्नोंके उत्तर जाननेकी चाहने ज्योतिषशास्त्रकी नींव रखी। हमारे ऋषि-महर्षियों एवं पूर्वाचार्योंने भी ज्योति:पदार्थोंकी गति-स्थित्यादिके अतिरिक्त आकाशमें घटनेवाली ग्रहण-जैसी आश्चर्यजनक घटनाओंका भी सतत निरीक्षण करके प्राणियोंपर पड़नेवाले शुभाशुभ प्रभावका विश्लेषणकर ज्योतिषशास्त्रके मानक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया। उनके द्वारा रचित ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्तरूपी अनमोल रत्न ज्योतिषशास्त्रकी अमूल्य धरोहर हैं। वैदिक दर्शनकी अवधारणापर आधारित ज्योतिषशास्त्र वेदांगके नेत्रके रूपमें प्रतिष्ठित है।[१] वेदांगज्योतिषमें सभी वेदांगोंमें इसकी प्रधानता स्वीकार की गयी है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्नि संस्थितम्॥

(आर्चज्योतिष ३५)

'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्'

ज्योतिषशास्त्रकी इस व्युत्पत्तिके अनुसार सूर्यादि ग्रह और कालका बोध करानेवाले शास्त्रको ज्योतिषशास्त्र कहते हैं। वस्तुत: ग्रह-नक्षत्रोंकी गतिविधि एवं प्रभावके विषयमें जो कुछ भी ज्ञान है, वह सब ज्योतिष ही है। प्राणियोंपर ग्रहादिकोंके प्रभावका अध्ययनकर उसके अनुसार शुभाशुभफलकथन ही ज्योतिषका मुख्य उद्देश्य है। जैसा कि भास्कराचार्यजीने कहा है—

'ज्योति:शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते।'

(सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय गोलप्रशंसा ६)

ज्योतिषशास्त्रके मुख्यतया सिद्धान्त, होरा एवं संहिता—ये तीन स्कन्ध हैं।[२] सिद्धान्तस्कन्ध गणितात्मक है। इसमें मुख्यतया ग्रहोंकी गति, स्थिति, दिग्देश एवं कालगणनविषयकी विवेचना प्राप्त होती है। ग्रहोंके प्रभावका अध्ययनकर शुभाशुभफलनिरूपण होरा एवं संहिताका वर्ण्य-विषय है।

मुख्यतया कालको आधार बनाकर फलविवेचनाके लिये जन्मकालीन ग्रहोंकी स्थितिके अनुसार कुण्डलीका निर्माण किया जाता है। जन्मकुण्डलीके द्वादश भावोंमें स्थित ग्रहोंके परस्पर सम्बन्धादिका विचारकर वैयक्तिकफलका विवेचन होरास्कन्धमें किया जाता है। समष्टिगतफलका विवेचन संहितास्कन्धमें प्राप्त होता है। संहितास्कन्धमें शकुन, वास्तुप्रभृति विषय भी आते हैं। इस प्रकार मानवजीवनसे सम्बन्धित विभिन्न पहलुओंका अध्ययनकर समुचित मार्गदर्शन देना ज्योतिषशास्त्रका मुख्य लक्ष्य है।

---

१. 'वेदचक्षु: किलेदं स्मृतं ज्योतिषम्।' (सि० शि० गणिताध्याय मध्य० कालमा० श्लोक ११)

२. (क) सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्। वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योति:शास्त्रमनुत्तमम्॥ (नारदसंहिता १।४)
(ख) ज्योति:शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्। (बृहत्संहिता १।९)

होरास्कन्ध—अर्थ एवं प्रयोजन—मानवजीवनके सुख-दु:ख, इष्टानिष्ट आदि सभी शुभाशुभविषयोंका विवेचन करनेवाला शास्त्र ही होराशास्त्र है। होरा शब्दकी उत्पत्ति अहोरात्र शब्दसे हुई है। अहोरात्र शब्दके प्रथम एवं अन्तिम अक्षरका लोप करनेपर 'होरा' शब्द निष्पन्न होता है।[१] एक राशिमें २ होराएँ होती हैं। सम्पूर्ण अहोरात्रमें क्रान्तिवृत्तस्थ १२ राशियोंका स्पर्श पूर्वक्षितिजमें हो जाता है, जिस कारण १२ लग्न एक दिन-रातमें होते हैं। अत: १२ लग्नोंकी २४ होराएँ होती हैं। वस्तुत: जन्मकुण्डलीमें लग्नका अत्यधिक महत्त्व है। साथ ही सूक्ष्म विवेचनहेतु होरा-कुण्डलीका भी विचार किया जाता है। बृहज्जातककी होराभिप्राय-निर्णयटीकाके अनुसार अहोरात्रका—मेषादि राशिभेदोंका अर्थात् सप्तमांश, नवमांश, द्वादशांश, त्रिंशांशादिकोंकी प्राणपर्यन्त होरा संज्ञा है। इसी आधारपर इसे होराशास्त्रके रूपमें प्रसिद्धि प्राप्त हुई। होराशास्त्रका दूसरा नाम जातकशास्त्र भी है।

वैदिक दर्शनकी पुनर्जन्मकी अवधारणाके अनुसार मनुष्य निरन्तर शुभाशुभ कर्मोंमें निरत रहता है। **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'** इस सूक्तिके अनुसार उसे कर्मोंका फल अवश्य भोगना है, परंतु एक साथ ही या एक ही जन्ममें समस्त कर्मोंका फल मिलना सम्भव नहीं है, अत: उसे अनेक जन्म धारण करने पड़ते हैं, जिसमें वह अपने किये कर्मोंका फल भोगता है। इस प्रकार कर्मोंके विपाकके तीन भेद बन जाते हैं—संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण। किसी भी प्राणीद्वारा वर्तमान क्षणतक किया समस्त कर्म, चाहे वह इस जन्मका हो अथवा पूर्व जन्मोंका, संचित कर्म है। इसका फलविवेचन जन्मकुण्डलीमें योगायोगविचारसे किया जाता है। जैसे-राजयोग, दरिद्रयोग आदि। अनेक जन्म-जन्मान्तरोंके संचित कर्मोंका फल एक साथ भोगना सम्भव नहीं है। अत: संचित कर्मोंमेंसे जितने कर्मोंके फलको प्राणी पहले भोगना आरम्भ करता है, वह प्रारब्ध या भाग्य कहलाता है। इसका विवेचन ज्योतिषमें दशाविचारसे होता है। जो कर्म अभी हो रहा है या किया जा रहा है, इसका विवेचन अष्टकवर्गके आधारपर गोचर अथवा तात्कालिक ग्रहस्थित्यनुसार किया जाता है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रका यह स्कन्ध जन्मकुण्डलीकी ग्रहस्थितिके आधारपर मनुष्यके द्वारा जन्म-जन्मान्तरोंमें किये गये शुभाशुभ कर्मोंके विपाकको जातकके शुभाशुभफलके रूपमें प्रकाशित करता है।[२]

इसलिये आचार्य वराहमिहिरका कथन है कि यह शास्त्र मनुष्यके लिये उसी प्रकार पथनिर्देशनका कार्य करता है, जैसे गहन अन्धकारमें दीपक।[३]

अत: होराशास्त्रका प्रयोजन ग्रहनक्षत्रोंकी गति-स्थित्यनुसार कुण्डलीका निर्माणकर जातकके जीवनमें आनेवाले सुख-दु:खादिका अनुमानकर उसे अपने कर्तव्योंद्वारा अपने अनुकूल बनानेके लिये प्रेरित करना है।

होरास्कन्धका वर्ण्य-विषय—होरास्कन्धमें मुख्यतया ग्रह एवं राशियोंका स्वरूपवर्णन, ग्रहोंकी दृष्टि, उच्च-नीच, मित्रामित्र, बलाबल आदिका विचार, द्वादश भावोंद्वारा विचारणीय विषय एवं उनमें स्थित ग्रहोंका शुभाशुभ फलविवेचन, जातकका अरिष्टविचार, वियोनि-जन्मविचार, राजयोग, प्रव्रज्यायोग, दरिद्रयोग आदि अनेकविध शुभाशुभ योगविचार, सूर्यकृत योग, चन्द्रकृत योग, नाभसयोग, आयुर्दायविचार, अष्टकवर्गविचार, होरा-सप्तमांशादि दशवर्ग-साधन, ग्रहविंशोपकादि बलसाधन, विंशोत्तरी आदि दशान्तर्दशादिका साधन, नक्षत्रादिजनन-फलविचार आदि विषय सम्मिलित हैं। वस्तुत: होराशास्त्रके विभिन्न मानक ग्रन्थोंमें एक समानरूपसे उपर्युक्त सभी विषय न होकर न्यूनाधिकरूपमें प्राप्त होते हैं। वर्ण्य-

१. होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्। (बृहज्जातक १। ३)
२. कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति॥ (बृहज्जातक १। ३)
३. यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पक्तिम्। व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥ (लघुजातक १। ३)

विषयमें न्यूनाधिकत्व होते हुए भी सभीका मुख्य उद्देश्य व्यष्टिगत फलविवेचन अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिका जन्मकालीन ग्रहोंकी स्थिति एवं तदनुसार दशा इत्यादिके आधारपर शुभाशुभ-फलकथन करना है। बृहत्संहिताके सांवत्सर-सूत्राध्यायमें होराशास्त्रके वर्ण्य-विषय विशद रूपसे वर्णित हैं।[१]

होरास्कन्धका उद्भव एवं विकास—भारतीय त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्रकी अवधारणाको वैदिक कालसे ही अनुभव किया जा सकता है। वेद विश्वके प्राचीनतम साहित्य हैं। यद्यपि इनका वर्ण्य-विषय ज्योतिष नहीं है, परंतु इनमें प्रसंगवश उपलब्ध व्यावहारिक ज्योतिषीय वर्णन तत्कालीन उत्कृष्ट ज्योतिषीय ज्ञानका परिचायक है। **'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शनम्'** एवं **'यादसे…… गणकम्'**-जैसे मन्त्र उस समयके ज्योतिर्विदोंके महत्त्वको द्योतित करते हैं।[२]

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कुछ ज्योतिर्विद् ऋषियोंके नामोंका वर्णन मिलता है। नारदसंहिता, कश्यपसंहिता आदिमें वसिष्ठ, अत्रि, नारद, पराशर, कश्यप, गर्ग आदि ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक १८ (मतान्तरसे १९) ऋषियोंके नाम प्राप्त होते हैं।

ये सभी आचार्य त्रिस्कन्धज्योतिर्विद् थे। इनमेंसे कुछ आचार्योंके ग्रन्थ आज भी प्राप्त हैं। यथा—महर्षि पराशरकृत बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, नारदकृत नारदसंहिता एवं नारदीय ज्योतिष, काश्यपसंहिता, वसिष्ठसंहिता, सूर्यसिद्धान्त इत्यादि, परंतु आश्चर्य है कि इनमें वेदांग-ज्योतिषके प्रणेता लगधमुनिका नाम नहीं है। इस प्रकार त्रिस्कन्धज्योतिषशास्त्रकी प्राचीन वैदिक परम्परा अभिलक्षित होती है, परंतु यह परम्परा प्रायः आचार्य वराहमिहिरसे पूर्व खण्डित एवं लुप्तप्राय अनुभूत होती है। यवनोंने भारतीय ज्योतिषके साथ अपनी पद्धतिका समन्वयकर एक नयी पद्धति 'ताजिकशास्त्र' को प्रस्तुत किया, जिसमें जातकपद्धतिके समान ही वर्षप्रवेशलग्नके आधारपर वर्षभरका शुभाशुभ फल विवेचित किया जाता है। आचार्य वराहमिहिरने यवनोंके ज्योतिषज्ञानकी प्रशंसामें कहा है—

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः॥

(बृहत्संहिता २। १५)

वराहमिहिर एवं उनके पश्चाद्वर्ती जातकशास्त्रके मानक ग्रन्थोंमें यवनोंका प्रभाव स्पष्टरूपसे परिलक्षित होता है।

होराशास्त्रके प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ—होरास्कन्धपर ऋषि जैमिनिकृत 'जैमिनिसूत्रम्' ग्रन्थ है, जो अपनी सूत्रपद्धतिके द्वारा फलकथनहेतु प्रसिद्ध है। पराशरमुनिकृत बृहत्पाराशरहोराशास्त्रको होरास्कन्धका सम्पूर्ण ज्ञान करानेवाला ग्रन्थ कहा जा सकता है। इनका 'लघुपाराशरी' नामक अन्य ग्रन्थ भी समुपलब्ध है। आचार्य वराहमिहिररचित 'बृहज्जातक' एवं 'लघुजातक' अप्रतिम ग्रन्थ हैं। बृहज्जातकको होराशास्त्रका प्रतिनिधिभूत ग्रन्थ कहा जा सकता है, जिसपर भट्टोत्पल (नवीं शताब्दी शककाल)-द्वारा की गयी टीका अत्यन्त उत्कृष्ट है। इनके ग्रन्थोंमें मय, यवन, शक्ति, जीवशर्मा, मणित्थ, विष्णुगुप्त, देवस्वामी, सिद्धसेन, सत्याचार्य आदि पूर्ववर्ती आचार्योंका उल्लेख प्राप्त होता है। आचार्य कल्याणवर्माकृत सारावली (५५७ ई०), आचार्य वराहमिहिरके पुत्र पृथुयशाकृत षट्पंचाशिका, चन्द्रसेनकृत केवलज्ञानहोरा, श्रीपतिविरचित श्रीपतिपद्धति, रत्नावली, रत्नमाला एवं रत्नसार; बल्लालसेनरचित अद्भुतसागर, पद्मसूरिकृत भुवनदीपक, केशवरचित जातकपद्धति एवं ताजिकपद्धति, ढुण्ढिराजविरचित जातकाभरण, वैद्यनाथकृत जातकपारिजात, नीलकण्ठरचित ताजिकनीलकण्ठी, महिमोदयकृत ज्योतिषरत्नाकर, गणेशकृत जातकालंकार इत्यादि ग्रन्थ होराशास्त्रमें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त भी फलितज्योतिषके कई प्रसिद्ध आचार्य हुए

१. बृहत्संहिता सांवत्सरसूत्राध्याय १७-१८।
२. वाजसनेयी संहिता ३०। १० एवं ३०। २०।

हैं, जिन्होंने पूर्ववर्ती आचार्योंके मतानुसार नवीन प्रकारसे ग्रन्थोंकी रचना की।

होरास्कन्धकी आवश्यकता एवं लोकोपयोगिता—कुछ विद्वानोंका कथन है कि जब पूर्वजन्मार्जित शुभाशुभ कर्मोंके फलकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है तो उसका ज्ञान करानेवाले होरास्कन्धकी क्या आवश्यकता? क्योंकि जो होना है, वह तो होकर ही रहता है, परंतु ऐसा नहीं है। सम्पूर्णरूपसे भाग्यके भरोसे बैठकर ही यदि कृषक खेती करना छोड़ दे तो अन्नादिकी उत्पत्ति कैसे होगी? नीतिवचनोंमें भी कहा गया है—**'न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।'** होराशास्त्र तो कर्मप्रधान शास्त्र है, जो पूर्वजन्मार्जित कर्मोंके फलको क्रियमाण कर्मके द्वारा न्यूनाधिक करनेमें विश्वास रखता है। कुछ विद्वानोंका कथन है कि यदि होराशास्त्रके द्वारा कर्मविपाकको न्यूनाधिक किया जा सकता है तो श्रीराम, युधिष्ठिर-जैसे शक्तिमान् एवं सामर्थ्यशाली व्यक्तियोंको दुःख नहीं भोगना पड़ता अथवा होराशास्त्रके द्वारा भविष्यफल जानकर किसीको भी कभी दुःख नहीं उठाना पड़ेगा। यहाँ कर्मोंकी विचित्रताको ध्यानमें रखना होगा। कुछ कर्म दृढ़ या स्थिर होते हैं तथा कुछ शिथिलमूलक या उत्पातसंज्ञक।

अतः जहाँपर जन्मपत्रिकादिसे दशाफलकालक्रमद्वारा रोगसम्भावना या अरिष्टकी सम्भावना है अथवा जब सन्तान, विद्या, धनादिका अभाव होनेका कारण प्रकट होता है, वहाँ ग्रहशान्ति, मणिधारण, मन्त्रजप, दान, औषधिधारण आदि उपचारोंसे प्रतिबन्धक योगोंको शिथिल करनेका प्रयास किया जा सकता है। जिस प्रकार दृढ़मूलवृक्ष भी प्रबल झंझावातसे हिलकर जीर्ण या कमजोर हो जाता है, उसी प्रकार दृढ़कर्मोंका अशुभ फल भी कम तो अवश्य किया जा सकता है। इसीलिये सूक्ति है—**'हन्यते दुर्बलं दैवं पौरुषेण विपश्चिता'** (होरारत्न)। शुभाशुभफलप्रद भाग्य कब फलीभूत होगा? अपना पूर्ण फल देगा अथवा कुछ कम? इत्यादिका ज्ञान भी होराशास्त्रसे ही सम्भावित है। यह शास्त्र शुभाशुभफलविपाकको जन्मकुण्डलीके लग्नादि द्वादशभावोंमें स्थित स्वोच्च, मूलत्रिकोण, स्वगृह, मित्रगृहादि शुभ स्थानों अथवा शत्रुगृह, नीचगृह, अस्तादि अशुभ स्थानों या स्थितियोंमें स्थित नवग्रहोंके परस्पर शुभाशुभ सम्बन्धोंके आधारपर दशान्तर्दशादिके माध्यमसे दिन, पक्ष, मास, वर्षादिके रूपमें सूचित करता है। इसके आधारपर शुभाशुभफलविपाक-समयमें मनुष्य यथासम्भव जागरूक होकर मणि, मन्त्र, औषधि आदि उपायोंसे अशुभफलको न्यून तथा शुभ ग्रहके बलमें वृद्धि करके सत्फल प्राप्त कर सकता है। इसीलिये कल्याणवर्माका दैवज्ञोंके लिये निर्देश है—

विधात्रा लिखिता यस्य ललाटेऽक्षरमालिका।
दैवज्ञस्तां पठेत् प्राज्ञः होरानिर्मलचक्षुषा॥

(सारावली २।१)

होराशास्त्रके ज्ञानसे मनुष्य भावी सुख-दुःखादिका ज्ञानकर अपने पौरुषसे उसे अनुकूल बना सकता है। यह शास्त्र मनोवैज्ञानिक रूपसे उसे दुःखादि अशुभ परिस्थितियोंको झेलनेमें सम्बल प्रदान करता है। इस प्रकार प्राणिमात्रपर पड़नेवाले शुभाशुभ प्रभावका अध्ययनकर फलकथन करना एवं मानवजीवनसे सम्बन्धित विभिन्न पहलुओंका अध्ययनकर उसे समुचित मार्गदर्शन देना ही होराशास्त्रकी लोकोपयोगिताको सिद्ध करता है। यह शास्त्र रोगके साध्यासाध्यत्वादिका निर्णय करके एवं उसके सम्भावित कालका अनुमान प्रस्तुतकर आयुर्वेदकी महान् सहायता करता है। इसी प्रकार जातककी अभिरुचि, दक्षता, स्वभावादिका विश्लेषण करके उसे भावी जीवनमें अपने कार्यक्षेत्रका चुनाव करनेमें सहायक सिद्ध हो सकता है। अतः जातकशास्त्रकी लोकोपयोगिताको द्योतित करते हुए आचार्य कल्याणवर्माका कथन है—

अर्थार्जने सहायः पुरुषाणामापदर्णवे पोतः।
यात्रासमये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः॥

(सारावली२।५)

भारतीय वैदिक दर्शनमें 'कर्मवाद' का महत्त्वपूर्ण

स्थान है, जिसके अनुसार संसारमें प्राणी अनवरत कर्ममें ही निरत रहता है। वह चाहकर भी इससे अलग नहीं हो सकता है। कर्म करनेपर उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। आत्मा अजर एवं अमर है, परंतु कर्मबन्धनके फलस्वरूप उसे पुनर्जन्म लेना पड़ता है। कर्मबन्धनसे मुक्ति केवल तभी मिल सकती है, जब मनुष्यको आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान हो जाता है। प्राणीके शुभाशुभकर्मोंका फल उसे वर्तमान जीवनमें कब, कहाँ और किस रूपमें प्राप्त होगा, इत्यादि समस्त जिज्ञासाओंका उत्तर जाननेका एकमात्र उपकरण होराशास्त्र है। इसका मुख्य कार्य ग्रह-नक्षत्रोंकी गतिस्थित्यनुसार कुण्डलीका निर्माणकर जातकके जीवनमें आनेवाले सुख-दुःखादिका अनुमानकर उसे अपने कर्तव्योंद्वारा अपने अनुकूल बनानेके लिये प्रेरित करना है। यही प्रेरणा मानवके लिये दुःखविघातक एवं पुरुषार्थसाधक होती है।

जन्मकुण्डलीके प्रारम्भमें देनेयोग्य कतिपय मांगलिक श्लोक

स्वस्ति श्रीसौख्यधात्री सुतजयजननी तुष्टिपुष्टिप्रदात्री
माङ्गल्योत्साहकर्त्री गतभवसदसत्कर्मणां व्यञ्जयित्री।
नानासम्पद्विधात्री धनकुलयशसामायुषां वर्धयित्री
दुष्टापद्विघ्नहर्त्री गुणगणवसतिर्लिख्यते जन्मपत्री॥

सब प्रकारका मंगल, समृद्धि एवं सुखको देनेवाली, पुत्र तथा विजय प्राप्त करानेवाली, सन्तोष एवं पुष्टि प्रदान करनेवाली, मंगल कार्योंमें उत्साह बढ़ानेवाली, भूत एवं भविष्यके शुभ एवं अशुभ कर्मोंको प्रकट करनेवाली, विविध प्रकारकी सम्पत्तियोंको देनेवाली, धन-कुल-(परिवार)-कीर्ति तथा आयुको बढ़ानेवाली, दुष्टजन (शत्रु)-विपत्ति एवं विघ्नका हरण करनेवाली, गुणोंके समूहकी मूर्तिरूपी जन्मपत्रीको लिखा जा रहा है।

सूर्यः शौर्यमथेन्दुरुच्चपदवीं सन्मङ्गलं मङ्गलः
सद्बुद्धिं च बुधो गुरुश्च गुरुतां शुक्रः सुखं शं शनिः।
राहुर्बाहुबलं करोतु विपुलं केतुः कुलस्योन्नतिं
नित्यं प्रीतिकरा भवन्तु भवतां सर्वे प्रसन्ना ग्रहाः॥

भगवान् सूर्य पराक्रम, चन्द्रमा श्रेष्ठपद, मंगल शुभ मंगल, बुध सद्बुद्धि, गुरु गौरव, शुक्र सुख, शनि कल्याण, राहु विपुल बाहुबल एवं केतु परिवारको उन्नति प्रदान करें। सभी ग्रह प्रसन्न होकर निरन्तर आप सभीके लिये प्रीतिकारक हों।

कल्याणं कमलासनः स भगवान् विष्णुः सजिष्णुः स्वयं
प्रालेयाद्रिसुतापतिः सतनयो ज्ञानं च निर्विघ्नताम्।
चन्द्रज्ञास्फुजिदर्कभौमधिषणच्छायासुतैरन्वित-
ज्योतिश्चक्रमिदं सदैव भवतामायुश्चिरं यच्छतु॥

भगवान् विष्णु एवं इन्द्रसहित कमलासन ब्रह्मा कल्याण प्रदान करें, अपने पुत्रसहित स्वयं हिमाद्रि-पुत्री पार्वतीके पति (भगवान् शिव) ज्ञान एवं निर्विघ्नता प्रदान करें। चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरु तथा छायापुत्र शनिसहित यह समस्त ज्योतिश्चक्र (नक्षत्र-मण्डल) आपको निरन्तर दीर्घ आयु प्रदान करे।

सूर्यो यच्छतु भूपतां द्विजपतिः प्रीतिं परां तन्वतां
माङ्गल्यं विदधातु भूमितनयो बुद्धिं विधत्तां बुधः।
गौरं गौरवमातनोतु च गुरुः शुक्रः सशुक्रार्थदः
सौरिर्वैरिविनाशनं वितनुतां रोगक्षयं सैंहिकः॥

सूर्य राजत्व प्रदान करें, ब्राह्मणोंके राजा चन्द्रमा उत्तम प्रीति बढ़ायें, भूमिपुत्र भौम मंगल करें, बुध सद्बुद्धि प्रदान करें, गुरु श्रेष्ठ गौरव तथा शुक्र तेज एवं वैभव देनेवाले हों, सूर्यपुत्र शनि शत्रुका नाश तथा सिंहिकापुत्र राहु रोगोंका विनाश करें।

श्रीमान् पङ्कजिनीपतिः कुमुदिनीप्राणेश्वरो भूमिभूः
शाशाङ्किः सुरराजवन्दितपदो दैत्येन्द्रमन्त्री शनिः।
स्वर्भानुः शिखिनां गणो गणपतिर्ब्रह्मेशलक्ष्मीधरा-
स्तं रक्षन्तु सदैव यस्य विमला पत्री त्वियं लिख्यते॥

कमलिनीके स्वामी श्रीमान् सूर्य, कुमुदिनीके प्राणेश्वर चन्द्र, भूमिपुत्र मंगल, चन्द्रपुत्र बुध, देवराज इन्द्रके द्वारा

वन्दितचरण गुरु, दैत्येन्द्रके मन्त्री शुक्र, शनि, राहु तथा केतुसमूह—ये नवग्रह एवं गणेश, ब्रह्मा, शिव तथा लक्ष्मीधर विष्णु—ये सभी उसकी सदैव रक्षा करें, जिसकी यह श्रेष्ठ जन्मपत्री लिखी जा रही है।

कृतं मया नोदकयन्त्रसाधनं
न भेक्षणं चापि न शङ्कुधारणम्।
परोपदेशात्समयावबोधकं
विलिख्यते जन्मफलं नराणाम्॥

[शुद्ध समय ज्ञानहेतु] मैंने घटीयन्त्रका साधन नहीं किया, नक्षत्रोंका वेध तथा शंकु (छायाद्वारा समयबोधक यन्त्र)-का भी उपयोग नहीं किया, दूसरोंद्वारा बताये गये समयके आधारपर जातकका जन्मफल लिखा जा रहा है।

ललाटपट्टे लिखिता विधात्रा षष्ठीदिने याक्षरमालिका च।
तां जन्मपत्री प्रकटीं विधत्ते दीपो यथा वस्तु घनान्धकारे॥

जन्मसे छठे दिन (षष्ठीको) ब्रह्माने ललाटरूपी पट्टपर जो अक्षरमाला लिख दी, उसी (शुभाशुभ कर्मफल)-को जन्मपत्री उसी प्रकार प्रकट करती है, जिस प्रकार घने अन्धकारमें पड़ी हुई वस्तुको दीपक प्रत्यक्ष कराता है।

यावन्मेरुर्धरापीठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
तावन्नन्दतु बालोऽयं यस्यैषा जन्मपत्रिका॥

जबतक पृथ्वीपर मेरुपर्वत है तथा जबतक सूर्य और चन्द्रमा हैं, तबतक यह बालक आनन्दपूर्वक रहे, जिसकी यह जन्मपत्रिका है।

वंशो विस्तरतां यातु कीर्तिर्यातु दिगन्तरम्।
आयुर्विपुलतां यातु यस्यैषा जन्मपत्रिका॥

जिस व्यक्तिकी यह जन्मपत्री है, उसके वंशका विस्तार हो, दिगन्तर (दूर-दूर)-तक कीर्ति व्याप्त हो तथा आयुकी वृद्धि हो।

आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे सनक्षत्राः सराशयः।
सर्वान् कामान् प्रयच्छन्तु यस्यैषा जन्मपत्रिका॥

समस्त नक्षत्रों एवं समस्त राशियोंसहित सूर्य आदि सभी नवग्रह उसकी सभी कामनाओंकी पूर्ति करें, जिसकी यह जन्मपत्रिका है।

जननी जन्मसौख्यानां वर्धिनी कुलसम्पदाम्।
पदवी पूर्वपुण्यानां लिख्यते जन्मपत्रिका॥

जन्म-सम्बन्धी सुखोंको उत्पन्न करनेवाली, कुल-सम्पदाको बढ़ानेवाली तथा पूर्व पुण्योंकी आधारभूता जन्मपत्रीको लिखा जा रहा है।

ब्रह्मा करोतु दीर्घायुर्विष्णुः कुर्याच्च सम्पदम्।
हरो रक्षतु गात्राणि यस्यैषा जन्मपत्रिका॥

जिसकी यह जन्मपत्री है, उसे ब्रह्मा दीर्घायु करें, विष्णु सम्पत्ति प्रदान करें तथा शिव उसके शरीरकी रक्षा करें।

कल्याणानि दिवामणिः सुललितां कीर्तिं कलानां निधि-
र्लक्ष्मीं क्ष्मातनयो बुधश्च बुधतां जीवश्चिरञ्जीविताम्।
साम्राज्यं भृगुजोऽर्कजो विजयतां राहुर्बलोत्कर्षतां
केतुर्यच्छतु तस्य वाञ्छितमियं पत्री यदीयोत्तमा॥

दिवस्पति भगवान् सूर्य कल्याण, कलाओंके स्वामी चन्द्रमा मनोहर कान्ति, भूमिपुत्र मंगल धन-सम्पत्ति, बुध विद्वत्ता, गुरु दीर्घायुष्य, भार्गव शुक्र साम्राज्य, सूर्यपुत्र शनि विजय, राहु बलका उत्कर्ष तथा केतु इच्छित फल उसे प्रदान करें, जिसकी यह उत्तम जन्मपत्री है।

ये कुर्वन्ति शुभाशुभानि जगतां यच्छन्ति ये सम्पदो
ये पूजाबलिदानहोमविधिभिर्निघ्नन्ति विघ्नानि च।
ये संयोगवियोगजीवितकृतः सर्वेश्वराः खेचरा-
स्ते तिग्मांशुपुरोगमा ग्रहगणाः शान्तिं प्रयच्छन्तु वः॥

जो संसारका शुभ-अशुभ करते हैं, जो सम्पत्ति प्रदान करते हैं, जो पूजा-बलिदान-होम आदि विधियोंसे विघ्नोंका विनाश करते हैं तथा जिनसे संयोग-वियोगरूपी जीवनका क्रम चल रहा है—ऐसे सभीके स्वामी तथा आकाशमें संचरण करनेवाले ग्रहोंमें प्रधान सूर्य तथा अन्य ग्रहगण आप सभीको शान्ति प्रदान करें।

येनोत्पाट्य समूलमन्दरगिरिश्छत्रीकृतो गोकुले
राहुर्येन महाबली सुररिपुः कायार्धशीर्षीकृतः।
कृत्वा त्रीणि पदानि येन वसुधां बद्धो बलिर्लीलया
स त्वां पातु युगे युगे युगपतिस्त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

जिन्होंने जड़सहित मन्दरगिरिको उखाड़कर गोकुलमें

छत्रकी तरह धारण किया, देवताओंके शत्रु महाबली राहुको जिन्होंने अर्धशरीरवाला बनाया, जिन्होंने पृथ्वीको तीन पगमें मापकर लीलासे बलिको बाँध लिया, वे ही युगोंके स्वामी त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णु प्रत्येक युगमें आपकी रक्षा करें। [मानसागरी]

शुण्डामण्डलसंप्रसारकरणैर्मौलिस्थलान्दोलनै-
र्नेत्रोन्मीलनमोलनैरविरलश्रीकर्णतालक्रमैः।
दानालिध्वनितैर्विलासचरितैरूर्ध्वाननोद्गर्जिते-
र्जातानन्दभरः करीन्द्रवदनो नः श्रेयसे कल्पताम्॥

सूँड़को चलानेसे, सिरको झुलानेसे, आँखोंको खोलने और मूँदनेसे, कानोंको निरन्तर फटफटानेसे, मदरूपी जलमें बैठे भ्रमरोंकी ध्वनिको सुननेसे तथा मुखको ऊपर उठाकर गर्जनेसे—इस प्रकार नाना प्रकारकी क्रीडासे आनन्दमें भरे हुए गजमुख श्रीगणेशजी हमारा कल्याण करें।

जन्मकालतिथिवारतारकाश्चापि योगकरणः क्षणाभिधाः।
मङ्गलाय किल सन्तु पत्रिका यस्य शास्त्रविहिता विरच्यते॥

जन्मकालिक तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त—ये सब उसका कल्याण करें, जिसकी जन्मपत्री शास्त्रविधिसे बनायी जा रही है।

यस्यामलेयं किल जन्मपत्री कुतूहलेन क्रियते यथोक्ता।
तस्यालये सत्कमला सलीलं सुनिश्चला तिष्ठतु दीर्घकालम्॥

जन्म-समय जो बताया गया है, उसके अनुसार जिस जातककी यह शुद्ध जन्मपत्री बड़ी कुतूहलतापूर्वक बनायी गयी है, उसके घरमें श्रेष्ठ लक्ष्मीजी लीलापूर्वक सदाके लिये स्थिर होकर निवास करें। [जातकाभरण]

कुण्डली-निर्माणके लिये आवश्यक ज्ञातव्य बातें

(पं० श्रीरामजी लाल जोशी)

संसारके सारे कार्य ज्योतिषके द्वारा ही चलते हैं, ज्योतिष व्यावहारिक ज्ञान कराता है, यथा—आकाशके कौन ग्रह-नक्षत्र कहाँपर स्थित हैं, उनके बीचकी दूरी क्या है, उनकी गति क्या है, कितने समयमें अपना परिभ्रमण करते हैं, किस ग्रहके पाससे कब गुजरेंगे, उन ग्रहोंमें कितनी ज्योति है, उस ज्योति-प्रकाशकी गति क्या है और उस प्रकाशका कहाँपर, किस-किसपर क्या प्रभाव पड़ता है इत्यादि।

संसारकी सभी औषधियाँ—लता, पौधे चन्द्रमाके अनुसार उत्पन्न होते हैं। समुद्रकी ज्वारगति भी चन्द्रमाकी गतिके अनुसार रहती है। हर जीव-चराचरपर किस ग्रहका कब, कितना प्रभाव आयेगा, उसके अनुसार उसका स्वास्थ्य निर्भर है।

ग्रह-नक्षत्रानुसार दिशाओंका ज्ञान होता है। ध्रुवतारा हमेशा उत्तरमें रहता है। सूर्य हमेशा पूर्व दिशामें उगता है। संसारका कर्म, जीवन-मरणरहस्य, जीवनके सुख-दुःखके सम्बन्धमें पूर्ण प्रकाश ज्योतिष ही कराता है। फलकथनके लिये कुण्डलीकी प्रक्रिया ज्योतिषका मूल है। कुण्डली-निर्माणके लिये भारतीय ज्योतिषके त्रिस्कन्धान्तर्गत होरा, गणित तथा संहिताका ज्ञान होना आवश्यक है। गणित और फलित ज्योतिषके दो क्रियात्मक सिद्धान्त हैं।

जन्म-कुण्डली-निर्माणके लिये जन्म-समय, जन्म-स्थान, जन्मदिन, जन्म-सम्वत् तथा उस स्थानके पंचांगका ज्ञान होना आवश्यक है। जन्मपत्रीके निर्माणद्वारा व्यक्तिकी उत्पत्तिके समय ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थितिपरसे जीवनका सुख-दुःखका फल निकाला जाता है। यहाँ जन्मकुण्डली-निर्माणकी कुछ बातें संक्षेपमें प्रस्तुत हैं—

(१) इष्टकाल—जातककी जन्मकुण्डली बनानेके लिये सर्वप्रथम इष्टकाल जरूरी है। इष्टकाल जितना सही और सूक्ष्म होगा, जन्मपत्रके फलादेश उतने ही सटीक मिलेंगे। सूर्योदयसे लेकर जन्मसमयतकका जो समय है, वह इष्टकाल कहलाता है। जहाँका इष्टकाल बनाना हो, उस स्थानका सूर्योदय-समय सही होना जरूरी है। सूर्योदय-सूर्यास्तका समय पंचांगमें लिखा रहता है। दिनमान भी पंचांगमें दिया रहता है। पंचांग उसी प्रदेशका काममें लेना चाहिये, जहाँ जातक जन्मा हो, तब ही जन्मपत्र सही बन पायेगा। जन्म-समयका देशान्तर आदि संस्कार करके भी

कुण्डली बनती है।

जन्म-समयमेंसे वहाँका सूर्योदय-समय घटाकर ढाईसे गुणा करके प्राप्त घटी-पल इष्टकाल कहलाता है। समयकी जानकारीके लिये रेलवे टाइमको काममें ले। जैसे-रेलवेमें २४ घंटे होते हैं, वैसे ही १२ बजेके बादके समयको १३-१४-१५ बजे माने।

(२) भयात-भभोगका साधन— जन्मपत्री जहाँकी बनानी है, वहाँका पंचांग ले, यही सही रहेगा, जिस दिनका जन्म है, उस दिन कौन-सा नक्षत्र है और वह कितने घटी-पलका मान रखता है, यह पंचांगमें देखना चाहिये।

यदि इष्टकालसे जन्म-नक्षत्रका घटी-पल कम हो तो वह नक्षत्र गत और आगामी नक्षत्र जन्म-नक्षत्र रहेगा तथा जन्म-नक्षत्रका घटी-पल, इष्टकालके घटी-पलसे अधिक है तो जन्म-नक्षत्रसे पहलेका नक्षत्रगत और वर्तमान नक्षत्र जन्मनक्षत्र कहलायेगा।

गत नक्षत्रके घटी-पलोंको ६० मेंसे घटानेपर जो शेष आये, उसे दो जगह लिख ले। एक स्थानपर इष्टकालको जोड़ दे—यह भयात होगा और दूसरे स्थानपर जन्म-नक्षत्रके घटी-पल जोड़ दे—यह भभोग होगा। 'भ' नक्षत्रको कहते हैं।

(३) लग्न-निर्धारण— बालकका जब जन्म हुआ, उस समय पूर्व दिशामें किस राशिका उदयमान था, जिस राशिका समय-काल था, वही जन्म-लग्न है। जन्म-कुण्डलीमें सारा खेल लग्नका है। लग्न सही तो कुण्डलीका फल सही रहेगा।

लग्न-साधनके लिये अपने स्थानका उदयमान जानना जरूरी है। लग्न-शुद्धिके लिये शास्त्रानुसार नियम बताये गये हैं, उनसे लग्नकी बारीकीसे जाँच करके ही लग्नका निर्धारण करे।

(४) ग्रहस्पष्ट करना— जिस दिन बालकका जन्म हुआ, उसकी जन्मपत्रीका इष्टकाल सिद्ध हो गया, वह लिखा हुआ है। भयात-भभोग सिद्ध है। लग्नका निर्धारण हो गया है, अब उसके ग्रह अवश्य स्पष्ट कर लेने चाहिये; क्योंकि ग्रहोंके स्पष्ट-मानके बिना फलादेश-निर्धारण करना गलत रहेगा। ग्रहस्पष्टका मतलब है, ग्रहका राशिमान क्या है? दूसरा कारण यह भी है कि कौन ग्रह किस राशिमें कितने अंश, घटी-पलका है, उसके अनुसार जन्मकुण्डलीके द्वादश भावोंमें ग्रहोंकी स्थापना ग्रहमान राश्यादि ग्रह ज्ञात होनेपर ही हो सकती है। अतः प्रत्येक जन्म-कुण्डलीके जन्मांग-चक्रसे पूर्व ग्रहस्पष्ट-चक्र लिखना आवश्यक है। पंचांगोंमें ग्रहस्पष्ट पंक्ति लिखी रहती है, यह अलग-अलग पंचांगोंमें अलग-अलग रहती है। किसीमें अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमाकी ग्रहस्पष्ट पंक्तियाँ रहती हैं। आजकल दैनिक ग्रहस्पष्ट भी पंचांग लिखने लगे हैं। पंचांगमें प्रातःकाल सूर्योदयके समयका ग्रहस्पष्ट लिखा मिलता है। ग्रह प्रातः सूर्योदयके समय किस राशिमें, कितने अंश, कला-विकलाके हैं, उस ग्रहकी चालन गति क्या है, किस नक्षत्रमें है, मार्गी है, वक्री है, यह लिखा मिलता है। जन्मकालिक ग्रहस्पष्ट करनेके लिये जन्म सूर्योदयके बाद कितने घंटे बादका है यह अन्तर करके दैनिक ग्रहगतिसे गुणाकर ६० का भाग देकर अंश-कला-विकला रूप निकालकर अलगसे एक ग्रहस्पष्ट चक्रमें लिखकर रख ले और जन्म-कुण्डलीमें ग्रहस्थापन करे।

(५) जन्मपत्र लिखनेकी विधि— जिस बालककी जन्मपत्री लिखनी है, उसमें सर्वप्रथम अपने इष्टदेव, श्रीगणेशजी तथा गुरुदेवकी वन्दनाके और मांगलिक श्लोक लिखे।

फिर किस विक्रम-संवत्‌में, किस शक-सम्वत्‌में, किस मासमें, किस पक्षमें, किस तिथिमें, किस चन्द्रवारमें, किस नक्षत्रमें, किस अँगरेजी तारीखमें, किस समयमें (प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल अथवा रात्रिकाल)-में जन्म है—यह सब पूर्ण सावधानीसे सही-सही लिख ले। अब पंचांगकी सहायतासे उस दिनकी तिथिका घटी-पल-मान, नक्षत्रका घटी-पल-मान, योगका घटी-पल-मान, उस दिनका सूर्योदय-समय, सूर्यास्त-समय, दिनमान, रात्रिमान, घटी-पल आदि लिखे।

सूर्योदयादि इष्टकाल, घटीमान, चन्द्रराशिमान, बालकका जन्म किस लग्नमें हुआ, उसका मान लिखे। सूर्य किस अयनमें गोचर कर रहा है, कौन ऋतु है, कौन संवत्सर है, लिखे। बालकके पितामह, पिता, माताका नाम, वे किस जाति-धर्मके हैं, किस स्थानके निवासी हैं, कौन जिला,

किस प्रान्तके हैं, किस जाति-गोत्रके हैं, जन्मनक्षत्रके कौन-से चरणमें, कौनसे पायेमें जन्म है, यह सब लिखे। जन्मनक्षत्र-चरणानुसार बालकका नाम क्या रहेगा, लिखे। उस जन्मराशिके अनुसार घातचक्र देखकर लिखे। जन्म-नक्षत्रानुसार विंशोत्तरीदशा किस ग्रहकी रहेगी, लिखे।

इसके बाद जो नवग्रहस्पष्ट-चक्र लिखा था, उसे लिखकर जन्मांग कुण्डली-चक्र लिख देना चाहिये। यह साधारण जन्म-कुण्डली पत्रका टेवा है। टेवाका मतलब आवश्यक प्रथम सूची-पत्र है, जन्मपत्र पूर्ण नहीं है। पूर्ण जन्मपत्रमें बहुत सारी जानकारियाँ रहती हैं। वह अब आगे स्पष्ट करते हुए लिखा जा रहा है—

(६) भाव-स्पष्ट-विधि लिखना—भाव स्पष्ट करनके लिये सर्वप्रथम दशम भावका साधन करना चाहिये। इस भावका गणित करनेके लिये ज्योतिषका ज्ञान आवश्यक है। ज्योतिष-नियम-उपनियम, नत-काल जानने आवश्यक हैं; क्योंकि नतकाल ही इष्टकाल होता है। दशम भावकी साधनिकामें नतकाल आवश्यक है, उसे ज्ञात करनेके चार नियम हैं—

(१) दिनार्धसे पूर्वका इष्टकाल है तो इष्टकालको दिनार्धमेंसे घटानेसे पूर्वनत होगा।

(२) दिनार्धके बादका इष्टकाल है तो दिनमानमेंसे इष्टकाल घटाकर जो शेष बचा, उसको दिनार्धमेंसे घटानेसे पश्चिमनत होगा।

(३) अर्धरात्रिसे पूर्वका इष्टकाल है तो दिनमानको इष्टकालमेंसे घटानेसे जो शेष बचा, उसे दिनार्धमें जोड़ा, वह पश्चिमनत होगा।

(४) अर्धरात्रिके बादका इष्टकाल है तो ६० घटीमेंसे इष्टकालको घटानेसे जो शेष बचा, उसमें दिनार्ध जोड़नेपर वह पूर्वनत होगा।

पश्चिमनत है तो भोग्य प्रकारसे, पूर्वनत है तो भुक्त प्रकारसे लंकोदयमानद्वारा लग्न-साधनके समान दशम भावका साधन कर लेना चाहिये अथवा इष्टकालमेंसे दिनार्ध घटाकर जो शेष आये, वह दशम भाव इष्ट होगा अथवा लग्न-सारणीद्वारा लग्न बनाते समय सूर्य स्पष्ट फलमें इष्टकाल जोड़नेपर जो राशि, अंश, घटी-पल आये, उसमेंसे १५ घटी शेष करनेपर जो शेष अंक है, उसे दशम सारणीसे मिलान करे, दशम सारणीमें जिस राशि-अंशका फल मिले, वही दशम लग्न रहेगा। लग्न-सारणी, दशम-सारणी अलग-अलग पंचांगोंमें अलग-अलग रहती है। अत: जिस जगहकी जन्मपत्री बनानी है, वहींका जन्म-पंचांग लेना चाहिये। ज्योतिषके हर कार्यमें गणितकी जरूरत पड़ती है, अत: गणितका ज्ञान आवश्यक है।

दशम लग्न भाव साध लिया गया, अब शेष भाव बनाते जाय। दशम भावमें छ: राशि जोड़े, चतुर्थ भाव आया। चतुर्थ भावमेंसे लग्न घटाया, जो शेष आया, उसमें छ: का भाग देकर षष्ठांश निकाला। अब लग्नमें षष्ठांश जोड़-जोड़कर लग्न-सन्धि निकाले और आगे-आगे षष्ठांश जोड़ते हुए षष्ठ भाव-सन्धितकका साधन कर ले।

फिर लग्न भावमें छ: राशि जोड़नेपर सप्तम भाव, लग्नसन्धिमें छ: राशि जोड़नेपर सप्तम भावसन्धि आयेगी। इस प्रकार षष्ठ भावसन्धितक छ: राशि जोड़ते रहे तो द्वादश भाव-सन्धितक साधन हो जायगा। इस भाव, स्पष्ट-सन्धि स्पष्टको द्वादश भाव स्पष्ट चक्रमें लिख ले।

(७) द्वादश भावोंके नाम—जन्मकुण्डलीके द्वादश भावोंके अलग-अलग नाम हैं। लग्नभाव प्रथम भाव है, उसे तनभाव कहते हैं। दूसरे भावको धनभाव, तृतीय भावको सहजभाव, चतुर्थ भावको सुख एवं मातृभाव, पंचम भावको सुतभाव, षष्ठ भावको रिपुभाव, सप्तम भावको भार्याभाव, अष्टम भावको आयुभाव, नवम भावको भाग्यभाव तथा धर्मभाव, दशम भावको कर्म एवं पिताभाव, एकादश भावको आय भाव और द्वादश भावको व्ययभाव कहते हैं। ये जन्मकुण्डलीके द्वादश भावोंके नाम हैं।

(८) चलितचक्र ज्ञात करना—द्वादश भावमें हर भावकी राशि, अंश, कला, विकलाका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर ग्रहस्पष्ट करनेपर कौन ग्रह किस राशिमें कितने अंश-कलाका है यह ज्ञात होनेपर, जन्मकुण्डलीके द्वादश भावोंमें ग्रह-निर्धारण कर ले तथा दोनोंका तुलनात्मक विचार करते हुए चलितचक्र बनाया जाना चाहिये। ग्रह-भावमें है या सन्धिमें है, भावस्थित ग्रहका फल पूरा होता है। सन्धिस्थित ग्रहका फल न्यून रहता है। इस प्रकार

चलितचक्र-कुण्डलीसे ग्रहके स्थानका ज्ञान हो सकता है।

(९) राशि-स्वामित्व बोध—मेष-वृश्चिक राशिका स्वामी मंगल होता है। वृष-तुलाका स्वामी शुक्र होता है। कन्या-मिथुनका स्वामी बुध रहता है। कर्कका स्वामी चन्द्रमा तथा सिंहका स्वामी सूर्य होता है। धनु-मीनका स्वामी बृहस्पति होता है। मकर-कुम्भका स्वामी शनि होता है। इसके बादमें कौन ग्रह उच्चका है, कौन नीचका है, मूल त्रिकोण राशिका स्वामी कौन है, ज्ञात करना चाहिये, जो फलादेशके लिये अति आवश्यक है। सूर्य मेषराशिमें १० अंशतक उच्च रहता है, स्वराशि सिंह है तथा तुलाके १० अंशतक नीच रहता है। चन्द्रमाकी स्वराशि कर्क है, वृषके ३ अंशतक उच्च और वृश्चिकमें ३ अंशतक नीच होता है। मंगलकी स्वराशि मेष-वृश्चिक है। यह मकरमें २८ अंशतक उच्च, कर्कमें २८ अंशतक नीच रहता है। बुधकी स्वराशि मिथुन-कन्या है। बुध कन्याराशिमें १५ अंशतक उच्च, मीनमें १५ अंशतक नीच रहता है। बृहस्पतिकी धनु-मीन स्वराशि है, बृहस्पति कर्कमें ५ अंशतक उच्च तथा मकरमें ५ अंशतक नीच रहता है। शुक्रकी स्वराशि वृष-तुला है। शुक्र मीनमें २७ अंशतक उच्च और कन्याके २७ अंशतक नीच रहता है। शनिकी स्वराशि मकर-कुम्भ है। शनि तुलाके २० अंशतक उच्च तथा मेषराशिमें २० अंशतक नीच रहता है। राहुकी स्वराशि नहीं होती, परंतु मिथुनमें उच्च, धनुमें नीच रहता है। केतु धनुमें उच्च, मिथुनमें नीच रहता है, फलादेश करते समय इन बातोंके ज्ञानकी जरूरत रहती है।

अन्य कुण्डलियाँ

ग्रहस्पष्टकी सहायतासे अन्य कुण्डलियाँ बनायी जाती हैं।

(क) होरा कुण्डली—१५ अंशकी एक होरा होती है, एक राशि ३० अंशकी होती है। अतः एक राशिमें दो होरा होती हैं। विषम राशिमें प्रारम्भके १५ अंशतक सूर्यकी होरा होती है। १६ से ३० तक चन्द्रमाकी होरा होती है। सम राशियोंमें शुरूके १५ अंशतक चन्द्रमाकी होरा होती है। बादमें १६ से ३० अंशतक सूर्यकी होरा रहती है। होरा कुण्डली लिखनेमें पहले लग्न देखे, लग्नमें किस ग्रहकी होरा है, बादमें ग्रह स्पष्ट देखकर निर्धारण करे कि कौन ग्रह किस होराका है। लग्नमें यदि सूर्य होरा है तो कुण्डली लग्न ५ लिखा जायगा, यदि लग्न होरा चन्द्रमाकी है तो ४ लिखा जायगा।

(ख) द्रेष्काण कुण्डली—१० अंशका एक द्रेष्काण होता है। इस प्रकार एक राशिमें ३ द्रेष्काण होते हैं। १-१० अंशतक प्रथम द्रेष्काण, ११-२० अंशतक द्वितीय द्रेष्काण एवं २१ से ३० अंशतक तृतीय द्रेष्काण होता है।

जिस किसी राशिके प्रथम द्रेष्काणमें ग्रह हो तो प्रथम द्रेष्काण उसी राशिका, दूसरा द्रेष्काण उस राशिसे पाँचवीं राशिका और तृतीय द्रेष्काण उस राशिसे नवम राशिका रहता है। यह याद कर लेना चाहिये। द्रेष्काण कुण्डली बनानेके लिये सर्वप्रथम ग्रहस्पष्ट-तालिकामें लग्न जिस द्रेष्काणमें हो, वही द्रेष्काण कुण्डलीकी लग्न राशि रहेगी। लग्न-निर्धारणके बाद ग्रहस्पष्ट तालिकाका अवलोकन करते हुए ग्रह स्थापित करे।

(ग) सप्तांश कुण्डली—एक राशिके ३० अंश होते हैं, इन अंशोंमें ७ का भाग देनेसे ४ अंश, १७ कला एवं ९ विकलाका एक सप्तांश होता है।

लग्न और ग्रहोंके सप्तांश निकालनेका नियम यह है कि सम राशियोंमें उस राशिसे सप्तम राशिसे और विषम राशियोंमें उसी राशिसे सप्तमांशकी गणना की जाती है। सर्वप्रथम लग्न-निर्धारण करे। लग्न किस राशिका कितने अंशका है और सप्तमांश किस राशिमें होगा। जिस राशिका सप्तमांश आये लग्नसंख्या वही रहेगी, जो सप्तमांश राशि आयेगी। उदाहरण—लग्न मेष राशिके २३-२५-२७ विकला है। अब सप्तमांश लग्न निर्धारणके लिये देखते हैं। मेष राशि विषम राशि है। अतः उसी राशिकी सप्तमांश गणना होगी। ५वाँ सप्तमांश २१-५-४२ अंशपर समाप्त होता है। अतः छठा सप्तमांश कन्याराशिका होगा, जो २५-४२-५१ तकका है। अतः सप्तमांश कुण्डली लग्न कन्या राशिका होगा, कन्याराशिका अंक ६ है। अतः कुण्डली लग्न ६ से प्रारम्भ होगा। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रहके स्पष्ट मान देखकर विचारकर ग्रह-निर्धारणपर सप्तमांश कुण्डली बनायी जायगी।

(घ) नवमांश कुण्डली—एक राशिके नौवें भागको नवमांश कहते हैं। ३ अंश २० कलाका एक नवमांश होता है। एक राशिमें नौ राशियोंके नवांश होते हैं। नवांश-

षड्वर्ग-सारणी एवं षड्वर्गफल

१-लग्न (गृह)-से शरीर-सम्बन्धी शुभाशुभका विचार होता है—'**लग्नं देहस्य विज्ञानम्**'। २-होरासे सम्पत्तिका विचार होता है—'**होरायां सम्पदादिकम्**'। ३-द्रेष्काणसे भाईका एवं ४-सप्तमांशसे पुत्र-पौत्रादिका विचार होता है—'**द्रेष्काणे भ्रातृजं सौख्यं.... पुत्रपौत्रादिकानां वै चिन्तनं सप्तमांशके।**' ५-नवमांशसे स्त्रीका—'**नवमांशे कलत्राणाम्**' तथा ६-द्वादशांशसे माता एवं पिताका—'**द्वादशांशे तथा पित्रोः**' और ७-त्रिंशांशसे अरिष्ट-सम्बन्धी विचार होता है—'**त्रिंशांशके रिष्टफलम्।**'

(पाराशरहोराशास्त्र)

होराचक्र

अंश	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
१५	५ सू.	४ चं.	५ सू.	४ चं.	५ सू.	४ चं.	५ सू.	४ चं.	५ सू.	४ चं.	५ सू.	४ चं.
१५	चं. ४	सू. ५	चं. ४	सू. ५	चं. ४	सू. ५	चं. ४	सू. ५	चं. ४	सू. ५	चं. ४	सू. ५

सप्तमांशचक्र

अंश	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
४ १७।९	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ गु.	७ शु.	२ शु.	९ गु.	४ चं.	११ श.	६ बु.
८ ३४।१७	२ शु.	९ गु.	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ गु.	७ शु.
१२ ५१।२५	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ गु.	७ शु.	२ शु.	९ गु.	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.
१७ ८।३४	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ गु.	७ शु.	२ शु.	९ गु.
२१ २५।४२	५ सू.	१२ गु.	७ शु.	२ शु.	९ गु.	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.
२५ ४२।५१	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० श.	५ र.	१२ गु.	७ शु.	२ शु.	९ गु.	४ चं.	११ श.
३० ०	७ शु.	२ शु.	९ गु.	४ चं.	११ श.	६ बु.	१ मं.	८ मं.	३ बु.	१० शु.	५ र.	१२ गु.

नवमांशचक्र

अं.क.	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
३।२०	मं.	श.	शु.	चं.	मं.	श.	शु.	चं.	मं.	श.	शु.	चं.
६।४०	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.
१०।०	बु.	गु.	गु.	बु.	बु.	गु.	गु.	बु.	बु.	गु.	गु.	बु.
१३।२०	चं.	मं.	श.	शु.	चं.	मं.	श.	शु.	चं.	मं.	श.	शु.
१६।४०	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.
२०।०	बु.	बु.	गु.	गु.	बु.	बु.	गु.	गु.	बु.	बु.	गु.	गु.
२३।२०	शु.	चं.	मं.	श.	शु.	चं.	मं.	श.	शु.	चं.	मं.	श.
२६।४०	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.
३०।०	गु.	बु.	बु.	गु.	गु.	बु.	बु.	गु.	गु.	बु.	बु.	गु.

द्वादशांशचक्र

अं.क.	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
२।३०	मं.	शु.	बु.	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.
५।०	शु.	बु.	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.	मं.
७।३०	बु.	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.
१०।०	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.
१२।३०	र.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.
१५।०	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	र.
१७।३०	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	र.	बु.
२०।०	मं.	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	र.	बु.	शु.
२२।३०	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	र.	बु.	शु.	मं.
२५।०	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	गु.
२७।३०	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.
३०।०	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.

त्रिंशांशचक्र

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
अंश स्वामी	५ मं.	५ शु.	५ मं.	५ शु.	५ मं.	५ शु.	५ मं.	५ शु.	५ मं.	५ शु.	५ मं.	५ शु.
अंश स्वामी	५ श.	७ बु.	५ श.	७ बु.	५ श.	७ बु.	५ श.	७ बु.	५ श.	७ बु.	५ श.	७ बु.
अंश स्वामी	८ गु.	८ गु.	८ गु.	८ गु.	८ गु.	८ गु.	८ गु.	८ गु.	८ गु.	८ गु.	८ गु.	८ गु.
अंश स्वामी	७ बु.	५ श.	७ बु.	५ श.	७ बु.	५ श.	७ बु.	५ श.	७ बु.	५ श.	७ बु.	५ श.
अंश स्वामी	५ शु.	५ मं.	५ शु.	५ मं.	५ शु.	५ मं.	५ शु.	५ मं.	५ शु.	५ मं.	५ शु.	५ मं.

द्रेष्काणचक्र

अंश	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
१० स्वामी	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ गु.	१० श.	११ श.	१२ गु.
२० स्वामी	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.	९ गु.	१० श.	११ श.	१२ गु.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.
३० स्वामी	९ गु.	१० श.	११ श.	१२ गु.	१ मं.	२ शु.	३ बु.	४ चं.	५ र.	६ बु.	७ शु.	८ मं.

बोधक-चक्र पंचांगमें लिखे रहते हैं। ग्रहस्पष्टतालिकाका नवांश-बोधक-चक्रसे मिलान करके नवांश कुण्डली तैयार की जा सकती है।

चरराशिका प्रथम नवांश, स्थिर राशिका पाँचवाँ नवांश, द्विस्वभावराशिका अन्तिम नवांश वर्गोत्तम कहलाता है।

सर्वप्रथम ग्रहस्पष्टतालिकासे लग्न निर्धारित करें। उदाहरण—लग्न ०। २३। २५। २७ का है। प्रथम नवांश ३ अंश २० कलाका है, अत: मेष नवांश बोधक चक्रमें देखा, मेष राशिमें ७वाँ नवांश २३ अंश २० कलातक है। हमारी लग्न संख्या २३-२५ है। अत: आगेका ८ वाँ नवांश २६ अंश ४० कलातक है। अत: लग्नकी राशि वृश्चिक हुई और नवांश कुण्डलीमें लग्न संख्या ८ से शुरू होगी। ऐसे ही अन्य ग्रहोंको बोधक चक्रसे मिलानकर स्थापित कर ले।

(ङ) दशमांश कुण्डली—एक राशिमें दस दशमांश निर्धारित करनेपर एक दशमांश ३ अंशका बनता है। दशमांश गणना विषम राशियोंके उसी राशिसे गणना की जाती है। सम राशियोंमें उस राशिके नवम राशिसे दशमांशकी गणना की जाती है। यह दशमांश कुण्डली बनानेका नियम है।

लग्न स्पष्ट जिस राशि दशमांशमें हो, वही दशमांश कुण्डलीका लग्न रहेगा और ग्रहस्पष्टतालिकासे सभी ग्रहोंको जिस दशमांशमें गणना आये, उसीमें स्थापितकर कुण्डली बनायी जाती है।

(च) द्वादशांश कुण्डली—एक राशिका द्वादशांश २ अंश ३० कलाका बनता है। द्वादशांश गणना अपनी राशिसे ही की जाती है। तात्पर्य यह है कि जिस राशिमें द्वादशांश ज्ञात करना है, उसमें प्रथम द्वादशांश उसी राशिका, दूसरा आगेवाली राशिका रहेगा। इस प्रकारसे १२ राशियोंमें प्रथम द्वादशांश उसी राशिके होंगे। लग्न स्पष्टके द्वादशांश निकालकर द्वादशांश कुण्डली बनाकर फिर ग्रहस्पष्टानुसार द्वादशांश बनाते हुए ग्रह स्थापित करे।

(छ) षोडशांश कुण्डली—एक राशिके १६वें अंशको षोडशांश कहते हैं। एक षोडशांश १ अंश ५२ कला ३० विकलाका होता है।

षोडशांशकी गणना चरराशियोंमें मेष राशिसे, स्थिर राशियोंमें सिंह राशिसे और द्विस्वभाव राशियोंमें धनुराशिसे की जाती है। ग्रहस्पष्टतालिकामें प्रथम यह देखे कि लग्न तथा ग्रह किस संज्ञाके हैं। चरराशि संज्ञा है, स्थिरराशि संज्ञा है या द्विस्वभावराशि संज्ञा है, फिर षोडशांशबोधक चक्रसे मिलानकर कुण्डली बनाये।

(ज) त्रिंशांश-कुण्डली—विषम राशियोंमें प्रथम ५ अंश मंगलका, दूसरा ५ अंश शनिका, तीसरा ८ अंश धनुराशि बृहस्पतिका, चौथा ७ अंश मिथुन राशि बुधका और पाँचवाँ ५ अंश तुलाराशिका होता है।

सम राशियोंमें प्रथम ५ अंश वृषराशि शुक्रका, दूसरा ७ अंश कन्याराशि बुधका, तीसरा ८ अंश मीनराशि बृहस्पतिका, चौथा ५ अंश मकरराशि शनिका और पाँचवाँ ५ अंश वृश्चिकराशि मंगलका त्रिंशांश होता है।

दशा-निर्धारण

जन्मकुण्डली तैयार होनेके बाद दशा-कालका विचार किया जाता है, दशाएँ तीन प्रकारकी देखनेमें आयी हैं—विंशोत्तरीदशा, अष्टोत्तरीदशा, योगिनीदशा। प्रधानरूपसे विंशोत्तरी दशा प्रचलनमें देखी जाती है। मारकेशका निर्णय भी विंशोत्तरीदशासे ही किया जाता है। विंशोत्तरीदशा बनानेकी विधि इस प्रकारसे है—

विंशोत्तरी दशाका मान १२० वर्ष माना गया है, जिसका विभाजन इस प्रकारसे किया गया है। सूर्यदशा ६ वर्ष, चन्द्रदशा १० वर्ष, मंगलदशा ७ वर्ष, राहुदशा १८ वर्ष, बृहस्पतिदशा १६ वर्ष, शनिदशा १९ वर्ष, बुधदशा १७ वर्ष, केतुदशा ७ वर्ष और शुक्रदशा २० वर्षकी मानी गयी है। जन्म-नक्षत्रानुसार ग्रहोंकी दशा कृत्तिका नक्षत्रसे प्रारम्भ होती है।

एक सुगम विधि यह भी है—कृत्तिका नक्षत्रसे जन्म-नक्षत्रतक गिनकर संख्या ज्ञात करे, उसमें ९ का भाग दे। यदि शेष एक बचा तो सूर्यदशा, २ शेष तो चन्द्रदशा, ३ शेष तो मंगलदशा, ४ शेष तो राहुदशा, ५ शेष तो बृहस्पति-दशा, ६ शेष तो शनिदशा, ७ शेष तो बुधदशा, ८ शेष तो केतुदशा और शून्य शेष तो शुक्रदशा मानी जाती है।

दशा जिस ग्रहकी जन्म-नक्षत्रानुसार गणनाकर मान्य हुई, उसमेंसे कितनी दशा भुक्त हो चुकी है और

शेष दशा कितनी भोग्य रहेगी, इसकी जाँच करनेके लिये भयात-भभोगको पलात्मक बना ले। जिस ग्रहकी दशा है, उसके वर्षमानको पलात्मक भयातसे गुणाकर पलात्मक भभोगका भाग दे दे, जो भागफल आये, उसे वर्ष माने, शेषको १२ से गुणाकर पलात्मक भभोगका भाग दे, जो भागफल आये, उसे मास माने, शेषमें ३० से गुणाकर पलात्मक भभोगका भाग दे, जो भागफल आये, उसे दिन माने, जो शेष रहे, उसे घटी माने।

ये वर्ष-मास-दिन दशाके भुक्त वर्षमान रहेंगे। इनको ग्रह-दशाके वर्षमानमेंसे घटा दे, जो वर्षमान, दिन शेष बचे; वह भोग्य दशा रहेगी। इस प्रकारसे विंशोत्तरी दशा-चक्र बना ले। प्रत्येक ग्रहकी महादशामें नौओं ग्रह अपने निश्चित क्रमसे भोग करते हैं, जो अन्तर्दशा कहलाती है, उसका भी परिगणनकर जन्मपत्रीमें लिख दे। सुविधाके लिये यहाँ ग्रहोंकी महादशा एवं अन्तर्दशाका चक्र दिया जा रहा है। इससे आगेका काम फलादेशका

विंशोत्तरीमहादशा एवं अन्तर्दशाचक्र

सूर्यदशावर्ष ६ कृ., उ.फा., उ.षा. अन्तर्दशा १८				चन्द्रदशावर्ष १० रोहिणी, हस्त, श्रवण अन्तर्दशा ३०				भौमदशावर्ष ७ मृ., चित्रा, ध. अन्तर्दशा २१				राहुदशावर्ष १८ आर्द्रा, स्वा., शत. अन्तर्दशा ५४			
ग्र	व.	मा.	दि.	ग्र	व.	मा.	दि.	ग्र	व.	मा.	दि.	ग्र	व.	मा.	दि.
सू	०	३	१८	चं.	०	१०	०	मं.	०	४	२७	रा.	२	८	१२
च.	०	६	०	मं.	०	७	०	रा.	१	०	१८	बृ.	२	४	२४
मं.	०	४	६	रा.	१	६	०	बृ.	०	११	६	श.	२	१०	६
रा.	०	१०	२४	बृ.	१	४	०	श.	१	१	९	बु.	२	६	१८
बृ.	०	९	१८	श.	१	७	०	बु.	०	११	२७	के.	१	०	१८
श.	०	११	१२	बु.	१	५	०	के.	०	४	२७	शु.	३	०	०
बु.	०	१०	६	के.	०	७	०	शु.	१	२	०	सू.	०	१०	२४
के.	०	४	६	शु.	१	८	०	सू.	०	४	६	चं.	१	६	०
शु.	१	०	०	सू.	०	६	०	चं.	०	७	०	मं.	१	०	१८

गुरुदशावर्ष १६ पुन., वि., पू.भा. अन्तर्दशा ४८				शनिदशावर्ष १९ पुष्य, अनु., उ.भा. अन्तर्दशा ५७				बुधदशावर्ष १७ आश्ले., ज्ये., रेवती अन्तर्दशा ५१				केतुदशावर्ष ७ मघा, मू., अश्वि. अन्तर्दशा २१				शुक्रदशावर्ष २० पू.फा., पू.षा., भर. अन्तर्दशा ६०			
ग्र	व.	मा.	दि.	ग्र	व.	मा.	दि.	ग्र	व.	मा.	दि.	ग्र	व.	मा.	दि.	ग्र	व.	मा.	दि
बृ.	२	१	१८	श.	३	०	३	बु.	२	४	२७	के.	०	४	२७	शु.	३	४	०
श.	२	६	१२	बु.	२	८	९	के.	०	११	२७	शु.	१	२	०	सू.	१	०	०
बु.	२	३	६	के.	१	१	९	शु.	२	१०	०	सू.	०	४	६	चं.	१	८	०
के.	०	११	६	शु.	३	२	०	सू.	०	१०	६	चं.	०	७	०	मं.	१	२	०
शु.	२	८	०	सू.	०	११	१२	चं.	१	५	०	मं.	०	४	२७	रा.	३	०	०
सू.	०	९	१८	चं.	१	७	०	मं.	०	११	२७	रा.	१	०	१८	बृ.	२	८	०
चं.	१	४	०	मं.	१	१	९	रा.	२	६	१८	बृ.	०	११	६	श.	३	२	०
मं.	०	११	६	रा.	२	१०	६	बृ.	२	३	६	श.	१	१	९	बु.	२	१०	०
रा.	२	४	२४	बृ.	२	६	१२	श.	२	८	९	बु.	०	११	२७	के.	१	२	०

है। जन्म कुण्डली-निर्माण यहाँतक माना गया है।

कुछ विद्वान् चन्द्र-कुण्डली, सुदर्शन कुण्डली भी बनाते हैं, उनका स्वरूप जन्मकुण्डलीसे ही बन जाता है। जन्मकुण्डलीमें चन्द्रमा जिस राशि भावमें है, उसे लग्न मानकर शेष कुण्डली यथावत् रखी जाती है।

सुदर्शन-चक्रमें तीन कुण्डली साथ चलती है—प्रथम चक्र सूर्य लग्न मानकर तैयार करते हैं। जन्मकुण्डलीमें सूर्य जिस राशिमें है, उसे सूर्य लग्न मानकर शेष कुण्डली चक्र यथावत् रखते हैं। मध्य चक्रमें चन्द्रमा जिस राशिमें हैं, उसे चन्द्र लग्न मानकर शेष ग्रह चक्र जन्म लग्नानुसार लिख देते हैं। तृतीय वृत्तमें जन्म-लग्न कुण्डली यथावत् रखी जाती है। इसको सुदर्शन-चक्र कुण्डली कहा जाता है। सुदर्शनचक्र कुण्डलीका फलादेश तीनों लग्नोंसे तुलना करते हुए देखा जाता है।

जातकतत्त्व-मीमांसा

(श्रीचयनिकाजी शर्मा)

प्रथम भाव

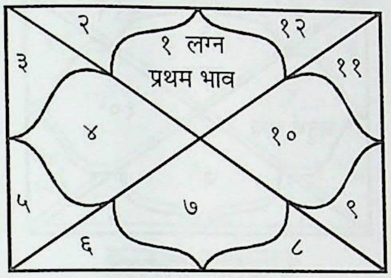

कुण्डली-कालपुरुष

द्वितीय भाव

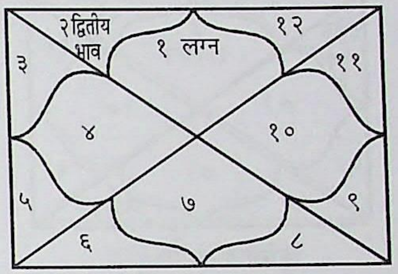

कुण्डली-कालपुरुष

कुण्डलीका पहला भाव 'जन्मभाव' कहलाता है। जन्मसे जो-जो वस्तुएँ मनुष्यको प्राप्त होती हैं, उनका विचार प्रथम भावसे किया जाता हैं, जैसे—जाति, रंग, रूप, कद, जन्म-स्थान, जन्म-समयकी बातें आदि।

प्रथम भावसे जातककी हैसियत, मकानकी चारदीवारी, जमीनके बारेमें ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्रथम भावसे व्यक्तिकी परोपकारी प्रवृत्ति एवं उसके शील-स्वभावके बारेमें जाना जा सकता है। इन बातोंकी जानकारीमें नौवाँ भाव भी सहायक है।

प्रथम भाव व्यक्तिकी आयुके पहले भागको दर्शाता है। प्रथम भावसे प्रारब्धका फल, जो इस जन्ममें भोगना है, पता चलता है। इसी प्रकार प्रथम भाव 'पूर्वदिशा' का भी कारक है अर्थात् यदि जातकका सूर्य कुण्डलीमें अच्छा है तो उसके लिये पूर्वदिशाका मकान शुभ होगा।

प्रथम भावका कारक ग्रह 'सूर्य' है। सूर्य यहाँ उच्च फल तथा शनि नीच फल देता है। कालपुरुषकी कुण्डलीके अनुसार प्रथम भावका स्वामी ग्रह 'मंगल' है, अत: मंगल भी यहाँ शुभ होता है।

प्रथम भावका कारक सूर्य होनेके कारण सूर्य कुण्डलीमें किस अवस्थामें है—यह देखकर भी प्रथम भावके बारेमें बहुत कुछ पता चलता है। प्रथम भाव आजीविकाको भी दर्शाता है अर्थात् धनकी स्थिति भी बताता है, वह धन जो जातक अपने परिश्रमसे अर्जित करता है।

प्रथम भावमें मनुष्यको शरीर तो मिल गया, परंतु खाद्य-पदार्थ न मिले तो शरीर नहीं चल सकता, यही कारण है कि खाद्य-सामग्री, कोष एवं धनादिका सम्बन्ध द्वितीय भावसे है। लग्न (प्रथम भाव) अर्थात् प्रथम अंग सिरका प्रतिनिधि है तो द्वितीय भाव—द्वितीय अंग अर्थात् मुख, मुखकी शोभा, बनावट, आँखों आदिका। द्वितीय भावका कारक ग्रह बृहस्पति है, परंतु काल-पुरुषकी कुण्डलीके अनुसार द्वितीय भावमें वृषराशि है, इसका स्वामी शुक्र होता है एवं चन्द्रमा यहाँ उच्चका माना जाता है। दूसरा भाव जातककी प्रतिष्ठा एवं संचित धन को दर्शाता है। दूसरे भावके धनका अर्थ है, जो सात्त्विक ढंगसे बचाया गया हो। मकान (पैतृक सम्पत्ति) या दूकान आदिका भी निर्धारण इसी भावसे होता है। बृहस्पतिके इस घरके कारक होनेके कारण यह भाव प्रारम्भिक आयुके ज्ञानको दर्शाता है। यह भाव मिट्टी, खेती एवं उड़नेवाली गैसोंसे भी सम्बन्ध रखता है। इसके अतिरिक्त द्वितीय भाव कुमारावस्था, रूप-लावण्य, वाणी-विकार, प्रबल वाक्शक्ति, संगीत-कला-ज्ञान, अन्धापन, संन्यास, मारक दशा, गोद लिया जाना, साम्राज्य, शासन, प्रारम्भिक शिक्षा आदिका भी द्योतक है। प्राथमिकताके गुणके कारण लग्नसे जन्मकालीन तथा शैशवकालीन बातोंका विचार किया जाता है, इसी आधारपर द्वितीय भावसे शैशवावस्थाके तुरन्त बादकी अवस्था कुमारावस्थाका विचार किया जाता

है। यह भाव 'उत्तर-पश्चिम' दिशाको दर्शाता है।

तृतीय भाव

बिना परिश्रमके न तो धन उत्पन्न होता है, न

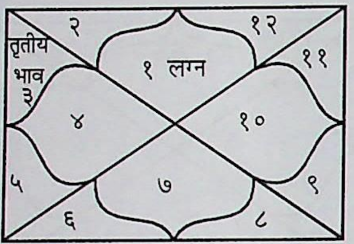

कुण्डली-कालपुरुष

टिक ही सकता है, अतः तृतीय भाव परिश्रम, बल, बाहु, पराक्रम आदिका है। तीसरे भावसे जातकके जिम्मेदार होने, फर्ज निभाने, दूसरोंकी सहायता करनेकी हदका पता चलता है। उत्साह, स्फूर्ति, दृष्टिके प्रभावशाली होने, चोरी एवं बीमारीका सम्बन्ध भी इसी भावसे है। जातकके जीवनमें उतार-चढ़ावको भी यही घर दिखाता है। तीसरे घरका कारक ग्रह मंगल एवं राशि स्वामी बुध ग्रह है, परंतु मंगलका ज्यादा अधिकार होनेके कारण बुध यहाँ शुभ फल नहीं देता, क्योंकि मंगल बुधको कमजोर कर देता है। यह भाव 'दक्षिण-दिशा' को व्यक्त करता है। इस भावमें मेष, वृश्चिक एवं मकरराशिका मंगल अति शुभ होता है। तीसरे भावसे छोटे भाई-बहनोंका पता चलता है। यदि यह भाव शुभ होगा तो भाई-बहनोंसे सम्बन्ध एवं उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ होगी। इसके अतिरिक्त तीसरे भावसे जातकका निजत्व, आत्मघात, मित्रता, लेखन-कला, हाथ, पर्याप्त धन, छोटी-छोटी यात्राएँ, हवाई यात्रा, गहरी खोज आदिका भी पता चलता है। रिश्तेदारोंकी आर्थिक स्थिति भी यह भाव दर्शाता है। मकानके अन्दर रखे सामान को यह भाव दर्शाता है। यदि इस भावमें अशुभ ग्रह हों तो जातक को परिश्रम का पूरा फल कभी नहीं मिलता। तृतीय भाव आँखकी पलकों, जिगर, खूनकी मात्रा एवं खूनमें ऑक्सीजनकी मात्रा एवं अन्य प्रकारके रक्तदोषोंको भी बताता है। यह भाव जातककी आयु (यौवन) भी दर्शाता है।

चतुर्थ भाव

शरीर, धन तथा परिश्रम तभी सार्थक है, जब

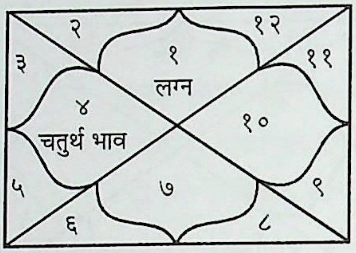

कुण्डली-कालपुरुष

कार्य करनेकी रुचि एवं भावना हो। अतः भावनाओं, कामनाओंका विचार कुण्डलीके चतुर्थ भावमें रखा गया है। कालपुरुषके चतुर्थ अंग—वक्षःस्थल एवं हृदयसे भी इसका सम्बन्ध है। इस भावमें कर्कराशि पड़ती है। अतः चन्द्रमा चतुर्थ भावका स्वामी है। बृहस्पति इस भावमें उच्च फल देता है। स्त्रियोंकी कुण्डलीमें यह भाव पेटके अन्दरूनी हिस्सों अर्थात् गर्भको दर्शाता है। इस भावका कारक ग्रह भी चन्द्रमा है, अतः यह जलका स्थान कहलाता है। सर्द तासीर, मनकी शान्ति इसी भावसे देखी जाती है। चतुर्थ भावमें अशुभ ग्रह होनेसे जातकके आत्मविश्वासमें कमी आ जाती है एवं माताकी सेहतपर भी बुरा प्रभाव रहता है। यह भाव उत्तर-पूर्व दिशाको दर्शाता है। दूधका सम्बन्ध भी इसी भावसे है, अतः दूध देनेवाले जानवर गाय, भैंस भी इसी भावसे सम्बन्ध रखते हैं। ननिहालकी आर्थिक स्थिति (मामाकी) इसी भावसे पता चलती है। चौथे भावका सम्बन्ध जीवनके दूसरे हिस्सेके सुख अर्थात् गृहस्थीके सुख एवं युवावस्था आदिसे है; क्योंकि इस घरका कारक एवं स्वामी ग्रह चन्द्रमा है, अतः इस भावका रात्रिसे गहरा सम्बन्ध है, यदि इसमें शुभ ग्रह हों तो नींद अच्छी आयेगी एवं शुभ समाचार भी बहुधा रात्रिमें ही मिलेगा एवं विपरीत स्थिति होनेपर स्थितियाँ उलट जायँगी। पागलपन, भय, मिरगीरोग, माता, रोग-योग, वाहन, जन-सेवा एवं नेतृत्व, स्थानान्तरण, खेती,

जायदाद, शत्रुता एवं स्वार्थपरायणता भी इसी भावको दर्शाते हैं।

पंचम भाव

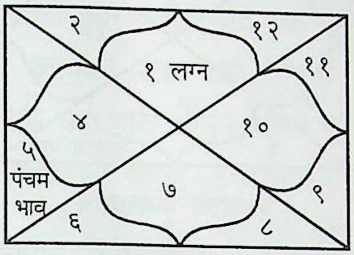

कुण्डली-कालपुरुष

व्यक्तिके पास शरीर, धन, परिश्रम, इच्छाशक्ति सब कुछ हो, परंतु यदि उसको कार्यविधिका ज्ञान अर्थात् विचारशक्ति प्राप्त न हो तो जीवन आगे नहीं चल सकता। अत: पंचम भाव (विचारशक्ति)-को चतुर्थभाव (मन)-के अनन्तर स्थान दिया जाना विकास-क्रमके अनुरूप ही है। पंचम भावका विशेष सम्बन्ध सन्तान से है। शरीरके अंगोंमें पेट एवं पीठका विचार इसी भावसे किया जाता है। कालपुरुषकी कुण्डलीके अनुसार पंचम भावमें सिंहराशि पड़ती है, जिसका स्वामी ग्रह सूर्य है, अत: इस भावका प्रकाशसे भी गहरा सम्बन्ध है। मकानके अन्दर रोशनी एवं हवा कितनी आती है, यह सूर्यकी स्थितिको देखकर पता चलता है। दिशाओंमें यह पूर्वदिशाका द्योतक है। इस भावका स्वामी सूर्य है। अत: चमक विशेषतया जातकके जीवनमें स्थान रखती है, जैसे सन्तान एक सुखमय गृहस्थके जीवनका तेज है। भाग्य एवं कमाईकी चमक इत्यादि। यदि इस भावमें अशुभ ग्रह हों तो उपर्युक्त सभी परेशानियोंका कारण बन जाते हैं।

बृहस्पति इस भावका कारक है, अत: विद्या, ज्ञान एवं मानसिक प्रभाव भी देखा जाता है। मानसिक चेतनता, मनकी ईमानदारी, लोगोंके दिलमें जातकके लिये सम्मान भी इसी भावसे देखा जाता है। इसके अतिरिक्त जातकके इष्टदेव, मन्त्री-पद, पुत्रप्राप्ति, प्रेम, मनोविनोद, प्रतियोगी परीक्षाएँ, लाटरी, सट्टासे धन, राजयोग एवं बालारिष्ट भी इस भावसे देखे जाते हैं।

षष्ठ भाव

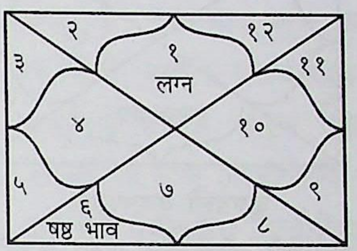

कुण्डली-कालपुरुष

यदि शरीर, धन, परिश्रम, इच्छाशक्ति, विचारशक्ति सब कुछ हो, परंतु मनुष्य सांसारिक विरोधी शक्तियों, अड़चनों, कठिनाइयोंसे बाहर न निकल सके तो उसको कुशलता एवं सफलता नहीं प्राप्त हो सकती, अत: षष्ठ भावको कठिनाइयों, अड़चनों अर्थात् शत्रुताका स्थान माना गया है। छठा भाव शत्रु-स्थान कहलाता है। अन्य जाति एवं विदेशी-वस्तुओंका विचार भी इसी भावसे होता है। ऋणका सम्बन्ध भी इसी भावसे है; क्योंकि कर्ज हमेशा हम अपनोंसे नहीं परायोंसे लेते हैं। शत्रुका पहला काम चोट पहुँचाना एवं चिन्ता देना है—दोनों ही रोगके स्वरूप हैं, अत: रोग भी इसी भावसे देखा जाता है। घरके अन्दर स्टोररूम या तहखाना इसी श्रेणीमें आते हैं। जातकके अन्दरूनी अंग जैसे आँतें, कमर, पुट्ठे आदि इस भावके अन्तर्गत आते हैं।

कालपुरुषकी कुण्डलीके अनुसार इस भावमें कन्याराशि पड़ती है, अत: इस भावका स्वामी एवं कारक ग्रह बुध है। शुक्र यहाँ नीच फल देता है। शरीरकी गर्मी या रूखापन एवं दूरदर्शिता इसी भावसे देखी जाती है, क्योंकि बुध त्वचा एवं बुद्धि दोनोंका प्रतिनिधित्व करता है। बुध ग्रहके कारण इसे व्यापारका भाव भी माना जाता है। यह भाव अपमान, अवनति एवं भाग्यकी गिरावटको दिखाता है, इसके अतिरिक्त इस भावसे विपरीत राजयोग, चोटका योग, चोरीका योग, हिंसात्मक प्रवृत्ति, मामाके सम्बन्धमें विरोध एवं विशेष कष्टको जाना जा सकता है।

सप्तम भाव

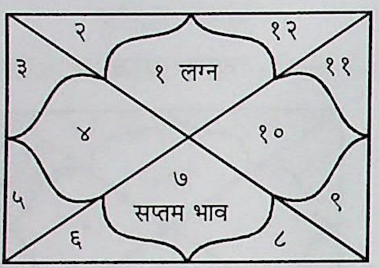

कुण्डली-कालपुरुष

यदि मनुष्यमें वीर्यशक्ति तथा दूसरोंसे मिलकर चलनेकी इच्छाशक्ति न हो तो भी वह संसारमें असफल समझा जायगा। अत: जीवनसाथी, भागीदार, वीर्य आदिका विचार सप्तम भावसे किया जाता है। कालपुरुषकी कुण्डलीके अनुसार सप्तम भावमें तुलाराशि पड़ती है, अत: शुक्र ग्रह इस भावका स्वामी एवं कारक भी है। व्यापारिक भागीदारीके कारण बुध ग्रह भी इस भावका कारक होता है। इस भावमें शनि ग्रह उच्च फल देता है एवं सूर्य ग्रह नीच फल देता है। इस भावको मैदानी संसार कहा जाता है; क्योंकि यह जीवनका वह क्षेत्र होता है, जिसमें काम एवं सम्पत्तिके बारेमें जातक संघर्ष करता है। इस भावसे जातकके जन्म-समयके स्थानके बारेमें जाना जा सकता है। यह भाव विशेष तौरपर पत्नीका कारक (स्त्रीकी कुण्डलीमें पतिका कारक) है। पुत्री, पौत्री एवं बहनका सम्बन्ध भी इसी भावसे देखा जाता है। जातकके विवाह कितने होंगे, यह भी जानकारी इस भावसे मिलती है। इस भावका सम्बन्ध दूरदर्शितासे है। पूर्वजन्मके भाग्यका कितना अंश हम इस जन्ममें लेकर आये हैं, यह सातवें भावमें उपस्थित ग्रहके शुभ-अशुभ होनेसे पता चलता है। इसके अतिरिक्त यह भाव वैवाहिक सुख, समृद्ध घरानेमें विवाह, बहुविवाह, प्रेमविवाह, तलाक, विवाहसमय, कामातुरता एवं मारकेशको भी दर्शाता है।

अष्टम भाव

मनुष्यके उपर्युक्त सभी गुण और मोक्षप्राप्तिकी साधनाएँ निष्फल हो जायँगी, यदि वह दीर्घायु न हो, अत: आयुका विचार अष्टम भावसे किया जाता है। यह भाव जातकके जीवनमें आनेवाले अशुभ हालात तथा

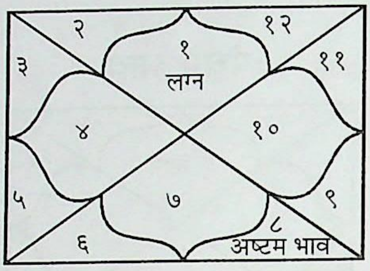

कुण्डली-कालपुरुष

मुसीबतोंको दर्शाता है। अष्टम भावसे जातककी आयुका पता चलता है। इस भावको संन्यास-अवस्थाका भाव भी कहा गया है; क्योंकि इसका कारक शनिग्रह होता है। कालपुरुषकी कुण्डलीके अनुसार अष्टम भावमें वृश्चिक राशि पड़ती है, जिसका स्वामी मंगल है, अत: मंगल भी इस भावमें कारक माना जाता है। जातकका मकान अच्छी या बुरी किस जगहपर होगा—यह इस भावसे पता चलता है। रोगोंमें पूर्वजन्मके, इस जन्मके, रोगका आरम्भ, रोगवृद्धि आदि इस भावसे जाना जाता है। इस भावसे यह पता चलता है कि जातककी मृत्यु किस प्रकारसे होगी। विपरीत राजयोग एवं प्रचुर धन-सम्पदा (गड़ा हुआ धन) आदि भी इस भावसे सम्बन्ध रखते हैं। अष्टम भाव गूढ़ अन्वेषणवाला भाव है; क्योंकि खतरोंमें पड़कर ही खोज एवं आविष्कार होते हैं। अष्टम भावसे पत्नी या पतिकी वाणीका पता भी चलता है। इसके अतिरिक्त विदेशयात्रा, आत्मघात आदिका पता भी इस भावसे चलता है।

नवम भाव

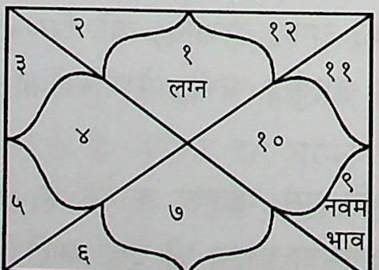

कुण्डली-कालपुरुष

शास्त्रोंमें आयुको धर्मकी देन माना गया है। अत: नैतिक जीवन तथा आध्यात्मिक उन्नति ही दीर्घजीवनका मूल है, अत: विकास-क्रममें नवम स्थान धर्मको दिया

गया है। नवम भाव जातकका भाग्य है, इस भावकी शुभ स्थिति जातकके सम्पूर्ण भाग्य (जीवन)-का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है। नवम भाव परोपकार करनेकी क्षमताका कारक है। यदि यह भाव अशुभ हो तो जातककी आयुका एक बड़ा हिस्सा बेकार चला जाता है; क्योंकि यह भाव जीवन-संघर्ष एवं व्यस्तताका भाव भी है। जातककी जाग्रत्-अवस्था एवं इच्छाशक्तिको भी यह भाव दर्शाता है। इस भावका कारक बृहस्पति है। कालपुरुषकी कुण्डलीके अनुसार नवम भावमें धनुराशि पड़ती है, जिसका स्वामी बृहस्पति है। यह भाव घरके उस हिस्सेसे सम्बन्ध रखता है, जहाँ बैठकर धर्मकार्य होता है अर्थात् पूजास्थल। यह भाव बुजुर्ग लोगों (घरके एवं बाहरके सभी)-से सम्बन्धित है। यदि अशुभ स्थिति हो तो बुजुर्ग नाराज रहते हैं। जातकके उसके पितासे सम्बन्ध, लाभ एवं आर्थिक स्थिति (पिताकी)-का पता चलता है। इस भावसे जातकको वैद्य (डॉक्टर), उपचार किस स्तरका मिलेगा—यह भावकी शुभाशुभ स्थितिपर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त राज्य-उपभोगका योग, प्रभुकृपा, राजयोग, लम्बी यात्रा (देशमें), पैसा, दूसरी पत्नी एवं उससे पुत्रप्राप्ति (चूँकि पंचम भावसे पाँचवाँ भाव, नवम भाव पड़ता है, यदि यह बलवान् हो तो अवश्य पुत्र-सुख मिलेगा) आदि भी इस भावसे देखे जाते हैं।

दशम भाव

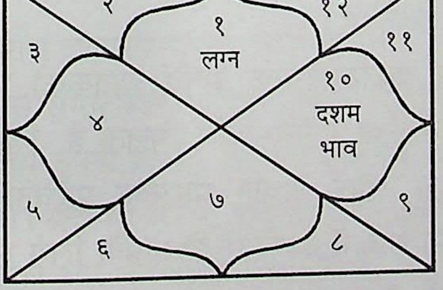

कुण्डली-कालपुरुष

निःस्वार्थ जीवन-शैली तथा परोपकारमय कर्मोंके बिना धर्म टिक नहीं सकता, अतः कुण्डली विकास-क्रममें 'कर्म' का स्थान दसवाँ रखा गया है। दसवाँ भाव जातकके कर्मक्षेत्रको प्रदर्शित करता है, इसका सम्बन्ध राज्य, व्यापार एवं नौकरीमें कैसे लोगोंसे सामना होगा एवं उनके साथ कैसे सम्बन्ध होंगे—इन बातोंको बताता है। दशमभाव शुभ कर्मोंके साथ जीविकाका भाव भी है; क्योंकि दशम भाव केन्द्र (१, ४, ७, १० भाव)-में होनेके कारण उसका प्रभाव लग्नपर पड़ता है; क्योंकि लग्न आजीविका बतलाता है, अतः लग्नपर पाये गये प्रभावद्वारा आजीविकाकी सिद्धि दशम भावके ग्रहोंद्वारा युक्तियुक्त है। इस भावके शुभ होनेसे व्यावसायिक क्षेत्रमें सफलता आसानीसे मिलती है। पिताकी आर्थिक स्थितिका पता दशम भावसे चलता है। कालपुरुषकी कुण्डलीके अनुसार दशम भावमें मकर राशि पड़ती है, जिसका स्वामी शनि है, मंगल ग्रह इसमें उच्च फल देता है एवं बृहस्पति ग्रह नीच फल देता है। सूर्य इस भावका कारक ग्रह है। शरीरके बारेमें यह भाव स्वास्थ्यसे सम्बन्ध रखता है। इस भावसे श्वासरोग एवं खाँसीका पता चलता है। जातकको कितना यश मिलेगा, कितना अपयश—यह भाव बतलाता है। जातक (मानसिक अवस्था)-के कर्मोंमें होशियारी, चालाकी एवं दूसरोंको धोखा देने अर्थात् शुभाशुभ कर्मोंका पता भी इस भावसे चलता है। इसके अतिरिक्त इस भावसे साम्राज्ययोग, जीवनकी ऊँचाई, राज्यकृपा एवं शुभ-कर्म भी देखे जाते हैं।

एकादश भाव

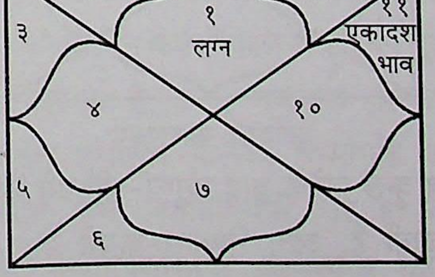

कुण्डली-कालपुरुष

शुभ एवं यज्ञीय कर्मोंका एक निष्ठाकी हदतक पहुँचना, जहाँ शुभता स्वाभाविक तथा पूर्णतया प्राप्त हो

जाय, एकादश स्थान अथवा प्राप्तिस्थानका कार्य है। इस प्रकार कुण्डली विकास-क्रममें एकादशभावको प्राप्तिस्थानकी संज्ञा दी गयी है। प्राप्ति, आय, आमदनी आदि सब अलग-अलग शब्द हैं, परंतु अर्थ एक ही है। इस भावको अवसर (Opportunity) भी कहते हैं। यदि यह भाव शुभ हो तो जातक जीवनमें (शुभ) अवसर हमेशा प्राप्त करता है। एकादश भाव किस्मतकी ऊँचाईका कारक है। जातक अपने जीवनमें किस बुलन्दीपर पहुँच सकता है—यह भाव बतलाता है। एकादश भाव लालचका भी प्रतीक है। जातक दूसरोंकी परवाह किये बिना किस सीमातक अपना लाभ कर सकता है—यह भाव दर्शाता है। कालपुरुषकी कुण्डलीके अनुसार एकादशभावमें कुम्भराशि पड़ती है, जिसका स्वामी ग्रह शनि है एवं कारक ग्रह बृहस्पति है। कुछ सीमातक शनि भी कारक है। शरीरकी सक्रियताको भी यह भाव दर्शाता है। रिश्तोंमें यह बड़े भाई-बहनोंका कारक है, शरीरमें यह बायें हाथको दर्शाता है। इसके अतिरिक्त एकादश भावसे ससुरालसे धनप्राप्ति, बड़े भाईकी स्थिति, हवाई यात्रा, हिंसक प्रवृत्ति, चोटके योग, माता तथा बहनोंके सुखमें कमी, बाहुल्यता, राज्यका अर्थ तथा गृहकी मूल्यवृद्धिका भी पता चलता है।

द्वादश भाव

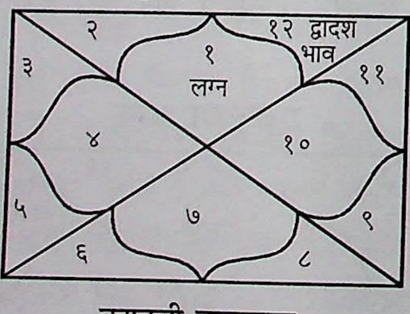

कुण्डली-कालपुरुष

सब कुछ पानेके बाद मनुष्य-जीवनमें मोक्ष-प्राप्ति ही रह जाती है, अतः विकास-क्रममें मोक्ष-प्राप्तिको द्वादश स्थान दिया जाता है। द्वादश स्थानको भोग-स्थान एवं व्यय-स्थानकी संज्ञा भी दी जाती है। द्वादश स्थान भोग-स्थान है, अतः जातक अपनी पति/पत्नीसे कितना सुख पायेगा यह भाव दर्शाता है। कालपुरुषकी कुण्डलीके अनुसार द्वादश भावमें मीनराशि पड़ती है, जिसका स्वामी बृहस्पति है। बुध यहाँपर नीच फल देता है एवं शुक्र उच्च फल देता है। शुक्रके उच्च फल देनेके कारण ही यह स्थान भोग-विलाससे सम्बन्ध रखता है; क्योंकि शुक्र भोग-विलासप्रिय ग्रह है। कालपुरुषकी कुण्डलीमें द्वादश स्थान पाँव (पैरों)-को दर्शाता है। जातककी बायीं आँखकी स्थितिका पता भी इसी भावसे चलता है। इस भावसे जातकके सोने एवं स्वप्न देखनेका सम्बन्ध है। घरका अन्दरूनी हिस्सा कैसा होगा, यह पता चलता है, शुभ ग्रह हो तो चहल-पहलवाला घर, अशुभ ग्रह हो तो वीराने-जैसा घर दर्शाता है। यह भाव पड़ोसकी हालतको दर्शाता है, यदि शुभ हो तो पास-पड़ोस अच्छा (आर्थिक रूपसे), अशुभ हो तो विपरीत स्थिति होगी। द्वादश भाव जातकके दिमागमें उत्पन्न होनेवाले उन विचारोंसे सम्बन्धित होता है, जो स्वयंकी सोचसे नहीं, अपितु माहौलसे उत्पन्न होते हैं, अतः इस भावको आशीर्वाद एवं शापका घर भी कहते हैं। शरीरमें यह वातरोगका कारक है। रात्रिके समय (शयन) जातक कितना आराम पायेगा—यह द्वादश भाव बतलाता है एवं पड़ोसीसे व्यवहारको भी इस भावसे जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त दृष्टिहानि, शुक्रकी स्थितिसे धनयोग, पैरोंमें चोट, जलसे हानि, गुणोंका अतिव्यय, जीवनसाथीका अन्यत्र लगाव एवं मोक्ष भी द्वादश भावसे सम्बन्ध रखते हैं।

इस प्रकार जन्मके समय जातकको प्रभुकृपासे प्राप्त सर्वोत्कृष्ट मनुष्य-शरीर मिलता है, जिसके द्वारा वह द्वादश स्थान अर्थात् मोक्षतक पहुँचता है, इस जीवनरूपी यात्रामें उत्तरोत्तर विकासके लिये जिन-जिन वस्तुओंकी मनुष्यको आवश्यकता पड़ती है, वे सब बीचवाले अर्थात् दोसे ग्यारहतकके भावोंसे दर्शायी गयी हैं। इस प्रकार कुण्डलीके द्वादश भावोंसे पूर्वजन्म, इस जन्म तथा भावी स्थितिके बारेमें विचार होता है।

फलित ज्योतिषमें भाव-विचार

(प्रो० श्रीसुरेशचन्द्रजी पाण्डे)

लग्नस्थानका निर्धारण करना ज्योतिषीका महत्त्वपूर्ण कार्य है; क्योंकि कुण्डलीमें लग्नस्थान एवं भाग्यस्थान विशेष स्थान रखते हैं। **'राशीनामुदयो लग्नम्'** के अनुसार राशियोंका उदय लग्न है तथा नक्षत्र-समूह राशि हैं। सूर्योदयके समय सूर्य जिस राशिमें होगा, उस समय उसी राशिका लग्न होगा। जातकके जन्मके समय पूर्व क्षितिजपर उदित राशि ही लग्न कही जाती है। सूर्यकी संक्रान्ति प्राय: अँगरेजी महीनोंकी पन्द्रह तारीखसे होती है। भारतीय कैलेण्डरके समायोजनहेतु प्रत्येक तीन वर्षपर एक अधिकमास होता है, जिसे मलमास या पुरुषोत्तममास कहा जाता है। अँगरेजी कैलेण्डर ठीक करनेके लिये चारसे पूर्णतया विभक्त होनेवाले वर्षमें फरवरी २९ दिनकी होती है। शताब्दीवर्षमें चालीससे विभक्त होनेपर फरवरी २९ दिन की होगी। सूर्यका रथ मकरसंक्रान्तिपर अँगरेजी अक्षर 'U' के आकारमें उत्तरकी ओर घूमता है। इस तथ्य का उल्लेख महाकवि कालिदासने भी रघुवंश महाकाव्यके नवम सर्गमें किया है—

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं
रथयुजा परिवर्तितवाहनः।
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहै-
र्विमलयन्मलयं नगमत्यजत्॥

(रघुवंश ९। २५)

महाराज दशरथके मृगया-वर्णनका प्रसंग है। अर्थात् सूर्य भी उस समय उत्तर दिशाकी ओर घूम जाना चाहते थे, इसीलिये उनके सारथि अरुणने घोड़ोंकी रास उधर ही मोड़ दी। सर्दी दूर करके, प्रात:कालका पाला हटाकर मलयपर्वतको और भी अधिक चमकाते हुए सूर्यने उससे विदा ली।

महर्षि चरकने प्राणैषणा, धनैषणा और परलोकैषणाको जीवनमें प्रमुख माना है। जो लोग परलोक एवं कर्मसिद्धान्तको मानते हैं, वे लोग फलित ज्योतिषको भी मानते हैं। परलोक प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाणोंसे ज्ञेय नहीं है, यह आगम प्रमाणसे ज्ञेय है। परलोकके विषयमें व्यक्तिको यावज्जीवन संशय बना रहता है। चरकने कहा है—**'इतश्च्युता भविष्यामः न वा'** अर्थात् इस जीवनके बाद हम रहेंगे कि नहीं इस संशयके होते हुए भी बुद्धिमान्‌को नास्तिक्य बुद्धि और संशयका त्याग करना चाहिये। आस्तिकको ज्योतिषशास्त्रपर विश्वास करना चाहिये। परलोकको न माननेके कारण ही चार्वाक फलित ज्योतिषको नहीं मानते।

जन्मकुण्डलीमें तृतीय स्थान पराक्रमका माना जाता है। पराक्रमका व्यय स्थान होनेसे द्वितीय स्थान मारक स्थान है। अष्टम स्थान आयुका स्थान है। आयुका व्यय स्थान सप्तम भाव है, अत: सप्तम भावको भी मारक कहा जाता है। पराक्रम अथवा आयुका आत्यन्तिक नाश ही मृत्यु है। एकादश स्थानमें सभी ग्रह अच्छे होते हैं। द्वादश भावमें केवल शुक्र अथवा केतु अच्छा माना गया है। द्वादश भावका केतु वृद्धावस्थामें विरक्ति देता है। कुण्डलीको मानें या न मानें कर्मफल तो भोगना ही पड़ता है। पंचांगोंमें भिन्नताके कारण लोगोंके मनमें उत्पन्न भ्रमको दूर करनेके लिये सभी मान्य ज्योतिषियोंको मिलकर पंचांगोंके स्वरूपमें एकरूपता लानी चाहिये। ज्योतिषके अध्येताओंको अधिक-से-अधिक कुण्डलियोंसे आँकड़े एकत्रकर सांख्यकीय आधारपर गणनाद्वारा निष्कर्ष निकालने चाहिये। पूर्वजन्मका खाका ही जन्मांग है, किंतु पूर्वजन्म अनन्त होनेसे उनके मिश्रित शुभाशुभ फलको जन्मांगके आधारपर बतानेमें कभी-कभी ज्योतिषियोंसे त्रुटि हो जाती है, अत: इससे ज्योतिषशास्त्रपर अविश्वास नहीं करना चाहिये।

जन्मांगमें द्वादश स्थान नियत किये गये हैं, किंतु भावोंका फलकथनहेतु सर्वप्रथम ग्रह-स्पष्टके साथ भाव

स्पष्ट कर लेना चाहिये। भावादि स्पष्टके पश्चात् चलित कुण्डलीका निर्माण करना चाहिये, इससे भावों एवं ग्रहोंके सम्बन्धमें फलादेश अधिक सूक्ष्मतासे जाना जा सकता है, जैसा कि किसी आचार्यका भी मत है—

भावप्रवृत्तौ हि फलप्रवृत्तिः
पूर्णं फलं भावसमांशकेषु।
ह्रासः क्रमाद् भावविरामकाले
फलस्य नाशः कथितो मुनीन्द्रैः॥

तनु, धन, सहज, सुहृद्, सुत, रिपु, जाया, आयु, भाग्य, कर्म, आय, एवं व्यय—ये क्रमशः बारह भावों के नाम हैं। द्वादश भावोंको स्पष्ट करके प्रत्येक भावसे सम्बन्धित सन्धिका मान अवश्य जान लेना चाहिये। यदि स्पष्ट ग्रह सन्धिसे कम हो तो पूर्वभावके फलको तथा यदि सन्धिसे अधिक हो तो उत्तरवर्ती भावफलको देता है। इसी तरह भाव अंशादिके समान जो ग्रह होता है, वही ग्रह भावोत्पन्न पूर्णफलको देता है। यदि भावके आगे-पीछे ग्रह हो तो त्रैराशिक प्रक्रियाद्वारा फल विचार करना चाहिये। किसी भावकी पूर्वतः सन्धिको आरम्भ सन्धि तथा आगामी सन्धिको विराम-सन्धि कहते हैं। यदि सन्धिके समान ही ग्रहके अंशादि हों तो ग्रह निष्फल हो जाता है। यदि आरम्भ सन्धिसे ग्रह कम हो तो पूर्वभावका फल या विराम-सन्धिसे अधिक ग्रहका अंशादि हो तो अगले भावका फल देता है।

भावोंको फलित ज्योतिषमें विशेष नामोंसे भी रेखांकित किया जाता है। प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशमको केन्द्रस्थान कहते हैं, इसीको कण्टक तथा चतुष्टय भी कहा गया है। लग्न अर्थात् प्रथम भावको उदय स्थान, चतुर्थ स्थानको पाताल, सप्तमको अस्त तथा दशमको आकाश भी कहा गया है। पंचम एवं नवम भावोंको त्रिकोण कहा जाता है। त्रिकोणके अन्तर्गत लग्न भी ग्रहीत है। द्वितीय, पंचम, अष्टम एवं एकादश भावोंको पणफर तथा तृतीय, षष्ठ, नवम तथा द्वादश स्थानको आपोक्लिम कहा गया है। तृतीय, षष्ठ, दशम एवं एकादश भावोंकी उपचय संज्ञा तथा शेष भावोंकी अनुपचय संज्ञा होती है। षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश स्थानको त्रिक् स्थान कहा गया है, जबकि तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भावोंको त्रिषडाय कहा गया है। तृतीय स्थानको दुश्चिक्य, चतुर्थको हिंबुक, सप्तमको जामित्र, नवमको तप तथा दशम स्थानको मेषूरण भी कहा गया है। केन्द्रको विष्णु तथा त्रिकोणको लक्ष्मी भी कहा गया है।

जन्मांगमें प्रत्येक भाव महत्त्वपूर्ण होता है। इन्हीं द्वादश भावोंमें स्थित राशियाँ एवं ग्रह अपना अशुभ अथवा शुभ फल देते हैं। प्रत्येक भावसे क्या-क्या विचार करना चाहिये कहा जा रहा है—

प्रथम भावसे जातककी शारीरिक स्थिति, स्वास्थ्य, रूप, वर्ण, चिह्न, जाति, स्वभाव, गुण, आकृति, सुख, दुःख, सिर, पितामह तथा शील आदिका विचार करना चाहिये।

द्वितीय भावसे धनसंग्रह, पारिवारिक स्थिति, उच्च विद्या, खाद्य-पदार्थ, वस्त्र, मुखस्थान, दाहिनी आँख, वाणी, अर्जित धन तथा स्वर्णादि धातुओंका विचार होता है।

तृतीय भावसे पराक्रम, छोटे भाई-बहनोंका सुख, नौकर-चाकर, साहस, शौर्य, धैर्य, चाचा, मामा तथा दाहिने कानका विचार करना चाहिये।

चतुर्थ भावसे माता, स्थायी सम्पत्ति, भूमि, भवन, वाहन, पशु आदिका सुख, मित्रोंकी स्थिति, वापी-कूप-तडागादिकी स्थिति, श्वसुर तथा हृदय-स्थानका विचार करना चाहिये।

पंचम भावसे विद्या, बुद्धि, नीति, गर्भस्थिति, सन्तान, गुप्तमन्त्रणा, मन्त्रसिद्धि, विचार-शक्ति, लेखन, प्रबन्धात्मक योग्यता, पूर्वजन्मका ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान, प्रेम-सम्बन्ध, इच्छाशक्ति तथा उदरस्थान आदिका

विचार करना चाहिये।

षष्ठ भावसे शत्रु, रोग, ऋण, चोरी अथवा दुर्घटना, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभादि विकार, अपयश, मामाकी स्थिति, मौसी, पापकर्म, गुदा स्थान तथा कमर-सम्बन्धी रोगोंका विचार करना चाहिये।

सप्तम भावसे स्त्री एवं विवाह-सुख, स्त्रियोंकी कुण्डलीमें पतिका विचार, वैवाहिक सुख, साझेदारीके कार्य, व्यापारमें हानि, लाभ, वाद-विवाद, मुकदमा, कलह, प्रवास, छोटे भाई-बहनोंकी सन्तानें, यात्रा तथा जननेन्द्रिय-सम्बन्धी गुप्त रोगोंका विचार करना चाहिये।

अष्टम भावसे मृत्यु तथा मृत्युके कारण, आयु, गुप्तधनकी प्राप्ति, विघ्न, नदी अथवा समुद्रकी यात्राएँ, पूर्वजन्मोंकी स्मृति, मृत्युके बादकी स्थिति, ससुरालसे धनादि प्राप्त होनेकी स्थिति, दुर्घटना, पिताके बड़े भाई तथा गुदा अथवा अण्डकोश-सम्बन्धी गुप्तरोगोंका विचार करना चाहिये।

नवम भावसे धर्म, दान, पुण्य, भाग्य, तीर्थयात्रा, विदेश-यात्रा, उत्तम विद्या, पौत्र, छोटा बहनोई, मानसिक वृत्ति, मरणोत्तर जीवनका ज्ञान, मन्दिर, गुरु, यश तथा जंघे आदिका विचार करना चाहिये।

दशम भावसे पिता, कर्म, अधिकारकी प्राप्ति, राज्य-प्रतिष्ठा, पदोन्नति, नौकरी, व्यापार, विदेश-यात्रा, जीविकाका साधन, कार्यसिद्धि, नेता, सास, आकाशीय स्थिति एवं घुटनोंका विचार करना चाहिये।

एकादश भावसे आय, बड़ा भाई, मित्र, दामाद, पुत्रवधू, ऐश्वर्य-सम्पत्ति, वाहनादिके सुख, पारिवारिक सुख, गुप्तधन, दाहिना कान, मांगलिक कार्य, भौतिक पदार्थ, द्वितीय पत्नी तथा पैरका विचार करना चाहिये।

द्वादश भावसे धनहानि, खर्च, दण्ड, व्यसन, शत्रुपक्षसे हानि, बायाँ नेत्र, अपव्यय, गुप्तसम्बन्ध, शय्यासुख, दुःख, पीड़ा, बन्धन, कारागार, मरणोपरान्त जीवकी गति, मुक्ति, षड्यन्त्र, धोखा, राजकीय संकट तथा पैरके तलुएका विचार करना चाहिये।

भाव एवं भावेश ग्रहोंके अतिरिक्त भावोंके कारकत्वादिका भी विशेषरूपसे विचार करना चाहिये, कारण कि किसी भावका पूर्णफल तभी होता है, जब भाव, भावेश तथा कारकादि ग्रह बली होते हैं। भावोंके कारक ग्रह इस प्रकार हैं—

प्रथम भावका कारक ग्रह सूर्य, द्वितीयका गुरु, तृतीयका मंगल, चतुर्थका चन्द्रमा, पंचमका गुरु, छठेका मंगल, सातवेंका शुक्र, आठवेंका शनि, नवेंका सूर्य, दशमका सूर्य अथवा बुध, एकादशका गुरु तथा द्वादशभावका कारक ग्रह शनि माना गया है। ज्योतिर्विदोंके अनुसार सूर्यसे नवम भावमें पापग्रह पिताको, चन्द्रमासे चतुर्थ पापग्रह माताको, मंगलसे तृतीय भावमें पापग्रह भाईको, बुधसे चतुर्थ पापग्रह मामाको, गुरुसे पंचम पापग्रह पुत्रादिको, शुक्रसे सप्तम पापग्रह स्त्रीको तथा शनिसे अष्टम भावमें पापग्रह हों तो स्वयं जातकके लिये अरिष्ट करते हैं।

भाव एवं भावेशके कुछ विशेष फल पाराशरादि ऋषियोंद्वारा कहे गये हैं। जो इस प्रकार हैं—

जो भाव अपने स्वामी ग्रह अथवा शुभ ग्रहसे युत अथवा दृष्ट हो, उस भावकी वृद्धि तथा जो भाव अपने स्वामी ग्रहसे युत या दृष्ट न हो तथा पापग्रहसे युत या दृष्ट हो, उस भावसम्बन्धी फलकी हानि जाननी चाहिये—

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा
सौम्यैर्वा तस्य तस्याभिवृद्धिः।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिः
निर्देष्टव्या पृच्छतो जन्मतो वा॥

त्रिकोणस्थानोंके स्वामी ग्रह चाहे शुभ हों अथवा पाप सदैव शुभफल देनेवाले होते हैं।

केन्द्रस्थानके स्वामी ग्रह यदि क्रूर या पाप ग्रह हों तो शुभफल, किंतु यदि केन्द्र स्वामी ग्रह शुभ हों तो फल अशुभ देते हैं।

केन्द्रस्थानोंमें लग्नसे अधिक प्रभाव चतुर्थका, चतुर्थसे सप्तमका, सप्तमसे अधिक दशमका प्रभाव होता है। यही बात त्रिकोणसे सम्बन्धमें भी जाननी चाहिये अर्थात् लग्नसे अधिक पंचम, पंचमसे भी अधिक बलवान् नवमको जानना चाहिये। लग्न अथवा लग्नेशके बली होनेसे अन्य अनेक दोष स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं। अष्टमेशके सम्बन्धमें कहा गया है कि यदि अष्टमेश शुभग्रह हो तो शुभफल तथा क्रूर या पापग्रह होनेसे अशुभ फल देता है। सूर्य और चन्द्रमाको अष्टमेश होनेका दोष नहीं लगता। लग्नेश तथा अष्टमेश यदि एक ही ग्रह हो तो अशुभ फल नहीं देता, वह चाहे पापग्रह हो अथवा शुभग्रह। अष्टमेश यदि त्रिकोणेश अर्थात् पंचमेश अथवा नवमेश भी हो (जैसे सिंह लग्नके लिये गुरु पंचमेश एवं अष्टमेश दोनों हैं तथा मिथुन लग्नके लिये शनि अष्टमेश एवं नवमेश दोनों हैं) तो अष्टमेशका अशुभ फल समाप्त हो जाता है। त्रिषडायके स्वामी ग्रह अर्थात् तृतीय, षष्ठ एवं आयभावके स्वामी ग्रह सदैव अशुभ फल देते हैं, किंतु यदि ये ग्रह त्रिकोणके स्वामी भी हो जायँ तो भावफल मिश्रित अर्थात् शुभाशुभ हो जाता है। केन्द्रेशके शुभफलका परिणाम प्रायः परिश्रम करनेके पश्चात् ही मिलता है, जबकि लग्नेश एवं त्रिकोणेशका शुभफल बिना परिश्रम किये हुए ही अकस्मात् प्राप्त हो जाता है। त्रिक अर्थात् षष्ठ, अष्टम एवं द्वादशके स्वामी त्रिक अर्थात् उन्हीं भावोंमें बैठे हों तो शुभफल होता है, अन्यथा त्रिकेश जिस भावमें बैठें, उस भावकी हानि करते हैं तथा जिस भावका स्वामी त्रिक भावमें बैठा हो, उस भावकी भी हानि जाननी चाहिये।

सामान्यतः इन तथ्योंको ध्यानमें रखकर कुण्डलीमें ग्रहों, भावों एवं भावेश ग्रहोंका विश्लेषण करते हुए फलादेश प्रायः सत्य घटित होते हैं। [ज्योतिर्विज्ञानविमर्श]

विभिन्न भावोंमें सूर्य-स्थितिके फल

(डॉ० श्रीकामेश्वरजी उपाध्याय)

सूर्य सौर-मण्डलके प्रधान ग्रह हैं। इनकी दिव्य रश्मियाँ सभी जीव-जन्तुओंको प्रभावित करती हैं। सूर्य ऊर्जाके अक्षय कोश एवं सत्यके प्रतीक हैं—शक्तिकी अमरनिधि हैं। इनकी आकृति, प्रकृति और ऊर्जा-शक्ति सभी प्राणियोंपर अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा अत्यधिक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसीलिये फलित-ज्योतिषमें सूर्यका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

फलित-ज्यौतिषमें द्वादश भावोंकी कल्पना की गयी है। ये द्वादश भाव ग्रहोंके गृह भी कहे जाते हैं। इन द्वादश स्थानोंमें रश्मियाँ स्थित रहती हैं। इन भावों और ग्रह-संयोगके द्वारा जातकके जन्मजात वातावरणोत्पन्न कर्म एवं कर्तव्यपथका विचार किया जाता है। ये स्थान भविष्यके निर्देशक हैं। प्रवेशका कार्यक्रम इन्हीं भावोंद्वारा सम्पादित किया जाता है—चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो। ये भाव क्रमसे निम्नलिखित हैं—

देहं द्रव्यपराक्रमौ सुखसुतौ शत्रुः कलत्रं मृति-
भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदितौ लाभव्ययौ लग्नतः।
भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मतं देहिनां
तस्मादेव शुभाशुभाख्यफलजः कार्यो बुधैर्निर्णयः॥

(जातकालंकार १।५)

इसीको प्रकारान्तरसे लिखते हैं—

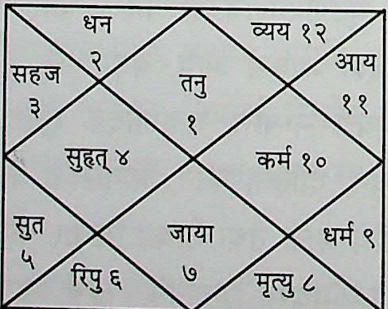

इन द्वादश भावोंमें सूर्यकी सत्ता विभिन्न परिस्थितियोंकी जन्मदात्री है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि द्वादश भावोंमें सूर्यका विद्यमान होना भिन्न-भिन्न प्रकारसे

लोगोंको प्रभावित कर सकता है। इन द्वादश भावोंका क्रमसे अध्ययनकर प्राचीन आचार्यगण विभिन्न परिणामोंतक पहुँचे हैं, जो अत्यधिक सीमातक सत्य उतरते हैं। उदाहरणार्थ द्वादश भावोंका फलकथन आवश्यक है।

(१) जिस जातकके तनुभावमें सूर्य स्थित हो, वह समुन्नतकाय, आलसी, क्रोधी, उग्र स्वभाववाला, पर्यटक, कामी, नेत्ररोगसे पीड़ित एवं रुक्षकाय होता है। यथा—

तनुस्थो रविस्तुङ्गयष्टिं विधत्ते
मनः सन्तपेद्दारदायादवर्गात्।
वपुः पीड्यते वातपित्तेन नित्यं
स वै पर्यटन् ह्रासवृद्धिं प्रयाति॥

(चमत्कारचिन्तामणि)

लग्नेऽर्केऽल्पकचः क्रियालसतनुः क्रोधी प्रचण्डोन्नतः
कामी लोचनरुक्सुकर्कशतनुः शूरः क्षमी निर्घृणः।

(जातकाभरण)

(२) धनभावमें स्थित सूर्य जातकको भाग्यशाली होनेकी सूचना देते हैं। धनभावमें स्थित सूर्यकी मैत्री धनेशसे हो तो जातक निश्चय ही धनवान् होगा। उस जातकको पशु-सुख भी उत्तम रहेगा। पुत्र-पौत्रादिके भी सुख उसे अनायास प्राप्त होते रहेंगे। कतिपय आचार्योंके अनुसार वह जातक वाहनहीन रहेगा—

धने यस्य भानुः स भाग्याधिकः स्या-
च्चतुष्पात्सुखं सद्व्यये स्वं च याति।
कुटुम्बे कलिर्जायया जायतेऽपि
क्रिया निष्फला याति लाभस्य हेतोः॥

(चमत्कारचिन्तामणि)

(३) सहजभावमें स्थित अर्क सभी प्रकारके सुखोंके दाता होते हैं—

प्रियंवदः स्याद्धनवाहनाढ्यः
सुकर्मचित्तोऽनुचरान्वितश्च ।
मितानुजः स्यान्मनुजो बलीयान्
दिनाधिनाथे सहजेऽधिसंस्थे॥

(जातकाभरण)

अन्य आचार्योंके अनुसार वह (जातक) अतीव शौर्यशाली एवं यशस्वी होता है।

(४) मित्रभावमें स्थित दिनकर जातकके मैत्रीको भंग करनेवाले होते हैं। जातक स्थायी रूपमें एक स्थानपर स्थित नहीं रह सकता—

तुरीये दिनेशेऽतिशोभाधिकारी
जनः संल्लभेद्विग्रहं बन्धुतोऽपि।
प्रवासी विपक्षाहवे मानभङ्गं
कदाचिन्न शान्तं भवेत्तस्य चेतः॥

(चमत्कारचिन्तामणि)

(५) सुतभावमें विद्यमान सूर्य मनुष्यको बुद्धिमान् एवं धनिक बनाते हैं। श्रीनारायण दैवज्ञके अनुसार जिसके पंचम भावमें सूर्य होते हैं, वह जातक हृदयरोगसे मरता है—

सुतस्थानगे पूर्वजापत्यतापी
कुशाग्रा मतिर्भास्करे मन्त्रविद्या।
रतिर्वञ्चने सञ्चकोऽपि प्रमादी
मृतिः क्रोडरोगादिजा भावनीया॥

(चमत्कारचिन्तामणि)

(६) जिसके रिपु (छठे) भावमें दिवाकर रहते हैं, वह व्यक्ति रिपुध्वंसक होता है—प्रायः सभी आचार्योंकी ऐसी सम्मति है। षष्ठ भाव (रिपुभाव)-में स्थित सूर्य उत्तम जीविकाप्रदायक भी होते हैं—

शश्वत्सौख्येनान्वितः शत्रुहन्ता
सत्त्वोपेतश्चारुयानो महौजाः।
पृथ्वीभर्तुः स्यादमात्यो हि मर्त्यः
शत्रुक्षेत्रे मित्रसंस्था यदि स्यात्॥

(जातकाभरण)

(७) जिस जातकके जाया (सप्तम) भावमें सूर्य होते हैं, वह व्यक्ति व्याधियोंसे संयुक्त, चिड़चिड़े स्वभावका होता है। अनेक दैवज्ञोंके अनुसार सप्तमस्थ सूर्य स्त्रीक्लेशकारक भी होते हैं—

द्युनाथो यदा द्यूनयातो नरस्य
प्रियातापनं पिण्डपीडा च चिन्ता।
भवेत्तुच्छलब्धिः क्रये विक्रयेऽपि
प्रतिस्पर्धया नैति निद्रां कदाचित्॥

(चमत्कारचिन्तामणि)

यदि किसी स्त्रीकी कुण्डलीमें सूर्य सप्तमस्थ हों तो वह कुलटा एवं परपतिगामिनी होती है।

(८) मृत्युभावमें स्थित सूर्य जातकको अनेक प्रकारके विघ्न-बाधाओंसे क्लान्त रखते हैं। जो कुछ भी हो अष्टमस्थ सूर्य हानिकारक एवं तुच्छ फलदायक ही होते हैं।

(९) धर्मस्थानमें स्थित सूर्य जातकको कुशाग्रबुद्धि बनाते हैं, किंतु व्यक्ति दुराग्रही, कुतार्किक और नास्तिक भी हो सकता है। नवमस्थ सूर्य जातकके अन्तःपुरमें कलहके उद्रेककर्ता भी होते हैं।

(१०) दशमभावमें स्थित सूर्य जातकको उच्च आश्रय प्रदान करते हैं। पारिवारिक असुविधा भी यदा-कदा प्राप्त हो सकती है, लेकिन जातक लक्ष्मीसे युक्त होता है। दशम भावस्थ सूर्य आभूषणादिके संग्रहणकर्ता भी होते हैं।

(११) आय या एकादश स्थानमें विद्यमान सूर्य जातकको कलाप्रेमी एवं संगीतज्ञ बनाते हैं। ये सूर्य व्यक्तिको भी सभी प्रकारका सौख्य एवं श्री प्रदान करते हैं। अन्य आचार्यगणके अनुसार एकादश भावस्थ सूर्य पुत्रके लिये क्लेशकारक भी होते हैं—

गीतप्रीतिं चारुकर्मप्रवृत्तिं
चञ्चत्कीर्तिं वित्तपूर्त्तिं नितान्तम्।
भूपात् प्राप्तिं नित्यमेव प्रकुर्यात्
प्राप्तिस्थाने भानुमान् मानवानाम्॥

(जातकाभरण)

जिस स्त्रीके एकादशभावमें सूर्य रहते हैं, वह सद्‌गुणयुक्त होती है—

भूपप्रिया भवस्थेऽर्के सदा लाभसुखान्विता।
गुणज्ञा रूपशीलाढ्या धनपुत्रसमन्विता॥

(स्त्रीजातकम्)

(१२) सभी दैवज्ञ एक मतसे उद्घोषके साथ कहते हैं—द्वादश भावस्थ सूर्य नेत्ररुजकारक होते हैं तथा जातक कामातुर भी होता है। कतिपय आचार्योंके कथनानुसार व्ययस्थ सूर्य धनदायक होते हैं, लेकिन यात्राकालमें असम्भावित क्षति भी हो सकती है; यथा—

रविर्द्वादशे नेत्ररोगं करोति
विपक्षाहवे जायतेऽसौ जयश्रीः।
स्थितिर्लब्धया लीयते देहदुःखं
पितृव्यापदो हानिरध्वप्रदेशे॥

(चमत्कारचिन्तामणि)

इस प्रकारसे श्रीसूर्यदेव विभिन्न भावोंमें रहकर जातकके लिये विभिन्न स्थितियोंको समुत्पन्न करते हैं। ग्रहपति सूर्य सद्यः परिणामदायक, सभी दैवज्ञोंके ध्येय, नमस्य एवं प्रणम्य हैं।

जगके प्रकाशक सूर्य

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

भानु दिवाकर अर्क प्रभाकर,
हमको कृपाकर सद्ज्ञान दे दो।
तम के विनाशक, जग के प्रकाशक,
हम पर कृपाकर सब दोष हर लो॥
खिलाते हो कीचड़ में प्यारा कमल तुम,
उगाते हो पर्वत पे चन्दन का वन तुम।
तुम्हीं से प्रकाशित केसर की क्यारी,
भासित तुम्हीं से दुनिया ये सारी॥

रहे तन निरोगी तुम्हारी दया से,
रहें नैन चेतन तुम्हारी कृपा से।
तुम्हीं वेद दाता, तुम्हीं ज्ञान राशि,
तुम्हारी कृपा से सद्‌बुद्धि आती॥
कटें पाप सारे, जलें दोष सारे,
करें न त्रुटि हम, तुम्हारे हों प्यारे।
जीवन में भर दो क्षितिज की सी लाली,
करुणा के सागर हे अंशुमाली॥

प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणका ग्रहोंसे सम्बन्ध

(याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्य)

वेदकी विभुता विश्वमें विख्यात है। उसके छः अंगोंमें ज्योतिष नेत्र होनेके कारण प्रधान माना गया है। महर्षि नारदने कहा है—

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम्॥
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा॥

(नारदपुराण)

अर्थात् 'सिद्धान्त, संहिता और होरा (जातक)—तीन स्कन्धरूप ज्योतिषशास्त्र वेदका निर्मल और दोषरहित नेत्र कहा गया है। इस ज्योतिषशास्त्रके बिना कोई भी श्रौत और स्मार्त कर्म सिद्ध नहीं हो सकता। अतः ब्रह्माने संसारके कल्याणार्थ सर्वप्रथम ज्योतिषशास्त्रका निर्माण किया।'

अतः स्पष्ट है कि संसारमें घटनेवाली समस्त घटनाओंका ज्ञान ज्योतिषशास्त्रके द्वारा ही होता है।

प्राणियोंके जन्मसे मरणपर्यन्त समस्त सुख-दुःख ग्रहोंके अधीन होते हैं। आकाशमें व्यक्त और अव्यक्त अनेक ग्रह हैं; उनमें सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—ये सात ग्रह प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं। इनमें भी सूर्य प्रधान हैं; क्योंकि परब्रह्म परमात्मा अपनी शक्ति (प्रकृति)-के द्वारा चराचर विश्वकी रचना करनेके समयमें सर्वप्रथम आकाशकी, तदनन्तर सूर्यकी सृष्टि करते हैं। पुनः सूर्यके द्वारा ही अन्य चन्द्र आदि ग्रहों एवं वायु, अग्नि, जल और पृथिवी तथा पृथिवीस्थित प्राणियोंकी सृष्टि, पालन और प्रलयरूप क्रिया करते हैं। इसलिये वेदमें सूर्यको ही चराचर जगत्का आत्मा माना गया है—

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'

(यजुर्वेद ७।४२; ऋग्वेद १।११५।१; अथर्ववेद १३।२।३५)

तथा—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

(ऋग्वेद १०।१९०।३)

अनन्तर सूर्यादि खेचरोंके रश्मि-प्रभावसे अन्य चर और अचरकी सृष्टि होती है।

इन्द्रगुरु (बृहस्पति)-ने लिखा है—

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना नरावराः।
कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहाः कर्मफलप्रदाः।
सृष्टिरक्षणसंहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः॥

'यह समस्त संसार ग्रहोंके अधीन है और मानव एवं पशु-पक्षी आदि जीव भी ग्रहोंके ही अधीन हैं। कालका भी ज्ञान ग्रहोंके अधीन है और कर्मका फल ग्रहोंके द्वारा ही मिलता है। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—ये सभी ग्रहोंके ही अधीन हैं।'

इसी प्रकार समस्त पुराणोंमें मुनियोंने सूर्यादि ग्रहोंको ही जन्म, पालन और मरणका कारण बतलाया है।

वसिष्ठने अपनी संहितामें कहा है कि 'समस्त उच्चावच प्राणियोंकी सृष्टि आकाशस्थ उच्चावच ग्रहोंकी रश्मिवश ही होती है। उनमें सूर्य और चन्द्रमाके बलानुसार पुरुष और स्त्रीकी सृष्टि होती है। जैसे किसीके गर्भाधानके समयमें सूर्य अधिक बली रहता है तो पुरुषका जन्म होता है और चन्द्रमा अधिक बली रहता है तो स्त्रीका जन्म होता है। यदि दोनोंका तुल्यबल (समानबल) रहता है तो उस गर्भाधानसे नपुंसकका जन्म होता है।'

सोमात्मिकाः स्त्रियः सर्वाः पुरुषा भास्करात्मकाः।
तासां चन्द्रबलात् स्त्रीणां नृणां सर्वं हि सूर्यतः॥

'संसारमें समस्त स्त्री चन्द्रमाके अंशसे और पुरुष सूर्यके अंशसे उत्पन्न होते हैं। अतः स्त्रीका शुभाशुभ चन्द्रमाके अनुसार और पुरुषका शुभाशुभ सूर्यके अनुसार होता है।'

इस प्रकार शास्त्रों और पुराणोंमें ग्रहोंकी महत्ता विस्तृतरूपसे वर्णित है।

इसी प्रकार शास्त्रों और पुराणोंमें 'काल'को ही परब्रह्म परमात्मा कहा गया है—

कालः सृजति भूतानि सकलानि हरत्यपि।
स एव पालयत्यस्मात् कालो हि भगवान् प्रभुः॥

'काल ही समस्त चराचरकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। इसलिये काल परब्रह्म परमेश्वर है।'

भगवान् सूर्यने भी कहा है—

'लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।'

(सूर्यसिद्धान्त)

'कालभगवान्के दो रूप हैं—एक समस्त विश्वको उत्पन्न करनेवाला और संहार करनेवाला है, जो कि अव्यक्त, निर्गुण, निराकार और अनन्त है; दूसरा कलनात्मक अर्थात् विपल, पल, दिन, महीना, वर्ष, युग इत्यादि व्यवहारार्थ गणना करनेयोग्य है, जो कि व्यक्त सगुण और साकार है।'

ज्योतिषशास्त्रके प्रणेता महर्षियोंने आकाशस्थ नक्षत्रचक्र (भगोल)-के तुल्य बारह विभागोंको ही मेषादि नामसे बारह राशियाँ कहा है। ये मेषादि राशियाँ कालभगवान्के मस्तकसे लेकर चरण (पैर)-तक क्रमसे अवयव (अंग) हैं।

ग्रहोंमें पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र—ये शुभ (सुधारश्मि) और क्षीण चन्द्र, मंगल और शनि—ये पाप (विषरश्मि) तथा सूर्य तीक्ष्णरश्मि है।

गर्भाधान अथवा जन्म-समयमें जिस अंगविभाग (राशि)-में शुभ ग्रह रहता है, वह पुष्ट (विकारहीन) तथा जिस अंगविभाग (राशि)-में पापग्रह रहता है, वह विकारयुक्त होता है।

कहा भी है—

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिवस्तिगुह्यसंज्ञानि
ऊरू जानू जङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः।
कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टान् सोपद्रवांश्चापि॥

'मेषादि राशियाँ कालपुरुषके सिर इत्यादि अंग होती हैं। कालपुरुषका मेष सिर, वृष मुख, मिथुन दोनों बाँह, कर्कराशि हृदय, सिंह पेट, कन्या कटि (कमर), तुला बस्ति (नाभि और लिंगके बीचका स्थान—पेड़ू), वृश्चिक लिंग, धनु ऊरू (जाँघ), मकर जानु (ठेहुन), कुम्भ जङ्घा (घुटनाके नीचेका भाग) और मीन दोनों पैर होते हैं। इनका प्रयोजन यह है कि जन्मके समयमें जो राशि शुभग्रहसे युक्त अथवा दृष्ट हो, वह कालपुरुषके जिस अंगकी हो, मनुष्यका वह अंग अत्यन्त पुष्ट होता है और यदि राशि पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो, उस राशिके अंगमें पीड़ा, घाव इत्यादि होता है। यदि मिश्रग्रह (शुभाशुभ ग्रह)-से दृष्ट या युक्त हो तो उनके बलादिके तारतम्यसे उस-उस अंगमें अच्छा या बुरा फल समझना चाहिये।'

इस प्रकार सूर्यादि ग्रह ही कालभगवान्के आत्मादि अन्तरंग हैं। यथा—

आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः
सत्त्वं धराजः शशिजश्च वाणी।
ज्ञानं सुखं चन्द्रगुरुर्मदश्च
शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम्॥
आत्मादयो गगनगैर्चलिभिर्ब्रह्मवत्तराः।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतः शनिः स्मृतः॥

अर्थात् 'कालभगवान्के सूर्य आत्मा, चन्द्रमा मन, मंगल सत्त्व, बुध वाणी, गुरु ज्ञान और सुख हैं तथा शुक्र मद (कन्दर्प) और शनि दुःख हैं। जन्म-समयमें ये सूर्यादि ग्रह बलवान् हों तो प्राणियोंके आत्मादि बलवान् होते हैं। अतः सूर्य आदि छः ग्रहोंके प्रबल होनेसे शुभ और शनिका प्रबल होना अशुभ (विपरीत) माना गया है; क्योंकि शनि दुःखरूप है; वह जितना निर्बल रहता है, उतना दुःख अल्प होता है।'

इसी प्रकार सूर्यादि ग्रह भी कालभगवान्की सत्त्व आदि प्रकृति हैं।

गुरुशशिरवयः सत्त्वं रजः सितज्ञौ तमोऽर्कसुतभौमौ।
एतेऽन्तरात्मनि स्वां प्रकृतिं जन्तोः प्रयच्छन्ति॥

'बृहस्पति, चन्द्रमा और सूर्य—ये तीन ग्रह सत्त्वगुणी

हैं। शुक्र और बुध—ये दोनों रजोगुणी हैं। शनि और मंगल—ये दोनों तमोगुणी हैं। ग्रह अपनी प्रकृतिके अनुसार मनुष्योंकी प्रकृतिको बनाते हैं।'

एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम्।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम्॥

'गर्भाधानकालमें इन ग्रहोंमें जो ग्रह बलवान् रहता है, वह अपने स्वरूपके समान ही गर्भस्थ जीवका स्वरूप बनाता है। यदि कई ग्रह बलवान् हों तो उन सभीके मिश्रित स्वरूपके सदृश अर्भक (बालक)-का स्वरूप होता है।'

ग्रहोंके द्वारा ही प्राणियोंके पूर्व और अग्रिम जन्मकी भी स्थिति ज्ञात होती है। यथा—

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः।
दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितास्त्र्यंशनाथाः
प्रवरसमकनिष्ठास्तुङ्गह्रासादनूके ॥

(बृहज्जातक २५। १४)

'प्राणियोंके जन्म-समयमें सूर्य और चन्द्रमामें जो बलवान् हो, वह यदि गुरुके त्र्यंश (द्रेष्काण)-में हो तो जातकको पूर्वजन्ममें देवलोकवासी, यदि चन्द्र और शुक्रके त्र्यंशमें हो तो पितृलोकवासी (चन्द्रलोकवासी), यदि सूर्य अथवा मंगलके त्र्यंशमें हो तो मर्त्यलोकवासी और यदि शनि या बुधके त्र्यंशमें हो तो नरकलोकवासी समझना चाहिये। उक्त त्र्यंशपति ग्रह अपने उच्चस्थान, मध्यस्थान या नीचस्थानमें हों तो उक्त लोकमें भी जातकको यथाक्रम उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीका समझना चाहिये। इसी प्रकार जीवके मरणकालमें भी उक्त त्र्यंशपतिकी स्थितिके अनुसार देवलोक, पितृलोक, मर्त्यलोक अथवा नरकलोकमें अग्रिम जन्म समझना चाहिये।'

इस प्रकार चराचर प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणपर्यन्त सुख-दुःख सूर्यादि ग्रहोंके आधारपर ही वेद-वेदांगोंमें वर्णित हैं।

जन्म-मृत्यु और ग्रह-विचार

(डॉ० श्रीनारायणदत्तजी श्रीमाली, एम०ए०, पी-एच०डी०)

भारतीय ऋषियोंने अपनी साधना, लगन, परिश्रम एवं दिव्य ज्ञानसे ग्रहोंकी गतिका अध्ययन करके जो निष्कर्ष निकाले, वे वस्तुतः प्रामाणिक होनेके साथ-साथ इस बातके सूचक भी हैं कि इन सिद्धान्तों, नियमों एवं तथ्योंके पीछे आर्यऋषियोंकी सैकड़ों-हजारों वर्षोंकी तपस्या एवं अनुभूति है। मानव-जीवनके छोटे-से-छोटे तथ्यपर भी इन ऋषियोंने विचार तथा अनुभव प्राप्त किया है। हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण आदिका विवेचन करनेके साथ-साथ उन्होंने ग्रहोंकी गति एवं स्थितिके आधारपर आवागमनपर भी प्रकाश डाला है।

बालक जिस समय जन्म लेता है, उस समयका शोधनकर अक्षांश-देशान्तर-संस्कार करनेके पश्चात् बालककी जन्मकुण्डली बनायी जाती है। उस समयके ग्रहोंकी स्थितिके अध्ययनके फलस्वरूप यह ज्ञात किया जा सकता है कि बालक किस योनिसे आया है और मृत्युके पश्चात् उसकी क्या गति होगी। नीचे इस सम्बन्धमें कुछ विशेष योग प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

जन्मपूर्व योनि-विचार

(१) यदि जातककी जन्म-कुण्डलीमें चार या इससे अधिक ग्रह उच्च राशिके अथवा स्वराशिके हों तो जीवने उत्तम योनि भोगकर यहाँ जन्म लिया है, ऐसा समझना चाहिये।

(२) लग्नमें उच्चराशिका या स्वराशिका चन्द्रमा हो तो बालक पूर्वजन्ममें सद्विवेकी वणिक् था, यों मानना चाहिये।

(३) लग्नस्थ गुरु इस बातका सूचक है कि बालक पूर्वजन्ममें वेदपाठी ब्राह्मण था। यदि जन्मकुण्डलीमें कहीं भी उच्चका गुरु होकर लग्नको देख रहा हो तो बालक पूर्वजन्ममें धर्मात्मा, सद्गुणी एवं विवेकशील साधु अथवा तपस्वी था—ऐसा ऋषियोंका कथन है।

(४) यदि जन्मकुण्डलीमें सूर्य छठे, आठवें या बारहवें भावमें हो अथवा तुला राशिका हो तो बालक पूर्वजन्ममें पापरत एवं भ्रष्टजीवन व्यतीत करनेवाला था—यों जानना चाहिये।

(५) लग्न या सप्तम भावमें यदि शुक्र हो तो जातक पूर्वजन्ममें राजा या प्रसिद्ध सेठ था तथा पूर्णतः भोगी जीवन बितानेवाला था—यों समझना चाहिये।

(६) लग्न, एकादश, सप्तम या चौथे भावमें शनि इस बातका सूचक है कि बालक पूर्वजन्ममें शूद्रपरिवारसे सम्बन्धित था एवं पापपूर्ण कार्योंमें रत था।

(७) यदि लग्न या सप्तम भावमें राहु हो तो बालककी पूर्वमृत्यु स्वाभाविक रूपमें नहीं समझनी चाहिये।

(८) चार या इससे अधिक ग्रह जन्म-कुण्डलीमें नीच राशिके हों तो बालकने पूर्वजन्ममें निश्चय ही आत्महत्या की होगी, ऐसा ऋषियोंका कथन है।

(९) लग्नस्थ बुध स्पष्ट करता है कि जातक पूर्वजन्ममें वणिक्-पुत्र था एवं विविध क्लेशोंसे ग्रस्त रहता था।

(१०) सप्तम भाव, षष्ठ भाव या दशम भावमें मंगलकी उपस्थिति यह स्पष्ट करती है कि जातक पूर्वजन्ममें अत्यन्त क्रोधी स्वभावका था तथा कई व्यक्ति उससे पीड़ित रहते थे।

(११) बृहस्पति शुभ ग्रहोंसे दृष्ट हो तथा गुरु पंचम या नवम भावमें हो तो जातक पूर्वजन्ममें वीतरागी था—यों समझना चाहिये।

(१२) एकादशमें सूर्य, पंचममें बृहस्पति तथा द्वादश भावमें शुक्र इस बातके द्योतक हैं कि जातक पूर्वजन्ममें धर्मात्मा लोगोंकी सहायता करनेवाला तथा दान-पुण्यमें तत्पर ईश्वराराधक था। ऐसा भारतीय ऋषियोंका कथन है।

मृत्यु-उपरान्त गति-विचार

मृत्युके उपरान्त जातककी क्या गति होगी—इसका ज्ञान भी आर्ष नियमोंके अनुसार जन्म-कुण्डलीसे किया जा सकता है। नीचे इसीके सम्बन्धमें कुछ प्रामाणिक योग प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) कुण्डलीमें कहींपर भी यदि उच्च (कर्कराशि)-का बृहस्पति स्थित हो तो जातककी अन्त्येष्टि धूमधामसे होती है तथा मृत्युके पश्चात् उत्तम कुलमें जन्म होता है।

(२) लग्नमें उच्चराशिका चन्द्रमा हो तथा कोई पापग्रह उसे न देखते हों तो जातककी सद्‌गति होती है तथा वह अपने पीछे कीर्ति-कथाएँ छोड़ जाता है।

(३) अष्टमस्थ राहु जातकको पुण्यात्मा बना देता है तथा मरनेके पश्चात् वह राज्यकुलमें जन्म लेता है, ऐसा विद्वानोंका कथन है।

(४) अष्टम भावपर मङ्गलकी दृष्टि हो तथा लग्नस्थ भौमपर नीच शनिकी दृष्टि हो तो जातक रौरव नरक भोगता है।

(५) अष्टमस्थ शुक्रपर गुरुकी दृष्टि हो तो जातक मृत्युके पश्चात् वैश्यकुलमें जन्म लेता है।

(६) अष्टम भावपर मंगल और शनि—इन दोनों ग्रहोंकी पूर्ण दृष्टि हो तो जातक अकाल मृत्युसे मरता है।

(७) अष्टम भावपर शुभ अथवा अशुभ किसी भी प्रकारके ग्रहकी दृष्टि न हो और न अष्टम भावमें कोई ग्रह स्थित हो तो जातक ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

(८) लग्नमें गुरु-चन्द्र, चतुर्थ भावमें तुलाका शनि एवं सप्तम भावमें मकर राशिका मंगल हो तो जातक जीवनमें कीर्ति अर्जित करता हुआ मृत्यु-उपरान्त ब्रह्मलीन होता है।

(९) लग्नमें उच्चका गुरु चन्द्रको पूर्ण दृष्टिसे देख रहा हो एवं अष्टमस्थान ग्रहोंसे रिक्त हो तो जातक जीवनमें सैकड़ों धार्मिक कार्य करता है तथा प्रबल पुण्यात्मा एवं मृत्युके उपरान्त सद्‌गतिका अधिकारी होता है।

(१०) अष्टम भावको शनि देख रहा हो तथा अष्टम भावमें मकर या कुम्भ राशि हो तो जातक योगिराज-पद प्राप्त करता है तथा विष्णुलोक प्राप्त करता है।

(११) यदि जन्मकुण्डलीमें चार ग्रह उच्चके हों

तो जातक निश्चय ही श्रेष्ठ मृत्युका वरण करता है एवं पीछे अक्षयकीर्ति-वट स्थापित कर देता है।

(१२) एकादश भावमें सूर्य-बुध हों, नवम भावमें शनि तथा अष्टम भावमें राहु हो तो जातक मृत्युके पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है।

विशेष योग

(१) द्वादशभाव शनि, राहु या केतुसे युक्त हो, फिर अष्टमेशसे युक्त हो अथवा षष्ठेशसे दृष्ट हो तो मरनेके बाद दुर्गति होगी—यों समझना चाहिये।

(२) गुरु लग्नमें हो, शुक्र सप्तममें हो, कन्याराशिका चन्द्रमा हो एवं धनुलग्नमें मेषका नवांश हो तो जातक मृत्युके पश्चात् परमपद प्राप्त करता है।

(३) अष्टमभावको गुरु, शुक्र और चन्द्र—तीनों ग्रह देखते हों तो जातक मृत्युके पश्चात् श्रीकृष्णके चरणोंमें स्थान प्राप्त करता है, ऐसा आर्यऋषियोंका कथन है।

नवग्रहोंकी स्वरूप-मीमांसा

(पं० श्रीबाबूलालजी द्विवेदी, मानसमधुप)

मनुष्य अपने संचित एवं प्रारब्ध कर्मोंकी जीवननौकामें बैठकर क्रियमाण कर्मरूपी पतवारके द्वारा उन्नति, अवनति, यशापयश, सुख-दुःखादिके रूपमें स्वकर्मोंका फल भोगता है। चित्तकी उद्विग्नता-प्रसन्नता, आकस्मिक आपत्तियाँ-विपत्तियाँ, हर्ष-उत्कर्षादि सभी कुछ कर्मोंके परिणामोंपर निर्भर है। यदि क्रियमाण कर्मोंका पलड़ा भारी हो जाय तो पूर्वार्जित संचित अदृष्ट कर्म असह्य फल देनेमें असफल रह जाते हैं। यदि क्रियमाण शास्त्रानुमोदित शुभ कर्म यथार्थ रूपसे सम्पन्न न किये जायँ तो अदृष्टका फल मनुष्यको भोगना ही पड़ेगा।

जीवनसे सम्बद्ध इस परम सत्यका विश्लेषण करना ही ज्योतिष है। अस्तु, ज्योतिषको प्रत्यक्ष शास्त्र एवं चन्द्र-सूर्यको इसका साक्षी माना जाता है—**'प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।'**

आज जो लगभग एक अरब योजन (योजन=चार कोस=आठ मील=तेरह किलोमीटर) विस्तारवाले ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, वही हमारे इस साढ़े तीन हाथवाले शरीरमें है। **'यत् अण्डे तत् पिण्डे'** इस सर्वतन्त्र सिद्धान्तके समक्ष विज्ञानने भी आज अपने घुटने टेक दिये हैं।

ब्रह्माण्ड यदि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पंचमहाभूतोंके पंचीकरणका परिणाम है तो यह शरीर भी इन्हीं पाँचोंके संघातका परिणाम है। अस्तु, इस शरीरको पंचायती-धर्मशाला स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

ब्रह्माण्डका प्रबन्धक परमात्मा (सूर्य) अपने मन्त्री चन्द्रमा तथा प्रबन्धसमितिके अन्यान्य सदस्य—ग्रह, उपग्रह आदिके साथ नियमानुसार जैसे संचालन करता है, उसी प्रकार इस शरीरमें रहकर जीवात्मा अपने मन्त्री मनके साथ बल-रक्तादि (मंगल), वाणी (बुध), ज्ञान (गुरु), वीर्यतन्त्रादि (शुक्र), सुख-दुःखानुभूति (शनि), उन्नति-अवनति, विकास इत्यादि (राहु-केतु-हर्षल-वरुण, प्रजापति आदि)-के साथ नियमित संचालन करता है।

जबतक पंचायतद्वारा नियुक्त प्रबन्धक (जीवात्मा) यदि पंचायतके प्रबन्ध-समितिके सदस्यों—सूर्यादि (जिन्हें हम नवग्रहोंके नामसे जानते हैं)-के प्रति कृतज्ञ रहता हुआ इस धर्मशाला (शरीर)-का संचालन अच्छी तरह करता रहेगा, तबतक उसे श्रमतोष (पारिश्रमिक)-के साथ-ही-साथ पुरस्कारस्वरूप सुख, शुभ उन्नति आदि अनुदान-वरदान भी प्राप्त होते रहेंगे। जिस दिन संचालन-व्यवस्थामें अवहेलनापूर्वक व्यवधान दिखायी देगा, उसी समय इस पंचायती धर्मशालाको ध्वस्तकर ये ही नवग्रहसदस्य जीवात्माको बाहर निकाल देते हैं।

अस्तु, इन सदस्यों (नव-ग्रहादि)-के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना ही वेदविहित प्रकृति-प्रवाहके अनुकूल उपादेय कर्म (पुण्य) तथा इसके विपरीत वेदनिषिद्ध हेय कर्म प्रकृति-प्रवाहके प्रतिकूल—पाप माने गये हैं।

आंग्ल भाषाभाषियोंमें एक बहुत प्रचलित सूक्ति

है—'Man does not live on bread alone' अर्थात् मनुष्य केवल रोटीसे जीवित नहीं रहता, उसे अपनी जिज्ञासाशान्तिहेतु कुछ और भी चाहिये। जैसे—शौर्य, उच्च पदवी, मांगल्य, बुद्धिमत्ता, महानता, सुख-शान्ति, बाहुबल, कुल-वृद्धि आदि। इसी हेतु नवग्रहोंसे प्रसन्नतापूर्वक अनुकूल रहनेकी कामना की जाती है। वेदविहित उपादेय कोई भी कर्म बिना नवग्रहोंके पूर्वार्चनके सम्पन्न नहीं होता, नवग्रहोंकी प्रार्थना करते हुए कहा गया है—

सूर्यः शौर्यमथेन्दुरुच्चपदवीं सन्मङ्गलं मङ्गलः
सद्बुद्धिं च बुधो गुरुश्च गुरुतां शुक्रः सुखं शं शनिः।
राहुर्बाहुबलं करोतु विपुलं केतुः कुलस्योन्नतिं
नित्यं प्रीतिकरा भवन्तु भवतां सर्वे प्रसन्ना ग्रहाः॥

(मानसागरी)

ग्रहोंसे ही समस्त त्रैलोक्य प्रभावित रहता है—

ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च।
ग्रहास्तु व्यापितं सर्वं त्रैलोक्ये सचराचरम्॥

आजके इस विज्ञानयुगमें सहज ही प्रश्न उठ सकता है कि क्या हमारे जीवनपर ग्रहोंका सत्यमेव प्रभाव पड़ता है?

जर्मनीके प्रसिद्ध रसायनशास्त्री डॉ० जियारजी गियारडीने सन् १९५० ई०में अपनी प्रयोगशालामें यह सिद्ध कर दिया है कि समूचा ब्रह्माण्ड एक जीवन्त रसायन है। इस ब्रह्माण्ड रसायन (Cosmic Chemistry)-में यह सिद्ध किया गया है कि पूरा जगत् एक शरीर (Organic Unity) है। ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जितने भी ग्रह हैं; उनकी गति, क्रिया आदिका प्रभाव प्रत्येक वस्तुपर पड़ता है। कुएँमें यदि हम एक छोटा-सा कंकड़ फेंकें तो उसके तलमें नीचे पहुँचते-पहुँचते समस्त जल आन्दोलित—प्रभावित हो उठता है।

सूर्यपर प्रत्येक ग्यारह वर्षबाद एक आणविक विस्फोट (काले धब्बेका उदय) होता है, जिसके परिणामस्वरूप बीमारियाँ बढ़ती-घटती हैं। युद्ध और उत्पात भी इसीके परिणामस्वरूप होते हैं। चन्द्रमाके प्रभावसे समुद्रमें ज्वार-भाटा उठते हैं। समुद्रके जलमें ६५ प्रतिशत खारापन है। इसी प्रकार यही प्रतिशत हमारे शरीरके रक्तमें भी है तो इसे भी चन्द्रसे प्रभावित होना चाहिये और होता भी है। इसी तरह अन्यान्य ग्रहोंका भी प्रभाव पड़ता है।

विज्ञानवादियोंका मानना है कि पदार्थकी सूक्ष्म रचनाका आधार परमाणु है, परमाणुकी ईंटोंको जोड़कर पदार्थका विशाल भवन निर्मित होता है। परमाणुके मध्यमें एक घनविद्युत्का बिन्दु (केन्द्र) है, इसका व्यास एक इंचका १० लाखवाँ भाग है। परमाणुके जीवनका सार इसी केन्द्रमें बसता है। इसीके चारों ओर अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युत्कण चक्कर लगाते हैं एवं केन्द्रस्थ घनविद्युत्कणके साथ मिलनेका उपक्रम करते हैं। इस प्रकार अनन्त परमाणुओंका समाहार हमारा शरीर है। प्राणिमात्रके शरीरकी ही नहीं, अपितु प्रत्येक वस्तुकी आन्तरिक संरचना सौरमण्डलसे मिलती-जुलती है।

जिस प्रकार पृथ्वी अपनी धुरीपर लगभग चौबीस घण्टा (२३ घण्टा ५६ मिनट)-में अपना परिभ्रमण पूराकर ३६५^{१}/४ दिनोंमें सूर्यका एक चक्कर लगाती है। प्रातः, मध्याह्न, सायं एवं रात्रि इसी परिभ्रमण एवं छहों ऋतुएँ सूर्यके चक्करके परिणामस्वरूप होती हैं। इसी तरह सभी ग्रह अपनी धुरीपर घूमते हुए सूर्यका ही चक्कर लगाते रहते हैं। इनमें बुध अपनी धुरीपर एक परिभ्रमण ५५ दिन, शुक्र २३ घण्टा २१ मिनट, मंगल २४ घण्टा १० मिनट, गुरु २० घण्टा ५३ मिनट, शनि १९ घण्टा १४ मिनट, राहु तथा केतु २४ घण्टेमें पूरा करते हैं तथा इनको सूर्यकी परिक्रमा करनेमें एक राशिकी कक्षामें रहते हुए बुधको ८८ दिन, शुक्रको २२४^{१}/४ दिन, बृहस्पतिको १२ माह २३ दिन, मंगलको ६८७ दिन, शनिको २९ माह १५ दिन, राहुको १८ माह, केतुको १८ माह लगते हैं। वरुणको १६४ वर्ष ६ माह, अरुणको ८४ वर्ष तथा कुबेरको २४८ वर्षका समय लगता है, सूर्यकी परिक्रमामें इनको अधिक समय लगनेके कारण मुख्य रूपसे नवग्रहोंके प्रभावका ही ज्योतिषमें वर्णन प्राप्त होता है।

मनोवैज्ञानिकोंने इस सौरानुदानित शरीरके व्यक्तित्वको

दो भागोंमें विभक्त किया है। एक बाह्य व्यक्तित्व एवं प्रवृत्तियोंका संश्लेषण अपनेमें रखता है। इनमें बाह्य व्यक्तित्वके विचारका बृहस्पति, भावका मंगल एवं क्रियाका प्रतीक चन्द्रमा है तथा दूसरे आन्तरिक व्यक्तित्वमें स्मृतिका बुध, अनुभवका शुक्र एवं प्रवृत्तिका प्रतिनिधित्व सूर्य करता है।

इन दोनों व्यक्तित्वोंके अतिरिक्त शरीरको सुचारुरूपेण व्यवस्थित रखनेमें अन्त:करणकी विशेष भूमिका रहती है। जिसका प्रतिनिधित्व शनि करता है। इसीलिये सौरि (शनि)-को एक साथ छः राशियोंपर (ढैया या साढ़े साती) प्रभावकारी माना जाता है।

राहु एवं केतु दोनों ग्रह भी हमारे जीवनपर कम प्रभावी नहीं होते। भास्कराचार्यने अपने 'सिद्धान्त-शिरोमणि' नामक ज्योतिष ग्रन्थमें इसकी बड़ी ही सुन्दर विशद विवेचना करते हुए लिखा है—जिस मार्गपर पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है, वह क्रान्तिवृत्त (चूँकि चन्द्रमा सूर्यकी परिक्रमा करता हुआ पृथ्वीका चक्कर २७ दिन ७ घण्टे ४३ मिनट एवं १२ सेकेण्डमें अपने मार्गवृत्त—द्वादश राशियोंकी कक्षाओंमें रहकर पूरी करता है) तथा चन्द्रमाके मार्गवृत्त (अक्ष)-में दोनों जिन बिन्दुओंपर एक-दूसरेको काटते हैं, तब आकाशमें उत्तरकी ओर बढ़ते हुए चन्द्रकी कक्षा जब सूर्यको काटती है, उस सम्पात-बिन्दुको राहु तथा दक्षिणकी ओर नीचे उतरती हुई चन्द्रकक्षा, सूर्यकक्षा पार करती है, उस सम्पात-बिन्दुको केतु कहते हैं। निष्कर्षत: सूर्य-चन्द्रका जिस वस्तु या पदार्थपर प्रभाव होगा, वह राहु (Head Dragan) एवं केतु (Tail Dragan)-से भी प्रभावित होगा। चन्द्रके मार्गवृत्त-द्वादश राशियोंकी कक्षामें सभी २७ नक्षत्र हैं तथा इन्हींमें पृथ्वीभरके प्राणिमात्र।

५०५ ई०में काम्पिल्य नगर (कालपी)-में जन्मे, सूर्यकी तपस्यासे वरप्राप्त एवं अपने पिता आदित्यदाससे ज्योतिष सीखकर अवन्ती (उज्जैन)-नरेश विक्रमादित्यके नवरत्नोंमें लब्धप्रतिष्ठ आचार्य 'वराहमिहिर' ने बड़ा ही सुन्दर सिद्धान्त अपने 'बृहज्जातक' ग्रन्थमें प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि बाह्य ब्रह्माण्डकी ग्रह-कक्षा-बल इस शरीरचक्रकी कक्षावृत्तके द्वादश भाग—मस्तक, मुख, वक्ष:स्थल, हृदय, उदर, कटि, वस्ति, लिंग, जंघा, घुटना, पिण्डली तथा पैर क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन राशिसंज्ञक हैं। इसमें भ्रमण करनेवाले ग्रहोंमें आत्मा रवि, मन चन्द्र, धैर्य मंगल, वाणी बुध, विवेक गुरु, वीर्य शुक्र एवं संवेदन शनि है। अर्थात् उनकी कृपापर यह निर्भर है। सूर्य-चन्द्र तो परमात्माके नेत्र ही हैं। सारावलीमें सूर्य-चन्द्रको राजा, बुधको युवराज, मंगलको सेनापति, गुरु-शुक्रको मन्त्री एवं शनिको भृत्य माना गया है—

राजा रविः शशिधरस्तु बुधः कुमारः
सेनापतिः क्षितिसुतः सचिवौ सितेज्यौ।
भृत्यस्तयोश्च रविजः सबला नराणां
कुर्वन्ति जन्मसमये निजमेव रूपम्॥

(सारावली ४।७)

ग्रहोंके अपनी धुरीपर परिभ्रमण करते हुए सूर्यकी परिक्रमाकी अवधिसे ही उनकी बाल, युवा, वृद्ध, प्रमुदित, हर्षित, रुदित आदि अवस्था, स्थान, दिशा, काल, नैसर्गिक चेष्टा एवं दृष्टि आदि बल-निर्बलादि संज्ञा मानी जाती है। जातकके जन्मके समय जो ग्रह जितने अंशोंसे मित्र, शत्रु अथवा स्वक्षेत्रीय होकर दृष्टिपात करता है, उसीके अनुसार जातकके जीवनपर तत्तद् ग्रहोंकी अष्टोत्तरी, विंशोत्तरी दशाका प्रभाव होता है।

सभी ग्रहोंका एक ही परिवारके होनेपर भी गति एवं ध्वनिके परिणामस्वरूप ऊर्जाक्षेत्र अलग-अलग होता है। प्रयासपूर्वक उस ऊर्जासे लाभान्वित हो मनुष्य दीर्घायु एवं स्वस्थ रहकर उन्नति करे—इस हेतुको हमारे आर्ष मनीषी अच्छी तरहसे जानते थे। इसलिये उनकी प्रिय वस्तु, मन्त्र, रत्नादिके दान-धारणादिके द्वारा अपनी अपेक्षाओंकी पूर्ति की जा सकती है, उसी तरह ऊर्जास्रोत नवग्रहोंके मन्त्रजप, स्तोत्रपाठ एवं रत्न, धातु, अन्नादि धारण करने या दानादिसे समस्त अरिष्टोंकी शान्ति एवं ऊर्जा अर्जित की जा सकती है।

ग्रह एवं राशिज्ञान-तालिका

(क) ग्रहज्ञान-तालिका

संज्ञा	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
तत्त्व	अग्नि	जल	अग्नि	पृथ्वी	आकाश	जल	वायु
स्वभाव	स्थिर	चर	चर	सम	लघु	मृदु	तीक्ष्ण
गुण	सत्त्व	सत्त्व	तम	रज	सत्त्व	रज	तम
संज्ञा	क्रूर, अशुभ	सौम्य, पाप	क्रूर	शुभ	सौम्य, शुभ	सौम्य, शुभ	क्रूर
लिंग	पुरुष	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	पुरुष	स्त्री	नपुंसक
वर्णजाति	क्षत्रिय	वैश्य	क्षत्रिय	वैश्य	ब्राह्मण	ब्राह्मण	शूद्र
प्रकृति	पित्त, उष्ण	वात, कफ	पित्त	वात-पित्त, कफ	वात, कफ	वात, कफ	कफ
कारक	पिता	माता	भाई, मित्र	मामा, शिल्प	सन्तान, गुरु	पत्नी, सास,	सेवक, आयु
धातुसार	हड्डी	खून, वीर्य	मज्जा	त्वचा, रक्त	चर्बी	वीर्य	स्नायु, जाँघ
अधिष्ठाता	आत्मा	मन	पराक्रम	वाणी, बुद्धि	ज्ञान, सुख	काम	कष्ट, संवेदना
पदवी	राजा	राजा	सेनापति	युवराज	राजगुरु, मन्त्री	गुप्तमन्त्री	सेवक, दूत
शरीर-चिह्न	सिर, मुख	श्वसनतंत्र, बाजू	पेट, पीठ, गर्भ	कान, पैर, हृदय	कमर, मूत्राशय	लिंग, वाणी	पिण्डली, घुटने
दिशा	पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ईशान्य	आग्नेय	पश्चिम
धातु	सोना, ताँबा	चाँदी, मणि	सोना	सोना, कांसा	चाँदी	चाँदी, मोती	लोहा, शीशा
रत्न	माणिक्य	मोती	मूँगा	पन्ना	पुखराज	हीरा	नीलम
धारण-समय	सूर्योदय	सूर्योदय	सूर्योदय	किसी भी समय	दोपहर	दोपहर	शाम/रात
स्वामी	अग्नि	जल	कार्तिकेय	विष्णु	इन्द्र	इन्द्राणी	ब्रह्मा
सजल-शुष्क	शुष्क	सजल	शुष्क	सजल	सजल	सजल	शुष्क
शुभ भाव	९	३	६	१	११	५	१२
भावके कारक	१, ९, १०	४	३, ६	४, १०	२, ५, ९, ११	७	६, ८, १०, १२
स्थान	देवस्थान	जलस्थान	अग्निस्थान	क्रीडास्थान	कोशस्थान	शयनस्थान	ऊसरस्थान
ऋतु	ग्रीष्म	वर्षा	ग्रीष्म	शरद्	हेमन्त	वसन्त	शिशिर
मित्र ग्रह	च.मं.गु.	सू.बु.	सू.च.गु.	सू.शु.	सू.च.मं.	बु.श.रा.के.	बु.शु.
सम ग्रह	बुध	मं.गु.शु.श.	शु.श.	मं.गु.श.	श.	मं.गु.	गुरु
शत्रु ग्रह	शु.श.		बु.	चन्द्र	बु.शु.	सू.चं.	सू.चं.मं.
उच्च राशि	१	२	१०	६	४	१२	७
नीच राशि	७	८	४	१२	१०	६	१
मू.त्रि. राशि	५	२	१	६	९	७	११
महादशा	६ वर्ष	१० वर्ष	७ वर्ष	१७ वर्ष	१६ वर्ष	२० वर्ष	१९ वर्ष
वक्री-मार्गी	मार्गी	मार्गी	वक्री/मार्गी	वक्री/मार्गी	वक्री/मार्गी	वक्री/मार्गी	वक्री/मार्गी
वृक्ष	मदार	पलाश	खैर (खदिर)	अपामार्ग	पीपल	गूलर	शमी
दृष्टि	७	७	४, ८	७	५, ९	७	३, १०

(ख) राशिज्ञान-तालिका

संज्ञा राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
स्वामी ग्रह	मंगल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मंगल	गुरु	शनि	शनि	गुरु
तत्त्व	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल
लिंग	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
स्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव
गुण	राजसी	राजसी	सात्त्विक	सात्त्विक	तमोगुणी	तमोगुणी	राजसी	राजसी	सात्त्विक	तमोगुणी	तमोगुणी	सात्त्विक
प्रकृति	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण
बली समय	रात्रि	रात्रि	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन	दिन	दिन	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन, रात्रि
दिशा स्वामी	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
प्रकृति	पित्त	वात	त्रिधातु	कफ	पित्त	वात	त्रिधातु	कफ	पित्त	वात	त्रिधातु	कफ
उदय स्थिति	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	उभयोदय
शरीरमें स्थान	सिर, चेहरा	गला, मुख	कन्धा, छाती, फेफड़े	हृदय	उदर, पीठ, रीढ़	कमर, लीवर	वस्ति, चर्म	गुप्तांग, गुदा	जाँघ, कमर	जोड़, घुटने	पिण्डली	पैर, एड़ी
सजल-शुष्क	शुष्क	शुष्क	शुष्क	सजल	शुष्क	शुष्क	सजल	सजल	शुष्क	सजल	सजल	सजल

[प्रेषक—श्रीमाँगीलालजी प्रजापति]

राशिपरिचय—गुण-धर्म

(श्रीहरिनारायणजी 'शास्त्री')

मेष—कालपुरुषके अंगमें इस राशिका अधिकार सिरपर होता है। इस राशिका आधिपत्य पूर्व दिशामें होता है। यह राशि पुरुषजाति, चरसंज्ञक, अग्नितत्त्व, पित्तप्रकृति, भूमिपर निवासवाली, क्षत्रियवर्ण, अल्पसन्तति, रात्रिबली एवं क्रूर स्वभावकी होती है। इसे साहस, वीरता एवं अहंकारका प्रतीक माना जाता है। मेषलग्नमें जन्म लेनेवाले जातक प्राय: गम्भीर प्रकृतिके एवं अल्पभाषी होते हैं। इनकी चाल तेज एवं दन्तपंक्ति बाहर निकली हो सकती है।

वृष—इस राशिकी आकृति वृषभके सदृश होती है। मुखसे कण्ठतक आधिपत्य रहता है। यह स्त्रीजाति, स्थिरसंज्ञक, शीतल स्वभाव, भूमितत्त्व, दक्षिणकी स्वामिनी, रात्रिबली एवं वातप्रकृतियुक्त होती है। वैश्यवर्णी, मध्यम सन्तति, शिथिल शरीर, सुखकारक होती है। ऐसे जातक स्वार्थी, अपनेमें डूबे रहनेवाले, विद्याव्यसनयुक्त होते हैं।

मिथुन—कालपुरुषके अंगमें कन्धेसे लेकर हाथोंतक इसका आधिपत्य होता है। इसकी आकृति स्त्री-पुरुषके जोड़ेकी है। स्त्रीके हाथमें वीणा एवं पुरुषके हाथमें गदा होती है। इसका रंग हरा है, यह वायुतत्त्व, पुरुषजाति, द्विस्वभाव, शूद्रवर्णी, मध्यसन्तति, शिथिल देह एवं पश्चिम दिशाकी स्वामिनी है। इस राशिवाले विद्याध्ययन एवं शिल्पकलाप्रवीण होते हैं।

कर्क—यह जलचर एवं केकड़ेके सदृश होती है। कालपुरुषके शरीरमें वक्ष:स्थल इसका स्थान माना जाता है। यह राशि स्त्रीजाति, चरसंज्ञक, कफप्रकृति, रात्रिबली, मिश्रितरंग, बहुसन्तति एवं उत्तर दिशाकी स्वामिनी होती है। भौतिक सुखोंमें लगे रहना, लज्जालु, स्थिरगति, समयानुसार निर्णय लेना इस राशिका स्वभाव होता है। इस राशिसे उदर,

सीना एवं गुर्देका विचार किया जाता है।

सिंह—सिंह-आकृतिकी इस राशिका कालपुरुषके अंग—हृदयपर आधिपत्य होता है। अग्नितत्त्व, स्थिरसंज्ञक, पुरुषजाति, पित्तप्रकृति, क्षत्रियवर्ण, उष्णप्रकृति, अल्पसन्तति एवं पूर्व दिशाकी स्वामिनी है। इस राशिका स्वभाव मेष राशिके समान ही होता है। इस राशिसे हृदयका विचार किया जाता है। ऐसे जातक उदार एवं स्वतन्त्रताप्रिय देखे जाते हैं।

कन्या—नौकापर बैठी हाथमें दीपक लिये कन्याके समान आकृति होती है। शरीरमें इसका उदरपर आधिपत्य होता है। इसका निवास हरी घास, भूमि, स्त्री, रतिस्थान एवं चित्रशालामें होता है। यह द्विस्वभाव, स्त्रीजाति, पिंगलवर्णी, दक्षिण दिशाकी स्वामिनी होती है। पृथ्वीतत्त्व, वायु एवं शीतप्रकृति, अल्पसन्तति एवं शिथिलशरीर होती है। इस राशिसे पेटका विचार किया जाता है। इस राशिके जातक उत्तरोत्तर उन्नति करनेवाले एवं स्वाभिमानी होते हैं।

तुला—इस राशिकी आकृति तराजूलिये पुरुष-जैसी होती है। कालपुरुषके शरीरमें इसका स्थान नाभिप्रदेश होता है। हाट, बाजार एवं व्यावसायिक स्थलोंमें इसका निवास है। यह पुरुषजाति, चरसंज्ञक, वायुतत्त्व, श्यामवर्ण, दिवाबली, शूद्रसंज्ञक, क्रूर एवं पश्चिम दिशाकी स्वामिनी होती है। ऐसे जातक विचारशील, शास्त्रोंमें अभिरुचिवाले, जिज्ञासु, राजनीतिपटु तथा अपना कार्य सिद्ध करनेमें दक्ष होते हैं। कालपुरुषके शरीरमें नाभिसे नीचेके अंगोंका विचार इसीसे किया जाता है।

वृश्चिक—इसकी आकृति बिच्छूके समान होती है। कालपुरुषके शरीरमें गुह्य स्थानोंमें इसका आधिपत्य होता है। यह राशि स्त्रीजातक, स्थिरसंज्ञक, जलतत्त्व, शुभ्रवर्णी, उत्तर दिशाकी स्वामिनी, ब्राह्मणवर्णी, कफप्रकृति एवं बहुसन्ततियुक्त है। इस राशिके जातक दृढ़निश्चयी, तीक्ष्ण वाणीयुक्त एवं स्पष्टवक्ता होते हैं। शरीरकी लम्बाई एवं जननेन्द्रियका विचार इसी राशिसे किया जाता है।

धनु—इस राशिकी आकृतिका ऊपरी भाग धनुष लिये मनुष्यका एवं कमरसे नीचेका भाग घोड़ेके समान होता है। दोनों जाँघोंपर इसका आधिपत्य है। यह राशि पुरुषजाति, द्विस्वभाव, पित्तप्रकृति, क्षत्रियवर्ण, अग्नितत्त्व, अल्पसन्तति एवं पूर्व दिशाकी स्वामिनी होती है। इस राशिके जातक दयालु, परोपकारी, ईश्वरभक्त, अधिकारप्रिय एवं मर्यादित होते हैं।

मकर—मगर-जैसी आकृतिवाले मकर राशिका कालपुरुषके शरीरमें दोनों घुटनोंपर अधिकार माना जाता है। यह चरस्वभाव, स्त्रीराशि, वातप्रकृति, पृथ्वीतत्त्व, रात्रिबली, पिंगलवर्णी एवं दक्षिण दिशाकी स्वामिनी है। इस राशिके स्वामी शनिदेव हैं। शनिको नवग्रहोंमें भृत्यकी संज्ञा प्राप्त होनेसे कर्तव्यपरायणता एवं उच्च अभिलाषिता इसका विशेष गुण है।

कुम्भ—इस राशिकी आकृति कन्धेपर घड़ा लिये पुरुषकी है। दोनों पिण्डलियोंपर इसका अधिकार है। यह पुरुषजाति, स्थिर, विचित्रवर्णी, वायुतत्त्व, दिवाबली एवं पश्चिम दिशाकी स्वामिनी है। शिल्पचातुर्य, वैज्ञानिकता, अन्वेषणशीलता इसके विशेष गुण होते हैं। आँतोंका विचार इस राशिसे किया जाता है।

मीन—कालपुरुषके शरीरके दोनों पैरोंमें इसका स्थान माना जाता है। मुँह एवं पूँछसे जुड़ी दो मछलियोंकी आकृतिके समान इसका स्वरूप होता है। यह स्त्रीजाति, कफप्रकृति, द्विस्वभाव, जलतत्त्व, विप्रवर्ण, रात्रिबली, पिंगलवर्ण एवं उत्तर दिशाकी स्वामिनी है। परोपकार, दयालुता एवं दानशीलता इस राशिके विशेष गुण हैं। इस राशिसे पैरोंका विचार किया जाता है।

उपर्युक्त राशियोंके जो स्वाभाविक गुण बताये हैं, वे सभी गुण इन राशियोंमें जन्म लेनेवाले जातकोंमें पाये जाते हैं। यदा-कदा इसमें कुछ परिवर्तन भी देखनेको मिलते हैं, जिसका कारण जन्मांगचक्रमें ग्रहोंकी स्थिति एवं दृष्टिपात होता है। जातककी समस्याका अन्वेषण करने, फलकथन एवं विशेषरूपसे मेलापकमें इसका उपयोग किया जाता है।

बारह राशियोंके जातकका स्वरूप

(डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी श्रीवास्तव, साहित्यवाचस्पति)

विश्वकी ज्योतिषीय गणनामें नवग्रहों और बारह राशियोंका उल्लेख है। सभी ग्रहोंके राजा सूर्य हैं। अन्य ग्रह हैं—चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु। बारह राशियाँ हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। जिस राशिमें चन्द्रमा होता है, वही जातककी राशि होती है।

१-मेषराशिके जातकका स्वरूप

मेषराशिमें चन्द्रमाके विद्यमान होनेपर जातकके लिये कहा गया है—

लोलनेत्रः सदा रोगी धर्मार्थकृतनिश्चयः।
पृथुजङ्घः कृतघ्नश्च निष्पापो राजपूजितः॥
कामिनीहृदयानन्दो दाता भीतो जलादपि।
चण्डकर्मा मृदुश्चान्ते मेषराशौ भवेन्नरः॥

(मानसागरी १। २६६-२६७)

अर्थात् जिस जातकका जन्म मेषराशिके चन्द्रमामें होता है, वह चंचल नेत्रोंवाला, प्रायः रोगी, धर्म और धन दोनोंका मूल्यांकन करनेवाला, भारी जंघाओंवाला, कृतघ्न, पापरहित, राजाको मान्य, कामिनियोंको आनन्दित करनेवाला, दानी, जलसे भयभीत रहनेवाला और कठोर कार्य करनेवाला परंतु अन्तमें विनम्र होता है।

२-वृषराशिके जातकका स्वरूप

जिस जातकका जन्म वृषराशिमें विद्यमान चन्द्रमें होता है, उसका फल इस प्रकार बताया गया है—

भोगी दाता शुचिर्दक्षो महासत्त्वो महाबलः।
धनी विलासी तेजस्वी सुमित्रश्च वृषे भवेत्॥

(मानसागरी १। २६८)

अर्थात् वृषराशिस्थित चन्द्रमें जन्म लेनेवाला जातक भोगी, दानी, पवित्र, कुशल, सत्त्वसम्पन्न, महान् बली, धनवान्, भोगविलासरत, तेजस्वी और अच्छे मित्रोंवाला होता है।

३-मिथुनराशिके जातकका स्वरूप

मिष्टवाक्यो लोलदृष्टिर्दयालुर्मैथुनप्रियः।
गान्धर्ववित्कण्ठरोगी कीर्तिभागी धनी गुणी॥
गौरो दीर्घः पटुर्वक्ता मेधावी च दृढव्रतः।
समर्थो न्यायवादी च जायते मिथुने नरः॥

(मानसागरी १। २६९-२७०)

अर्थात् मिथुनराशिमें जन्म लेनेवाला जातक मृदुभाषी, चंचलदृष्टि, दयालु, कामुक, संगीतप्रेमी, कण्ठरोगी, यशस्वी, धनी, गुणवान्, गौरवर्ण एवं लम्बे शरीरवाला, कार्यकुशल, वक्ता, बुद्धिमान्, दृढसंकल्प, सभी प्रकारसे समर्थ और न्यायप्रिय होता है।

४-कर्कराशिके जातकका स्वरूप

कार्यकारी धनी शूरो धर्मिष्ठो गुरुवत्सलः।
शिरोरोगी महाबुद्धिः कृशाङ्गः कृत्यवित्तमः॥
प्रवासशीलः कोपान्धोऽबलो दुःखी सुमित्रकः।
अनासक्तो गृहे वक्रः कर्कराशौ भवेन्नरः॥

(मानसागरी १। २७१-२७२)

अर्थात् चन्द्रके कर्कराशिमें होनेपर जो जातक जन्म लेता है, वह जातक कार्य करनेवाला, धनवान्, शूर, धार्मिक, गुरुका प्रिय, सिरसे रोगी, अतीव बुद्धिमान्, दुर्बल शरीरवाला, सभी कार्योंका ज्ञाता, प्रवासी, भयंकर क्रोधी, निर्बल, दुःखी, अच्छे मित्रोंवाला, गृहमें अरुचि रखनेवाला तथा कुटिल होता है।

५-सिंहराशिके जातकका स्वरूप

क्षमायुक्तः क्रियाशक्तो मद्यमांसरतः सदा।
देशभ्रमणशीलश्च शीतभीतः सुमित्रकः॥
विनयी शीघ्रकोपी च जननीपितृवल्लभः।
व्यसनी प्रकटो लोके सिंहराशौ भवेन्नरः॥

(मानसागरी १। २७३-२७४)

अर्थात् सिंहराशिमें चन्द्रके विद्यमान होनेपर जातक क्षमाशील, कार्यमें समर्थ, मद्य-मांसमें सदैव आसक्त, देशमें भ्रमण करनेवाला, शीतसे भयभीत, अच्छे मित्रोंवाला, विनयशील, शीघ्र क्रुद्ध होनेवाला, माता-पिताका प्रिय, व्यसनी (नशा आदि बुरे कार्योंमें अभ्यस्त) तथा संसारमें प्रख्यात होता है।

६-कन्याराशिके जातकका स्वरूप

विलासी सुजनाह्लादी सुभगो धर्मपूरितः।
दाता दक्षः कविर्वृद्धो वेदमार्गपरायणः॥
सर्वलोकप्रियो नाट्यगान्धर्वव्यसने रतः।
प्रवासशीलः स्त्रीदुःखी कन्याजातो भवेन्नरः॥

(मानसागरी १। २७५-२७६)

कन्याराशिमें उत्पन्न व्यक्ति विलासी, सज्जनोंको आनन्दित करनेवाला, सुन्दर, धर्मसे परिपूर्ण, दानी, निपुण, कवि, वृद्ध, वैदिक मार्गका अनुगामी, सभी लोगोंका प्रिय, नाटक, नृत्य और गीतकी धुनमें आसक्त, प्रवासी एवं स्त्रीसे दुःखी होता है।

७-तुलाराशिके जातकका स्वरूप

अस्थानरोषणो दुःखी मृदुभाषी कृपान्वितः।
चलाक्षश्चललक्ष्मीको गृहमध्येऽतिविक्रमः॥
वाणिज्यदक्षो देवानां पूजको मित्रवत्सलः।
प्रवासी सुहृदामिष्टस्तुलाजातो भवेन्नरः॥

(मानसागरी १। २७७-२७८)

तुलाराशिमें उत्पन्न व्यक्ति अकारण क्रोध करनेवाला, दुःखी, मधुरभाषी, दयालु, चंचल नेत्रों एवं अस्थिर धनवाला, घरमें ही पराक्रम दिखानेवाला, व्यापारमें चतुर, देवताओंका पूजन करनेवाला, मित्रोंके प्रति दयालु, परदेशवासी तथा मित्रोंका प्रियपात्र होता है।

८-वृश्चिकराशिके जातकका स्वरूप

बालप्रवासी क्रूरात्मा शूरः पिङ्गललोचनः।
परदाररतो मानी निष्ठुरः स्वजने भवेत्॥
साहसप्राप्तलक्ष्मीको जनन्यामपि दुष्टधीः।
धूर्तश्चौरकलारम्भी वृश्चिके जायते नरः॥

(मानसागरी १। २७९-२८०)

वृश्चिकराशिमें उत्पन्न व्यक्ति बाल्यावस्थासे ही परदेशमें रहनेवाला, क्रूर स्वभाववाला, शूर, पीले नेत्रोंवाला, परस्त्रीमें आसक्त, अभिमानी, अपने भाई-बन्धुओंके प्रति निर्दयी, अपने साहससे धन प्राप्त करनेवाला, अपनी माताके प्रति भी दुष्टबुद्धिवाला, धूर्तता और चोरीकी कलाका अभ्यास करनेवाला होता है।

९-धनुराशिके जातकका स्वरूप

शूरः सत्यधिया युक्तः सात्त्विको जननन्दनः।
शिल्पविज्ञानसम्पन्नो धनाढ्यो दिव्यभार्यकः॥
मानी चरित्रसम्पन्नो ललिताक्षरभाषकः।
तेजस्वी स्थूलदेहश्च धनुर्जातः कुलान्तकः॥

(मानसागरी १। २८१-२८२)

यदि धनुराशिगत जन्म हो तो शूर, सत्य बुद्धिसे युक्त, सात्त्विक, मनुष्योंके हृदयको आनन्दित करनेवाला, शिल्प (मूर्तिकला)-विज्ञानसे सम्पन्न, धनसे युक्त, सुन्दर स्त्रीवाला, अभिमानी, चरित्रवान्, सुन्दर शब्दोंको बोलनेवाला, तेजस्वी, मोटे शरीरवाला तथा कुलका नाशक होता है।

१०-मकरराशिके जातकका स्वरूप

कुले नष्टो वशः स्त्रीणां पण्डितः परिवादकः।
गीतज्ञो ललिताग्राह्यो पुत्राढ्यो मातृवत्सलः॥
धनी त्यागी सुभृत्यश्च दयालुर्बहुबान्धवः।
परिचिन्तितसौख्यश्च मकरे जायते नरः॥

(मानसागरी १। २८३-२८४)

मकरराशिमें जन्म लेनेवाला व्यक्ति अपने कुलमें नष्ट (सबसे हीन अवस्थावाला), स्त्रियोंके वशीभूत, विद्वान्, परनिन्दक, संगीतज्ञ, सुन्दर स्त्रियोंका प्रियपात्र, पुत्रोंसे युक्त, माताका प्रिय, धनी, त्यागी, अच्छे नौकरोंवाला, दयालु, बहुत भाइयों (परिवार)-वाला तथा सुखके लिये अधिक चिन्तन करनेवाला होता है।

११-कुम्भराशिके जातकका स्वरूप

दातालसः कृतज्ञश्च गजवाजिधनेश्वरः।
शुभदृष्टिः सदा सौम्यो धनविद्याकृतोद्यमः॥
पुण्याढ्यः स्नेहकीर्तिश्च धनभोगी स्वशक्तितः।
शालूरकुक्षिर्निर्भीकः कुम्भे जातो भवेन्नरः॥

(मानसागरी १। २८५-२८६)

यदि कुम्भराशिमें जन्म हो तो मनुष्य दानी, आलसी, कृतज्ञ, हाथी, घोड़ा और धनका स्वामी, शुभ दृष्टि एवं सदैव कोमल स्वभाववाला, धन और विद्याहेतु प्रयत्नशील, पुत्रसे युक्त, स्नेहयुक्त, यशस्वी, अपनी शक्तिसे धनका उपभोग करनेवाला, मेढककी तरह उदरवाला तथा निर्भीक होता है।

१२-मीनराशिके जातकका स्वरूप

गम्भीरचेष्टितः शूरः पटुवाक्यो नरोत्तमः।
कोपनः कृपणो ज्ञानी गुणश्रेष्ठः कुलप्रियः॥
नित्यसेवी शीघ्रगामी गान्धर्वकुशलः शुभः।
मीनराशौ समुत्पन्नौ जायते बन्धुवत्सलः॥

(मानसागरी १। २८७-२८८)

जिसका जन्म मीनराशिमें होता है, वह गम्भीर चेष्टा करनेवाला, शक्तिशाली, बोलनेमें चतुर, मनुष्योंमें श्रेष्ठ, क्रोधी, कृपण, ज्ञानसम्पन्न, श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त, कुलमें प्रिय, नित्य सेवाभाव रखनेवाला, शीघ्रगामी, नृत्य-गीतादिमें कुशल, शुभ दर्शनवाला तथा भाई-बन्धुओंका प्रेमी होता है।

प्रायौगिक विज्ञानसिद्ध-द्रष्टलग्न या भावलग्न

[एक संक्षिप्त परिचय]

(श्रीवासुदेवजी)

ज्योतिषविषयक इस अनुसन्धान युगमें भी लोग अदृष्टफलकाम्य जन्म-यात्रा-विवाहादि सत्कार्योंमें भी केवल दृष्टफलोपयुक्त लग्नका ही प्रयोग कर रहे हैं, जो शास्त्रविरुद्ध तथा प्रत्यक्षयुक्तिसे भी कितना असंगत है, फल नहीं मिलनेका एक प्रमुख कारण यह भी कहा जा सकता है।

नक्षत्राणां समूहो यः स राशिरिति कथ्यते।
भवृत्तस्यार्कभागोऽपि राशिरेवाभिधीयते॥

आकाशमें जो नक्षत्रों (ताराओं)-के समूह हैं, उन्हें ही राशि कहते हैं एवं क्रान्तिवृत्तके बारहवें भागको भी राशि ही कहते हैं। सूर्य अपनी पूर्वाभिमुखगतिसे जिस मार्गसे चलता हुआ प्रतीत होता है, उसे भवृत्त या क्रान्तिवृत्त कहते हैं। उसके निकटस्थित रेवतीतारान्त बिन्दुसे क्रान्तिवृत्तके तुल्य १२ भाग मेषादि नामसे १२ राशियाँ कही जाती हैं। मेषादि प्रतिराशिके आदि और अन्तर्गत दो-दो कदम्बप्रोतवृत्तके बीचमें जितने नक्षत्र-समूह हैं, उन सबोंकी मेष आदि राशि ही संज्ञा है। वे नक्षत्रबिम्बोंके समूह राशिका शरीर तथा क्रान्तिवृत्तमें राशिके स्थान कहे जाते हैं। इसलिये स्थान और बिम्ब (देह)-भेदसे राशि दो प्रकारकी होती है। उनमें नक्षत्र-बिम्बसमूहरूप राशि तो प्रत्यक्ष दृश्य है तथा स्थानरूप राशि तो क्रान्तिवृत्तस्थित बिन्दुरूप है।

कोशकारोंने राशियोंके उदयको लग्न नाम कहा है, वे क्षितिजमें लगनेके कारण अन्वर्थसंज्ञक हैं। राशियोंके दो भेद होनेके कारण लग्न भी दो प्रकारके होते हैं—एक भबिम्बीय (नक्षत्रबिम्बोदयवश), द्वितीय भवृत्तीय (क्रान्तिवृत्तीय स्थानोदयवश)। उन दोनों प्रकारके लग्नोंमें—जन्म-यात्रा-विवाह, यज्ञादि सत्कर्मोंमें भबिम्बीय लग्न फलप्रद होते हैं तथा ग्रहण आदि (ग्रह-नक्षत्र बिम्बोदयास्त) प्रत्यक्ष विषयके कालादि ज्ञानके लिये भवृत्तीय लग्नके प्रयोजन होते हैं। अतएव 'अदृष्टफल-सिद्ध्यर्थ' विवाह-यात्रादि कार्यमें बिम्बीय लग्न और ग्रहणादि कालज्ञानार्थ स्थानीय लग्नको ग्रहण करना चाहिये।

इसकी उपपत्ति यह है कि राशिके बिम्बोंके क्षितिजमें उदय होनेसे उसकी किरणें पृथ्वीपर फैलती हैं। उन किरणोंके गुण (शुभ या अशुभ)-का प्रभाव समय और प्राणियोंपर पड़ता है, इसलिये अदृष्ट-फलप्राप्तिकी कामनासे यात्रा-विवाहादिमें बिम्बीयलग्न ग्रहण करनेका मुनियोंने आदेश किया है तथा भवृत्तीय (बिन्दुरूप) लग्नसे ग्रहणमें ग्रास-स्पर्श-मोक्षादि कालका सूक्ष्म ज्ञान होता है, इसलिये दृष्टविषय-ज्ञानार्थ अपने-अपने स्थानीय उदयमानसिद्ध भवृत्तीय लग्नका उपयोग करनेका आदेश है।

मुनियोंने बिम्बोदय (लग्न)-से तनु-धन आदि भावोंके फलज्ञानार्थ तुल्यमानसे १२ भावोंकी कल्पना की है। इसलिये ही बिम्बीय लग्नका भावलग्न नाम रखा गया है। उन बारह राशियोंके उदयमान तुल्य ५, ५ घटी होते हैं। इसलिये समस्त पृथ्वीपर जन्म लेनेवालोंके शुभाशुभ फल जाननेके लिये सर्वत्र ५ घटी मानसे ही १२ भावोंका साधन किया है।

मुनियोंने ग्रहणादिज्ञानार्थ गणित (सिद्धान्त)-स्कन्धमें क्रान्तिवृत्तीय लग्न ग्रहण किया है। प्राणियोंको अपनी-अपनी दृष्टिसे ही कोई दृश्य पदार्थ प्रत्यक्ष होता है, इसलिये सिद्धान्तस्कन्धमें अपने-अपने स्थानीय भवृत्तीय राश्युदयद्वारा लग्न साधन किया है।

प्राणियोंको सदा राशिके बिम्बवश ही शुभाशुभ फलकी प्राप्ति होती है, क्रान्तिवृत्तगत बिन्दुरूपस्थानसे नहीं। जिस समय भवृत्तीय स्थान-बिन्दुओंका अपने-अपने क्षितिजमें उदय होता है, उस समय सब नक्षत्रोंके बिम्बोंका उदय नहीं होता है। स्थानके उदय समयमें नक्षत्रोंके बिम्ब अपने-अपने शरके द्वारा या तो क्षितिजसे ऊपर अथवा क्षितिजसे नीचे रहते हैं। २४ से अधिक अक्षांश देशमें सब नक्षत्रोंकी सदा ही यही स्थिति रहती है; (क्योंकि अश्विन्यादि सब नक्षत्रोंके कुछ-न-कुछ शर उपलब्ध होते ही हैं)। इसी (ऊपर कहे हुए) हेतुसे दृष्टफल (ग्रहण, ग्रहबिम्बोदयादि) ज्ञानके लिये स्वस्वदेशोदयसिद्ध स्थानीय लग्न तथा अदृष्ट (विवाह-यात्रादिमें शुभाशुभ) फलज्ञानार्थ बिम्बीयभावलग्नका साधन मुनियोंने किया।

मुनियोंके कहे हुए तत्त्वको न जानकर प्रमाद या कुतर्क अथवा स्वदेशोदयसिद्धलग्नको स्पष्ट (भावलग्नसे अच्छा) होनेके भ्रमसे स्वदेशोदयसिद्धलग्नसे ही आर्ष-विरुद्ध द्वादशभावोंका साधन प्रकार (लग्नोनतुर्यतः षष्ठांशयुक् इत्यादि) बनाया। फिर सहसा (इस प्रकारमें दोषोंको बिना विचारे ही प्रमादवश) बहुत-से ज्योतिषी भी उसके अनुयायी बन गये एवं भारतपर यवनोंके आक्रमणसे परतन्त्र हो जानेपर सब ज्योतिषियोंने इसी मतको अपनाया, फिर नीलकण्ठ आदि भी अपने ज्ञानरूप नेत्रको मूँदकर चलने लगे, जो परम्परा-सी बन गयी। तदनन्तर इस अनर्थको देखकर ज्योतिर्वित्कमलवनमें सूर्यके समान श्रीकमलाकरभट्टने अपने 'तत्त्वविवेक' नामक अति श्रेष्ठ सिद्धान्त ज्योतिषग्रन्थमें उन ज्योतिषियोंकी निन्दा करते हुए जिस प्रकार अपना मत कहा है, उसको कहते हैं। यथा—

महर्षियोंने अपने-अपने ग्रन्थमें लग्नके अंशतुल्य ही (लग्नराश्यादिमें एक-एक राशि जोड़कर) अंशवाले तुल्य उदयमानसे जो द्वादशभावोंका साधन किया है—हे ग्रहगोलज्ञ! सर्वदा फल (अदृष्ट फल) ज्ञानार्थ उन्हीं भावोंको ग्रहण करना चाहिये। उन मुनियोंके कहे हुए भावोंसे १५ अंश पूर्वसे १५ अंश आगेतक (पूरे ३० अंशके भीतर) उस भावका फल कहा गया है, किंतु लोकमें अनार्ष (आर्षविरुद्ध स्वस्वोदयमानसिद्ध) जो द्वादशभावोंको (अपने कुतर्कद्वारा) कल्पना की गयी है, उन भावोंको फलकथन (विवाह-यात्रादि)-में कभी भी उपयुक्त नहीं मानना चाहिये। इस प्रकार भट्टका कहना सर्वथा सत्य और युक्तिसंयुक्त है, इसका कारण पूर्वमें कहा जा चुका है तथा और भी सुनिये।

पृथ्वीपर रहनेवाले सबके क्षितिजमें जिस प्रकार बिम्बीय १२ राशियोंके उदय सर्वदा होते ही हैं, उस प्रकार स्थानीय (भवृत्तीय) सब राशियोंके उदय नहीं होते हैं। भूगोलमें रेखारूप क्रान्तिवृत्तकी स्थिति पूर्वापर-रूप है। अतः भचक्रके पूर्वापर भ्रम होनेके कारण सर्वत्र सबके क्षितिजमें क्रान्तिवृत्तीय सब राशियोंके उदय नहीं होते हैं, किंतु बिम्बीय राशियोंकी स्थिति दक्षिणोत्तर भावसे (उत्तर कदम्बसे दक्षिण कदम्बतक) सावयवरूप फैली हुई हैं, इसलिये भचक्रके पूर्वापर भ्रमण होनेके कारण पृथ्वीपर रहनेवाले सबके क्षितिजमें सब बिम्बीय राशियोंके उदय होते ही हैं। यह विषय गोलगणितज्ञजन अच्छी तरह जानते हैं। किसी स्थानमें १० ही स्थानीय राशियोंके उदय होते हैं तो कहीं ८, कहीं ६, कहीं ४, कहीं २ के और कहीं एक ही राशिका सदा उदय होता है। इस विषयको

अच्छी तरह गोलज्ञजन जानते हैं। ऐसी स्थिति है तो जिस स्थानमें सब राशियोंके उदय नहीं होते हैं—वहाँ द्वादशभावोंकी सिद्धि किस प्रकार हो सकती है!

इस पृथ्वीपर ६६ अक्षांश स्थानमें जब कदम्ब-तारा नित्य खमध्यमें आता है तो एक साथ १२ राशियोंका उदय होता है, उस समय वहाँ कौन लग्न माना जाय? राशिका आधा (१५ अंश) होरा होती है। इस बातको सब मानते हैं, इसलिये राशि-लग्नोदयमानका आधा होरालग्नोदयमान होना चाहिये। यह भी सब पण्डित जानते हैं। जब होरालग्नका उदयमान अढ़ाई घटी हो तो लग्नका मान पाँच घटी ही होना चाहिये। इस स्वतः सिद्ध बातको एक बालक (अबोध) भी जान सकता है, फिर बुद्धिमान्‌की तो बात ही क्या? इस प्रकार अदृष्टफलार्थ स्वस्वोदयलग्नमें अनेकों असंगतियाँ हैं।

जैमिनिमतसे आयुर्दाय साधन करनेमें सभी विज्ञजन होरालग्न तो मुन्युक्त (अढ़ाई घड़ी मान सिद्ध) लेकर विचार करते हैं, किंतु वहाँ लग्नमान स्वदेशोदयसिद्ध लेते हैं, इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है? जहाँ पलभा १३ है, वहाँ होरालग्नके उदयमानसे स्वोदयसिद्ध पूर्णलग्नका मान अल्प हो जाता है क्या यह महा आश्चर्य नहीं है? एवं जहाँ पलभा २८ है, वहाँ मीन और मेषका स्वदेशोदय पल शून्यसे भी अल्प हो जाता है, वहाँ स्वोदयद्वारा किस प्रकार भावोंकी सिद्धि हो सकती है और भी मुनियोंका कथन है कि मीन लग्नके अन्त और मेष लग्नके आरम्भमें आधा-आधा घटी लग्नगण्डान्त होता है। उसको सब सत्कार्योंमें त्याग देना चाहिये, किंतु जहाँ स्वदेशोदय सिद्ध लग्नमान गण्डान्त घटीके तुल्य या उससे भी अल्प हो तो वहाँ मुनि-वचनोंकी संगति किस प्रकार हो सकती है? यदि यह कहा जाय कि यह शास्त्र उस स्थानवासियोंके लिये नहीं कहा गया है तो ऐसा कहना भी मूर्खोंके कथनके समान ही समझा जायगा; क्योंकि षडंग (ज्योतिष आदि) सहित वेद और पुराण समस्त पृथ्वीस्थित प्राणियोंके हितार्थ कहे गये हैं—किसी एक व्यक्तिके लिये नहीं। इसीलिये पूर्व समय (भारतमें प्रायः वराहमिहिरके समयतक) सब अदृष्ट फलार्थ (विवाहयात्रा-जातकादि फल-ज्ञानार्थ) बिम्बीय (भाव) लग्न ही प्रयोग करते थे।

भवनाधिपैः समस्तं जातकविहितं विचिन्तयेन्मतिमान्।
एभिर्विना न शक्यं पदमपि गन्तुं महाशास्त्रे॥

भाव-लग्न-साधन प्रकार—यात्रा-यज्ञ-विवाह-जातकादिके शुभाशुभफल-ज्ञानार्थ मुनियोंने जिस लग्नका आदेश और उसका साधन जिस प्रकार बतलाया है, उसे साधारणजनोंके उपकारार्थ सोदाहरण दिया जाता है—स्वभावतः प्राणियोंके मनमें सामान्यतया शरीर, धन, पराक्रम, सुख, सन्तान, आरोग्य, स्त्री, आयु, धर्म, कर्म, आय और व्यय इन भावोंका उदय हुआ करता है, उसका शुभाशुभत्व मुख्यतया जिस कालके द्वारा होता है, उसको भाव लग्न कहते हैं। सूर्योदयके अनन्तर ६० घटीमें १ भचक्र भ्रमण होनेके कारण १२ राशियोंके उदय हो जाते हैं। अतः नाक्षत्र अहोरात्रमें ६० घटी होनेके कारण ५, ५ घटीमें एक-एक भाव राशिका उदय हुआ करता है। पूर्वमें कहा जा चुका है कि लग्न दो प्रकारके होते हैं। उनमें अपनी-अपनी दृष्टिवश (अपने-अपने स्थानीय राश्युदयद्वारा सिद्ध) जिस लग्नसे ग्रहणादिकी गणना होती है, वह केवल 'लग्न' शब्दसे बोधित किया गया है तथा जिससे उपर्युक्त भावोंके फलका ज्ञान होता है, वह 'भावलग्न' शब्दसे व्यवहृत है। उसके अन्तर्गत उसीके सूक्ष्म अवयव आधा और पंचमांशके उदय होरालग्न तथा घटीलग्न नामसे व्यवहृत हैं।

लग्न-साधन प्रकार—सूर्योदयसे घट्यादि इष्टकालमें ५ का भाग देकर लब्धिराश्यादि फलको औदयिक सूर्यमें जोड़नेसे स्पष्ट भावलग्न होता है।

होरालग्न साधन-प्रकार—अढ़ाई घटीमानसे जिसका उदय होता है, उसे होरालग्न कहा गया है। उसका साधन-प्रकार यह है कि इष्ट घटीपलको २ से

गुणा करके उसमें ५ के भाग देनेसे जो अंशादि लब्धि हो, उसको उदयकालिक सूर्यमें जोड़नेसे राश्यादि होरालग्न होता है।

घटीलग्न-साधन—सूर्योदयसे आरम्भ करके अभीष्टकालपर्यन्त एक-एक घटी मानसे जो बीतता है, उसको नारदादि महर्षियोंने घटीलग्न कहा है, उसका साधन प्रकार यह है कि इष्टकाल जितनी घटी हो उतनी राशिसंख्या तथा जितने पल हो, उसके आधा अंशादि मानकर औदयिक सूर्यमें जोड़नेसे राश्यादि घटीलग्न स्पष्ट हो जाता है। सूर्यमें राश्यादि फल जोड़नेसे १२ से अधिक हो तो उसे १२ से घटा लेना चाहिये।

भावलग्न साधनोदाहरण—औदयिक सूर्य ५।२४।१४।४८ सूर्योदयसे इष्टघटीपल ११।१३, इसमें ५ के भाग देनेसे राश्यादि २।७।१८ लब्धिको औदयिक सूर्यमें जोड़नेसे ८।१।३२।४८, यह राश्यादि भावलग्न अर्थात् तनुभाव हुआ। इसमें १५ अंश जोड़नेसे सन्धि होती है और लग्नमें १ राशि जोड़नेसे ९।१।३२।४८, यह द्वितीय भाव एवं आगे भी सन्धि और भाव समझना चाहिये।

लग्नचक्र लिखनेकी रीति—१२ कोष्ठोंका एक चक्र बनाकर उसके प्रथम (सामनेवाले) कोष्ठमें लग्न राशिको लिखकर आगे क्रमसे सब राशियोंको लिखे, फिर जो ग्रह जिस राशिमें हो, उस राशिमें उसको लिखे।

चलित भावचक्र—इस प्रकार भावोंके फल जाननेके लिये एक भावचक्र पृथक् लिखना चाहिये। उसमें सन्धिसे ग्रह अल्प हो तो पूर्व भावमें, सन्धिसे अधिक हो तो अग्रिम भावमें ग्रहको लिखना चाहिये। यदि सन्धिके अंश तुल्य ग्रहके अंश हों तो उसी सन्धि स्थानमें उस ग्रहको लिखना चाहिये।

दोनों प्रकारकी कुण्डलियोंका प्रयोजन—लग्नराशि चक्रमें स्थित ग्रहोंके उच्च-गृह-नीच-मित्रगृह आदि तथा सूर्यसे वेशि, वोशि आदि एवं चन्द्रमासे अनफा, सुनफादि योग तथा संख्या, आश्रय और नाभस आदि योग, द्विग्रह आदि योग, ग्रहराशियोग आदिका विचार लग्नराशि चक्रसे ही करना चाहिये, किंतु भाव या ग्रहसे केन्द्र, त्रिकोण आदि संज्ञा दोनों ही चक्रमें समझना चाहिये। लग्नसे तनु आदि भावोंमें ग्रहयोग सम्बन्धी जो फल कहे गये हैं, उनको भावचक्रसे समझना चाहिये। भावके अंशादि तुल्य ग्रह हो तो पूर्णफल और सन्धिके अंशादि तुल्य हो तो शून्यफल एवं सन्धि और भावके बीचमें हो तो अनुपातसे फल समझना चाहिये अर्थात् सन्धि ग्रहान्तरांश संख्याको ४ से गुना करनेसे भाव फलका मान होता है। कलादि फल ४० से ऊपर पूर्ण, ४० से नीचे २० तक मध्यम और २० से अल्प हो तो हीन समझा जाता है।

ज्योतिष दृष्टपक्षका पक्षपाती है, किंतु दृष्टका अर्थ भ्रान्ति नहीं है। इसलिये निर्विवाद रूपसे समान अंशोंवाले विभाजनपर आधारित द्वादशभावोंको व्यवहारमें लाना युक्तियुक्त और शास्त्रसम्मत है। इसी प्रक्रियासे प्रतिदिन द्वादशभावोंमें द्वादश लग्नोंकी उपलब्धता हो सकेगी अन्यथा नहीं।

स्थानलग्नवशाद्यस्माद् भावसिद्धिर्न जायते।
तस्मात् जातकयात्रादौ भावलग्नात् फलं वदेत्॥

शनि-पाद-विचार

जन्माङ्गरुद्रेषु सुवर्णपादं द्विपञ्चनन्दे रजतस्य पादम्। त्रिसप्तदिक्ताम्रपदं वदन्ति शेषेषु राशिष्विह लौहपादम्॥
लौहे धनविनाशः स्यात्सर्वसौख्यं च काञ्चने। ताम्रे च समता ज्ञेया सौभाग्यं रजते भवेत्॥

शनिके राशि-परिवर्तनके समय यदि चन्द्रमा १, ६, ११ स्थानमें हो तो स्वर्णपाद, २, ५, ९ में हो तो रजतपाद, ३, ७, १० स्थानमें हो तो ताम्रपाद तथा ४, ८, १२ में हो तो लौहपाद होता है। स्वर्णपाद सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला, रजतपाद सुख-सौभाग्य देनेवाला, ताम्रपाद मध्यम फल देनेवाला एवं लौहपाद धन-धान्यका नाशक होता है।

नक्षत्र-विवेचन

(श्रीअभयजी कात्यायन)

नक्षत्र भारतीय पंचांग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण)-का तीसरा अंग है। **'न क्षरतीति नक्षत्राणि'** अर्थात् जिनका क्षरण नहीं होता, वे 'नक्षत्र' होते हैं। नक्षत्र सदैव अपने स्थानपर ही रहते हैं; जबकि ग्रह नक्षत्रोंमें संचार करते हैं। नक्षत्रोंकी संख्या प्राचीन कालमें २४ थी, जो कि आजकल २७ है। मुहूर्तज्योतिषमें 'अभिजित्' को भी गिनतीमें शामिल करनेसे २८ नक्षत्रोंकी भी गणना होती है। प्राचीन कालमें फाल्गुनी, आषाढ़ा तथा भाद्रपदा—इन तीन नक्षत्रोंमें पूर्वा तथा उत्तरा—इस प्रकारके विभाजन नहीं थे। ये विभाजन बादमें होनेसे २४+३=२७ नक्षत्र गिने जाते हैं। राशियोंके साथ समन्वय करनेकी दृष्टिसे नक्षत्रोंके समान विभाग किये गये हैं; जिनमें प्रत्येक विभाग तेरह अंश, बीस कलाका होता है, परंतु आकाशमें इनका विस्तार वास्तविक रूपमें तुल्य नहीं है। अस्तु, इस आधारपर इनमें चन्द्रमाके रहनेकी अवधि बराबर नहीं होती। इस कारण नक्षत्रोंका विभाजन मुहूर्तोंमें भी किया गया है। कोई नक्षत्र १५ मुहूर्त, कोई ३० मुहूर्त तथा कुछ नक्षत्र ४५ मुहूर्तवाले होते हैं। एक मुहूर्त २ घटी अर्थात् अड़तालीस मिनटका होता है। पंचांगमें जिस नक्षत्रमें चन्द्रमा स्थित होता है, उसीका भोगकाल लिखते हैं। वही दिननक्षत्र होता है।

नक्षत्रोंको अँगरेजीमें कॉन्स्टेलेशन्स (Constellations) कहते हैं। अथर्ववेद (१९।७।१)-में चित्रादि २८ नक्षत्रोंका उल्लेख है—

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्॥

नक्षत्रोंका वर्गीकरण—नक्षत्रोंका वर्गीकरण दो प्रकारसे मिलता है; प्रथम प्राप्त वर्णन उनके मुखानुसार है, जिसमें ऊर्ध्वमुख, अधोमुख तथा तिर्यङ्मुख (तिरछे मुखवाले)—इस प्रकारके तीन वर्गीकरण हैं। दूसरे प्रकारका वर्गीकरण सात वारोंकी प्रकृतिके अनुसार सात प्रकारका प्राप्त होता है। यथा—ध्रुव (स्थिर), चर (चल), उग्र (क्रूर), मिश्र (साधारण), लघु (क्षिप्र), मृदु (मैत्र) तथा तीक्ष्ण (दारुण)। यहाँ संक्षेपमें नक्षत्रोंका कुछ विवेचन प्रस्तुत है—

१-अश्विनी (Beta Arietis)—यह यजुर्वेदियोंका विशेष विवाह-नक्षत्र है। इस प्रथम नक्षत्रके देवता अश्विनीकुमार हैं, जो देवताओंके चिकित्सक हैं। शरत्पूर्णिमाका चन्द्र इसी नक्षत्रमें होता है, अतः इसे शारदीय कहते हैं। इसका अरबी नाम 'शर्ती' है। यह घोड़ेके मुखके आकारका तीन तारोंका पुंज होता है। यह लघु तथा क्षिप्रसंज्ञक तथा तिर्यक्मुख है। अतः इस नक्षत्रमें यन्त्र, मशीनरी, कल-कारखाने, यात्रा, दूरसंचार, कम्प्यूटर, चिकित्सा, औषधि तथा रसायनसम्बन्धी कार्य करने चाहिये। यह तीसमुहूर्ती नक्षत्र है। इसे पुल्लिंग माना जाता है और इसका प्रथम चरण गण्डान्त दोषसे युक्त होता है।

२-भरणी (Arietis)—इस नक्षत्रके देवता यमराज हैं। इसका आकार योनिसदृश होता है। इसमें दो तारे होते हैं। यमराजको संस्कृतमें 'वाटिन' कहते हैं। अतः इसे अरबी भाषामें 'वतीन' कहते हैं। यह पन्द्रहमुहूर्ती नक्षत्र है तथा पुल्लिग है। उग्र तथा क्रूर संज्ञावाला नक्षत्र होनेसे इसमें शुभ कार्य वर्जित हैं। यह अधोमुख नक्षत्र है, अतः इसमें आखेट कर्म तथा आकाशसे धरतीमें प्रहार करनेवाले अस्त्रादिके प्रयोग सफल होते हैं। भरणी नक्षत्रमें सर्पादिका दंश कष्टप्रद होता है।

३-कृत्तिका (Eta Tauri)—इसके स्वामी अग्निदेव हैं। इसे अरबीमें 'सुरैया' कहते हैं। तीस मुहूर्ती यह नक्षत्र क्षुरिकाके आकारका दिखायी देता है। यह अधोमुख नक्षत्र साधारण तथा मिश्रसंज्ञावाला है। इसमें सामान्य कार्य, अग्निस्थापन, यज्ञ-हवनका प्रारम्भ, भट्ठेमें अग्नि डालना, फसलकी कटाई, मड़ाई,

बुवाई आदि कार्य उपयुक्त होते हैं। यह छः तारोंका झुण्ड होता है। यह भी पुल्लिग नक्षत्र है। इसे सूर्यका नक्षत्र कहा जाता है।

४-रोहिणी (Alpha Tauri)—इसके स्वामी ब्रह्मा हैं। इसका अरबी नाम 'दब्बात' है। पाँच तारोंका यह पुंज आकाशमें लम्बे त्रिभुज (बैलगाड़ीके ढाँचे)-की तरह दिखायी देता है। यह पुल्लिग नक्षत्र ध्रुव तथा स्थिर प्रकृतिका एवं ऊर्ध्वमुख है। अतः इसमें समस्त शुभ कार्योंके अतिरिक्त भवन, मकान, मठ, मन्दिरोंकी छतोंका निर्माण, दीवारोंकी चिनाई, बुर्ज, मीनारें, गुम्बद, तोरण, छत्र आदिका निर्माण, अभिषेक, कृत्रिम उपग्रहों, राकेटों तथा अन्तरिक्ष स्टेशनोंको आकाशमें भेजना, नवनिर्मित वायुयानका उड़ाना आदि कार्य शुभ होते हैं। अरबीमें 'दब्बारः' का अर्थ बार-बार घूमनेवाला होता है।

५-मृगशिरा (Lambda Orionis)—यह पुल्लिग नक्षत्र अरबीमें 'हकुआ' कहलाता है। इसके स्वामी चन्द्रदेव हैं। इसमें तीन तारे मृगोंके सिर (तीन सिरों)-की भाँति दिखते हैं। यह मृदु तथा मैत्र स्वभाववाला ३० मुहूर्ती नक्षत्र तिर्यक् मुख है। इस नक्षत्रमें हाथी, घोड़ा, ऊँट, गाड़ी, ट्रैक्टर, ट्रक, दोपहिया वाहन, वायुयान, जलयान, हल जोतना, दौड़ आदिका आयोजन करना उत्तम रहता है। नयी रेलगाड़ीका संचालन तथा नये लोको इंजनका प्रारम्भ इस नक्षत्रमें शुभ रहता है। नौकाविहार, तैराकी, विविध खेलों तथा वनसंचार-जैसे कामोंके लिये भी यह नक्षत्र अनुकूल होता है।

६-आर्द्रा (Alpha Orionis)—इसके स्वामी रुद्र हैं। इस स्त्रीलिंगी नक्षत्रको अरबीमें 'हनजा' कहते हैं। तीक्ष्ण तथा दारुण स्वभावका नक्षत्र होनेसे इसमें शुभ कार्य नहीं किये जाते। यह विषैला नक्षत्र है। इसमें विषाक्त प्राणियों तथा विषाक्त द्रव्योंका सम्पर्क शुभ नहीं होता। यह ऊर्ध्वमुख नक्षत्र है।

७-पुनर्वसु (Beta Geminarium)—इसे अरबीमें 'जिरा' कहते हैं। इसमें ४ तारे घरके आकारके दिखते हैं। यह ४५ मुहूर्ती नक्षत्र स्त्रीलिंगी है। इसकी प्रकृति चर या चल होती है। यह तिर्यक्मुख है। इस नक्षत्रकी स्वामिनी देवमाता अदिति हैं। इस नक्षत्रमें वास्तुकर्म, गृहनिर्माण आदि कार्य उत्तम रहते हैं। औषधनिर्माण, गृहप्रवेश, वधूप्रवेश आदिके लिये यह नक्षत्र अनुकूल होता है। यह नक्षत्र पुनर्वास (Rehablitation) करानेवाला होता है। अतः इसमें गृहका निर्माण, मण्डलों एवं बस्तियोंका उद्घाटन शुभ होता है।

८-पुष्य (Delta Cancri)—इस नक्षत्रके स्वामी देवगुरु बृहस्पति हैं। इस ३० मुहूर्ती नक्षत्रको अरबीमें 'नसरा' कहा जाता है। यह स्त्रीलिंगी, लघु-क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र ऊर्ध्वमुख होता है। विवाहको छोड़कर इस नक्षत्रमें शेष सभी शुभ कार्य किये जा सकते हैं। पुष्यका अर्थ पोषक होता है। गुरुवार तथा रविवारको पुष्य नक्षत्र होनेपर विशेष शुभ फल देता है। इस दिन यदि किसी कार्यका मुहूर्त न निकलता हो तो भी उस कार्यको किया जा सकता है। सोमवार, मंगलवार, बुधवार तथा शनिवारको यह मध्यम फल देता है; परंतु शुक्रवारके दिन यदि पुष्य नक्षत्र हो तो उतने समयतक 'उत्पात' नामक योग होता है। इसमें कोई शुभ कार्य प्रारम्भ नहीं करना चाहिये।

९-श्लेषा (Epsilon Hydrae)—इसे 'आश्लेषा' भी कहते हैं। इसके स्वामी सर्प तथा इसका अरबी नाम 'तुर्फा' है। तीक्ष्ण, दारुण तथा अधोमुख होनेसे यद्यपि इसमें शुभ कर्म नहीं किये जाते; फिर भी बीज बोना, हल जोतना आदि कार्य इसमें किये जाते हैं। यह गण्डान्त नक्षत्र है। इसका अन्तिम चरण जन्म लेनेवालेके लिये अशुभ होता है तथा इसके समाप्ति-समयकी तीन घटी (१ घण्टा १२ मिनट)-का समय विशेष दोषपूर्ण होता है। इसमें जन्म लेनेवाले बालक-बालिकाओंके लिये शान्ति करानी चाहिये।

१०-मघा (Alpha Leonis)—इस नक्षत्रके स्वामी पितर होते हैं। इसे अरबीमें 'जबहा' कहते हैं। यह

तीस-मुहूर्ती स्त्रीलिंगी नक्षत्र है। यह उग्र, क्रूर प्रकृतिका अधोमुख नक्षत्र है और इसमें विवाह किया जाता है। खेती, बाग-बगीचा, वृक्षारोपण, बीजवपन, हलप्रवहणादि कार्य इसमें किये जाते हैं। यह भी गण्डान्त नक्षत्र है। अत: इसके प्रारम्भकी तीन घटी समस्त शुभ कार्योंमें निषिद्ध है। इन घटियोंमें जन्म लेनेवालेको विशेष गण्डान्त दोष होता है। इस नक्षत्रका प्रथम चरण प्रारम्भकी तीन घटियोंके पश्चात् मध्यम दोषकारक होता है और शेष तीन चरण सामान्य दोष करते हैं। इसकी शान्ति करायी जाती है। यह विष-नक्षत्र है।

११-पूर्वाफाल्गुनी (Delta Leonis)—इसमें दो तारे होते हैं और इसे अरबीमें 'जोहरा' कहते हैं, जिसके स्वामी भग देवता होते हैं। यह उग्र-क्रूर प्रकृतिका तीस मुहूर्तवाला अधोमुख नक्षत्र होता है। इसका आकार खाटकी तरह होता है। इसमें कुआँ खोदना, तालाब बनवाना, जमीनका समतलीकरण, सड़क बनाना, रेलवे लाइन बिछाना, खदान प्रारम्भ करना, खदानमें प्रवेश, गुफाका निर्माण आदि कर्म शुभ होते हैं। यह नक्षत्र गणितकार्य, हिसाब-किताब, मुनीमीका कार्य करनेमें अनुकूलता प्रदान करता है। प्राचीन कालमें केवल एक ही फाल्गुनी था, परंतु बादमें ये दो हो गये।

१२-उत्तराफाल्गुनी (Beta Leonis)—इसे अरबीमें 'सर्फा' कहते हैं, इसके स्वामी अर्यमा हैं। इसमें २ तारे होते हैं। इसका आकार पर्यंककी तरह माना गया है। यह ४५ मुहूर्ती ऊर्ध्वमुखी, ध्रुव एवं स्थिर प्रकृतिका नक्षत्र स्त्रीसंज्ञक है। यह विवाहसहित समस्त शुभ कर्मोंके लिये उपयुक्त होता है। यह विद्यादायक नक्षत्र है। अत: इसमें अक्षरारम्भ, विद्यारम्भ, अध्ययन-अध्यापन, पुराण-कथा-प्रवचन, वास्तुकर्म, कूप खोदना, नलकूप लगाना, पुस्तकालय, वाचनालय, विद्यालय, प्रशिक्षण-केन्द्र आदिका प्रारम्भ करना शुभ होता है।

१३-हस्त (Delta Carvi)—इसे अरबीमें 'अव्वाब' कहते हैं, जिसका अर्थ प्रार्थना करनेवाला या माला फेरनेवाला होता है। इसके ५ तारे हाथके पंजेकी आकृतिके होते हैं। यह लक्ष्मीदायक नक्षत्र है और इसके स्वामी सूर्य हैं। तिर्यक्मुख एवं लघु प्रकृतिवाला यह नक्षत्र उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्यके लिये उपयुक्त होता है, लेकिन इसमें विवाह तथा समस्त धर्मकार्य एवं संस्कार किये जाते हैं। जब सूर्य इस नक्षत्रपर रहते हैं, तब यदि वर्षा होती है तो उस वर्षाके कारण गेहूँकी फसल बहुत अच्छी होती है। यज्ञ, हवन, धर्मप्रचार आदिके लिये यह नक्षत्र विशेष अनुकूल रहता है। इसके स्वामी सूर्य हैं।

१४-चित्रा (Spica)—यह अकेला ही चमकदार तारा है, जिसे अरबीमें 'सम्वक' कहते हैं। यह मोती-जैसा दिखता है और इसका स्वामी त्वष्टा है। यह मृदु, मैत्र प्रकृतिका तिर्यक्मुख नक्षत्र शुभ फलदायक होता है। इसमें यन्त्र, कल-कारखाना आदिका प्रारम्भ करना शुभ होता है। यजुर्वेदियोंके लिये यह विवाहनक्षत्र भी है। इसमें साझेदारी करना, मैत्री-सम्बन्ध बनाना, मैत्री-सन्देश, शुभकामना आदि भेजना शुभ होता है। सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक सम्बन्धोंको विस्तृत करनेके लिये इसमें भेंट-मुलाकात करनी चाहिये।

१५-स्वाति (Alpha Bootes)—इसके स्वामी वायुदेव हैं। स्वातिका एक गणतारा प्रवालसदृश होता है। इसे अरबीमें 'गफरा' कहते हैं, जिसका अर्थ वरदान देनेवाला होता है। स्वाति नक्षत्रमें जब सूर्य होता है, तब उसमें होनेवाली वृष्टि फसलके लिये अमृततुल्य लाभकारी होती है। स्वाति नक्षत्र विवाह नक्षत्रोंमेंसे है। यह तिर्यक्मुख चर नक्षत्र है और इसमें समस्त शुभ कार्य किये जा सकते हैं। यात्रा, यानकी सवारी, वाहनोंका क्रय-विक्रय, मुद्रण-यन्त्रोंका आरम्भ—ये समस्त कार्य शुभ होते हैं।

१६-विशाखा (Alpha Librae)—विशाखाके स्वामी इन्द्राग्नि हैं। इसे अरबीमें 'जबअ' कहते हैं। वैशाखकी पूर्णिमाका चन्द्रमा प्राय: विशाखा नक्षत्रमें ही

रहता है। इसमें चार तारे होते हैं। यह अधोमुख नक्षत्र मिश्र तथा साधारण प्रकृतिका होता है। अग्निसम्बन्धी कार्य, जैसे—चूल्हा, स्टोव, गैस, मिट्टीतेल, ईंट-चूनेका भट्ठा, आयुर्वेदीय रस, भस्में तैयार करना, बिजली-सम्बन्धी तथा दूरसंचार आदिका कार्य विशाखा नक्षत्रमें करना श्रेष्ठ होता है।

१७-अनुराधा (Delta Scorpii)—अनुराधाके चार या छः तारे रथके आकारके होते हैं। अनुराधा नक्षत्रमें विवाह, गन्धकर्म—सुगन्धित पदार्थोंका व्यवसाय, हाथी, घोड़ा, ऊँट, दोपहिया या चारपहिया वाहनोंका संचालन तथा इनके लिये गैरेजकी व्यवस्था शुभ होती है। चिकित्साकार्य, सर्जरीका कार्य, शवच्छेदन सीखना आदिके लिये यह नक्षत्र शुभ होता है। हड्डियोंका ऑपरेशन करनेके लिये अनुराधा नक्षत्र शुभ होता है। इसमें प्लास्टर करनेसे हड्डियाँ शीघ्रतापूर्वक जुड़ती हैं। यह मैत्रसंज्ञक नक्षत्र विवाहका नक्षत्र है।

१८-ज्येष्ठा (Alpha Scorpii)—ज्येष्ठकी पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा प्रायः ज्येष्ठा नक्षत्रमें रहता है। यह गण्डान्तका नक्षत्र है। ज्येष्ठाका चतुर्थ चरण अधिक दोषकारक होता है। इसके स्वामी इन्द्र होते हैं। ज्येष्ठाके अन्तकी तीन घटियाँ विशेष दोषपूर्ण होती हैं। इनमें जन्म लेनेवाले जातकके लिये गण्डान्तदोषकी शान्ति करानी चाहिये। राज्याभिषेक, पदग्रहण, शपथग्रहण, शासकीय कर्मचारियोंकी नियुक्तिहेतु ज्येष्ठा नक्षत्र उत्तम होता है।

१९-मूल (Lambda Saggittarii)—मूल नक्षत्रका स्वामी निर्ऋति नामक राक्षस होता है। यह भी गण्डान्त नक्षत्र है। इसका प्रथम चरण तथा उसमें भी प्रारम्भकी तीन घटी विशेष दोषपूर्ण मानी गयी हैं। इसमें जन्म लेनेवाले जातकके लिये शान्तिका अनुष्ठान भी आवश्यक होता है। मूल नक्षत्रमें मंगलकार्य नहीं किये जाते, परंतु विवाह शुभ होता है। इसमें उग्र तथा दारुण कर्म प्रशस्त माने जाते हैं। अस्त्र-शस्त्रोंके अभ्यास एवं क्रय-विक्रयहेतु मूल नक्षत्र ठीक माना गया है। मूलमें ग्यारह या बारह तारे माने जाते हैं।

२०-पूर्वाषाढ़ा (Delta Saggittarii)—पूर्वाषाढ़ामें ४ तारे होते हैं। इसके देवता अप् (जल) हैं। इसीलिये यह नक्षत्र जलकर्मके लिये प्रशस्त माना गया है। तालाब, कुआँ, नहर आदि खोदना, तेलकी लाइन बिछाना, प्याऊ लगाना, पानीकी टंकी लगाना—ये समस्त कार्य पूर्वाषाढ़ामें प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इस नक्षत्रमें उग्र कर्म तथा अग्निकर्म भी किये जा सकते हैं। प्राचीन कालमें दोनों उत्तराषाढ़ा एक ही थे। आषाढ़ मासकी पूर्णिमा तिथिके दिन दोनों आषाढ़ामेंसे कोई-न-कोई आषाढ़ा नक्षत्र अवश्य होता है।

२१-उत्तराषाढ़ा (Sigma Saggittarii)—इस नक्षत्रके स्वामी विश्वेदेव हैं। यह विवाहके नक्षत्रोंमेंसे है। इसमें २ तारे होते हैं। यह ध्रुव-स्थिर प्रकृतिका ऊर्ध्वमुख नक्षत्र है। इसमें क्षत्र (छत), ध्वज, पताका, तोरण, पुल एवं पुलिया बनाना, हल चलाना, बीज बोना, ट्रैक्टर चलाना, रेलवे लाइन बिछाना, सड़क बनाना आदि कर्म अति प्रशस्त हैं। मुकुट आदिके निर्माण एवं धारणहेतु यह नक्षत्र प्रशस्त है। इसमें यानभूमि आदिका निर्माण कराना शुभ होता है। यह बुद्धिप्रदाता नक्षत्र है।

२२-अभिजित् (Vega)—इसके स्वामी ब्रह्माजी हैं। यह नक्षत्र आकाशगंगासे बाहर है, अतः इसकी गिनती मुहूर्तको छोड़कर शेष कार्योंमें नक्षत्रोंके अन्तर्गत नहीं की जाती। इसके तीन तारे त्रिकोणाकृतिवाले दिखते हैं। इसमें यात्रागार (यात्री-प्रतीक्षालय)-का निर्माण विशेष प्रशस्त माना गया है। इसका गणितीय विस्तार राशि ९ अंश ६ तथा कला ४० से राशि ९ अंश १० कला ५३ विकला २० तक होता है। यह आकाशके सर्वाधिक चमकदार तारोंमेंसे एक है।

२३-श्रवण (Alpha Aquilae)—इसमें तीन तारे विष्णुके तीन पगों या कानके आकारके माने जाते हैं। इसमें यज्ञशालाका निर्माण, चौलकर्म (मुण्डन), उपनयन (जनेऊ), कृषिकर्म, कथारम्भ, प्रवचन, धर्मग्रन्थोंका लेखनारम्भ आदि शुभ है। यह चमकीला नक्षत्र है। श्रवण नक्षत्र यजुर्वेदियोंके लिये विवाहका

नक्षत्र है। इसमें यानकी सवारी, पहाड़ोंकी यात्रा आदि करना उत्तम रहता है। इसके स्वामी विष्णुभगवान् कहे गये हैं। यह ऊर्ध्वमुख नक्षत्र है और दूरसंचार-माध्यमोंके उपयोग हेतु शुभ है।

२४-धनिष्ठा (Beta Delphini)—इसके स्वामी वसु हैं। धनमें इसकी स्थिति होनेसे इसे धनिष्ठा कहते हैं। यजुर्वेदियोंके लिये यह विवाहका नक्षत्र है। इसमें चार तारे मृदंगके आकारके होते हैं। इस नक्षत्रमें सभी विद्याओंको सीखना प्रारम्भ किया जा सकता है। बीजवपन आदि कार्यहेतु यह श्रेष्ठ नक्षत्र गिना जाता है। वाहन-प्रयोग, यात्रा, चौलकर्म, उपनयन आदि कार्योंमें यह शुभ माना गया है। रोजगार, व्यवसाय, विपणि, वाणिज्यहेतु भी यह नक्षत्र शुभ होता है।

२५-शतभिषा (Lambda Aquarii)—शतभिषाके स्वामी वरुणदेव हैं। यह नक्षत्र औषधसेवनके लिये अति उत्तम होता है। इसमें मैत्रीकर्म, चुनाव-प्रचार, व्यावसायिक विज्ञापन, क्रय-विक्रय, विपणि, व्यापार, कृषिकार्य, यात्रा आदि कर्म भी अनुकूल रहते हैं। इस नक्षत्रमें जन्म लेनेवाला जातक विद्वान्, कलाकुशल तथा ओजस्वी वक्ता होता है। वह वाद-विवादमें कुशल होता है। गोशाला, गजशाला, अश्वशाला, उष्ट्रशाला, गैरेज आदिके निर्माण एवं प्रवेशके लिये इस नक्षत्रको सर्वथा प्रशस्त माना गया है।

२६-पूर्वाभाद्रपदा (Alpha Pegasi)—इसके स्वामी अजैकपात् नामक देव हैं। इस नक्षत्रको पूर्वाप्रौष्ठपदा भी कहते हैं। इस नक्षत्रमें जलसम्बन्धी कार्य, वापी, कूप, तडाग, नहर आदिके काम, पानीकी टंकी, टैंक आदिका निर्माण प्रशस्त होता है। इसके अतिरिक्त जलपात्र आदिका निर्माण एवं उपयोगहेतु भी यह नक्षत्र उत्तम होता है। भाद्रपद मासकी पूर्णिमाके दिन दोनों भाद्रपद (प्रौष्ठपदा) नक्षत्रोंमेंसे कोई एक अवश्य होता है। यह उग्र एवं क्रूर स्वभावका नक्षत्र होता है।

२७-उत्तराभाद्रपदा (Gamma Pegasi)—इस नक्षत्रके स्वामी अहिर्बुध्न्य हैं। इसमें दो तारे होते हैं तथा इसे 'उत्तरप्रौष्ठपदा' भी कहते हैं। इस नक्षत्रमें गृहत्याग, वानप्रस्थग्रहण, संन्यासग्रहण, भिक्षु होना आदि कार्य किये जाते हैं। इस नक्षत्रमें त्यागसम्बन्धी कार्य सफल होते हैं। यह विवाहका नक्षत्र है। इसमें स्थिर कार्य, कृषिकर्म, वापी, कूप, तडाग आदिका निर्माण, मैत्री-सम्बन्ध जोड़ना, अश्वशालादिका निर्माण, वाहनप्रयोग, भाड़के वाहनका संचालन आदि शुभ होता है।

२८-रेवती (Zeeta Piscium)—इस नक्षत्रके देवता पूषा हैं। ३२ तारोंवाले इस नक्षत्रको 'पौष्ण' भी कहते हैं। इसमें विवाह तथा मैत्रीकर्म एवं धार्मिक कार्य करना प्रशस्त होता है, परंतु धनिष्ठाके उत्तरार्धसे रेवतीपर्यन्त ईंधनका संग्रह, खाट या कुर्सीका बुनना, छत डालना, फर्नीचरका काम इत्यादि कार्य नहीं करना चाहिये। ये नक्षत्रपंचक कहलाते हैं। खेतीका कार्य, मकान बनाना, यात्रा, देवप्रतिष्ठा आदि काम इसमें शुभ होते हैं।

शनिकी साढ़ेसाती

एक राशिपर शनि ढाई वर्ष रहता है। जब शनि जन्मराशिसे १२, १, २ स्थानोंमें हो तो साढ़ेसाती होती है। यह साढ़े सात वर्षतक चलती है, अतएव इसे शनिकी साढ़ेसाती कहते हैं। यह समय प्रायः कष्टदायक होता है। यथा—

द्वादशे जन्मगे राशौ द्वितीये च शनैश्चरः। सार्द्धानि सप्तवर्षाणि तदा दुःखैर्युतो भवेत्॥

शनि गोचरसे बारहवें स्थानपर हो तो सिरपर, जन्मराशिमें हो तो हृदयपर, द्वितीयमें हो तो पैरपर उतरता हुआ अपना प्रभाव डालता है। जन्मराशिसे शनि चतुर्थ, अष्टम हो तो ढैया होती है, जो ढाई वर्ष चलती है। यह भी जातकके लिये कष्टकारी होती है।

लोकमनमें नक्षत्र

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी)

आसमानके सितारोंको देखकर गंगादादीको पता चल जाता था कि भोरके तीन बज गये हैं। मुझे याद है कि मेरे बालमनके इस कुतूहलका समाधान करनेके लिये माँने मुझे बार-बार अँगुलीसे 'सात तरइयोंका पलका' दिखाया था। बड़ी मुश्किलसे सप्तर्षिमण्डलकी पहचान कर पाया। गंगादादीको घड़ी देखना नहीं आता था, पर उन्हें शुक्र तारेकी पहचान थी, मंगलकी पहचान थी, ध्रुव तारेकी पहचान थी। सितारोंसे लोकजीवनकी यह पहचान लोकमान्यताका आधार है।

आकाशमें उत्तर दिशाकी ओर पलंगके पायोंकी तरह चार सितारे चमकते हैं। इस चतुष्कोणके एक छोरपर पूँछकी आकृति बनानेवाले तीन तारे और हैं। यह सात सितारोंका समूह सात ऋषियोंके रूपमें प्रसिद्ध है। ये हैं—भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ। वसिष्ठके पास अरुन्धती नामका सितारा भी है। हमारे गोत्र इन्हीं सात ऋषियोंके नामपर हैं। आसमानमें इनके पास तीन सितारे और भी हैं, इन्हें त्रिशंकु कहते हैं। पुराणोंमें त्रिशंकु नामके राजाकी कहानी है कि उसने महर्षि वसिष्ठसे अनुरोध किया कि मुझे सदेह स्वर्ग पहुँचा दीजिये। महर्षिने इसे असम्भव बतलाया तो त्रिशंकु विश्वामित्रके पास गया। विश्वामित्रने एक महान् यज्ञ किया और तपके बलसे त्रिशंकुका स्वर्गारोहण किया। त्रिशंकु आकाशतक उठ तो गया, पर देवराज इन्द्रने अपने दिव्य बलसे उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। तबसे त्रिशंकु बीचमें ही लटका हुआ है।

जनपदीय लोकवार्तामें त्रिशंकुको तीन गाँठका पैना कहते हैं। पैना बैलोंके हाँकनेका उपस्कर होता है। जनपदीय कहानी है कि आसमानकी सात गाएँ एक ही खेतमें चुग रही थीं। खेतमें नुकसान हो रहा था तो भगवान्ने तीन गाँठका पैना उठाकर दे मारा, तभीसे सप्तर्षिमण्डलके पास त्रिशंकु दिखायी देता है।

सितारोंके सम्बन्धमें एक पहेली है—***एक थालमें सरसों गिनी न जाय***। थाल है आसमान और अगणित तारे सरसोंके दाने हैं। इन अगणित तारोंको लोकमानसने आकृतिके आधारपर पहचाना। सितारोंके बिन्दुओंको मिलानेसे जो भेड़-जैसी आकृति बनी, उसे मेष राशिका नाम दिया, बैल-जैसी आकृति बनी तो वृषभ राशिका नाम दिया, घड़े-जैसी आकृतिको कुम्भ कहा, बिच्छू-जैसी आकृति बनी तो वृश्चिक कहा। बारह राशियोंके अतिरिक्त हिरनी-हिरना, निमंग तारई, तारोंका कुआँ और हाथीकी गैल-जैसे बिम्बोंसे लोकमानसने सितारोंकी पहचान की। आकाशगंगाको जनपदीय जन हाथीकी गैलके रूपमें जानते हैं और इसे महाभारतकी उस कहानीसे जोड़ते हैं कि हस्त नक्षत्रके पर्वपर कौरवोंने माता गान्धारीद्वारा सोनेके हाथीकी पूजा करवायी, किंतु जब पाण्डवमाता कुन्ती हस्तिपूजनको आयीं तो उन्हें रोक दिया। इसपर अर्जुनने स्वर्गसे ऐरावत हाथीको धरतीपर लानेके लिये बाणोंसे हाथीकी गैल बना दी। कुन्तीने ऐरावत हाथीकी पूजा की। यह वही हाथीकी गैल है।

हाथीकी गैलको पितरोंका पंथ भी कहते हैं। आश्विनके महीनेमें यह आकाशगंगा दिखायी देती है। लोकमान्यता है कि पितर देवता (पितृगण) इसी मार्गसे धरतीपर उतरकर श्राद्ध ग्रहण करके तृप्त होते हैं।

लोकमान्यता है कि मरे हुए पुरखे सितारोंमें चमकते हैं और अपने वंशजोंको मंगलमय दृष्टिसे देखते हैं, सितारोंकी चमकमें मृत पूर्वजोंकी उपस्थितिका आभास प्राप्त होता है। मुझे अपने बचपनकी याद है, मेरी दादीका देहान्त हुआ था। दादीके अभावसे जो खालीपन आया, वह सवाल बन गया कि दादीकी आत्मा कहाँ चली गयी? किसनी बुआसे पूछा तो उसने आसमानके एक तारेकी ओर इशारा किया। पता नहीं वह कौन-सा तारा था, पर मुझे याद है मैं घण्टोंतक उस

तारेको ढूँढ़ता रहा, जिसमें मेरी दादी चली गयी। सितारा टूटता है तो माना जाता है कि नये बालकके जन्महेतु आत्मा उतर रही है। तारा टूटे तो उसे अन्यको दिखानेका निषेध है, पर उस क्षण कोई बात सोचकर गाँठ बाँध ली जाती है तो माना जाता है कि वह कामना अवश्य पूरी होगी।

लोकमानस अज्ञातकी व्याख्या ज्ञात बिम्बोंके आधारपर करता है। इन अज्ञात नक्षत्रोंको जाननेके लिये लोकमानसने नक्षत्रोंसे सम्बन्धित अनेक मिथकोंको बुना है। सत्ताईस नक्षत्र प्राचेतस दक्षकी सत्ताईस बेटियाँ हैं, जो चन्द्रमाको ब्याही गयीं। रोहिणी उन सबमें अधिक सुन्दर थी। चन्द्रमा रोहिणीसे विशेष प्रेम करता था। इसपर बहनोंने पिता दक्षसे चन्द्रमाकी शिकायत कर दी। दक्षने चन्द्रमाको क्षयरोग होनेका शाप दिया। चन्द्रमाको क्षय हुआ तो धरती रसविहीन हो गयी, जल सूख गया, वृक्ष-वनस्पति सूख गये, ओषधियाँ नष्ट होने लगीं। देवताओंने दक्षसे कहा, तब दक्षने शापोद्धार किया कि चन्द्रमा पन्द्रह दिन क्षयको प्राप्त होगा और पन्द्रह दिन कलाओंका विस्तार करेगा।

सप्तर्षि-मण्डलके उत्तरमें एक बड़ा चमकता हुआ नक्षत्र है ध्रुव। ध्रुव राजा उत्तानपादका पुत्र था। जब यह राजाकी गोदमें बैठनेको उद्यत हुआ तो सौतेली माँ सुरुचिने उसका तिरस्कार किया। पिताकी गोदसे वंचित बालकका मन व्याकुल हो गया। उसने मधुवनमें जाकर घोर तप किया और भगवान् विष्णुने उसे ध्रुव नक्षत्रमें प्रतिष्ठित कर दिया। सप्तर्षिमण्डल एवं अन्य नक्षत्र ध्रुवको केन्द्रमें करके परिक्रमा करते हैं। ध्रुवको भगवान्‌का परम पद माना गया है।

विवाह-संस्कारमें अनेक विधिविधान कर्मकाण्ड टोने-टोटके और शकुन किये जाते हैं, पर वैवाहिक विधियोंकी सम्पन्नता तभी मानी जाती है, जब वर-वधू ध्रुवका दर्शन करते हैं—

ध्रुवकी तरइया औझप देखी तब धिय देत असीस।
खइयो पीजो मेरे अजुल-बाबुल जीओ लाख बरीस॥

वधू ध्रुवसे प्रार्थना करती है कि—हे ध्रुव! जैसे आप अडिग और दृढ़ हैं, मैं उसी प्रकार पतिके कुलमें दृढ़ता प्राप्त करूँ।

सूरज-चंदाके साथ सितारे लोककलाके अनिवार्य अभिप्राय हैं। मांगलिक अवसरोंपर जो चित्र दीवालपर अंकित किये जाते हैं, उनमें नक्षत्रोंको भी चित्रित किया जाता है। सत्ताईस नक्षत्रोंको वर्णमालासे जोड़ा गया है और बच्चोंका नामकरण उन्हीं अक्षरोंपर किया जाता है। विवाह एवं अन्य मांगलिक कार्य शुक्रके उदय होनेपर ही किये जाते हैं। शुक्र डूबनेपर मांगलिक कार्य नहीं होते।

सितारोंको अधिक टिमटिमाते देखकर ग्रामीण जन आँधी और वर्षाकी सम्भावनाको पढ़ लेते हैं। जब कभी आकाशमें पुच्छलतारा या धूमकेतु दिखायी देता है तो लोकमानसमें धरतीपर अमंगलकी आशंका कौंध जाती है। घाघ और भड्डुलीकी सैकड़ों कहावतें और डाकके वचन गाँवोंमें प्रचलित हैं, जिनमें नक्षत्रोंके खेतीपर पड़नेवाले प्रभावका विवरण है—

जो कहुँ बरसै हाती, गेहूँ लगि है छाती।

हस्त नक्षत्रमें वर्षा होगी तो गेहूँ छाती-छातीतक ऊँचा उगेगा।

पुक्ख पुनर्वसु भरे न ताल, फेर भरेंगे अगले साल।

यदि पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रमें भी जोहड़ और तालाब नहीं भरे तो फिर अगले वर्षकी ही आशा करना।

जो बरसैगी स्वाँत, चरखा चले न ताँत।

यदि स्वाति नक्षत्रमें वर्षा होगी तो कपासकी उपज घट जायगी।

कालविभाजन और कालकी गणनाको लोकजीवनमें ग्रह-नक्षत्रोंके आधारपर ही स्वीकार किया गया है, चाहे सप्ताहके दिनोंका नामकरण हो अथवा महीनोंका। इतना ही नहीं, विवाह-जैसे शुभ कार्यों तथा यात्राओंके मुहूर्त और पुण्यकालकी पहचानके लिये लोकमानस नक्षत्रोंकी गणना करता है। कुम्भस्नान-जैसे पर्व नक्षत्रोंकी गणनापर ही आधारित हैं। विश्वास किया जाता है कि अभिजित्

नक्षत्र और पुष्य नक्षत्रकी नामी यात्रा सफल होती है, परंतु पुष्य, पुनर्वसु नक्षत्रमें स्त्रियाँ चूड़ी नहीं पहनतीं; क्योंकि इन नक्षत्रोंमें चूड़ी पहननेवाली स्त्रीका पति प्रवासी होता है। भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। ज्येष्ठामें पिण्डदानका महत्त्व है।

ग्रह-नक्षत्र मनुष्य और धरतीसे करोड़ों मील दूर हैं, परंतु लोकमानस उन्हें जीवनसे दूर नहीं मानता। लोकमानसका विश्वास है कि ग्रह-नक्षत्र हमारे जीवनको प्रभावित करते हैं। बालकका जन्म जिस नक्षत्रमें हुआ है, इसके आधारपर उसकी जन्मपत्री बनवायी जाती है।

जीवनमें जब कष्ट और कठिनाइयाँ आती हैं तो माना जाता है कि यह ग्रह-नक्षत्रोंका कोप है। ग्रह-नक्षत्रोंके अनिष्टफलकी शान्तिके लिये अनेक प्रकारके रत्न धारण किये जाते हैं और अनेक प्रकारके अनुष्ठान किये जाते हैं। कई स्थानोंपर नवग्रहोंके मन्दिर भी प्रतिष्ठित हैं। बृहस्पतिके लिये केलेकी तथा शनिके लिये पीपलकी पूजा लोकप्रचलित है।

कोई बालक मूल नक्षत्रमें पैदा होता है तो इन नक्षत्रोंकी शान्तिके लिये कूपोंका जल एकत्र किया जाता है। गोस्वामी तुलसीदासजीका जन्म मूल नक्षत्रमें हुआ था। रेवती, रोहिणी और स्वातिमें कन्याका जन्म माताको कष्टदायी होता है। रोहिणीमें यशोदाके पुत्रीका जन्म हुआ था।

नक्षत्रसम्बन्धी लोकमान्यताओंपर विचार करते हुए हमें इस बातका ध्यान रखना होगा कि लोकमान्यता किसी तर्कप्रणालीकी मोहताज नहीं होती।

इतिहासमें बड़े-बड़े सत्ताधारी अपने कानूनको लेकर आये, बड़े-बड़े ज्ञानियोंने अपने तर्कका बखान किया, परंतु लोकमानसने न ऐसे कानूनके अभिमानको स्वीकार किया और न किसी तर्कके अहंकारको माना। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विशेषको जन्म देनेवाला लोक ही है, परंतु लोक विशेषको नहीं सामान्यको स्वीकार करता है; क्योंकि लोकमानस सामान्य मानस है, समष्टिमानस है।

हर जमानेके अपने तर्क और अपने कानून होते हैं, पर जमाना बदलनेके साथ ही वे कानून और तर्क भी बदल जाते हैं। इसलिये लोकमानस उन कानूनों और तर्कोंपर नहीं, उन अनुभवों और विश्वासोंपर भरोसा करता है, जो उसकी पूर्वज-पीढ़ियोंने उसे विरासतमें सौंपे हैं।

जमाने-जमानेकी स्मृतियाँ लोकमानसमें बसी हुई हैं। कितने-कितने आँधी और तूफान उसने झेले हैं, कितनी बार वह भूकम्प, उल्कापात और प्रलयका साक्षी बना है, कितने रक्तपात और युद्ध उसने देखे हैं, इतिहासकी गति उसके सामने बार-बार बदली है, परंतु उसकी प्रचण्ड जिजीविषाने कभी हार नहीं मानी।

लोकमानस समग्रतामें जीता है। मनुष्य अकेला नहीं जी रहा, पशु-पक्षी, जलचर-थलचर, कृमि-सरीसृप—कितने प्राणी हैं। फिर वृक्ष-वनस्पति हैं, नदी और पहाड़ हैं, समुद्र और बादल हैं, सूरज-चंदा और सितारे सभी तो उसके साथ जी रहे हैं। ऋतुएँ बदल रही हैं, बादल गरज रहे हैं, हवा चल रही है, नदी बह रही है, फूल खिल रहे हैं, तारे जगमगा रहे हैं और इन सारी गतियोंके साथ मनुष्य भी जी रहा है। लोकमानस प्राकृतिक गतिविधियोंको अपने जीवनसे भिन्न और विच्छिन्न नहीं मानता। यह सापेक्ष्यसम्बन्ध वैसा ही है, जैसे जलाशयकी एक लहरका दूसरी लहरसे। लोकमानसकी दृढ़ आस्था है कि प्रकृति परिपूर्ण है, अखण्ड है, विवेकसम्पन्न है, पूर्ण चैतन्य है और इसीके साथ लोकमंगलका विधान करनेवाली है। इस आस्थाके आधारपर लोकमानसने नक्षत्रोंको कहीं संवेदनशील सहचरके रूपमें देखा है, कहीं कल्याणमयी दिव्य शक्तिके रूपमें देखा है, कहीं अपने पूर्वजसम्बन्धसूत्रसे उन्हें अपना बनाया है, कहीं भिन्न-भिन्न देवलोकोंके रूपमें परिकल्पना की है तथा कालके विभाजक और कालके निर्णायक तत्त्वके रूपमें उन्हें स्वीकार किया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आधुनिक अन्तरिक्ष-विज्ञानने नक्षत्रोंको समीपसे जाननेके लिये अत्यन्त

शक्तिशाली और वेगवान् उपग्रहोंकी प्रणालीको विकसित किया है, परंतु सोचनेकी बात यह है कि नक्षत्रोंके सम्बन्धमें यह उत्कट जिज्ञासा आज अकस्मात् पैदा नहीं हो गयी। अपने मूलरूपमें यह वही अदम्य जिज्ञासा है, जो आदिममानसने अपने आगेवाली पीढ़ियोंको सौंपी थी। कौन जाने कि भविष्यके युगोंकी परिस्थितियोंमें मनुष्यकी यह जिज्ञासा इतनी दूर पहुँच जाय कि आजका अन्तरिक्षविज्ञान उसे बीता हुआ-सा लगने लगे। आदिम-मानव जो अपना दिन नदी, पहाड़, जंगल और पशु-पक्षियोंके साथ व्यतीत करता था और रातमें जब खुले आसमानके नीचे सोता था तब सितारोंसे बातें करता था। सुखमें और दुःखमें, चिन्ता और क्रोधमें, आशामें और निराशामें—वह रोज ही सितारोंको देखता था। लोकमानस कल भी मानता था कि सितारे उसके जीवनसे उदासीन नहीं हैं और आज भी मानता है कि उसका जीवन सितारोंसे निरपेक्ष नहीं है। सितारोंने उसके सौन्दर्यबोधको जगाया है, उसके चिन्तनको व्यापक बनाया है और उसकी कल्पनाको गति दी है।

सप्तर्षि एवं सप्तर्षिमण्डल

प्रलयके अनन्तर जब-जब सृष्टि होती है, तब-तब विभिन्न मन्वन्तरोंमें धर्म और मर्यादाकी रक्षाके लिये तथा अपने सदाचरणसे लोकको जीवनचर्याकी उत्तम शिक्षा प्रदान करनेके लिये सात ऋषि आविर्भूत होते हैं। ये ही सप्तर्षि कहलाते हैं। इन्हींकी तपस्या, शक्ति, ज्ञान और जीवन-दर्शनके प्रभावसे सारा संसार सुख और शान्ति प्राप्त करता है। ये ऋषिगण अपने एक रूपसे जगत्में लोकहितमें संलग्न रहते हैं और दूसरे रूपमें नक्षत्रमण्डलमें सप्तर्षि-मण्डलके रूपमें ध्रुवकी परिक्रमा करते हुए विचरण करते रहते हैं। प्रलयमें भी ये बने रहते हैं और जीवोंके कर्मोंके साक्षी तथा द्रष्टा बनते हैं। पुराणोंमें इनके उदात्त चरित्रका विस्तारसे वर्णन प्राप्त होता है।

वायुपुराण (६१।९३-९४)-में बताया गया है—१-दीर्घायुष्य, २-मन्त्रकर्तृत्व, ३-ऐश्वर्यसम्पन्नता, ४-दिव्य दृष्टियुक्तता, ५-गुण, विद्या तथा आयुमें वृद्धत्व, ६-धर्मका प्रत्यक्ष साक्षात्कार तथा ७-गोत्रप्रवर्तन—इन सात गुणोंसे युक्त सात ऋषियोंको सप्तर्षि कहा गया है। इन्हींसे प्रजाका विस्तार होता है तथा धर्मकी व्यवस्था चलती है। ये ही महर्षि प्रत्येक युगमें सृष्टिके प्रवर्तन होनेपर सर्वप्रथम वर्णाश्रमधर्मकी व्यवस्था किया करते हैं—**'कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुनः पुनः। वर्णाश्रमव्यवस्थानं क्रियन्ते प्रथमं तु वै॥'** (वायुपु० ६१।९७) ये सप्तर्षि मूलतः निवृत्तिमार्गी होते हैं, किंतु अपने सदाचारसे लोकको सन्मार्गमें प्रवर्तित करने तथा शास्त्रमर्यादित जीवनचर्यापर आरूढ़ होनेके लिये प्रवृत्तिमार्गी पथप्रदर्शक बनते हैं। इसीलिये ये गृहस्थधर्मको स्वीकार करके भी संग्रह-परिग्रहसे दूर रहकर भगवान्की भक्तिका उपदेश देते हैं और अपने जीवनदर्शनसे यह दिखाते हैं कि लोकमें अनासक्त भावसे किस प्रकार गृहस्थका निर्वाह बहुत उत्तम रीतिसे हो सकता है। ये अत्यन्त तपस्वी, तेजस्वी और वेदवेत्ता होते हैं। भगवान्में श्रद्धा-प्रेम रखना तथा शास्त्रचर्याको अपने जीवनमें उतारकर लोकशिक्षण प्रदान करना इनका मुख्य उद्देश्य है।

ब्रह्माजीके एक दिन (कल्प)-में चौदह मनु होते हैं। प्रत्येक मनुके कालको मन्वन्तर कहते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें देवता, इन्द्र, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र भिन्न-भिन्न होते हैं। एक मन्वन्तर बीत जानेपर मनु बदल जाते हैं तो उन्हींके साथ सप्तर्षि, देवता, इन्द्र और मनुपुत्र भी बदल जाते हैं। देवता, मनु, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र और देवताओंके अधिपति इन्द्र—ये सभी भगवान्की ही विभूतियाँ हैं—

सर्वे च देवा मनवः समस्ताः
सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो
विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ताः॥

(विष्णुपु० ३।१।४६)

पहले मनु स्वायम्भुव मनु हैं और इन्हींके नामसे पहला मन्वन्तर स्वायम्भुव मन्वन्तर कहलाता है, इस स्वायम्भुव मन्वन्तरके सप्तर्षियोंके नाम इस प्रकार हैं— (१) मरीचि, (२) अत्रि, (३) अंगिरा, (४) पुलस्त्य, (५) पुलह, (६) क्रतु तथा (७) वसिष्ठ। ये सप्तर्षि सौरमण्डलमें उत्तरदिशामें सप्तर्षिमण्डलके नामसे शकटाकार रूपमें स्थित रहते हैं, जो सप्तर्षिमण्डल कहलाता है। स्वायम्भुव मनुके सप्तर्षियोंकी स्थिति इस प्रकार है— चित्रमें जो कुछ ऊँची रेखापर पूर्वभागमें प्रथम तारा है, वे मरीचि ऋषि हैं, उनसे पश्चिम दिशामें जो एक बड़ा

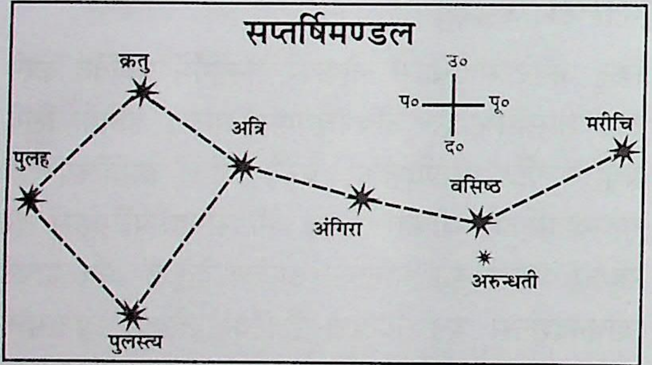

और एक छोटा तारा है, वे महर्षि वसिष्ठ तथा उनकी पत्नी साध्वी अरुन्धती हैं। उनके पश्चिममें अंगिरा ऋषि हैं। उनके पीछे जो चौकोर चार तारे हैं, उनसे ईशानमें अत्रि ऋषि हैं, उनके निकट दक्षिणमें पुलस्त्य, उनके पश्चिममें पुलह और उनके उत्तरमें क्रतु ऋषि हैं। (बृहत्संहिता अ० १३) इन सप्त ऋषियोंके नामसे सप्तर्षि-संवत् प्रचलित है। इसी प्रकार स्वारोचिष, उत्तम आदि पृथक्-पृथक् चौदह मन्वन्तर होते हैं। सबके सप्तर्षि भिन्न-भिन्न नामवाले ऋषि होते हैं। वर्तमानमें सातवाँ वैवस्वत नामक मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तरके सप्तर्षियोंके नाम इस प्रकार हैं—वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज।*

गीता (१०।६)-में भगवान्ने इन्हें अपने मनसे उत्पन्न तथा भगवान्में भक्ति रखनेवाले और अपनी विभूति बतलाया है—

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥

प्रातःकालमें इन सप्तर्षियोंका नामकीर्तन करनेसे मंगलकी प्राप्ति होती है तथा दिनचर्या ठीकसे चलती है। भाद्रशुक्ल पंचमी ऋषिपंचमी कहलाती है, इस दिन वसिष्ठपत्नी सतीशिरोमणि महादेवी अरुन्धतीसहित इन सप्तर्षियोंका विशेषरूपसे पूजन होता है। इस व्रतको स्त्री-पुरुष दोनों ही करते हैं, किंतु विशेषरूपसे यह स्त्रियोंके लिये अवश्यकरणीय है। रजस्वला-अवस्थामें स्त्रीको अशौच होता है, अतः उसे एकान्तमें रहना चाहिये। इस अवस्थामें घरके पात्रादिका स्पर्श हो जानेसे जो पाप उसके द्वारा ज्ञात-अज्ञातमें हो जाता है, उसके निवारणके लिये ऋषिपंचमीका व्रत किया जाता है। सुवर्णसे अथवा कुशमयी अथवा पट्टलिखित अरुन्धतीसहित सप्तर्षियोंकी प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा की जाती है। यह व्रत प्रायः सात वर्षतक किया जाता है। उद्यापनके अनन्तर पुनः व्रतग्रहणकर जीवनपर्यन्त भी किया जाता है। सप्तर्षियोंकी कृपासे स्त्रियाँ रजस्वला-अवस्थामें हुए स्पर्शास्पर्शजनित दोषसे मुक्त हो जाती हैं। ऐसे ही सर्वतोभद्रमण्डलमें भी सप्तर्षियोंका पूजन होता है। सप्तर्षियोंके पूजनका वैदिक मन्त्र इस प्रकार है—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥ (यजुर्वेद ३४।५५)

सप्तर्षियोंका लोकपर महान् अनुग्रह है। इनका मर्यादित आचरण नित्यचर्याके लिये आदर्शरूप है। इन्होंने गृहस्थधर्मका अनुवर्तन तो किया ही, इनकी ज्ञान-निष्ठा, तपस्या, अध्यात्मदर्शन, शास्त्रचिन्तन भी अनुपमेय है। ज्योतिश्चक्रमें सप्तर्षि-मण्डलकी विशेष प्रतिष्ठा है।

* (क) वसिष्ठः काश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निस्सगौतमः। विश्वामित्रभरद्वाजौ सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥ (विष्णुपु० ३।१।३२)
(ख) कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः। जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः॥ (श्रीमद्भा० ८।१३।५)

ज्योतिष-फलादेशके महत्त्वपूर्ण सूत्र

(श्रीसन्तोषकुमारजी 'राम')

जन्मकुण्डलीसे भविष्यवाणी करनेमें काफी सावधानी बरतनी चाहिये। इस कार्यमें ज्योतिषके गणितीय और सैद्धान्तिक नियमोंको ध्यानमें रखनेके साथ-साथ अन्तर्ज्ञानकी मुख्य भूमिका होती है, अन्तर्ज्ञानके अभावमें किया गया फलादेश प्रायः त्रुटिपूर्ण हो जाता है। कुण्डलीपर विचार करते समय शीघ्रता नहीं करनी चाहिये, बल्कि भगवान्‌का स्मरण करते हुए धैर्यपूर्वक विवेचन करना चाहिये। कुछ सूत्र प्रस्तुत हैं—

१. कुण्डलीमें प्रथम, पंचम और नवम भाव शुभ होते हैं; इसी प्रकार लग्नेश, पंचमेश और नवमेश चाहे क्रूर ग्रह हों या शुभ ग्रह सदैव शुभ फलदायक होते हैं।

२. लग्नेश, पंचमेश और नवमेश उत्तरोत्तर अधिक शुभ फलदायक होते हैं।

३. तृतीय, षष्ठ और एकादश भाव अशुभ होते हैं; इसी प्रकार तृतीयेश, षष्ठेश और एकादशेश भी अशुभ होते हैं।

४. तृतीयेश, षष्ठेश और एकादशेश उत्तरोत्तर अधिक अशुभ फल प्रदान करते हैं।

५. द्वितीयेश और द्वादशेश साहचर्य और स्थितिके अनुसार शुभ और अशुभ दोनों तरहके फल देते हैं।

६. अष्टमेश भी अशुभ फलदायक होता है, किंतु यदि यह लग्नेश भी हो तो अशुभ फलदायक नहीं रहता।

७. केन्द्रेश यदि नैसर्गिक शुभ ग्रह हों तो पाप-फलदायक होते हैं और यदि नैसर्गिक पाप ग्रह हों तो शुभफल देते हैं।

८. कोई भी वक्री ग्रह यदि नीच राशिका हो तो उच्चका फल देता है, इसी प्रकार यदि वक्री ग्रह उच्चका हो तो नीचका फल प्रदान करता है।

९. तमोग्रह (राहु, केतु) यदि किसी केन्द्र स्थानमें हों और साथमें त्रिकोणेश हों अथवा त्रिकोणमें किसी केन्द्रेशके साथ हों तो वे शुभफल देते हैं।

१०. कोई भी ग्रह यदि जन्मकुण्डलीमें उच्चराशिमें स्थित हो, किंतु नवांश-कुण्डलीमें नीचका हो तो उच्च-जैसा फल न होकर साधारण ही रहता है; इसी प्रकार यदि जन्मकुण्डलीमें नीचका हो, किंतु नवांश-कुण्डलीमें उच्चका हो तो उच्च-जैसा फल प्रदान करता है।

११. यदि मारकेश, त्रिषडायेश और अष्टमेशका योगकारक ग्रहसे सम्बन्ध रहा हो तो योगकारक ग्रहकी महादशामें इसकी अन्तर्दशा आनेपर शुभफलकी प्राप्ति होती है।

१२. सभी ग्रह अपना दशाफल अपनी महादशा आनेपर अपनी ही अन्तर्दशामें नहीं प्रदान करते हैं, बल्कि जिन ग्रहोंका उनसे सम्बन्ध होता है, उनकी अन्तर्दशामें प्रदान करते हैं।

१३. केन्द्रेश और त्रिकोणेश यदि आपसमें सम्बन्धित हों तो एकको दशा और दूसरेकी भुक्तिमें शुभफलकी प्राप्ति होती है; यदि इनमें कोई सम्बन्ध न हो तो एक-दूसरेकी दशा, भुक्तिमें पापफल होता है।

१४. पापी ग्रहकी महादशामें उससे सम्बन्धित योगकारक ग्रहकी अन्तर्दशा अत्यन्त पापफल देती है और सम्बन्धित शुभ ग्रहकी अन्तर्दशा मिश्रित फल देती है।

१५. पापी ग्रहकी महादशामें सम ग्रहकी अन्तर्दशामें भी प्रायः पापफल ही अधिक मिलते हैं।

१६. षष्ठेश और एकादशेश यदि नीचके हों तो उच्चराशिका फल देते हैं, इसी प्रकार जब ये ग्रह उच्चके हों तो नीचका फल प्रदान करते हैं।

१७. फलादेशमें शकुनशास्त्र, स्वरोदयशास्त्र आदिका भी उपयोग करना चाहिये।

१८. ज्योतिषीय ग्रन्थोंमें विभिन्न लग्नोंमें उत्पन्न जातकके सामान्य लक्षणोंके बारेमें दी गयी जानकारीका प्रयोग करना चाहिये।

१९. किसी भी राशिपर कोई भी ग्रह कितने अंशपर है, इसके आधारपर पाँच अवस्थाएँ मानी गयी हैं, यथा—(१) बाल-अवस्था, (२) कुमार, (३) युवा, (४) वृद्ध

और (५) मृत—इनका भी ध्यान करना चाहिये।

२०. गुरु, शुक्र, शुभग्रहयुक्त बुध और बली चन्द्रमा—ये शुभग्रह होते हैं।

२१. सूर्य, मंगल, शनि, पाप ग्रहयुक्त बुध और क्षीण चन्द्रमा—ये सब क्रूर ग्रह हैं।

२२. राहु-केतु जिस भाव या भावेशके साथ होते हैं, उसीके अनुसार शुभ-अशुभ फल देते हैं।

२३. केन्द्रेश और त्रिकोणेशके बीच किसी भी प्रकारसे सम्बन्ध होता है तो ये योगकारक होते हैं।

२४. बाधक ग्रहोंका भी ध्यान रखना चाहिये, चर लग्नों (मेष, कर्क, तुला, मकर)-के लिये एकादशेश; अचर लग्नों (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ)-के लिये नवमेश तथा द्विस्वभाव लग्नों (मिथुन, कन्या, धनु, मीन)-के लिये सप्तमेश बाधक ग्रह होते हैं, यदि इनके साथ मन्दि और खरेशका सम्बन्ध हो।

२५. किसी भी ग्रहका फल उसकी दशामें प्राप्त होता है, यदि जीवनकालमें उस ग्रहविशेषकी दशा नहीं आती है तो उसका शुभाशुभफल भी नहीं प्राप्त होता है।

२६. कुण्डलीमें बननेवाले शुभाशुभ योगोंका भी ध्यान रखना चाहिये। इनके द्वारा प्राप्त शुभाशुभ फलकी मात्रा योग बनानेवाले ग्रहोंके बलकी मात्रापर निर्भर होती है।

२७. फलादेशमें पहले यह देखना चाहिये कि जीवनकाल अल्प है अथवा दीर्घ; यदि प्रबल अल्पायु योग हो तो बादके जीवनमें मिलनेवाला फल व्यर्थ हो जाता है।

२८. पापी ग्रहकी महादशामें पापी ग्रहकी अन्तर्दशामें अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

२९. कोई ग्रह यदि नीचका हो, किंतु उच्च स्थान लग्नसे या चन्द्रसे केन्द्रमें हो तो वह उत्तम राजयोग कारक होता है।

३०. त्रिक भावों (षष्ठ, अष्टम, द्वादश)-के स्वामी एक-दूसरेके स्थानोंमें हों या एक-दूसरेसे सम्बन्धित हों तो यह विपरीत राजयोग बनता है। सामान्यतः ये ग्रह अशुभ फलदायक होते हैं, किंतु ऐसी स्थितिमें हों तो ये शुभफलदायक होते हैं।

३१. जातकके पूर्वजन्मका विचार नवम भावसे और पुनर्जन्मका विचार पंचम भावसे करना चाहिये।

३२. यदि कोई ग्रह स्वराशिस्थ या उच्चस्थ होकर कारक भी हो, तब भी यदि उसपर पाप ग्रहोंकी दृष्टि हो तो परिणाममें वह अशुभफल ही प्रदान करता है।

३३. जब भाव अपने अधिपतिसे द्रष्ट या युक्त होता है तो वह शुभफलप्रदाता होता है, किंतु जब कोई पाप ग्रह अपनेसे सप्तमस्थ होता है तो वह अपने भावका नाश करता है।

३४. किसी भी भाव या ग्रहसे द्वितीय एवं द्वादश भावमें शुभ ग्रहोंकी स्थिति शुभफलदायक होती है; इसी प्रकार यदि इस स्थितिमें पाप ग्रह हों तो अशुभ फलदायक हैं।

३५. यदि चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे अस्त हो गया हो तो वह स्वराशिका या फिर उच्चका होनेपर भी शुभफल प्रदान करनेमें असमर्थ हो जाता है।

३६. जो ग्रह दो भावोंका स्वामी होता है तो वह ज्यादा फल उस भावको देता है, जो भाव उसकी मूल त्रिकोण राशिमें पड़ता है और दूसरी राशिस्थित भावका फल अपेक्षाकृत कम देता है। यदि विषमराशिमें स्थित होता है तो पहले विषमराशिस्थित भावका फल देता है, बादमें समराशिस्थित भावका और यदि समराशिमें ग्रहस्थित हो तो पहले समराशिस्थित भावका फल देता है, बादमें विषमराशिस्थित भावका फल देता है।

३७. जिस ग्रहके अष्टक वर्गमें जिस भावमें शुभ बिन्दुओंका अभाव हो तो उस ग्रहकी दशामें उस भाव-सम्बन्धी शुभफलकी प्राप्ति नहीं होती है।

३८. कोई ग्रह चाहे कितना ही बली क्यों न हो, यदि वह भाव-सन्धिमें हो तो फल देनेमें असमर्थ होता है।

३९. जन्मकुण्डली, चन्द्र, सूर्य और नवांश-कुण्डलीपर अवश्य विचार करें; चलित भी देखें तभी अन्तिम निर्णयकी ओर अग्रसर होना चाहिये।

ज्योतिषमें आयुविचार

(प्रो० श्रीआई० एन० चन्द्रशेखरजी रेड्डी)

भविष्यके बारेमें जाननेसे पहले आयुके बारेमें जानना अत्यन्त आवश्यक एवं प्रयोजनकारी है। यदि आयु नहीं है तो अन्य लक्षणोंसे क्या प्रयोजन? शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है—

पूर्वमायुः परीक्षैव पश्चाल्लक्षणमुच्यते।
आयुर्विना नराणां तु लक्षणैः किं प्रयोजनम्॥

अवस्थाके अनुसार मनुष्यकी आयुकी तीन अवस्थाएँ मानी जाती हैं—

१-अल्पायु—जन्मसे आरम्भ करके ३३ वर्षतक।

२-मध्यमायु—३३ वर्षसे ६४ वर्षतक और

३-सम्पूर्णायु—६५ वर्षसे १०० वर्षतक।

१०० वर्षसे १२० वर्षोंतककी आयु दीर्घायु मानी जाती है। १२० वर्षके आगे जितने वर्ष मनुष्य जीवित रहेगा, उसे विपरीत आयु माना जाता है।

जन्मकुण्डली देखकर आयुका निर्धारण करते समय सर्वप्रथम जन्मकुण्डलीकी ग्रहस्थितिके आधारपर उस जन्मकुण्डलीके व्यक्तिकी अल्प, मध्यम एवं पूर्ण आयुका निर्धारण किया जाता है। इस आयुनिर्धारणके आधारपर ही जीवनमें आनेवाली मारक दशाओंका निर्णय किया जाता है। फिर किस मारक दशामें कौन-सा ग्रह किस रूपमें काम करता है, निर्णय किया जाता है।

जन्मलग्नसे अष्टम स्थान आयुका स्थान है। जन्मलग्नसे तृतीय स्थान भी आयुस्थानके रूपमें माना जाता है। दशम स्थान भी आयुस्थानके रूपमें माना जाता है। इसलिये जन्मकुण्डलीके ३, ८, १० स्थान आयुस्थान हैं। आयुनिर्धारण करते समय ३, ८, १० स्थानोंका विशेष निरीक्षण करना चाहिये। किसी भी भावका निरीक्षण करते समय उस भावके लिये जिम्मेदार ग्रहका सर्वप्रथम निरीक्षण करना चाहिये। आयुके लिये जिम्मेदार ग्रह शनि है। जन्मकुण्डलीमें शनिका बल अधिक होना चाहिये अर्थात् शनि अपने स्थानमें या उच्च स्थानमें या अपने मित्रक्षेत्रमें होना चाहिये। उस रूपमें होनेपर पूर्णायु प्राप्त होगी। शनिके नीच स्थानमें या शत्रुक्षेत्रमें या अन्य पापग्रहोंके साथ मिलनेपर अल्पायु प्राप्त होगी। शनिके सम क्षेत्रोंमें रहनेपर मध्यमायु प्राप्त होगी।

जन्मकुण्डलीमें अल्प, मध्यम, पूर्णायु कौन-सी है, इसका पता लगाते समय नैसर्गिक शुभग्रहस्थितिके बारेमें तथा नैसर्गिक पापग्रहस्थितिके बारेमें जानना भी आवश्यक है। नैसर्गिक शुभग्रह किसी भी स्थानके अधिपति होनेपर भी केन्द्रस्थितिमें होनेपर आयुर्वृद्धिमें साथ देंगे। उसी रूपमें नैसर्गिक पापग्रह केन्द्रमें रहनेपर आयु क्षीण करेंगे। वे ग्रह कोणोंमें रहनेपर उससे थोड़ा कम नुकसान पहुँचाते हैं अर्थात् कोणमें रहनेपर मध्यमायु प्रदान करते हैं। नैसर्गिक पापग्रह विशेष रूपसे शनिके तृतीय, अष्टम स्थानमें रहनेपर आयुर्वृद्धि प्राप्त होगी। पराशरसिद्धान्त, वराहमिहिरसिद्धान्त एवं सत्याचार्यसिद्धान्तके अनुसार आयुके सन्दर्भमें ग्रहोंके उच्च-नीच, शत्रु तथा ऋजु और वक्र गुणका निरीक्षण करना भी आवश्यक है। आयुसे सम्बन्धित कुछ विवरण निम्नांकित हैं—

पूर्णायुविवरण

१-आयुकी वृद्धिमें मदद करनेवाले शनिके अष्टम स्थानमें रहनेपर नैसर्गिक शुभ ग्रह गुरु, शुक्र, चन्द्र एवं बुधके केन्द्र या त्रिकोणमें रहनेपर तथा अष्टमाधिपतिके केन्द्र या कोणमें रहनेपर पूर्णायु प्राप्त होगी।

२-अष्टमाधिपति शनि लाभस्थानमें होनेपर केन्द्र एवं त्रिकोणमें शुभ ग्रहके होनेसे पूर्णायु प्राप्त होगी। रवि अष्टमाधिपतिस्थानमें रहते समय केन्द्रमें गुरु, शुक्र, चन्द्रके होनेसे पूर्णायु प्राप्त होगी।

३-गुरु अष्टमाधिपतिके रूपमें स्वक्षेत्रमें, नैसर्गिक पापग्रह लाभस्थानमें और नैसर्गिक शुभग्रह केन्द्रमें रहनेसे पूर्णायु प्राप्त होगी।

४-रवि और शनि एकादश स्थानमें और नैसर्गिक शुभ ग्रह केन्द्रमें होनेसे पूर्णायु प्राप्त होगी।

५-रविके दूसरे और छठे स्थानमें तथा शनिके एकादश स्थानमें रहनेपर पूर्णायु प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त नैसर्गिक शुभ ग्रहके केन्द्र तथा त्रिकोणमें रहनेपर और लाभस्थानमें शुभ ग्रहोंके होनेसे पूर्णायु प्राप्त होगी।

६-अष्टम स्थानाधिपति शनिके लाभस्थानमें रहनेसे और केन्द्रमें नैसर्गिक शुभ ग्रहोंके होनेसे पूर्णायु प्राप्त होगी।

७-लग्न, भाग्य, राज्याधिपति तीनोंके स्वक्षेत्रमें या उच्च स्थानमें रहनेसे पूर्णायु प्राप्त होगी। नैसर्गिक शुभ ग्रहके लग्न, भाग्य, केन्द्रमें रहनेपर पूर्णायु प्राप्त होगी।

मध्यम आयुयोग

१-अष्टमेश तथा लाभाधिपति नैसर्गिक शुभ ग्रहके भाग्यमें या लाभस्थानमें रहनेसे मध्यमायु प्राप्त होगी।

२-लग्नाधिपतियोंके परिवर्तन होनेसे एवं लग्नमें नैसर्गिक शुभ ग्रहोंके होनेसे मध्यमायु प्राप्त होगी।

३-धनुर्लग्नके लिये अष्टमाधिपति चन्द्रके स्वक्षेत्रमें रहनेपर, शनि-बुध या शनि-केतु, शनि-गुरु, शनि-शुक्र, शनि-रवि या शनि-कुजके लाभस्थानमें रहनेपर मध्यमायु प्राप्त होगी।

४-केन्द्रमें शुभ ग्रहोंके होनेपर आयुके लिये जिम्मेदार शनिके ३, ६ स्थानोंमें होनेपर मध्यमायु प्राप्त होगी।

५-राज्यमें लाभाधिपति तथा लाभमें अष्टमाधिपतिके रहनेसे मध्यमायु प्राप्त होगी। अष्टमाधिपति नैसर्गिक शुभ ग्रहोंके साथ मिलकर एकादश स्थानमें होनेपर, रवि लाभमें तथा नैसर्गिक पापग्रह त्रिकोणमें होनेसे मध्यमायु प्राप्त होगी।

अल्पायुयोग

१-केन्द्र एवं कोणमें एक भी नैसर्गिक शुभ ग्रहोंके न होनेसे, नैसर्गिक पापग्रह केन्द्र एवं त्रिकोणमें होनेसे और चन्द्रके लाभस्थानमें रहनेपर अल्पायु प्राप्त होगी।

२-चन्द्रके नैसर्गिक पाप ग्रहोंसे मिलकर केन्द्रमें या कोणमें रहनेपर, बाकी ग्रह दुर्बल होनेसे अल्पायु प्राप्त होगी।

३-केन्द्र एवं त्रिकोणमें नैसर्गिक पापग्रहोंके होनेपर और चन्द्रके षष्ठ या अष्टममें होनेसे अल्पायु प्राप्त होगी।

४-लग्नाधिपति या अष्टमाधिपति चन्द्रके व्ययभावमें रहनेपर, केन्द्र एवं त्रिकोणमें नैसर्गिक पाप ग्रहोंके होनेसे, अल्पायु प्राप्त होगी।

५-नैसर्गिक शुभ ग्रहोंके तृतीय, षष्ठ, अष्टम तथा व्यय स्थानमें रहनेपर, नैसर्गिक पापग्रहोंके साथ मिलनेपर अल्पायु प्राप्त होगी।

मृत्युसम्बन्धी जानकारी

मानवके जीवनमें मृत्यु अत्यन्त महत्त्व रखती है। ज्योतिषशास्त्रियोंने मृत्युके बारेमें अनेक स्थापनाएँ की हैं। अष्टमाधिपति तथा अष्टम स्थानमें स्थित ग्रहोंसे मृत्यु कैसे होगी, इसे जाना जा सकता है, यथा—

१-रवि—अग्निसे, उष्ण बुखारोंसे, मूत्रका बन्द हो जाना आदि रोगोंसे पीड़ित होकर मृत्यु होती है।

२-चन्द्र—जलसे सम्बन्धित दुर्घटनाओं अर्थात् जलसंकट अथवा क्षय, खाँसी, फेफड़ोंसे सम्बन्धित बीमारियोंसे मृत्यु होती है।

३-कुज—आगकी दुर्घटनाएँ, व्रण, स्फोटक फोड़े, शस्त्रचिकित्सा, चमड़ीके रोग, वाहनोंसे प्राप्त होनेवाली आकस्मिक दुर्घटनाएँ, ऊँचे प्रदेशोंसे गिर जाना, जादू-टोना, पीलिया आदिसे मृत्यु प्राप्त होती है।

४-बुध—पक्षाघात, वात, पोलियो, नसोंकी कमजोरी, अण्डकोशसे सम्बन्धित दोष, विषैले बुखार, अपच आदिके द्वारा मृत्यु प्राप्त होती है।

५-गुरु—आकस्मिक हृदयसम्बन्धी रोग, बुखार, शारीरिक दुर्बलता आदिके कारण मृत्यु होती है।

६-शुक्र—यौनसे सम्बन्धित बीमारियाँ, मूत्रसे सम्बन्धित व्याधियाँ, श्लेष्म व्याधियोंसे सम्बन्धित, भूख और उदरसे सम्बन्धित रोगोंसे मृत्यु होती है।

७-शनि—वातरोग, व्रण, विषैले बुखार, दीर्घकालीन बुखारोंसे मृत्यु होती है।

इसी प्रकार जन्मलग्नकी अष्टमराशिके अनुसार मृत्युसम्बन्धी विचार भी होता है।

नेत्रसम्बन्धी रोगोंके लिये रवि, शुक्र और राहु जिम्मेदार हैं। मीन लग्नमें नेत्रस्थानमें माने जानेवाले द्वितीय स्थान मेषमें शुक्रके होनेसे उस शुक्र दशामें नेत्रोंका रोग होगा। केतु ग्रह भी नेत्ररोगकारक है।

जन्मकुण्डलीमें रोगोंके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये ३ ,६ ,८ स्थानोंके आधारपर उन स्थानोंमें ग्रहोंकी गतिके आधारपर, उन ग्रहोंसे सम्बन्धित रोग उन ग्रहोंकी दशाओंमें प्राप्त होंगे। स्त्रियोंके प्रसवसे सम्बन्धित रोगोंके विषयमें पंचम स्थानमें रहनेवाले ग्रहोंके अनुसार तथा पंचम स्थानके अनुसार जान सकते हैं। अष्टम स्थानमें दो-तीन ग्रह मिलकर रहनेसे दो-तीन प्रकारके रोग एक ही समयमें हो सकते हैं।

रवि रक्तसे सम्बन्धित रोगोंके लिये कारक है। शनि नसोंसे सम्बन्धित रोगोंके लिये कारक है। रवि और शनि दोनों मिलकर अष्टम स्थानमें रहनेसे, उनकी दशाओंके चलनेसे पक्षाघातसे तथा नसोंसे सम्बन्धित रक्तचापसे मृत्यु प्राप्त होगी। शनि और शुक्र मिलकर अष्टम स्थानमें रहनेसे हृदयसे सम्बन्धित रोगोंसे, दमेसे, राजयक्ष्मा आदि फेफड़ोंसे सम्बन्धित रोगोंसे मृत्यु प्राप्त होगी।

दाँतों, कानों तथा सिरसे सम्बन्धित रोगोंके लिये कुज और शनि कारक हैं। स्त्रियोंके रोगोंके लिये भी ये दोनों जिम्मेदार कारक हैं। सभी वातरोगोंके लिये शनि जिम्मेदार कारक है। बाँझपनके लिये शनि, कुज, शुक्र, बुध जिम्मेदार कारक हैं।

ग्रहोंकी वक्रगति और उनके परिणाम

नौ ग्रहोंमें रवि और चन्द्र वक्रगतिसे गमन नहीं करते हैं। वे हमेशा सीधे चलते हैं। छायास्वरूप माने जानेवाले राहु और केतु हमेशा वक्र गतिसे ही चलते हैं। कुज, गुरु, शनि, बुध, शुक्र—ये पाँचों ग्रह वक्र गतिसे भी चलते हैं।

ग्रहोंके वक्रगमनसे शुभ फल होंगे या अशुभ? इस सन्दर्भमें शास्त्रकारोंमें ऐकमत्य नहीं है। कुछ शास्त्रोंके अनुसार ग्रहोंके वक्रगमनसे विशेष शुभ परिणाम होंगे और कुछके अनुसार ग्रहोंके वक्रगमनसे अधिक-से-अधिक अशुभ परिणाम होंगे।

'होरासार' नामक ग्रन्थमें वक्र ग्रहोंके उच्च स्थानमें रहनेसे शुभ फल होंगे, ऐसा कहा गया है।

'सारावली' ग्रन्थमें ग्रहके वक्रगमनसे शुभ फल प्राप्त होगा—ऐसा कहा गया है। वह ग्रह शुभ स्थानोंका अधिपति बनकर उच्च, स्वक्षेत्र, मूलत्रिकोण, मित्र-क्षेत्रोंमें वक्र होनेपर शुभ परिणाम होंगे—ऐसा कहा गया है।

'जातकतत्त्व' ग्रन्थमें बताया गया है कि ग्रह शुभ स्थानोंका अधिपति बनकर, शुभ स्थानोंमें वक्र होनेपर राजयोग प्राप्त होगा, प्रजाधिकार प्राप्त होगा, उन्नत पद प्राप्त होंगे, विशेष धनप्राप्ति होगी। वहीं पापस्थानोंका अधिपति होनेपर, पापस्थानोंमें रहनेपर वक्र होनेसे पाप परिणाम होंगे, यानी दुःख प्राप्त होगा।

'होरासार' ग्रन्थमें भी ग्रह शुभ स्थानका अधिपति होकर शुभ स्थानमें रहते समय वक्र होगा तो धन, कीर्ति और गौरव प्रदान करेगा, ऐसा कहा गया है।

'फलदीपिका' ग्रन्थकर्ता मन्त्रेश्वरके अनुसार वक्रता-प्राप्त ग्रह उच्च दशाके ग्रहके समान है। वह ग्रह शत्रुक्षेत्रमें रहनेपर भी, पापस्थानोंमें रहनेपर भी शुभ फल ही प्रदान करेगा। लेकिन शुभ स्थानका अधिपति होना आवश्यक है।

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रके ज्ञानका लक्ष्य मानव-जातिका कल्याण करना है, भगवान्के लीलारहस्यको जाननेकी जिज्ञासा है। मनुष्यकी आयु, मृत्यु और शुभ-अशुभकी जानकारी, सब भगवान्की लीलासे ही जुड़े हुए तथ्य हैं। ज्योतिषशास्त्र इनका वैज्ञानिक विश्लेषण करके मनुष्यको भगवत्सेवाकी ओर मोड़नेका महान् कार्य करता है।

यात्रा-मुहूर्त तथा प्रस्थान-विचार

यात्रा-मुहूर्तके लिये दिशाशूल, नक्षत्रशूल, समयशूल, भद्रा, योगिनी, चन्द्रमा, शुभ तिथि, नक्षत्र इत्यादिका विचार किया जाता है। **शुभ तिथि**—भद्रादि दोषरहित २, ३, ५, ७, १०, ११, १३ तथा कृष्ण पक्षकी प्रतिपदा। **शुभ नक्षत्र**—अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती। **मध्यम नक्षत्र**—रोहिणी, तीनों उत्तरा, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा, शतभिषा।

दिशाशूल

सोम शनीचर पूरब न चालू। मंगल बुध उत्तर दिशि कालू॥
रवि शुक्र जो पश्चिम जाय। हानि होय पथ सुख नहिं पाय॥
बीफै दक्खिन करै पयाना। फिर नहिं समझे ताको आना॥

दिशाशूल, नक्षत्र तथा योगिनी-वासका चक्र

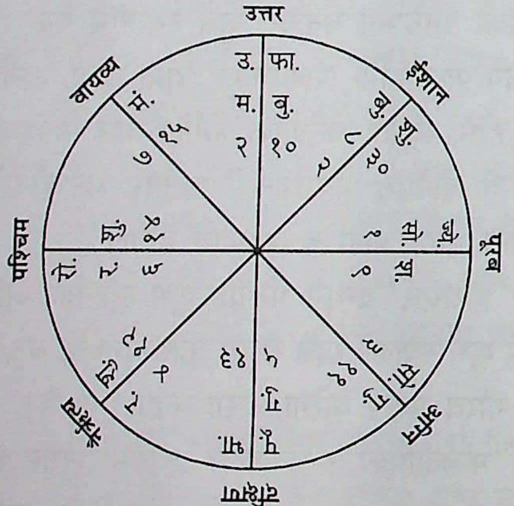

पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—चारों दिशाओंको सब जानते हैं, लेकिन इनके बीचकी अन्य चार दिशाएँ सबको स्मरण नहीं रहतीं। अत: आठों दिशाओं तथा उनके नक्षत्र-शूल, दिशाशूल और योगिनी-वास तिथियोंको सरलतापूर्वक तत्काल जान लेनेके लिये ऊपर चक्र दिया गया है। इसमें प्रत्येक दिशाके नीचे पहले नक्षत्रका नाम है, फिर वार तथा वारोंके अन्तमें वे तिथियाँ दी हुई हैं, जिन तिथियोंको उस दिशामें योगिनीका वास होता है, उन तिथियोंको उस दिशामें जानेसे वह स्वभावत: यात्राके सम्मुख पड़ेगी और सम्मुख तथा दाहिने योगिनी अशुभ होती है। अत: जिन तिथियोंको योगिनी सम्मुख तथा दाहिने पड़े, उन तिथियोंको तथा जिस दिशाके नीचे जो नक्षत्र और वार लिखा है, उन नक्षत्रों तथा वारोंमें उस दिशाकी ओर यात्रा नहीं करनी चाहिये।

समयशूल—उषाकालमें पूरबको, गोधूलिमें पश्चिमको, अर्धरात्रिमें उत्तरको और मध्याह्नकालमें दक्षिणको नहीं जाना चाहिये।

दक्षिण-यात्राका निषेध—कुम्भ और मीनके चन्द्रमामें अर्थात् पंचकमें दक्षिण कदापि न जाय।

चन्द्रमाकी दिशा और उसका शुभाशुभ फल—***'मेष सिंह धनु पूरब चन्दा। दक्षिण कन्या वृष मकरन्दा॥ पश्चिम कुम्भ तुला अरु मिथुना। उत्तर कर्कट वृश्चिक मीना॥'*** अर्थात् मेष, सिंह और धनुराशिका चन्द्रमा पूर्वमें, वृष, कन्या और मकरराशिका दक्षिणमें, मिथुन, तुला और कुम्भका पश्चिममें, कर्क, वृश्चिक, मीनका चन्द्रमा उत्तरमें रहता है। यात्रामें चन्द्रमा सम्मुख या दाहिने शुभ होता है। पीछे होनेसे मरणतुल्य कष्ट और बायीं ओर होनेसे धनहानि होती है।

यात्रा-शुभाशुभ लग्न—कुम्भ या कुम्भके नवांशकमें यात्रा कदापि न करें। शुभ लग्न वह है, जिसमें १, ४, ८, ९ स्थानोंमें शुभ ग्रह और ३, ६, ११ में पाप ग्रह हों। अशुभ लग्न वह है जिसमें १, ६, १२वें चन्द्रमा, १०वें शनि, ७वें शुक्र, १२, ६, ८वें लग्नेश हो।

प्रस्थान-विधान—यदि किन्हीं जरूरी कारणोंसे यात्राके मुहूर्तमें न जा सके तो उसी मुहूर्तमें ब्राह्मण जनेऊ-माला, क्षत्रिय शस्त्र, वैश्य शहद-घी, शूद्र फलको अपने वस्त्रमें बाँधकर किसीके घरमें एवं नगरसे बाहर जानेकी दिशामें प्रस्थान रखे। उपर्युक्त चीजोंके बजाय मनकी सबसे प्यारी [निषिद्धेतर] वस्तुको भी प्रस्थानमें रखा जा सकता है।

यात्राके पहले त्याज्य वस्तुएँ—यात्राके तीन दिन पहले दूध, पाँच दिन पहले हजामत, तीन दिन पहले तेल, सात दिन पहले मैथुन त्याग देना चाहिये। यदि इतना न हो सके तो कम-से-कम एक दिन पहले तो ऊपरकी सब त्याज्य वस्तुओंको अवश्य ही छोड़ देना चाहिये।

होराचक्र (अवकहडाचक्र)

एक भगण (३६०°)-में अश्विनी आदि २७ नक्षत्र होते हैं। प्रत्येक नक्षत्रके चार चरण और प्रत्येक चरणका एक सांकेतिक अक्षर होता है। यथा—अश्विनीके चार चरण हैं, जो चू, चे, चो, ला—इन चार अक्षरोंद्वारा प्रदर्शित हैं। किसीका जन्म यदि अश्विनी नक्षत्रके प्रथम चरणमें हो तो चू अक्षरसे, द्वितीय चरणमें जन्म हो तो 'चे' अक्षरसे नाम पड़ेगा। इस प्रकार नाक्षत्रिक नामसे इस होराचक्रद्वारा अपनी राशि, वर्ण, योनि, राशिस्वामी, गण तथा नाड़ी आदिका ज्ञान हो जाता है। यदि किसीका नाक्षत्रिक नाम 'चूड़ामणि' है तो चक्रमें देखनेसे ज्ञात होगा कि नामका प्रथमाक्षर 'चू' अश्विनी नक्षत्रके पहले चरणमें है। अत: ऐसे व्यक्तिकी मेष राशि, क्षत्रिय वर्ण, चतुष्पद वश्य, अश्व योनि, राशिस्वामी मंगल, गण देव तथा नाड़ी आदि होगी। इसी प्रकार नामके प्रथमाक्षरोंसे चक्रद्वारा इन सभी बातोंका ज्ञान हो जाता है। यह चक्र विवाहमेलापकमें गुणमिलानके लिये विशेष उपयोगी है। आर्द्रा नक्षत्रके तृतीय चरणमें 'ङ', हस्तनक्षत्रके तृतीय चरणमें 'ण' तथा उत्तराभाद्रपदके चतुर्थ चरणमें 'ञ' अक्षर आता है। इन अक्षरोंसे नामकरणमें कठिनाई आती है। इसके उपायमें स्वरशास्त्रमें बताया गया है कि इन अक्षरोंके स्थानपर क्रमश: 'ग', 'ज' तथा 'ड' अक्षरसे नाम रखना चाहिये—**'न प्रोक्ता ङञणा वर्णा नामादौ सन्ति ते नहि। चेद्भवन्ति तथा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रमम्॥'** (ज्योतिर्निबन्ध)

नैसर्गिक ग्रहमैत्रीचक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्र मंगल गुरु	सूर्य बुध	सूर्य चन्द्र गुरु	सूर्य शुक्र	सूर्य मंगल चन्द्र	बुध शनि	बुध शुक्र
सम	बुध	मंगल गुरु शुक्र शनि	शुक्र शनि	मंगल गुरु शनि	शनि	भौम गुरु	गुरु
शत्रु	शुक्र शनि		बुध	चन्द्र	बुध शुक्र	सूर्य चन्द्र	सूर्य चन्द्र मंगल

होराचक्र—अवकहडाचक्र—(वर-कन्याके नामनक्षत्रसे विवाहमेलापक विचारके लिये आवश्यक विषय)

नक्षत्र-अक्षर	नक्षत्र	राशि	वर्ण	वश्य	योनि	यो.वै.	राशीश	गण	नाडी
चू. चे. चो.ला.	अश्विनी	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	अश्व	महिष	भौम	देव	आदि
ली.लू. ले.लो.	भरणी	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	गज	सिंह	भौम	मनुष्य	मध्य
अ.ई. उ.ए.	कृत्तिका	मेष१ वृष३	क्षत्रि१ वैश्य३	चतुष्पद	मेष	वानर	भौम१ शुक्र३	राक्षस	अन्त्य
ओ.वा. वी.वू.	रोहिणी	वृष	वैश्य	चतुष्पद	सर्प	नकुल	शुक्र	मनुष्य	अन्त्य
वे. वो. का.की.	मृगशिरा	वृष२ मिथुन२	वैश्य२ शूद्र२	चतुर२ मानर२	सर्प	नकुल	शुक्र२ बुध२	देव	मध्य
कु.घ. ङ. छ.	आर्द्रा	मिथुन	शूद्र	मानव	श्वान	मृग	बुध	मनुष्य	आदि
के.को. हा.ही.	पुनर्वसु	मिथु३ कर्क१	शूद्र३ विप्र१	मान३ जल१	मार्जार	मूषक	बुध३ चन्द्र१	देव	आदि
हू.हे. हो.डा.	पुष्य	कर्क	विप्र	जलचर	मेष	वानर	चन्द्र	देव	मध्य
डी.डू. डे.डो.	आश्लेषा	कर्क	विप्र	जलचर	मार्जार	मूषक	चन्द्र	राक्षस	अन्त्य
मा.मी. मू.मे.	मघा	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	मूषक	मार्जार	सूर्य	राक्षस	अन्त्य
मो.टा. टी.टू.	पू.फा.	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	मूषक	मार्जार	सूर्य	मनुष्य	मध्य
टे.टो. पा.पी.	उ.फा.	सिंह१ कन्या३	क्षत्रि१ वैश्य३	वन१ मान३	गौ	व्याघ्र	सूर्य१ बुध३	मनुष्य	आदि
पू.ष. ण.ठ.	हस्त	कन्या	वैश्य	मानव	महिष	अश्व	बुध	देव	आदि
पे.पो. रा.री.	चित्रा	कन्या२ तुला२	वैश्य२ शूद्र२	मानव	व्याघ्र	गौ	बुध२ शुक्र२	राक्षस	मध्य
रु.रे. रा.ता.	स्वाती	तुला	शूद्र	मानव	महिष	अश्व	शुक्र	देव	अन्त्य
ती.तू. ते.तो.	विशाखा	तुला३ वृश्चि१	शूद्र३ विप्र१	मान३ कीट१	व्याघ्र	गौ	शुक्र३ भौम१	राक्षस	अन्त्य
ना.नी. नू.ने.	अनु.	वृश्चिक	विप्र	कीट	मृग	श्वान	भौम	देव	मध्य
नो.या. यी.यू.	ज्येष्ठा	वृश्चिक	विप्र	कीट	मृग	श्वान	भौम	राक्षस	आदि
ये.यो. भा.भी.	मूल	धनु	क्षत्रिय	मानव	श्वान	मृग	गुरु	राक्षस	आदि
भू.ध. फ.ढ.	पू.षा.	धनु	क्षत्रिय	मान१ चतु३	वानर	मेष	गुरु	मनुष्य	मध्य
भे.भो. जा.जी.	उ.षा.	धनु१ मकर३	क्षत्रि१ वैश्य३	चतुष्प	नकुल	सर्प	गुरु१ शनि३	मनुष्य	अन्त्य
खी.खू. खे.खो.	श्रवण	मकर	वैश्य	चतु१ जल३	वानर	मेष	शनि	देव	अन्त्य
गा.गी. गू. गे.	धनि.	मकर२ कुम्भ२	वैश्य२ शूद्र२	जल२ मान२	सिंह	गज	शनि	राक्षस	मध्य
गो.सा. सी.सू.	शत.	कुम्भ	शूद्र	मानव	अश्व	महिष	शनि	राक्षस	आदि
से.सो. दा.दी.	पू.भा.	कुम्भ३ मीन१	शूद्र३ विप्र१	मान३ जल१	सिंह	गज	शनि३ गुरु१	मनुष्य	आदि
दू.थ. झ.ञ.	उ.भा.	मीन	विप्र	जलचर	गौ	व्याघ्र	गुरु	मनुष्य	मध्य
दे.दो. चा.ची.	रेवती	मीन	विप्र	जलचर	गज	सिंह	गुरु	देव	अन्त्य

वर-कन्या वैवाहिक अष्टकूट-मिलान (मेलापक)-हेतु उपयोगी सारणियाँ

वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गण, भकूट और नाडी—ये अष्टकूट हैं, जिनका विचार विवाह-मेलापकमें किया जाता है। वर्णमें १, वश्यमें २, तारामें ३, योनिमें ४, ग्रहमैत्रीमें ५, गणमैत्रीमें ६, भकूटमें ७ तथा नाडीमें ८ गुण होते हैं। इस प्रकार कुल छत्तीस गुण होते हैं। मेलापकमें अठारह गुणसे ऊपर मिलनेपर शुभ तथा २७ गुणसे ऊपर विवाह अत्यन्त शुभ माना जाता है। मेलापकके साथ अन्य बातोंपर भी विचार किया जाता है। यहाँ अष्टकूटकी सारणियोंमें ऊपर वर-सम्बन्धी तथा बाँयें भागमें कन्या-सम्बन्धी बातें दी गयी हैं। होडा-चक्रके अनुसार वर-कन्या—दोनोंके वर्ण, वश्य, तारा आदिका ज्ञानकर इन चक्रोंसे गुणको मिलाना चाहिये। उदाहरणके लिये यदि वरकी कुण्डलीमें वर्ण विप्र हो और कन्याकी कुण्डलीमें वर्ण क्षत्रिय हो तो १ गुण मिलेगा। इसके विपरीत यदि वरका वर्ण वैश्य हो और कन्याका क्षत्रिय हो तो शून्य गुण मिलेगा। इसी प्रकार यदि वरकी नाडी आदि हो और कन्याकी भी नाडी आदि हो तो नाडीवेध होनेसे शून्य गुण मिलेगा। इसके विपरीत नाडीभेद हो तो ८ गुण मिलेंगे। तारामें तीन गुण मिलते हैं। तारा देखनेके लिये कन्याके नक्षत्रसे वरके नक्षत्रतक तथा वरके नक्षत्रसे कन्याके नक्षत्रतक गिनकर जो आये, उसमें अलग-अलग ९ का भाग देनेसे जो शेष बचे, उसे तारा जानना चाहिये।

१-वर्णस्यगुणाः

कन्यायाः / वरस्य — वर्णाः	वि.	क्ष.	वै.	शू.
विप्र	१	०	०	०
क्षत्रिय	१	१	०	०
वैश्य	१	१	१	०
शूद्र	१	१	१	१

२-वश्यगुणाः

कन्यायाः / वरस्य — वश्याः	च.	मा.	ज.	व.	की.
चतुष्पद	२	१	१	०	१
मानव	१	२	१	०	१
जलचर	१	१	२	१	१
वनचर	०	०	१	२	०
कीट	१	१	१	०	२

३-ताराया: गुणाः

कन्यायाः / वरस्य — तारा	जन्म १	संपत २	विपत ३	क्षेम ४	प्रत्यरि ५	साधक ६	वध ७	मैत्र ८	अतिमैत्र ९
जन्म १	३	३	१ ॥	३	१ ॥	३	१ ॥	३	३
संपत् २	३	३	१ ॥	३	१ ॥	३	१ ॥	३	३
विपत् ३	१ ॥	१ ॥	०	१ ॥	०	१ ॥	०	१ ॥	१ ॥
क्षेम ४	३	३	१ ॥	३	१ ॥	३	१ ॥	३	३
प्रत्यरि ५	१ ॥	१ ॥	०	१ ॥	०	१ ॥	०	१ ॥	१ ॥
साधक ६	३	३	१ ॥	३	१ ॥	३	१ ॥	३	३
वध ७	१ ॥	१ ॥	०	१ ॥	०	१ ॥	०	१ ॥	१ ॥
मैत्र ८	३	३	१ ॥	३	१ ॥	३	१ ॥	३	३
अतिमैत्र ९	३	३	१ ॥	३	१ ॥	३	१ ॥	३	३

५-ग्रहमैत्रकस्य गुणाः

कन्यायाः / वरस्य — ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
सूर्य	५	५	५	४	५	०	०
चन्द्र	५	५	४	१	४	॥	॥
मंगल	५	४	५	॥	५	३	॥
बुध	४	१	॥	५	॥	५	४
गुरु	५	४	५	॥	५	॥	३
शुक्र	०	॥	३	५	॥	५	५
शनि	०	॥	॥	४	३	५	५

६-गणगुणाः

कन्यायाः / वरस्य — गण	देव	मनुष्य	राक्षस
देव	६	५	१
मनुष्य	६	६	०
राक्षस	०	०	६

८-नाडीगुणाः

कन्यायाः / वरस्य — नाडी	आदि	मध्य	अन्त्य
आदि	०	८	८
मध्य	८	०	८
अन्त्य	८	८	०

४-योनिकूटस्य गुणज्ञानाय चक्रमिदम्।

कन्यायाः / वरस्य — योनयः	अश्व १	गज २	मेष ३	सर्प ४	श्वान ५	मार्जार ६	मूषक ७	गौ ८	महिष ९	व्याघ्र १०	मृग ११	वानर १२	नकुल १३	सिंह १४
अश्व १	४	२	३	२	२	३	३	३	०	१	३	२	२	१
गज २	२	४	३	२	२	३	३	३	३	२	३	२	२	०
मेष ३	३	३	४	३	२	३	२	३	३	१	३	०	३	१
सर्प ४	२	२	३	४	२	२	१	१	२	२	२	२	०	२
श्वान ५	२	२	२	२	४	१	१	२	२	१	०	३	२	१
मार्जार ६	३	३	३	१	१	४	०	३	३	२	३	२	२	२
मूषक ७	३	३	२	१	१	०	४	२	२	२	२	२	२	१
गौ ८	३	२	३	१	२	२	२	४	३	०	३	२	३	१
महिष ९	०	३	३	२	२	२	२	३	४	१	२	२	२	३
व्याघ्र १०	१	२	१	२	१	१	२	०	१	४	२	१	२	२
मृग ११	३	३	३	२	०	२	२	३	२	१	४	२	२	२
वानर १२	२	३	०	२	२	२	२	२	२	१	२	४	२	३
नकुल १३	२	२	३	०	२	२	१	३	२	२	२	२	४	२
सिंह १४	१	१	१	२	१	२	१	१	३	२	२	२	२	४

७-राशिकूटस्य गुणाः।

कन्यायाः / वरस्य — राशयः	मेष १	वृष २	मिथुन ३	कर्क ४	सिंह ५	कन्या ६	तुला ७	वृश्चिक ८	धनु ९	मकर १०	कुम्भ ११	मीन १२
मेष १	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
वृष २	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
मिथुन ३	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
कर्क ४	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सिंह ५	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
कन्या ६	०	०	७	७	०	७	७	७	७	०	०	७
तुला ७	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृश्चिक ८	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
धनु ९	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
मकर १०	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
कुम्भ ११	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
मीन १२	०	७	७	०	०	७	०	७	७	७	०	७

विवाह-मेलापक तथा मंगल, गुरु एवं सूर्यपर विचार

(डॉ० श्रीकृष्णपालसिंहजी गौतम)

'धन्यो गृहस्थाश्रमः' विवाह गृहस्थाश्रमसे सम्बन्धित प्रथम संस्कार है। अतः विवाहसे सम्बन्धित अनेक बिन्दुओं—मेलापक, मंगली जन्मपत्री, गुरु एवं सूर्यसे सम्बन्धित दान आदि अनेकानेक स्थितियोंपर विचार करना अत्यन्त आवश्यक होता है। होडाचक्रके अनुसार नक्षत्रों एवं राशियोंका ज्ञान परम आवश्यक है। इसके अतिरिक्त विवाहसे सम्बन्धित वर्णगुण, वश्यगुण, तारागुण, योनिगुण, ग्रहमैत्रीगुण, गणगुण, राशिकूटगुण एवं नाड़ी-कूटगुणोंका विचार विशेष महत्त्व रखता है। साथ ही गुरु एवं सूर्यसे सम्बन्धित दान आदिपर भी संशयकी स्थितिका निवारण परम आवश्यक हो जाता है।

मेलापकविचार—गृहस्थको अपनी कन्याके लिये वर निश्चित करते समय वरके कुल, शरीर, विद्या, अवस्था, धन, गुण एवं स्वास्थ्यदशापर अवश्य ही विचार करना चाहिये। बहुत ही समीप या बहुत दूर कन्याका विवाह नहीं करना चाहिये। वर-कन्याके नक्षत्रके अनुसार राशिनिर्धारण करते हुए गुणैक्यबोधकचक्रसे गुणोंकी जानकारी कर लेना चाहिये। सामान्यतया अठारह गुणोंसे अधिक गुण बननेपर विवाह शुभ एवं करणीय होता है। इसके साथ ही वर्णविचार करना चाहिये।

जन्मपत्रिका—मंगलीविचार एवं परिहार—विवाहके समय जन्मपत्रिकामें अन्य विचार-विमर्शके साथ ही जातकके मंगली होनेकी दशामें जातकके माता-पिता विशेष चिन्तित हो जाते हैं। अतः मंगलदोषके विविध पहलुओंपर विचार करना चाहिये। मंगलदोषको कुजदोष भी कहते हैं। ज्योतिषियोंकी अज्ञानताके कारण कभी-कभी अमांगलिक जन्मपत्रिकाको भी मांगलिक बताकर विवाहमें रोक लगा दी जाती है। अतः इस प्रकरणपर गहन विवेचनकी आवश्यकता है।

ज्योतिषग्रन्थोंमें मांगलिक जन्मपत्रिकाके मंगलदोषका विवेचन इस प्रकार मिलता है—

लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे।
कन्या भर्तुर्विनाशाय भर्ता पत्नीविनाशकृत्॥

इस श्लोकसे स्पष्ट हो जाता है कि जन्मपत्रिकाके लग्न (प्रथम भाव), चतुर्थ भाव, सप्तम भाव, अष्टम भाव एवं द्वादश भावमेंसे किसी भी भावमें मंगलका होना जन्मपत्रिकाको मांगलिक बना देता है। इस दोषसे प्रभावित पुरुष जातकको मौलि या मंगला तथा स्त्रीजातकको मंगली या चुनरी स्थानभेदसे माना जाता है।

प्रथम भाव (लग्नस्थान)-में मंगल—जब जातककी जन्मपत्रिकाके प्रथम भाव (लग्नस्थान)-में वृष या तुलाका मंगल होता है तो जातकके स्वास्थ्यपर बुरा प्रभाव डालता है, ऐसा जातक क्रोधी, झगड़ालू, जिद्दी स्वभावका हो जाता है।

चतुर्थ भावमें मंगल—चतुर्थ भावमें यदि स्वगृही या उच्चका मंगल है तो कृषि, पशुपालनमें रुचि रहती है तथा माता-पिताका सुख पाता है, परंतु यदि मंगल मिथुन, कन्या, मकर या कुम्भका हो तो माता-पिताके सुखसे वंचित होता है तथा परिजनोंसे विरोध रहता है। अग्निका भय बना रहता है।

सप्तम भावमें मंगल—सप्तम भावमें मंगल होनेपर जातकमें बुद्धिकी कमी रहती है, स्वास्थ्य दुर्बल रहता है। मिथुन या कन्याका मंगल होनेपर दो विवाह होते हैं, पर दोनोंके अनिष्टकी आशंका रहती है। स्वगृही (मेष या वृश्चिक)-का मंगल या उच्च (मकर)-का मंगल होनेपर स्त्रीसुख मिलता है तथा व्यापारमें सफल रहता है। मकर या कुम्भका मंगल जातकको दुराचारी बनाता है।

अष्टम भावमें मंगल—स्वगृही (मेष या वृश्चिक) या उच्च (मकर)-का मंगल उत्तम स्वास्थ्य तथा दीर्घायुष्य देता है, किंतु नीच (कर्क)-का मंगल स्वास्थ्यकी हानि करता है। वृष और तुलाका मंगल

स्त्रीकी ओरसे दुःख तथा व्यापारमें धनकी हानि कराता है। सिंहका मंगल धन एवं स्वास्थ्यकी हानिके साथ ही अल्पायु बनाता है। पत्नी कर्कशा मिलती है।

द्वादश भावमें मंगल—दाम्पत्यजीवनमें असन्तुष्टि, धन एवं विद्याकी कमी, स्वगृही या उच्चका मंगल लोभी बनाता है, नीच (कर्क)-का मंगल होनेपर दुराचारमें धननाश कराता है। सिंहका मंगल राजदण्डका भागी बनाता है। मिथुन और कन्याका मंगल अहंकारी बनाता है। धनु या मीनका मंगल सबसे विरोध तथा धनका अपव्यय कराता है।

भौमपंचकदोष—सभी ग्रह अपनेसे सातवें भावको देखते हैं अर्थात् सभी ग्रह सातवीं दृष्टिवाले होते हैं, परंतु मंगल, गुरु और शनिकी सातवीं दृष्टिके अतिरिक्त अन्य विशिष्ट दृष्टियाँ भी मानी गयी हैं। यथा—मंगलकी चौथी और आठवीं दृष्टि, गुरुकी पाँचवीं और नवीं दृष्टि तथा शनिकी तीसरी और दसवीं दृष्टि होती है। ये जिस भावको देखते हैं, उसे भी अपने प्रभावसे प्रभावित करते हैं।

प्रथम (लग्न), चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, द्वादश भावमें मंगलदोषके अतिरिक्त सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु—ये पाँच अशुभ ग्रह भी अपनी दृष्टि या युतिसे जन्मपत्रिकाके भावोंको देखते हैं तथा उक्त भावोंके फलको नष्ट या कम करनेमें सक्षम होते हैं। ये ग्रह भी जन्मपत्रिकाके प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम और द्वादश भावोंमें होते हैं अथवा इन ग्रहोंपर इनकी दृष्टि पड़ती है तो ये भी जातकके स्वास्थ्य, भोगविलास तथा दाम्पत्य-जीवनको प्रभावित करते हैं।

मंगलदोषप्रभावी मांगलिक जन्मपत्रिकाएँ

मंगलप्रभावी मांगलिक जन्मपत्रिकाएँ तीन प्रकारकी होती हैं—

१-मांगलिक जन्मपत्रिका—जब मंगल जन्मपत्रिकाके १।४।७।८।१२ भावोंमेंसे किसी भी भावमें होता है तो जन्मपत्रिका मांगलिक कहलाती है।

२-द्विबल मांगलिक जन्मपत्रिका—जब मंगल १।४।७।८।१२ भावोंमें होनेके साथ-साथ नीच (कर्कराशि)-का भी हो तो मंगलका दुष्प्रभाव दो गुना हो जाता है अथवा १।४।७।८।१२ भावोंमें मंगलके अलावा सूर्य, शनि, राहु-केतुमेंसे कोई ग्रह बैठा हो तो जन्मपत्रिका द्विबल मांगलिक होती है।

३-त्रिबल मांगलिक जन्मपत्रिका—नीच (कर्कराशि)-का मंगल यदि १।४।७।८।१२ भावमें हो तथा शनि, राहु, केतु भी उक्त भावोंमें हों तो मंगलका दुष्प्रभाव तीन गुना हो जाता है। ऐसी जन्मपत्रिका त्रिबल मांगलिक कहलाती है।

मंगलदोषका परिहार—जातककी जन्मपत्रिका मांगलिक होनेपर माता-पिता चिन्तित हो जाते हैं; क्योंकि ज्योतिषशास्त्रके अल्पज्ञ ज्योतिषियोंने अनेक प्रकारकी भ्रान्तियाँ फैला रखी हैं,किंतु इनमेंसे अधिकांश जन्मपत्रिकाएँ ऐसी होती हैं, जिनमें मंगलदोषका परिहार सहजरूपेण हो जाता है—

१-यदि पुरुषकी जन्मपत्रिका मांगलिक हो तथा स्त्रीकी जन्मपत्रिकाके १।४।७।८।१२ भावोंमें सूर्य, शनि, राहु हो तो जन्मपत्रिका मंगलदोषसे मुक्त हो जाती है।

२-जिस भावमें मंगल बैठा हो, उस भावका स्वामी ज्योतिषकी दृष्टिसे बलवान् हो तथा उसी भावमें बैठा हो या उस भावमें उसकी दृष्टि पड़ रही हो, पुनः सप्तमेश या शुक्र तीसरे भावमें बैठा हो तो मंगलदोष नहीं माना जायगा।

३-मेषका मंगल लग्नमें, वृश्चिकका चतुर्थ भावमें, वृषका सप्तम भावमें, कुम्भका अष्टम भावमें तथा धनुका द्वादश भावमें हो तो मंगलदोष नहीं माना जाता—

अजे लग्ने व्यये चापे पाताले वृश्चिके स्थिते।
वृषे जाये घटे रन्ध्रे भौमदोषो न विद्यते॥

४-उच्चका गुरु लग्नमें स्थित हो तो मांगलिक दोष नहीं माना जाता। ऐसे जातकका विवाह अमांगलिक जातकसे किया जा सकता है।

५-यदि शनि ग्रह १।४।७।८।१२ भावमें किसी

एक जातककी जन्मपत्रिकामें हो तथा दूसरे जातककी जन्मपत्रिकामें इन्हीं स्थानोंमेंसे किसी एक स्थानमें मंगल हो तो मंगलदोषका परिहार हो जाता है। विवाह शुभ माना जाता है।

६-यदि केन्द्र १।४।७।१० तथा त्रिकोण (५।९) भावमें शुभ ग्रह हों तथा ३, ६, ११ भावोंमें अशुभ ग्रह हों एवं ७ वें भावमें सप्तमेश हो तो मंगलदोष नहीं रहता।

७-सातवें भावमें मंगल हो तथा गुरुकी उसपर दृष्टि हो तो मांगलिकदोष नष्ट हो जाता है।

८-गुरु और मंगलकी युति हो अथवा मंगल और चन्द्रकी युति हो या फिर चन्द्रमा केन्द्रस्थानों (१।४।७।१०)-में स्थित हो तो मांगलिकदोष नहीं रहता।

९-१।४।७।८।१२ भावोंमें मंगल यदि चर राशि (मेष, कर्क, मकर)-का हो तो मांगलिकदोष नहीं होता।

१०-एक जन्मपत्रिकामें जैसा मंगल तथा सूर्य और सूर्य, शनि, राहु, केतु आदि पापग्रह दूसरी जन्मपत्रिकामें भी हो तो मंगलदोष नहीं रहता। विवाह शुभ रहता है।

सूर्य एवं गुरुदोषविचार एवं परिहार—अशुभ स्थानोंपर सूर्य एवं गुरुकी स्थिति भी दोषपूर्ण मानी गयी है। ऐसी स्थिति आनेपर ज्योतिषी प्रायः इन ग्रहोंसे सम्बन्धित दान आदि करनेका विधान बताया करते हैं तथापि इस समस्याके समाधानस्वरूप परिहाररूपमें अधोलिखित बात ध्यान देनेयोग्य है—

द्वादश वर्षसे अधिककी कन्या एवं षोडश वर्ष (सोलह वर्ष)-से अधिकका वर हो तो ज्योतिषके विद्वान् सूर्य एवं गुरुका विचार नहीं करते।

अतः किसी सुविज्ञ ज्योतिषीसे जन्मपत्रिकाके दोष-गुणोंका निराकरण करवाकर संशयनिवृत्त होकर विवाहकार्य सम्पन्न कराना चाहिये।

विवाहमेलापकमें अष्टकूटदोषोंका परिहार

(श्रीकृष्णकान्तजी भारद्वाज)

वर-कन्याका दाम्पत्य जीवन सुखपूर्वक बीते—इसके लिये जन्मकुण्डलीके माध्यमसे अष्टकूट गुण मिलानेकी परम्परा है। विवाहोपरान्त वर एवं कन्याकी परस्पर अनुकूलता हो, दोनोंकी आयु दीर्घ हो, धन-सम्पत्ति एवं सन्तानका सुख उत्तम हो—इसी उद्देश्यसे ऋषि-मुनियोंने अपने ज्ञान एवं अनुसन्धानके आधारपर वर एवं कन्याकी जन्मराशि तथा जन्मनक्षत्रोंके अनुसार विवाहसे पूर्व अष्टकूट मिलानसे गुण मिलानेकी श्रेष्ठ पद्धतिका विकास किया। 'मुहूर्तचिन्तामणि' ग्रन्थमें अष्टकूटोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम्।
गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः॥

(विवाहप्रकरण, श्लोक २१)

इस प्रकार वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गण, भकूट और नाडी—ये आठ अष्टकूट हैं, जिनका विचार मिलानमें किया जाता है।

'दैवज्ञमनोहर'के अनुसार इनके गुण इस प्रकार हैं—

नाडीभेदे गुणा अष्टौ सप्त सद्राशिकूटके।
षड्गुणा गणमैत्र्यां च सौहार्दे पञ्च खेटयोः॥
योनिमैत्र्यां च चत्वारस्त्रयस्ताराबले गुणाः।
वश्यत्वे द्वौ गुणौ प्रोक्तौ वर्ण एकः प्रकीर्तितः॥

इसके अनुसार नाड़ीके आठ गुण, भकूटके सात गुण, गणमैत्रीके छः गुण, ग्रहमैत्रीके पाँच गुण, योनिमैत्रीके चार गुण, ताराबलके तीन गुण, वश्यके दो गुण और वर्णका एक गुण—इस प्रकार कुल छत्तीस गुण होते हैं।

यह बड़े आश्चर्यका विषय है कि वर एवं कन्याके जन्म-नक्षत्रका मिलान करते समय सभी ज्योतिषी अष्टकूट दोषोंका विचार तो करते हैं, पर उनके परिहारोंको महत्त्व प्रदान नहीं करते। सभी मेलापक एवं मुहूर्तग्रन्थोंमें अष्टकूटदोषोंके

साथ ही उनके परिहारोंका वर्णन भी किया गया है। परिहार उपलब्ध होनेपर दोषोंकी निवृत्ति मानकर उनके आधे गुण ग्रहण करनेका शास्त्र उपदेश देते हैं। कुल ३६ गुणोंमें से १८ से २१ गुण मिलनेपर मिलान मध्यम तथा इससे अधिक होनेपर उत्तरोत्तर शुभ मिलान होता है। १८से कम गुण मिलनेपर विवाह- सम्बन्ध नहीं करना चाहिये। अष्टकूट-दोषोंका परिहार निम्नलिखित प्रकारसे वर्णित है—

अष्टकूट	परिहार
वर्ण	राशियोंके स्वामियों या नवांशेशोंकी मैत्री या एकता हो।
वश्य	राशियोंके स्वामियों या नवांशेशोंकी मैत्री या एकता हो।
तारा	राशियोंके स्वामियों या नवांशेशोंकी मैत्री या एकता हो।
योनि	राशियोंके स्वामियों या नवांशेशोंकी मैत्री या एकता हो।
राशिमैत्री	१-राशियोंके नवांशेशोंकी मैत्री या एकता हो। २-भकूट दोष न हो।
गण	१-राशियोंके स्वामियों या नवांशेशोंकी मैत्री या एकता हो। २-भकूट दोष न हो।
भकूट	राशियोंके स्वामियों या नवांशेशोंकी मैत्री या एकता हो।
नाडी	१-दोनोंकी राशि एक तथा नक्षत्र अलग-अलग हो। २-दोनोंके नक्षत्र एक तथा राशि अलग-अलग हो। ३-दोनों के नक्षत्रोंमें चरणवेध न हो अर्थात् दोनोंके नक्षत्रोंके चरण १-४ या २-३ न हों; क्योंकि इनमें परस्पर वेध होता है।

क्या है मांगलिक दोष ?

जन्मकुण्डलीमें १, ४, ७, ८, १२ वें भावमें यदि मंगल स्थित हो तो वर अथवा कन्याको मंगली कहा जाता है तथा उनका विवाह मंगली वर, कन्या से करना शुभ समझा जाता है। मंगल ग्रहको ज्योतिषग्रन्थोंमें रक्तप्रिय एवं हिंसा तथा विवादका कारक कहा गया है। सातवाँ भाव जीवनसाथी एवं गृहस्थ-सुखका है। इस

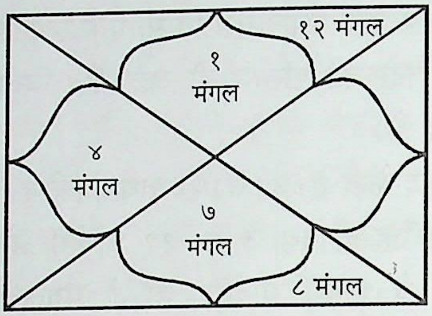

भावमें स्थित मंगल अपनी दृष्टि या स्थितिसे गृहस्थ-सुखको हानि पहुँचाता है। ज्योतिषियोंकी एक बड़ी संख्या जन्मकुण्डलीमें उपर्युक्त स्थानोंपर मंगलको देखकर वर या कन्याको तत्काल मंगली घोषित कर देती है, फिर चाहे मंगल नीच राशिमें हो या उच्चमें, मित्रराशिमें हो या शत्रुमें। मंगलदोषके परिहारको या तो अनदेखा किया जाता है या शास्त्रीय नियमोंकी अवहेलना करनेवाले परिहार वाक्योंको लागू करके त्रुटियुक्त मिलान कर दिया जाता है।

क्या कहते हैं ज्योतिषके शास्त्रीय मूलभूत नियम—फलितज्योतिषके सर्वमान्य ग्रन्थोंके अनुसार जो ग्रह अपने उच्च, मूलत्रिकोण, स्वराशि, मित्रराशि, नवांशमें स्थित हो तथा वर्गोत्तम, षड्बली, शुभ ग्रहोंसे युक्त एवं दृष्ट हो तो वह सदैव शुभकारक होता है। इसी प्रकार नीचस्थ, शत्रुराशिस्थ, पापयुक्त, पापदृष्ट, षड्बलविहीन हो तो वह अशुभकारक होता है—

नीचस्थो रिपुराशिस्थः खेटो भावविनाशकः।
मूलस्वतुङ्गमित्रस्थो भाववृद्धिकरो भवेत्॥

(जातकपारिजात ११। ३)

पापग्रह भी यदि स्व, उच्च, मित्रराशिस्थ, नवांश, वर्गोत्तम, शुभयुक्त, शुभदृष्ट हों तो शुभ कारक होते हैं।

उपर्युक्त सन्दर्भोंसे यह स्पष्ट है कि जन्मकुण्डलीके १, ४, ७, ८, १२ वें भावमें स्थित मंगल यदि स्व, उच्च, मित्र आदि राशि नवांशका, वर्गोत्तम, षड्बली हो तो मांगलिकदोष नहीं होता। प्राचीन ज्योतिषग्रन्थों एवं फलित सूत्रोंके अनुसार जन्मकुण्डलीके १, ४, ७, ८, १२वें भावमें स्थित मंगल भी निम्नलिखित परिस्थितियोंमें

दोषकारक नहीं होता—

१-यदि मंगल इन भावोंमें स्व, उच्च, मित्रराशि नवांशका हो।

२-यदि मंगल इन भावोंमें वर्गोत्तम नवांशका हो।

३-यदि इन भावोंमें स्थित मंगलपर बलवान् शुभ ग्रहोंकी पूर्ण दृष्टि हो।

मांगलिक दोषका विचार भावकुण्डलीसे भी करना चाहिये; क्योंकि चलित कुण्डलीमें सन्धि-स्थानपर स्थित मंगलका भावफलशून्य होता है। सप्तम भावका स्वामी बलवान् हो तथा अपने भावको पूर्ण दृष्टिसे देख रहा हो तो मांगलिक दोषका परिहार हो जाता है।

क्या शनि या राहुसे युक्त मंगल होनेपर मांगलिक दोष नहीं रहता ?—कुछ मुहूर्तग्रन्थोंमें ऐसे वाक्य मिलते हैं कि शनि या राहुसे युक्त मंगल होनेपर मांगलिक दोष नहीं रहता, किंतु ये वाक्य फलित ज्योतिषके शास्त्रीय नियमोंके विरुद्ध हैं। यह सर्वमान्य फलितज्योतिषका सिद्धान्त है कि पापग्रहकी युति किसी ग्रहके पापफलमें वृद्धि करती है, उसका दोष दूर नहीं करती।

बृहत्पाराशरके अनुसार पापग्रहसे युक्त ग्रह विकल अवस्थाका होगा तथा दोषकारक होगा। अतः स्पष्ट है कि शनि या राहुकी युतिसे मांगलिक दोषकी निवृत्ति नहीं होती; क्योंकि ये दोनों ग्रह पापी हैं और मंगलके अशुभ फलमें वृद्धि करेंगे।

उपर्युक्त तथ्योंसे यही निष्कर्ष निकलता है कि मांगलिकदोषका निर्णय वर तथा कन्याकी जन्म-कुण्डलियोंका सावधानीपूर्वक अनुशीलन करके करना चाहिये तथा जल्दबाजीसे किसी परिणामपर नहीं पहुँचना चाहिये। ऐसा करके ही हम समाज तथा शास्त्रका हित कर सकते हैं।

सर्वमान्य मुहूर्त तथा मेलापक ग्रन्थके अनुसार यदि दोष होनेपर भी परिस्थितिवश विवाह करना ही पड़े तो दान-जप आदिसे मिलानके दोषोंका निवारण करना चाहिये।

नाड़ी-दोषमें महामृत्युंजय मन्त्रका विधिवत् जप तथा स्वर्णकी नाड़ीका दान करें। दूसरे-बारहवें भकूट दोषमें ताँबेका दान, छठें-आठवें भकूटमें स्वर्णदान, नवें-पाँचवें भकूटमें गोदान तथा सभी दोषोंकी शान्तिके लिये स्वर्ण, गौ, अन्न, वस्त्र इत्यादिका दान करना चाहिये।

व्यापार-व्यवसायका चयन

(श्रीतुलसीदासजी तिवारी)

श्रीपद्मप्रभुसूरिने अपने ग्रन्थ भुवनदीपकमें कुण्डलीके सम्बन्धमें लिखा है—

इन्दुः सर्वत्र बीजाभो लग्नं तु कुसुमप्रभम्।
फलेन सदृशोंऽशश्च भावः स्वादुसमः स्मृतः॥

अर्थात् चन्द्रमा बीज, लग्न पुष्प, नवांश फल तथा भाव स्वादके समान होता है। उपर्युक्त कथन स्पष्ट करता है कि फलकथनमें नवांश कुण्डलीका विशेष महत्त्व है, परंतु नवांश और दशमांश कुण्डलियोंकी आजीविका-चयनमें विशेष भूमिका रहती है। यदि मंगल ग्रह लग्न, नवांश एवं दशमांश तीनों ही कुण्डलियोंमें अपनी राशि मेष या वृश्चिकपर स्थित है तो जातक सेना या सुरक्षाक्षेत्रमें आजीविका प्राप्त करता है। जातकका जन्म यदि पूर्णिमाकी रात्रिको हो तो उस स्थितिपर एक करोड़ दोषको चन्द्रमा नष्ट करता है। चन्द्रमा पूर्णिमाके पाँच दिन पहले या पाँच दिनके बाद पक्षबल रहता है एवं स्थानबलके लिये चन्द्रमा वृषका उच्च राशि तथा कर्कका स्वगृही हो और वर्गोत्तम परिस्थितियाँ (जन्मकुण्डलीमें चन्द्रमा जिस राशिमें स्थित हो, नवांश कुण्डलीमें भी उसी राशिपर चन्द्रमाके स्थित होनेपर वह वर्गोत्तम कहलाता है) हों तो जातक चिकित्साक्षेत्रमें डॉक्टर, फार्मेसिस्ट, मेडिकल प्रबन्धक होता है या चिकित्सा-सम्बन्धी

उपकरण बनानेवाली फैक्ट्रीमें कार्यरत होकर आजीविका चलाता है। जल और दुग्धके उद्योग भी उसके लिये अनुकूल होते हैं।

जन्मकुण्डलीसे फलका विचार करते समय सर्वप्रथम जन्मलग्न, चन्द्रलग्न और सूर्यलग्नसे निर्धारण करे कि दशम भावका अधिपति बलवान् है या नीच। क्या वह जीवनभर कार्यक्षेत्रमें उच्चतम स्तरतक सफलता प्राप्त करेगा ? या जीवन संघर्षमय रहेगा। सूर्य उच्चाभिलाषी या मूलत्रिकोणमें स्थित हो तो सरकारी नौकरी और राजनीतिमें शक्तिशाली पद दिलानेमें सहायता प्रदान करता है। दशम भावपर कोई भी वक्री ग्रह चिन्ताका विषय रहता है। ऐसा जातक कर्तव्यविमुख होकर प्रतिष्ठाकी हानि करता है।

कर्मक्षेत्रका सूचक दशमांश और भाग्यका प्रतिनिधि नवांशकुण्डली है। लग्नका स्वामी द्वादशपर या द्वादशका स्वामी लग्नपर स्थित एवं कर्मभावके स्वामीसे युक्त हो तो जातकका कर्मक्षेत्र विदेशमें आजीविका दिलानेमें सहायता प्रदान करता है।

नवांश लग्नेश या दशम भावका स्वामी अपनी दशामें उच्च पद और व्यापार-व्यवसाय उन्नति दिलाता है। दशमांश कुण्डलीमें नवम, दशम और एकादश भावके स्वामीकी युति एक ही स्थानपर श्रेष्ठता प्रदर्शित करती है। जन्मकुण्डलीमें नवम और दशम भावके अधिपतिकी युति धर्म-कर्म-पतियोग प्रदान करता है।

चन्द्रलग्नसे षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम भावपर शुभ ग्रहकी स्थिति शुभ योग प्रदान करती है। शुभ ग्रह क्रमशः बुध, बृहस्पति एवं शुक्र उक्त ग्रह षष्ठसे अष्टमतक रहे। अगर सूर्यकी युति रहे तो जातक उच्च अधिकारी बनता है।

नवांश एवं दशमांश कुण्डलीमें दशमेश सूर्य एवं बुधकी युति जातकको उच्च अधिकारी बना देती है।

दशमांश कुण्डलीमें दशमेश मंगल, बुध तथा शनिकी युति जातकको इंजीनियर बनाती है।

कालसर्पयोग*

(श्रीहरिनारायणजी 'शास्त्री')

विविध धर्मग्रन्थों एवं शास्त्रोंमें सर्पदोषोंका वर्णन मिलता है। वर्तमानमें प्राचीन एवं नवीन दैवज्ञोंके मध्य कालसर्पयोगके विषयमें मन्त्रणा प्रारम्भ हो चुकी है। यदि हम प्राचीन ग्रन्थ मानसागरी, बृहज्जातक तथा बृहत्पाराशर होराशास्त्रका अवलोकन करें तो यह सिद्ध हो जाता है कि इन ग्रन्थोंमें कालसर्पयोग अथवा सर्पयोगका उल्लेख किया गया है।

भारतीय संस्कृतिमें नागोंका विशेष महत्त्व है। प्राचीन कालसे ही नागपूजा की जाती रही है। नागपंचमीका पर्व पूरे देशमें पूर्ण श्रद्धाके साथ मनाया जाता है। इस दिन प्रत्येक गृहस्थ घरके प्रवेशद्वारपर नागकी आकृति बनाकर पूजन करता है। इस दिन नागदर्शनको अत्यन्त शुभ माना जाता है। इन्हें शक्ति एवं सूर्यका अवतार माना गया है। मानव-सभ्यताके प्रारम्भसे ही नागोंके प्रति विशेष भयकी भावना रही है। भारतके प्रत्येक क्षेत्रमें भगवान् आशुतोषके पूजनका विधान होता है। नाग भगवान् शिवके गलेका हार है।

सप्ताहके सात दिनोंके नाम किसी-न-किसी ग्रहके ऊपर रखे गये हैं, किंतु राहु-केतुके आधारपर कोई नाम नहीं रखा गया; क्योंकि इन्हें छायाग्रह माना जाता है। इसलिये इनका प्रभाव भी परोक्ष रूपसे पड़ता है। राहुका स्वभाव शनिवत् एवं केतुका मंगलवत् माना जाता है।

* ज्योतिषकी प्राचीन परम्परामें 'कालसर्पयोग' की चर्चा प्रायः नहीं होती थी, परंतु वर्तमान समयमें कुछ ज्योतिषियोंके द्वारा कालसर्पयोगकी चर्चा हो रही है तथा इसके शान्ति आदिकी बात भी की जाती है। जो लोग इस विधासे प्रभावित हैं, उनकी जानकारीके लिये यह लेख यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

एक शरीरके दो भागोंमें राहुको सिर एवं केतुको धड़ माननेपर सिरमें विचार-शक्ति होती है, किंतु शरीर न होनेपर यह स्वयं क्रिया करनेमें असमर्थ होता है। राहु जिस भावमें होता है उसके भावेश, उस भावमें स्थित ग्रह या जहाँ दृष्टि डालता है उस राशि, राशीश एवं उस भावमें स्थित ग्रहको अपनी विचारशक्तिसे प्रभावितकर क्रिया करनेको प्रेरित करता है। केतु जिस भावमें बैठता है उस राशि, उसके भावेश, केतुपर दृष्टिपात करनेवाले ग्रहके प्रभावमें क्रिया करता है। केतुको मंगलके समान मान लेनेपर उसका प्रभाव मंगलके समान विध्वंसकारी हो जाता है। अपनी महादशा एवं अन्तर्दशामें व्यक्तिकी बुद्धिको भ्रमितकर सुख-समृद्धिका ह्रास करता है। राहुकी महादशा बाधाकारक होती है। यहाँ विचारणीय यह है कि राहु सम्बन्धित ग्रहके माध्यमसे अपना कार्य कराता है एवं केतु सम्बन्धित ग्रहके प्रभावमें आकर उस ग्रहके अनुसार कार्य करता है। राहुके सम्बन्धमें एक बात अवश्य विचारणीय है कि राहु जिस ग्रहके सम्पर्कमें हो, उसके अंश राहुसे कम होनेपर राहु प्रभावी रहेगा, जबकि राहुके अंश कम होनेपर उस ग्रहका प्रभाव अधिक होगा एवं राहु निस्तेज हो जायगा, उस स्थितिमें कालसर्पयोगका प्रभाव न्यूनतम रहेगा। कालसर्पयोग राहुसे केतु एवं केतुसे राहुकी ओर बनता है। यहाँ विचारणीय यह है कि राहुसे केतुकी ओर बने योगका ही प्रभाव होता है, जबकि केतुसे राहुकी ओर बननेवाला योग निष्प्रभावी होता है। यह कहना उपयुक्त होता है कि केतुसे राहुकी ओर बननेवाले योगको कालसर्पकी संज्ञा देना उपयुक्त नहीं होगा।

वैज्ञानिक रूपसे यदि कालसर्पयोगकी व्याख्या करें तो जन्मांग-चक्रमें राहु-केतुकी स्थिति हमेशा आमने-सामनेकी ही होती है। जब अन्य सभी ग्रह इनके मध्य अर्थात् प्रभावक्षेत्रमें आ जाते हैं, तब वे अपना प्रभाव त्यागकर राहु-केतुके चुम्बकीय क्षेत्रसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते एवं राहु-केतुके गुण-दोषोंका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी हो जाता है। राहु-केतु हमेशा वक्रगतिसे चलते हैं। इनमें वाम गोलार्ध एवं दक्षिण गोलार्ध दो स्थितियाँ बनती हैं। राहुका बायाँ भाग काल कहलाता है। इसीलिये राहुसे केतुकी ओर बननेवाला योग ही कालसर्पयोगकी श्रेणीमें आता है। केतुसे राहुकी ओर बननेवाले योगको अनेक दैवज्ञोंद्वारा कालसर्पयोग नहीं कहा जाता। इतना अवश्य है कि कालसर्पयोगका निर्माण किसी-न-किसी पूर्वजन्मकृत दोष अथवा पितृदोषके कारण बनता है।

निम्न चक्रद्वारा कालसर्पयोगको स्पष्टतः समझा जा सकता है—

उदित गोलार्ध कालसर्पयोग

(राहुकी वक्र गतिसे सभी ग्रह प्रभावित)

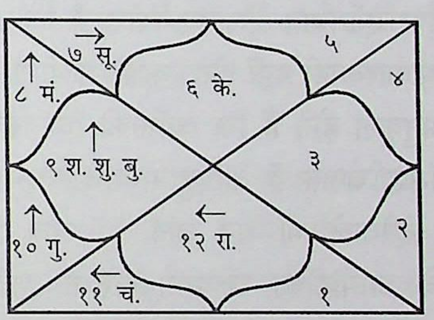

अनुदित गोलार्ध कालसर्पयोग

(राहुकी गतिसे कोई ग्रह तत्काल प्रभावित नहीं)

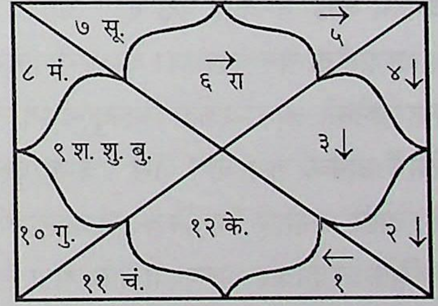

उदित गोलार्ध कालसर्पयोग जन्मसे ही प्रभावी हो जाता है, जबकि अनुदितका प्रभाव गोचरमें ग्रहके राहुके प्रभावमें आनेपर होता है। अतः उदितका प्रभाव अधिक भयावह होता देखा गया है।

किसी जन्मांगमें कालसर्पयोगका निर्धारण अत्यन्त सावधानीसे करना चाहिये। केवल राहु-केतुके मध्य ग्रहोंका होना ही पर्याप्त नहीं है। यहाँ अनेक ऐसे बिन्दु हैं, जिनका ध्यान न रखें तो हमारी दिशा एवं जातककी दशा खराब होनेमें अधिक समय नहीं लगेगा। सर्वप्रथम

यह देखें कि कालसर्पयोग किस भावसे किस भावतक है एवं ग्रहका भाव क्या है। उस भावमें ग्रहकी क्या स्थिति बन रही है। ग्रहोंकी युतिका क्या प्रभाव पड़ रहा है। यदि राहुके साथ किसी अन्य ग्रहकी युति है तो यहाँ यह भी देखना है कि युतिवाले ग्रहका बल राहुसे कम है या अधिक। ऐसी स्थिति है तो राहुका न केवल प्रभाव कम होगा, अपितु कालसर्पयोग भंग भी हो सकता है। यही स्थिति किसी ग्रहके राहु-केतुकी पकड़से बाहर निकलनेपर हो सकता है। अत: कालसर्पका निर्धारण सतही स्तरके विश्लेषणपर करना जातकके लिये अत्यन्त ही दु:खदायी हो सकता है।

यहाँपर एक बात और कहनेयोग्य है कि कालसर्प हमेशा कष्टकारक ही नहीं होते। कभी-कभी तो ये इतने अधिक अनुकूल होते हैं कि व्यक्तिको विश्वस्तरपर न केवल प्रसिद्ध बनाते हैं अपितु सम्पत्ति, वैभव, नाम, प्रसिद्धिके देनेवाले भी बन जाते हैं। आप विश्वके महापुरुषोंके जन्मांगोंका अध्ययन करें तो पायेंगे कि उनकी कुण्डलीमें कालसर्पयोग होनेके बाद भी वे प्रसिद्धिके शिखरपर पहुँचे। इतना आवश्यक है कि उनके जीवनका कोई-न-कोई पक्ष ऐसा अवश्य रहा है जो अपूर्णताका प्रतीक बन गया हो। कालसर्पयोगसे डरने या भयाक्रान्त होनेकी आवश्यकता बिलकुल भी नहीं है। जन्मकुण्डलीमें अनेक शुभ योग जैसे पंचमहापुरुषयोग, बुधादित्ययोग आदि बनते हैं, जिनके कारण कालसर्पयोगका प्रभाव अत्यधिक न होकर अल्पकालिक होता है। यदि आप विश्वके सफलतम व्यक्तियोंका अध्ययन करें तो निश्चित ही यह पायेंगे कि उनकी कुण्डलीके कालसर्पयोगने ही उन्हें इस उच्चतम ऊँचाईपर पहुँचाया। किसी जातककी कुण्डलीमें कालसर्पयोग है तो यह मानकर चलिये कि परिवारके अन्य सदस्योंके जन्मांगमें भी यह योग देखनेको मिलेगा; क्योंकि यह अनुबन्धित ऋण है, जो हमें पूर्वजोंसे मिलता है एवं इससे परिवारके सभी सदस्य किसी-न-किसी रूपमें प्रभावित होते हैं। इसे ही पितृदोषका नाम दिया जाता है। कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि दैवज्ञद्वारा व्यक्ति इतना डरा दिया गया कि वह ठीक ढंगसे सोने भी नहीं पाता, जबकि कुण्डलीमें कालसर्पयोग था ही नहीं या आंशिक प्रभाव पड़ रहा था, जिसका सहज निदान किया जा सकता था। अत: कालसर्पयोगका निर्णय किसी योग्य दैवज्ञसे कराकर उसका निदान करा लेना चाहिये। आज समाजमें ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो निर्लिप्त भावसे बिना प्रलोभनके ज्योतिषकी सेवा कर रहे हैं। ज्योतिषकी दूकानदारीवाले दैवज्ञोंसे बचनेका प्रयास करना चाहिये।

कालसर्पयोगके प्रकार

ज्योतिषमें १२ राशियाँ हैं। इनके आधारपर १२ लग्न होते हैं और इनके विविध योगोंके आधारपर कुल २८८ प्रकारके कालसर्पयोग निर्मित हो सकते हैं।

प्रमुख रूपसे भावके आधारपर कालसर्पयोग १२ प्रकारके होते हैं, जिनके नाम एवं प्रभाव निम्नानुसार हैं—

१-अनन्त कालसर्पयोग—लग्नसे सप्तम भावतक बननेवाले इस योगको अनन्त कालसर्पयोग कहा जाता है। इस योगके कारण जातकको मानसिक अशान्ति, जीवनकी अस्थिरता, कपटबुद्धि, प्रतिष्ठाहानि, वैवाहिक जीवनका दु:खमय होना इत्यादि प्रभाव देखनेको मिलते हैं। जातकको आगे बढ़नेके लिये काफी संघर्ष करना पड़ता है। ऐसा व्यक्ति निरन्तर मानसिक रूपसे अशान्त रहता है।

२-कुलिक कालसर्पयोग—द्वितीय स्थानसे अष्टम स्थानतक पड़नेवाले इस योगके कारण जातकका स्वास्थ्य प्रभावित होता है। जीवनमें आर्थिक पक्षको लेकर अत्यन्त संघर्ष करना पड़ता है। जातक कर्कश वाणीसे युक्त होता है, जिसके कारण कलहकी स्थिति तो निर्मित होती ही है, साथ ही वह पारिवारिक विरोध एवं अपयशका भागी भी बनता है। योगकी तीव्रताके कारण विवाहमें विलम्बके साथ विच्छेदतक भी हो सकता है।

३-वासुकि कालसर्पयोग—यह योग तृतीयसे नवमतक बनता है। पारिवारिक विरोध, भाई-बहनोंसे

मनमुटाव, मित्रोंसे धोखा, भाग्यकी प्रतिकूलता, व्यवसाय या नौकरीमें रुकावटें, धर्मके प्रति नास्तिकता, कानूनी रुकावटें आदि बातें देखनेको मिलती हैं। जातक धन अवश्य कमाता है, किंतु कोई-न-कोई बदनामी उसके साथ जुड़ी ही रहती है। उसे यश, पद, प्रतिष्ठा पानेके लिये संघर्ष करना ही पड़ता है।

४-शंखपाल कालसर्पयोग—यह योग चतुर्थसे दशम भावमें निर्मित होता है। इसके प्रभावसे व्यवसाय, नौकरी, विद्याध्ययन इत्यादि पक्षोंमें रुकावटें आती हैं। घाटेका सामना करना पड़ता है। वाहन एवं भृत्यों तथा कर्मचारियोंको लेकर कोई-न-कोई समस्या हमेशा आती है। आर्थिक स्थिति इतनी अधिक खराब हो जाती है कि दिवालिया होनेतककी परिस्थितियाँ आ सकती हैं।

५-पद्म कालसर्पयोग—पंचमसे एकादश भावमें राहु-केतु होनेसे यह योग होता है। इसके कारण सन्तानसुखमें कमी या सन्तानका दूर रहना अथवा विच्छेद तथा गुप्तरोगोंसे जूझना पड़ता है। असाध्यरोग हो सकते हैं, जिनकी चिकित्सामें अत्यधिक धनका अपव्यय होता है। दुर्घटना एवं हाथोंमें तकलीफ हो सकती है। मित्रों एवं पत्नीसे विश्वासघात मिलता है। यदि सट्टा, लाटरी, जुआकी लत हो तो इसमें सर्वस्व स्वाहा होनेमें देर नहीं लगती। शिक्षाप्राप्तिमें अनेक अवरोध आते हैं। जातककी शिक्षा भी अपूर्ण रह सकती है। जिस व्यक्तिपर सर्वाधिक विश्वास करेंगे, उसीसे धोखा मिलता है। सुखमें प्रयत्न करनेपर भी इच्छित फलकी प्राप्ति नहीं हो पाती। संघर्षपूर्ण जीवन बीतता है।

६-महापद्म कालसर्पयोग—छहसे बारह भावके इस योगमें पत्नी-विछोह, चरित्रकी गिरावट, शत्रुओंसे निरन्तर पराभव आदि बातें होती हैं। यात्राओंकी अधिकता रहती है। आत्मबलकी गिरावट देखनेको मिल जाती है। प्रयत्न करनेपर भी बीमारीसे छुटकारा नहीं मिलता। गुप्त शत्रु निरन्तर षड्यन्त्र करते ही रहते हैं।

७-तक्षक कालसर्पयोग—सप्तमसे लग्नतक यह योग होता है। इसमें सर्वाधिक प्रभाव वैवाहिक जीवन एवं सम्पत्तिके स्थायित्वपर पड़ता है। जातकको शत्रुओंसे हमेशा हानि मिलती है और असाध्य रोगोंसे जूझना पड़ता है। पदोन्नतिमें निरन्तर अवरोध आते हैं। मानसिक परेशानीका कोई-न-कोई कारण उपस्थित होता रहता है।

८-कर्कोटक कालसर्पयोग—अष्टम भावसे द्वितीय भावतक कर्कोटकयोग होता है। जातक रोग और दुर्घटनासे कष्ट उठाता है, ऊपरी बाधाएँ भी आती हैं। अर्थहानि, व्यापारमें नुकसान, नौकरीमें परेशानी, अधिकारियोंसे मनमुटाव, पदावनति, मित्रोंसे हानि एवं साझेदारीमें धोखा मिलता है। रोगोंकी अधिकता, शल्यक्रिया, जहरका प्रकोप एवं अकाल मृत्यु आदि योग बनते हैं।

९-शंखनाद/शंखचूड़ कालसर्पयोग—यह योग नवमसे तृतीय भावतक निर्मित होता है। यह योग भाग्यको दूषित करता है। व्यापारमें हानि एवं पारिवारिक तथा अधिकारियोंसे मनमुटाव कराता है, फलतः शासनसे कार्योंमें अवरोध होते हैं। जातकके सुखमें कमी देखनेको मिलती है।

१०-पातक कालसर्पयोग—दशमसे चतुर्थ भावतक यह योग होता है। दशम भावसे व्यवसायकी जानकारी मिलती है। सन्तानपक्षको बीमारी भी होती है। दशम एवं चतुर्थसे माता-पिताका अध्ययन किया जाता है, अतः माता-पिता, दादा-दादीका वियोग राहुकी महादशा/अन्तर्दशामें सम्भाव्य है।

११-विषाक्त/विषधर कालसर्पयोग—राहु-केतुके एकादश-पंचममें स्थित होनेपर इस योगसे नेत्रपीड़ा, हृदयरोग, बन्धुविरोध, अनिद्रारोग आदि स्थितियाँ बनती हैं। जातकको जन्मस्थानसे दूर रहनेको बाध्य होना पड़ता है। किसी लम्बी बीमारीकी सम्भावना रहती है।

१२-शेषनाग कालसर्पयोग—द्वादशसे षष्ठ भावके इस योगमें जातकके गुप्त शत्रुओंकी अधिकता तो होती ही है साथ ही वे जातकको निरन्तर नुकसान भी पहुँचाते

रहते हैं। जिन्दगीमें बदनामी अधिक होती है। नेत्रकी शल्यक्रिया करवानी पड़ सकती है। कोर्ट-कचहरीके मामलोंमें पराजय मिलती है।

कालसर्पयोगके लक्षण

कालसर्पयोगसे जो जातक प्रभावित होते हैं, उन्हें प्राय: स्वप्नमें सर्प दिखायी देते हैं। जातक अपने कार्योंमें अथक परिश्रम करनेके बावजूद आशातीत सफलता प्राप्त नहीं कर पाता। हमेशा मानसिक तनावसे ग्रस्त रहता है, जिसके कारण सही निर्णय लेनेमें असमर्थ रहता है। अकारण लोगोंसे शत्रुता मिलती है। गुप्त शत्रु सक्रिय रहते हैं, जो कार्योंमें अवरोध पैदा करते हैं। पारिवारिक जीवन कलहपूर्ण हो जाता है। विवाहमें विलम्ब या वैवाहिक जीवनमें तनावके साथ विच्छेदतककी स्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं।

सर्वाधिक अनिष्टकारी समय—जातकके जीवनमें सर्वाधिक अनिष्टकारी समय निम्न अवस्थामें होता है—

१-राहुकी महादशा, राहुकी प्रत्यन्तर दशामें अथवा शनि, सूर्य तथा मंगलकी अन्तर्दशामें।

२-जीवनके मध्यकाल लगभग ४० से ४५ वर्षकी आयुमें।

३-ग्रह-गोचरमें कुण्डलीमें जब-जब कालसर्पयोग बनता हो।

उपर्युक्त अवस्थाओंमें कालसर्पयोग सर्वाधिक प्रभावकारी होता है एवं जातकको इस समय शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक इत्यादि क्षेत्रमें कठिनाईका सामना करना पड़ता है।

कालसर्पयोग शान्तिके कुछ स्थान

१-कालहस्ती शिवमन्दिर, तिरुपति।

२-त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग, नासिक।

३-त्रिवेणीसंगम, इलाहाबाद।

४-त्रियुगी नारायण मन्दिर, केदारनाथ।

५-त्रिनागेश्वर मन्दिर, जिला तंजौर।

६-सिद्धशक्तिपीठ, कालीपीठ, कलकत्ता।

७-भूतेश्वर महादेवमन्दिर नीमतल्लाघाट, कलकत्ता।

८-गरुड़-गोविन्द मन्दिर छटीकारा गाँव एवं गरुड़ेश्वरमन्दिर बडोदरा।

९-नागमन्दिर, जैतगाँव, मथुरा।

१०-चामुण्डादेवी मन्दिर, हिमाचलप्रदेश।

११-मनसादेवी मन्दिर, चण्डीगढ़।

१२-नागमन्दिर ग्वारीघाट, जबलपुर।

१३-महाकालमन्दिर, उज्जैन।

कालसर्पयोगकी शान्ति किसी पवित्र नदीतट, नदीसंगम, नदीकिनारेके श्मशान, नदीकिनारे स्थित शिवमन्दिर अथवा किसी भी नागमन्दिरमें की जाती है। कभी-कभी देखनेमें आता है कि अनेक दैवज्ञ यजमानके घरों (निवास)-में ही कालसर्पयोगकी शान्ति करवा देते हैं। ऐसा ठीक नहीं प्रतीत होता। रुद्राभिषेक तो घरमें किया जा सकता है, किंतु कालसर्पयोगकी शान्ति निवासस्थलमें नहीं करनी चाहिये।

राहुकृत पीड़ाके उपाय

यदि जन्मांगमें राहु अशुभ स्थितिमें हो तो उससे बचनेके लिये कस्तूरी, तारपीन, गजदन्तभस्म, लोबान एवं चन्दनका इत्र जलमें मिलाकर स्नान करनेसे राहुकी पीड़ासे शान्ति मिलती है। इसके लिये नक्षत्र, योग, दिन, दिशा एवं समयका विशेष ध्यान रखना चाहिये। ऐसे जातकोंको गोमेदका दान करना चाहिये।

राहुके दान

राहुकी पीड़ाके निवारणहेतु जातकोंको निम्न वस्तुओंका दान बुधवार या शनिवारके दिन करना चाहिये—१-सरसोंका तेल, २-सीसा, ३-काला तिल, ४-कम्बल, ५-तलवार, ६-स्वर्ण, ७-नीला वस्त्र, ८-सूप, ९-गोमेद, १०-काले रंगका पुष्प, ११-अभ्रक, १२-दक्षिणा।

उपर्युक्त वस्तुओंका दान किसी शनिका दान लेनेवालेको दें अथवा किसी शिवमन्दिरमें रात्रिकालमें बुधवार या शनिवारको छोड़ दें।

कालसर्पयोगशान्तिके उपाय

१-कालसर्पयोगका सर्वमान्य शान्ति-उपाय रुद्राभिषेक है। श्रावणमासमें अवश्य नियमित करें।

२-बहते जलमें विधानसहित पूजनकर दूधसे पूरितकर चाँदीके नाग-नागिनके जोड़ेको प्रवाहित करें।

३-तीर्थराज प्रयागमें तर्पण एवं श्राद्धकर्म सम्पन्न करें।

४-कालसर्पयोगमें राहुकी शान्तिका उपाय रात्रिके समय किया जाय। राहुके सभी पूजन शिवमन्दिरमें रात्रिके समय या राहुकालमें करें।

५-राहुके हवनहेतु दूर्वाका उपयोग आवश्यक है। राहुके पूजनमें धूप एवं अगरबत्तीका उपयोग न करें। इसके स्थानपर कपूर, चन्दनका इत्र उपयोग करें।

६-शिवलिंगपर मिसरी एवं दूध अर्पित करें। शिवताण्डवस्तोत्रका नियमित पाठ करें।

७-घरके पूजास्थलमें भगवान् श्रीकृष्णकी मोरपंखयुक्त मूर्तिका नियमित पूजन करें।

८-पंचाक्षरमन्त्रका नियमित जप करें। नियमित मूलीदान एवं बहते जलमें कोयले प्रवाहित करते रहनेसे स्थायी शान्ति प्राप्त होती है।

९-मसूरकी दाल एवं कुछ पैसे सफाई कर्मचारीको प्रातःकाल दें।

१०-निम्न नवनागस्तोत्रके नौ पाठ प्रतिदिन करें—

अनन्तं वासुकिं शेषं पद्मनाभं च कम्बलम्।
शङ्खपालं धृतराष्ट्रं तक्षकं कालियं तथा॥
एतानि नव नामानि नागानां च महात्मनाम्।
सायङ्काले पठेन्नित्यं प्रातःकाले विशेषतः॥

भावोंके अनुसार कालसर्पयोगके निवारणके अन्य उपाय

१-प्रथम भाव—गलेमें हमेशा चाँदीका चौकोर टुकड़ा धारण करें।

२-द्वितीय भाव—घरके उत्तर-पश्चिम-कोणमें सफाईकर मिट्टीके बर्तनमें पानी भर दें। प्रतिदिन पानी बदलें। बदले हुए पानीको चौराहेमें डालें।

३-तृतीय भाव—अपने जन्मदिनपर गुड़, गेहूँ एवं ताँबेका दान करें।

४-चतुर्थभाव—प्रतिदिन बहते हुए जलमें दूध बहायें।

५-पंचमभाव—घरके ईशानकोणमें सफेद हाथीकी मूर्ति रखें।

६-षष्ठभाव—प्रत्येक माहकी पंचमी तिथिको एक नारियल बहते हुए जलमें प्रवाहित करें।

७-सप्तमभाव—मिट्टीके बर्तनमें दूध भरकर निर्जन स्थानमें रख आयें।

८-अष्टमभाव—प्रतिदिन काली गायको गुड़, रोटी, काले तिल एवं उड़द खिलायें।

९-नवमभाव—शिवरात्रिके दिन १८ नारियल सूर्योदयसे सूर्यास्ततक १८ मन्दिरोंमें रखें। यदि १८ मन्दिर पासमें न हों तो दुबारा उसी क्रमसे मन्दिरोंमें दान कर सकते हैं।

१०-दशमभाव—किसी महत्त्वपूर्ण कार्यको घरसे जाते समय काली उड़दके दाने सिरसे सात बार घुमाकर बिखेर दें।

११-एकादशभाव—प्रत्येक बुधवारको घरकी सफाईकर कचरा बाहर फेंक दें। उस दिन फटा वस्त्र पहनें।

१२-द्वादशभाव—प्रत्येक अमावास्याको काले कपड़ेमें काला तिल, दूधमें भीगे जौ, नारियल एवं कोयला बाँधकर जलमें बहायें।

शिवपंचाक्षरमन्त्र एवं शिवपंचाक्षरस्तोत्रका नियमित जप करने एवं कालसर्पयन्त्रके नियमित पूजन, शिवलिंग तथा चित्रपर चन्दनका इत्र लगानेसे शान्ति प्राप्त होती है। लगातार ४५ दिनका अनुष्ठान निश्चित शान्ति देता है। अनुष्ठानके समय अथवा मन्त्रजपके दौरान केवल इत्र एवं कपूरका प्रयोग ही करें। अगरबत्तीके धुएँ एवं दीपसे नागोंको गर्माहट मिलती है, जिससे वे क्रोधित होते हैं, अतः इन वस्तुओंका उपयोग न करें।

शिवपंचाक्षरस्तोत्र

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।

नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै नकाराय नमः शिवाय॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै मकाराय नमः शिवाय॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै शिकाराय नमः शिवाय॥
वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य-
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै वकाराय नमः शिवाय॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै यकाराय नमः शिवाय॥
पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥

शिवकृपासे कुछ भी अप्राप्य नहीं है। माँ नर्मदाका नाम-जप करते हुए शिवलिंगपर नर्मदाजलकी निरन्तर धार छोड़ते हुए निम्न मन्त्रका जप करनेसे कालसर्पदोष, पितृदोष, शापित कुण्डलीके दोषोंका पूर्णतः शमन सम्भव हो जाता है—

नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि।
नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः॥

नाहक बदनाम है—कालसर्पयोग

(डॉ० श्रीमनोहरजी वर्मा)

किसी भी सिक्केके दोनों पहलुओंको परखना चाहिये। सर्पको कालरूप, विषधर, मारक आदि बतलाकर खूब बदनाम किया गया है, परंतु उसका उज्ज्वल पक्ष भी है। अगर सर्प पापिष्ठ और कुकृत्यवाला ही होता तो देवोंके देव महादेवको कभी भी प्रिय नहीं होता। देवी-देवताओंके पास तो उनको आश्रय मिलता है, जो परोपकारी हों, कल्याणकारी हों और उनके अनन्य भक्त हों।

यही कारण है कि भगवान् शंकरके प्रिय पात्रोंमें सर्प प्रधान है। वह निर्विघ्न उनके शरीरपर अठखेलियाँ करता हुआ उनके गलेका हार बनकर शोभा पाता है। भगवान् शिवकी एक भी प्रतिमा या तस्वीर नहीं मिलेगी, जिसमें उनके साथ सर्प न हो। शिवलिंगपर भी किसी-न-किसी रूपमें धातुनिर्मित अथवा शिलापर अंकित सर्प अवश्य होता है। सोने, चाँदी, ताँबे अथवा अन्य किसी धातुसे निर्मित सर्प शिवको समर्पितकर अनिष्टोंसे भयभीत लोग राहत पाते हैं। भगवान् शिवने जैसे समुद्रमन्थनसे निकले विषको स्वयं ग्रहण करके सभीको अभय प्रदान किया था, उसी भाँति अपने शरणागत हो जानेवालेके ग्रहजनित दोषोंका भी वे शमन कर देते हैं। अतः किसीकी भी कुण्डली कालसर्पयोग अथवा सर्पदोषसे पीड़ित हो तो भगवान् शिवकी आराधना सर्वश्रेष्ठ उपचार है।

शिवजी ही नहीं, भगवान् विष्णुसे भी सर्पराज शेषनागका अभेद सम्बन्ध है। क्षीरसागरमें कोमल शेषशय्यापर भगवान् विष्णु विश्राम करते हैं। कृष्णावतारमें भी ये ही शेषनागजी कृष्णके जन्म लेनेपर श्रीवसुदेवजीद्वारा मथुराकी जेलसे गोकुल ले जाते समय अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं। अँधेरी रातमें यमुना पार करते समय ये घोर विपत्तिके क्षणोंमें फन फैलाये रक्षकका कर्तव्य निभाते रहे, जबतक यमुना पार नहीं की, साथ रहे।

इसी प्रकार कालिय नाग श्रीकृष्णके सम्पर्कमें आकर उनका भक्त बन गया। रामावतार हुआ तो शेषनागजीने भाई लक्ष्मणके रूपमें मानवदेह धारण करके रामजीकी सेवा की। शिवपरिवारमें तो सर्पोंको विशेष महत्त्व प्राप्त है ही। श्रीगणेश विघ्नराजके रूपमें शेषनागपर आरूढ़ हैं। जैन-सम्प्रदायके २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथजीके सिरपर छत्रकी तरह नागकुमार घरणेद्रका फन उनकी पहचान

ही बन गया है। मनसामाताको सर्पोंकी देवी और राजस्थानके गोगाजी पीरको सर्पोंका देव कहा जाता है। हिन्दुओंमें ऐसी धारणा है कि पितृके रूपमें सर्प हमारे पैतृक घरोंमें वास करते हैं। इस प्रकार सर्प सदासे देवों और महादेवोंको प्रिय रहे हैं। ऐसे में सर्पोंको काल मानना उचित नहीं लगता। तात्पर्य यह है कि सर्प सभीके लिये उपकारी प्राणी है। यह किसीका अहित नहीं करता, यदि सताया न जाय। जाने-अनजानेमें अपने प्राणोंपर संकट देखकर ही यह आशंकित होता है।

ज्योतिषशास्त्रमें सर्पसे राहु और केतुका सम्बन्ध जोड़ा गया है। राहुको सर्पका मुख और केतुको पूँछ माना जाता है। आकाशमें भौतिक शरीर न होनेपर भी इन छाया ग्रहोंको अन्य सातों ग्रहों यथा—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिके समान ही ग्रहमण्डलमें स्थान प्राप्त है। कुण्डलीमें राहु और केतु सदैव आमने-सामने १८० डिग्रीपर रहते हैं। यदि सातों ग्रह राहु-केतुके एक तरफ सिमट जायँ और दूसरी ओर कोई ग्रह न बचे, ऐसी स्थितिको कालसर्पयोग कहा जाता है। जन्मांगचक्रमें यह स्थिति उसी प्रकार असन्तुलित लगती है, जैसे तराजूके एक पलड़ेमें भार रख दिया गया हो और दूसरे पलड़ेमें कुछ भी न हो।

कालसर्पयोगसे केवल बुरे परिणाम ही निकलते हैं, इस बातसे सहमत नहीं हुआ जा सकता। कालसर्पयोगवाले राजयोग भोगते देखे गये हैं।

अतः कालसर्पयोगको इतना बदनाम करना भ्रामक है। अगर अन्य ग्रह अच्छे फल देते हों तो इस योगका बुरा प्रभाव देखनेमें नहीं आता। किसीकी कुण्डलीमें कालसर्पयोग देखते ही पूर्वाग्रहसे ग्रसित निर्णयको दोहराना नहीं चाहिये।

पुत्रकामेष्टि

पुत्रप्राप्तिकी कामनासे किया जानेवाला याग पुत्रकामेष्टि कहलाता है। यह काम्ययज्ञ है, इष्टि एवं यज्ञका अर्थ प्रायः समान है। यह इष्टि तीन प्रकारकी अग्नियोंमें सम्पन्न होती है—१. जो श्रौत अग्निमें दीक्षित है, उसके द्वारा श्रौताग्निमें किया जानेवाला पुत्रकामयज्ञ श्रौताग्नि पुत्रकामेष्टि कहलाता है, २. जो गृह्याग्निमें दीक्षित है, उसके द्वारा गृह्याग्निमें किया जानेवाला पुत्रकामयज्ञ गृह्याग्नि पुत्रकामेष्टि कहलाता है और ३. निरग्निक (अनग्निहोत्री) है, उसके द्वारा लौकिकाग्निमें किया जानेवाला पुत्रकामयज्ञ लौकिकाग्निपुत्रकामेष्टि कहलाता है।

श्रौताग्निपर जो पुत्रकामयज्ञ किया जाता है, उसका यज्ञकार्य केवल दो दिनका है। इसके पूर्व ऋत्विज्, यजमान और यजमान-पत्नीको बारह दिन पयोव्रत करना पड़ता है। गृह्याग्निपर जो पुत्रकामयज्ञ किया जाता है, उसमें यज्ञकार्य केवल एक दिनका होता है, यज्ञसे पूर्व यजमान एवं यजमानकी पत्नीको बारह दिनका पयोव्रत करना पड़ता है। लौकिक अग्निमें जो पुत्रकामेष्टि किया जाता है, वह अपत्यहीन (संतानहीन) यजमानके लिये नहीं है, यह उसीके लिये विहित है, जिसके कन्या ही होती हैं, पुत्र नहीं। यह एक दिनमें होता है, इसकी संक्षिप्त विधि धर्मसिन्धु (परि०३) में दी गयी है।

वाल्मीकिरामायण तथा श्रीरामचरितमानस आदिमें श्रीदशरथजीद्वारा पुत्रप्राप्तिके लिये पुत्रकामेष्टि सम्पन्न करनेका वर्णन आता है। श्रीदशरथजी श्रौताग्निमान् थे, ऋष्यशृंग ऋषिने राजा दशरथजीका यज्ञ सम्पन्न कराया। यज्ञकुण्डसे अग्निदेव चरुके साथ प्रकट हुए और उसी चरुका माता कौसल्या आदिद्वारा ग्रहण करनेसे राजा दशरथको श्रीराम आदि चार पुत्रोंकी प्राप्ति हुई। श्रीरामचरितमानसमें यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है—

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥
जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥

(रा०च०मा० १।१८९।५—८)

ज्यौतिषशास्त्रकी रीतिसे सन्त-लक्षण

(दैवज्ञ विनोद)

फलानि ग्रहचारेण सूचयन्ति मनीषिणः।
को वक्ता तारतम्यस्य तमेकं वेधसं विना॥

अर्थात् ज्यौतिषशास्त्रके विद्वान् ग्रहचारके अनुसार फल बताते हैं। उसकी न्यूनाधिकता ब्रह्माके अतिरिक्त और कोई नहीं बता सकता।

इस संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि '**प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रम्**'—ज्यौतिषशास्त्र ही प्रत्यक्ष है। ज्यौतिषशास्त्रके अनुसार यह बात बतलायी जा सकती है कि मनुष्योंमें कौन कैसे स्थानपर आरूढ़ होगा। जन्मकुण्डली देखनेसे इसका स्पष्ट पता चल सकता है। भूगोलमें रहनेवाले समस्त प्राणियोंका भूत, भविष्य और वर्तमान व्यवहार खगोलस्थित ग्रहोंके आधारपर ही चलता है। यह बात वेदोंके नेत्ररूप ज्यौतिषशास्त्रमें कही गयी है।

ध्रुवबद्धं नक्षत्रं नक्षत्रैश्च ग्रहाः प्रतिनिबद्धाः।
ग्रहबद्धं कर्मफलं शुभाशुभं सर्वजन्तूनाम्॥

अर्थात् नक्षत्र ध्रुवसे बँधे हुए हैं और नक्षत्रोंके द्वारा ग्रह बँधे हुए हैं और उन सूर्य आदि नौ ग्रहोंके अधीन सारे अच्छे-बुरे कर्मफल हैं, जिनका अनुभव प्राणिमात्र करते हैं। और भी—

पञ्चात्मकं पञ्चसु वर्तमानं षडाश्रयं षड्गुणयोगयुक्तम्।
तं सप्तधातुं त्रिमलं त्रियोनिं चतुर्विधाहारमयं शरीरम्॥

—इस गर्भोपनिषद्में कही हुई रीतिसे यह शरीर पंचभूतोंका बना हुआ है, पाँच विषयोंमें ही रहता है। उसे इन्द्रियोंका ही अवलम्बन है और वह छः गुणोंसे युक्त है। इसमें सात धातुएँ हैं। वात, पित्त, कफ—ये तीन मल हैं। सत्, रज, तम—ये तीन कारण हैं और भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य—ये चार प्रकारके आहार हैं। इनसे ही यह शरीर बना हुआ है। इस शरीरमें रहनेवाले सात धातु और उनके वर्धक छः रसोंके कारण ग्रह ही हैं। इससे स्पष्ट होता है कि खगोलस्थित ग्रह और भूगोलस्थित प्राणियोंका कितना घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध है। यह बात पूर्वी और पश्चिमी ज्यौतिषके विद्वानोंने निर्विवादरूपसे स्वीकार की है।

महापुरुषोंकी जन्मकुण्डलीमें ग्रहोंकी गतिका इस प्रकार वर्णन हुआ है—

नवमे पञ्चमे वापि सौष्ठ्यादिगुणभाक् तनौ।
जीवन्मुक्तस्तदा मर्त्यो जायते धरणीतले॥

अर्थात् यदि नवें, पाँचवें और जन्मलग्नमें शुभ ग्रहनिरीक्षित स्वगृह और उच्चस्थानमेंसे कोई सौम्यग्रह पड़ा हो तो मनुष्य इस पृथ्वीपर ही जीवन्मुक्त हो जाता है। और भी—

धने धर्मे सुते लग्ने दशमेऽपि शुभा ग्रहाः।
बलाढ्याश्चेत्तदा साधुयोगोऽयं सम्प्रकीर्तितः॥

जन्मकुण्डलीमें यदि दूसरे, नवें, पाँचवें, जन्मलग्न तथा दशम स्थानोंमें चाहे किसी भी एक स्थानपर बलाढ्य शुभ ग्रह पड़ा हो तो वह पुरुष साधु होता है।

ज्योतिषीलोग कुण्डली देखकर ही यह महापुरुष होगा, इस प्रकार बड़े जोरके साथ कह सकते हैं। जन्मलग्नकी कुण्डली देखनेके पश्चात् ही यह बात होगी, यह निर्णयपूर्वक कहा जा सकता है। पैदा हुए शिशुको जात कहते हैं, उसके विषयमें जो शास्त्र है, उसको जातक कहते हैं—इस व्युत्पत्तिसे पैदा हुए शिशुका जन्मकालसे लेकर मृत्युपर्यन्तका जो लाभ या हानि है, शुभ या अशुभ फल है, उसको निरूपण करनेवाले शास्त्रको ही ज्यौतिष कहते हैं। जन्मकुण्डलीमें स्थित ग्रहोंकी स्थिति निश्चित करके और उनके बलाबलका विचार करके मोक्ष और पुनर्जन्म भी जाना जा सकता है। जैसे यदि जन्मलग्नसे छठे, केन्द्र स्थान, अष्टम स्थान अथवा स्वक्षेत्रमें बृहस्पति हों तो उसे स्वर्ग मिलता है और लग्नमें मीन-राशि हो, उसपर शुभग्रह स्थित हों, नवांशमें गुरु हों तो दूसरे ग्रहोंके निर्बल होनेपर भी मुक्ति मिल जाती है।

सारावलीमें इस प्रकार वर्णन आया है—

प्रथितमुनिप्रयोगे राजयोगो यदि स्या-
दशुभफलविपाकं सर्वमुन्मूल्य पश्चात्।

जनयति पृथिवीशं योगिनं साधुशीलं
प्रणतनृपशिरोमण्युज्ज्वलत्पादपीठम्॥

यदि साधुका योग पड़नेपर कहीं राजयोग भी पड़ जाय तो अशुभ कर्मोंके सम्पूर्ण फलको हटाकर राजाको साधुशील योगी बना देता है। बड़े-बड़े नृपतिगण उसके चरणोंमें नतमस्तक होते हैं।

ज्यौतिषके फलोंके प्रत्यक्ष होनेके कारण यह सर्वशास्त्रोंमें शिरोमणि है। जैसा कि कहा है—

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादास्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चन्द्राकौं यत्र साक्षिणौ॥

दूसरे शास्त्र अप्रत्यक्ष हैं और उनमें केवल विवाद-ही-विवाद है। प्रत्यक्ष तो केवल ज्यौतिषशास्त्र ही है, जिसके साक्षी स्वयं चन्द्रमा और सूर्य हैं।

श्रीराम, कृष्णप्रभृति अवतारी पुरुषोंके जन्म-पत्रमें स्थित ग्रहोंकी गति जाननेवाले विद्वानोंको ज्यौतिष-शास्त्रकी महिमा भलीभाँति मालूम हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं।

इस युगके प्रसिद्ध सन्त रामकृष्ण परमहंस आदि महापुरुषोंके जन्मपत्र भी इस विषयमें प्रमाण हैं। कालसिद्धान्तके जाननेवाले ज्यौतिषियोंके लिये शास्त्रके अनुसार महापुरुषोंका लक्षण जान लेना कठिन नहीं है।

भविष्यवाणियाँ—जो कभी असत्य नहीं होतीं

(श्रीपुरुषोत्तम नागेशजी ओक)

यद्यपि ज्योतिष ऐसा उलझा हुआ विज्ञान है कि जिसमें निपुणता प्राप्त करना पर्याप्त कठिन है तथापि इसके कुछ स्थूल पक्ष भी हैं, जिनको ज्योतिषके आलोचक अथवा पूर्ण रूपसे अनभिज्ञ व्यक्ति भी सहज रूपमें पहचानकर ज्योतिषकी विज्ञानरूपमें वैधता, सत्यताको अंगीकार कर सकते हैं। इस आलेखमें कुछ ऐसी ग्रहस्थितियोंको तथा उनके सम्बन्धमें भविष्यवाणियोंको सार-रूपमें संग्रहीत किया गया है, जिनको पाठक सहज रूपमें पहचान लें तथा अपने जान-पहचानके व्यक्तियोंकी जन्मकुण्डलियोंमें ग्रहोंकी वही स्थिति देखकर भविष्यवाणियोंकी सत्यताको परख लें।

(१) किसी भी जन्मकुण्डलीमें यदि चन्द्र १०वें अंकके साथ किसी भी घरमें है तो उस व्यक्तिको जीवनमें कम-से-कम एक भयंकर विफलता भोगनी ही पड़ेगी। यह अपराध इतना भयंकर होगा कि वह जनतामें अपना मुख दिखानेमें भी संकोच अनुभव करेगा। (स्पष्ट है कि मकर राशिके व्यक्तिके जीवनमें उक्त भविष्यवाणी घटित होती है।)

(२) (क) जब कभी चन्द्रके साथ (एक ही घरमें) शनि और राहु अथवा (ख) राहु एवं मंगल-जैसे दो दुष्ट ग्रह हों तो वह व्यक्ति मानसिक रूपसे इतना परेशान होता है कि पूर्णरूपेण पागल मालूम पड़े अथवा ऐसा अनुभव करे कि वह पागल होनेवाला है।

चन्द्रमा चार दुष्ट ग्रहों अर्थात् शनि, राहु, केतु और मंगलमेंसे किन्हीं दोके साथ किसी भी घरमें हो सकता है। इससे ही मिलता-जुलता प्रभाव तब पड़ता है, जब दो या अधिक दुष्टग्रह अन्य घरोंसे चन्द्रमापर दृष्टिपात करते हैं।

चाहे दो दुष्ट ग्रह वास्तवमें चन्द्रमाके साथ-साथ न हों, किंतु यदि वे अगले और पिछले घरोंमें चन्द्रमापर क्रूर दृष्टि डालते हैं तो भी परेशानी और मानसिक यातनाकी भावनाका अनुभव उस व्यक्तिको होता ही रहेगा। (पापकर्तरी योग)

२. (क)

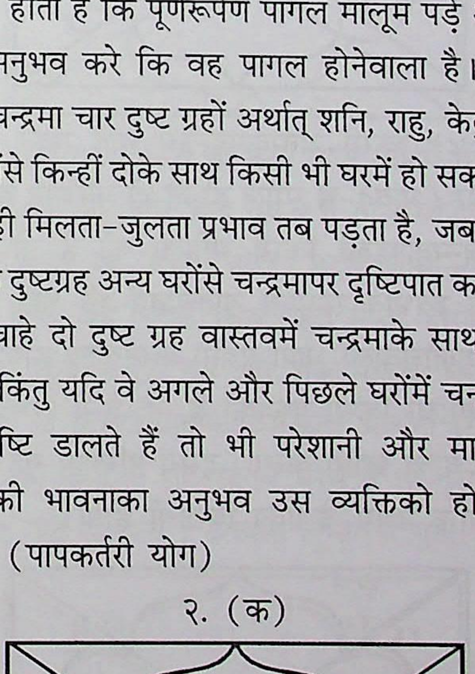

२. (ख)

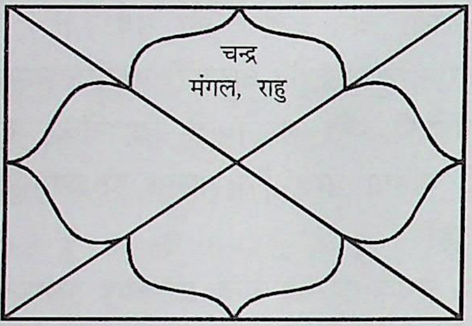

(३) जब किसी जन्मकुण्डलीमें मंगल और शुक्र एक ही घरमें हों तो उस व्यक्तिके विवाहेतर-सम्बन्ध होने अवश्यम्भावी हैं—इससे कोई प्रयोजन नहीं कि वह व्यक्ति कितना संयमी, सदाचारी तथा विनीत प्रतीत होता है।

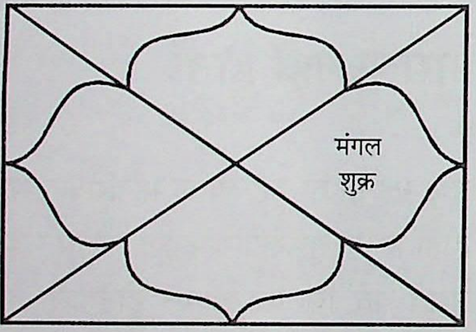

(४) किसी जन्मकुण्डलीमें यदि मकर राशिमें दूसरे घर (भाव)-में मंगल हो तो दो परिणाम होते हैं। यदि जन्मकुण्डली किसी महिला की है तो उसके पिताका स्वभाव सामान्य बातचीतमें भी भद्दी, गन्दी, गाली-गलौचवाली भाषा प्रयोग करनेवाला होगा। यदि जन्मकुण्डली किसी पुरुषकी है, तो ऐसी अभद्र भाषा उसका चाचा प्रयोग करेगा। दूसरा परिणाम यह है कि वह व्यक्ति प्रथम श्रेणीका विद्यार्थी होगा।

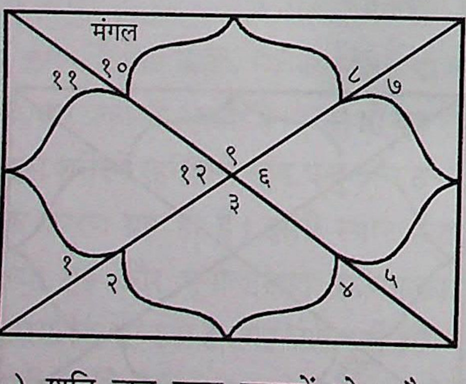

(५) शनि जब तुला लग्नमें होता है, तब वह व्यक्ति विद्वान् होता है तथा प्रथम श्रेणीका विद्यार्थी होता है। (उच्चका शनि लग्नमें हो)

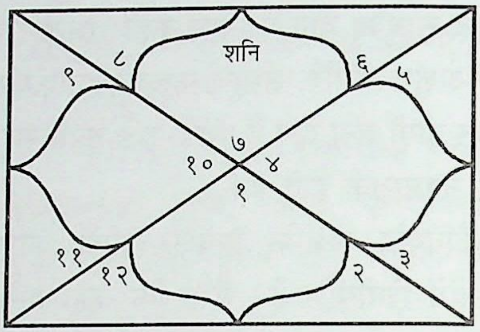

(६) जब गुरु कर्क लग्नमें होता है तो वह व्यक्ति विश्वासयोग्य, उदार-हृदय, सादाजीवन, स्पष्टवक्ता, सत्यप्रिय तथा चारित्रिक शुद्धता और विद्वत्ताके लिये प्रख्यात होता है। यही परिणाम तब भी होते हैं, जबकि गुरु ५वें या ९वें घरमें होता है।

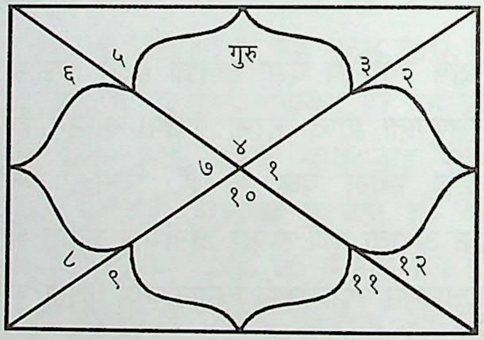

(७) यदि लग्नमें किसी भी राशिमें मंगल स्थित है तो व्यक्ति शीघ्र क्रोधी स्वभावका होगा।

(८) यदि मेष लग्न है तो व्यक्ति इतना धैर्यहीन होगा कि अज्ञात भावी तिथिपर सफलताकी प्रतीक्षा करनेकी अपेक्षा शीघ्र ही विपरीत परिणाम सुनना पसन्द करेगा।

(९) यदि कर्क लग्नमें अथवा ९वें घरमें कर्क

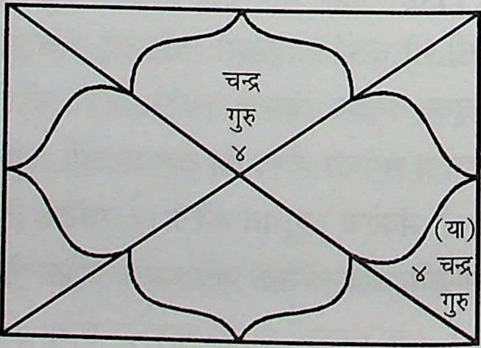

राशिमें गुरु और चन्द्र स्थित हों तो वह व्यक्ति महान्

नेता तथा सत्यका निडर पुजारी हो महान् ख्यातिका अर्जन करता है।

(१०) जब मकर लग्नमें केतु अकेला होता है, तब वह व्यक्ति बुभुक्षित, क्षयोन्मुख, मांसहीन और पीतशरीर दिखायी देता है। उसे क्षय रोग होना भी सम्भव है।

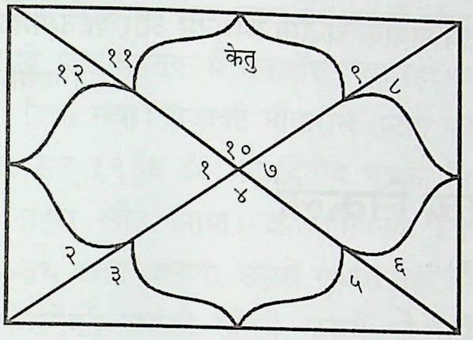

यदि मकर राशिमें ७वें घरमें केतु स्थित है तो उसके दूसरे पक्षको (अर्थात् पति या पत्नीको) भी क्षयरोग होनेकी सम्भावना है। दूसरा पक्ष बुभुक्षित, क्षयोन्मुख, मांसहीन और पीतशरीर दिखायी देगा।

(११) जब मंगल दूसरे घरमें स्थित हो तो चाचाके साथ व्यक्तिके सम्बन्ध खराब या अच्छे होते हैं। (जो इस बातपर निर्भर करते हैं कि मंगल किस राशिमें है)

(१२) यदि मंगल (किसी भी राशिमें) तीसरे घरमें हो तो वह व्यक्ति बहादुर और साहसी होता है तथा किसी भी युद्ध, संघर्ष अथवा लड़ाईमें भाग

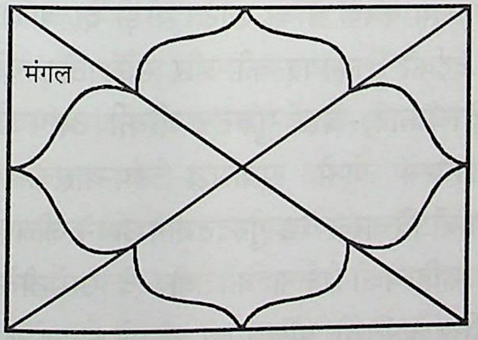

लेनेके लिये सहसा आगे बढ़ जानेसे कभी भयभीत नहीं होता।

(१३) किसी भी घरमें मकर राशिमें चार या अधिक ग्रहोंवाला व्यक्ति लज्जा, कलंक या पराजयकी भावनासे ग्रस्त होता है तथा समाज या उच्च लोगोंके सामने प्रकट होनेमें असमर्थ होता है। महान् नेता, देशभक्त तथा योद्धा राणाप्रतापके तीसरे घरमें (पराक्रम और शौर्यके घरमें) पाँच ग्रह-स्थित थे। किंतु वे सभी चूँकि मकर राशिमें थे, अतः महाराणा प्रतापको वह सफलता नहीं मिली, जो उनको मिलनी चाहिये थी। तृतीय भावमें पाँच ग्रहोंके कारण वे अद्वितीय पराक्रमी तथा साहसी अवश्य हुए।

(१४) किसी भी जन्मकुण्डलीमें किसी भी घरमें राहु और चन्द्रका इकट्ठा होना व्यक्तिके लिये कारावास, भयंकर आरोपोंद्वारा उत्पन्न मुकदमेबाजी, परिवारमें रोटी कमानेवालेकी अकस्मात् तथा दुःखान्त मृत्युके कारण अनाश्रितावस्था, शारीरिक आघात आदि घोर विपदाओंका देनेवाला है।

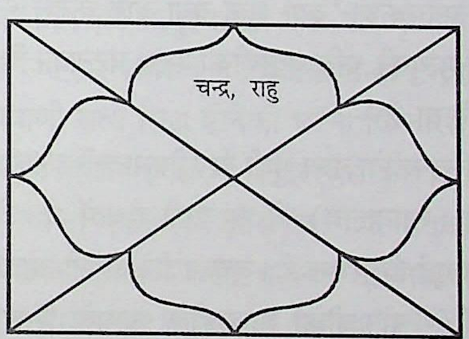

(१५) यदि किसी भी घरमें कर्क राशिमें गुरु और चन्द्र अथवा शुक्र और चन्द्र एकत्र हैं तो सम्बद्ध व्यक्ति अत्यन्त सुन्दर एवं स्वस्थ होगा। उदाहरणार्थ—यदि वे लग्नमें हैं तो वह व्यक्ति स्वयं बहुत सुन्दर होगा। यदि गुरु और चन्द्र अथवा गुरु और शुक्र माताके घर चतुर्थ भावमें हैं तो उसकी माताका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक होगा। यदि ये दोनों ग्रह सातवें घरमें हैं तो दूसरा पक्ष (अर्थात् पति या पत्नी) अत्यन्त लुभावनी मुखाकृतिका

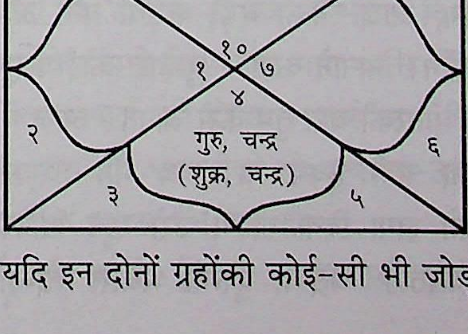

होगा। यदि इन दोनों ग्रहोंकी कोई-सी भी जोड़ी १०वें

घरमें है तो व्यक्तिके पिताका व्यक्तित्व आकर्षक तथा प्रभावी होगा।

यदि गुरु, शुक्र और चन्द्र सभी कर्क राशिमें हैं तो सम्बद्ध व्यक्तिका सौन्दर्य विशिष्टतापूर्वक सीमातीत होगा।

(१६) चन्द्र और शनिका चौथे घरमें इकट्ठा होना व्यक्तिके लिये शैशवावस्था और किशोरावस्थामें घोर विपदाओंका फल देनेवाला होता है। उत्तरोत्तर जीवनमें भी यह संगति नौकरियोंकी अकस्मात् हानि अथवा वित्तीय हानियोंका कारण होती है। यदि चन्द्र तीसरे घरमें हो और शनि चौथे घरमें तो भी परिणाम समान ही होंगे, किंतु ऐसी स्थितिमें व्यक्ति प्रचुरता अथवा प्राधान्यको उत्तरोत्तर जीवनमें प्राप्त होता है। विशेष रूपसे तब जबकि चन्द्रमा मिथुनमें और शनि कर्कमें हो।

[पाथेय कण]

भविष्यवाणियाँ, जो सत्य निकलीं

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

सुविख्यात साहित्यकार डॉ० हरिवंशराय बच्चनने अपनी आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में अपने नानाकी मृत्युकी भविष्यवाणीकी सत्य घटनाका विस्तारसे वर्णन किया है—

बच्चनजीके नाना मुंशी ईश्वरीप्रसादजी इलाहाबादकी कचहरी (न्यायालय)-में सरकारी सेवामें थे। वे परम सात्त्विक एवं ईश्वरभक्त थे। बच्चनजीने अपनी आत्मकथामें लिखा है—'नानाजीको कचहरीके कामके सिलसिलेमें दौरेपर भी जाना पड़ता था। उनका सेवक माताभीख उनके साथ जाता था। वही उनका खाना भी बनाता था। एक दिन माताभीखने लौकीकी रसेदार सब्जी और पूड़ी बनायी और थाली परोसकर नानाजीके सामने रख दी। नानाजीने भोजन कर लिया और अपने कामपर बैठ गये। जब माताभीख खानेको बैठा तो पहला कौर मुँहमें डालते ही उसने थूक दिया। वह लौकी तितलौकी (कड़वी) थी, जिसके कारण जायका खराब हो गया था। मुँहमें डालते ही कड़वी लगी, अतः माताभीख हाथ जोड़कर नानाके सामने खड़ा हुआ और बोला—'हुजूर, कसूर माफ होय, आज लौकी बड़ी कड़वी बनी और आप खाय लिहेन!' नानाने कहा—'तुम्हारा कोई कसूर नहीं, लौकीके भीतरकी बात तुम कैसे जानते? आज मेरे लिये भगवान्‌का यही हुक्म था। जब मैंने उसका भोग भगवान्‌को लगा दिया तो मैं उसे खुद खानेसे कैसे इनकार करता? **'यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नः तस्य देवता।'**

बच्चनजी लिखते हैं—'एक बड़े ज्योतिषीने एक वर्ष पूर्व नानाकी मृत्युकी भविष्यवाणी कर दी थी। उसने घड़ी और तिथि बतला दी थी। देहावसानकी भविष्यवाणी सुनकर भी वे चिन्तित नहीं हुए। उन्होंने नानीको आगाह कर दिया था। वे उसी दिनसे तरह-तरहके पूजा-व्रतमें लग गयीं। निश्चित दिन भी आ गया। नानी जप करनेके लिये आसनपर बैठ गयीं। नानाजीने दैनिक दिनचर्याका पालन किया। कचहरी जानेका समय हुआ तो नानीने रोका, लेकिन नानाजीने हँसकर कहा—'जिनके साथ जिन्दगीभर काम किया है, उनसे विदा तो ले आऊँ?' पूरे दिन काम करके वे घर लौटे। थोड़ी देर बाद उन्होंने छातीमें दर्दकी शिकायत की और साँस तोड़ दी।'

साहित्यकार, वैद्य गुरुदत्तजीकी आपबीती

लाहौरमें जन्मे सुप्रसिद्ध उपन्यासकार तथा आर्यसमाजी विचारक वैद्य गुरुदत्तजीने अपने जीवनकालमें विपुल साहित्यकी रचना की थी। वे अमेठीके राजा रणंजयसिंहके निजी सचिव भी रहे थे। उन्होंने अपनी 'भाग्यचक्र' नामक पुस्तकमें अपने संस्मरण दिये हैं।

श्रीगुरुदत्तजी उन दिनों अमेठी (उत्तर प्रदेश)-में राजाके फार्म हाउसकी व्यवस्था देखते थे। वे 'भाग्यचक्र' में लिखते हैं—सन् १९३० ई०की बात है। एक दिन पासके किसी गाँवका कोई पण्डित फार्म हाउसमें आया। मेरा जन्मदिन और समय पूछकर मेरी कुण्डली बनायी

और गणना करनेके बाद बताया कि मुझपर शनिकी दशा पड़ी है और यह साढ़े सात वर्षतक रहेगी। इस कालमें धन-जन, मान, प्रतिष्ठा सबमें मुझे हानि होगी। आर्यसमाजी परिवारके संस्कारोंके कारण मैं फलित ज्योतिषमें विश्वास नहीं करता था। मैंने उसकी भविष्यवाणीको हँसीमें उड़ा दिया, किंतु कुछ ही दिन बाद मेरे सामने संकट आने लगे। साढ़े सात वर्षतक मैं संकटोंसे घिरा रहा। मकानसे निकाल दिया गया। राजाकी नौकरीसे हटना पड़ा। ३१ दिसम्बर सन् १९३६ ई० को द्वितीय पुत्रका निधन हो गया। लाहौर लौट आया। जीवनयापनके लिये एक मित्रके साथ ढाबा चलाया, उससे गुजारा नहीं हो पाया। आटा पीसनेकी चक्की खोली, उसमें भी हानि हुई। शनिकी साढ़ेसातीने सब कुछ छीन लिया।

देवीभक्तकी चेतावनी—५ जनवरी सन् १९३७ ई० को मैं लाहौरमें अपनी वैद्यकीकी दुकानपर बैठा हुआ था। एक ब्राह्मणदेवता रामनामकी ओढ़नी-ओढ़े हुए दुकानके बाहर खड़े दिखायी दिये। वे बोले, 'मैं यह कहने आया हूँ कि लाहौर छोड़ दीजिये, यहाँ आपके लिये सुख-सुविधा नहीं है। शीघ्र ही यहाँसे अन्यत्र चले जाइये।' मैंने कहा— साधन जुटनेपर ऐसा ही करूँगा।

अगले माह फरवरीकी ५ तारीखको फिर पण्डितजी आये और बोले—'आप अभीतक गये नहीं।' मैंने विनम्रतासे कहा—'नई जगह जानेके लिये साधन चाहिये। मैं साधन बटोरनेका प्रयास कर रहा हूँ।'

अगले माह ५ मार्चको वे तीसरी बार दुकानपर फिर आये तथा बोले—'साधन आपके पास आनेवाला है। अवसर न खोइयेगा।' पण्डितजीके लौटनेके बाद ९ बजे डाकसे पत्र आया। दिल्लीसे आनन्दस्वामीजीने लिखा था। मुझे सरदार जसवन्तसिंहसे पता चला है कि आप लाहौरमें तंग हैं और कहीं अन्यत्र जाना चाहते हैं। इधर मैं नई दिल्ली स्थित कनॉट पैलेसपर मद्रास होटलके नीचे दुकान (वैद्यक) करता हूँ। मैं यह दुकान छोड़ रहा हूँ। यदि आप तुरंत यहाँ आ जायँ तो यह स्थान आपको दिला सकता हूँ।

मैं जैसे-तैसे कुछ रुपयोंका जुगाड़ करके दिल्ली जा पहुँचा। उधर शनिकी साढ़ेसातीके दिन खत्म हो रहे थे और मुझे मद्रास होटलके नीचे ठिकाना मिल गया। मेरी वैद्यकीकी दुकान चल निकली।

वैद्य गुरुदत्तजीने मुझे बताया था कि यहीं मेरी लेखनमें रुचि पैदा हुई। एक उपन्यास लिखा, प्रकाशकने उसे छापा तथा वह चल निकला। मेरा उत्साह बढ़ने लगा।

मुझे अचानक अमेठीके फार्म हाउसमें साढ़े सात वर्ष पूर्व ज्योतिषीद्वारा की गयी भविष्यवाणी याद हो आयी। उसकी साढ़े सात वर्षतक शनिके प्रकोपकी बात सत्य लगने लगी। रामनामी दुपट्टा ओढ़े हुए पण्डितजीके तीन बार लाहौरमें दुकानपर आकर लाहौर छोड़ देनेका आग्रह तथा साधन आ रहे हैं, यह कहना भी याद हो उठा।

साहित्यकार श्रीगुरुदत्तजी एक बार कृपाकर हमारे निवास-स्थानपर पधारे थे। पिताजीको उन्होंने ज्योतिषीकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होनेकी घटना विस्तारसे सुनायी थी। उन्होंने बताया १९३९ में मैं दिल्लीसे कुछ दिनके लिये लाहौर गया तो रामनामकी ओढ़नीवाले पण्डितजीका पता लगाकर उनके निवास-स्थानपर धन्यवाद-ज्ञापन करने पहुँचा। मैं फल लेकर गया था। पण्डितजी अष्टभुजी दुर्गाके विग्रहके समक्ष बैठे पूजा-साधना कर रहे थे। मैंने उन्हें प्रणामकर फल सामने रख दिये—बोला! आपने तीन बार अनायास ही मेरी दुकानपर आकर लाहौर छोड़नेका आग्रह किया था। आखिरी बार ५ मार्च सन् १९३७ ई०को कहा था— 'साधन आनेवाला है, तुरंत चले जाना। आपके लौटनेके कुछ देर बाद ही डाकसे पत्र आया। वह साधन ही था। मैं आपके कृपापूर्वक किये गये आग्रहके कारण ही लाहौर छोड़कर दिल्ली पहुँचा। वहाँ मेरा काम चल निकला है। आपको धन्यवाद देने आया हूँ।'

पण्डितजी यह सुनकर बोले—'यह कृपा मेरी नहीं, भगवतीकी थी। उन्हींने मुझे स्वप्नमें भरोसा दिया था कि कृष्ण गलीके सामने किस्मतका मारा व्यक्ति वैद्यकी कर रहा है। वह सफल नहीं हो रहा। उससे कहो कि लाहौर छोड़ दे।' इसलिये भगवतीको ही धन्यवाद-ज्ञापन करो, फल उन्हींके समक्ष भेंट कर दो।

वैद्यजी बताते हैं 'मैं आर्यसमाजी होनेके नाते

भगवती तथा मूर्तिपूजामें तनिक भी विश्वास नहीं करता था, किंतु स्वयं आँखों-देखे इस चमत्कारको भला कैसे नकारता ? मेरे हाथ बरबस भगवतीके सामने झुक गये।'

गुरुदत्तजीने पिताजीको बताया कि दिल्लीमें सन् १९३८ ई० में एक बार एक मद्रासी सज्जन श्रीविजयराघवाचार्यजी, जो सेवानिवृत्त पोस्टमास्टर जनरल थे, मुझसे औषधि लेने आये।' उन्होंने मेरे मस्तककी रेखाको गौरसे देखा तथा बोले—'मैंने तन्त्रविद्याका गहन अध्ययन किया है। स्वयं उसकी साधना एवं अभ्यास किया है। आपके मस्तिष्ककी रेखा देखकर मैं कह सकता हूँ कि सरस्वतीकी माया छिपी हुई है। उसे प्रकट करनेका उपाय आपको बताता हूँ।' श्रीविजयराघवाचार्यजीने एक कागजपर लक्ष्मी-सरस्वतीका आवाहन-मन्त्र लिखा—

या सा पद्मासनस्था विपुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी
गम्भीरावर्तनाभिस्तनभरनमिता शुभ्रवस्त्रोत्तरीया।
या लक्ष्मीर्दिव्यरूपैर्मणिगणखचितैः स्नापिता हेमकुम्भैः
सा नित्यं पद्महस्ता वसतु मम गृहे सर्वमाङ्गल्ययुक्ता॥

इस आवाहन-मन्त्रके साथ उन्होंने मन्त्र लिखा—**'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै सकलसौभाग्यं मे देहि स्वाहा॥'** और कहा, इसका प्रतिदिन जप किया करो। उन्होंने बताया। श्रींका अर्थ है लक्ष्मी, ह्रींका अभिप्राय दुर्गा और क्लींका अभिप्राय है सरस्वती। आवाहनमें कहा गया है—'हे परमात्मा! ये तीनों विभूतियाँ मुझे प्राप्त हों।'

मैंने जप शुरू किया तथा दिनोंदिन लेखनमें मुझे सफलता मिलने लगी।

वैद्य गुरुदत्तजीने पिताजीको यह भी बताया कि एक बार सन् १९२१ ई०में परलोकगत आत्माके माध्यमके द्वारा यह भी भविष्यवाणी कर दी थी कि हमारी माताजीका निधन सात वर्ष बाद अगस्त सन् १९२८ ई०में होगा। मैंने यह अपनी डायरी (दैनन्दिनी)-में लिख लिया था और वास्तवमें सात वर्ष बाद अगस्तमें ही अचानक वे परलोक सिधार गयीं।

ज्योतिष और अनुभव

(कार्ष्णि डॉ० श्रीराधेश्यामजी अग्रवाल, एम०ए०, पी-एच०डी०)

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक परमपिताके अनेकानेक रूपोंमें एक ज्योतिष भी है। ज्योतिषमें जो कुछ भी है, सबमें परमेश्वर ही व्याप्त है। ग्रह-नक्षत्र और काल-चक्र सभी उसीके नियन्त्रणमें हैं। हमने अपने जीवनमें जो कुछ भी अनुभव किया है, उसका ही यहाँ उल्लेख करेंगे। इसके पूर्व एक सत्य घटनाका उल्लेख कर रहे हैं, जिससे इस क्षेत्रमें हमारी प्रवृत्ति हुई। हमारे पैतृक निवास महावन जिला मथुरामें एक उदासीन आश्रम है, जिसमें आजसे पचास वर्ष पूर्व एक सन्त थे, उनका नाम था—कार्ष्णि हरिनामदास। सन्त बहुत ही उच्चकोटिके थे। मुझे भी उनके दर्शन एवं अल्प सांनिध्यका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके पास अनेक भक्त आते थे। अपनी-अपनी समस्याएँ बताते थे, उन्हें कुछ न बताकर वे यही कहते—बेटा! भगवान्का भजन करो, सब ठीक हो जायगा।

एक समयकी घटना है, मेरे पूज्य पिताजी अत्यधिक परेशानीमें थे, काफी समय हो गया, कोई समाधान नहीं निकल पा रहा था। यह घटना हमारे जन्मसे पूर्वकी है, जो पिताजीने लगभग १०-१२ सालकी अवस्थामें मुझे सुनायी थी। 'गाँवमें कोई अच्छे ज्योतिषी आये हैं' पिताजीको जैसे ही इस बातका पता लगा, उन्होंने उनकी खोज प्रारम्भ कर दी। पता लगा कि वे रमणरेती आश्रम गये हैं। पिताजी दूकानका व्यवसाय करते थे। मध्याह्नकालमें ही दूकान बन्दकर अपने एक मित्रके साथ रमणरेती चले गये। वहाँ उन्होंने ज्योतिषी महोदयको बहुत खोजा, पर वे कहीं नहीं मिले। भवितव्यता कुछ और ही कराना चाहती थी। रमणरेतीमें ही पिताजीके गुरु भी थे। सोचा ज्योतिषी तो मिले नहीं, कम-से-कम गुरुजीके दर्शन तो कर ही लें, यह लाभ क्यों छोड़ा जाय। दोनों महाराजश्रीकी

कुटियामें पहुँच गये। दोपहरका समय था, गुरुजी विश्राम कर रहे थे। अचानक असमय पिताजीको आया देख अवाक् रह गये। पूज्य पिताजीका नाम श्रीशिवचरनलाल था, महाराजश्री 'शिब्बू' कहकर सम्बोधन करते थे। उठे और बोले … 'आज इस समय कैसे आये'? 'नहीं महाराजश्री! नहीं, कोई बात नहीं है, वैसे ही आ गये हैं।' ऐसा लगा जैसे महाराजश्रीके सामने चलचित्रकी तरह सारी कहानी आ गयी हो। वे कुछ समयके लिये मौन हो गये। आँखें बन्द कर लीं। जैसे ध्यानमुद्रामें पिताजीके जीवनका लेखा-जोखा देख रहे हों। कुछ ही क्षणोंके उपरान्त उन्होंने नेत्र खोले और अपना मौन तोड़ते हुए गम्भीर मुद्रामें बड़े प्यारसे बोले—बेटा, शिब्बू! जो नौकरी करते हैं, उन्हें वेतन कब मिलता है, स्वाभाविक उत्तर था, अगले माहकी एक तारीख को। महाराजश्रीने तुरन्त कहा—बेटा, ऐसे ही जो पिछले जन्ममें कर्म कर आये हो, उनका फल इस जन्ममें ही तो मिलेगा। ठाकुरजीका भजन करो, सब ठीक हो जायगा।

जो मनमें समस्या थी, बिना ज्योतिषीके एक क्षणमें समाधान हो गया। पिताजी घर आ गये। उन्होंने बताया कि उस दिनके बाद मैंने कभी किसी ज्योतिषी या पण्डितसे भविष्यके बारेमें कुछ नहीं पूछा।

यही वह प्रथम घटना है, जिसने छोटी उम्रमें एक सूत्र दे दिया और खोज हुई ज्योतिषकी कि आखिर ज्योतिष है क्या, इससे भविष्य कैसे बताया जाता है। ग्रन्थोंका संकलन और अध्ययन प्रारम्भ हो गया। कुण्डली-निर्माण और फलादेश जितना जाना जा सकता था, १५-१६ वर्षकी अवस्थातक ही जान लिया, किंतु आज भी अनेक व्यक्तियोंके जीवन एवं कुण्डलीका अध्ययन करनेपर अपने अनुभवके आधारपर यही कहना है—

विधना ने जो लिख दयी छठी रात्रि के अंक।
राई घटे न तिल बढ़े रहो जीव निशंक॥

बहुतोंके जीवनको देखा, अपने-आपको अच्छे-से देखा, पर महाराजश्रीके वाक्य आज भी अकाट्य हैं। पूर्वजन्मका भोग्य तो भोगना ही होगा।

हमारी अपनी अनुभूति है कि जिस प्रकार व्यासजीने सत्रह पुराणोंकी रचना की, किंतु मनको शान्ति नहीं मिली। जीवके कल्याणका कोई मार्ग नहीं आया, तब भगवान्‌के वाङ्मय शरीर—श्रीमद्भागवतकी रचना हुई, जो आज भी जीवके भूत, भविष्य और वर्तमानका कल्याण कर रही है।

ठीक इसी प्रकार पराम्बा भगवती माँका हृदय जीवकी दशाको देखकर दुखित हुआ तो आशुतोष भगवान् शंकरसे प्रश्न कर बैठीं—प्रभो! जीवके कल्याणका कुछ साधन बताओ तो भगवान् शंकरके मुखसे आगमशास्त्र प्रकट हुए, जो आज भी विभिन्न रूपोंमें जीवका कल्याण कर रहे हैं। इसी तरह जीवके कल्याणके लिये ज्योतिष भी भगवान्‌के विग्रहके रूपमें कालचक्रकी गणनाकर मार्गदर्शकके रूपमें सहायक है। ज्योतिष विषयको लेकर अनेक भ्रान्तियाँ हैं, कुछ इसे मानते हैं, कुछ नहीं मानते हैं।

ज्योतिषशास्त्र, हम अपने अनुभवसे कह सकते हैं कि नितान्त सत्य है—यह घोषणा हम प्राच्य मनीषियोंके आधारपर कह रहे हैं, आजके व्यवसायी समाजके आधारपर नहीं। हमारे देशकी मान्यता थी कि राजदरबारोंमें विशेषज्ञोंको रखा जाता था, जैसे—राजगुरु, राजज्योतिषी, राजवैद्य आदि; जो निःस्वार्थ सेवा करते थे। जो राजाने अपनी प्रसन्नतासे दे दिया, वही पर्याप्त था। आज ये सब व्यवसाय बन गये हैं, इसलिये न वैद्यकी औषधि कार्य करती है, न ज्योतिषीका ज्ञान कार्य करता है। जीवनमें अनेक ज्योतिषियोंसे सम्पर्क हुआ, जिनकी वाणी सत्य हुई, हमने खोज की, वे सभी साधक थे अथवा व्यवसायी थे। अपने अनुभवके आधारपर कह सकते हैं कि ज्योतिष बिना साधनाके सफल नहीं है।

एक अन्य घटना जो सत्य है या असत्य, हम नहीं कह सकते, किंतु व्यावहारिक अवश्य है। यह दृष्टान्तके रूपमें ली जा सकती है। यह घटना भी बचपनकी है। एक वृद्ध कह रहे थे कि कोई पण्डित ज्योतिष-विद्याका अध्ययनकर घरसे लौट रहे थे तो मार्गमें कुछ व्यक्तियोंने परीक्षाके तौरपर हाथमें अँगूठी रखकर प्रश्न किया कि बताओ इसमें क्या है, ज्योतिषी महाशयने अपना गणित लगाना शुरू किया और बोले कि गोल-गोल है, बीचमें छेद भी है तो लोगोंने पूछा कि बताओ फिर क्या है,

ज्योतिषीको व्यावहारिक ज्ञान तो था नहीं, तुरन्त उनके मुखसे निकल पड़ा—चक्कीका पाट।

सभी उपस्थित जन हँसने लगे कि हाथमें चक्कीका पाट कैसे आयेगा! यह व्यावहारिक ज्ञान न होनेसे घटित हुआ। एक ही देश-काल-लग्नमें विभिन्न परिवारोंमें जन्मे जातकोंका भविष्य भी व्यावहारिक ज्ञानसे ही सम्भव है, केवल पुस्तकीय ज्ञानसे सम्भव नहीं।

जीवनमें अनेक घटनाओं एवं अनुभवोंका उल्लेख सम्भव है, किंतु विस्तारके भयसे सूक्ष्ममें निवेदन प्रस्तुत है—

(१) शनिकी महादशा, साढ़ेसाती एवं ढैया प्रायः सभी जीवोंके जीवनमें आती है, जिसके लग्नमें जैसा प्रभाव है, उसके अनुसार घटित होता भी है। इसे अनेक व्यक्तियोंपर अध्ययन किया, इसका प्रभाव न्यूनाधिक अवश्य होता है। इसे धैर्यपूर्वक काटना चाहिये। मानसिक सन्तुलन नहीं खोना चाहिये। पीपलकी पूजा सर्वोत्तम है।

(२) कालसर्पयोग भी आजकल चर्चाका विषय है, जो पहले नहीं था, न प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख है। इसकी चिन्ता किसी भी परिस्थितिमें न करें; क्योंकि जन्मांगमें जब प्रत्येक ग्रहका प्रत्येक भावके अनुसार फलादेश है, तब अलगसे इसकी चिन्ता आवश्यक नहीं। यदि राहु-केतुके साथ कोई अन्य ग्रह हैं तो कदापि विचारणीय नहीं है, फिर भी यदि मन न माने तो महामृत्युंजय मन्त्र, शिव-उपासनासे सब निवारणीय है।

(३) जन्मांगमें जो भी ग्रह जिस भावमें जिस रूपमें स्थित है, वह सब ईश्वर-अंश है, इस आशयसे भगवच्चिन्तन करनेसे विषम परिस्थितिमें बदलाव निश्चय होता है।

(४) जब प्रारब्ध भोग का परिणाम यह शरीर है तो इस तरह मत काटो—

ज्ञानी काटे ज्ञान ते मूरख काटे रोय।

फिर स्वामी रामतीर्थकी तरह काटो—

हर हालमें खुश हैं।

पूरे हैं वही मर्द जो हर हालमें खुश हैं।
गर माल दिया यार ने तो माल में खुश हैं।
गर खाल दी यार ने तो खाल में खुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।

राजा बननेका योग

(श्रीउमाकान्तजी शास्त्री 'पंचमुखीदास')

मूलतः ज्योतिषशास्त्र कर्तव्यशास्त्र और व्यवहारशास्त्र है। इस बातकी सत्यता ज्ञात करनेके लिये किसी राजाने विद्वान् ज्योतिषियों एवं ज्योतिष-मधुकरोंकी सभा बुलाकर प्रश्न किया कि 'मेरी जन्मपत्रिकाके अनुसार मेरा राजा बननेका योग है, किंतु इस घड़ी-मुहूर्तमें अनेक जातकोंने जन्म पाया होगा, जो राजा नहीं बन सके क्यों? कारण क्या है?'

राजाके इस प्रश्नसे सब निरुत्तर हो गये? सन्नाटेके बीच एक बुजुर्ग उठ खड़े हुए और बोले—महाराजकी जय हो, आपके प्रश्नका उत्तर कौन दे सकता है, फिर भी मैं बता रहा हूँ। यहाँसे कुछ दूर घने जंगलमें यदि आप अकेले जायँगे तो वहाँ आपको एक महात्मा मिलेंगे, उनसे आपको उत्तर मिल सकता है।

उत्सुकताके वशीभूत राजा बुजुर्गके कथनानुसार अकेले जंगलकी तरफ चल दिये। घण्टों यात्राके बाद जंगलमें उन्हें एक महात्मा दिखायी दिये, जो आगके ढेरके पास बैठकर अंगार खानेमें व्यस्त थे। सहमे हुए राजा महात्माके पास ज्यों ही पहुँचे, महात्माने डाँटते हुए कहा, तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देनेके लिये मेरे पास समय नहीं है, मैं अपनी क्षुधासे मजबूर हूँ। यहाँसे आगे पहाड़ियोंके बीच एक और महात्मा हैं, उनसे तुम्हें उत्तर मिल सकता है।

राजाकी जिज्ञासा और बढ़ गयी। राजा पहाड़ियोंकी तरफ चल दिये। चलते-चलते अँधेरा छा गया, किंतु राजाने साहस नहीं छोड़ा। मीलोंतक पहाड़ियोंपर चलनेके बाद राजा दूसरे महात्माके पास पहुँचे। महात्मा चिमटोंसे अपना ही मांस नोच-नोचकर खानेमें व्यस्त थे। राजाको देखते ही दूसरे महात्माने भी डाँटते हुए कहा—'मैं

भूखसे बेचैन हूँ। तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देनेका मेरे पास समय नहीं है। आगे जाओ··· पहाड़ियोंके उस पार आदिवासियोंके यहाँ एक बालक जन्म लेनेवाला है, जो पाँच मिनटतक जिन्दा रहेगा। सूर्योदयसे पूर्व पहुँचो, बालक उत्तर दे सकता है।'

बिना किसी प्रतीक्षाके राजा गाँवकी तरफ चल दिये पौ फटनेतक गाँवमें उस दम्पतीके यहाँ पहुँचते ही राजाने आदेश दिया कि जन्म लेते ही बालकको मेरे सामने नालसहित पेश किया जाय। कुछ समय बाद बालकका जन्म हुआ और बालकको राजाके सामने लाया गया। राजाको देखते ही बालकने हँसते हुए कहा—'राजन्, मेरे पास भी समय नहीं है, किंतु अपना उत्तर सुनो···।'

तुम, मैं और दोनों महात्मा सात जन्म पहले चारों भाई राजकुमार थे। शिकार खेलते-खेलते हम जंगलमें भटक गये। तीन दिनतक भूखे-प्यासे भटकते रहे। अचानक हम चारोंको आटेकी एक पोटली मिली। जैसे-तैसे हमने चार बाटी सेंकी और अपनी-अपनी बाटी लेकर खाने बैठे ही थे कि भूख-प्याससे तड़पते हुए एक महात्मा आ गये। अंगार खानेवाले भइयासे उन्होंने कहा, 'बेटा! मैं दस दिनसे भूखा हूँ। अपनी बाटीमें-से मुझे भी कुछ दे दो—मुझपर दया करो, जिससे मेरा भी जीवन बच जाय।' सुनते ही भइयाने गुस्सेमें कहा··· 'तुम्हें दे दूँगा तो मैं क्या आग खाऊँगा?' चलो, भागो यहाँसे···।

महात्माजी मांस खानेवाले भइयाके पास पहुँचे, उनसे भी अपनी बात कहने लगे, उन्होंने भी महात्माजीको डाँटकर भगा दिया और कहा—'तुम्हें बाटी दे दूँगा तो मैं क्या अपना मांस नोंचकर खाऊँगा?' भूखसे लाचार महात्माजी मेरे पास भी आये, याचना किये··· मैंने भी कहा··· चलो आगे बढ़ो, मैं क्या भूखा मरूँ···!'

अन्तिम आशा लिये महात्मा तुम्हारे पास पहुँचे, तुमसे भी दयाकी गुहार लगायी। सुनते ही तुमने बड़े हर्षित मनसे अपनी बाटीमेंसे महात्माको आधी बाटी आदरसहित दे दी। बाटी पाकर महात्माजी जाने लगे और बोले—'तुम्हारा भविष्य तुम्हारे कर्म और व्यवहारसे फले।'

बालकने कहा—'इस घटनाके आधारपर हम चारों आज अपना-अपना भोग भोग रहे हैं। धरतीपर एक समयमें अनेकों फूल खिलते हैं, किंतु सबके फलोंका रूप, रंग, आकार, प्रकार, स्वाद, गुण अलग बनता है। इसी तरह···' कहते-कहते बालककी आवाज थम गयी···। राजाने अपने राजभवनकी ओर प्रस्थान किया और मान लिया कि मूलतः ज्योतिषशास्त्र कर्तव्यशास्त्र और व्यवहारशास्त्र है।

ग्रहोंसे मनुष्योंका सम्बन्ध*

[दो विलक्षण ज्योतिषी]

(श्रीशंकरबालकृष्णजी दीक्षित)

मनुष्यके जीवनसे आकाशस्थ ग्रहोंका सम्बन्ध होनेमें बहुतोंको सन्देह होता है और ऐसा होना स्वाभाविक है, परंतु मेरा यह निश्चित मत है कि वह सम्बन्ध होनेमें सन्देह नहीं है। मनुष्योंके शरीरलक्षणोंद्वारा जन्मलग्न बतानेवाले ज्योतिषी पटवर्धन और गोविन्द चैट्टीके निम्नलिखित जीवनचरित्रोंसे इसका स्पष्टीकरण हो जायगा।

(१) बाबाजी काशीनाथ पटवर्धन

इनकी महाडकर नामसे विशेष प्रसिद्धि है। इनका जन्म सन् १८६५ ई० वैशाख कृष्ण १४ को धनु लग्नमें चिपलूणके पास पाचेरी सड़ा उर्फ मोभार नामक स्थानमें हुआ। इन्होंने जातकशास्त्रका यह अश्रुतपूर्व ज्ञान प्रायः स्वयं सम्पादित किया। जब ये १३ वर्षके थे, इनके पिताका देहावसान हो गया। इनका प्रथम मराठी-शिक्षण सन् १८७७ ई०में गणपति पुलेमें, फिर सन् १८७८ से १८८० ई०तक मालगुण्डमें और इसके बाद सन् १८८२ ई०तक थाणेमें हुआ। सन् १८८३ ई०में इन्हें अलीबाग जिलेमें कोर्टमें नौकरी मिली। वहाँ सन् १८८६ ई०तक

* प्रस्तुत वृत्तान्त श्रीशंकरबालकृष्णजी दीक्षित-लिखित 'भारतीय ज्योतिष' (प्र०सं० १८९६ ई०) ग्रन्थसे लिये गये हैं।

रहे। इसके बाद कुछ दिनोंतक महाडके कोर्टमें थे, इसीलिये इन्हें महाडकर कहते हैं। सन् १८९३ ई०से ये नौकरी छोड़कर इचलकरंजी और मुख्यत: कोल्हापुरमें वकालत करने लगे। इनका अधिक समय अन्य व्यवसायोंमें व्यतीत होता था।

सन् १८८२ ई०में इन्हें एक द्रविड़ ब्राह्मण ज्योतिषीने, जो कि विक्षिप्त थे—मनुष्यके शरीरलक्षणोंद्वारा जन्मलग्न जाननेके कुछ मूलतत्त्व बताये। उसके बाद इन्होंने अनेक ग्रन्थ देखकर, जहाँतक हो सकता था, उनमें बतलाये हुए लक्षणोंकी एकवाक्यता तथा स्वयं सैकड़ों मनुष्योंकी आकृतियोंका निरीक्षण करते हुए अपना ज्ञान बढ़ाया। सन् १८९१ ई०से इनके इस ज्ञानकी प्रसिद्धि हुई। मुखाकृति देखकर कुण्डली बनानेमें इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। मनुष्यपर दृष्टि पड़ते ही थोड़ेसे समयमें ये उसकी कुण्डली बना लेते थे। यह कार्य वे मुख्यत: मुखाकृतिके आधारपर करते थे और कभी-कभी जीभ तथा हस्ततल भी देखते थे। वे शरीरलक्षणोंद्वारा जन्मकालीन लग्न और ग्रहोंकी राशियाँ ही नहीं, ग्रहोंके अंशतक बताते थे। अंशोंमें औसतन एक या दोसे अधिक अन्तर नहीं पड़ता, इसका मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव किया है। सर्वदा अंश नहीं बताते, अधिकतर केवल राशियाँ ही बताते थे।

गुरु किसी राशिसे चलकर १२ वर्षोंमें पुन: उसी राशिमें आ जाता है, शनि ३० वर्षोंमें आता है। सूर्य चैत्रादि मासोंमें मेषादि राशियोंमें रहता है। सूर्य और चन्द्रमाके अन्तरद्वारा तिथि लायी जाती है। इन नियमोंद्वारा ज्योतिषगणित जाननेवाला कोई भी मनुष्य लग्नकुण्डली देखकर यदि मनुष्य सामने हो तो उसका जन्मकाल बता सकता है। जन्मकाल ज्ञात होनेपर तो ज्योतिषगणितद्वारा तत्कालीन लग्न और ग्रहोंका ज्ञान हो ही जाता है, पर पटवर्धन ये बातें शरीरलक्षणोंद्वारा बताते अर्थात् शरीर-लक्षणोंसे वे यह जान लेते कि जन्मके समय अमुक राशिका उदय हो रहा था और अमुक ग्रह आकाशमें अमुक स्थानमें था। कुण्डलीमें उनकी स्थापना करनेपर उपर्युक्त रीतिसे जन्मकाल बताया जा सकता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि जन्मकालीन आकाशस्थ ग्रहस्थिति और लग्नके अनुसार मनुष्योंके शरीरमें कुछ लक्षण उत्पन्न होते हैं अर्थात् ग्रहोंका मनुष्योंसे सम्बन्ध है। पटवर्धन प्रत्येक शंकाका उत्तर देनेके लिये तैयार रहते थे और इस कामकी फीस वे कुछ भी नहीं लेते थे—यह सर्वत्र प्रसिद्ध था।

पटवर्धनजी केवल जन्मकाल और थोड़ा-सा फल बताते थे। बहुत-से लोग उनकी जन्मकाल बतानेकी प्रक्रिया न जाननेके कारण उनकी विद्याका महत्त्व नहीं समझ पाते। कुछ लोग तो ऐसा भी समझते हैं कि वे ये बातें मन्त्रसिद्धिके बलपर बताते थे, परतु यह उनका भ्रम है। शरीरलक्षणोंद्वारा जन्मलग्न इत्यादि बतानेवाली विद्याको सामुद्रिक कह सकते हैं और पटवर्धनके सामुद्रिक ज्योतिषसे निकट सम्बन्ध थे। वे मनुष्योंका थोड़ा-सा भूत-भविष्य भी बताते थे।

मनुष्यका मनुष्यसे सम्बन्ध

पिताके शरीरलक्षणोंद्वारा पुत्रकी जन्मकुण्डली बनाते हुए भी मैंने पटवर्धनको कई बार देखा है। एक बार रा० ब० नारायण भाई दाण्डेकरकी मुखाकृति देखकर उन्होंने १५-२० मिनटमें उनके गणेश नामक पुत्रकी प्राय: सभी ग्रहोंसे युक्त जन्मकुण्डली मेरे सामने बनायी। यह विधि किसी भी ग्रन्थमें नहीं लिखी है। पटवर्धनने इसका अभ्यास स्वयं किया है। जातकशास्त्रद्वारा कौन-कौन-सी विलक्षण बातें निष्पन्न हो सकती हैं, यह बतलाना कठिन है। अनुभवद्वारा इस शास्त्रको बढ़ाना चाहिये। मैं समझता हूँ, ऐसा करनेसे आधुनिक अन्य शास्त्रोंकी भाँति जातक भी अनुभवालम्बी एक उत्कृष्ट शास्त्र बन जायगा।

(२) गोविन्द चैट्टी

कुम्भकोणमें गोविन्द चैट्टी नामका एक व्यक्ति है। उसकी विद्या पटवर्धनसे भी विचित्र है। वह केवल जन्मकाल ही नहीं, मनुष्यके मनका किसी भी भाषाका प्रश्न और उसका उत्तर बतलाता है—ऐसा लोग कहते हैं। वह ये बातें ज्योतिषशास्त्रकी सहायतासे बताता है या किसी अन्य विद्याद्वारा, इसका पता नहीं लगा है। शरीरलक्षणोंद्वारा जन्मलग्न जाननेके कुछ प्रकार जातकग्रन्थोंमें मिलते हैं, परंतु पटवर्धन और गोविन्द चैट्टीने जो विद्या सिद्ध की है, उसके ग्रन्थ नहीं हैं। हों तो भी वे सबको प्राप्त नहीं हैं, परंतु इस विद्याके मूलतत्त्व परम्परागत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अमुक लग्नमें उत्पन्न मनुष्यके अमुक लक्षण होंगे, मनुष्यके शरीरका विचार कुण्डलीके प्रथम स्थानसे, पत्नीका सप्तमसे, सम्पत्तिका अमुकसे करना चाहिये, हाथमें अमुक रेखा अमुक प्रकारकी हो तो जन्मके समय सूर्य अमुक राशिमें रहा होगा—इत्यादि नियमों और जातकशास्त्रके मूलतत्त्वोंको जिन्होंने सर्वप्रथम निश्चित किया, वे पुरुष धन्य हैं। इस प्रकार हम इतना निःसंकोच कह सकते हैं कि जातकशास्त्रकी रचना किसी-न-किसी आधारपर हुई और मनुष्यका ग्रहोंसे सम्बन्ध है।

भद्राका स्वरूप, विधि-निषेध तथा परिहार

(डॉ० श्रीरामनिहोरजी पाण्डेय)

भद्राकी उत्पत्तिकथा

भद्रा भगवान् सूर्यनारायणकी कन्या हैं। ये सूर्यपत्नी छायासे उत्पन्न हैं और शनैश्चरकी सगी बहन हैं। भद्राका वर्ण काला, रूप भयंकर, केश लम्बे और दाँत बड़े विकराल हैं। जन्मते ही वह संसारका ग्रास करनेके लिये दौड़ी, यज्ञोंमें विघ्न-बाधा पहुँचाने लगी, उत्सवों तथा मंगल-यात्रा आदिमें उपद्रव करने लगी और पूरे जगत्को पीड़ा पहुँचाने लगी। भद्राके भयंकर रूप, उपद्रवी तथा उच्छृंखल स्वभावके कारण उससे कोई भी विवाह करनेको तैयार नहीं हुआ। सूर्यनारायणने अपनी पुत्रीके लिये स्वयंवरका आयोजन किया तो भद्राने तोरण, मण्डप, आसन आदि सभी उखाड़ फेंका। आयोजनका विध्वंस हो गया। सूर्यनारायणने भद्राको समझानेके लिये ब्रह्माजीसे प्रार्थना की। ब्रह्माजीने आकर भद्राको समझाया और कहा कि भद्रे! तुम बव, बालव, कौलव, तैतिल आदि चर करणोंके अन्तमें सातवें करणके रूपमें स्थित रहो। जो व्यक्ति तुम्हारे समयमें यात्रा, गृहप्रवेश, खेती, व्यापार, उद्योग और अन्य मंगलकार्य करे तो तुम उसमें विघ्न डालो। जो तुम्हारा आदर न करे, उसका कार्य ध्वस्त कर दो। भद्राने ब्रह्माजीका आदेश मान लिया और वह कालके एक अंशके रूपमें अद्यतन वर्तमान है। भद्रा भगवान् सूर्यनारायणकी पुत्री होने तथा ब्रह्माजीद्वारा उपदेशित होनेके कारण जगत्व्यवहारमें आदरणीय तथा पूज्य है। भद्राकी उपेक्षा विपरीत परिणाम देती है।

ब्रह्मपुराणमें भद्रातीर्थके वर्णन-प्रसंगमें यह बात आयी है कि सूर्यने अपनी पुत्री भद्राका विवाह विश्वकर्माके

पुत्र विश्वरूपके साथ किया।

करण पंचांगका पाँचवाँ अंग है। प्रत्येक तिथिको दो भागोंमें बाँटनेके कारण ही इसे करण कहा गया। इस प्रकार प्रत्येक तिथिमें दो करण तथा एक चान्द्रमासमें साठ करणकी परिकल्पना की गयी है। शुक्ल प्रतिपदाके उत्तरार्धसे कृष्ण चतुर्दशीके पूर्वार्धतक २८ तिथियोंमें आठ आवृत्तिकर क्रमशः बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर (गज), वणिज तथा विष्टि नामक सात करण माने गये हैं।

चूँकि ये आवृत्ति कर आते हैं, इसलिये इन्हें चर करण नाम दिया गया है। कृष्णपक्षकी चतुर्दशी के उत्तरार्धसे शुक्ल प्रतिपदाके पूर्वार्धतक क्रमशः शकुनि, चतुष्पद, नाग एवं किंस्तुघ्न नामक चार स्थिर करण माने गये हैं।

इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, अर्यमा, भूमि, श्री (लक्ष्मी) तथा यम (कीनाश) क्रमशः चरकरणके एवं कलि, रुद्र, सर्प एवं मरुत् (वायु) क्रमशः स्थिर करण के स्वामी हैं।* चर करणमें सातवें करण **विष्टि** का ही अपर नाम **भद्रा** है। इसके स्वामी यम हैं, जो भरणी नक्षत्र, विष्कुम्भक योग तथा दक्षिणदिशाके भी स्वामी हैं। यम स्वभावतः अनिष्टकारी तथा भयावह हैं। ये जिस नक्षत्र, दिशा, योग आदिके स्वामी हैं, मनुष्य उनसे स्वाभाविक रूपसे भयाक्रान्त रहता है।

भद्राकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक पौराणिक आख्यान है कि 'दैत्योंसे पराजित देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान् शंकरके 'ज्वालामालाकुलनेत्रालोकित' शरीरसे गर्दभमुखी, कृशोदरी, पुच्छयुक्त, मृगेन्द्रके समान गर्दनवाली, सप्तभुजी, शवका वाहन करनेवाली तथा दैत्योंका विनाश करनेवाली भद्रा नामक देवी आविर्भूत हुई। इसे देवताओंने सातवें करणके रूपमें प्रतिष्ठित किया—

दैत्येन्द्रैः समरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्टवान्
स्वं कार्यं किल निर्गता खरमुखी लाङ्गूलिनी च त्रिपात्।
विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगलका क्षामोदरी प्रेतगा
दैत्यघ्नी मुदितैः सुरैस्तु करणप्रान्ते नियुक्ता सदा॥

(मुहूर्तचिन्तामणिकी पीयूषधारा टीकामें श्रीपतिका कथन)

उद्बद्धोद्धटतरपीडितातिकृष्णा
दंष्ट्रोग्रा पृथुहनुगण्डदीर्घनासा ।
कार्यघ्नी हुतवहनं समुद्गिरन्ती
विश्वान्तः पतति समन्ततोऽत्र विष्टिः॥

(मुहूर्तचिन्तामणिकी पीयूषधारामें रत्नमालाका उद्धरण)

रत्नकोशमें भद्राके नामों तथा तदनुरूप उसके फलका विवेचन किया गया है। ये नाम क्रमशः हंसी, नन्दिनि, त्रिशिरा, सुमुखी, करालिका, वैकृति, रौद्रमुखी तथा चतुर्मुखी हैं—

हंसी नन्दीन्यपि च त्रिशिराः सुमुखी करालिकाश्चैव।
वैकृति रौद्रमुखी च चतुर्मुखी विष्टयः क्रमशः॥

मुहूर्तग्रन्थोंमें शुक्लपक्षकी अष्टमी तथा पूर्णिमा तिथिके पूर्वार्ध और चतुर्थी एवं एकादशी तिथिके उत्तरार्धमें तथा कृष्णपक्षकी तृतीया एवं दशमी तिथिके उत्तरार्ध और सप्तमी एवं चतुर्दशी तिथिके पूर्वार्धमें भद्रा (विष्टि)-की उपस्थितिका निर्देश मिलता है—

शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टपञ्चदश्योर्-
भद्रैकादश्यां चतुर्थ्यां परार्धे।
कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात्तृतीयादशम्योः
पूर्वे भागे सप्तमीशम्भुतिथ्योः॥

(मुहूर्तचिन्तामणि १।४३)

भद्रावास

भद्राका वास स्वर्गलोक, पाताललोक और पृथ्वीलोक—तीनों लोकमें माना जाता है। जब भद्राका वास स्वर्गलोक और पाताललोकमें होता है, तब वहाँके वासियोंको सुख-दुःखका अनुभव होता है। जब भद्राका वास पृथ्वीलोकमें होता है, तब यहाँके वासियों—मनुष्योंको सुख-दुःखका आभास होता है। जब चन्द्रमा मेष, वृष, मिथुन और वृश्चिक राशियोंमें होता है, तब

* इन्द्रः प्रजापतिर्मित्रस्त्वर्यमा भूर्हरिप्रिया। कीनाशः कलिरुद्राख्यौ तिथ्यर्धेशास्त्वहिर्मरुत्॥ (ज्योतिर्निबन्धके करणप्रकरणमें नारदका वचन)

भद्रावास स्वर्गलोकमें होता है। जब चन्द्रमा कुम्भ, मीन, कर्क और सिंहमें होता है, तब भद्रावास पृथ्वीलोकमें होता है। जब चन्द्रमा कन्या, तुला, धनु और मकर राशियोंमें होता है, तब भद्रावास पाताललोकमें होता है।[१]

भद्राका वास किसी भी मुहूर्तकालमें पाँच घटी मुखमें, दो घटी कण्ठमें, ग्यारह घटी हृदयमें, चार घटी नाभिमें, पाँच घटी कमरमें और तीन घटी पुच्छमें रहता है। मुखमें भद्रा कार्यका नाश करती है। कण्ठमें धनका नाश करती है। हृदयमें प्राणका नाश करती है। नाभिमें कलह कराती है। कमरमें अर्थभ्रंश होता है, किंतु पुच्छमें भद्रा अवश्य ही विजय और कार्यसिद्धि कराती है।[२] इस प्रकार भद्राका लगभग १२ घण्टेमेंसे मात्र १ घण्टा १२ मिनटका अन्तिम समय शुभकारी होता है। कश्यपसंहिता तथा मुहूर्तगणपति आदि ग्रन्थोंमें भी भद्रावासका विचार किंचित् अन्तरके साथ आया है।

भद्राका मुख एवं पुच्छभाग

मुहूर्तग्रन्थोंमें भद्राके मुखभागकी अवधि (भोग-काल) पाँच-पाँच घटी (दो घंटा) तथा पुच्छभागकी अवधि तीन-तीन घटी (४८ मिनट) बतायी गयी है। शुक्लपक्षकी चतुर्थीके पाँचवें प्रहर (एक प्रहर=३ घंटा)-की, अष्टमीके दूसरे प्रहरकी, एकादशीके सातवें प्रहरकी तथा पूर्णिमाके चौथे प्रहरकी आदिकी पाँच घटी (दो घंटा) तथा कृष्णपक्षकी तृतीयाके आठवें प्रहर, सप्तमीके तीसरे प्रहर, दशमीके छठे प्रहर एवं चतुर्दशीके प्रथम प्रहरकी पाँच-पाँच घटीका काल भद्राका मुख होता है। शुक्लपक्षकी चतुर्थीके आठवें प्रहर, अष्टमीके प्रथम प्रहर, एकादशीके छठे प्रहर तथा पूर्णिमाके तीसरे प्रहरकी तथा कृष्ण-पक्षके तृतीयाके सातवें प्रहर, सप्तमीके दूसरे प्रहर, दशमीके पाँचवें प्रहर तथा चतुर्दशीके चौथे प्रहरकी अन्तकी तीन-तीन घटियों (४८ मिनट)-का काल भद्राका पुच्छ होता है। मुहूर्तचिन्तामणिकी पीयूषधारा टीकामें कहा गया है कि भद्राका मुख शुभ कार्योंमें अशुभ होता है तथा पुच्छ-भाग शुभ होता है। लल्लाचार्यके अनुसार पृथ्वीमें जितने शुभ तथा अशुभ कार्य हैं, वे सभी

—भद्रावासतालिका—

	शुक्लपक्षमें				कृष्णपक्षमें			
	परार्ध	पूर्वार्ध	परार्ध	पूर्वार्ध	परार्ध	पूर्वार्ध	परार्ध	पूर्वार्ध
आदिकी ५ घटी मुखमें (अशुभ)	चतुर्थीका पाँचवाँ प्रहर	अष्टमीका दूसरा प्रहर	एकादशीका सातवाँ प्रहर	पूर्णिमाका चौथा प्रहर	तृतीयाका आठवाँ प्रहर	सप्तमीका तीसरा प्रहर	दशमीका छठवाँ प्रहर	चतुर्दशीका प्रथम प्रहर
अन्त्यकी ३ घटी पुच्छमें (शुभ)	चतुर्थीका अष्टम प्रहर (रात्रि)	अष्टमीका प्रथम प्रहर (दिन)	एकादशीका छठवाँ प्रहर (रात्रि)	पूर्णिमाका तीसरा प्रहर (दिन)	तृतीयाका सप्तम प्रहर (रात्रि)	सप्तमीका द्वितीय प्रहर (दिन)	दशमीका पंचम प्रहर (रात्रि)	चतुर्दशीका चौथा प्रहर (दिन)

१. कुम्भकर्कद्वये मर्त्ये स्वर्गेऽब्जेऽजात्रयेऽलिगे। स्त्रीधनुर्जूकनक्रेऽधो भद्रा तत्रैव तत्फलम्॥ (मुहूर्तचिन्तामणि १।४५)

२. मुखे तु घटिकाः पञ्च द्वे कण्ठे तु सदा स्थिते। हृदि चैकादश प्रोक्ताश्चतस्रो नाभिमण्डले॥
कट्यां पञ्चैव विज्ञेयास्तिस्रः पुच्छे जयावहाः। मुखे कार्यविनाशाय ग्रीवायां धननाशिनी॥
हृदि प्राणहरा ज्ञेया नाभ्यां तु कलहावहा। कट्यामर्थपरिभ्रंशो विष्टिपुच्छे ध्रुवो जयः॥ (भ०पु०उ० ११७।२३—२५)

भद्राके पुच्छभागमें सिद्ध होते हैं—**'पृथिव्यां यानि कार्याणि शुभानि त्वशुभानि तु। तानि सर्वाणि सिद्ध्यन्ति विष्टिपुच्छे न संशयः॥'** दैवज्ञगणपतिका विचार है कि भद्राके पुच्छभागमें केवल युद्धमें विजय मिलती है, अन्य काम शुभ नहीं होते—**'विष्टिपुच्छे जयो युद्धे कार्यमन्यन्न शोभनम्।'** (करणप्रकरण १८)

भद्राकी अवधि तथा फल

मुहूर्तचिन्तामणिकी पीयूषधारा टीका, ब्रह्मयामल, मुहूर्तगणपति आदि ग्रन्थोंके अनुसार यदि दिनमें भद्राका आरम्भ हो रहा हो तथा वह रात्रिमें भी गमन कर रही हो अथवा रात्रिमें भद्राका आरम्भ हो रहा हो और वह दिनमें भी गमन कर रही हो तो वह भद्रा दोनों स्थितियोंमें भद्रदायिनी होती है—

रात्रिभद्रा यदाह्नि स्याद्दिवाभद्रा यदा निशि।
न तत्र भद्रादोषः स्यात्सा भद्रा भद्रदायिनी॥

(मुहूर्तचिन्तामणि, शु०शु०प्र० ४४ पर पी०धा० टीका)

दिवा परार्धजा विष्टिः पूर्वार्धोत्था यदा निशि।
तदा विष्टिः शुभायेति कमलासनभाषितम्॥

(मुहूर्तचिन्तामणिकी पीयूषधारा टीकामें लल्लाचार्यका कथन)

महर्षि भृगुके अनुसार सोमवार तथा शुक्रवारकी भद्रा कल्याणकारी, शनिवारकी वृश्चिकी, गुरुवारकी पुण्यवती तथा शेष वारोंकी भद्रिका होती है। अतः सोमवार, गुरुवार तथा शुक्रवारकी भद्राका दोष नहीं होता।

भविष्यपुराणमें भद्राव्रतका विधान आया है। वहाँ बताया गया है कि भद्राव्रत करने तथा व्रतका उद्यापन करनेसे व्रतीके किसी कार्यमें विघ्न नहीं पड़ता और उसे अन्तमें सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। भद्राके धन्या, दधिमुखी, भद्रा, महामारी, खरानना, कालरात्रि, महारुद्रा, विष्टि, कुलपुत्रिका, भैरवी, महाकाली तथा असुराणां क्षयंकरी—इन बारह नामोंका प्रातःकाल उच्चारण करनेसे व्याधि नष्ट होती है और कोई रोग नहीं होता। भद्राकी प्रार्थनाका मन्त्र इस प्रकार है—

छायासूर्यसुते देवि विष्टिरिष्टार्थदायिनि।
पूजितासि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव॥

(भविष्यपुराण उ०पर्व ११७।३९)

दो प्रकारकी भद्रा

मुहूर्तग्रन्थोंमें दो प्रकारकी भद्रा बतायी गयी है—सर्पिणी तथा वृश्चिकी। मुहूर्तचिन्तामणिकी पीयूषधारा टीकामें शुक्लपक्षकी भद्रा वृश्चिकी तथा कृष्णपक्षकी भद्रा सर्पिणी कही गयी है— **असिते सर्पिणी ज्ञेया सिते विष्टिस्तु वृश्चिकी।** शास्त्रोंमें सर्पिणी भद्राके मुखभाग तथा वृश्चिकीके पुच्छभागमें ही मंगल-कार्यका निषेध कहा गया है—**'सर्पिण्यास्तु मुखं त्याज्यं वृश्चिक्याः पुच्छमेव च।'**

भद्रामें करणीय कार्य

वसिष्ठ आदि आचार्योंके अनुसार वध, बन्धन, विष, अग्नि, अस्त्र, छेदन, उच्चाटनादि कर्म, तुरंग-महिष-उष्ट्रादिके क्रयादि कार्य भद्रामें सिद्ध होते हैं—

वधबन्धविषाग्न्यस्त्रच्छेदनोच्चाटनादि यत्।
तुरङ्गमहिषोष्ट्रादिकर्म विष्ट्यां तु सिद्ध्यति॥

(मुहूर्तचिन्तामणि में वसिष्ठका कथन)

भद्रामें निषिद्ध कार्य

इनके अतिरिक्त अन्य मंगल कार्य यथा—यात्रा, रक्षाबन्धन, विवाहादि संस्कार, दाहकर्म आदि भद्रामें निषिद्ध हैं। यदि किये जायँ तो अनिष्टकारी होते हैं—

न कुर्यान्मङ्गलं विष्ट्यां जीवितार्थी कदाचन।
कुर्वन्नज्ञस्तदा क्षिप्रं तत्सर्वं नाशतां व्रजेत्॥

भद्रामें श्रावणी कर्म (यह श्रावण पूर्णिमाको किया जाता है) तथा फाल्गुनी (होलिकादहन)-का भी निषेध है; क्योंकि श्रावणी-कर्म करनेसे राजाका नाश तथा फाल्गुनीसे अग्निका भय होता है—

(क) **भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा।**
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी॥

(ख) **भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै।**
नगरस्य च नैवेष्टा तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥

(निर्णयसिन्धु)

पंचकविचार

धनिष्ठाका उत्तरार्ध, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद तथा रेवती—इन पाँच नक्षत्रोंको पंचक कहते हैं। पंचकमें निषिद्ध कर्मोंको निरूपित करते हुए बताया गया है—

धनिष्ठापञ्चके त्याज्यस्तृणकाष्ठादिसङ्ग्रहः।
त्याज्या दक्षिणदिग्यात्रा गृहाणां छादनं तथा॥

(शीघ्रबोध २।७७)

अर्थात् पंचकमें तृण-काष्ठादिका संचय, दक्षिण दिशाकी यात्रा, गृह छाना, प्रेतदाह तथा शय्याका बीनना—ये कार्य निषिद्ध हैं—

इसी बातको ज्योतिर्विदाभरण (२।१९)-में इस प्रकार बताया गया है।

प्रेतं नयेत्पितृवनं न चौकसो
न गोपनं दारुतृणौघसङ्ग्रहः।
यानं यमाशां ग्रथनं न रज्जुभि-
र्भपञ्चकेऽस्मिन्विदधीत शायनम्॥

अर्थात् धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्रोंमें (मृतशरीर, शव)-को श्मशान नहीं ले जाना चाहिये। गृहका छादन, लकड़ीका संग्रह, दक्षिण दिशामें यात्रा तथा रस्सीसे चारपाईकी बुनाई नहीं करनी चाहिये।

मुहूर्तमार्तण्ड (८।४)-में कहा गया है—

'प्रेतज्वालनशय्यकावितनने स्तम्भोच्छ्रयं याम्यदिक्
यानं काष्ठतृणोच्चयं परिहरेत्कुम्भद्वयस्थे विधौ।'

चन्द्रमा कुम्भ और मीनमें हो तो अर्थात् धनिष्ठासे रेवतीतक ५ नक्षत्रोंमें शवका जलाना, शय्या (खाट, चटाई, पलंग आदि)-का बीनना, घरमें स्तम्भ आदि गाड़ना, दक्षिण दिशाकी यात्रा, लकड़ी, जलावन, तृण आदिका संग्रह सर्वथा त्याज्य है।

इन पाँच नक्षत्रोंमें मृत्यु होनेपर दोषनिवारणार्थ शान्ति करनेका विधान है, जिसे पंचकशान्ति कहा जाता है। निर्णयसिन्धु और धर्मसिन्धुके आधारपर विशेष बात यह बतायी गयी है कि यदि मृत्यु पंचकके पूर्व हो गयी हो और दाह पंचकमें होना हो तो पुत्तलदाहका विधान (पुत्तलदाह) करे, शान्तिकर्म करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। इसके विपरीत यदि पंचकमें मृत्यु हो गयी हो और दाह पंचकके बाद हुआ हो तो पंचकशान्तिकर्म करना चाहिये।[1] यदि मृत्यु भी पंचकमें हुई हो और दाह-कर्म भी पंचकमें हुआ हो तो पुत्तलदाह तथा शान्ति—दोनों कर्म करे। पंचकशान्ति इसलिये भी आवश्यक है कि इसका प्रभाव पारिवारिक लोगोंपर भी पड़ता है। पंचकशान्ति सूतकान्तमें बारहवें दिन, तेरहवें दिन या धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्रोंमें करनी चाहिये।[2] पंचकमें मरण होनेपर पुत्तलदाहका विधान है, जो इस प्रकार है—

यदि कोई पंचकमें मर जाता है तो वह वंशजोंको भी मार डालता है। त्रिपुष्कर और भरणी नक्षत्रसे भी यही अनर्थ प्राप्त होता है, ऐसी स्थितिमें अनिष्टके निवारणके लिये कुशोंकी पाँच प्रतिमा (पुत्तल) बनाकर सूत्रसे वेष्टितकर जौके आटेकी पीठीसे उसका लेपनकर उन प्रतिमाओंके साथ शवका दाह करे। पुत्तलोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—प्रेतवाह, प्रेतसखा, प्रेतप, प्रेतभूमिप तथा प्रेतहर्ता।[3]

पुत्तलदाहका संकल्प—**अद्य ·····शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहम् ·····गोत्रस्य (·····गोत्रायाः) ·····प्रेतस्य (·····प्रेतायाः) धनिष्ठादिपञ्चकजनितवंशानिष्टपरि-**

---

१. नक्षत्रान्तरे मृतस्य पञ्चके दाहप्राप्तौ पुत्तलविधिरेव न शान्तिकम्। पञ्चकमृतस्याश्विन्यां दाहप्राप्तौ शान्तिकमेव न पुत्तलविधिः। (धर्मसिन्धु, उ० परि० ३)

२. पंचकशान्तिकी विधि गीताप्रेससे प्रकाशित 'अन्त्यकर्मश्राद्धप्रकाश' में दी गयी है।

३. धनिष्ठापञ्चके जीवो मृतो यदि कथञ्चन। त्रिपुष्करे याम्यभे वा कुलजान् मारयेद् ध्रुवम्॥
तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते। दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः॥
यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत्। प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः॥
प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु नामान्येतानि च क्रमात्। (ब्रह्मपुराण)

हारार्थं पञ्चकविधिं करिष्ये।—ऐसा संकल्पकर पाँचों पुतलोंका निम्न रीतिसे पूजन करे—

प्रेतवाहाय नमः, प्रेतसखाय नमः, प्रेतपाय नमः, प्रेतभूमिपाय नमः, प्रेतहर्त्रे नमः। इमानि गन्धाक्षतपुष्पधूपदीपादीनि वस्तूनि युष्मभ्यं मया दीयन्ते युष्माकमुपतिष्ठन्ताम्।

—ऐसा बोलकर पाँचों प्रेतोंको गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप तथा दीप आदि वस्तुएँ प्रदानकर उनका पूजन करे।

पूजनके बाद प्रेतवाह नामक पहले पुतलेको शवके सिरपर, दूसरेको नेत्रोंपर, तीसरेको बायीं कोखपर, चौथेको नाभिपर और पाँचवेंको पैरोंपर रखकर ऊपर लिखे नाममन्त्रोंसे क्रमपूर्वक पाँचोंपर घीकी आहुति दे। जैसे—**(१) प्रेतवाहाय स्वाहा, (२) प्रेतसखाय स्वाहा, (३) प्रेतपाय स्वाहा, (४) प्रेतभूमिपाय स्वाहा** और **(५) प्रेतहर्त्रे स्वाहा।**

इसके बाद शवका दाह करे।

सूर्य-चन्द्रग्रहण-विमर्श

ग्रहण आकाशीय अद्भुत चमत्कृतिका अनोखा दृश्य है। उससे अश्रुतपूर्व, अद्भुत ज्योतिष्क-ज्ञान और ग्रह-उपग्रहोंकी गतिविधि एवं स्वरूपका परिस्फुट परिचय प्राप्त हुआ है। ग्रहोंकी दुनियाकी यह घटना भारतीय मनीषियोंको अत्यन्त प्राचीनकालसे अभिज्ञात रही है और इसपर धार्मिक तथा वैज्ञानिक विवेचन धार्मिक ग्रन्थों और ज्योतिष-ग्रन्थोंमें होता चला आया है। महर्षि अत्रिमुनि ग्रहण-ज्ञानके उपज्ञ (प्रथम ज्ञाता) आचार्य थे। ऋग्वेदीय प्रकाशकालसे ग्रहणके ऊपर अध्ययन, मनन और स्थापन होते चले आये हैं। गणितके बलपर ग्रहणका पूर्ण पर्यवेक्षण प्रायः पर्यवसित हो चुका है, जिसमें वैज्ञानिकोंका योगदान भी सर्वथा स्तुत्य है।

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें यह चामत्कारिक वर्णन मिलता है कि 'हे सूर्य! असुर राहुने आपपर आक्रमण करके अन्धकारसे जो आपको विद्ध कर दिया—ढक दिया, उससे मनुष्य आपके (सूर्यके) रूप (मण्डल)-को समग्रतासे देख नहीं पाये और (अतएव) अपने-अपने कार्यक्षेत्रोंमें हतप्रभ (ठप)-से हो गये। तब महर्षि अत्रिने अपने अर्जित सामर्थ्यसे अनेक मन्त्रोंद्वारा (अथवा चौथे मन्त्र या यन्त्रसे) मायांश (छाया)-का अपनोदन (दूरीकरण)-कर सूर्यका समुद्धार किया।'

यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥
स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया
अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन
तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः॥

(ऋक्० ५।४०।५-६)

अगले एक मन्त्रमें यह आता है कि 'इन्द्रने अत्रिकी सहायतासे ही राहुकी मायासे सूर्यकी रक्षा की थी।' इसी प्रकार ग्रहणके निरसनमें समर्थ महर्षि अत्रिके तपःसन्धानसे समुद्भूत अलौकिक प्रभावोंका वर्णन वेदके अनेक मन्त्रोंमें प्राप्त होता है।[1] किंतु महर्षि अत्रि किस अद्भुत सामर्थ्यसे इस अलौकिक कार्यमें दक्ष माने गये, इस विषयमें दो मत हैं—प्रथम परम्परा-प्राप्त यह मत कि वे इस कार्यमें तपस्याके प्रभावसे समर्थ हुए और दूसरा यह कि वे कोई नया यन्त्र बनाकर उसकी सहायतासे ग्रहणसे उन्मुक्त हुए सूर्यको दिखलानेमें समर्थ हुए।[2] यही कारण है कि महर्षि अत्रि ही भारतीयोंमें ग्रहणके प्रथम आचार्य (उपज्ञ) माने गये। सुतरां इससे

१. द्रष्टव्य—५।४०।७—९ तकके मन्त्र।

२. पहला मत सायणप्रभृति वेद-भाष्यकारोंके संकेतानुसार परम्पराप्राप्त है और दूसरा मत वेदमहार्णव पं० मधुसूदनजी ओझाका है, जिसे उन्होंने अपने 'अत्रिख्याति' नामक ग्रन्थमें प्रतिष्ठित किया है।

स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीनकालमें भारतीय सूर्यग्रहणके विषयमें पूर्णतः अभिज्ञ थे।

मध्ययुगीन ज्योतिर्विज्ञानके उच्चतम आचार्य भास्कराचार्य प्रभृतिने सूर्यग्रहणका समीचीन विवेचन प्रस्तुत किया है तथा उसके अनुसन्धानकी विशिष्ट प्रणाली भी प्रदर्शित की है, किंतु इस आकाशीय चमत्कृतिके लिये प्रयासका पर्यवसान उन्होंने भी वेद-पुराण जाननेवालोंके माध्यमसे ग्रहणकालमें जप, दान, हवन, श्राद्धादिके बहुफलक होनेकी फलश्रुतिमें करते हुए भारतकी अन्तरात्मा—धर्मको ही पुरस्कृत किया है—

बहुफलं जपदानहुतादिके
श्रुतिपुराणविदः प्रवदन्ति हि।

आधुनिक पाश्चात्य खगोलशास्त्रियों (वियद्-विज्ञानियों)-ने भी अटूट श्रमकर विषय-वस्तुको बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है, किंतु उनका ध्येय ग्रहणके तीन प्रयोजनोंमेंसे तीसरा प्रयोजन—सूर्य-चन्द्रमाके बिम्बोंका भौतिक एवं रासायनिक अन्वेषण-विश्लेषण ही है। वे धार्मिक महत्त्वको तथा लोगोंमें कौतूहलजनक उसके चमत्कारको उतनी उच्च मान्यता नहीं देते हैं। यहाँ हम संक्षेपमें सूर्य-चन्द्रग्रहणोंका सामान्य परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

आकाशीय तेजस्वी ज्योतिष्कपिण्डोंके सामने जब कोई अप्रकाशित अपारदर्शक पदार्थ आ जाता है, तब उस तेजस्वी ज्योतिष्कपिण्डका प्रकाश उस अपारदर्शक पदार्थ-भागके कारण छिप जाता है और दूसरे पारवालोंके लिये छाया बन जाती है। यही छाया उपराग या 'ग्रहण' का रूप ग्रहण कर लेती है।

चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह और अपारदर्शक हैं, जो स्वतः प्रकाशक न होनेके कारण अप्रकाशित पिण्ड हैं। अण्डेके आकारवाले अपने भ्रमण-पथ (अक्ष)-पर घूमते हुए वे सूर्यकी परिक्रमा करती हुई पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं।[1] वे कभी पृथ्वीके पास और कभी इससे दूर रहते हैं। उनका कम-से-कम अन्तर १,२१,००० मील और अधिक-से-अधिक २,५३,००० मील होता है। अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए चन्द्रमा अमावास्याको सूर्य और पृथ्वीके बीचमें आ जाते हैं और कभी-कभी (जब तीनों बिलकुल सीधमें होते हैं, तब) सूर्यके प्रकाशको ढक लेते हैं—हमारे लिये उसे मेघकी भाँति रोक देते हैं, जिससे सूर्योपराग अर्थात् सूर्यग्रहण हो जाता है।[2] जब वे पृथ्वीके पास हों और राहु या केतुबिन्दुपर हों,[3] तब उनकी परछाईं पृथ्वीपर पड़ती है। पास होनेके कारण उनका बिम्ब बड़ा होता है, जिससे हमारे लिये सूर्य पूर्णतः ढक जाते हैं और तब हम पूर्ण सूर्यग्रहण कहते हैं। उस समय चन्द्रमाका अप्रकाशित भाग हमारी ओर होता है और उसकी घनी और हलकी परछाईं पृथ्वीपर पड़ती है। सूर्य पृथ्वीके जितने भागपर घनी छाया (प्रच्छाया) रहनेसे दिखलायी नहीं देते, उतने भागपर सूर्यका सर्वग्रास (खग्रास) सूर्यग्रहण होता है और जिस भागपर कम परछाईं (उपच्छाया) पड़ती है, उसपर सूर्यका खण्डग्रास होता है। निष्कर्ष यह कि सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी—तीनों जब एक सीधमें नहीं होते

१. चन्द्रमाकी अपने कक्षकी एक परिक्रमा २७ दिन ७ घंटे ४३ मिनट और १२ सेकण्डमें होती रहती है।

२. सिद्धान्तशिरोमणि (गो० ग्र० वा० १)-में भास्कराचार्यने इस स्थितिका निरूपण निम्नांकित श्लोकमें किया है—

पश्चाद् भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रो भानोर्बिम्बं स्फुरदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या।
पश्चात् स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात् एव क्वापि च्छन्नः क्वचिदपिहितो नैष कक्षान्तरत्वात्॥

३. ज्योतिषीको किसी असुरके शरीरमें दिलचस्पी (स्पृहा) नहीं है। उसके लिये तो राहु और केतुका दूसरा ही अर्थ है। जिस मार्गपर पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है या यों कहिये कि सूर्य पृथ्वीकी परिक्रमा करता है, वह क्रान्तिवृत्त एवं चन्द्रमाका पृथ्वीके चारों ओरका मार्ग-वृत्त (अक्ष)—ये दोनों जिन बिन्दुओंपर एक-दूसरेको काटते हैं, उनमेंसे एकका नाम 'राहु' और दूसरेका 'केतु' है, (—ग्रहनक्षत्र) [आकाशमें उत्तरकी ओर बढ़ते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यको काटती है, तब उस सम्पात-बिन्दुको राहु और दक्षिणकी ओर नीचे उतरते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यकी कक्षाको पार करती है, तब उस सम्पात-बिन्दुको केतु कहते हैं।]

अर्थात् चन्द्र ठीक राहु या केतुबिन्दुपर न होकर कुछ ऊँचे या नीचे होते हैं, तब सूर्यका खण्ड-ग्रहण होता है और जब चन्द्रमा दूर होते हैं, तब उनकी परछाईं पृथ्वीपर नहीं पड़ती तथा वे छोटे दिखलायी पड़ते हैं—उनके बिम्बके छोटे होनेसे सूर्यका मध्यभाग ही ढकता है, जिससे चारों ओर कंकणाकार सूर्य-प्रकाश दिखलायी पड़ता है। इस प्रकारके ग्रहणको कंकणाकार या वलयाकार सूर्यग्रहण कहते हैं। पूर्ण सूर्यग्रहणको 'खग्रास' और अपूर्णको 'खण्डग्रास' भी कहा जाता है। सूर्यग्रहण मुख्यतः तीन प्रकारके होते हैं—(१) सर्वग्रास या खग्रास—जो सम्पूर्ण सूर्य-बिम्बको ढकनेवाला होता है, (२) कंकणाकार या वलयाकार—जो सूर्य-बिम्बके बीचका भाग ढकता है तथा (३) खण्ड-ग्रहण—जो सूर्य-बिम्बके अंशको ही ढकता है। इनकी निम्नांकित परिस्थितियाँ होती हैं—

(१) खग्रास सूर्य-ग्रहण तब होता है, जब (क) अमावास्या[१] हो, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु-बिन्दुपर हो और (ग) पृथ्वी-समीप बिन्दुपर हो। इस प्रकारकी स्थितिमें चन्द्रमाकी गहरी छाया जितने स्थानोंपर पड़ती है, उतने स्थानोंपर खग्रास ग्रहण दृग्गोचर होता है, उतने स्थानोंपर हलकी परछाईं पड़ती है, उतने स्थानोंपर खण्डग्रास ग्रहण होता है और जहाँ वे दोनों परछाइयाँ नहीं होतीं, वहाँ ग्रहण ही नहीं दीखता है। इसलिये ग्रहण लिखते समय ग्रहणके स्थानों एवं प्रकारको भी सूचित करना पंचांगकी प्रक्रिया है।

(२) कंकणाकार अथवा वलयाकार सूर्य-ग्रहण तब होता है जब—(क) अमावास्या होती है, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतुबिन्दुपर होते हैं तथा चन्द्रमा पृथ्वीसे दूर बिन्दुपर होते हैं।

(३) खण्डित ग्रहण तब होता है जब—(क) अमावास्या होती है, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु-बिन्दुपर न होकर उनमेंसे किसी एकके समीप होते हैं।

चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण पूर्णिमाको होता है—जबकि सूर्य और चन्द्रमाके बीच पृथ्वी होती है और तीनों—सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा—बिलकुल सीधमें, एक सरल रेखामें होते हैं। पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमाके बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें होकर गुजरते हैं, तब चन्द्रग्रहण होता है—पृथ्वीकी वह छाया चन्द्रमण्डलको ढक देती है, जिससे चन्द्रमामें काला मण्डल दिखलायी पड़ता है। वही चन्द्रग्रहण कहा जाता है। सूर्य और चन्द्रमाके बीचसे गुजरनेवाली पृथ्वीकी बायीं ओर आधे भागपर रहनेवाले मनुष्योंको चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है।

सूर्यबिम्बके बहुत बड़े होने तथा पृथ्वीके छोटे होनेके कारण पृथ्वीकी परछाईं हमारी परछाईंकी भाँति न होकर काले ठोस शंकुके समान—सूच्याकार होती है और चन्द्र-कक्षाको पारकर बहुत दूरतक निकल जाती है।[२] आकाशमें फैली हुई पृथ्वीकी यह छाया लगभग ८,५७,००० मील लम्बी होती है। इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्यके बीचकी दूरीपर निर्भर होती है, अतः यह छाया घटती-बढ़ती रहती है। इसीलिये यह परछाईं कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है। शंकु-सदृश इस प्रच्छायाके साथ ही शंकुके ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है। चन्द्रमा अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए जब पृथ्वीकी उपच्छायामें पहुँचते हैं, तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छायाके समीप आ जाते हैं, त्यों ही उनपर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छायाके भीतर आ जाता है, तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णग्रास चन्द्रग्रहण लग जाता है। इसे

---

१. द्रष्टव्य—कमलाकरका निम्नांकित श्लोक—

अथात्र भाद्यावयवेन तुल्यौ यत्कालिकौ सूर्यविधू स्फुटौ स्तः। अमान्तसंज्ञोऽस्ति स एव विज्ञैरर्कग्रहार्थं प्रथमं प्रसाध्यः॥

(सिद्धान्त तत्त्वविवेक सूर्य-ग्रहणाधिकार ५)

२. भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुत्वात्पृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा। दीर्घतया शक्तिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता॥ (भास्कराचार्य)

हम ज्योतिषके दृष्टिकोणसे और स्पष्टतासे समझें।

रात्रिमें दिखलायी देनेवाला अन्धकार पृथ्वीकी छाया है। यह छाया जब चन्द्रमापर पड़ जाती है, तब चन्द्रमापर ग्रहण लगा कहा जाता है। चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह हैं, अत: वे पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी यत: सूर्यकी परिक्रमा करती है, अत: पृथ्वी भी एक ग्रह है। दोनोंके भ्रमण-क्रम कुछ ऐसे हैं कि पूर्णिमाको पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमाके बीच हो जाती है। उसकी छाया शंकुवत् होती है। जब वह छाया चन्द्रमापर पड़ जाती है अथवा यों कहिये कि चन्द्रमा अपनी गतिके कारण पृथ्वीके छाया-शंकुमें प्रविष्ट हो जाते हैं, तब कभी सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल ढक जाता है और कभी उसका कुछ अंश ही ढकता है। सम्पूर्ण चन्द्रके ढकनेकी अवस्थामें सर्वग्रास चन्द्रग्रहण और अंशत: ढकनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है, परंतु यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रत्येक पूर्णिमाको उपर्युक्त ग्रह-स्थितिके नियत रहनेपर प्रत्येक पूर्णिमाको ग्रहण क्यों नहीं लगता? इसका समाधान यह है कि पृथ्वी और चन्द्रमाके मार्ग एक सतहमें नहीं हैं। वे एक-दूसरेके साथ पाँच अंशका कोण बनाते हैं, जिससे ग्रहणका अवसर प्रतिपूर्णिमाको नहीं होता है। (एक सतहमें दोनोंके भ्रमण-पथ होते तो अवश्य ही प्रति पूर्णिमा और अमावास्याको चन्द्र-सूर्यग्रहण होते।) बात यह है कि चन्द्रमाकी कक्षा पृथ्वीकी कक्षासे ५८ अंशके कोणपर झुकी हुई है और यह भी है कि चन्द्रमाकी पातरेखा चल है। पातरेखाकी परिक्रमाका समय प्राय: १८ वर्ष ११ दिन है। इस अवधिके बाद ग्रहणोंके क्रमकी पुनरावृत्ति होती है। इस समयको 'चन्द्रकक्ष' कहा जाता है।

भारतके प्रसिद्ध ज्योतिषी स्व० श्रीबापूदेवजी शास्त्रीने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रको लिखे अपने एक पत्रमें लिखा था कि सूर्यके अस्त हो जानेपर रात्रिमें जो अन्धकार दीखता है, वही पृथ्वीकी छाया है। पृथ्वी गोलाकार है और सूर्यसे बहुत छोटी है, इसलिये उसकी छाया सूच्याकार काले ठोस शंकुके आकारकी होती है। यह अवकाशमें चन्द्रमाके भ्रमण-मार्गको लाँघकर बहुत दूरतक सदा सूर्यसे छ: राशिके अन्तरपर रहती है। पूर्णिमाके अन्तमें चन्द्रमा भी सूर्यसे छ: राशिके अन्तरपर रहते हैं। इसलिये पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा जिस पूर्णिमाको पृथ्वीकी छायामें आ जाते हैं अर्थात् पृथ्वीकी छाया चन्द्रमाके बिम्बपर पड़ती है, उसी पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण होता है और जो छाया चन्द्रमापर दिखायी पड़ती है, वही ग्रास कहलाती है। पौराणिक श्रुति प्रसिद्ध है कि 'राहु नामक एक दैत्य चन्द्रग्रहणकालमें पृथ्वीकी छायामें प्रवेशकर चन्द्रमाको पीड़ा पहुँचाता है। इसलिये लोकमें राहुकृतग्रहण कहलाता है और उस कालमें स्नान, दान, जप, होम करनेसे राहुकृत पीड़ा दूर होती है तथा पुण्यलाभ होता है।'

'चन्द्रग्रहणका सम्भव भूच्छायाके कारण प्रति पूर्णिमाके अन्तमें होता है और उस समयमें केतु और सूर्य साथ रहते हैं, परंतु केतु और सूर्यका योग यदि नियत संख्याके अर्थात् पाँच राशि सोलह अंशसे लेकर छ: राशि चौदह अंशके अथवा ग्यारह राशि सोलह अंशसे लेकर बारह राशि चौदह अंशके भीतर होता है, तभी ग्रहण लगता है और यदि योग नियत संख्याके बाहर पड़ जाता है तो ग्रहण नहीं होता।'

यह प्रकारान्तरसे कहा जा चुका है कि पृथ्वीके मध्य-बिन्दुके क्रान्तिवृत्तकी सतहमें होनेसे पृथ्वी वर्णित पूर्णिमामें सूर्यका प्रकाश चन्द्रमापर नहीं पड़ने देती, जिससे उसकी छायाके कारण चन्द्रमाका तेज कम हो जाता है। ऐसी स्थिति राहु और केतु-बिन्दुपर या उनके समीप—कुछ ऊपर या नीचे—चन्द्रमाके होनेपर ही आती है। यह भी कहा जा चुका है कि चन्द्रमाके राहु-केतुबिन्दुपर होनेपर ही पूर्ण चन्द्रग्रहण होता है और उनके समीप होनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् चन्द्रमाके कुछ भागका प्रकाश कम हो जाता है, जिससे वे निस्तेज प्रतीत होने लगते हैं, पर बिलकुल काले नहीं

होते। हाँ, वे जब गहरी छाया (प्रच्छाया)-में आ जाते हैं, तब काले होने लगते हैं। फिर भी वे पूर्णत: अदृश्य न होकर कुछ लालिमा लिये हुए ताँबेके रंगके दृष्टिगोचर होते हैं; क्योंकि सूर्यकी रक्तिम किरणें पृथ्वीके वायुमण्डलद्वारा नीलांशशोषित होनेपर परिवर्तित होकर चन्द्रमातक पहुँच जाती हैं। इसी कारण हम पूर्ण चन्द्रग्रहणके समय भी चन्द्रमण्डलको देख सकते हैं।

ग्रहण-कालकी अवधि—ग्रहण-कालकी अवधि चन्द्रमा और पृथ्वीकी दूरीके ऊपर निर्भर होती है। कभी पृथ्वीकी छाया उस स्थानपर चन्द्रमाके व्याससे तिगुनीसे भी अधिक हो जाती है, जहाँ चन्द्रमा उसे पार करते हैं। छायाकी चौड़ाई इस स्थानपर जितनी अधिक होती है, उतनी ही अधिक अवधितक चन्द्रग्रहण रहता है। पूर्ण चन्द्रग्रहणकी अवधि प्राय: दो घंटोंतक और ग्रहणका सम्पूर्ण समय चार घंटोंतकका हो सकता है। चन्द्रमण्डलकी ग्रस्तताके अनुसार खण्ड-चन्द्रग्रहण अथवा पूर्ण चन्द्रग्रहण (खग्रास चन्द्रग्रहण) कहा-सुना जाता है। इसी प्रकार 'चन्द्रोपराग' भी शास्त्रीय चर्चामें व्यवहृत होता है।

खगोलशास्त्रियोंने गणितसे निश्चित किया है कि १८ वर्ष १८ दिनोंकी अवधिमें ४१ सूर्यग्रहण और २९ चन्द्रग्रहण होते हैं। एक वर्षमें ५ सूर्यग्रहण तथा दो चन्द्रग्रहणतक होते हैं, किंतु एक वर्षमें दो सूर्यग्रहण तो होने ही चाहिये। हाँ, यदि किसी वर्ष दो ही ग्रहण हुए तो दोनों ही सूर्यग्रहण होंगे। यद्यपि वर्षभरमें ७ ग्रहणतक सम्भाव्य हैं तथापि चारसे अधिक ग्रहण बहुत कम देखनेमें आते हैं। प्रत्येक ग्रहण १८ वर्ष ११ दिन बीत जानेपर पुन: होता है, किंतु वह अपने पहलेके स्थानमें ही हो—यह निश्चित नहीं है; क्योंकि सम्पात-बिन्दु चल है।

साधारणतया सूर्यग्रहणकी अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक देखे जाते हैं, पर सच तो यह है कि चन्द्रग्रहणसे कहीं अधिक सूर्यग्रहण होते हैं। तीन चन्द्रग्रहणपर चार सूर्यग्रहणका अनुपात आता है। चन्द्रग्रहणोंके अधिक देखे जानेका कारण यह होता है कि वे पृथ्वीके आधेसे अधिक भागमें दिखलायी पड़ते हैं, जबकि सूर्यग्रहण पृथ्वीके बहुत थोड़े भागमें—प्राय: सौ मीलसे कम चौड़े और दो हजारसे तीन हजार मील लम्बे भूभागमें दिखलायी पड़ते हैं। बम्बईमें खग्रास सूर्यग्रहण हो तो सूरतमें खण्ड सूर्यग्रहण दिखायी देगा और अहमदाबादमें दिखायी ही नहीं पड़ेगा।

खग्रास चन्द्रग्रहण चार घंटोंतक दिखायी पड़ता है, जिनमें दो घंटोंतक चन्द्रमण्डल बहुत ही काला नजर आता है। खग्रास सूर्यग्रहण दो घंटोंतक रहता है, परंतु पूरा सूर्यमण्डल ८—१० मिनटोंतक ही घिरा रहता है और साधारणत: दो-ही-तीन मिनटतक गाढ़ा रहता है। उस समय रात्रि-जैसा दृश्य हो जाता है।

सूर्यका खग्रास ग्रहण दिव्य होता है। सूर्यके पूरी तरह ढकनेके पहले पृथ्वीका रंग बदल जाता है और यत्किंचित् भयका भी संचार होता है। चन्द्रमण्डल तेजीसे सूर्यबिम्बको ढक लेता है, जिससे अँधेरा छा जाता है। पशु-पक्षी भी विशेष परिस्थितिका अनुभवकर अपनी रक्षाका उपाय करने लगते हैं, परंतु आकाशकी भव्यता और उपयोगिता बढ़ जाती है। सूर्यके पार्श्व प्रान्तमें मनोरम दृश्य देखनेको मिलता है। उसके चारों ओर मोतीके समान स्वच्छ 'मुकुटावरण' दृग्गोचर होता है, जिसके तेजसे आँखोंमें चकाचौंध होने लगती है। उसके नीचेसे सूर्यकी लाल ज्वाला (प्रोन्नत ज्वाला) निकलती देख पड़ती है। उस समय उसके हल्के प्रकाशसे मनुष्योंके मुँह लाल वर्णके-से जान पड़ते हैं। किंतु यह दृश्य दो-चार मिनटतक ही दिखलायी पड़ता है, फिर अदृश्य हो जाता है। इस मनोज्ञ दिव्य दृश्यको देखनेके लिये दैवज्ञ ज्योतिषी और भौगोलिक दूर-दूरसे ज्ञान-पिपासा शान्त करनेकी प्रक्रियामें यन्त्रोंसे सज्ज होकर प्रयोगार्थ वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ पूर्ण सूर्यग्रहण (खग्रास सूर्यग्रहण) होता है।

ग्रहणसे ज्ञानार्जन—ज्ञानार्जन भी ग्रहणसे बहुत होता है। भारतके प्रसिद्ध प्राचीन ज्योतिषियों और धर्मशास्त्रियोंने ग्रहणके लोकपक्षीय धर्म्य-विचार भी

प्रस्तुत किये हैं। आचार्य आर्यभट और ब्रह्मगुप्तने लिखा है कि सूर्य और चन्द्रमाकी गतिकी अवगति ग्रहणसे ही हुई। हम गणितसे कह सकते हैं कि स्थान-विशेषमें कितनी अवधिमें कितने ग्रहण लग सकते हैं। उदाहरणार्थ—बम्बईमें वर्षभरमें प्रायः चार सूर्यग्रहण एवं दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। किंतु लगभग दो सौ वर्षोंके कालान्तरपर कुल मिलाकर सात ग्रहणोंका होना सम्भाव्य है, जिनमें चार सूर्यग्रहण और तीन चन्द्रग्रहण अथवा पाँच सूर्यग्रहण तथा दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। साधारणतः प्रतिवर्ष दो ग्रहणोंका होना अनिवार्य है। हाँ, इतना नियत है कि जिस वर्ष दो ही ग्रहण होते हैं, उस वर्ष दोनों ही सूर्यग्रहण ही होते हैं। गणितद्वारा आगामी हजारों वर्षोंके ग्रहणोंकी संख्या उनकी तिथि और ग्रहणकी अवधि ठीक-ठीक निकाली जा सकती है।

ग्रहण केवल सूर्य और चन्द्रमामें ही नहीं लगते, प्रत्युत अन्य ग्रहों, उपग्रहोंमें भी होते हैं, जिसके लिये विशेषकृत्य निर्धारित नहीं है। ग्रहों, उपग्रहोंकी गतिशीलताकी विशेष स्थितिमें एकसे अन्यके प्रकाशका आवरण हो जाना या छायासे उसका ढक जाना नितान्त सम्भव है, जो सूर्य-चन्द्रसे सम्बद्ध होनेपर ही 'ग्रहण' कहा जाता है।[1] पृथ्वीपर ग्रहणका प्रभाव होनेसे धार्मिक कृत्य—स्नान, दान, जपादिका विधान है।

ग्रहणके धार्मिक कृत्य—सूर्यग्रहणके बारह घंटे और चन्द्रग्रहणके नौ घंटे पहलेसे विधवा, यति, वैष्णव और विरक्तोंको भोजन नहीं करना चाहिये। बाल, वृद्ध, रोगी और पुत्रवान् गृहस्थके[2] लिये नियम अनिवार्य नहीं है। ग्रहण-कालमें शयन और शौचादि क्रिया भी निषिद्ध है। देवमूर्तिका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। सूर्यग्रहणमें पुष्कर और कुरुक्षेत्रके तथा चन्द्रग्रहणमें काशीके स्नान,[3] जप, दानादिका बहुत महत्त्व है। ग्रहणमें विहित श्राद्ध कच्चे अन्न या स्वर्णसे ही करनेका विधान है। श्राद्ध अवश्य ही करना चाहिये, अन्यथा नास्तिकतावश कीचड़में फँसी गायकी भाँति दुर्गतिमें पड़ना पड़ता है।[4]

जन्म-नक्षत्र अथवा अनिष्टफल देनेवाले नक्षत्रमें ग्रहण लगनेपर उसके दोषकी शान्तिके हेतु सूर्यग्रहणमें सोनेका और चन्द्रग्रहणमें चाँदीका बिम्ब तथा घोड़ा, गौ, भूमि, तिल एवं घीका यथाशक्ति दान देनेका महत्त्व शास्त्रोंमें प्रतिपादित है। भगवन्नाम-संकीर्तन और जप आदि तो सभीको करना ही चाहिये—

'सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्'

---

१. किंतु सूर्य-बुधका अन्तर्योग ग्रहण नहीं, 'अधिक्रमण' कहा जाता है। यह ग्रहण-जैसा ही होता है, जिसे सूर्यका 'भेदयोग' भी कहते हैं। बुध जब सूर्य और पृथ्वीकी सीधमेंसे गुजरते हैं तो सूर्यबिम्बपर छोटे-से कलंकके समान चलबिन्दु दिखलायी पड़ता है। ज्योतिषी इसे ग्रहण-जैसा कोई महत्त्व नहीं देते हैं, पर यह आकाशीय घटना दर्शनीय होती है। सूर्य-कलंकसे इसकी भिन्नता इसकी पूर्णतः गोलाई और शीघ्रगामितासे समझी जाती है। बुध सूर्यसे प्रायः साढ़े तीन करोड़ मीलपर रहते हैं।

निकटतर भूतमें ऐसा योग ६ नवम्बर सन् १९६० ई०को तथा शनिवार, ९ मई सन् १९७० ई०को हुआ था और भारत, चीन, रूस—एशिया, अफ्रीका, यूरोप, दक्षिणी अमेरिका, कुछ भागोंको छोड़कर उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जापान, ग्रीनलैण्ड फीलीफाइन आदि संसारके प्रायः सभी देशोंमें देखा गया था। ऐसा ही योग निकटतम भूतकाल ९ नवम्बर सन् १९७३ ई०में हुआ था तथा १२ नवम्बर सन् १९८६ ई०को भी हुआ था। ज्योतिषके संहिताग्रन्थोंमें ऐसे योगको अनिष्टकारी बताया गया है और सत्तापरिवर्तनमें नेतृत्वपरिवर्तन सम्भाव्य होता है। (बुध-सूर्यका बहिर्योग भी होता है—जब बुध-पृथ्वीके बीचमें सूर्य होते हैं।)

२. आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। पारणं चोपवासं च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही॥

पुत्रवान् गृहीके लिये रविवार, संक्रान्तिमें भी पारण तथा उपवास वर्जित है।

३. स्नानके लिये गरम जलकी अपेक्षा शीतजल, दूसरेके जलसे अपना जल, भूमिसे निकाले हुएकी अपेक्षा भूमिमें स्थित तालाबका और उससे झरनेका, उससे गंगाका और गंगासे समुद्रका जल अधिक पुण्यप्रद होता है।

४. सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने। अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पङ्के गौरिव सीदति॥ (महाभा०स०प० ७९)

आर्ष ज्योतिषकी गूढ़ विधि

[नाडीग्रन्थों और भृगुसंहिता आदिसे पाराशरहोराशास्त्रके अस्पष्ट अंशोंका सम्बन्ध]

(पं० श्रीविनयजी झा)

ज्योतिषके होराशास्त्रविषयपर उत्तर भारतमें भृगु-जैसे ऋषियोंके नामपर अनेक संहिता-ग्रन्थ और दक्षिण भारतमें विभिन्न नाडीग्रन्थ प्रचलित हैं, जिनमेंसे अधिकांशका प्रकाशन ही नहीं हुआ और जिनका हुआ भी है तो प्रायः अधूरा, अप्रामाणिक और भ्रान्त है। कुछ प्रकाशन तो जाली भी हैं, जिनमें कितना अंश असली और कितना नकली है, इसकी जाँचका भी प्रयास विधिवत् किसीने नहीं किया है; क्योंकि ऐसी किसी भी जाँचका आधार क्या हो, इसीका निर्णय नहीं हो पाया है। इन संहिता और नाडीग्रन्थोंकी रचना ज्योतिषशास्त्रके जिन सिद्धान्तोंके आधारपर की गयी थी, जबतक उनका प्रामाणिक तौरपर स्पष्टीकरण नहीं होता, तबतक ऐसी कोई समग्र जाँच सम्भव भी नहीं है। किसी एक लेखमें इन चमत्कारी आर्ष ग्रन्थोंकी समस्त अवधारणाओंका विवेचन सम्भव नहीं है और ऐसा कोई विवेचन पूर्ण तभी हो सकता है, जब ऐसे ग्रन्थोंकी समस्त बची-खुची पाण्डुलिपियोंका प्रकाशन हो जाय। आर्ष संहिताओंका पूर्ण स्पष्टीकरण तो कोई ऋषि ही कर सकते हैं, जो कलियुगमें सम्भव नहीं। अतः उक्त ग्रन्थोंमें प्रयुक्त केवल उन अवधारणाओंके सैद्धान्तिक आधारोंका स्पष्टीकरण प्रस्तुत लेखमें किया गया है, जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आधारभूत हैं तथा जिनका स्पष्टीकरण उपलब्ध तथ्योंके आधारपर सम्भव है।

पाराशरहोराशास्त्रमें दस हजारसे अधिक श्लोक थे, जिनमेंसे दो तिहाईसे अधिक अब उपलब्ध नहीं हैं। किंतु पाराशरहोराशास्त्रमें जो मौलिक अंश विद्यमान हैं, उनके आधारपर आज भी यह सिद्ध करना सम्भव है कि नाडीग्रन्थों और भृगुसंहिता-जैसे ग्रन्थोंका आधार पाराशरहोराशास्त्रके मौलिक सिद्धान्त हैं। सबसे पहले पाराशरहोराशास्त्रमें वर्णित षोडशवर्गोंको लें, जिनके आधारपर नाडीग्रन्थों और भृगुसंहिता-जैसे ग्रन्थोंकी रचना हुई।

षोडशवर्गोंकी विस्मृत आर्षविधि

राशिचक्रके सोलह प्रकारसे विभाग किये गये हैं, जो षोडशवर्ग कहलाते हैं। सबसे पहला लग्नकुण्डली कहलाता है, जिसमें पूरी राशिको एक ही विभाग माना जाता है, किंतु भावफलका आधार भावचलितचक्र होता है और राशिचक्र गणितीय गवेषणाओंके लिये प्रयुक्त होता है, जैसे कि मैत्री, दृष्टि, सम्बन्ध, षोडशवर्गोंकी गणना आदि।

अन्य पन्द्रह वर्गोंमें भावचलित बनानेका विधान नहीं है, केवल राशियोंका विधिपूर्वक विभाजन करना पड़ता है। जैसे कि होरावर्गमें प्रत्येक राशिके दो खण्ड किये जाते हैं, द्रेष्काणमें तीन, खवेदांशमें चालीस तथा अक्षवेदांशमें पैंतालीस भाग किये जाते हैं। चतुर्थांश, सप्तांश, नवांश, दशमांश, द्वादशांश, षोडशांश, विंशांश, चतुर्विंशांश, सप्तविंशांश तथा षष्ठ्यंश तो नामके अनुसार ही विभक्त किये जाते हैं। त्रिंशांशकी विशेष विधि है—प्रत्येक राशिके तीस भाग करनेपर एक-एक अंशके भाग प्राप्त होते हैं, जिन्हें पाँच समान समूहोंमें नियोजित किया जाता है। षोडशवर्गोंमें अनेक वर्ग ऐसे हैं, जिनमें सम राशियोंमें उलटे क्रमसे गणना करनेका आदेश है (**समभे ... विलोमेन विचिन्तयेत्, समराशौ विपर्ययात्, समभे व्यत्ययाज्ज्ञेयाः आदि**), किंतु सभी भाष्यकारोंने समराशियोंके देवताओंको तो उलटे क्रमसे दिखाया, परंतु वे जिन राशियोंके अधिष्ठाता हैं, उन राशियोंको सीधे क्रमसे दिखा दिया, जिस कारण देवता कहीं तो उनकी राशियाँ कहीं विस्थापित हो गयीं। भाष्यकारोंने केवल त्रिंशांशमें समराशियोंका सही

विभाजन दर्शाया है, जिसका कारण यह है कि त्रिंशांशमें विशिष्ट विधिका प्रयोग होनेके कारण त्रिंशांश बनानेकी परम्पराको बचाकर रखा गया और अन्य वर्गोंमें विभाजनकी विधि सरल होनेके कारण प्राचीन या मध्ययुगके किसी भी विद्वान्ने प्रकाश डालना आवश्यक नहीं समझा। बेचारोंको मालूम नहीं था कि ईसाकी बीसवीं शतीमें कैसे-कैसे भाष्यकार उत्पन्न होंगे, जो पाराशरहोराशास्त्रमें जिन बातोंका स्पष्ट निर्देश है, उनकी भी भ्रान्त व्याख्या करेंगे। इसका कारण यह है कि कलियुगमें अधिकांश लोगोंके लिये मानवजीवनके तीन ही महत्त्वपूर्ण लक्ष्य हैं—देहकी रक्षा एवं भोग-विलास, विवाह और धनका उपार्जन, जिस कारण लग्न (देह), नवांश (विवाह) और होरा (धन)-के अलावा अन्य वर्गोंको पूरी तरह भुला दिया गया। फल यह हुआ कि कालान्तरमें इन वर्गोंको बनाने और उनका प्रयोग करनेकी विधि भी लोग भूल गये। सबसे अधिक अन्याय तो होरावर्गके साथ हुआ, जिसमें केवल देवता पक्षको याद रखा गया और द्वादशभावोंकी होराकुण्डलीको भुला दिया गया, यद्यपि पाराशरहोराशास्त्रके वर्गविवेचनाध्यायमें पाराशरऋषिका स्पष्ट आदेश है कि षोडश वर्गोंमें लग्नकुण्डलीकी भाँति द्वादशभावोंके आधारपर फलादेश करना चाहिये। सभी वर्गोंमें देवताकी संख्या उस वर्गकी संख्याके तुल्य रहती है, जैसे कि होरामें दो और षष्ठ्यंशमें साठ, किंतु सभी वर्गोंमें भावोंकी संख्या बारहका ही आदेश पाराशर-ऋषिने दिया, जिसका पालन अब प्रायः नहीं होता। फलस्वरूप होराशास्त्र वस्तुतः होराविहीन शास्त्र बनकर रह गया। अचम्भेकी बात है कि पाराशरऋषिने होरा (**मेषादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत्**) और द्रेष्काण (**परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादेः क्रमशो भवेत्**) बनानेकी जो विधि बतलायी, उसमें एक-जैसी शब्दावलीका प्रयोग किया, केवल द्रेष्काणमें राशिके तीन विभागके स्थानपर होरामें राशिके दो विभाग करनेका अन्तर है, होरा और द्रेष्काण बनानेकी विधिमें अन्य कोई अन्तर नहीं है। परंतु एक भी भाष्यकारने होरावर्ग बनानेमें पाराशर-ऋषिके आदेशका पालन नहीं किया। यह सब कलियुगका प्रभाव है। सॉफ्टवेयर-निर्माताओंने भी भ्रान्त भाष्यकारोंका ही अनुसरण किया, स्वयं माथा खपानेकी चेष्टा नहीं की। केवल दो ज्योतिषीय सॉफ्टवेयर ऐसे हैं, जिनमें गलत और सही दोनों प्रकारोंसे षोडशवर्ग बनानेके विकल्प उपलब्ध हैं और ये दोनों सॉफ्टवेयर पूर्णतया निःशुल्क हैं—Kundalee तथा JHora (http://vedicastrology.wikidot.com/software-download)।

षोडशवर्गों एवं नाडीग्रन्थोंमें सम्बन्ध

अब नाडीग्रन्थोंमें प्रयुक्त 'नाडी' नामकी अवधारणाको लें। आजकल कहा जाता है कि पाराशरहोराशास्त्र-जैसे फलित ज्योतिषके मौलिक ग्रन्थोंसे भृगुसंहिता, रावणसंहिता या नाडीग्रन्थोंका कोई सम्बन्ध नहीं है, किंतु पाराशर-होराशास्त्रमें वर्णित षोडशवर्गोंसे ही नाडीग्रन्थोंमें प्रयुक्त 'नाडी' नामकी अवधारणा उत्पन्न हुई है—यह सिद्ध करना कठिन नहीं है।

प्राचीन ग्रन्थोंमें नाडी बनानेकी पद्धतिका स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, जिस कारण आधुनिक भाष्यकारोंको मनमानापन करनेकी छूट मिल गयी है। दक्षिण भारतमें चन्द्रकलानाडी नामक एक प्रसिद्ध नाडीग्रन्थ है, जिसे देवकेरलम् भी कहा जाता है। सन् १९९२ ईसवीमें सागर प्रकाशनने र० सन्तनम्‌द्वारा इस प्राचीन संकलन ग्रन्थका अँगरेजी अनुवाद प्रकाशित किया, जिसकी भूमिकामें सन्तनम् महोदयने लिखा कि सभी १५० नाडियाँ एक समान मानकी होती हैं। अपने मतकी पुष्टिमें सन्तनम् महोदयने किसी तर्क या उद्धरणकी आवश्यकता नहीं समझी। इन सोलह वर्गोंद्वारा किसी एक राशिके कुल कितने विभाग होते हैं, इसकी जाँच करें तो प्राचीन नाडीग्रन्थ बनानेकी

कुंजी मिल जायगी। उदाहरणार्थ, लग्नकुण्डलीमें राशिका एक ही भाग होता है, होरामें दो, द्रेष्काणमें तीन आदि। इस प्रकार सबको जोड़ें तो कुल २८५ विभाग बनते हैं (त्रिंशांशमें पाँच विभाग हैं), किंतु इनमेंसे १३५ की पुनरावृत्तियाँ हुई हैं, मौलिक विभाग केवल १५० हैं। इन्हींको नाडी ग्रन्थोंमें १५० नाडियाँ माना गया है और सभी नाडियोंका पृथक्-पृथक् नाम दिया गया है, यद्यपि विभिन्न प्राचीन ग्रन्थोंमें नामोंकी एकरूपता नहीं है। ये सभी विभाग समान नहीं हैं, कोई छोटा है तो कोई बड़ा। सन्तनम् महोदयको षोडशवर्गोंसे नाडियोंकी निष्पत्तिका ज्ञान नहीं था, जिस कारण उन्होंने कल्पना की कि सभी नाडियाँ एक समान मानकी होती हैं। नाडियोंकी निष्पत्तिका प्रमाण निम्नोक्त है—

षष्ठ्यंश वर्गमें प्रत्येक अर्धांशका एक खण्ड होता है। अतः लग्न, होरा, द्रेष्काण, चतुर्थांश, दशमांश, द्वादशांश, विंशांश तथा त्रिंशांशके समस्त ५७ खण्डोंका समावेश षष्ठ्यंशमें हो जाता है। जैसे कि द्वादशांशमें प्रत्येक ढाई अंशका एक खण्ड होता है, जो कि षष्ठ्यंशके पाँच खण्डोंके तुल्य होता है। इस प्रकार सोलह वर्गोंमेंसे उपर्युक्त नौ वर्गोंद्वारा राशिके कुल ६० खण्ड बनते हैं। नवांशके सभी नौ खण्डोंका समावेश सप्तविंशांशमें हो जाता है। अतः नवांशको छोड़कर शेष छः वर्गोंद्वारा ९० विशिष्ट खण्ड निम्नोक्त विधिद्वारा बनते हैं। सप्तांश वर्गमें एक राशिके सात विभाग होते हैं। सातवाँ विभाग तीसवें अंशपर होता है, जो लग्नवर्गके तुल्य है, किंतु सप्तांश वर्गके शेष छः विभाग विशिष्ट होते हैं, जिनकी पुनरावृत्ति किसी अन्य वर्गमें नहीं होती। शेष उपवर्गोंमें कुल ८४ विशिष्ट खण्ड होते हैं, जिनकी पुनरावृत्ति अन्य वर्गोंमें नहीं होती। इस प्रकार १६ वर्गोंमें कुल १५० विशिष्ट खण्ड होते हैं, जिन्हें 'नाडी' कहा जाता है।

संलग्नतालिकामें सभी १५० नाडियोंका अन्तबिन्दु दिया गया है। उदाहरणार्थ, द्वितीय नाडीका मान किसी भी राशिमें ०.५ अंशसे ०.६६६६७ अंशतक होता है।

0.5	6.25	12.5	18	24.375
0.66667	6.5	12.6667	18.5	24.4444
0.75	6.6667	12.75	18.6667	24.5
1	6.75	12.8571	18.75	24.6667
1.1111	7	13	18.8889	24.75
1.25	7.3333	13.125	19	25
1.3333	7.5	13.3333	19.3333	25.3333
1.5	7.7778	13.5	19.5	25.5
1.875	8	13.75	20	25.5555
2	8.25	14	20.25	25.71428
2.2222	8.5	14.25	20.5	26
2.25	8.5714	14.4444	20.625	26.25
2.5	8.6667	14.5	20.6667	26.5
2.6667	8.75	14.6667	21	26.6667
3	8.8889	15	21.1111	27
3.3333	9	15.3333	21.25	27.3333
3.5	9.3333	15.5	21.3333	27.5
3.75	9.375	15.5555	21.42857	27.75
4	9.5	15.75	21.5	27.7778
4.2857	9.75	16	21.75	28
4.4444	10	16.25	22	28.125
4.5	10.5	16.5	22.2222	28.5
4.6667	10.6667	16.6667	22.5	28.6667
5	11	16.875	22.6667	28.75
5.25	11.1111	17	23	28.8889
5.3333	11.25	17.1428	23.25	29
5.5	11.3333	17.25	23.3333	29.25
5.5555	11.5	17.3333	23.5	29.3333
5.625	12	17.5	23.75	29.5
6	12.2222	17.7778	24	30

कई नाडियाँ आधे अंशकी होती हैं, जबकि सबसे छोटी नाडी एक अंशके ३६वें भागकी ही होती हैं (२७.७५ से २७.७७७८ अंशतक)। इसका तात्पर्य है कि सबसे छोटी नाडीवाले ५८ लाखसे न्यून लोग संसारमें हैं, जबकि सबसे बड़ी नाडीमें जन्म लेनेवाले दस करोड़से अधिक हैं।

किसी व्यक्तिका लग्न और प्रत्येक ग्रहकी नाडियोंका सही निर्धारणका अर्थ यह है कि उस व्यक्तिके सभी १६ वर्ग शुद्ध रूपसे बन गये। नाडीके आधारपर फल-कथनका अर्थ यह है कि समस्त षोडशवर्गोंका सम्मिलित फल कहा जा रहा है। नाडी-ग्रन्थोंकी पद्धतिका निष्कर्ष यही है।

दक्षिण भारतमें एक प्रचलित विचार यह है कि नाडीके आधारपर फलादेश कहनेवाले ज्योतिषियोंको जन्मकालादि पूछे बिना फलकथन करना चाहिये, किंतु यह प्रश्नमार्ग है। नाडीकी परिभाषा ही जन्मकालके आधारपर लग्न एवं सभी ग्रहोंकी सही गणनापर आधारित है। लेकिन षोडशवर्गोंपर आधारित नाडीकी परिभाषा

अब लोग भूल गये हैं, जिस कारण नाडी-ज्योतिष और प्रश्नमार्गकी खिचड़ी बनने लगी है। ऐसी खिचड़ी बनानेसे लाभ ही है, बशर्ते सही पद्धतियोंका अनुसरण किया जाय। किंतु नुकसान भी है—नाडीकी सही परिभाषा भूलनेके कारण नाडी ग्रन्थोंमें जो फलादेश नहीं हैं, उनके बारेमें फलित सिद्धान्तके आधारपर स्वतन्त्र फलादेश करनेमें असमर्थता।

षोडशवर्गोंके प्रयोगकी विस्तृत विधि

षोडशवर्गोंके प्रयोगकी अनेक विधियाँ हैं, यद्यपि आजकल विरले ही उनका सही प्रयोग करते हैं।

पहली विधि है—किसी एक वर्गके आधारपर फल कहनेकी, जिसमें सबसे प्रचलित विधि केवल लग्नकुण्डलीपर आधारित है, जिसका अधिकांश ज्योतिषी प्रयोग करते हैं, किंतु आजकल प्रचलित विधि सन्तोषप्रद फलादेशमें समर्थ नहीं है। किसी एक ही वर्गके आधारपर समस्त फल कहनेकी आर्षविधि पराशरऋषिके शब्दोंमें 'कलियुगके मन्दबुद्धि' लोगोंके लिये नहीं है (आगे इस विधिका वर्णन है)। केवल नवांशद्वारा फलकथनका भी कहीं-कहीं प्रयोग होता है, जिसका संक्षिप्त उदाहरण है वृद्धारुणसूर्यसंवाद और बृहत् उदाहरण है रावणसंहिता, जो पूर्णरूपसे किसी एक स्थानपर उपलब्ध नहीं है, किंतु जन्मकालीन नवांशद्वारा भी समस्त फलादेश सम्भव नहीं है, रावणसंहिता-जैसे मूल ग्रन्थ प्रकाशित हो भी जायँ तो केवल उतना ही फल बतला पायेंगे, जितना उनमें पहलेसे लिखा है, जो उनमें नहीं है, वह फल स्पष्ट करनेकी कोई पद्धति ऐसे ग्रन्थ नहीं बतलाते; क्योंकि ये ग्रन्थ किस पद्धतिद्वारा बने हैं, यह कहीं भी स्पष्ट नहीं है। जबतक इन ग्रन्थोंका समग्र रूपसे प्रकाशन न हो जाय, तबतक इनकी पद्धतिकी जाँच सम्भव नहीं।

षोडशवर्गोंके प्रयोगकी दूसरी विधि है सभी वर्गोंका सम्मिलित फल कहनेकी, जिसपर अनेक नाडीग्रन्थोंका निर्माण हुआ है। किंतु उपलब्ध नाडीग्रन्थोंमें विभिन्न स्रोतोंसे अन्य विधियोंका भी समावेश कर लिया गया है। चन्द्रकलानाडी (देवकेरलम्) ८२०० श्लोकोंका विशाल ग्रन्थ है, जिसमें अनेक ऐसे श्लोक हैं, जिनकी शब्दावली चन्द्रकलानाडीकी नहीं है। पृथक्-पृथक् ग्रहोंके नामसे भी अनेक नाडीग्रन्थ सुलभ हैं। ध्रुवनाडी-सरीखे विशाल नाडी ग्रन्थ भी दक्षिण भारतमें बचे हुए हैं, जिनका प्रकाशन नहीं हो पाया है।

षोडशवर्गके प्रयोगकी तीसरी विधि है, विंशोत्तरी-जैसी दशाओंकी सहायतासे फल कहनेकी, जिसका प्रयोग आजकल केवल लग्नकुण्डलीपर ही किया जाता है, जबकि प्रत्येक वर्गमें चन्द्रनक्षत्रद्वारा उस वर्गकी विंशोत्तरी आदि समस्त नक्षत्राश्रित दशाएँ बनानी चाहिये और पराशरोक्त वर्गविंशोपकके आधारपर वर्गोंका परस्पर बल निर्धारित करते हुए कम-से-कम दो वर्गोंके आधारपर फलकथन करना चाहिये। लग्नकुण्डली और प्रासंगिक वर्ग, जैसे कि सन्तानहेतु सप्तमांश या वाहनहेतु षोडशांश। किंतु पाराशरहोराशास्त्रमें आदेश है कि विंशोत्तरी आदि दशाओंका फल दशारम्भकालीन कुण्डलीद्वारा देखना चाहिये, न कि जन्मकुण्डलीद्वारा (जन्मकुण्डलीसे तात्पर्य है लग्नकुण्डलीसहित समस्त षोडशवर्ग) जन्मकुण्डली पूरे जीवनका फल दिखाती है, जबकि दशारम्भकालीन कुण्डलीद्वारा दशाकालका फल पता चलता है। किंतु समस्या यह है कि दशारम्भ कुण्डली सही-सही बनानेके लिये जन्मकाल एक सेकण्डके सौवें हिस्सेतक शुद्ध होना चाहिये और यदि षष्ठ्यंशवर्गका दशारम्भचक्र बनाना हो तो एक सेकण्डके हजारवें हिस्सेतक जन्मकाल शुद्ध होना चाहिये। इसके लिये सूतिकागृहका विस्तृत विवरण, गर्भाधानसंस्कारद्वारा आधानकालका लग्न आदि लग्नशुद्धिके उपाय अनिवार्य हैं, जो वर्तमान युगमें लुप्त हैं। गर्भाधानसंस्कारका तो पूर्णतया लोप हो चुका है। दशारम्भचक्र बनानेकी वैकल्पिक विधि है, जीवनके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण

पंचदश घटनाओंकी जाँचद्वारा जन्मकालका परिशोधन, जो बिना कम्प्यूटर सॉफ्टवेयरके सम्भव नहीं और उचित सॉफ्टवेयर मिलनेपर भी अत्यधिक समयसाध्य है, किंतु यदि शुद्ध जन्मकाल ज्ञात करनेमें सफलता मिल जाय तो सम्पूर्ण जीवन स्पष्ट हो उठता है, ज्योतिषशास्त्रमें इससे श्रेष्ठ अन्य कोई विधि नहीं। यही पराशर-होराशास्त्रकी मुख्य विधि है, जिसका प्रथम भागमें विस्तृत वर्णन किया गया है। शुद्ध जन्मकाल ज्ञात हो जाय तो किसी एक ही वर्गके आधारपर समस्त फल कहना सम्भव है; क्योंकि सभी वर्गोंमें बारह भाव होते हैं, जो जीवनके हर क्षेत्रसे सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन प्रसंगानुसार वर्गका प्रयोग करें तो फल अधिक सूक्ष्म और शुद्ध मिलेगा। किसी परिवारमें एक व्यक्तिका दशारम्भचक्र शुद्ध बन जाय तो उसके द्वारा अन्य निकट सम्बन्धियोंका जन्मकाल ठीक-ठीक ज्ञात किया जा सकता है। न केवल पिताकी कुण्डलीसे सन्तानका जन्मकाल ज्ञात हो सकता है, अपितु सन्तानकी कुण्डलीसे पिताका जन्मकाल ज्ञात किया जा सकता है। ऐसा एक विस्तृत उदाहरण http://vedicastrology.wikidot.com/indira-gandhi वेबपृष्ठपर अनेक दशारम्भ कुण्डलियोंके द्वारा दर्शाया गया है।

षोडशवर्गके प्रयोगकी चौथी विधि है सुदर्शनचक्र, जिसमें अष्टवर्ग भी सहायक है। भृगुसंहिता और अनेक ऐसे ग्रन्थोंमें विंशोत्तरीके स्थानपर सुदर्शनचक्रीय वर्षफलद्वारा फलकालका निर्णय दिया गया है। पाराशरहोराशास्त्रोक्त सुदर्शनचक्रीय वर्षफलकी विधि ताजिक नीलकण्ठी-जैसे इसलामी प्रभाववाले ग्रन्थोंसे नितान्त भिन्न है। किंतु बिना विंशोत्तरीके सुदर्शनचक्रीय वर्षफलका प्रयोग अनुचित है; क्योंकि प्रत्येक बारह वर्षोंपर भावोंकी पुनरावृत्ति होती है, जबकि वास्तविक जीवनमें फलोंकी पुनरावृत्ति नहीं होती। अतः जन्मकाल-परिशोधनके अभावमें जन्म-कुण्डलीकी विंशोत्तरीद्वारा सुदर्शनचक्रीय वर्षफलके फलको सूक्ष्म किया जाना चाहिये। हम सभी 'कलियुगके मन्दबुद्धि' (पाराशरहोराशास्त्र) लोगोंके लिये पराशर-ऋषिकी कामचलाऊ विधि यही है। फलशुद्धिहेतु अष्टकवर्गकी सहायता लेनी चाहिये। सुदर्शनचक्रमें लग्नकुण्डली, सूर्यकुण्डली एवं चन्द्रकुण्डलीके सम्मिलित प्रयोगद्वारा फलादेश किया जाता है। फलकालका निर्धारण भावोंकी दशासे होता है, जो वर्षफल, मासफल, प्रत्यन्तरफल (ढाई सूर्यांश), सूक्ष्मफल और प्राणफलके रूपोंमें फल देते हैं। जन्मकालीन विंशोत्तरी एवं सूर्यसंचारके वर्षफलादिद्वारा सुदर्शनचक्रके फलको सूक्ष्म करना चाहिये। अधिक शुद्धिके लिये अष्टकवर्ग एवं गोचरका प्रयोग भी करना चाहिये। इन सबके सम्मिलित प्रयोगद्वारा फलकथन करनेपर त्रुटिकी सम्भावना अल्प रहती है। यह आर्ष ज्योतिषकी लाघव विधि (शार्टकट) है। किंतु आजकल इस लाघव विधिका भी प्रयोग शायद ही कोई करता है। मुख्य विधि (दशारम्भचक्र) तो और भी कठिन है, जिसमें एक जातककी सही कुण्डली बनानेमें कई सप्ताह लग सकते हैं। त्रिकालदर्शी दैवज्ञ बनना टेढ़ी खीर है।

भृगुसंहिताकी पद्धति

सर्वाधिक विस्तृत और सही फलादेशकी चमत्कारी विधि है महर्षि भृगुकी संहिता। सामान्यतः संहिता शब्दका प्रयोग होराशास्त्रहेतु नहीं होता, किंतु भृगुमहर्षिका होराशास्त्र अपने विशाल आकार और संहितात्मक पद्धतिके कारण 'संहिता' कहलाता है। सम्पूर्ण भृगुसंहिता एक स्थानपर कहीं भी उपलब्ध नहीं है। अनेक प्रान्तोंमें यह विभिन्न नामोंसे उपलब्ध है। कई नाडी ग्रन्थ भी वास्तवमें नाडीपद्धति एवं भृगुपद्धतिके मिश्रणसे बने हैं, जो उचित ही है; क्योंकि बिना नाडीपद्धतिके भृगुपद्धतिका कोई अर्थ ही नहीं है। वास्तवमें दोनों पृथक् नहीं हैं और इसके लिये सर्वाधिक उपयुक्त नाम होना चाहिये 'नाडीसंहितापद्धति'। भृगुसंहिताकी पद्धतिके अनुसार कुल कितने जातकोंका फलादेश संकलित ('संहिता')

करके रखा जा सकता है—इसकी गणना कठिन नहीं है। षोडशवर्गद्वारा बनी १५० नाडियोंमें आठ ग्रहोंका गमन हो सकता है (राहु और केतु एक साथ ही गृह बदल सकते हैं)। अत: कुल १५०^{८} अलग-अलग जातकोंकी कुण्डलियाँ सम्भव हैं, जिनमें कोई-न-कोई वर्ग विशिष्ट रहेगा अर्थात् किन्हीं भी दो जातकोंके सभी सोलह वर्ग समान नहीं रहेंगे। १५०^{८}को ८४ लाखसे भाग दें तो मानवयोनिमें जन्म लेनेवाले प्राणियोंकी अधिकतम संख्या प्राप्त होगी जो ३०५१ करोड़ छ: लाख है। यह वास्तविक संख्या नहीं, अधिकतम गणितीय सीमा है। जीवात्माका कारण-शरीरसे सम्बन्ध ही कर्मफल भोगनेके लिये बारंबार जन्मका निमित्त है। सांख्यानुसार कारण-शरीर १३ करणोंसे बनता है, बुद्धि, अहंकार, मन नामके ३ अन्त:करण तथा पंच कर्मेन्द्रियों और पंच ज्ञानेन्द्रियोंके दस बाह्यकरण। जिस प्रकार १३ वर्णोंकी किसी वर्णमालाद्वारा कुल कितने शब्द बन सकते हैं, उसी विधिद्वारा यह गणना की जा सकती है कि किसी एक योनिमें अधिकतम सम्भव कितने प्राणी हो सकते हैं। यह संख्या है १३ का फैक्टोरियल (=१३ !=१×२×३×४×५×६×७×८×९×१०×११×१२×१३=६२२७०२०८०० अर्थात् ६२२ करोड़ ७० लाख २० हजार ८ सौ)। किसी भी योनिमें किसी एक कालमें इससे अधिक प्राणी नहीं हो सकते (आजकल मानव-जनसंख्या सात अरब पहुँचनेकी अटकलबाजी लगायी जा रही है, किंतु जनसंख्या वृद्धिदरमें अचानक गिरावट आयी है और अब वृद्धि सम्भव नहीं है, यह कुछ ही वर्षोंमें स्पष्ट हो जायगा)। इससे अलग १४ फैक्टोरियल ८७१८ करोड़ है, जिसका भार पृथ्वी नहीं सहन कर सकती। नाडी गणितद्वारा जो ३०५१ करोड छ: लाखकी अधिकतम गणितीय सीमा प्राप्त हुई थी, वह भी इंगित करती है कि किसी एक योनिमें प्राणियोंकी वास्तविक संख्या १३! से अधिक नहीं होनी चाहिये; क्योंकि १४! की संख्या नाडियों और ग्रहोंकी संख्यासे अधिक हो जायगी, जो सम्भव नहीं है। इसका अर्थ है कि यदि इतने मनुष्योंकी कुण्डली और फलादेश बनाकर रख लें तो प्रत्येक युग और प्रत्येक सृष्टिमें सभी मनुष्योंका ज्योतिषीय फलादेश उन कुण्डलियोंके आधारपर किया जा सकता है—यही भृगुसंहिता-जैसे ग्रन्थोंका सैद्धान्तिक आधार है। जिस प्रकार ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्टपर अरबों डालर खर्चे जा रहे हैं, उसी प्रकार ह्यूमन बर्थडाटा प्रोजेक्टकी आवश्यकता है, जिसमें हजारों गुना न्यून धन ही व्यय होगा। अभी मानवोंकी जनसंख्या अधिकतम सीमापर है। सभी व्यक्तियोंके नाम, जन्मकाल, जन्मस्थान और जीवनकी प्रमुख घटनाओंका डाटाबेस तैयार कर लिया जाय तो सभी युगोंके लिये सम्पूर्ण भृगुसंहिता बनानेका ठोस आधार प्राप्त हो जायगा।

भृगुपद्धतिका आधार पाराशरहोराशास्त्रके नियम ही हैं, यह दर्शानेके कई प्रमाण हैं। उदाहरणार्थ, भृगुसंहितामें विंशोत्तरीके स्थानपर वार्षिक आधारपर फलकथनका प्रावधान है। इस आधारपर एकाध आधुनिक लेखक यह दावा करते हैं कि भृगुऋषिको विंशोत्तरीका ज्ञान नहीं था और पराशरऋषिने विंशोत्तरीकी खोज की, यद्यपि पराशरऋषिने स्पष्ट कहा है कि उन्होंने पूर्वाचार्योंका ही अनुसरण किया है अर्थात् नया कुछ नहीं खोजा। वेद-वेदांगोंको शाश्वत माननेवालोंके लिये ज्योतिषमें नयी खोज कुछ भी नहीं है और यदि है तो आर्ष (ऋषियोंद्वारा प्रदत्त) नहीं है। भृगुसंहितामें वार्षिक आधारपर फलकथनका जिस विधिसे प्रयोग है, वैसे अनेकों उदाहरण लें—पाराशरहोराशास्त्रके नवम भाव फलाध्यायमें दशम श्लोक कहता है कि भाग्येश धनभावगत और धनेश भाग्यस्थानगत हो तो ३२वें वर्षके बाद भाग्य, वाहन और कीर्ति सम्भव होती है। भाग्येश धनभावगत और धनेश भाग्यस्थानगत हो तो धन और भाग्यके

उदयका योग बनना चाहिये; क्योंकि परस्पर स्थानपरिवर्तन योगका सबसे बलवान् सम्बन्ध होता है, किंतु ३२वें वर्षसे इसका क्या सम्बन्ध है? सुदर्शन चक्र अध्याय बतलाता है कि जन्मके बाद पहले वर्षमें प्रथम भावकी सुदर्शन चक्रदशा चलती है और प्रत्येक एक वर्ष बाद अगले भावकी दशा चलती है। अतः नवमभावकी सुदर्शनचक्रदशा ८, २०, ३२, ४४, ५६, ६८, ८०, ९२, १०४ और ११६वाँ वर्ष बीतनेपर चलनी चाहिये। ब्रह्मचर्याश्रम अध्ययनकालमें बीतता है और वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रममें धनसम्बन्धी भाग्योदयका कुछ अर्थ नहीं। अतः ३२वाँ वर्ष बीतनेपर धनसम्बन्धी भाग्योदय आरम्भ होना चाहिये, ४४वाँ वर्ष बीतनेपर दूसरा ऐसा काल आना चाहिये। ऐसा फल सभी सोलह वर्गोंके लिये कहना चाहिये। उसी अध्यायमें १९-२० श्लोकोंमें लिखा है कि यदि नौवें और बारहवें भावोंके स्वामियोंमें परस्पर स्थानपरिवर्तन योग हो तो ४४वें वर्षमें पितृमरण कहना चाहिये (जब नवमभावकी सुदर्शनचक्र दशा होगी), किंतु नवमके अतिरिक्त बारहवें भावकी सुदर्शनचक्रदशामें भी ऐसा फल कहना चाहिये, जो ग्रन्थमें नहीं है। ग्रन्थोंमें संक्षिप्त उदाहरण रहते हुए मूल सिद्धान्तोंके आधारपर हमें विस्तृत फलादेश कहना चाहिये। समस्त ज्योतिषीय योगोंके मूल सिद्धान्त कहीं भी नहीं मिलते, किंतु जो उपलब्ध हो सकते हैं, वे भी कम सहायक नहीं हैं। सही तरीकेसे बनी सोलहों वर्गोंकी विंशोत्तरियोंके साथ सुदर्शनचक्रदशाको मिलाकर फलादेश करें तो विश्वासपूर्वक सत्य फल कहा जा सकता है। इस विधिद्वारा जन्मकाल परिशोधित करनेके पश्चात् परिश्रम किया जाय तो दशारम्भ कुण्डली बनानेलायक जन्मकालशोधन भी सम्भव हो जायगा।

सुदर्शनचक्रदशाद्वारा न केवल वर्षफल, अपितु मास, प्रत्यन्तर, सूक्ष्म और प्राणफल भी बनाये जा सकते हैं, जो भृगुसंहिताकी किसी भी पाण्डुलिपिमें उपलब्ध नहीं हैं। भृगुसंहितामें अनेक ऐसी बातें हैं, जो चमत्कारी लगती हैं; क्योंकि उनका स्पष्टीकरण कहीं भी उपलब्ध नहीं होता, किंतु इसका मुख्य कारण है षोडशवर्गों (और उनसे निःसृत १५० नाडियों)-की गलत अवधारणाओंका प्रचलन, जो पाराशरहोराशास्त्रकी गलत हिन्दी और अँगरेजी टीकाओंके कारण प्रसारित हो गया है। अतः पाराशरहोराशास्त्रके मूल संस्कृत श्लोकोंके अनुरूप सम राशियोंमें विलोमक्रमानुसार षोडश वर्ग बनाना चाहिये और समस्त ज्योतिषीय योगोंको द्वादशभावकी षोडशवर्गीय कुण्डलियोंमें उनकी विशिष्ट विंशोत्तरी आदि सारणियोंमें देखना चाहिये। दोनों निःशुल्क सॉफ्टवेयरों Kundalee तथा JHora में इन समस्त विकल्पोंके प्रावधान हैं।

गलत कुण्डली और फलादेशके मुख्य कारण

१-समस्त सिद्धान्त ग्रन्थों और पुराणोंके अनुसार सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ही ग्रहसाधन और तिथ्यादिका निर्धारण करना चाहिये। व्यासजीका स्पष्ट वचन (**यन्त्रवेधादिना ज्ञातं यद्बीजं गणकैस्ततः। ग्रहणादि परीक्षेत न तिथ्यादिं कदाचन**—विष्णुधर्मोत्तरपुराण) है कि ग्रहण आदि घटनाओंमें जहाँ दर्शनकी आवश्यकता हो, वहाँ ग्रहस्पष्ट आदिको दृक्कर्म संस्कारद्वारा दर्शनयोग्य बनाना चाहिये, किंतु तिथ्यादिमें उनका प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिये। निर्णयसिन्धुका भी वचन है कि अदृष्टफलहेतु सूर्यसिद्धान्तका प्रयोग करें—**अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं यथार्कगणितं कुरु। गणितं यदि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा॥** नारदपुराणमें सूर्य-सिद्धान्तका विस्तृत गणित भी दिया गया है। अन्य सभी पुराणोंमें गणनाके लिये सूर्यसिद्धान्तका ही प्रयोग किया गया है और सूर्यसिद्धान्तका ही निचोड़ भी प्रस्तुत किया गया है। परंतु पिछली कुछ शताब्दियोंसे भौतिकवादियोंका बोलबाला बढ़ गया है, जो भौतिक पिण्डोंको ही ज्योतिषीय ग्रह मानते हैं, किंतु ऐसा करनेपर ज्योतिषीय-

ग्रहस्पष्टमें कई अंशोंतकका अन्तर पड़ जाता है और षोडश वर्गोंमें कई तो एकदम अशुद्ध बन जाते हैं और फलादेश सही नहीं निकलते। वराहपुराणका कथन है—
'चक्षुषा नैव सा ज्ञातं शक्यते व्योमगा तिथिः'
अर्थात् आकाशमें तिथिकी गति आँखोंसे नहीं देखी जा सकती। यदि सूर्य और चन्द्र आँखोंसे देखे जा सकते हैं तो तिथिके लिये दृक्‌कुल्यताका निषेध क्यों? क्योंकि बाह्य चक्षुद्वारा दिखनेवाले ग्रहोंका ज्योतिषमें निषेध था।

२-विंशोत्तरी आदि चन्द्राधारित दशाएँ दैनिक गतिद्वारा भयात और भभोगसे निकालनेकी स्थूल परिपाटी चल पड़ी है, जिस कारण घटनाओंके कालमें महीनों और कभी-कभी वर्षोंकी अशुद्धि हो जाती है। विंशोत्तरीका निर्धारण चन्द्रकी स्थितिसे होता है, अतः इष्टकालीन चन्द्र-स्पष्टद्वारा विंशोत्तरी आदिकी गणना करें।

३-विंशोत्तरी आदि दशाएँ चन्द्रसे बनती हैं, इसलिये उनमें ३६० तिथियोंके चान्द्रवर्ष मानका प्रयोग करना चाहिये। अधिक मास चान्द्रवर्षसे बाहर माना जाता है, जिस कारण इसका नाम अधिक मास या मलमास पड़ा। विंशोत्तरीका वर्ष ३६० चान्द्रदिनोंका होता है, किंतु लाहिड़ीजीने ईसाई कैलेण्डरका अभ्यास होनेके कारण ३६० सौर दिनोंका वर्षमान प्रचलित कर दिया, जो एक गलत विचार है। ९ प्रकारके वर्षमान होते हैं, परंतु ३६० सौर दिनोंका वर्ष उनमेंसे कोई भी नहीं होता। अतः उनके अनुगामियोंने ३६५.२४२२ दिनोंका ईसाई वर्ष विंशोत्तरीपर लागू कर दिया है, जिसके कारण प्रत्येक ३३ वर्षोंमें १ वर्षकी त्रुटि हो जाती है; क्योंकि ३६० तिथियोंका वर्ष ३५४.३७ सौर दिनोंका होता है। उपर्युक्त कई त्रुटियाँ जुड़कर कई वर्षोंकी त्रुटियाँ उत्पन्न कर देती हैं, जिस कारण अन्तर्दशा भी कदाचित् ही सही बन पाती है। जबकि विंशोत्तरीके फलका मौलिक नियम यह है कि महादशासे लेकर प्राणदशातक सभी दशाकारक ग्रहोंके फलादेशोंका कुल योग ही घटनाका कारक होता है। केवल महादशा या अन्तर्दशासे जीवनकी मुख्य धाराका स्थूल अनुमान ही लगाया जा सकता है, सही घटना और घटनाकालकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

४-विंशोत्तरी आदि चन्द्राश्रित दशाएँ चन्द्रमासे बनानेका आदेश है, जिसका अर्थ यह है कि किसी वर्गमें चन्द्रकी जो स्थिति है, उसीके अनुसार उस वर्गकी विंशोत्तरी आदि दशा बनानी चाहिये। अतः १६ वर्गोंके लिये १६ विंशोत्तरी सारणियाँ, १६ अष्टोत्तरी सारणियाँ, १६ योगिनी सारणियाँ और १६ कालचक्रसारणियाँ बनेंगी।

५-पाराशरहोराशास्त्रके दशाफलाध्यायमें दो बार दशाओंका फल जाननेके लिये दशारम्भकालकी कुण्डली बनानेका आदेश दिया गया है, किंतु प्रायः सभी ज्योतिषी जन्मकालिक कुण्डलीसे ही दशाफल निकालते हैं। किसी भी ग्रहकी दशा जीवनका हिस्सा ही होती है। अतः पूरे जीवनपर प्रभाव डालनेवाली जन्मकुण्डलीसे किसी विशेष दशाकालका फल निकालनेपर प्रायः सही फल मिलता है, किंतु यदि दशारम्भ कुण्डली जन्मकालिक कुण्डलीका विरोध कर दे तो दशारम्भकालकी कुण्डलीका फल ही प्रभावी होता है। बशर्ते दशारम्भकुण्डलीका दशाकारक ग्रह अत्यधिक निर्बल न हो और जन्मकुण्डलीमें वही ग्रह अतिबली न हो। ब्रह्मचर्यपालनद्वारा इस विधिका अभ्यास करना चाहिये जैसा कि बृहत् पाराशरहोराशास्त्रमें बताया गया है। दैवी कृपा होनेपर शुद्ध समयके मिलनेकी सम्भावना होती है। यह विधि कलियुगके सामान्य लोगोंके लिये नहीं है, ऐसा पराशरजीने पाराशर-होराशास्त्रके दूसरे खण्डके आरम्भमें बताया है।

६-अनेक षोडश वर्ग पराशरऋषिके नहीं बनाये जाते हैं। उदाहरणार्थ चतुर्विंशांश कुण्डलीके निर्माणमें आदेश है कि सम राशियोंमें उलटा क्रम होना चाहिये, परंतु सभी भाष्यकार राशियोंके देवोंका क्रम तो उलटा कर देते हैं, परंतु राशियोंका क्रम सीधा रखते हैं। इसका कारण यह है कि इन भाष्यकारोंने उच्चवर्गोंका प्रयोग

व्यावहारिक जीवनमें किया ही नहीं। ऐसे ही लोग द्रेष्काण कुण्डली १२ भावोंकी बनाते हैं, जबकि होराकुण्डली २ भावोंकी बनाते हैं और यह ध्यान नहीं रखते कि होरा एवं द्रेष्काण कुण्डलियोंके निर्माणकी विधि एक समान है।

षोडशवर्गविवेचनाध्यायमें स्पष्ट लिखा है कि सभी वर्गोंमें भाव १२ होते हैं, जबकि षोडश वर्ग देवताओंकी संख्या वर्ग-संख्याके बराबर होती है। उदाहरणार्थ होरा कुण्डलीमें दो देव—सूर्य और चन्द्र होते हैं। द्रेष्काणमें तीन और षष्ठ्यंश कुण्डलीमें साठ देव होते हैं। देवोंको भाव समझना गलत है। इस त्रुटिका कारण यह है कि वेद-वेदांगादिका अध्ययन ब्रह्मचर्य-आश्रममें होता है और पराशरजीने भी सही फलादेश करनेके लिये जितेन्द्रिय होनेको आवश्यक शर्त माना है। जो ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करते, वे सिद्धान्त-संहिता और होराग्रन्थों तथा शास्त्रादिका मनमाना अर्थ लगाते हैं और गलत फलादेश करके ज्योतिषशास्त्रकी प्रतिष्ठाको नष्ट करते हैं।

७-**षोडश वर्गोंसे फलादेशका मूल नियम**—षोडश वर्गोंमें चार प्रकारके उपवर्ग प्रसिद्ध हैं—षड्वर्ग, सप्तवर्ग, दशवर्ग और षोडशवर्ग। प्रयोजनके अनुसार वर्गों और उनके विंशोपक बलोंका परिवर्तन होता रहता है। विवाहके निर्धारण-सम्बन्धी समस्त फलोंके लिये षड्वर्गका प्रयोग होता है। सन्तानके निर्धारण-सम्बन्धी समस्त फलोंके लिये सप्तवर्ग, आजीविका और महत्त्वपूर्ण कार्यसम्बन्धी समस्त फलोंके लिये दशवर्ग तथा समस्त कार्योंके लिये षोडशवर्गका विचार करनेकी परम्परा थी, जिसका प्रयोग आधुनिक ज्योतिषीगण नहीं करते।

यदि किसीके जीवनमें धन, भूमि, वाहन, रोग तथा विद्या आदि अन्यान्य विषय देखने हों तो वर्गोंका संयोजन तथा विंशोपक बलका वितरण या वितरणमें परिवर्तन किस प्रकार करना चाहिये—ये किसी भी ग्रन्थमें नहीं लिखा है। उदाहरणके लिये यदि किसीके जीवनमें धन-सम्पत्तिका विस्तृत विचार करना है तो भावचलित (D-1), होराचक्र (D-2), नवमांशचक्र (D-9) तथा दशमांश चक्र (D-10)-का विचार तो करना ही चाहिये। चतुर्थांश (भाग्य) (D-4), खवेदांश (D-40), अक्षवेदांश (D-45) एवं षष्ट्यंश (D-60)-का भी प्रयोग करें कि न करें—यह प्रश्न उठता है, जिसका समाधान यह है कि इन सन्देहास्पद वर्गोंका प्रयोग विशेष परिस्थितियोंमें ही करें सदैव नहीं, जैसे कि खवेदांश (D-40)-का प्रयोग मातृपक्षसे मिलनेवाली धन-सम्पत्तिके लिये तथा अक्षवेदांश (D-45)-का प्रयोग पितृपक्षसे मिलनेवाली सम्पत्तिके लिये करें। विभिन्न वर्गोंके फलोंका योग कैसे करें—इसके लिये दो पैमाने हैं—१-वर्गविशेषका विंशोपक बल तथा २-दशाकारक ग्रहका बल (उच्चादि और षड्बल आदि)। उच्च, स्वगृही, अतिमित्रगृही, मित्रगृही, समगृही, शत्रुगृही, अतिशत्रु-गृही, नीच, अस्तके क्रमद्वारा ग्रहका सामान्य बल जानना चाहिये। दो ग्रहोंका सामान्य बल बराबर हो तभी षड्बलका प्रयोग करें।

८-कलियुगके सामान्य लोगोंके लिये जो सरल विधि पराशरजीने बतायी, शुद्ध रूपसे उसका प्रयोग भी अधिकतर ज्योतिषी नहीं करते। ये विधियाँ अष्टकवर्ग और वर्षप्रवेश, मास-प्रवेश, प्रत्यन्तर-प्रवेश आदि सहित सुदर्शनचक्र, जिसमें अष्टकवर्गका फल तो कमजोर होता है, किंतु सुदर्शनचक्र महत्त्वपूर्ण यन्त्र है, जिसके प्रयोगद्वारा घटनाओंका घण्टा, मिनटादि बतानेवाली भृगुसंहिता बनायी जा सकती है, जो संसारमें किसीके पास नहीं है। विंशोत्तरी, सुदर्शनचक्र आदिके साथ प्रयोग किया जाय तो अष्टकवर्ग भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

९-उपर्युक्त सभी त्रुटियोंका समाधान करनेके बाद भी सही फलादेश वही कर सकता है, जो शास्त्रज्ञान, संस्कृत-व्याकरण आदि सहित जितेन्द्रिय होनेकी पराशरजीकी शर्तोंको पूर्ण करे और मनुस्मृति तथा व्यासजीके वचनोंको मानते हुए पारिश्रमिक न माँगे और बिना माँगी दक्षिणासे सन्तोष करे।

ज्योतिष, कर्मफल और अरिष्टनिवारणकी मीमांसा

(डॉ० श्रीसत्येन्दुजी शर्मा)

ज्योतिषशास्त्र वेदपुरुषका नेत्र माना जाता है। यह शास्त्र ब्रह्माण्डके भूत, वर्तमान और भविष्यका भी ज्ञान-नेत्र है। इसके जातक ग्रन्थोंमें जन्मकालीन ग्रह-नक्षत्रोंके आधारपर मानव-जीवनकी समस्त घटनाओंको जाननेके सूचक वर्णित हैं। इन ग्रन्थोंके विशेषज्ञ ज्योतिषी किसी भी मनुष्यके भावी सुख-दुःखकी भविष्यवाणी करते हैं और ग्रहोंको इनका हेतु मानकर अरिष्ट-निवारणार्थ ग्रह-शान्तिके लिये दान, जप, हवन आदिके उपाय बतलाते हैं, किंतु मनुष्यके सुख-दुःखके कारण वास्तवमें ग्रह-नक्षत्र नहीं हैं। महाभारतके अनुशासन पर्वमें भगवती उमा महेश्वरसे इस सम्बन्धमें जिज्ञासा करती हुई यह पूछती हैं कि संसारमें ऐसी मान्यता है कि लोगोंके समस्त सुख-दुःखके कारण ग्रह हैं। अतः शुभ-अशुभ कर्मको ग्रहजनित मानकर लोग प्रायः ग्रह-नक्षत्रोंकी ही उपासना करते हैं, जबकि आपका मत है कि मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कर्मोंके कारण ही सुख-दुःख भोग करते हैं। अतः आप इस विषयमें मेरा सन्देह निवारण करनेकी कृपा करें। भगवती उमाके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए महेश्वर कहते हैं—

देवि! तुम्हारा सन्देह उचित है, किंतु ग्रह-नक्षत्र मनुष्योंके शुभ-अशुभके निवेदकमात्र हैं न कि वे स्वयं कर्म-फल प्रदान करते हैं—

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव शुभाशुभनिवेदकाः।
मानवानां महाभागे न तु कर्मकराः स्वयम्॥

प्रजाके हितके लिये ज्योतिश्चक्रके द्वारा भूत और भविष्यके शुभ-अशुभ फलका बोध कराया जाता है। वहाँ शुभ ग्रहोंद्वारा शुभ कर्मफलकी सूचना प्राप्त होती है और दुष्ट ग्रहोंद्वारा दुष्कर्मके फल सूचित होते हैं—

प्रजानां तु हितार्थाय शुभाशुभविधिं प्रति।
अनागतमतिक्रान्तं ज्योतिश्चक्रेण बोध्यते॥
किंतु तत्र शुभं कर्म सुग्रहैस्तु निवेद्यते।
दुष्कृतस्याशुभैरेव संवायो भवेदिति॥

किंतु ग्रह-नक्षत्र, शुभ-अशुभ कर्मफलको उपस्थित नहीं करते हैं। अपना ही किया हुआ सारा कर्म शुभाशुभ फलका उत्पादक होता है। ग्रहोंने कुछ अच्छा या बुरा किया है, यह कथन तो लोगोंका प्रवादमात्र है।

केवलं ग्रहनक्षत्रं न करोति शुभाशुभम्।
सर्वमात्मकृतं कर्म लोकवादो ग्रहा इति॥

इस प्रकार उमा-महेश्वर-संवादसे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कोई ग्रहविशेष किसी प्राणीके सुख-दुःखका कारण नहीं होता, बल्कि मनुष्य अपने नियत प्रारब्धका ही फल भोग करता है, किंतु कोई व्यक्ति ज्वर रोगसे ग्रस्त हो और आयु पूर्ण हो जानेके कारण यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो लोकमें उसकी आयुकी पूर्णताके बदले ज्वर रोगको ही उसकी मृत्युका कारण मान लिया जाता है। उसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र ग्रह-नक्षत्र आदिके आधारपर मनुष्यके दैव-ज्ञानकी विद्या है और दैवज्ञ किसी मनुष्यके जन्मकुण्डलीगत ग्रहादिका अवलोकन करके फलादेश करता है, इसलिये आत्मकृत कर्मफलका कालसूचक होनेके कारण ग्रहादिको ही दैव-फलदाता माननेकी लोकधारणा प्रचलित हो गयी है।

वस्तुतः मनुष्यको अपने शुभ और अशुभ—दोनों प्रकारके कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। तीनों लोकोंमें ऐसा कोई प्राणी नहीं, जो इस कर्मफल-भोगसे बच सके—**'नास्ति कर्मफलच्छेत्ता कश्चिल्लोकत्रयेऽपि च।'** परंतु यदि कर्मफलभोग अवश्यम्भावी है तो शास्त्रोंमें अरिष्ट-नाशके विविध विधानोंके वर्णन क्या अरण्य-प्रलाप हैं? पाप-निवारणहेतु शास्त्रोक्त अश्वमेध यज्ञ तथा अन्य प्रायश्चित्त आदि अनुष्ठान क्या निरर्थक हुआ करते हैं?

किमर्थं दुष्कृतं कृत्वा मानुषा भुवि नित्यशः।
पुनस्तत्कर्मनाशाय प्रायश्चित्तानि कुर्वते॥
सर्वपापहरं चेति हयमेधं वदन्ति च।

इस सम्बन्धमें भगवान् शिवका कथन है कि

सज्जन या दुर्जन, सभी तरहके मनुष्योंद्वारा दो प्रकारके पापकर्म हुआ करते हैं। एक पाप ऐसा होता है, जो उद्देश्यपूर्वक योजनाबद्ध रीतिसे जान-बूझकर किया जाता है। दूसरे प्रकारका पाप दैवेच्छासे अकस्मात् ही असावधानीमें हो जाया करता है—

द्विधा तु क्रियते पापं सद्भिश्चासद्भिरेव च।
अभिसन्धाय वा नित्यमन्यथा वा यदृच्छया॥

इनमें प्रथम प्रकारके उद्देश्यपूर्वक किये गये पापकर्मका किसी तरह नाश नहीं होता। हजारों अश्वमेध यज्ञों और सैकड़ों प्रायश्चित्तोंसे भी ये असाध्य श्रेणीके पाप नष्ट नहीं होते, किंतु असावधानीवश अथवा दैवेच्छासे जो साध्य श्रेणीके पापकर्म होते हैं, वे अश्वमेध यज्ञ और प्रायश्चित्त आदि श्रेयस् कर्मसे नष्ट हो जाते हैं—

केवलं चाभिसन्धाय संरम्भाच्च करोति यत्।
कर्मणस्तस्य नाशस्तु न कथञ्चन विद्यते॥
अभिसन्धिकृतस्यैव नैव नाशोऽस्ति कर्मणः।
अश्वमेधसहस्रैश्च प्रायश्चित्तशतैरपि॥
अन्यथा यत्कृतं पापं प्रमादाद् वा यदृच्छया।
प्रायश्चित्ताश्वमेधाभ्यां श्रेयसा तत् प्रणश्यति॥

पापकर्मोंका फल-भोग-काल जब उदित होता है, तब मनुष्यको अपने-अपने कृतकर्मानुसार विभिन्न प्रकारके दुःखोंका सामना करना पड़ता है। इन भावी या वर्तमान दुःखोंका ग्रह-सम्बन्धी अध्ययन करके ज्योतिषी दान, जप, हवन, रत्न-धारण आदि शान्तिके उपाय बतलाते हैं। इन उपायोंके द्वारा साध्य पापकर्मके फलभोगसे तो मुक्ति मिल जाती है या दुःखमें कुछ कमी अवश्य आ जाती है, किंतु असाध्य पापके फल-भोगमें जप-तप, पूजा-प्रार्थना आदि भी अपना कोई प्रभाव नहीं दिखला पाते। कैकेयीजीने जब राजा दशरथसे श्रीरामका वनवास माँगा, तब वे विचलित होकर मन-ही-मन भगवान् ब्रह्मासे प्रार्थना कर रहे थे कि किसी प्रकार श्रीरामको वन जानेसे रोकनेका कोई उपाय निकाल दें—

बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥

पुनः दशरथजी भगवान् महादेवका स्मरण करते हुए विनती करते हैं—हे आशुतोष! आप तो औघड़दानी हैं, आप दीन सेवक जानकर मेरा दुःख दूर कीजिये—

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

उधर ननिहालमें भरतजीको भी तरह-तरहके अपशकुन हो रहे थे। वे रोज रातमें दुःस्वप्न देखते थे और दिनमें तरह-तरहके बुरे विचारोंसे घिरे रहते थे। अनिष्ट-शान्तिके लिये वे प्रतिदिन ब्राह्मणोंको भोजन कराते थे, दान देते थे और विभिन्न विधियोंसे भगवान् शिवका अभिषेककर उनसे मनाते रहते थे कि माता-पिता, भाइयों-बन्धुओंका कुशल-क्षेम बना रहे—

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥
बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

तथापि श्रीरामका वनगमन रुक नहीं सका। दशरथजी और भरतजी-सदृश महात्माओंके भी सारे पूजा-प्रार्थनाके प्रयत्न इसलिये सफल नहीं हो सके; क्योंकि अवश्यम्भावी टल नहीं सकता।

वस्तुतः एक सामान्य व्यक्तिमें यह सामर्थ्य नहीं होती कि वह किसी दुःख-क्लेशके साध्य-असाध्यकी पहचान कर सके। इसलिये हर दुःख-सन्तप्त व्यक्ति यथाशक्ति शान्तिकर्म आदिके उपायोंका आश्रय ग्रहण करता है और इस प्रयत्नमें ज्योतिषशास्त्र उसका मार्गदर्शक नेत्रका कार्य करता है, किंतु लोकमें होनहार बलवान्के आगे सबको इस नेत्रसे लाभ नहीं प्राप्त होता है। ***'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी'***—यह कथन परम सत्य है। लेकिन महादेवकी कृपा आवश्यक है। अगर ब्रह्माण्डनायक परमपिता परमेश्वर प्रसन्न हो जायँ, तब तो कुछ भी सम्भव है। तभी तो महर्षि मार्कण्डेयने मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली और भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उत्तराका मृत शिशु पुनः जीवित हो उठा। इसलिये परमार्थ, सत्य और सेव्य एकमात्र भगवान् हैं।

Kalyan Visheshank_2014_Section_12_1_Back

[(ख) ग्रहोपासनाका स्वरूप]

सूर्यादि ग्रहोंके रत्न, यन्त्र, व्रत, मन्त्र और औषधि

(पं० श्रीमदनलालजी शर्मा)

सूर्यादि ग्रहोंकी अनिष्ट स्थान-स्थिति और दृष्टिसे प्राणी पीड़ित होते हैं एवं उनकी शुभ स्थान-स्थिति और दृष्टिसे सुख, सौभाग्य तथा समृद्धिसम्पन्न होते हैं। शास्त्रोंमें इस विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन है।

विधानमाला नामक ग्रन्थमें लिखा है—

आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे दुष्टस्थानस्थिता नृणाम्।
तदा कुर्वन्ति सर्वत्र पीडा नानाविधा ध्रुवम्॥

अर्थात् सूर्यादि सभी ग्रह दुष्ट स्थानमें बैठकर निश्चय ही मनुष्योंको अनेक प्रकारसे पीड़ित करते हैं। स्कन्दपुराणमें तो यह भी लिखा है कि भूलोकवासी मनुष्योंकी तो बात ही क्या है; देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरादि भी ग्रहोंकी पीड़ासे पीड़ित होते हैं। शनैश्चरके प्रकोपसे राजा सौदासको अखाद्य भक्षण करना पड़ा। राहुसे पीड़ित हो राजा नल पृथ्वीपर भटकते फिरे। मंगलके दोषसे भगवान् रामको राज्यसे वंचित हो वनवासी होना पड़ा। अष्टम चन्द्रमाके दोषसे हिरण्यकशिपुकी मृत्यु हुई। सप्तमस्थ सूर्यके दोषसे रावण मारा गया। जन्मस्थान-स्थित बृहस्पतिके दोषसे दुर्योधनका निधन हुआ। बुधकी पीड़ामें पाण्डवोंको दासवृत्ति करनी पड़ी। षष्ठस्थानस्थित शुक्रके दोषसे युद्धमें हिरण्याक्ष मारा गया। इसी प्रकार और भी बहुत-से लोग ग्रहदोषसे पीड़ित हुए हैं—

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः।
पीड्यन्ते ग्रहपीडाभिः किं पुनर्भुवि मानवाः॥
शनैश्चरेण सौदासो नरमांसे नियोजितः।
राहुणा पीडितो राजा नलो भ्रान्तो महीतले॥
अङ्गारकविरोधेन रामो राष्ट्रान्निरोधितः।
अष्टमेन शशाङ्केन हिरण्यकशिपुर्मृतः॥
रविणा सप्तमस्थेन रावणो विनिपातितः।
गुरुणा जन्मसंस्थेन हतो राजा सुयोधनः॥
पाण्डवाः बुधपीडायां विकर्मणि नियोजिताः।
षष्ठेनोशनसा युद्धे हिरण्याक्षो निपातितः॥
एवं चान्ये च बहवो ग्रहदोषैस्तु पीडिताः।

आयुर्वेदके ग्रन्थ भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है—

ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नानुकूलं हि भेषजम्।
ते भेषजानां वीर्याणि हरन्ति बलवन्त्यपि॥
प्रतिकृत्य ग्रहानादौ पश्चात् कुर्याच्चिकित्सितम्।

सूर्यादि ग्रहोंकी प्रतिकूलतामें व्याधिग्रस्त रोगीको ओषधि भी अनुकूल फल नहीं करती; क्योंकि ओषधिके गुण-प्रभाव-बल-वीर्यको ग्रह हरण कर लेते हैं। अतः पहले ग्रहोंको अनुकूल करके बादमें चिकित्सा करनी चाहिये। महर्षि वसिष्ठका कथन है—

दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते च ग्रहवैगुण्यसम्भवे।
जन्मनि द्वादशे चैव चतुर्थे वाष्टमे तथा॥
यदा स्युर्गुरुमन्दाराः सूर्यश्चैव विशेषतः।
अर्थहानिं च मरणं चाश्नुते सर्वसङ्कटम्॥

दुःस्वप्न होनेपर, अनिष्टकर निमित्त उपस्थित होनेपर, ग्रहोंकी प्रतिकूलतामें, जन्ममें, बारहवें, चौथे अथवा आठवें स्थानमें बृहस्पति, शनैश्चर, मंगल और विशेषकर सूर्यके रहनेसे धनकी हानि, मृत्युका भय एवं और भी सब संकट आकर मनुष्यको दुःखित करते हैं।

सूर्यादि ग्रहोंकी प्रतिकूल परिस्थितिमें मनुष्य चेष्टापूर्वक ग्रहोंके रत्न और यन्त्र धारण करके तथा व्रत, जप और ग्रह-ओषधिके द्वारा ग्रहोंको प्रसन्नकर मनोऽनुकूल धनधान्यका सुख, सौभाग्यकी वृद्धि, ऐश्वर्य, आरोग्यता और दीर्घायु प्राप्त कर सकता है। इस विषयमें महर्षि

पराशर और नारदके वचन हैं—

(क) सानुकूलैर्ग्रहैर्यानि कुर्यात् कर्माणि मानवः।
सफलानि भवन्त्यस्य निष्फलानि स्युरन्यथा॥
(ख) ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नरः यत्नं समाचरेत्।
हानिवृद्धी ग्रहाधीने तस्मात् पूज्यतमा ग्रहाः॥

ग्रहोंको अनुकूल करके मनुष्य जो भी कर्म करता है, वे सभी कर्म सफल होते हैं। ग्रहोंकी प्रतिकूलतामें किये गये सब कर्म निष्फल हो जाते हैं; क्योंकि हानि और लाभ, ह्रास और वृद्धि ग्रहोंके अधीन हैं। अतएव ग्रहोंकी अनुकूलता प्राप्त करना परम आवश्यक है। विष्णुधर्मोत्तरमें भी लिखा है—

गोचरे वा विलग्ने वा ये ग्रहारिष्टसूचकाः।
पूजयेत्तान् प्रयत्नेन पूजिताः स्युः शुभप्रदाः॥

गोचरमें अथवा जन्मकुण्डलीमें जो ग्रह अरिष्टकारक हों, उनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रसन्न होकर वे ग्रह शुभफलप्रद हो जाते हैं।

सूर्यादि ग्रहोंकी प्रसन्नता एवं अनुकूलताप्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें रत्न और यन्त्रधारण, व्रत और जप तथा ओषधिस्नानका विधान बताया गया है। बृहन्नारदीयसंहिता, गरुडपुराण, शुक्रनीतिसार, यन्त्रचिन्तामणि, बृहद्दैवज्ञरंजन एवं अन्यान्य पुराणादि ग्रन्थोंमें इसका विस्तारसे वर्णन है। आयुर्वेदके भावप्रकाश नामक ग्रन्थमें रत्नोंके गुणप्रकरणमें लिखा है—'**रत्नानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च**' अर्थात् रत्न सुन्दरताको देते हैं और ग्रहदोषको हरण करते हैं।

कौन-सा रत्न किस ग्रहको प्रसन्नकर उसका दोष दूर करता है, इस प्रश्नके उत्तरमें रत्नमाला नामक ग्रन्थमें कहा गया है कि सूर्यका रत्न माणिक्य है। चन्द्रमाका रत्न सुन्दर और निर्दोष मोती है। मंगलका मूँगा, बुधका पन्ना, बृहस्पतिका पुखराज, शुक्रका हीरा, शनिका निर्मल नीलम, राहुका गोमेद और केतुका रत्न लहसुनिया है—

माणिक्यं तरणेः सुजातममलं मुक्ताफलं शीतगो-
र्माहेयस्य तु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम्।
देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शने-
र्नीलं निर्मलमन्ययोर्निगदिते गोमेदवैदूर्यके॥

—इन रत्नोंको धारण करनेसे इन ग्रहोंकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और इनका अनिष्टकर दोष दूर हो जाता है।

सर्वसाधारणके लिये रत्नोंको धारण करना सुलभ और सुगम नहीं है। इसलिये लोककल्याणके लिये परमकृपालु महर्षियोंने सूर्यादि ग्रहोंके दोष-निवारण और प्रसन्नताके लिये यन्त्र धारण करना भी बताया है। सूर्यादि ग्रहोंके यन्त्र ये हैं—

सूर्यका यन्त्र रविवारके दिन, चन्द्रमाका यन्त्र सोमवारके

सूर्यादि ग्रहोंके यन्त्र

सूर्ययन्त्रम्

रसेन्दुनागा नगवाणरामा
युग्माङ्कवेदा नवकोष्ठमध्ये।
विलिख्य धार्यं गदनाशनाय
वदन्ति गर्गादिमहामुनीन्द्राः॥

६	१	८
७	५	३
२	९	४

चन्द्रयन्त्रम्

नागद्विनन्दा गजषट् समुद्रा
शिवाक्षिदिग्वाणविलिख्य कोष्ठे।
चन्द्रकृतारिष्टविनाशनाय
धार्यं मनुष्यैः शशियन्त्रमीरितम्॥

७	२	९
८	६	४
३	१०	५

मंगलयन्त्रम्

गजाग्निदिश्याथनवाद्रिवाणा
पातालरुद्रारससंविलिख्य।
भौमस्य यन्त्रं क्रमशो विधार्य-
मनिष्टनाशं प्रवदन्ति गर्गाः॥

८	३	१०
९	७	५
४	११	६

बुधयन्त्रम्

नवाब्धिरुद्रा दिङ्नागषष्ठा
वाणार्कसप्ता नवकोष्ठयन्त्रे।
विलिख्य धार्यं गदनाशहेतवे
वदन्ति यन्त्रं शशिजस्य धीराः॥

९	४	११
१०	८	६
५	१२	७

बृहस्पतियन्त्रम्

दिग्वाणसूर्या शिवनन्दसप्ता
षड्विश्वनागाक्रमतोऽङ्ककोष्ठे ।
विलिख्य धार्यं गुरुयन्त्रमीरितं
रुजाविनाशाय वदन्ति तद्बुधाः॥

१०	५	१२
११	९	७
६	१३	८

शुक्रयन्त्रम्

रुद्राङ्गविश्वा रविदिग्गजाख्या
नगामनुश्चाङ्कक्रमाद्विलेख्याः ।
भृगोःकृतारिष्टविनाशनाय
धार्यं हि यन्त्रं मुनिना प्रकीर्तितम्॥

११	६	१३
१२	१०	८
७	१४	९

शनियन्त्रम्

अर्काद्रिमन्वा स्मर रुद्र अङ्का
नागाख्यतिथ्यादश मंदयन्त्रम्।
विलिख्य भूर्जोपरिधार्यमेत-
च्छनेः कृतारिष्टनिवारणाय॥

१२	७	१४
१३	११	९
८	१५	१०

राहुयन्त्रम्

विश्वाष्टतिथ्यामनुसूर्यदिश्या
खगामहीन्द्रैकदशांशकोष्ठे ।
विलिख्य यन्त्रं सततं विधार्यं
राहोः कृतारिष्टनिवारणाय ॥

१३	८	१५
१३	८	१५
९	१६	११

केतुयन्त्रम्

मनुखेचरभूपतिथिविश्व
शिवादिक् सप्तादशसूर्यमिता।
क्रमशो विलिखेन्नवकोष्ठमिते
परिधार्य नरा दुःखनाशकराः॥

१४	९	१६
१५	१३	११
१०	१७	१२

दिन, मंगलका यन्त्र मंगलवारके दिन, बुधका यन्त्र बुधवारके दिन, बृहस्पतिका यन्त्र बृहस्पतिवारके दिन, शुक्रका यन्त्र शुक्रवारके दिन, शनिका यन्त्र शनिवारके दिन, राहु और केतुका यन्त्र भी शनिवारके दिन अथवा जिस ग्रहके घरमें राहु और केतु बैठे हों, उस ग्रहके दिन लिखना और धारण करना चाहिये। अनारकी लकड़ीकी कलमसे अष्टगन्ध (श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, अगर, तगर, केशर, कस्तूरी, कपूर और गोरोचन)-से भोजपत्रपर इन यन्त्रोंको लिखना चाहिये। सूर्य और मंगलका यन्त्र ताँबेके ताबीजमें, चन्द्रमा और शुक्रका चाँदीके ताबीजमें, बुध और बृहस्पतिका यन्त्र सोनेके ताबीजमें, शनि-राहु और केतुका यन्त्र लोहेके ताबीजमें रखकर धारण करना चाहिये।

सूर्यादिग्रह विधिपूर्वक व्रत और मन्त्र-जप करनेसे भी प्रसन्न और अनुकूल होकर मनोनीत शुभ फल प्रदान करते हैं। व्रत और मन्त्र-जपकी विधि इस प्रकार है—चैत्र, पौष और अधिकमास छोड़कर किसी भी महीनेके प्रथम रविवारके दिन सूर्यका व्रत आरम्भ करके निश्चित अवधितक प्रति रविवारको करना चाहिये। इसी तरह चन्द्रमाका व्रत सोमवारको, मंगलका मंगलवारको, बुधका बुधवारको, बृहस्पतिका बृहस्पतिवारको, शुक्रका शुक्रवारको और शनिश्चरका व्रत शुक्लपक्षके प्रथम शनिवारको आरम्भ करके निश्चित अवधितक करना चाहिये। राहु और केतुका व्रत शनिवारको अथवा राहु और केतु जिस ग्रहके घरमें हों, उस ग्रहके वारमें करना चाहिये। सभी व्रतके दिन प्रातःस्नान करके सूर्यको अर्घ्य देना आवश्यक है। व्रतके दिन एक समय भोजन करना चाहिये। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और बुधके व्रतमें नमक नहीं खाना चाहिये। व्रतके दिन जो चीज भोजन करे, वह चीज यथाशक्ति दान करनी चाहिये। व्रतकी समाप्तिके दिन यथाशक्ति ब्राह्मण और वटुकोंको भोजन कराये और ग्रहकी प्रिय वस्तुका दान करे। सूर्यादि सभी ग्रहोंके व्रतमें ये साधारण नियम हैं।

सूर्यका व्रत—एक वर्ष या ३० रविवारोंतक अथवा १२ रविवारोंतक करना चाहिये। व्रतके दिन लाल रंगका वस्त्र धारण करके **'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः'** इस मन्त्रका १२ या ५ अथवा ३ माला जप करे। जपके बाद शुद्ध जल, रक्त चन्दन, अक्षत, लाल पुष्प और दूर्वासे सूर्यको अर्घ्य दे। भोजनमें गेहूँकी रोटी, दलिया, दूध, दही, घी और चीनी खाये। नमक नहीं खाये। इस व्रतके

प्रभावसे सूर्यका अशुभ फल शुभ फलमें परिणत हो जाता है। तेजस्विता बढ़ती है। शारीरिक रोग शान्त होते हैं। आरोग्यता प्राप्त होती है।

चन्द्रमाका व्रत—५४ सोमवारोंतक या १० सोमवारोंतक करना चहिये। व्रतके दिन श्वेत वस्त्र धारणकर **'ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्राय नमः'** इस मन्त्रका ११, ५ अथवा ३ माला जप करे। भोजनमें बिना नमकके दही, दूध, चावल, चीनी और घीसे बनी चीजें ही खाये। इस व्रतको करनेसे व्यापारमें लाभ होता है। मानसिक कष्टोंकी शान्ति होती है। विशेष कार्यसिद्धिमें यह व्रत पूर्ण लाभदायक होता है।

मंगलका व्रत—४५ या २१ मंगलवारोंतक करना चाहिये। यह व्रत अधिक दिन भी किया जा सकता है। लाल वस्त्र धारण करके **'ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः'** इस मन्त्रकी ७, ५ या ३ माला जपे। भोजनमें गुड़से बना हलवा या लड्डू इत्यादि खाये। नमक नहीं खाये। इस व्रतके करनेसे ऋणसे छुटकारा मिलता है। संतानसुख प्राप्त होता है।

बुधका व्रत—४५, २१ या १७ बुधवारोंतक करना चाहिये। हरे रंगका वस्त्र धारण करके **'ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः'** इस मन्त्रका १७, ५ या ३ माला जप करे। भोजनमें नमकरहित मूँगसे बनी चीजें खानी चाहिये। जैसे मूँगका हलवा, मूँगकी पंजीरी, मूँगके लड्डू इत्यादि। भोजनसे पहले तीन तुलसीके पत्ते चरणामृत या गंगाजलके साथ खाकर तब भोजन करे। इस व्रतके करनेसे विद्या और धनका लाभ होता है। व्यापारमें उन्नति होती है और शरीर स्वस्थ रहता है।

बृहस्पतिका व्रत—३ वर्ष, १वर्ष अथवा १६ बृहस्पतिवारोंतक करना चाहिये। पीले रंगके वस्त्र धारणकर **'ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः'** इस मन्त्रकी १६, ५ या ३ माला जपे। भोजनमें चनेके बेसन, घी और चीनीसे बनी मिठाई लड्डू ही खाये। यह व्रत विद्यार्थियोंके लिये बुद्धि और विद्याप्रद है। इस व्रतसे धनकी स्थिरता और यशकी वृद्धि होती है। अविवाहितोंको यह व्रत विवाहमें सहायक होता है।

शुक्रका व्रत—३१ या २१ शुक्रवारोंतक करना चाहिये। श्वेत वस्त्र धारण करके **'ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः'** इस मन्त्रका २१, ११ या ५ माला जप करे। भोजनमें चावल, चीनी, दूध, दही और घीसे बने पदार्थ भोजन करे। इस व्रतके करनेसे सुख-सौभाग्य और ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है।

शनिश्चरका व्रत—५१ या १९ शनिवारोंतक करना चाहिये। काला वस्त्र धारण करके **'ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः'** इस मन्त्रकी १९, ११ या ५ माला जपे। जप करते समय एक पात्रमें शुद्ध जल, काला तिल, दूध, चीनी और गंगाजल अपने पास रख ले। जपके बाद इसको पीपल वृक्षकी जड़में पश्चिममुख होकर चढ़ा दे। भोजनमें उड़द (कलाई)-के आटेसे बनी चीजें पंजीरी, पकौड़ी, चीला और बड़ा इत्यादि खाये। कुछ तेलमें बनी चीजें अवश्य खाये। फलमें केला खाये। इस व्रतके करनेसे सब प्रकारकी सांसारिक झंझटें दूर होती हैं। झगड़ेमें विजय प्राप्त होती है। लोहे, मशीनरी, कारखानेवालोंके लिये यह व्रत व्यापारमें उन्नति और लाभदायक होता है।

राहु और केतुका व्रत—१८ शनिवारोंतक करना चाहिये। काले रंगका वस्त्र धारण करके राहुके व्रतमें **'ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः'** इस मन्त्रकी एवं केतुके व्रतमें **'ॐ स्त्रां स्त्रीं स्त्रौं सः केतवे नमः'** इस मन्त्रकी १८, ११ या ५ माला जप करे। जपके समय एक पात्रमें जल, दूर्वा और कुशा अपने पास रख ले। जपके बाद इनको पीपलकी जड़में चढ़ा दे। भोजनमें मीठा चूरमा, मीठी रोटी, समयानुसार रेवड़ी, भूजा और काले तिलसे बने पदार्थ खाये। रातमें घीका दीपक पीपलवृक्षकी जड़में रख दिया करे। इस व्रतके करनेसे शत्रुका भय दूर होता है, राजपक्षसे (मुकदमेमें) विजय मिलती है, सम्मान बढ़ता है।

सूर्यादि ग्रहोंके अनिष्टफलको शमन करने और शुभफल-प्राप्तिके लिये ओषधियोंको जलमें भिगोकर अथवा उनके क्वाथको जलमें मिलाकर स्नान करनेका विधान भी है। ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थमें लिखा है—

खगेरिता साधुफलं जनेन
तदर्चया यत्तदितं वरेण्यम्।

सदौषधिस्नानविधानहोमा-
पवर्जनेभ्योऽभ्युदयाय वा स्यात्॥

ग्रहोंके अनिष्टफलकी शान्ति ग्रह-पूजा, ओषधि-स्नान, होम एवं दान करनेसे होती है और मनुष्यका अभ्युदय होता है।

अनिष्टे सूर्ये शान्तिस्नानमाह—

काश्मीरयष्टीमधुपद्मकैला-
मनःशिलोशीरवसन्तदूतिभिः।
सदारुभिः स्यादहिते खरांशौ
निमज्जनं नुः किल कर्मसिद्ध्यै॥

सूर्यकी अनिष्टशान्तिके लिये केशर, जेठीमधु, कमलगट्टा, इलायची, मनःशिल, खस, देवदारु और पाटलासे स्नान करना चाहिये।

अनिष्टे चन्द्रे शान्तिस्नानमाह—

सपञ्चगव्यैः स्फटिकेभदान-
त्रिपत्रमुक्ताम्बुजशुक्तिशङ्खैः।
तुषारभास्याप्लवनं नृपाणा-
मुक्तं हि तुष्ट्यै विषमे ग्रहज्ञैः॥

चन्द्रमाकी अनिष्टशान्तिके लिये पंचगव्य, स्फटिक, गजमद, बिल्व, मुक्ता, कमल, मोतीकी सीप और शंखसे स्नान करना चाहिये।

अनिष्टे भौमे शान्तिस्नानमाह—

स्याच्चन्दनश्रीफलहिङ्गुलीक-
श्यामाबलामांस्यरुणप्रसूनैः।
ह्रीबेरचाम्पेयजपांकुराढ्यैः
स्नानं कुदायादकृताशिवघ्नम्॥

मंगलकी अनिष्टशान्तिके लिये चन्दन, बिल्व, बैंगनमूल, प्रियंगु, बरियाराके बीज (खरेटी), जटामासी, लाल पुष्प, सुगन्धबाला, नागकेशर और जपापुष्पसे स्नान करना चाहिये।

अनिष्टे बुधे शान्तिस्नानमाह—

सहेममूलाक्षतशौक्तिकेयै-
र्गोरोचनक्षौद्रफलैः सगव्यैः।
हिताय साद्भिर्विषमे नराणां
निमज्जनं चान्द्रमसायने स्यात्॥

बुधकी अनिष्टशान्तिके लिये नागकेशर, पोहकरमूल, अक्षत, मुक्ताफल, गोरोचन, मधु, मैनफल और पंचगव्यसे स्नान करना चाहिये।

अनिष्टे गुरौ शान्तिस्नानमाह—

सिद्धार्थयष्टीमधुनीरमालती-
प्रसूनयूथीप्रसवैः सपल्लवैः।
रिष्टं यदीज्याद्विषमस्थितादितं
शिवाय यैस्तेष्वरुहं निमज्जनम्॥

बृहस्पतिकी अनिष्टशान्तिके लिये पीली सरसों, जेठीमधु, सुगन्धबाला, मालतीपुष्प, जूहीके फूल और पत्तेसे स्नान करना चाहिये।

अनिष्टे शुक्रे शान्तिस्नानमाह—

नाशम्बरैलाफलमूलकुंकुमैः
सपुण्डरीकैः शिलया समन्वितैः।
कवीरितानिष्टविघातहेतवे
स्नायादनब्जैरिति कश्चिदाह वा॥

शुक्रकी अनिष्टशान्तिके लिये श्वेत कमल, मनःशिल, सुगन्धबाला, इलायची, पोहकरमूल और केशरसे स्नान करना चाहिये।

अनिष्टे शनौ शान्तिस्नानमाह—

बलाञ्जनश्यामतिलैः सलाजैः
सरोध्रजीमूतशतप्रसूनैः।
यमानुजादाप्तमनिष्टमुग्रं
विलीयते मज्जनतोऽप्यशेषम्॥

शनिश्चरकी अनिष्टशान्तिके लिये बरियाराके बीज (खरेटी), काला सुरमा, काले तिल, धानका लावा, लोध, मोथा और सौंफसे स्नान करना चाहिये।

अनिष्टे राहौ शान्तिस्नानमाह—

सलोध्रगर्भेणमदेभदानै-
रर्णोऽम्बुदश्रीफलपर्णवर्णैः।
हरेदभद्रं विषमागुजातं
शरीरिणामाप्लवनं सदूर्वैः॥

राहुकी अनिष्टशान्तिके लिये सुगन्धबाला, मोथा, बिल्वपत्र, लाल चन्दन, लोध, कस्तूरी, गजमद और दूर्वासे स्नान करना चाहिये।

अनिष्टे केतौ शान्तिस्नानमाह—

शिखाभृदार्त्तितिलपत्रिकाब्द-
सारंगनाभीभमदाम्बुरोध्रैः।

निषेधतीहाविकमूत्रमिश्रैः
स्नानं नराढ्यैः करकामृताभ्याम्॥

केतुकी अनिष्टशान्तिके लिये रक्तचन्दन, रतनजोत, मोथा, कस्तूरी, गजमद, सुगन्धबाला, लोध, भेड़का मूत्र, दाडिम और गुडूचीसे स्नान करना चाहिये।

विशेष—इन स्नान-ओषधियोंमें यदि कोई वस्तु प्राप्त न हो सके तो जितनी प्राप्त हों, उन्हींसे स्नान करना चाहिये।

नवग्रहोंके निमित्त दान

(श्रीश्रीनारायणजी शर्मा, ज्योतिषाचार्य)

दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीर्दानेनैव लभ्यते।
दानेन शत्रून् जयति व्याधिर्दानेन नश्यति॥

स्वर्गप्राप्तिके साथ-साथ भौतिक साधनोंकी प्राप्तिमें भी दानकी महत्ता है अर्थात् दानद्वारा मानव इहलोक एवं परलोकमें शान्ति एवं श्रेयस् प्राप्त करता है।

ज्योतिषशास्त्रद्वारा सभी मानवोंका जीवन प्रभावित है, वस्तुतः ज्योतिषमें वर्णित ग्रहयोग सम्पूर्ण मानव-जीवनमें महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार नवग्रहोंकी शुभाशुभ स्थितिसे मानव-जीवनके क्रिया-कलाप संचालित होते हैं। जीवनका सम्पूर्ण सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि नवग्रहोंपर आधारित है। इसका कारण २७ नक्षत्रों और १२ राशियोंपर ये ग्रह सतत भ्रमण करते रहते हैं, जिससे ऋतुएँ, वर्ष, मास और दिन-रात बनते हैं। ग्रहोंकी अनुकूल परिस्थिति होनेपर सुख एवं प्रतिकूल परिस्थिति होनेपर मनुष्य दुःखानुभूति प्राप्त करता है।

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु—ये नौ ग्रह हैं। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार नक्षत्रों तथा राशियोंके स्वामी ग्रह हैं। अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्र हैं और मेष, वृष आदि बारह राशियाँ हैं। सवा दो नक्षत्रकी एक राशि होती है। नवग्रह-मण्डलमें सूर्य तथा चन्द्रमा राजाके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, मंगल सेनापति है, बुध राजकुमार है, बृहस्पति तथा शुक्र सचिवरूपसे एवं गुरुरूपमें स्थित हैं, शनि सेवक है और राहु तथा केतु शनिके अनुगामी हैं। मंगल पृथ्वीका पुत्र है, बुध चन्द्रमाका पुत्र है, शनि सूर्यका पुत्र है तथा राहु-केतुको पृथ्वीका छाया पुत्र माना गया है। मेष और वृश्चिक राशिका स्वामी मंगल है, वृष और तुला राशिका स्वामी शुक्र है, मिथुन और कन्या राशिका स्वामी बुध है, कर्क राशिका स्वामी चन्द्रमा एवं सिंह राशिका स्वामी सूर्य है। धनु तथा मीन राशिका स्वामी बृहस्पति है तथा मकर और कुम्भ राशिका स्वामी शनि ग्रह है।

महर्षि पराशरके अनुसार मनुष्यकी आयु १२० वर्ष मानी गयी है, जिसमें सभी ग्रह एक निश्चित क्रमसे अपना-अपना समय भोग करते हैं। इसे विंशोत्तरी महादशा कहते हैं। इसके अतिरिक्त अष्टोत्तरी महादशा तथा योगिनी दशाके अनुसार अच्छा-बुरा समय परिवर्तित होता रहता है। विंशोत्तरी महादशाके लिये कृत्तिकासे प्रारम्भकर क्रमशः नवों ग्रह अपनी दशाका भोग करते हैं। कृत्तिका, उत्तरा फाल्गुनी तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें जन्म होनेपर सूर्यकी महादशा होती है। रोहिणी, हस्त तथा श्रवण नक्षत्रमें जन्म होनेपर चन्द्रमाकी दशा होती है। इसी प्रकार आगे भी जन्म-नक्षत्रके अनुसार ग्रहोंकी महादशाका क्रम आता है। सूर्यकी महादशा ६ वर्ष, चन्द्रमाकी महादशा १० वर्ष, मंगलकी महादशा ७ वर्ष, राहुकी महादशा १८ वर्ष, गुरुकी महादशा १६ वर्ष, शनिकी महादशा १९ वर्ष, बुधकी महादशा १७ वर्ष, केतुकी महादशा ७ वर्ष तथा शुक्रकी महादशा २० वर्षतक रहती है। ग्रहोंके महादशा-भोगका यह क्रम तथा समय नियत है।

जब जन्मकुण्डलीमें या वर्ष-कुण्डलीमें या ग्रहगोचर आदिमें कोई ग्रह खराब स्थितिमें हो तो अरिष्ट-निवारणके लिये ग्रहोंके निमित्त दान-पुण्य करनेकी विधि है।

ज्योतिषशास्त्रमें ग्रहोंके आनुकूल्य-प्राप्तिहेतु विभिन्न प्रकारके दान बताये गये हैं। ग्रहोंके भिन्न-भिन्न प्रकारके दान कहे गये हैं, जो संक्षेपमें निम्न प्रकारसे हैं—

(१) सूर्य—सूर्य सभी ग्रहोंका राजा है एवं सभी ग्रहोंमें बली है, किंतु यदि मनुष्यकी जन्मकुण्डलीमें सूर्य प्रतिकूल स्थितिमें हो तो 'धेनु' का दान करना चाहिये। 'संहिताप्रदीप' ग्रन्थके अनुसार सूर्यहेतु 'ताम्बूल' का दान करना चाहिये। दानचन्द्रिकाग्रन्थमें उद्धृत 'ज्योति:सार' ग्रन्थमें बताया गया है कि सूर्यहेतु लाल-पीले रंगसे मिश्रित वर्णका वस्त्र, गुड़, स्वर्ण, ताम्र, माणिक्य, गेहूँ, लाल कमल, सवत्सा गौ तथा मसूरकी दालका दान करना चाहिये, यथा—

कौसुम्भवस्त्रं गुडहेमताम्रं
माणिक्यगोधूमसुवर्णपद्मम्।
सवत्सगोदानमिति प्रणीतं
दुष्टाय सूर्याय मसूरिकाश्च॥

(२) चन्द्रमा—चन्द्रमाकी अनुकूलताके लिये श्रीखण्ड चन्दनका दान करना चाहिये। चन्द्रमाकी प्रीतिके लिये घृत कलश, श्वेत वस्त्र, दही, शंख, मोती, स्वर्ण तथा चाँदीका दान करना चाहिये। यथा—

घृतकलशं सितवस्त्रं दधिशङ्खं मौक्तिकं सुवर्णं च।
रजतं च प्रदद्याच्चन्द्रारिष्टोपशान्तये त्वरितम्॥

(३) मंगल—मंगल ग्रहकी शान्तिके लिये लाल पुष्प एवं ब्राह्मणको भोजनदान देना चाहिये। मूँगा, गेहूँ, मसूरकी दाल, लाल वर्णका बैल, कनेर पुष्प, लाल वस्त्र, गुड़, स्वर्ण, ताम्र एवं रक्त-चन्दनका दान करनेसे मंगलका दोष नष्ट होता है—

प्रवालगोधूममसूरिकाश्च
वृषं सताम्रं करवीरपुष्पम्।
आरक्तवस्त्रं गुडहेमताम्रं
दुष्टाय भौमाय च रक्तचन्दनम्॥

(४) बुध—जन्मकुण्डलीमें यदि बुधकी स्थिति ठीक नहीं हो तो स्वर्ण एवं पुष्पदान करना चाहिये। बुधकी प्रीतिके लिये नीला वस्त्र, मूँग, स्वर्ण, पन्ना, दासी, स्वर्णयुक्त घी, कांस्य (कांसा धातु), हाथीदाँत, भेड़, धन, धान्य, पुष्प, फल, लताका दान करना चाहिये—

नीलं वस्त्रं मुद्गहैमं बुधाय
रत्नं पाचिं दासिकां हेमसर्पिः।
कांस्यं दन्तं कुञ्जरस्याथ मेषो
रौप्यं सस्यं पुष्पजात्यादिकं च॥

(५) गुरु—गुरुग्रहकी शान्तिके लिये अश्व, स्वर्ण, मधु (शहद), पीला वस्त्र, पीला धान्य जैसे—धान, चनेकी दाल इत्यादि, नमक, पुष्प (पीला), शर्करा तथा हल्दी [पुस्तक, पुखराज रत्न, भूमि एवं छत्र]-का दान करना चाहिये। यथा—

अश्वः सुवर्णं मधुपीतवस्त्रं
सपीतधान्यं लवणं सपुष्पम्।
सशर्करं तद्रजनीप्रयुक्तं
दुष्टाय शान्त्यै गुरवे प्रणीतम्॥

(६) शुक्र—शुक्रग्रहका दोष निवारण करनेहेतु श्वेत अश्व एवं श्वेत वस्त्रका दान करना चाहिये। चित्रित सुन्दर वस्त्र, चावल, घी, स्वर्ण, धन, हीरा, सुगन्धित दिव्य पदार्थ तथा शृंगार-सामग्री एवं सवत्सा श्वेत गौ [स्फटिक, कपूर, शर्करा, मिश्री एवं दही इत्यादि]-का दान करना चाहिये—

चित्रवस्त्रमपि दानवार्चिते
दुष्टगे मुनिवरैः प्रणोदितम्।
तण्डुलं घृतसुवर्णरूप्यकं
वज्रकं परिमलो धवला गौः॥

(७) शनि—जन्मपत्रिकामें यदि शनिकी स्थिति शुभफलदात्री न हो तो काले वर्णकी गाय एवं तैलका दान करना चाहिये। शनिदोषकी शान्तिहेतु नीलम, भैंसा, काला वस्त्र, लोहा तथा जटा नारियल [उड़द, तिल, छाता, जूता एवं कम्बल]-का दान दक्षिणाके साथ करना चाहिये। यथा—

नीलकं महिषं वस्त्रं कृष्णं लौहं सदक्षिणम्।
विश्वामित्रप्रियं दद्याच्छनिदुष्टप्रशान्तये॥

(८) राहु—राहु ग्रहके दोष-निवारणहेतु बहुमूल्य खड्ग (तलवार)-का दान करना चाहिये। काली भेड़, गोमेद, लोहा, कम्बल, सोनेका नाग, तिलपूर्ण ताम्रपात्रका दान करनेसे राहुजनित दोष शान्त होते हैं—

राहोर्दानं कृष्णमेषो गोमेदो लौहकम्बलौ।
सौवर्णं नागरूपं च सतिलं ताम्रभाजनम्॥

(९) केतु—जन्मकुण्डलीके अनुसार यदि केतु-ग्रह दोषकारक हो तो छाग (बकरी)-का दान करना चाहिये। केतु ग्रहकी प्रीतिके लिये स्वच्छ वैदूर्य (लहसुनिया), तैल, कस्तूरी, तिलयुक्त ऊनी वस्त्र [कम्बल, लोहा, छाता एवं उड़द]-का दान करना चाहिये—

केतोर्वैदूर्यममलं तैलं मृगमदं तथा।
ऊर्णांस्तिलैस्तु संयुक्तां दद्यात्क्लेशानुपत्तये॥

इस प्रकारसे नवग्रहोंहेतु विशिष्ट दान शास्त्रोंमें बताये गये हैं। पंचांग आदिमें भी नवग्रहोंके दानकी सारणी दी हुई रहती है। योग्य दैवज्ञके परामर्शसे कार्य सम्पन्न करना चाहिये। दान देते समय उसके साथ दक्षिणा भी अवश्य देनी चाहिये—ऐसा शास्त्रोंमें बताया गया है।

नवग्रहोंके निमित्त दान सामान्यतया उस ग्रहके वारको किया जाता है, यथा—सूर्यहेतु दान रविवारको, चन्द्रहेतु दान सोमवारको, मंगलका दान मंगलवारको, बुधका दान बुधवारको इत्यादि।

नवग्रहोंका दान

ब्रह्माण्डपुराणके अनुसार ग्रहोंकी प्रसन्नताके लिये नवग्रहमण्डलका दान भी किया जाता है। किसी चौकोर वेदीपर स्वच्छ वस्त्र बिछाकर नौ कोष्ठक बनाये। नौ कोष्ठकोंमें सूर्य आदि ग्रहोंकी यथासम्भव सुवर्णकी प्रतिमा स्थापित करे। मध्य कोष्ठकमें सूर्य, दक्षिणमें मंगल, उत्तरमें गुरु, उत्तरपूर्वमें बुध, पूर्वमें शुक्र, दक्षिणपूर्वमें चन्द्रमा, पश्चिममें शनि, पश्चिमदक्षिणमें राहु तथा पश्चिमोत्तरकोणमें केतुको यथाविधि स्थापित करे—

पूर्व

उत्तर | दक्षिण

बुध	शुक्र	चन्द्रमा
बृहस्पति	सूर्य	मंगल
केतु	शनि	राहु

पश्चिम

तदनन्तर उनके नाम-मन्त्रोंसे गन्धपुष्पादिसे अर्चनकर निम्न प्रार्थना करे—

सूर्यदेव—

पद्मासनः पद्मकरो द्विबाहुः
पद्मद्युतिः सप्ततुरङ्गवाहः।
दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी
मयि प्रसादं विदधातु देव॥

हे सूर्यदेव! आप रक्तकमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, आपके दो हाथ हैं तथा आप दोनों हाथोंमें रक्तकमल लिये रहते हैं। रक्तकमलके समान आपकी आभा है। आपके वाहन—रथमें सात घोड़े हैं, आप दिनमें प्रकाश फैलानेवाले हैं, लोकोंके गुरु हैं तथा मुकुट धारण किये हुए हैं, आप प्रसन्न होकर मुझपर अनुग्रह करें।

चन्द्रमा—

श्वेताम्बरः श्वेतविभूषणश्च
श्वेतद्युतिर्दण्डधरो द्विबाहुः।
चन्द्रोऽमृतात्मा वरदः किरीटी
श्रेयांसि मह्यं विदधातु देव॥

हे चन्द्रदेव! आप श्वेत वस्त्र तथा श्वेत आभूषण धारण करनेवाले हैं। आपके शरीरकी कान्ति श्वेत है। आप दण्ड धारण करते हैं, आपके दो हाथ हैं, आप अमृतात्मा हैं, वरदान देनेवाले हैं तथा मुकुट धारण करते हैं, आप मुझे कल्याण प्रदान करें।

मंगल—

रक्ताम्बरो रक्तवपुः किरीटी
चतुर्भुजो मेषगमो गदाभृत्।
धरासुतः शक्तिधरश्च शूली
सदा मम स्याद्वरदः प्रशान्तः॥

जो रक्त वस्त्र धारण करनेवाले, रक्त विग्रहवाले, मुकुट धारण करनेवाले, चार भुजावाले, मेषवाहन, गदा धारणकरनेवाले, पृथ्वीके पुत्र, शक्ति तथा शूल धारण करनेवाले हैं, वे मंगल मेरे लिये सदा वरदायी और शान्त हों।

बुध—

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी
चतुर्भुजो दण्डधरश्च हारी।
चर्मासिधृक् सोमसुतः सदा मे
सिंहाधिरूढो वरदो बुधश्च॥

जो पीत वस्त्र धारण करनेवाले, पीत विग्रहवाले, मुकुट धारण करनेवाले, चार भुजावाले, दण्ड धारण करनेवाले, माला धारण करनेवाले, ढाल तथा तलवार धारण करनेवाले और सिंहासनपर विराजमान रहनेवाले हैं, वे चन्द्रमाके पुत्र बुध मेरे लिये सदा वरदायी हों।

बृहस्पति—

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी
चतुर्भुजो देवगुरुः प्रशान्तः।
दधाति दण्डञ्च कमण्डलुञ्च
तथाक्षसूत्रं वरदोऽस्तु मह्यम्॥

जो पीला वस्त्र धारण करनेवाले, पीत विग्रहवाले, मुकुट धारण करनेवाले, चार भुजावाले, अत्यन्त शान्त स्वभाववाले हैं तथा जो दण्ड, कमण्डलु एवं अक्षमाला धारण करते हैं, वे देवगुरु बृहस्पति मेरे लिये वर प्रदान करनेवाले हों।

शुक्र—

श्वेताम्बरः श्वेतवपुः किरीटी
चतुर्भुजो दैत्यगुरुः प्रशान्तः।
तथाक्षसूत्रञ्च कमण्डलुञ्च
जयञ्च बिभ्रद्वरदोऽस्तु मह्यम्॥

जो श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले, श्वेत विग्रहवाले, मुकुट धारण करनेवाले, चार भुजावाले, शान्तस्वरूप, अक्षसूत्र, कमण्डलु तथा जयमुद्रा धारण करनेवाले हैं, वे दैत्यगुरु शुक्राचार्य मेरे लिये वरदायी हों।

शनिदेव—

नीलद्युतिः शूलधरः किरीटी
गृध्रस्थितस्त्राणकरो धनुष्मान्।
चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रशान्तो
वरप्रदो मेऽस्तु स मन्दगामी॥

जो नीली आभावाले, शूल धारण करनेवाले, मुकुट धारण करनेवाले, गृध्रपर विराजमान, रक्षा करनेवाले, धनुषको धारण करनेवाले, चार भुजावाले, शान्तस्वभाव, एवं मन्द गतिवाले हैं, वे सूर्यपुत्र शनि मेरे लिये वर देनेवाले हों।

राहु—

नीलाम्बरो नीलवपुः किरीटी
करालवक्त्रः करवालशूली।
चतुर्भुजश्चर्मधरश्च राहुः
सिंहासनस्थो वरदोऽस्तु मह्यम्॥

नीला वस्त्र धारण करनेवाले, नीले विग्रहवाले, मुकुटधारी, विकराल मुखवाले, हाथमें ढाल-तलवार तथा शूल धारण करनेवाले एवं सिंहासनपर विराजमान राहु मेरे लिये वरदायी हों।

केतु—

धूम्रो द्विबाहुर्वरदो गदाभृत्
गृध्रासनस्थो विकृताननश्च।
किरीटकेयूरविभूषिताङ्गः
सदास्तु मे केतुगणः प्रशान्तः॥

धुएँके समान आभावाले, दो हाथवाले, गदा धारण करनेवाले, गृध्रके आसनपर स्थित रहनेवाले, भयंकर मुखवाले, मुकुट एवं बाजूबन्दसे सुशोभित अंगोंवाले तथा शान्त स्वभाववाले केतुगण मेरे लिये सदा वर प्रदान करनेवाले हों।

इस प्रकार ग्रहोंके पूजन-अर्चनके अनन्तर ग्रहोंकी प्रतिमाओंको ब्राह्मणोंको दान कर दे। यह नवग्रहदान

सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला, सभी पापोंका शमन करनेवाला तथा शान्ति प्रदान करनेवाला है। यह दान विषुवत् संक्रान्ति, सूर्यचन्द्र-ग्रहण, जन्मनक्षत्र, सोमवार, पूर्णिमा एवं अमावस्याको शुभ कहा गया है। यदि यह दान प्रतिदिन किया जाय तो सर्वोत्तम फलदायक होता है—

विषुवत्ययने राहुग्रहणे शशिसूर्ययोः।
जन्मर्क्षे सोमवारे वा पञ्चदश्यां तथैव च॥
पुण्यकालेषु सर्वेषु पुण्यदेशे विशेषतः।
ग्रहदानं तु कर्तव्यं नित्यं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणा॥

ज्योतिष और रत्न

(डॉ० श्रीमूलवर्धनजी राजवंशी)

विश्वके प्रत्येक भागमें रत्नोंके प्रति प्राचीन कालसे ही विशेष आकर्षण रहा है। रत्न केवल आभूषणोंकी ही शोभा नहीं बढ़ाते, अपितु इनमें रोगनिवारणकी अद्भुत शक्ति भी है। आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सापद्धतिमें विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगोंकी चिकित्सामें रत्नोंके भस्म या पिष्टीका प्रयोग किया जाता है। होम्योपैथिक चिकित्सापद्धतिमें भी रत्नोंका मूल अर्क (मदर टिंचर) तैयारकर 'ग्योब्यूल्स' में प्रयोग किया जाने लगा है और उस दिशामें परीक्षण एवं प्रयोग जारी हैं। वैज्ञानिकोंकी मान्यता है कि हमारे शरीरमें सप्तरंगी किरणोंका निश्चित समानुपात है। किन्हीं कारणोंसे विभिन्न ग्रहोंसे निकलनेवाली अन्तरिक्षीय चुम्बकीय अल्ट्राकॉस्मिक किरणोंकी क्रियामें अगर किसी रंगकी किरणें अपनी सक्रियता खो देती हैं या उनका सन्तुलन न रहे तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। अतः जिस ग्रहकी कॉस्मिक किरणोंकी कमी हो, उस ग्रहके रत्नकी औषधि तैयारकर रोगीको देनेसे रोगका निवारण सम्भव है। प्राकृतिक चिकित्सामें भी सौर-मण्डलीय-ग्रह-रश्मियोंके सिद्धान्तके आधारपर ही रंगीन बोतलोंमें जल तैयारकर रोगनिवारणार्थ रोगीको पान कराया जाता है।

ज्योतिषशास्त्रकी भी मान्यता है कि उत्पत्तिके समय जिन-जिन रश्मियोंवाले ग्रहोंकी प्रधानता होती है, जातकका स्वभाव वैसा ही बन जाता है। कहा गया है—

माणिक्यं दिननायकस्य विमलं मुक्ताफलं शीतगो-
र्माहेयस्य च विद्रुमं मरकतं सौम्यस्य गारुत्मकम्।
देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शने-
र्नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेदवैडूर्यके॥

(जा०पा० २। २१)

सूर्यका माणिक, चन्द्रमाका विमल मोती, मंगलका मूँगा, बुधका पन्ना, बृहस्पतिका पुखराज, शुक्रका हीरा, शनिका नीलम, राहुका गोमेद और केतुका रत्न लहसुनिया है। अतः जो ग्रह विषम स्थितिमें होता है, उसके कारण उत्पन्न रोगके निवारणार्थ उससे सम्बन्धित रत्नको धारण करनेकी सलाह दी जाती है। आयुर्वेदके प्रमुख ग्रन्थ रसरत्नसमुच्चयमें बताया गया है कि रत्नोंके धारण करनेसे ग्रहोंकी प्रसन्नता, दीर्घायु, आरोग्य, विभव, उत्साहकी प्राप्ति तथा अलक्ष्मीका विनाश होता है।

सर्वसाधारणके हितार्थ एवं जानकारीहेतु नवग्रहोंकी विषम स्थितियों और उनसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, ताकि सही रत्नका चयन सम्भव हो सके।

१-सूर्यकी विषम स्थितियाँ

जब भी सूर्य नीचका या पापग्रहोंसे सम्बन्धित अथवा शत्रुस्थानमें स्थित होता है तो उस समय अति कष्टदायक सिद्ध होता है और अनेक रोगोंका कारण होता है। सूर्यकी अन्य विषम स्थितियाँ इस प्रकार हो सकती हैं—

(क) सूर्य तुला राशिमें सप्तम, अष्टम या द्वादश भावमें स्थित हो और नीच राशिस्थ मंगल उसे चौथी दृष्टिसे देखता हो।

(ख) यदि जन्मकाल या गोचरमें वृष, तुला, मकर

या कुम्भराशिमें हो।

(ग) शनि मंगलको देखता हो, मंगल सूर्यको देखता हो और सूर्य शनिको देखता हो। सूर्यकी महादशामें सूर्यान्तरमें दुर्घटनाका योग होता है।

(घ) सूर्य अष्टममें मंगलके साथ हो।

सूर्यके प्रभावसे होनेवाले रोग

जब सूर्य रोगकारक होता है तो निम्नलिखित रोगोंकी सम्भावना होती है—पित्त, उष्णज्वर, शरीरमें जलन, अपस्मार, हृदयरोग, नेत्ररोग, चर्मरोग, रक्ताल्पता, पीलिया, लीवर, हैजा, शिरोव्रण, विषज व्याधियाँ, दाहज्वर आदि।

२-चन्द्रकी विषम स्थितियाँ

(क) चन्द्रमा वृश्चिक (नीच) राशिका तीसरे, छठे, आठवें या बारहवें घरमें हो। कन्याराशिगत ७, ९, २ में हो।

(ख) लग्नमें अष्टम नीचका हो और शनि ग्यारहवें या दूसरे भावसे १०वीं दृष्टिसे देखता हो।

(ग) क्षीण चन्द्र अष्टममें हो या मकर राशिका हो तथा शनि द्वितीय या ग्यारहवें भावसे देखता हो।

(घ) चन्द्रमाकी महादशामें शनिका अन्तर हो। कुण्डलीमें चन्द्र पापग्रहोंसे सम्बन्ध या युति रखता हो या मंगल देखता हो।

(ङ) चन्द्रमा गोचरमें पाँचवें, आठवें या बारहवें होनेपर कष्टदायक होता है। इन स्थितियोंमें चन्द्रमा निम्नलिखित रोग तथा कष्ट उत्पन्न करता है।

चन्द्रमाके प्रभावसे होनेवाले रोग

मूत्राशय-सम्बन्धीरोग, मधुमेह, अतिसार, अनिद्रा, नेत्ररोग, विक्षिप्तता, पीलिया, मानसिक थकान, शीत ज्वर, अरुचि, मन्दाग्नि, सूखी खाँसी, कुक्कुर खाँसी, दमा, श्वास रोग आदि। इसके लिये मोती धारण करना लाभदायक है।

३-मंगलकी विषम स्थितियाँ

(क) जन्मकुण्डलीमें मंगल कर्क राशिका होकर लग्न, सप्तम या चतुर्थमें बैठा हो।

(ख) मंगल शत्रु ग्रहोंके साथ स्थित हो और सूर्यसे दृष्ट हो।

(ग) मंगल मिथुन अथवा तुला राशिमें कम अंशका हो और तीसरे या नवम भावका स्वामी हो तथा शनिद्वारा दृष्ट हो।

(घ) मंगलकी दशामें मंगलका अन्तर हो। उस समय गोचर चौथे, आठवें, बारहवें वक्री हो तो कई प्रकारके कष्ट उत्पन्न करता है।

मंगलके प्रभावसे होनेवाले रोग

रक्तप्रवाह, रक्तातिसार, जल जाना, उच्च रक्तचाप, दुर्घटना, रक्तविकार, चर्मरोग (दाद, खाज, खुजली), बवासीर, कुष्ठ, फोड़ा-फुंसी, हड्डी टूटना, पित्त ज्वर, गुल्म आदि।

४-बुधकी विषम स्थितियाँ

(क) बुध मीनका बारहवें, आठवें या पंचममें हो।

(ख) बुध शत्रुगृही हो और शनिके साथ बारहवें, नवम या द्वितीय भावमें हो।

(ग) बुध राहुके साथ सप्तममें हो।

बुधके प्रभावसे होनेवाले रोग

मूक-बधिरता, नपुंसकता, अजीर्ण, शक्तिहीनता, आमाशयकी गड़बड़ी, वायुजन्य पीड़ा, हृदयगति रुकना, सन्निपात, भ्रान्ति, गले या नासिकाके रोग, उन्माद, जिह्वारोग, मिर्गी आदि।

५-गुरुकी विषम स्थितियाँ

(क) गुरुकी शत्रु ग्रहोंके साथ युति हो और मंगल अथवा शनिसे दृष्ट हो।

(ख) लग्नसे दूसरे वृश्चिक राशिका हो या लग्नसे तीसरे मिथुन राशिका हो या लग्नसे छठे मिथुन राशिका अथवा लग्नसे आठवें तुला राशिका हो।

(ग) कुण्डलीमें गुरु मकरका लग्न, सप्तम या अष्टममें हो।

(घ) मकरका गुरु राहुके साथ सप्तम या दशममें हो।

गुरुके प्रभावसे होनेवाले रोग

गलेकी तकलीफ, श्वासकष्ट, कफ, अतिसार,

लीवर-सम्बन्धी कष्ट, पक्षाघात, गठिया, वातज व्याधियाँ, आमवात, मूर्छा, कानके रोग, राजयक्ष्मा आदि।

६-शुक्रकी विषम स्थितियाँ

(क) शुक्र नीचका (कन्या राशिगत) लग्नमें, सप्तममें या व्यय स्थानमें हो।

(ख) शुक्र शत्रुगृही (कर्क और सिंह राशिस्थ) हो या शत्रु ग्रहोंकी युति हो और नवम अथवा दशममें बैठा हो।

(ग) शुक्रपर शत्रुग्रहोंकी नीच दृष्टि हो या शुक्र ग्रहकी महादशामें हो।

(घ) शुक्र राहु, सूर्यके साथ तीसरे भावमें बैठकर भाग्यस्थानको देखता हो।

शुक्रके प्रभावसे होनेवाले रोग

वीर्यदोष, नेत्ररोग (पानी गिरना, जाला, मोतियाबिन्द, धुँध आदि), हिस्टिरिया, कुण्ठित बुद्धि, सर्वांग शोथ, मधुमेह, प्रदररोग, गुदा अथवा इन्द्रियरोग, प्रमेह, सुजाक, गर्भाशय-सम्बन्धी रोग, अण्डकोषवृद्धि, मूत्ररोग, धातुका जाना, नासूर, नपुंसकता, गोनोरिया, हर्निया आदि।

७-शनिकी विषम स्थितियाँ

(क) कुण्डलीमें शनि मेष राशिका किसी भी भावमें बैठा हो, वह उस भावके प्रभावको बिगाड़ देता है।

(ख) शनि कर्क या वृश्चिक राशिगत होकर लग्न, तृतीय, पंचम या सप्तममें हो।

(ग) शनि और मंगलकी किसी भी त्रिकोणमें दोहरी सन्धि या युति हो।

(घ) शनि राहु, शुक्रके साथ केन्द्रमें हो या शनिमें मंगलका अन्तर हो।

शनिके प्रभावसे होनेवाले रोग

पक्षाघात, हाथ-पैर या शरीरका कम्पन, मिर्गी, मानसिक या स्नायुसम्बन्धी रोग, गठिया, कैंसर, वातोदर, राजयक्ष्मा, विषबाधा, सूजन, उदरशूल, बार-बार ऑपरेशन होना, प्लीहोदर, कृमिरोग आदि।

८-राहुकी विषम स्थितियाँ

(क) राहु अष्टम भावमें हो तथा मंगलकी उसपर दृष्टि हो।

(ख) शनि राहुकी युति हो और राहु धनु राशिका हो।

(ग) राहु नीचका नवम भावमें हो और मंगल या शनिकी उसपर दृष्टि हो।

(घ) राहु मेष, कर्क, सिंह या वृश्चिक राशिका लग्न, चतुर्थ, छठे अथवा दशम भावमें हो।

राहुके प्रभावसे होनेवाले रोग

मस्तिष्क रोग, कब्ज, अतिसार, भूत-प्रेतका भय, चेचक, कुष्ठ रोग, कैंसर, गठिया, वायुविकार, ह्रदयरोग, रीढ़की हड्डी टूटना, त्वचा रोग आदि।

९-केतुकी विषम स्थितियाँ

(क) केतु नीचका होकर वृष या मिथुन राशिपर शुक्रके साथ स्थित हो।

(ख) केतु जन्मकुण्डली या गोचरमें सूर्यके साथ सप्तम या अष्टममें हो।

(ग) केतु लग्न या पंचममें शनिके साथ हो।

(घ) केतु शत्रुगृही (मेष, कर्क, सिंह, वृश्चिकका) द्वितीय, तृतीय, पंचम या सप्तममें शनिके साथ हो और सूर्य उसे देखता हो।

केतुके प्रभावसे होनेवाले रोग

रक्ताल्पता, जल जाना, कैंसर, हैजा, निमोनिया, दमा, त्वचा या मूत्ररोग, प्रसवपीड़ा, छूतकी बीमारी, पित्तरोग, बवासीर आदि।

उपरत्नोंका प्रयोग

अत्यधिक मूल्यवान् होनेके कारण कुछ रत्न ऐसे हैं, जिन्हें सामान्यजन खरीदकर धारण नहीं कर सकते। इसके अलावा अत्यधिक मूल्य चुकानेपर भी कई बार असली रत्न प्राप्त नहीं होते। हर एक आदमीको सही रत्नकी परख भी नहीं होती है। ऐसी अवस्थामें सामान्यजनद्वारा उपरत्नोंका उपयोग करना ही उपयुक्त है; क्योंकि उनका मूल्य भी उनकी क्रयशक्तिके अनुकूल होता है और पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होनेके कारण नकली (कृत्रिम) होनेकी सम्भावना कम रहती है और ग्रहोंके अरिष्टनाशक गुणकी दृष्टिसे भी इनका अच्छा प्रभाव अनुभव किया गया है। जो गुण रत्नोंमें होते हैं, वे ही उपरत्नोंमें भी होते हैं। अत: ग्रहोंके अनुसार

अरिष्ट (रोग)-निवारणार्थ निम्न उपरत्न धारण किये जा सकते हैं—

ग्रह	रत्न	उपरत्न
सूर्य	माणिक्य	सूर्यकान्त मणि या लालड़ी, तामड़ा
चन्द्र	मोती	चन्द्रकान्त मणि
मंगल	मूँगा	विद्रुम मणि या संघ मूँगी, रतुआ, लाल अकीक
बुध	पन्ना	मरगज, जबरजन्द
बृहस्पति	पुखराज	सोनल या सुनेला
शुक्र	हीरा	कुरंगी, दतला, सिम्मा, तुरमली
शनि	नीलम	जमुनिया नीली, लाजवर्त, काला अकीक
राहु	गोमेद	साफी, तुरसा, भारतीय गोमेद
केतु	लहसुनिया	फिरोजा, गोदन्त, संघीय

प्रमुख उपरत्नोंके विशेष गुण

तामड़ा—यह प्रदाहकारी रोगोंको शान्त करता है। मित्रता एवं प्रेममें स्थायित्व स्थापित करता है तथा धैर्य एवं साहस प्रदान करता है।

चन्द्रकान्त मणि—स्मृति, मानसिक शान्ति, अनिद्रानाश, हृदयकष्ट आदिके लिये विशेष लाभदायक।

रतुआ—रक्तस्राव रोकता है, अर्बुद एवं ज्वरनाशक तथा स्वर (आवाज)-को स्पष्ट करता है।

सुनेला—कण्ठसम्बन्धी कष्ट, ज्वर, हैजा, हिस्टिरिया, हृदयस्पन्दन, वमन, कामला, दन्तकष्ट, मासिक धर्म-सम्बन्धी कष्ट और नपुंसकतामें उपयोगी तथा जीवनको सुरक्षा प्रदान करता है।

मरगज—इस उपरत्नका प्रभाव पन्नाके समान है।

तुरमली—इसको मास्टर स्टोन भी कहा जाता है। यह उपरत्न जीवनकी समस्याओंको शीघ्रतासे हल करते हुए भौतिक सुख प्रदान करता है और कुछ बुरा फल नहीं देता है।

लाजवर्त—चर्मरोगोंमें उपयोगी है।

फिरोजा—यह गम्भीर खतरोंसे रक्षाकर दीर्घायु प्रदान करता है। सन्तानोत्पादक एवं कामशक्तिमें वृद्धि करता है।

आनेक्स—दाम्पत्यसुख प्रदान करता है, विषैले जन्तुओंके काटनेसे बचाता है।

कटेला—रतौंधी, पक्षघात, मासिक धर्म-सम्बन्धी कष्टोंमें उपयोगी।

ओपल—स्मरणशक्तिमें वृद्धि करता है।

दानाफिरेगा—गुर्देसे सम्बन्धित कष्टोंको दूर कर सकता है।

रत्न अथवा उपरत्न धारण करनेसे पूर्व किसी योग्य ज्योतिषीसे परामर्श कर लेना चाहिये और रत्न धारण करनेके अँगुली, उपयुक्त तिथि, नक्षत्र, वार, समय, नगका वजन, अँगूठी, धातु आदिकी जानकारी प्राप्त कर लेनी भी आवश्यक है। रोग अथवा पीड़ाकारक ग्रहके मन्त्रका जप निश्चित संख्यामें करते हुए प्राणप्रतिष्ठा करनेके पश्चात् धारण किया हुआ रत्न विशेष प्रभावकारी होता है।

नवग्रहोंके जपनीय मन्त्र

ग्रह	तान्त्रिक-मन्त्र	बीज-मन्त्र
सूर्य	ॐ घृणिः सूर्याय नमः ॥	ॐ ह्रीं ह्रौं सूर्याय नमः ॥
चन्द्र	ॐ सों सोमाय नमः ॥	ॐ ऐं क्लीं सोमाय नमः ॥
भौम	ॐ अं अङ्गारकाय नमः ॥	ॐ हूँ श्रीं भौमाय नमः ॥
बुध	ॐ बुं बुधाय नमः ॥	ॐ ऐं श्रीं श्रीं बुधाय नमः ॥
गुरु	ॐ बृं बृहस्पतये नमः ॥	ॐ ह्रीं क्लीं हूँ बृहस्पतये नमः ॥
शुक्र	ॐ शुं शुक्राय नमः ॥	ॐ ह्रीं श्रीं शुक्राय नमः ॥
शनि	ॐ शं शनैश्चराय नमः ॥	ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शनैश्चराय नमः ॥
राहु	ॐ रां राहवे नमः ॥	ॐ ऐं ह्रीं राहवे नमः ॥
केतु	ॐ कें केतवे नमः ॥	ॐ ह्रीं ऐं केतवे नमः ॥

योगिनियोंके अरिष्ट-शमनहेतु मन्त्र

योगिनी	मन्त्र
मंगला	ॐ ह्रीं मङ्गले मङ्गलायै स्वाहा ॥
पिंगला	ॐ ग्लौं पिङ्गले वैरिकारिणि प्रसीद फट् स्वाहा ॥
धान्या	ॐ श्रीं धनदे धान्यै स्वाहा ॥
भ्रामरी	ॐ भ्रामरि जगतामधीश्वरी भ्रामरी क्लीं स्वाहा ॥
भद्रिका	ॐ भद्रिके भद्रं देहि अभद्रं नाशय स्वाहा ॥
उल्का	ॐ उल्के मम रोगं नाशय जृम्भय स्वाहा ॥
सिद्धा	ॐ ह्रीं सिद्धे मे सर्वमानसं साधय स्वाहा ॥
संकटा	ॐ ह्रीं सङ्कटे मम रोगं नाशय स्वाहा ॥

ज्योतिष और रोग

(डॉ० कल्पनाजी ठोंबरे)

ज्योतिषशास्त्रके ग्रन्थोंमें कालरूपी पुरुषके शरीरके विविध अंगोंमें मेषसे लेकर मीनतक बारह राशियोंकी स्थापना की गयी है, जिसके आधारपर उसके अंग रोगग्रस्त या स्वस्थ हैं, यह जाना जा सकता है। ज्योतिषशास्त्रकी मान्यताके अनुसार **मेष** राशि-सिर, **वृष**-मुख, **मिथुन**-भुजा, **कर्क**-हृदय, **सिंह**-पेट, **कन्या**-कमर, **तुला**-वस्ति, **वृश्चिक**-गुप्तांग, **धनु**-ऊरू, **मकर**-घुटने, **कुम्भ**-जंघा तथा **मीन** राशि पैरोंका प्रतिनिधित्व करती है।

मेष आदि बारह राशियाँ स्वभावत: जिन-जिन रोगोंको उत्पन्न करती हैं, वे रोग इस प्रकार हैं—

मेष-नेत्ररोग, मुखरोग, सिरदर्द, मानसिक तनाव तथा अनिद्रा।

वृष-गले एवं श्वासनलीके रोग, आँख, नाक एवं गलेके रोग।

मिथुन-रक्तविकार, श्वास, फुफ्फुस रोग।

कर्क-हृदयरोग तथा रक्तविकार।

सिंह-पेटरोग तथा वायुविकार।

कन्या-आमाशयके विकार, अपच, जिगर और कमरदर्द।

तुला-मूत्राशयके रोग, मधुमेह, प्रदर एवं बहुमूत्र।

वृश्चिक-गुप्तरोग, भगन्दर, संसर्गजन्यरोग।

धनु-यकृत्-रोग, मज्जारोग, रक्तदोष, अस्थिभंग।

मकर-वातरोग, चर्मरोग, शीतरोग, रक्तचाप।

कुम्भ-मानसिकरोग, ऐंठन, गर्मी, जलोदर।

मीन-एलर्जी, गठिया, चर्मरोग एवं रक्तविकार।

नवग्रहोंके रोग

सभी पापग्रह रोगोंको उत्पन्न करते हैं, यदि ये शुभ स्थितिमें न हों तो भी रोगोंको देते हैं।

सूर्यके रोग—आँखोंकी रोशनी कम होना, अन्धापन, सिर तथा नेत्रपीड़ा, ज्वर, अतिसार, क्षय, पित्तविकार, अग्नि या आग्नेय शस्त्र तथा लकड़ीसे पीड़ा करता है। हृदय तथा पेटमें रोग, शत्रुसे भय कराता है। चर्मरोग, अस्थिभंग, स्त्री-पुत्रहानि, पशु-राजा और चोरसे हानि, देवता-ब्राह्मण-भूत तथा सर्पसे भय उत्पन्न कराता है। अपमान, पदावनति, जीवनशक्तिका ह्रास, चिड़चिड़ा होना आदि।

चन्द्रमाके रोग—चन्द्रमा कमजोर हो तो निद्रा नहीं आना, अत्यधिक नींद आना, नींदमें चलना, नींदसे सम्बन्धित रोग, फोड़ा, बदहजमी, अग्निमन्दता, ठण्ड देनेवाले रोग, साइनस, पीलिया, लगातार शरीरका कमजोर होना, सर्दीसे लगनेवाले दस्त, स्त्री या स्त्रीदेवतासे पीड़ा, शीतज्वर, रक्तविकार, खूनकी कमी, रक्तसम्बन्धी सभी बीमारी, जलतन्तु, जलदशावाले पशुसे पीड़ा, जलमें डूबना, सींगवाले पशुओंसे पीड़ा आदि।

मंगलके रोग—मंगल पापदृष्ट या पीड़ित हो तो मांस, मज्जादोष (सूखारोग), रक्तकोप (रक्तमें खराबी), ज्वर, पित्तदोष, विष और अस्त्र-शस्त्रसे पीड़ा, गर्मी देकर आनेवाले दोष, देहभंग, खुजली, नेत्रपीड़ा, कुष्ठ, एग्जिमा, मिर्गी, घाव, दन्तपीड़ा, क्षत्रियोंसे पीड़ा, राज्याधिकारीसे पीड़ा, अँगुलियाँ सूजना, निष्ठुरता, वायुगोला, भाईसे क्लेश, शत्रु, चोरसे पीड़ा, बायें कानके रोग, टायफाइड, मूत्रपिण्डमें तकलीफ, माता निकलना, पथरी एवं गुर्देके रोग आदि होते हैं।

बुधके रोग—यदि बुध पापग्रहसे युक्त या पापग्रहसे दृष्ट हो तो भ्रम, शंकाकी आदत, सन्निपात-ज्वर, दुष्ट सपने आना, बेहोशी, हिस्टीरिया, दुष्ट-वचन, तुतलाना, वाणीके अंगोंमें दोष, ओष्ठ-तालू-जीभ और स्वर-यन्त्रकी खराबी, चर्मरोग, संग्रहणी, पेचिश तथा अतिसार आदि रोग होते हैं।

गुरुके रोग—गुरु यदि पापयुक्त या पापदृष्ट हो तो आँतके रोग, मूर्छा आना, दिमाग सुन्न हो जाना, शोक-विलाप, किसी अंगमें सूजन, रक्तसंचरणसम्बन्धी रोग, खूनका थक्का जमना, मोटापा, वमनपीड़ा, कर्णपीड़ा, गुरु या ब्राह्मणका शाप, लीवरके दोष, पीलिया तथा मधुमेह आदि।

शुक्रके रोग—यदि शुक्र पापदृष्ट या इससे युक्त हो तो प्रमेह, बहुमूत्रपीड़ा, पेशाब रुकना, प्रदररोग, मूत्रमें जलन, मूत्र रुक-रुककर आना, गुर्दे ठीकसे काम न करना, नेत्ररोग, शरीर पीला पड़ना, गुप्तांगरोग, अत्यधिक कामपीड़ा (व्यभिचार), दुष्ट स्त्रियोंकी संगति, नपुंसकत्व गर्भाशय-सम्बन्धीरोग, गलेके रोग, चकत्ते होना, गले और स्तनके रोग, श्वासरोग, दमा, श्वेत कुष्ठ, दमेसे सांस फूलना इत्यादि रोग।

शनिके रोग—शनि पापदृष्ट या इससे युक्त हो तो बहुत पीड़ादायक, बहुत ज्यादा बहकना, पैर दुखना, पिण्डलियाँ दुखना, जोड़ों तथा घुटनोंमें दर्द, हृदयमें ताप, हाई-लो ब्लडप्रेसर, दाँतके रोग, दरिद्रता, आलस्य, लकवा, कोई भी दीर्घ अवधिका रोग, भूख अधिक लगना, नस-नाड़ियोंके रोग, जाँघ-पिण्डलीके रोग इत्यादि।

राहुके रोग—यदि राहु पापदृष्ट हो तो कुष्ठरोग, हृदयरोग, भूतबाधा, स्मरणशक्ति कमजोर होना, भूख-प्याससे सम्बन्धित बीमारी, छोटी माता (खसरा), पेटमें कीड़े, बन्धन (हथकड़ी, रस्सीसे बँधना) आदि होते हैं।

केतुके रोग—यदि केतु पापदृष्ट हो तो सारे शरीरमें खुजली चलना, चित्ती निकलना, प्रेतपीड़ा, दस्त बन्द हो जाना, तान्त्रिकपीड़ा आदि।

गूँगेपनका योग

द्वितीय और पंचमभाव वाणीके स्थान हैं, यानी जब द्वितीयेश, पंचमेश और गुरु पापप्रभावमें हों और वाणीका कारक बुध भी पापप्रभावमें हो, इसके अतिरिक्त द्वितीयेश, पंचमेश, सूर्य, शनि, राहु, व्ययेश इनमेंसे किसी भी दोके प्रभावमें हो तो व्यक्ति गूँगा हो सकता है। उदाहरण—

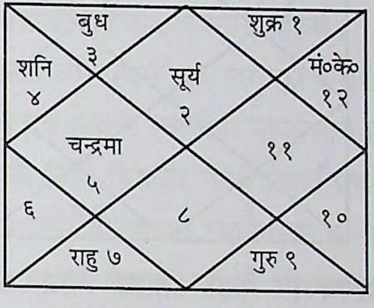

उक्त कुण्डलीमें द्वितीय भावके आस-पास पापग्रह होनेसे पापकर्तरीयोगसे द्वितीयेश पीड़ित है। बुध मंगलसे दृष्ट है। नवीं दृष्टि राहुकी, अष्टमेश गुरुकी दृष्टि बुधपर आ रही है। कारक होनेसे पीड़ित है। शनिकी तीसरी दृष्टि पंचम भावपर आ रही है। लग्नेश शुक्र और व्ययेशपर भी आ रही है।

आत्मघातयोग

कुण्डलीमें तीन बातें निज (Self)-को दर्शाती हैं—सूर्य-चन्द्र निज है अर्थात् चन्द्रलग्न, सूर्यलग्न, जन्म-लग्न, लग्नेश, तृतीय, एकादशभाव (दोनों भुजा)—ये तीनों जब पापप्रभावमें हों तो आत्मघातकी सम्भावना रहती है।

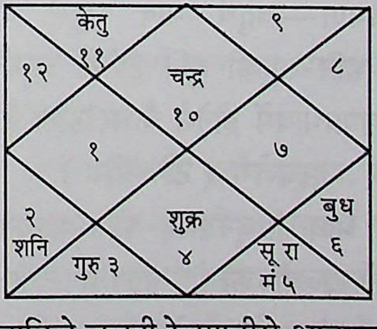

इस व्यक्तिने चलती रेलगाड़ीसे आत्महत्या करनेकी कोशिश की थी, अतः यह ग्रह निजके पूर्ण प्रतिनिधि हैं। मंगलकी दृष्टि दो निज स्थानों ३रे, ११वें भावपर आ रही है।

एड्सका योग

अष्टमस्थान, अष्टमेश, अष्टममें पड़ा ग्रह और अष्टमको देखनेवाले ग्रह इसके अलावा शुक्र, मंगल,

शनि अष्टममें बैठे हैं, इनकी स्थिति एड्सको होना बताती है।

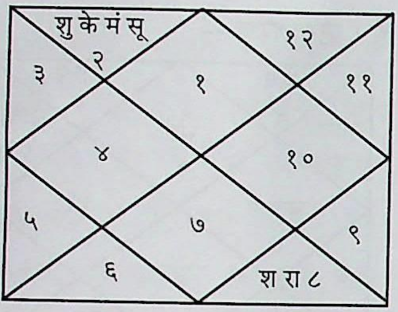

विश्लेषण—यहाँ आठवाँ भाव, अष्टमेश तथा सूर्य दोनोंपर मंगलकी युतिका प्रभाव है। राहु भी मरणकी इस योजनामें शामिल है।

कैंसरका योग

चतुर्थ भाव और चौथी राशि कर्क राहुसे युत या दृष्ट हो और भावाधिपति भी पीड़ित या शत्रुक्षेत्री या नीचराशिमें हो तो कैंसरकी सम्भावना होती है।

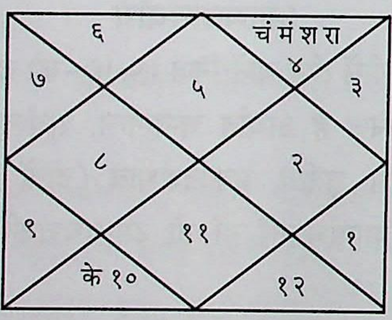

विश्लेषण—चतुर्थ भाव राहुसे पीड़ित है। कर्कराशिमें शनि-राहुकी युति होनेसे चतुर्थका स्वामी मंगल भी पापप्रभावमें होनेसे कैंसर होता है।

क्षयरोग (टी०बी०)

तृतीय भाव मिथुनराशि, शनि-राहुकी युति या दृष्टिमें हो तो टी०बी०का रोग होता है। तृतीय दुर्बल हो तो भी जातकको क्षयरोग होगा।

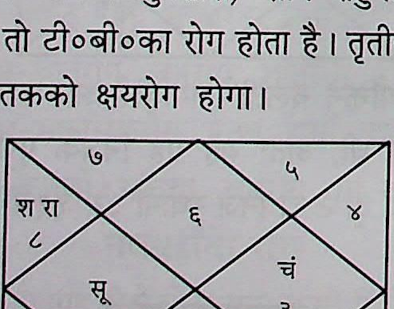

विश्लेषण—तृतीय स्थानमें शनि-राहु दो ग्रह बैठे हैं, जो रोगकारक हैं। तृतीय स्थान फेफड़ेसे सम्बन्धित है। अतः यह फेफड़ेसे सम्बन्धित रोग है।

नपुंसकता या बंध्यापन (बाँझपन)

यह सन्तान नहीं होनेसे सम्बन्धित व्याधि है। सप्तम भाव, सप्तम राशि तुला यदि शनि-राहुसे दृष्ट या युक्त हो और शुक्र-शनिके प्रभावमें या नीचका हो तो शुक्रमें कीटोंका अभाव और स्त्रीके रजमें बाँझपन होता है।

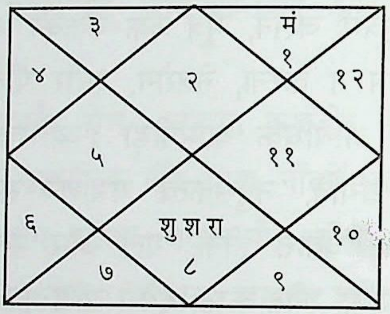

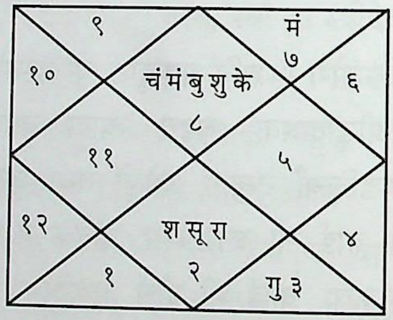

विश्लेषण—शुक्र तथा सप्तम भाव शनि-राहुसे पीड़ित है। मंगल व्ययेशकी दृष्टि भी सप्तमपर आ रही है।

रोगविचारकी दृष्टिसे भावोंका महत्त्व अत्यधिक है। कुण्डलीमें लग्नसे प्रारम्भकर बारह भाव माने गये हैं। इन भावोंमेंसे प्रथम, छठा, अष्टम एवं बारहवाँ भाव रोग-विचारसे सम्बन्धित है। द्वितीय एवं सप्तम भाव मारकभाव होनेसे स्वास्थ्यसे सम्बन्धित है। इस प्रकार ये छः भाव रोगके विचारसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रथम भाव या लग्न मनुष्यके सम्पूर्ण शरीर एवं स्वास्थ्यका प्रतिनिधित्व करता है। इस भावसे शारीरिक सुख-दुःख तथा स्वास्थ्यका विचार किया जाता है।

छठा भाव शत्रुओंका प्रतिनिधित्व करता है। मनुष्यके स्वास्थ्यके लिये रोग सबसे शक्तिशाली शत्रु होते हैं। इस भावसे जातकके जीवनमें होनेवाले रोगोंके बारेमें जान

सकते हैं।

अष्टम भाव आयु और मृत्यु दोनोंका होता है। आयु और मृत्यु एक-दूसरेसे सम्बन्धित है। मृत्यु किसी-न-किसी रोग या दुर्घटनासे होती है। इस प्रकार इस भावसे मृत्यु देनेवाले रोग, मृत्युके कारण और जातकके जीवनकी अवधिका विचार किया जाता है। रोगोंके ठीक होने या न होनेके बारेमें भी इस भावसे विचार किया जाता है।

बारहवें भावको व्ययभाव कहा जाता है। व्ययका मतलब होता है खर्च होना। जातकको होनेवाले रोग शरीर तथा जीवनको हानि पहुँचानेवाले होते हैं, इसलिये इस भावसे भी रोगोंका विचार किया जाता है।

कुण्डलीमें अष्टम भाव तथा अष्टमसे अष्टम अर्थात् तृतीय ये दोनों भाव आयुके भाव माने गये हैं। इनसे आयुका विचार किया जाता है। कुण्डलीके बारहवें भावको व्यय कहा जाता है। उसी प्रकार आठवें और तीसरे भावसे बारहवाँ भाव—सप्तम और द्वितीय भाव ये दोनों मृत्युके सूचक होते हैं, इसलिये इन दोनों भावोंसे मृत्यु या जीवनमें होनेवाले मृत्युतुल्य कष्टोंका विचार किया जाता है। ये दोनों भाव मारकभाव कहलाते हैं।

इस प्रकार कुण्डलीके बारह भावोंमेंसे पहला, छठा, आठवाँ, बारहवाँ, दूसरा और सातवाँ—इन छः भावोंका रोग-विचारसे सम्बन्ध है। रोगोंका विचार करते समय इन भावोंका विचार करना चाहिये।

ज्योतिषशास्त्रमें प्रथम भाव लग्नको शरीर माना गया है। प्रथम भाव एवं भावके स्वामीपर पापप्रभाव हो तो शरीर और स्वास्थ्यके लिये हितकर नहीं होता। प्रथम भावका स्वामी नीच राशिमें हो तो भी रोगकारक होता है।

छठा स्थान एवं उसका स्वामी भी रोगकारक होता है। यह छठे भावमें ही हो तो स्वयंकी प्रकृति एवं कारकत्वके अनुसार रोग देता है। जैसे छठे भावमें चन्द्रमा हो तो कफविकार, शीतज्वर, नेत्रविकार आदि रोग होंगे। षष्ठेशका किसी दूसरे भावसे परिवर्तनयोग हो तो उस भावसे सम्बन्धित अंगको रोग होगा।

आठवाँ और बारहवाँ भाव भी रोगकारक स्थान होनेसे इनके स्वामी ग्रह भी रोगकारक होते हैं। इन भावोंके स्वामी मंगल या शनि हों तो वे और अधिक शक्ति प्राप्तकर जिस भाव या राशिपर अपनी युति और दृष्टिसे प्रभाव डालेंगे उस राशि-भाव-सम्बन्धी अंगमें रोग पैदा होंगे।

हृदयरोगका ज्योतिषशास्त्रीय निदान एवं उपचार

(डॉ० श्रीशत्रुघ्नजी त्रिपाठी)

मानव-जीवनके साथ ही रोगका इतिहास भी आरम्भ होता है। रोगोंसे रक्षाहेतु मनुष्यने प्रारम्भसे ही प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया तथा आजतक इसके निदान एवं उपचारहेतु वह प्रयत्न कर रहा है। जब हैजा, प्लेग, टी०बी० आदि संक्रामक रोगोंसे ग्रस्त होकर इनसे छुटकारा पानेके लिये विविध प्रकारका अन्वेषण हुआ तो कालान्तरमें पुनः कैंसर, एड्स, डेंगू-सदृश अनेक रोग उत्पन्न हो गये, जिनके समाधान एवं उपायहेतु आज समस्त विश्व प्रयत्नशील है। विडम्बना है कि मनुष्य जितना ही प्राकृतिक रहस्योंको खोजनेका प्रयास करता है, प्रकृति उतना ही अपना विस्तार व्यापक करती जाती है, जिसके समाधानके समस्त उपाय विश्वके लिये नगण्य पड़ जाते हैं, इसमें मानवका असदाचार ही मुख्य हेतु प्रतीत होता है।

हमारे प्राचीन ऋषियोंने जहाँ अणुवाद, परमाणुवादको व्याख्यायित किया, अध्यात्मकी गहराइयोंमें गोता लगाया, सांख्यके प्रकृति एवं पुरुषसे सृष्टिप्रक्रियाको जोड़ा, वहीं आकाशीय ग्रह-नक्षत्रोंको बाँसकी कमाची (पट्टी)-से कोसों दूर धरतीपर बैठकर वेधित किया तथा उनके धरतीपर पड़नेवाले शुभाशुभ प्रभावोंको मानवजीवनके साथ जोड़कर व्याख्यायित किया।

विश्वके सर्वप्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदसे रोगोंका परिज्ञान आरम्भ हो जाता है, जिसमें पाण्डुरोग, हृदयरोग, उदररोग एवं नेत्ररोगोंकी चर्चा प्राप्त होती है। पौराणिक

कथाओंमें तो विविध प्रकारके रोगोंकी चर्चा एवं उपचारके लिये औषधि, मन्त्र, एवं तन्त्र आदिका प्रयोग प्राप्त होता है।

आर्षपरम्परामें तो रोगोंके विनिश्चयार्थ ज्योतिषशास्त्रीय ग्रहयोगोंसहित आयुर्वेदीय परम्पराका विकास सर्वतोभावेन दर्शनीय है। पद-पदपर सुश्रुत, चरक आदि आचार्योंने चिकित्सार्थ तथा माधवने निदान एवं आचार्य सुश्रुतने अस्थि-सम्बन्धित ज्ञान एवं शल्यक्रियाकी पद्धतिके द्वारा रोगोंके उपचारमें अतुलनीय योगदान दिया। स्वास्थ्यविज्ञानके साथ ही अन्य विषयों एवं तथ्योंका जनक ज्योतिर्विज्ञान आरम्भसे ही ग्रहोंके द्वारा मानवजीवनके विभिन्न पहलुओंको प्रदर्शित करता रहा है। हमारे पूर्वाचार्य दैवज्ञोंने ग्रह-प्रभावोंका धरातलपर बैठकर साक्षात्कार किया तथा भौम-दिव्य एवं नाभस प्रभावोंको शिष्य-परम्पराके द्वारा लिपिबद्ध कराया। आज जो भी हमारे समक्ष ज्योतिषशास्त्रके ग्रन्थ हैं, वे प्राचीन आचार्योंके अथक परिश्रम एवं सतत अन्वेषणके परिणामस्वरूप हैं।

ज्योतिष एवं रोग

ज्योतिषशास्त्रमें रोग और उसकी दैवव्यपाश्रय चिकित्सा प्राप्त होती है। कफ-वात-पित्त—तीनों प्रकृतियोंके द्वारा ग्रहोंका सम्बन्ध, शरीरांगोंमें राशियों एवं ग्रहोंका विनिवेश, बालारिष्ट, आयु आदि विषयोंकी प्राप्ति रोगकी दिशामें महत्त्वपूर्ण आयाम हैं। ज्योतिषमें रोगोंका वर्गीकरण, लक्षण (ग्रहयोग) तथा उपाय (उपचार)-की परिचर्चा प्राप्त होती है।

ज्योतिषशास्त्रने ही प्रधान रूपसे रोगोत्पत्तिके मूल कारणोंमें 'कर्म' को स्वीकार किया है, इसीलिये यहाँ कर्मज एवं दोषज—दो प्रकारकी व्याधियोंकी चर्चा प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त तीसरी आगन्तुक व्याधिका भी उल्लेख प्राप्त होता है।

ग्रहोंके प्रकृति, धातु, रस, अंग, अवयव, स्थान, बल एवं अन्यान्य विशेषताओंके आधारपर रोगका विनिश्चय किया गया है तथा उनके निदानके उपाय भी बताये गये हैं।

हृदयरोग एवं ग्रहयोग

मनुष्यका हृदय अतीव सुकोमल एवं कमलके सदृश है। सतत गतिमान रहनेवाला हृदय मानवके सभी अंगों एवं उपांगोंको रक्तका आदान-प्रदान करता है, जिससे सभी अंग यथास्थान अपने स्वरूपमें हमेशा कार्य करते रहते हैं। इसीलिये शरीरके मुख्यांगमें इसकी गणना की गयी है।

हृदयरोगका इतिहास अतीव प्राचीन है। ऋग्वेदमें हृदयरोगके नाशहेतु भगवान् सूर्यसे प्रार्थना की गयी है। भागवत-महापुराणमें भी रासपंचाध्यायीके अन्तर्गत इसकी चर्चा है। आर्षपरम्पराके ग्रन्थोंमें तो हृदयरोगका कारण सूर्य तथा चतुर्थ एवं पंचम भाव और कुछ दशाओंका उल्लेख किया गया है, जिसके अन्तर्गत मुख्य रूपसे सूर्य, शनि और राहुदशा पायी जाती है। कुछ निश्चित राशियोंके साथ ग्रहोंकी दशामें भी हृदयरोगकी उत्पत्ति बतायी गयी है। आचार्य पराशरने तो दशाफलाध्यायमें सर्वाधिक रोगोद्भवकारक दशाओंका विवेचन किया है।

आचार्य वराहमिहिरके दशाफलाध्यायमें भी हृदयरोगकी परिचर्चा प्राप्त होती है। वहाँ सूर्यको कारकरूपमें स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार परवर्ती परम्पराके ग्रन्थोंमें भी हृदयरोगकारक ग्रहयोगोंकी प्राप्ति होती है।

प्रमुख हृदयरोगकारक ग्रहयोग लगभग चालीसके आसपास हैं, जिनकी सम्भावना लिखित एवं प्रायोगिक दोनों आधारपर समान रूपमें प्राप्त होती है। इनमें भी तीन प्रकारके हृदयरोगकारक ग्रहयोग प्राप्त हो रहे हैं—

१-घटितयोग—वे ग्रहयोग, जो ज्योतिषशास्त्रके ग्रन्थोंमें लिखित हैं तथा सर्वेक्षणसे प्राप्त हृदयरोगके रोगियोंकी कुण्डलीपर पूर्णतया घटित हो रहे हैं।

२-अघटितयोग—इसके अन्तर्गत वे ग्रहयोग हैं, जिनका शास्त्रमें उल्लेख है तो, परंतु प्रायोगिक कुण्डलियोंपर ये कहीं घटित नहीं हो रहे हैं।

३-नूतनयोग—इसके अन्तर्गत वे ग्रहयोग आते हैं, जिनका उल्लेख ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थोंमें नहीं दिखायी देता, परंतु प्रायोगिक आधारपर ये ग्रहयोग घटित हो रहे हैं। यहाँ अघटित ग्रहयोगोंको छोड़कर केवल घटित ग्रहयोगोंका उल्लेख किया जा रहा, जिनकी प्राप्ति प्रायोगिक आधारपर प्राय: शतप्रतिशत रही है। ऐसे ग्रहयोग निम्नलिखित हैं, जिनके आधारपर जन्मांग एवं नवमांश-चक्र देखकर हृदयरोगका निर्धारण आसानीसे किया जा सकता है कि अमुक व्यक्तिको इस ग्रहस्थितिके कारण हृदयरोग हुआ है, चाहे होगा।

हृदयरोगकारक ग्रहयोग

१-चन्द्रमा यदि शत्रुगृही हो तो हृदयरोग उत्पन्न होता है। (सारावली, ४४।१९)

२-सूर्य यदि कुम्भ राशिगत हो तो धमनीमें अवरोध उत्पन्न करता है। (सारावली, २२।११)

३-शुक्र यदि मकरराशिगत हो तो जातक हृदयरोगी होता है। (सारावली)

४-षष्ठेश सूर्य यदि चतुर्थ भावगत हो तो जातक हृद्रोगी होता है। (जातकालंकार २।१६)

५-लग्नेश निर्बल राहु यदि चतुर्थगत हो तो हृच्छूल रोग होता है। (जा०पारि० ६।१९)

६-सूर्य यदि चतुर्थ भावगत हो तो हृदयरोग उत्पन्न करता है। (जा०पारि० ८।६८)

७-चन्द्रमा शत्रुक्षेत्री होनेपर हृदयरोग उत्पन्न करता है। (जा०पारि० ८।११२)

८-तृतीयेश यदि केतुसे युक्त हो तो जातक हृदयरोगी होता है। (जा० पारि० १२।३६)

९-चतुर्थभावमें पापग्रह हो और चतुर्थेश पापयुक्त हो तो हृदयरोग उत्पन्न करता है। (सर्वार्थचिन्तामणि)

१०-मकरराशिगत सूर्य सामान्य हृदयरोग उत्पन्न करता है। (जा०सारदीप)

११-सूर्य वृषराशिगत हो तो जातक हृदयरोगसे ग्रस्त होता है। (हो०प्र० १०।४४)

१२-वृश्चिकराशिगत सूर्य हृदयरोग उत्पन्न करता है। (शम्भु हो०, १०।४६)

१३-चतुर्थ भावगत षष्ठेशकी युति सूर्य-शनिके साथ होनेपर हृदयरोग होता है। (जा०भू० ६।११)

१४-चतुर्थगत यदि शनि, भौम, गुरु हो तो हृदयरोग होता है। (होरारत्न)

१५-तृतीयेश राहु-केतुसे युक्त हो तो हृदयाघात होता है। (ज्यो०र०)

१६-यदि शनि निर्बल शयनावस्थामें हो तो भी हृदयशूलरोग होता है। (ज्यो०र०)

१७-सूर्य यदि सिंहराशिगत हो तो जातक हृदयरोगसे ग्रस्त होता है। (वी०वी० रमन)

१८-शनि यदि अष्टम भावगत हो तो हृच्छूल रोग उत्पन्न करता है। (गर्गवचन)

१९-मकरराशिगत सूर्य हृदयरोग प्रदान करता है। (मू०सू० ३।२।५)

२०-राहु यदि द्वादशस्थ हो तो हृच्छूल रोग देता है। (भाव०प्र०)

२१-चतुर्थेश चतुर्थ भावगत पापयुक्त हो तो हृदयरोग देता है। (गदावली २।२३)

२२-सिंहराशिके द्वितीय द्रेष्काणमें यदि जन्म हो तो हृच्छूल रोग होता है। (गदावली २।२४)

हृदयरोगकारक स्थान

हृदयरोगकारक ग्रहयोगोंमें कुछके निश्चित स्थान बताये गये हैं, विचार करनेपर निम्नलिखित स्थान ऐसे हैं, जिनकी स्थिति महत्त्वपूर्ण है—

१-चतुर्थ भावमें कर्क या सिंहराशिका होना।

२-पंचम भावमें कर्क या सिंहराशिका होना।

३-दशम या एकादश भावमें कर्क या सिंह राशिकी स्थिति।

स्थानों या ग्रहयोगोंका विचार जन्मांगचक्र, नवांशचक्र तथा त्रिशांश-चक्रसे करना चाहिये; क्योंकि शास्त्रकार वराह कहते हैं—'**लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्**....'

उक्त मीमांसाके आधारपर निम्नलिखित हृदयरोगकारक स्थान प्राप्त होते हैं—

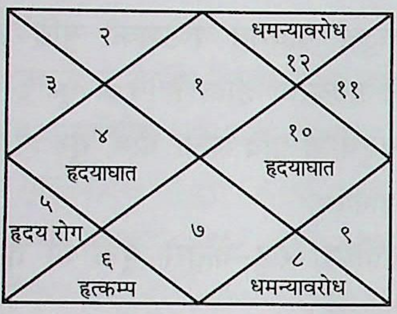

हृदयरोगकारक ग्रह

ज्योतिषशास्त्रके ग्रन्थोंमें जो हृदयरोगकारक ग्रहयोग प्राप्त होते हैं, उनके आधारपर तथा प्राप्त कुण्डलियोंकी समीक्षाके आधारपर हृदयरोगके आरम्भमें निम्नलिखित ग्रहोंकी सर्वाधिक भूमिका दिखती है, जिसके चार प्रकारके विभाजन किये जा सकते हैं—

१-सामान्य हृदयरोगकारक—सूर्य, शनि।

२-हृदयाघातकारक—शनि, मंगल।

३-उच्च रक्तदाबकारक—मंगल, गुरु।

४-हृच्छूलकारक—राहु, शनि तथा मंगल।

हृदयरोगकारक ग्रह-दशा

'कलौ पाराशरः' की उक्तिके अनुसार कलियुगके लिये आचार्य पराशरके ग्रन्थोंका अत्यधिक प्रचार-प्रसार तथा फलोपलब्धि है। शताधिक दशाओंकी चर्चा ज्योतिषशास्त्रमें प्राप्त होती है, किंतु आचार्य पराशरने कहा है—**'दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता।'** अर्थात् सभी नक्षत्राश्रित दशाओंमें विंशोत्तरी दशा ग्रहण करनी चाहिये। यहाँ भी विंशोत्तरी दशाको ही वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक मानकर इसीके आधारपर गणना की गयी है, जिसमें अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशाका ग्रहण भी किया गया है।

तदनुसार जो भी ग्रह रोगकारक स्थिति बना रहा है, उसीकी दशामें अधिकांश अवसरोंपर रोगका प्रारम्भ देखा जा रहा है। यदि कारक ग्रहकी दशाके साथ ही षष्ठेश, द्वादशेश या मारकेशकी दशाकी प्राप्ति हुई तो वही हृदयाघातकर मृत्युतक प्रदान करता है। बहुधा मृत्यु तथा हृदयाघातका अनुपात शनि तथा राहुकी दशामें अधिक प्राप्त होता है।

यह भी पाया गया कि चतुर्थेश एवं पंचमेशकी दशामें हृदयरोग प्रारम्भ होनेपर षष्ठेश, अष्टमेश एवं द्वादशेश या मारकेशका सम्बन्ध होनेपर वह घातक साबित होता है।

हृदयरोगके आरम्भकाल तथा अनिष्टकालके परिज्ञानहेतु दशाओंका ज्ञान परमावश्यक है। दशाओंके माध्यमसे रोगाविर्भाव एवं तिरोभावका विचार करना चाहिये।

हृदयरोगका उपचार

हृदयरोगके प्रशमनार्थ सबसे पहले हमें रोगकारक ग्रहका ज्ञानकर उसके दोषप्रशमनहेतु तीनों प्रकारकी ग्रहोपचारकी विधिका अनुपालन करना चाहिये—

१-हृदयरोगकारक ग्रहका रत्न-धारण।

२-रोगकारक ग्रहके औषधिसे स्नान।

३-कारक ग्रहके मन्त्रका जप।

एक परम्परा आजकल चल पड़ी है कि खराब ग्रहों या जो ग्रह कष्ट दे रहा है, उसके रत्न या जपको नहीं स्वीकार किया जा रहा है; क्योंकि वह प्रसन्न होकर दुःखको बढ़ायेगा। वस्तुतः यह धारणा निर्मूल है। जब हम समस्त प्रक्रिया पूर्वाचार्योंके द्वारा लिखित ग्रन्थोंके आधारपर करते हैं तो उपचारका पक्ष भी वहींसे अंगीकृत करना चाहिये। कहा भी गया है—**'यद् ग्रहकृतं दौष्ट्यं तस्य ग्रहस्य तुष्ट्यै तद्रत्नं धार्यम्।'** गोविन्द दैवज्ञादि।

इसी प्रकार आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि—**'ज्योतिषमागमं शास्त्रं विप्रतिपत्तौ नहि योग्यस्माकं स्वयमेव विकल्पयितुम्'** (बृहत्संहिता ९।७)।

हृदयरोगके उपचारपर ज्योतिषीय उपचारोंके अतिरिक्त बहुत सारे आध्यात्मिक तथा धार्मिक अनुष्ठान प्राप्त होते हैं, जिनके द्वारा हृदयरोगको कम अथवा नष्ट किया जा सकता है। यथा—

१-शनिके षष्ठेश तथा हृदयरोगकारक होनेपर वैदिक मन्त्रका जप।

२-राहुके रोगकारक तथा चतुर्थस्थ या लग्नस्थ होनेपर बीजमन्त्रका जप।

३-मंगलके कारक होनेपर बीज+तान्त्रिक मन्त्र दोनोंका प्रयोग सफलताके अनुपातमें अधिक लाभप्रद है।

४-सूर्यके ६ठें या १२वें भावगत तथा रोगकारक होनेपर वैदिक मन्त्रजप।

जो अन्य आध्यात्मिक तथा धार्मिक अनुष्ठान कुछ रोगियोंपर परीक्षित हुए एवं लाभांश अनुपात जिनका अधिक रहा, वे निम्नलिखित हैं—

१-ललितास्तोत्र/सहस्रनामका दैनिक पाठ। **'हृदये ललिता देवी'** का जप। इस दुर्गासप्तशतीके कवचमन्त्रका एक विशिष्ट सम्बन्ध हृदयके साथ है। ललितास्तोत्रका पाठ सामान्य हृदयरोगियों तथा ऑपरेशन करानेके बाद भी लाभप्रद पाया जा रहा है। २-आदित्यहृदयस्तोत्रका प्रतिदिन १ पाठ। ३-नृसिंहमन्त्र/पाशुपतास्त्रस्तोत्र/मन्त्रका प्रतिदिन ११ माला जप या ११ पाठ। यदि राहुकी स्थिति कहींसे ग्रहयोगमें या दशामें बन रही है तो बटुक भैरवप्रयोग या महाविद्या (तन्त्र)-का प्रयोग। ४-शतचण्डीप्रयोग। ५-महामृत्युंजय या मृतसंजीवनीप्रयोग—कपाटीय हृदयरोग तथा हृच्छूल होनेपर या मारकेशकी दशा आनेसे पूर्व सपादलक्ष महामृत्युंजय मन्त्र जप या ५४ हजार मृतसंजीवनी मन्त्रका जप एवं गुडूची+चिचड़ा+दूर्वा+घीका दशांश हवन लाभप्रद। ६-उच्च रक्तदाब होनेपर अथवा हृत्कम्प होनेपर रासपंचाध्यायी (भागवतपुराण)-का पाठ तथा सूर्यसूक्तका पाठ कल्याणकारक है।

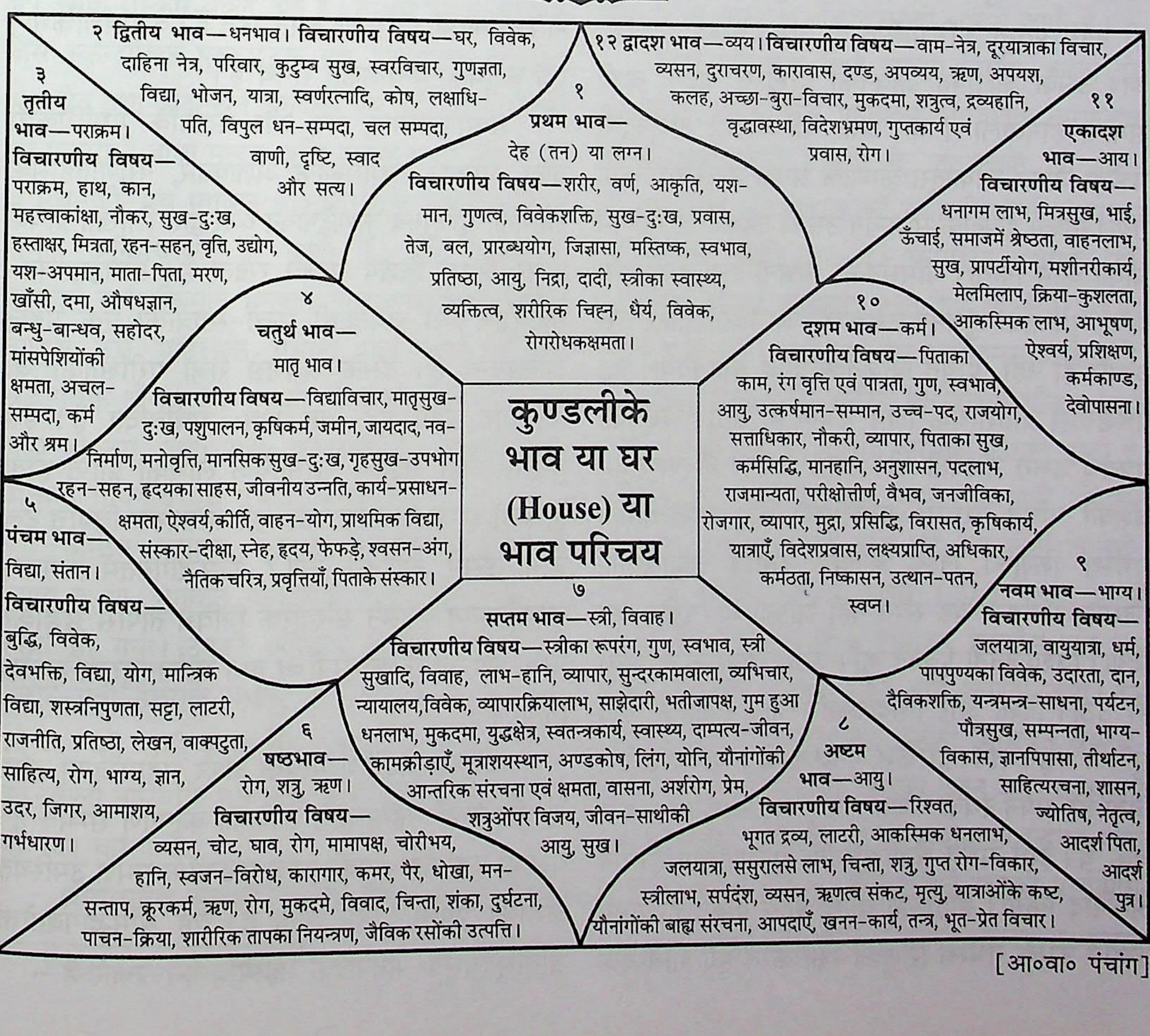

गर्भरक्षक श्रीवासुदेव-सूत्र

(पं० श्रीमाधवप्रसादजी पाण्डेय)

दुर्योधनको छोड़कर उसके सभी भाई मर चुके थे। गदायुद्धमें उसका भी आधा धड़ बेकार हो चुका था। मौतके काले आँचलमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके लिये कोई स्थान न था, पर महासमरमें पराजित हो जानेकी विभीषिकाने उसे किसीके समक्ष मुख दिखानेयोग्य न रख छोड़ा था। उसके विवेकका सूर्य अस्त हो चुका था। उसका युद्ध-कौशल तथा पितृ-चरणोंकी स्वाभाविक कृपासे प्राप्त दिव्य अस्त्र उसके पास थे। अब वह बिना सेनाका सेनापति और बिना रथका महारथी था। वह अन्धकारमयी रात्रिमें पाण्डव-शिविरमें पहुँच साध्वी द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी हत्याकर पुनः दुर्योधनद्वारा तिरस्कृत ही नहीं, प्रत्युत अभिभर्त्सित हो अस्त-व्यस्त हो चुका था। उसके कलुषित जीवनका दुःखान्त नाटक अभी समाप्त होनेवाला न था; अतः वह वीरवर अर्जुनद्वारा पकड़ा जाकर शोकातुरा कृष्णाके समक्ष उपस्थित किया गया। साध्वी द्रौपदीके सौजन्यने उसकी दहकती हृदयाग्निमें घीका काम किया। भीमसेनकी भर्त्सना तथा अर्जुनद्वारा मणि-मूर्धजोंके लुंचनने उसके धैर्यको तिरोहितकर उसे अधीर ही नहीं, प्रत्युत किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। वह पाण्डवोंसे प्रतिशोधके लिये चंचल हो उठा। अर्जुनकी पुत्रवधू उत्तरा गर्भवती थी। उसके गर्भपर ही पाण्डव-वंशकी पवित्र परम्परा अवलम्बित थी। अश्वत्थामाने गर्भस्थ शिशुको लक्ष्य बनाकर अमोघ ब्रह्मास्त्रका, जिसका प्रतीकार वह स्वयं नहीं जानता था, प्रयोग कर दिया। विश्वजननी प्रकृति काँप उठी। वायुमण्डल क्षुब्ध हो उठा। दिशा और विदिशाओंसे त्राहि-त्राहिके शब्द सुनायी पड़ने लगे। द्वारकेश भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे विदा हो अपने रथके पवित्र पावदानपर चरणकमल रख चुके थे। इसी समय भयप्रकम्पिता अनन्याश्रिता उत्तराने आर्तनाद किया। श्रीहरिका दयार्द्र हृदय द्रवित हो उठा, उन्होंने उसके गर्भस्थ शिशुकी रक्षा करते हुए भविष्यके लिये भी गर्भ-रक्षाकी एक समीचीन प्रणाली प्रदर्शित और प्रचलित कर दी।

इस विज्ञानके युगमें, जबकि ईश्वर और ईश्वरीय सत्तापर लोगोंको अविश्वास ही नहीं, प्रत्युत सन्देह भी होने लग गया है, मन्त्रों और मन्त्रशक्तियोंपर प्रकाश डालना निरर्थक श्रम ही प्रतीत होता है, किंतु नहीं; ईश्वर नित्य, सत्य, सर्वशक्तिमान् और सम्पूर्ण विश्वके नियामक हैं। उन्हीं विभूतिमान्, सत्, चित्, आनन्दके द्वारा विश्व विकसित और प्रकाशित होता है। ये विभुरूपसे वैज्ञानिकोंके विज्ञानमें, अन्धविश्वासियोंके अन्धविश्वासमें, भक्तोंके अनुरागभरे भावोंमें, प्रेमियोंके प्रेममें तथा नास्तिकोंके नास्तिकवादमें भी भ्रमण करते रहते हैं। वे सर्वशक्तिमान् एवं कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हैं।

सर्वगुणसम्पन्न, वेद और वेदांगोंके मर्माधिकारी ज्ञाता, भगवान् महाविष्णुके अंशावतार, पुराणेतिहासके रचयिता, मुनिपुंगव कृष्णद्वैपायन व्यासद्वारा लिखित प्रत्येक अक्षर अपना विशेष महत्त्व रखता है। श्रीमद्भागवत-महापुराण ऐसे चमत्कारी मन्त्रों-स्तोत्रोंका एक महान् आकरग्रन्थ है। उसके श्रवणसे राजा परीक्षित्को जो दिव्यगति प्राप्त हुई, वह प्रायः सर्वविदित है। इस पुराणसे जहाँ अलभ्य पारमार्थिक लाभकी प्राप्ति होती है, वहाँ इसके प्रभावसे कोई क्षुद्र सांसारिक विपत्ति टल जाय, इसमें आश्चर्य क्या? श्रीमद्भागवतमें भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यासने सांसारिक त्रिविध तापोंसे छुड़ाकर परम-पथ-प्रदर्शनका सर्वोच्च तथा सर्वजनसुलभ उपदेश किया है।

सन्त-मुखोद्गीर्ण प्रत्येक अक्षर महामन्त्रवत् होता है और उन्हीं महामन्त्रोंसे लोकका कल्याण सम्भव है। वैसे ही एक महामन्त्रको आज पाठकोंके समक्ष उपस्थित करनेका प्रयास किया जाता है। वह श्रीमद्भागवतोक्त श्रीवासुदेवसूत्र-प्रतिपादक महामन्त्र इस प्रकार है—

अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः।
स्वमाययावृणोद्* गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे॥

(१।८।१४)

'समस्त प्राणियोंके हृदयमें आत्मारूपसे स्थित योगेश्वर श्रीहरिने कुरुवंशकी वृद्धिके लिये उत्तराके गर्भको अपनी माया (-के कवच)-से ढक दिया।'

उपर्युक्त मन्त्र (श्लोक)-में उन कुलवधुओंके लिये सच्चा आश्वासन सन्निहित है, जिन्हें गर्भ तो रहता है; किंतु पूर्ण प्रसव नहीं हो पाता, बीचमें ही खण्डित हो जाता है। यह उन महिलाओंके लिये भी कल्पवृक्षके समान प्रत्यक्ष फलदाता है, जिनको बच्चा सर्वांगपूर्ण पैदा होता है, किंतु जीवित नहीं रहता। इस महामन्त्रका गर्भस्थ शिशुके मनपर भी बड़ा चमत्कारी प्रभाव पड़ता है। उसके संस्कार बदल जाते हैं। उसको ऊपरी बाधा—जैसे स्कन्दादिक पुरुषसंज्ञक ग्रह, पूतनादिक मातृग्रह, भूत-प्रेत तथा जादू-टोने आदिका भय नहीं रहता। जितने भी प्रकारकी बाधा मानव-बुद्धि अनुमान कर सकती है, वे सब-की-सब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ईश्वरीय तेजके समक्ष अकिंचित्कर हो जाती हैं। इस महामन्त्रके प्रभावसे सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णके दिव्यातिदिव्य आयुध उस महिलाके गर्भकी रक्षा करते हैं, जो श्रद्धापूर्वक श्रीवासुदेव-सूत्रको धारण करती हैं। यह सूत्र बड़ा ही उग्र, अतः सद्यः फलदाता है। इसका रहस्य अत्यन्त गोपनीय एवं प्रभावोत्पादक है।

अमोघ ब्रह्मास्त्र, जिसके निवारणका कोई भी उपाय न था, भगवान् श्रीकृष्णके तेजके सामने आकर शान्त हो गया। उनकी अहैतुकी कृपाने जिस प्रकार विराट-पुत्री उत्तराके गर्भकी रक्षा करते हुए 'कुरुतन्तु' की रक्षा की, उसी प्रकार वह श्रीवासुदेव-सूत्रको धारण करनेवाली नारियोंके गर्भ और उनके गर्भस्थ शिशुओंकी भी रक्षा करती है।

श्रीवासुदेव-सूत्रकी निर्माण-विधि—इस महाभाग वैष्णव-सूत्रको जिस भाग्यवतीके लिये बनाना हो, उसे और बनानेवालेको भी अच्छी तरह ज्ञात हो जाना चाहिये कि **'नादेवो ह्यर्चयेद्देवमिति देवविदो विदुः।'**—देववत् हुए बिना देवताकी अर्चना नहीं करनी चाहिये, ऐसा वेदज्ञोंका कथन है। इसलिये साधकको देवकी उपासना प्रारम्भ करनेके पूर्व उचित है कि वह अपनेको भी देववत् बना ले अर्थात् नित्य-नैमित्तिक कर्मों एवं आहाराचारादिकोंका विधिवत् सुधार कर ले। इस सूत्रको धारणकर मनमाना स्वार्थानुकूल आहाराचार करते रहनेसे सूत्र और उसके अधिदेवका उपहास होता है, फलतः वांछित फलकी प्राप्ति नहीं होती। भगवान् यद्यपि उपहासानुपहासकी ओर ध्यान नहीं देते, फिर भी सच्चे आत्मनिवेदनकी अपेक्षा तो है ही। सूत्र-निर्माण-कर्ता यदि श्रीकृष्ण-मन्त्रका जापक, अप्रतिग्रही, कर्मनिष्ठ द्विज हो तो सफलता अवश्यम्भावी समझी जाती है।

जिस महिलाके लिये सूत्रका निर्माण करना हो, उसे सुधौत शुद्ध वस्त्र पहनाकर भगवान्के चरणोदक और तुलसीदलकी प्रसादी दे, तत्पश्चात् श्रीगणेश-गौरीका पूजन और नवग्रहोंकी यथाशक्ति शान्ति कराकर पूर्वाभिमुखी खड़ी कर दे। केसरिया रेशमके डोरे (अभावमें कुमारी कन्याद्वारा काते केसरिया रंगमें रँगे हुए कच्चे सूत)-से उसको सात बार आपादमस्तक नाप ले। डोरा इतना लम्बा होना चाहिये कि बीचमें गाँठ न पड़ने पाये। कच्चा सूत अपेक्षाकृत अधिक कोमल होता है, टूटनेका भय रहता है; अतः बहुत सावधानी अपेक्षित होती है। समूचे तागेकी सात तह कर लेनी चाहिये। उपर्युक्त मन्त्रके आदिमें प्रणव (ॐ) तथा अन्तमें अग्निप्रिया (स्वाहा) बीज लगाकर इक्कीस बार जप करके मालाकी गाँठकी भाँति गाँठें लगाता जाय। इस प्रकार इक्कीस गाँठ लगाकर सूत्रकी विधिवत् वैष्णव-मन्त्रोंसे प्राण-प्रतिष्ठा और उसका पूजन करे। तत्पश्चात् शुभग्रहावलोकित वेलामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करते हुए उनसे गर्भिणी और गर्भकी रक्षाकी प्रार्थनाकर

* पाठभेद—स्वयमेवावृणोद्।

उस सूत्रको वामहस्तमूल, गले अथवा अत्यन्त पीड़ाके समय नाभिके नीचे कमरमें बाँध दे। यदि इस वैष्णव श्रीवासुदेव-सूत्रका निर्माण और बन्धन विधिवत् हो गया तो गर्भ नष्ट नहीं हो सकता। यह लेखकके पूर्वजों और स्वयं लेखकद्वारा भी अनुभूत है।

सूत्रको बाँधकर किसी भी अशौच (जैसे जनन-मरण)-से सम्बन्धित घरोंमें नहीं जाना चाहिये। सूत्रको नित्यशः भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए सुगन्धित धूपसे धूपित-सुवासित करते रहना चाहिये। भगवच्चरणोंकी कृपासे प्रसवका समय सकुशल प्राप्त होनेपर सूत्रको कमरसे खोलकर बाहुमूल या गलेमें बाँध देना चाहिये। बच्चेका नाल-छेदन और स्नान हो जानेके पश्चात् सूत्रको धूप देकर बच्चेके गलेमें पहना देना चाहिये। सवा महीनेके पश्चात् बच्चेके लिये नवीन सूत्रका निर्माण कराकर बाँध देना चाहिये। पुराने सूत्रका आभार मानना चाहिये और भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए अपराधके लिये क्षमा-याचना करके उसे किसी तीर्थ या देवसरितामें विसर्जित कर देना चाहिये। गर्भवती तथा गर्भस्थ शिशुकी रक्षाके लिये श्रीमद्भागवतके षष्ठ स्कन्धके आठवें अध्यायमें वर्णित श्रीनारायणवर्मका नित्यशः पाठ करना चाहिये। यदि यह न हो सके तो शुद्ध हृदयसे किसी भी श्रीकृष्ण-मन्त्रका अधिकाधिक जप करना चाहिये। बाल-कृष्ण (भगवान्)-का चरणोदक तथा नैवेद्योपहार गर्भवती, परिवारवालों तथा पास-पड़ोसके बाल-गोपालोंमें सस्नेह वितरण करना चाहिये।

श्रीवासुदेव-सूत्र गर्भपीड़ित महिलाओंका कष्ट हरता है। यह एक अक्षय वैष्णव-कवच है।

मैं शनि हूँ

(ज्योतिर्विद् पं० श्रीश्रीकृष्णजी शर्मा)

पाठको! नमस्कार, आप घबराइये नहीं, हाँ, मेरा ही नाम शनि है। लोगोंने बिना वजह मुझे हमेशा नुकसान पहुँचानेवाला ग्रह बताया है। फलस्वरूप लोग मेरे नामसे डर जाते हैं। मैं आपको यह स्पष्ट कर देना अपना दायित्व समझता हूँ कि मैं किसी भी व्यक्तिको अकारण परेशान नहीं करता। हाँ, यह बात अलग है कि मैंने जब भगवान् शिवकी उपासना की थी, तब उन्होंने मुझे दण्डनायक ग्रह घोषित करके नवग्रहोंमें स्थान प्रदान किया था। यही कारण है कि मैं मनुष्य हो या देव, पशु हो या पक्षी, राजा हो या रंक—सबके लिये उनके कर्मानुसार उनके दण्डका निर्णय करता हूँ तथा दण्ड देनेमें निष्पक्ष निर्णय लेता हूँ फिर चाहे व्यक्तिका कर्म इस जन्मका हो या पूर्वजन्मका। सत्ययुगमें ही नहीं, कलियुगमें भी न्यायपालिकाद्वारा चोरी-अपराध आदिकी सजा देनेका प्रावधान है। यह व्यवस्था समाजको आपराधिक प्रवृत्तिसे बचाये रखनेहेतु की गयी है, जिससे स्वच्छ समाजका निर्माण हो तथा अपराधकी पुनरावृत्ति न हो। मेरी निष्पक्षता और मेरा दण्डविधान जगजाहिर है। यदि अपराध या गलती की है तो फिर देव हो या मनुष्य, पशु हो या पक्षी, माता हो या पिता मेरे लिये सब समान हैं। मेरे पिता सूर्यने जब मेरी माता छायाको प्रताडित किया तो मैंने उनका भी घोर विरोध करके उन्हें पीड़ा पहुँचायी। फलस्वरूप वे हमेशाके लिये मुझसे नाराज हो गये और आजतक शत्रुतुल्य व्यवहार ही करते हैं। यहाँ यह भी उल्लेख करना प्रासंगिक समझता हूँ कि यदि व्यक्तिने पूर्वजन्ममें अच्छे कर्म किये हैं तो मैं उसकी जन्मपत्रीमें अपनी उच्च राशि या स्व राशिपर प्रतिष्ठापित होकर उसे भरपूर लाभ भी पहुँचाता हूँ। अब आप मेरी प्रवृत्तिके बारेमें भलीभाँति परिचित हो गये होंगे। आइये, आज मैं आपको अपने सम्पूर्ण परिचयसे अवगत कराता हूँ।

ज्येष्ठ कृष्ण अमावास्याको मेरा जन्म हुआ था।

मेरे पिताका नाम सूर्य तथा माताका नाम छाया है। हम पाँच भाई-बहन हैं। यमराज मेरे अनुज हैं तथा तपती, भद्रा, और यमुना मेरी सगी बहनें हैं। लोग मुझे अनेक नामोंसे जानते हैं। कुछ लोग मुझे मन्द, शनैश्चर, सूर्यसूनु, सूर्यज, अर्कपुत्र, नील, भास्करी, असित, छायात्मज आदि कहकर भी सम्बोधित करते हैं। मेरा आधिपत्य मकर एवं कुम्भ राशि तथा पुष्य, अनुराधा एवं उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्रपर है।

मैं अस्त होनेके ३८ दिनके अनन्तर उदय होता हूँ। मेरी उच्च राशि तुला तथा नीच राशि मेष है। जन्मकुण्डलीके १२ भावोंमें मैं ८वें, १०वें एवं १२वें भावका कारक हूँ। जब मैं तुला, कुम्भ या मकर राशिपर विचरण करता हूँ, उस अवधिमें किसीका जन्म हो तो मैं रंकसे राजा भी बना देनेमें देर नहीं करता। यदि जातकके जन्मके समय मैं मिथुन, कर्क, कन्या, धनु अथवा मीन राशिपर विचरण करता हूँ तो परिणाम मध्यम; मेष, सिंह तथा वृश्चिकपर स्थित होऊँ तो प्रतिकूल परिणामके लिये तैयार रहना चाहिये। हस्तरेखाशास्त्रमें मध्यमा अँगुलीके नीचे मेरा स्थान है तथा अंकज्योतिषके अनुसार प्रत्येक माह ८, १७, २६ तारीखका मैं स्वामी हूँ। मैं ३० वर्षोंमें समस्त राशियोंका भ्रमण कर लेता हूँ। एक बार साढ़ेसाती आनेके पश्चात् ३० वर्षोंके बाद ही व्यक्ति मुझसे प्रभावित होता है। अपवादको छोड़ दिया जाय तो व्यक्ति अपने जीवनमें तीन बार मेरी साढ़ेसातीसे साक्षात्कार करता है।

आपने यह कहावत सुनी ही होगी कि ***'जाको प्रभु दारुण दुःख देहीं, ताकी मति पहले हरि लेहीं॥'*** मेरा भी यही सिद्धान्त है, जिस व्यक्तिको मुझे दण्ड देना हो, मैं पहले उसकी बुद्धिपर अपना आक्रमण करता हूँ अथवा उसे दण्ड देनेके लिये किसी अन्यकी बुद्धिका नाश करके जातकको दण्ड देनेका कारण बना देता हूँ। कोई अपराध करता है तो मेरी अदालतमें उसे पूर्वमें किये हुए बुरे कर्मोंका दण्ड पहले मिलता है, बादमें मुकदमा इस आशयका चलता है कि उसके आचरण एवं चाल-चलनमें सुधार हुआ है या नहीं। यदि दण्ड मिलते-मिलते जातक स्वयंमें सुधार कर लेता है तो उसकी सजा समाप्त करते हुए उसे पूर्वकी यथास्थितिमें लानेका निर्णय लेता हूँ। साथ ही यदि उसका चाल-चलन उत्कृष्ट रहा हो तो उसे अपनी दशा अर्थात् सजाकी अवधिके पश्चात् अपार धन-दौलत तथा वैभवसे प्रतिष्ठापित कर देता हूँ।

सजायोग्य अपराध—भ्रष्टाचार, झूठी गवाही, विकलांगोंको सताना, भिखारियोंको अपमानित करना, चोरी, रिश्वत, चालाकीसे धन हड़पना, जुआ खेलना, नशा—जैसे शराब-गुटका-तम्बाकू खाना, व्यभिचार करना, परस्त्रीगमन, अपने माता-पिता या सेवकका अपमान करना, चींटी-कुत्ते या कौएको मारना आदि। इन अपराधोंकी कम या ज्यादा सजा मेरी अदालतमें अवश्य ही मिलती है।

वेशभूषा—न्यायक्षेत्रमें काले रंगको विशेष स्थान प्राप्त है। मेरी वेशभूषा इसी कारण काली है। आज भी न्यायालयमें न्यायाधीश या वकील काला कोट तथा काला गाउन ही पहनते हैं। यहाँतक कि न्यायकी देवीकी आँखोंपर भी काली पट्टी ही बँधी हुई है।

मेरा मन्दिर—मेरी पूजा कहीं भी किसी भी प्रकारसे श्रद्धापूर्वक की जा सकती है। कण-कणमें भगवान् हैं। यह सभीको ध्यान रखना चाहिये। अनेक स्थानोंपर मेरी पूजा होती है, फिर भी मैं अपने प्रसिद्ध मन्दिरके बारेमें थोड़ी जानकारी अवश्य दूँगा। महाराष्ट्रके नासिक जिलेमें शिरडीसे कुछ ही किलोमीटरकी दूरीपर मेरा मन्दिर है। वहाँ मेरी प्रतिमा विद्यमान है। इस प्रतिमाका कोई आकार नहीं है; क्योंकि यह पाषाणखण्डके आकारमें मेरे ही ग्रहसे उल्कापिण्डके रूपमें प्रकट हुई है। यहाँ मेरी निश्चित परिधिमें कोई भी व्यक्ति चोरी या अन्य अपराध नहीं कर सकता। यदि भूलवश कर ले तो उसे इतना भारी और कठोर दण्ड मिलता है कि

उसकी सात पीढ़ियाँ भी भूल नहीं सकतीं। यही कारण है कि इस स्थानपर कोई व्यक्ति अपने मकान या दूकानमें ताला नहीं लगाता। ताला लगाना तो दूर, यहाँ मकानोंमें किवाड़तक नहीं हैं। यहाँ रहने और आनेवालोंको मुझपर पूर्ण विश्वास है। मैं उनकी हरसम्भव रक्षा करता हूँ। मेरी दशामें किस तरह लोग कष्ट उठाते हैं, यह इन पौराणिक सन्दर्भोंसे ज्ञात हो जायगा—

पाण्डवोंको वनवास—जब पाण्डवोंकी जन्म-पत्रीमें मेरी दशा आयी तो मैंने ही द्रौपदीकी बुद्धि भ्रमित करके कड़वे वचन कहलाये, परिणामस्वरूप पाण्डवोंको वनवास मिला।

रावणकी दुर्गति—छः शास्त्र और अठारह पुराणोंके प्रकाण्ड पण्डित रावणका पराक्रम तीनों लोकोंमें फैला हुआ था। मेरी दशामें रावण घबरा गया। अपने बचावके लिये वह मुझपर आक्रमण करनेपर उतारू हो गया। उसने शिवसे प्राप्त त्रिशूलसे मुझे घायल करके अपने बन्दीगृहमें उलटा लटका दिया। लंकाको जलाते समय हनुमान्‌जीने देखा कि मुझे उलटा लटका रखा है। हनुमान्‌जीने मुझे छुटकारा दिलाया। मैंने हनुमान्‌जीसे मेरेयोग्य सेवा बतानेका अनुरोध किया तो हनुमान्‌जीने कहा कि तुम मेरे भक्तोंको कष्ट मत देना। मैंने तुरंत अपनी सहमति दे दी। अन्तमें राम-रावण-युद्धमें मैंने रावणको परिवारसहित नष्ट करनेमें अपनी कुदृष्टिका भरपूर प्रयोग किया। परिणामस्वरूप श्रीरामकी विजय हुई।

विक्रमादित्यकी दुर्दशा—विक्रमादित्यपर जब मेरी दशा आयी तो मयूरका चित्र ही हारको निगल गया। विक्रमादित्यको तेलीके घरपर कोल्हू चलाना पड़ा।

राजा हरिश्चन्द्रको परेशानी—राजा हरिश्चन्द्रको मेरी दशामें दर-दरकी ठोकरें खानी पड़ीं। उनका परिवार बिछुड़ गया। स्वयंको श्मशानमें नौकरी करनी पड़ी।

यदि आप चाहते हैं कि मैं हमेशा आपसे प्रसन्न रहूँ तो आप निम्न उपाय करें तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं हमेशा आपकी रक्षा करूँगा—हनुमदुपासना, सूर्य-उपासना, शनिचालीसाका पाठ, पीपलके वृक्षकी पूजा, ज्योतिषीसे परामर्शकर नीलम या जमुनियाका धारण, काले घोड़ेकी नालसे बनी अँगूठीका धारण तथा शनि-अष्टकका पाठ करें। अन्तमें आप सभीको आशीर्वाद एवं शुभकामनाएँ देते हुए मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ।

नवग्रह-कवच

नीचे 'यामलतन्त्र' का एक 'नवग्रह-कवच' दिया जा रहा है। इसके श्रद्धापूर्वक पाठ करने तथा ताबीजमें रखकर भुजामें धारण करनेसे बहुत लाभ होता है—

ॐ शिरो मे पातु मार्तण्डः कपालं रोहिणीपतिः। मुखमङ्गारकः पातु कण्ठं च शशिनन्दनः॥
बुद्धिं जीवः सदा पातु हृदयं भृगुनन्दनः। जठरं च शनिः पातु जिह्वां मे दितिनन्दनः॥
पादौ केतुः सदा पातु वाराः सर्वाङ्गमेव च। तिथयोऽष्टौ दिशः पान्तु नक्षत्राणि वपुः सदा॥
अंसौ राशिः सदा पातु योगश्च स्थैर्यमेव च। सुचिरायुः सुखी पुत्री युद्धे च विजयी भवेत्॥
रोगात्प्रमुच्यते रोगी बन्धो मुच्येत बन्धनात्। श्रियं च लभते नित्यं रिष्टिस्तस्य न जायते।
यः करे धारयेन्नित्यं तस्य रिष्टिर्न जायते॥
पठनात् कवचस्यास्य सर्वपापात् प्रमुच्यते। मृतवत्सा च या नारी काकवन्ध्या च या भवेत्।
जीववत्सा पुत्रवती भवत्येव न संशयः॥
एतां रक्षां पठेद् यस्तु अङ्गं स्पृष्ट्वापि वा पठेत्॥

शनिदेवके कतिपय आख्यान

(१)

महाराज दशरथ और शनिदेव

पद्मपुराणमें कथा आती है, एक बार जब शनि कृत्तिका नक्षत्रके अन्तमें थे, तब ज्योतिषियोंने राजा दशरथजीको बताया कि अब शनिदेव रोहिणी नक्षत्रको भेदकर (जिसे शकटभेदके नामसे भी जाना जाता है) जानेवाले हैं, जिसका फल देव-दानवोंको भी भयंकर है और पृथ्वीपर तो बारह वर्षका भयंकर दुर्भिक्ष होना है। यह सुनकर सब लोग व्याकुल हो गये। तब राजाने श्रीवसिष्ठजी आदि ब्राह्मणोंको बुलवाकर उनसे इसके परिहारका उपाय पूछा। वसिष्ठजी बोले कि यह योग ब्रह्मा आदिसे भी असाध्य है, इसका परिहार कोई नहीं कर सकता। यह सुनकर राजा परम साहस धारणकर दिव्य रथमें अपने दिव्यास्त्रोंसहित बैठकर सूर्यके सवा लक्ष योजन ऊपर नक्षत्रमण्डलमें गये और वहाँ रोहिणी नक्षत्रके पृष्ठभागमें स्थित होकर उन्होंने शनिको लक्षित करके धनुषपर संहारास्त्रको चढ़ाकर आकर्ण-पर्यन्त खींचा।

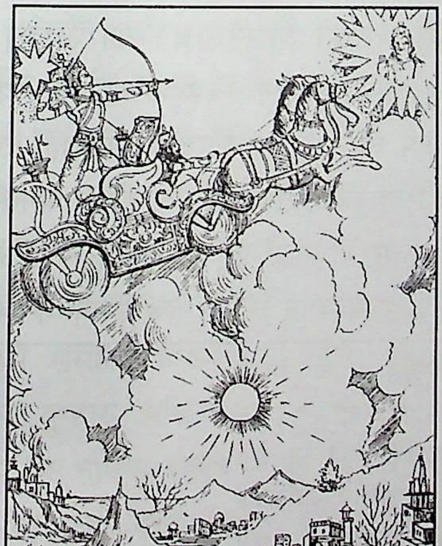

शनि यह देखकर डर तो गये, पर हँसते हुए बोले कि राजन्! तुम्हारा पौरुष, उद्योग और तप सराहनीय है। मैं जिसकी तरफ देखता हूँ, वह देव-दैत्य कोई भी हो, भस्म हो जाता है, पर मैं तुम्हारे तप और उद्योगसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, वही वर माँगो। राजाने कहा कि जबतक पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य आदि हैं, तबतक आप कभी रोहिणीका भेदन न करें। शनिने एवमस्तु कहा। तदनन्तर शनिने कहा—हम बहुत प्रसन्न हैं, तुम और वर माँगो। तब राजाने कहा कि मैं यही माँगता हूँ कि शकटभेद कभी न कीजिये और बारह वर्ष दुर्भिक्ष कभी न हो। शनिने यह वर भी दे दिया। इसके बाद महाराजा दशरथने धनुषको रख दिया और वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

दशरथजी बोले—जिनके शरीरका वर्ण कृष्ण, नील तथा भगवान् शंकरके समान है, उन शनिदेवको नमस्कार है। जो जगत्के लिये कालाग्नि एवं कृतान्तरूप हैं, उन शनैश्चरको बारम्बार नमस्कार है। जिनका शरीर कंकाल है तथा जिनकी दाढ़ी-मूँछ और जटा बढ़ी हुई है, उन शनिदेवको प्रणाम है। जिनके बड़े-बड़े नेत्र, पीठमें सटा हुआ पेट और भयानक आकार है, उन शनैश्चरदेवको नमस्कार है। जिनके शरीरका ढाँचा फैला हुआ है, जिनके रोएँ बहुत मोटे हैं, जो लम्बे-चौड़े, किंतु सूखे शरीरवाले हैं तथा जिनकी दाढ़ें कालरूप हैं, उन शनिदेवको बारम्बार प्रणाम है। शने! आपके नेत्र खोखलेके समान गहरे हैं, आपकी ओर देखना कठिन है, आप घोर, रौद्र, भीषण और विकराल हैं। आपको नमस्कार है। बलीमुख! आप सब कुछ भक्षण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। सूर्यनन्दन! भास्करपुत्र! अभय देनेवाले देवता! आपको प्रणाम है। नीचेकी ओर दृष्टि रखनेवाले शनिदेव! आपको नमस्कार है। संवर्तक! आपको प्रणाम है। मन्दगतिसे चलनेवाले शनैश्चर! आपका प्रतीक तलवारके समान है, आपको पुनः-पुनः प्रणाम है। आपने तपस्यासे अपने देहको दग्ध कर दिया है; आप सदा योगाभ्यासमें तत्पर, भूखसे आतुर और अतृप्त रहते हैं। आपको सदा-सर्वदा

नमस्कार है। ज्ञाननेत्र! आपको प्रणाम है। कश्यपनन्दन सूर्यके पुत्र शनिदेव! आपको नमस्कार है। आप सन्तुष्ट होनेपर राज्य दे देते हैं और रुष्ट होनेपर उसे तत्क्षण हर लेते हैं। देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर और नाग—ये सब आपकी दृष्टि पड़नेपर समूल नष्ट हो जाते हैं। देव! मुझपर प्रसन्न होइये। मैं वर पानेके योग्य हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ।

स्तोत्र* सुनकर शनि प्रसन्न हुए और पुनः वर माँगनेको कहा। राजाने माँगा कि आप किसीको पीड़ा न पहुँचायें। शनिने कहा यह वर असम्भव है (क्योंकि जीवोंके कर्मानुसार दुःख-सुख देनेके लिये ही ग्रहोंकी नियुक्ति है), अतः हम तुमको यह वर देते हैं कि जो तुम्हारी इस स्तुतिको पढ़ेगा, वह पीड़ासे मुक्त हो जायगा। हे राजन्! किसी भी प्राणीके मृत्युस्थान, जन्मस्थान या चतुर्थस्थानमें मैं रहूँ तो उसे मृत्युका कष्ट दे सकता हूँ, किंतु जो श्रद्धासे युक्त, पवित्र और एकाग्रचित्त हो मेरी लोहमयी सुन्दर प्रतिमाका शमीपत्रोंसे पूजन करके तिलमिश्रित उड़द-भात, लोहा, काली गौ या काला वृषभ ब्राह्मणको दान करता है और पूजनके पश्चात् हाथ जोड़कर मेरे इस स्तोत्रका जप करता है, उसे मैं कभी भी पीड़ा नहीं दूँगा। गोचरमें, जन्मलग्नमें, दशाओं तथा अन्तर्दशाओंमें ग्रहपीड़ाका निवारण करके मैं सदा उसकी रक्षा करूँगा। इसी विधानसे सारा संसार पीड़ासे मुक्त हो सकता है। तीनों वर पाकर राजा पुनः रथपर आरूढ़ होकर श्रीअयोध्याजीको लौट आये।

[प्रो० श्रीबालकृष्णजी, एम० कॉम, साहित्यरत्न]

(२)

महामुनि पिप्पलाद और शनिदेव

एक बार त्रेतायुगमें अनावृष्टिके कारण भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया। उस घोर अकालमें कौशिकमुनि अपनी स्त्री तथा पुत्रोंके साथ अपना निवास-स्थान छोड़कर दूसरे प्रदेशमें निवास करने निकल पड़े। कुटुम्बका भरण-पोषण दूभर हो जानेके कारण बड़े कष्टसे उन्होंने अपने एक बालकको मार्गमें ही छोड़ दिया। वह बालक अकेला भूख-प्याससे तड़पता हुआ रोने लगा। उसे अकस्मात् एक पीपलका वृक्ष दिखायी पड़ा। उसके समीप ही एक बावड़ी भी थी। बालकने पीपलके फलोंको खाकर ठंडा जल पी लिया और अपनेको स्वस्थ पाकर वह वहीं कठिन तपस्या करने लगा तथा नित्यप्रति पीपलके फलोंको खाकर समय व्यतीत करने लगा। अचानक वहाँ एक दिन देवर्षि नारद पधारे, उन्हें देखकर बालकने प्रणाम किया और आदरपूर्वक बैठाया। दयालु नारदजी उसकी अवस्था, विनय और नम्रताको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने बालकका मौंजीबन्धन आदि सब संस्कारकर पद-क्रम-रहस्यसहित वेदका अध्ययन कराया तथा साथ ही द्वादशाक्षर वैष्णवमन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-का उपदेश दिया।

अब वह प्रतिदिन विष्णुभगवान्‌का ध्यान और मन्त्रका जप करने लगा। नारदजी भी वहीं रहे। थोड़े समयमें ही बालकके तपसे सन्तुष्ट होकर भगवान् विष्णु गरुड़पर सवार हो वहाँ पहुँचे। देवर्षि नारदके वचनसे बालकने उन्हें पहचान लिया, तब उसने भगवान्‌में दृढ़

* नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च। नमः कालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नमः॥
नमो निर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च। नमो विशालनेत्राय शुष्कोदरभयाकृते॥
नमः पुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णे च वै पुनः। नमो दीर्घाय शुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः। नमो घोराय रौद्राय भीषणाय करालिने॥
नमस्ते सर्वभक्षाय बलीमुख नमोऽस्तु ते। सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करेऽभयदाय च॥
अधोदृष्टे नमस्तेऽस्तु संवर्तक नमोऽस्तु ते। नमो मन्दगते तुभ्यं निस्त्रिंशाय नमोऽस्तु ते॥
तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च। नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः॥
ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे। तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात्॥
देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः। त्वया विलोकिताः सर्वे नाशं यान्ति समूलतः।
प्रसादं कुरु मे देव वरार्होऽहमुपागतः॥ (पद्मपु० उ० ३४।२७—३५)

भक्तिकी माँग की। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर ज्ञान और योगका उपदेश प्रदान किया और अपनेमें भक्तिका आशीर्वाद देकर वे अन्तर्धान हो गये। भगवान्‌के उपदेशसे वह बालक महाज्ञानी महर्षि हो गया।

एक दिन बालकने नारदजीसे पूछा—'महाराज! यह किस कर्मका फल है, जो मुझे इतना कष्ट उठाना पड़ा? इतनी छोटी अवस्थामें भी मैं क्यों पीड़ित हो रहा हूँ? मेरे माता-पिताका कुछ भी पता नहीं, वे कहाँ हैं? फिर भी मैं अत्यन्त कष्टसे जी रहा हूँ। द्विजोत्तम! सौभाग्यवश आपने दया करके मेरा संस्कार किया और मुझे ब्राह्मणत्व प्रदान किया।' यह वचन सुनकर नारदजी बोले—'बालक! शनैश्चरग्रहने तुम्हें बहुत पीड़ा पहुँचायी है और आज यह सम्पूर्ण देश उसके मन्दगतिसे चलनेके कारण उत्पीड़ित है। देखो, वह अभिमानी शनैश्चर ग्रह आकाशमें प्रज्वलित दिखायी पड़ रहा है।'

यह सुनकर बालक क्रोधसे अग्निके समान उद्दीप्त हो उठा। उसने उग्र दृष्टिसे देखकर शनैश्चरको आकाशसे भूमिपर गिरा दिया। शनैश्चर एक पर्वतपर गिरे और उनका पैर टूट गया, जिससे वे पंगु हो गये। देवर्षि नारद भूमिपर गिरे हुए शनैश्चरको देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे नाच उठे। उन्होंने सभी देवताओंको बुलाया। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि आदि देवता वहाँ आये और नारदजीने शनैश्चरकी दुर्गति सबको दिखायी।

ब्रह्माजीने बालकसे कहा—महाभाग! तुमने पीपलके फल भक्षणकर कठिन तप किया है। अतः नारदजीने तुम्हारा पिप्पलाद नाम उचित ही रखा है। तुम आजसे इसी नामसे संसारमें विख्यात होओगे। जो कोई भी शनिवारको तुम्हारा भक्तिभावसे पूजन करेंगे अथवा 'पिप्पलाद' इस नामका स्मरण करेंगे, उन्हें सात जन्मतक शनिकी पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ेगी और वे पुत्र-पौत्रसे युक्त होंगे। अब तुम शनैश्चरको पूर्ववत् आकाशमें स्थापित कर दो; क्योंकि इनका वस्तुतः कोई अपराध नहीं है। ग्रहोंकी पीड़ासे छुटकारा पानेके लिये नैवेद्य-निवेदन, हवन, नमस्कार आदि करना चाहिये। ग्रहोंका अनादर नहीं करना चाहिये। पूजित होनेपर ये शान्ति प्रदान करते हैं।

यह कहकर ब्रह्माजी सभी देवताओंके साथ अपने परमधामको चले गये और पिप्पलादमुनिने भी ब्रह्माजीके आज्ञानुसार शनैश्चरको उनके स्थानपर प्रतिष्ठित कर दिया।

जो व्यक्ति इस शनैश्चरोपाख्यानको भक्तिपूर्वक सुनता है तथा शनिकी लौह-प्रतिमा बनाकर तेलसे भरे हुए लौह-कलशमें रखकर ब्राह्मणको दक्षिणासहित दान देता है, उसको कभी भी शनिकी पीड़ा नहीं होती। [भविष्यपुराण]

(३)

राजा नल और शनिदेव

नल निषध देशके राजा थे, विदर्भ देशके राजा भीष्मककी कन्या दमयन्ती उनकी महारानी थी। पुण्यश्लोक महाराज नल सत्यके प्रेमी थे, अतः कलियुग उनसे स्वाभाविक द्वेष करता था। कलिकी कुचालसे राजा नल द्यूतक्रीड़ामें अपना सम्पूर्ण राज्य और ऐश्वर्य हार गये तथा महारानी दमयन्तीके साथ वन-वन भटकने लगे। राजा नलने अपनी इस दुर्दशासे मुक्तिके लिये शनिदेवसे प्रार्थना की।

राज्य नष्ट हुए राजा नलको शनिदेवने स्वप्नमें अपने एक प्रार्थना-मन्त्रका उपदेश दिया था। उसी नाम-स्तुतिसे उन्हें पुनः राज्य उपलब्ध हुआ था। सर्वकामप्रद वह स्तुति इस प्रकार है—

क्रोडं नीलाञ्जनप्रख्यं नीलवर्णसमस्त्रजम्।
छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरम्॥
नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय।
श्रुत्वा रहस्यं भव कामदश्च फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र॥
नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्णदेहाय वै नमः।
शनैश्चराय क्रूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने॥
य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टो भवाम्यहम्।
मदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति॥

(भविष्यपु० उत्तरपर्व ११४। ३९—४२)

अर्थात् क्रूर, नील अंजनके समान आभावाले, नीलवर्णकी माला धारण करनेवाले, छाया और सूर्यसे उत्पन्न शनिदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका धूम्र और नील अंजनके समान वर्ण है, ऐसे अर्क (सूर्य)-पुत्र शनैश्चरके लिये नमस्कार है। इस रहस्य (प्रार्थना)-को सुनकर हे सूर्यपुत्र! मेरी कामना पूर्ण करनेवाले और फल प्रदान करनेवाले हों। प्रेतराजके लिये नमस्कार है, कृष्ण वर्णके शरीरवालेके लिये नमस्कार है; क्रूर, शुद्ध बुद्धि प्रदान करनेवाले शनैश्चरके लिये नमस्कार हो। [इस स्तुतिको सुनकर शनिदेवने कहा—] जो मेरी इन नामोंसे स्तुति करता है, मैं उससे सन्तुष्ट होता हूँ। उसको मुझसे स्वप्नमें भी भय नहीं होगा। [भविष्यपुराण]

(४)

भक्तवर हनुमान् और शनि

एक बारकी बात है। भक्तराज हनुमान् रामसेतुके समीप ध्यानमें अपने परम प्रभु श्रीरामकी भुवनमोहिनी झाँकीका दर्शन करते हुए आनन्दविह्वल थे। ध्यानावस्थित आंजनेयको बाह्य जगत्की स्मृति भी न थी।

उसी समय सूर्यपुत्र शनि समुद्रतटपर टहल रहे थे। उन्हें अपनी शक्ति एवं पराक्रमका अत्यधिक अहंकार था। वे मन-ही-मन सोच रहे थे—'मुझमें अतुलनीय शक्ति है। सृष्टिमें मेरी समता करनेवाला कोई नहीं है।'

इस प्रकार विचार करते हुए शनिकी दृष्टि ध्यानमग्न श्रीरामभक्त हनुमान्पर पड़ी। उन्होंने वज्रांग महावीरको पराजित करनेका निश्चय किया। युद्धका निश्चयकर शनि आंजनेयके समीप पहुँचे। उस समय सूर्यदेवकी तीक्ष्णतम किरणोंमें शनिका रंग अत्यधिक काला हो गया था। भीषणतम आकृति थी उनकी।

पवनकुमारके समीप पहुँचकर अतिशय उद्दण्डताका परिचय देते हुए शनिने अत्यन्त कर्कश स्वरमें कहा—'बन्दर! मैं प्रख्यात शक्तिशाली शनि तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हूँ और तुमसे युद्ध करना चाहता हूँ। तुम पाखण्ड त्यागकर खड़े हो जाओ।'

तिरस्कार करनेवाली अत्यन्त कटुवाणी सुनते ही भक्तराज हनुमान्ने अपने नेत्र खोले और बड़ी ही शालीनता एवं शान्तिसे पूछा—'महाराज! आप कौन हैं और यहाँ पधारनेका आपका उद्देश्य क्या है?'

शनिने अहंकारपूर्वक उत्तर दिया—'मैं परम तेजस्वी सूर्यका परम पराक्रमी पुत्र शनि हूँ। जगत् मेरा नाम सुनते ही काँप उठता है। मैंने तुम्हारे बल-पौरुषकी कितनी ही गाथाएँ सुनी हैं। इसलिये मैं तुम्हारी शक्तिकी परीक्षा करना चाहता हूँ। सावधान हो जाओ, मैं तुम्हारी राशिपर आ रहा हूँ।'

अंजनानन्दनने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा—'शनिदेव! मैं वृद्ध हो गया हूँ और अपने प्रभुका ध्यान कर रहा हूँ। इसमें व्यवधान मत डालिये। कृपापूर्वक अन्यत्र चले जाइये।'

मदमत्त शनिने सगर्व कहा—'मैं कहीं जाकर लौटना नहीं जानता और जहाँ जाता हूँ, वहाँ अपना प्राबल्य और प्राधान्य तो स्थापित ही कर देता हूँ।'

कपिश्रेष्ठने शनिदेवसे बार-बार प्रार्थना की—'महात्मन्! मैं वृद्ध हो गया हूँ। युद्ध करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। मुझे अपने भगवान् श्रीरामका स्मरण करने दीजिये। आप यहाँसे जाकर किसी और वीरको ढूँढ़ लीजिये। मेरे भजन-ध्यानमें विघ्न उपस्थित मत कीजिये।'

'कायरता तुम्हें शोभा नहीं देती।' अत्यन्त उद्धत शनिने मल्लविद्याके परमाराध्य वज्रांग हनुमान्की अवमाननाके साथ व्यंग्यपूर्वक तीक्ष्णस्वरमें कहा—'तुम्हारी स्थिति देखकर मेरे मनमें करुणाका संचार हो रहा है, किंतु मैं तुमसे युद्ध अवश्य करूँगा।'

इतना ही नहीं, शनिने दुष्टग्रहनिहन्ता महावीरका हाथ पकड़ लिया और उन्हें युद्धके लिये ललकारने लगे। हनुमान्ने झटककर अपना हाथ छुड़ा लिया। युद्धलोलुप शनि पुनः भक्तवर हनुमान्का हाथ पकड़कर उन्हें युद्धके लिये खींचने लगे।

'आप नहीं मानेंगे।' धीरे-से कहते हुए पिशाचग्रह-घातक कपिवरने अपनी पूँछ बढ़ाकर शनिको उसमें लपेटना प्रारम्भ किया। कुछ ही क्षणोंमें अविनीत सूर्यपुत्र

क्रोधसंरक्तलोचन समीरात्मजकी सुदृढ़ पुच्छमें आकण्ठ आबद्ध हो गये। उनका अहंकार, उनकी शक्ति एवं उनका पराक्रम व्यर्थ सिद्ध हुआ। वे सर्वथा अवश, असहाय और निरुपाय होकर दृढ़तम बन्धनकी पीड़ासे छटपटा रहे थे।

'अब रामसेतुकी परिक्रमाका समय हो गया।' अंजनानन्दन उठे और दौड़ते हुए सेतुकी प्रदक्षिणा करने लगे। शनिदेवकी सम्पूर्ण शक्तिसे भी उनका बन्धन शिथिल न हो सका। भक्तराज हनुमान्‌के दौड़नेसे उनकी विशाल पूँछ वानर-भालुओंद्वारा रखे गये शिलाखण्डोंपर गिरती जा रही थी। वीरवर हनुमान् दौड़ते हुए जान-बूझकर भी अपनी पूँछ शिलाखण्डोंपर पटक देते थे।

शनिकी बड़ी अद्भुत एवं दयनीय दशा थी। शिलाखण्डोंपर पटके जानेसे उनका शरीर रक्तसे लथपथ हो गया। उनकी पीड़ाकी सीमा नहीं थी और उग्रवेग हनुमान्‌की परिक्रमामें कहीं विराम नहीं दीख रहा था। तब शनि अत्यन्त कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगे—'करुणामय भक्तराज! मुझपर कृपा कीजिये। अपनी उद्दण्डताका दण्ड मैं पा गया। आप मुझे मुक्त कीजिये। मेरे प्राण छोड़ दीजिये।'

दयामूर्ति हनुमान् खड़े हुए। शनिका अंग-प्रत्यंग लहूलुहान हो गया था। असह्य पीड़ा हो रही थी, उनकी रग-रगमें। विनीतात्मा समीरात्मजने शनिसे कहा—'यदि तुम मेरे भक्तकी राशिपर कभी न जानेका वचन दो तो मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूँ और यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो मैं तुम्हें कठोरतम दण्ड प्रदान करूँगा।'

'सुरवन्दित वीरवर! निश्चय ही मैं आपके भक्तकी राशिपर कभी नहीं जाऊँगा।' पीड़ासे छटपटाते हुए शनिने अत्यन्त आतुरतासे प्रार्थना की—'आप कृपापूर्वक मुझे शीघ्र बन्धनमुक्त कर दीजिये।'

शरणागतवत्सल भक्तप्रवर हनुमान्‌ने शनिको छोड़ दिया। शनिने अपना शरीर सहलाते हुए गर्वापहारी मारुतात्मजके चरणोंमें सादर प्रणाम किया और वे चोटकी असह्य पीड़ासे व्याकुल होकर अपनी देहपर लगानेके लिये तेल माँगने लगे। उन्हें जो तेल प्रदान करता है, उसे वे सन्तुष्ट होकर आशिष देते हैं। कहते हैं, इसी कारण अब भी शनिदेवको तेल चढ़ाया जाता है। [पं० श्रीशिवनाथजी दुबे]

ज्योतिषमें गो-महिमा

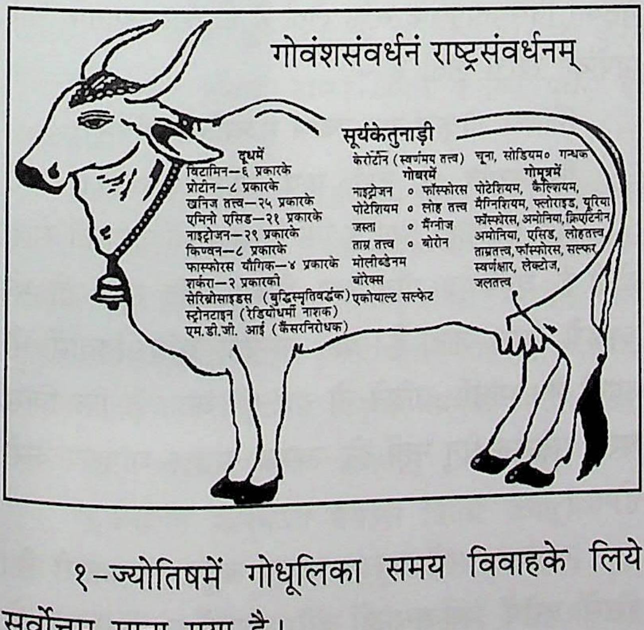

१-ज्योतिषमें गोधूलिका समय विवाहके लिये सर्वोत्तम माना गया है।

२-यदि यात्राके प्रारम्भमें गाय सामने पड़ जाय अथवा अपने बछड़ेको दूध पिलाती हुई सामने पड़ जाय तो यात्रा सफल होती है।

३-जिस घरमें गाय होती है, उसमें वास्तुदोष स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

४-जन्मपत्रीमें यदि शुक्र अपनी नीचराशि कन्यापर हो, शुक्रकी दशा चल रही हो या शुक्र अशुभ भाव (६, ८, १२)-में स्थित हो तो प्रातःकालके भोजनमेंसे एक रोटी सफेद रंगकी गायको खिलानेसे शुक्रका नीचत्व एवं शुक्रसम्बन्धी कुदोष स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

५-पितृदोषसे मुक्ति—सूर्य, चन्द्र, मंगल या शुक्रकी युति राहुसे हो तो पितृदोष होता है। यह भी मान्यता है कि सूर्यका सम्बन्ध पितासे एवं मंगलका सम्बन्ध रक्तसे होनेके कारण सूर्य यदि शनि, राहु या केतुके साथ स्थित

हो या दृष्टिसम्बन्ध हो तथा मंगलकी युति राहु या केतुसे हो तो पितृदोष होता है। इस दोषसे जीवन संघर्षमय बन जाता है। यदि पितृदोष हो तो गायको प्रतिदिन या अमावास्याको रोटी, गुड़, चारा आदि खिलानेसे पितृदोष समाप्त हो जाता है।

६-किसीकी जन्मपत्रीमें सूर्य नीचराशि तुलापर हो या अशुभ स्थितिमें हो अथवा केतुके द्वारा परेशानियाँ आ रही हों तो गायमें सूर्य-केतु नाडीमें होनेके फलस्वरूप गायकी पूजा करनी चाहिये, दोष समाप्त होंगे।

७-यदि रास्तेमें जाते समय गोमाता आती हुई दिखायी दें तो उन्हें अपने दाहिनेसे जाने देना चाहिये, यात्रा सफल होगी।

८-यदि बुरे स्वप्न दिखायी दें तो मनुष्य गो माताका नाम ले, बुरे स्वप्न दिखने बन्द हो जायँगे।

९-गायके घीका एक नाम आयु भी है—**'आयुर्वै घृतम्'**। अतः गायके दूध-घीसे व्यक्ति दीर्घायु होता है। हस्तरेखामें आयुरेखा टूटी हुई हो तो गायका घी काममें लें तथा गायकी पूजा करें।

१०-देशी गायकी पीठपर जो ककुद् (कूबड़) होता है, वह 'बृहस्पति' है। अतः जन्मपत्रिकामें यदि बृहस्पति अपनी नीचराशि मकरमें हों या अशुभ स्थितिमें हों तो देशी गायके इस बृहस्पतिभाग एवं शिवलिंगरूपी ककुद्के दर्शन करने चाहिये। गुड़ तथा चनेकी दाल रखकर गायको रोटी भी दें।

११-गोमाताके नेत्रोंमें प्रकाशस्वरूप भगवान् सूर्य तथा ज्योत्स्नाके अधिष्ठाता चन्द्रदेवका निवास होता है। जन्मपत्रीमें सूर्य-चन्द्र कमजोर हो तो गोनेत्रके दर्शन करें, लाभ होगा। [पं० श्रीश्रीकृष्णजी शर्मा]

वास्तुदोषोंका निवारण करती है गाय

जिस स्थानपर भवन, घरका निर्माण करना हो, यदि वहाँपर बछड़ेवाली गायको लाकर बाँधा जाय तो वहाँ सम्भावित वास्तुदोषोंका स्वतः निवारण हो जाता है, कार्य निर्विघ्न पूरा होता है और समापनतक आर्थिक बाधाएँ नहीं आतीं।

गायके प्रति भारतीय आस्थाको अभिव्यक्त करनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि गाय सहजरूपसे भारतीय जनमानसमें रची-बसी है। गोसेवाको एक कर्तव्यके रूपमें माना गया है। गाय सृष्टिमातृका कही जाती है। गायके रूपमें पृथ्वीकी करुण पुकार और विष्णुसे अवतारके लिये निवेदनके प्रसंग पुराणोंमें बहुत प्रसिद्ध हैं। 'समरांगणसूत्रधार'-जैसा प्रसिद्ध बृहद्वास्तुग्रन्थ गोरूपमें पृथ्वी-ब्रह्मादिके समागम-संवादसे ही आरम्भ होता है। वास्तुग्रन्थ 'मयमतम्' में कहा गया है कि भवननिर्माणका शुभारम्भ करनेसे पूर्व उस भूमिपर ऐसी गायको लाकर बाँधना चाहिये, जो सवत्सा (बछड़ेवाली) हो। नवजात बछड़ेको जब गाय दुलारकर चाटती है तो उसका फेन भूमिपर गिरकर उसे पवित्र बनाता है और वहाँ होनेवाले समस्त दोषोंका निवारण हो जाता है। यही मान्यता वास्तुप्रदीप, अपराजितपृच्छा आदि ग्रन्थोंमें भी है। महाभारतके अनुशासनपर्वमें कहा गया है कि गाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेती है तो उस स्थानके सारे पापोंको खींच लेती है—

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥

यह भी कहा गया है कि जिस घरमें गायकी सेवा होती है, वहाँ पुत्र-पौत्र, धन, विद्या आदि सुख जो भी चाहिये, मिल जाता है। यही मान्यता अत्रिसंहितामें भी आयी है। महर्षि अत्रिने तो यह भी कहा है कि जिस घरमें सवत्सा धेनु नहीं हो, उसका मंगल-मांगल्य कैसे होगा?

गायका घरमें पालन करना बहुत लाभकारी है। इससे घरोंमें सर्वबाधाओं और विघ्नोंका निवारण हो जाता है। बच्चोंमें भय नहीं रहता। विष्णुपुराणमें कहा

गया है कि जब श्रीकृष्ण पूतनाके दुग्धपानसे डर गये तो नन्द-दम्पतीने गायकी पूँछ घुमाकर उनकी नजर उतारी और भयका निवारण किया। सवत्सा गायके शकुन लेकर यात्रामें जानेसे कार्य सिद्ध होता है।

पद्मपुराण और कूर्मपुराणमें कहा गया है कि कभी गायको लाँघकर नहीं जाना चाहिये। किसी भी साक्षात्कार, उच्च अधिकारीसे भेंट आदिके लिये जाते समय गायके रँभानेकी ध्वनि कानमें पड़ना शुभ है। संतान-लाभके लिये गायकी सेवा अच्छा उपाय कहा गया है। शिवपुराण एवं स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि गोसेवा और गोदानसे यमका भय नहीं रहता। गायके पाँवकी धूलिका भी अपना महत्त्व है। यह पापविनाशक है, ऐसा गरुड़पुराण और पद्मपुराणका मत है। ज्योतिष एवं धर्मशास्त्रोंमें बताया गया है कि गोधूलिवेला विवाहादि मंगलकार्योंके लिये सर्वोत्तम मुहूर्त है। जब गायें जंगलसे चरकर वापस घरको आती हैं, उस समयको गोधूलिवेला कहा जाता है। गायके खुरोंसे उठनेवाली धूलराशि समस्त पाप-तापोंको दूर करनेवाली है। पंचगव्य एवं पंचामृतकी महिमा तो सर्वविदित है ही। गोदानकी महिमासे कौन अपरिचित है! ग्रहोंके अरिष्ट-निवारणके लिये गोग्रास देने तथा गौके दानकी विधि ज्योतिष-ग्रन्थोंमें विस्तारसे निरूपित है। इस प्रकार गाय सर्वविध कल्याणकारी ही है। [अग्निबाण]

[प्रेषक—श्रीसंजयकुमारजी चाण्डक]

सदाचारका पालन न करनेसे ग्रहोंका दुष्प्रभाव

(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)

तिर्यग्योनि, मनुष्ययोनि और देवयोनिसे समन्वित यह विश्व एक-दूसरेके उपकारसे धारण किया जाता है, जैसे—गाय मनुष्यको दूध देती है, मनुष्य उसे माताके रूपमें मानकर उसे भोजन देता है। देवता योग्य समयपर अपने प्रभावसे वर्षा, गर्मी और हवाका विसर्ग करके मनुष्य और पशुओंको पोषित करते हैं, इसके बदलेमें मनुष्य जप, होम, व्रत आदिसे देवताओंकी पूजा करते हैं। इस तरह सबके अपने-अपने कर्तव्य पूर्वसे ही सुनिश्चित हैं।

जब भगवान् स्वामी कार्तिकेय बड़े होकर देवताओंकी सेनाके अधिपति बने तो उनके सेवक सभी ग्रहोंको अपने जीवनकी चिन्ता हुई, तब भगवान् शंकरने सभीके कार्य पूर्वनिर्धारित होनेके कारण उनके भोजन आदिकी व्यवस्था उक्त पूर्वप्रतिष्ठित सिद्धान्तके अनुसार करनेका आदेश दिया।

ततो ग्रहांस्तानुवाच भगवान् भगनेत्रहृत्।
तिर्यग्योनिं मानुषञ्च दैवञ्च त्रितयं जगत्॥

(सुश्रुतसंहिता उत्तरतन्त्र ३७। १३)

उन्होंने ग्रहोंसे कहा कि जिन कुलोंमें देवताओं और पितरोंके लिये यज्ञ नहीं होता, जहाँ ब्राह्मण-साधु-गुरु और अतिथियोंका पूजन-सत्कार नहीं होता, भिक्षादान नहीं होता, सदाचारका पालन नहीं होता तथा जहाँ फूटे हुए कांस्यपात्रमें भोजन होता है, उस घरके बालकोंमें आप प्रवेश कर सकते हैं। उनके संरक्षक उन्हें ठीक करनेके लिये आपलोगोंकी पूजा करेंगे, जिससे आप सबकी प्रचुर आजीविका चलेगी—

कुलेषु येषु नेज्यन्ते देवाः पितर एव च॥
ब्राह्मणाः साधवश्चैव गुरवोऽतिथयस्तथा।
निवृत्ताचारशौचेषु परपाकोपजीविषु॥
उत्सन्नबलिभिक्षेषु भिन्नकांस्योपभोजिषु।
गृहेषु तेषु ये बालास्तान् गृह्णीध्वमशङ्किताः॥
तत्र वो विपुला वृत्तिः पूजा चैव भविष्यति।
एवं ग्रहाः समुत्पन्ना बालान् गृह्णन्ति चाप्यतः॥

(सु० उ० ३७। १७—२०)

सुश्रुतने लिखा है कि जो व्यक्ति भोजन करनेपर अथवा मल-मूत्रका त्याग करनेपर जलसे शुद्धि न करनेसे अपवित्र रहता हो, जिसने शास्त्रकी मर्यादा तथा कुल-परम्पराका आचार-विचार त्याग दिया हो, अपवित्र रहता हो; ऐसे मनुष्यको ये ग्रह उसकी हिंसा करनेके लिये,

अपनी क्रीड़ा करनेके लिये तथा बलि-होमादि पूजारूप सत्कार करानेके लिये उसमें प्रवेश करते हैं। अगर उनका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता तो उसे मार भी डालते हैं—

अशुचिं भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाक्षतम्।
हिंस्युर्हिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा॥

(सु० उ० ६०।५)

जो मनुष्य सत्य, शौच आदि आचार-विचारसे भ्रष्ट हो गये हों; उनके शरीरमें आविष्ट होकर अपनी जीविका चलानी चाहिये, ऐसी व्यवस्था देवताओंद्वारा ग्रहोंके लिये की गयी है।

सत्यत्वादपवृत्तेषु वृत्तिस्तेषां गणैः कृता।

(सु०उ० ६०।२६)

अपवित्र रहनेवाले शरीरमें ग्रहावेशके दो प्रयोजन डल्हण (सुश्रुतसंहिताके टीकाकार)-ने बताये हैं। यथा— वध करनेकी क्रीड़ा तथा निज पूजा कराना। चरकसंहितामें इस प्रकारका उन्माद करनेवाले भूतोंके तीन प्रयोजन बताये हैं—हिंसा करना, उस व्यक्तिमें पूर्वजन्मके संस्कारवश उस ग्रहकी रति होना तथा अपनी अर्चना-पूजा करवानेके लिये प्राणियोंमें प्रविष्ट होना—

त्रिविधं तु खलून्मादकराणां भूतानामुन्मादने प्रयोजनं भवति। तद्यथा—हिंसा रतिः अभ्यर्चनं चेति। (च०सं०नि० ७।१५)

चरकसंहिताके अनुसार देवता, ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस और पितृग्रहोंका अपमान करनेसे तथा अनुचित रूपसे नियम, व्रत, पूजा, पाठ आदि करनेसे तथा पूर्व देहसे किये गये कर्म आगन्तुक उन्मादके कारण होते हैं।

जिस प्रकार दर्पण और जलतल-जैसी निर्मल वस्तुमें छाया चली जाती है, किंतु जाते समय दिखायी नहीं देती तथा जिस प्रकार सूर्यकी किरणें स्वमणिमें प्रविष्ट होती हुई दिखायी नहीं देती तथा जिस प्रकार अदृश्य जीवात्मा देहमें प्रविष्ट करती हुई दिखायी नहीं देती; उसी प्रकार देवादिग्रह मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट होकर असहनीय कष्ट देते हैं।

इनकी चिकित्सा तभी सम्भव होती है; जब वैद्य शौच, स्नान, ब्रह्मचर्य आदि नियमपूर्वक ओंकारसहित गायत्रीमन्त्रका एक लाख बार जपकर यव, तिल तथा घृतको अग्निमें हवनकर चिकित्सा प्रारम्भ करे।

तेषां शान्त्यर्थमन्विच्छन् वैद्यस्तु सुसमाहितः॥
जपैः सनियमैर्होमैरारभेत चिकित्सितुम्।

(सु०उ० ६०।२८-२९)

इस प्रकार आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें यह दर्शाया गया है कि सम्यक् रूपसे सदाचारका पालन करने, धर्माचरण करने आदिसे ग्रहोंका दुष्प्रभाव विफल हो जाता है और चिकित्सक आदिको चाहिये कि वह भूतादि ग्रहोंकी प्रकृति जानकर उनसे उत्पन्न रोगको शान्त करनेके लिये स्वयं भी सदाचार एवं उपासनामें प्रवृत्त रहे।

ग्रहोंके दान-पदार्थ

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
माणिक्य	वंशपात्र	विद्रुम, पृथ्वी	कांस्यपात्र	पीला धान्य	सफेद चन्दन	नीलम, तिल	सप्तधान्य	कम्बल, कस्तूरी
गेहूँ, गुड़	सफेद चावल	मसूर, द्विदल	हरा वस्त्र	पीला वस्त्र, सोना	सफेद चावल	उड़द, तेल	उड़द, हेमनाग	उड़द
सवत्सा गौ	सफेद वस्त्र	गेहूँ	हाथी-दाँत, घी	घी, पीला फल	सफेद वस्त्र	काला वस्त्र	नीला वस्त्र, गोमेद	वैदूर्यमणि
कमल-फूल	सफेद चन्दन	लाल बैल	मूँग, पन्ना	पीला तेल	सफेद फूल	कुरथी, लोहा	काला फूल	काला पुष्प
नया घर	सफेद फूल	गुड़, लाल चन्दन	सोना, दासी	पोखराज	चाँदी, हीरा	भैंस	खड्ग, तिल	तिलतेल
लाल चन्दन	चीनी, चाँदी	लाल वस्त्र	सर्व फूल, रत्न	हल्दी	घी, सोना	काली गाय	तेल, लोहा	रत्न, सोना
लाल वस्त्र	बैल, घी	लाल फूल	कपूर, शास्त्र	पुस्तक, मधु	सफेद घोड़ा, दही	काला फूल	सूप, कम्बल	लोहा, बकरा
सोना, ताँबा	शंख, दही	सोना, ताँबा	अनेक फल	नमक, चीनी	सुगन्धित द्रव्य	जूता	सतिल ताम्रपात्र	शस्त्र
केसर, मूँगा	मोती, कपूर	केशर, कस्तूरी	छः रस भोजन	भूमि, छाता	चीनी, गौ, भूमि	कस्तूरी, सोना	सोना, रत्न	सप्तधान्य
दक्षिणा	दक्षिणा	दक्षिणा	दक्षिणा	दक्षिणा	दक्षिणा	दक्षिणा	दक्षिणा	दक्षिणा
ज.सं. ७०००	ज.सं. ११०००	ज.सं. १००००	ज.सं. ९०००	ज.सं. १९०००	ज.सं. १६०००	ज.सं. २३०००	ज.सं. १८०००	ज.सं. १७०००

ज्योतिर्विद्या और योगशास्त्र

(प्रो० श्रीरामचन्द्रजी पाण्डेय)

भारतीय विद्याएँ समग्रताकी पोषक हैं, इसलिये सभी शास्त्रोंमें परस्पर गहन सम्बन्ध है। ये एक-दूसरेके साथ मालाकी तरह गुथे हुए हैं। यही कारण है कि एक शास्त्रको समग्र रूपसे समझनेके लिये अन्य शास्त्रोंकी भी आवश्यकता होती है। गुरुकुलकी शिक्षापद्धतिमें वेदके अध्ययनके साथ-साथ समग्र शास्त्रोंके अध्ययनकी परम्परा रही है। गुरुकुलका स्नातक ही आचार्य कहलानेका अधिकारी होता था तथा किसी भी शास्त्रमें साधिकार लिखनेका साहस करता था। उन्हीं आचार्योंकी परम्परासे सुरक्षित सभी शास्त्र आज हमलोगोंको अध्ययनार्थ सुलभ हो रहे हैं। यद्यपि सभी शास्त्रोंका प्रतिपाद्य पृथक्-पृथक् है, किंतु लक्ष्य ज्ञान एवं कैवल्य ही रहा है। इसके साथ-साथ कुछ शास्त्र ऐसे भी हैं, जिनका लक्ष्य कैवल्यके साथ व्यावहारिक तथा इहलौकिक उपयोग भी है। इनमें प्रमुख तीन शास्त्र हैं—१-ज्योतिष, २-आयुर्वेद तथा ३-योग। ये तीनों शास्त्र विद्या-अविद्या, ज्ञान-विज्ञान तथा भौतिक सुख-दुःख आदि मानसिक तथा शारीरिक प्रवृत्तियोंका भी निरूपण करते हैं। कालविधानशास्त्र होनेके कारण ज्योतिषशास्त्रकी भूमिका सर्वप्रथम आती है। ज्योतिष जीवके पूर्वजन्मार्जित कर्मपरिपाकके निरूपणके साथ-साथ आधानकाल एवं आधानकालसे प्रसवतक तथा प्रसवकालसे जीवनके अन्ततककी समस्त गतिविधियोंका विवेचन करता है। आयुर्वेद गर्भस्थ शिशुके विकास एवं प्रसवोत्तर शरीरकी सुरक्षा एवं पुष्टिका विधान औषधियोंके माध्यमसे बतलाता है। योगकी भूमिका बाल्यकालसे ही आरम्भ होती है। मनुष्यके मन, बुद्धि तथा पांचभौतिक शरीरकी क्रियाओंको नियन्त्रित करनेका कार्य योगशास्त्र करता है। अनेक बिन्दुओंपर तीनों शास्त्रोंकी विचारसरणि लगभग एक समान दृष्टिगत होती है। प्रस्तुत प्रसंगमें ज्योतिष और योगशास्त्रके परस्पर सम्बन्धोंपर यथामति विचार प्रस्तुत है।

ज्योतिषशास्त्र और आयुर्वेदके अनुसार वर्तमान जीवनके सुख-दुःखोंके कारण इस जन्मके कर्मोंके साथ-साथ पूर्वजन्मके कर्म तथा संस्कार भी होते हैं; क्योंकि पूर्वजन्मार्जित कर्मोंके परिपाक ही इस जन्ममें फलीभूत होते हैं। ज्योतिषशास्त्र उन्हीं कर्मफलोंको उसी प्रकार दिखलाता है, जैसे अन्धकारमें पड़ी हुई वस्तुको दीपकका प्रकाश। इस आशयको आचार्य वराहमिहिरने इन दो पंक्तियोंमें व्यक्त किया है—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥

(लघुजातक १।३)

व्याधियोंका निरूपण करते हुए आयुर्वेद भी इस सिद्धान्तकी ओर स्पष्ट संकेत करता है। व्याधियोंके प्रमुख भेदोंको बतलाते हुए कहा गया है कि व्याधियाँ दो प्रकारकी होती हैं—

कर्मजा व्याधयः केचित् दोषजा सन्ति चापरे।

(च०सं० २।४०)

अर्थात् कुछ व्याधियाँ कर्मज होती है, जिनका सम्बन्ध पूर्वजन्म एवं इहजन्मके कर्मोंसे होता है तथा कुछ व्याधियाँ दोषज होती हैं, जिनका सम्बन्ध त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) तथा आहार-विहारजन्य दोषोंसे होता है। भिषगाचार्यके इसी भावको ज्योतिष भी इन्हीं शब्दोंमें व्यक्त करता है। यथा—

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।

(प्रश्नमार्ग १३।३६)

अतः दोनों शास्त्रोंने पूर्वजन्मके कर्मोंको महत्त्व

दिया है, जिनसे स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि कर्म ही मनुष्यके ह्रास-वृद्धि और सुख-दु:खका कारण होता है। इसी आधारको पुष्ट करते हुए वृद्धसूर्यारुणकर्मविपाक-संहिता कहती है—

कर्मणा नरकं सूत स्वर्गे याति च कर्मणा।
देवत्वमाप्नुयाज्जीवो राक्षसत्वं च कर्मणा॥
कर्मणा बन्धमायाति मोक्षमायाति कर्मणा।
कर्मणा पतनोच्छ्रायौ नृणां जन्मनि जन्मनि॥

(१।८-९)

ये समस्त वाक्य उन लोगोंके भ्रमोंका निवारण करनेहेतु पर्याप्त हैं, जो कहते हैं कि ज्योतिष मनुष्यको भाग्यवादी बनाता है। देखा जाय तो ज्योतिषकी आधारशिला कर्मवाद तथा आकाशीय स्थितिपर ही टिकी है। समस्त आकाशीय पिण्ड परस्पर एक-दूसरेको प्रभावित करते हैं। उनमेंसे पृथ्वीके पथमें आनेवाले नक्षत्रों तथा ग्रहोंके प्रभावको भूवासियोंके लिये विशेष रूपसे महर्षियोंने अपने दिव्य ज्ञान, अनुभव तथा प्रयोगोंसे ज्ञात कर रखा है, जिनका विवेचन ज्योतिषके फलित तथा संहिता ग्रन्थोंमें विस्तारसे किया गया है। ऋषियोंके दिव्य ज्ञानसे प्राप्त अनेक विषयोंके मूल कारणोंको हम नहीं जान पाते। यही कारण है कि हम अनेक फलितीय सिद्धान्तोंकी आजतक कोई समुचित उपपत्ति नहीं दे पाये। यहाँ केवल फलका परिणाम ही उपपत्ति है, जैसा कि सिद्धान्त ग्रन्थोंमें भी कुछ प्रसंगोंमें कहा गया है—**अत्रोपलब्धिरेव वासना।**

अन्तरिक्ष-अनुसन्धानमें संलग्न आधुनिक विज्ञानकी उपलब्धियोंसे भी प्राचीन ज्ञानकी गुत्थियाँ शनै:-शनै: सुलझ रही हैं। यहाँ अनसुलझे उन बिन्दुओंकी चर्चा प्रसंगान्तर एवं विस्तारका कारण बनेंगी। अत: ज्योतिषके केवल उन्हीं विषयोंपर प्रकाश डाला जा रहा है, जिनका सम्बन्ध सीधा योगशास्त्रसे है।

सर्वविदित है कि सूर्यकी प्रमुख सात रश्मियाँ होती हैं, जिनके भारतीय नाम क्रमश: सुषुम्ना, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यचा, संयद्वसु, अर्वावसु तथा सुराट् (स्वराड्) हैं। इन सात रश्मियोंसे सुषुम्ना नामक रश्मि चन्द्रमाको प्रकाशित करती है तथा वहाँसे परावर्तित होकर भूतलपर अमृतस्राव करती है। ज्योतिषशास्त्रमें सूर्यको आत्मा तथा चन्द्रमाको मनका कारक माना गया है—**आत्मा रवि: शीतकरस्तु चेत:।** चन्द्रमाकी स्थितिके अनुसार ही मनकी स्थिति होती है। मन और बुद्धिके कारण ही अनेक वैचारिक एवं शारीरिक उथल-पुथल होते हैं। इससे मानव ही नहीं, अपितु समस्त चराचर प्रभावित होते हैं। समुद्रमें उठनेवाला ज्वार इसका ज्वलन्त उदाहरण है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाकी स्थितिविशेषसे समुद्रमें हलचल होती है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्तिकी अपनी जन्मलग्नराशि, चन्द्रराशि तथा सूर्यराशिकी स्थितिके अनुसार चन्द्रमाकी विभिन्न स्थितियाँ उसे प्रभावित करती हैं, जिसका विवेचन ज्योतिषशास्त्र करता है। मनकी अवस्था तथा मानसिक रोगोंके मूलमें कारणभूत सूर्य, चन्द्रमा और राहुकी विभिन्न स्थितियोंको ही माना गया है। मनको उक्त प्रभावोंसे सुरक्षित रखनेके लिये आध्यात्मिक तथा भौतिक साधनोंका भी निर्देश किया गया है।

योगशास्त्रकी प्रवृत्ति यहींसे होती है। योगकी पहली सीढ़ी मनका नियन्त्रण ही है। योगशास्त्रका दूसरा सूत्र है—**योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:।** चित्तवृत्ति अर्थात् मनकी स्थिति और गति। इनका नियन्त्रण ही योग है। मन अत्यन्त चंचल तथा कठिनाईसे नियन्त्रणमें आनेवाला है। जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता (६।३४)-में कहा गया है—

चञ्चलं हि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

मनपर नियन्त्रण ग्रहस्थितिपर भी निर्भर करता है। संसारमें अनेक ऐसे प्राणी हैं, जो मनको नियन्त्रित करनेका प्रयास करते हैं तथा सफल भी होते हैं, कुछ लोग ऐसे भी हैं जो प्रयास तो करते हैं, किंतु मनको पूर्णत: नियन्त्रित नहीं कर पाते तथा कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो मनके प्रवाहके साथ ही आनन्दकी अनुभूति करते हैं। इस प्रकारकी सभी प्रवृत्तियोंका अध्ययन ज्योतिषशास्त्रके द्वारा सरलतासे किया जा सकता है। शरीर और मनका सम्बन्ध शरीरस्थ नाडियों तथा शरीरमें

व्याप्त वायुभेदोंसे भी है, जिसका निरूपण ज्योतिषशास्त्र और योगशास्त्र दोनोंमें ही किया गया है। योगशास्त्रके अनुसार शरीरमें दस नाडियाँ हैं तथा उनमें दस प्रकारके वायुका संचार होता है। ज्योतिष भी इसे यथावत् स्वीकार करता है तथा इनके साथ सूर्य और चन्द्रमाके सम्बन्धोंको भी निरूपित करता है। यद्यपि सुषुम्ना नामक रश्मिका सीधा सम्बन्ध चन्द्रमाके साथ है, किंतु सुषुम्ना नाड़ीका सम्बन्ध चन्द्रमाके साथ प्रकारान्तरसे सिद्ध होता है। हमारे शरीरमें स्थित दस नाडियाँ तथा उनमें प्रवहमान दस वायु निम्नलिखित चक्रमें तत्तद् नाडियोंके समक्ष अंकित हैं—

नाडी-वायुबोधक चक्र

क्र०सं०	नाडी	वायु	क्र०सं०	नाडी	वायु
१	इडा	प्राण	६	पूषा	नाग
२	पिंगला	अपान	७	यशा	कूर्म
३	सुषुम्ना	समान	८	व्यूषा	कृकल
४	गान्धारी	उदान	९	कुहू	देवदत्त
५	हस्तिजिह्विका	व्यान	१०	शंखिनी	धनंजय

इन दस नाडियोंमें इडा, पिंगला और सुषुम्ना—इन तीन नाडियोंको तथा इनके कार्योंको हम सरलतापूर्वक पहचान पाते हैं; क्योंकि इनकी क्रियाओंका अनुभव हम अपनी दिनचर्यामें कर सकते हैं। इडाका सम्बन्ध चन्द्रमासे, पिंगलाका सम्बन्ध सूर्यसे तथा सुषुम्नाका सम्बन्ध शम्भुसे है। शम्भुको हंस भी कहा गया है। इन सम्बन्धोंको निरूपित करते हुए ज्योतिषशास्त्र कहता है—

इडानाडीस्थितश्चन्द्रः पिङ्गला भानुवाहिनी।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भुर्हंसस्वरूपकः॥

(नरपतिजयचर्या हंसचार ९)

आशय स्पष्ट है, इडा नाडीके माध्यमसे चन्द्र (चन्द्रस्वर) तथा पिंगलाके माध्यमसे सूर्य (सूर्यस्वर) नासिकारन्ध्रसे प्रवाहित होता है। इस प्रक्रियाका संचालन सुषुम्नाके माध्यमसे होता है। सुषुम्नाको शम्भुस्वरूप कहा गया है। शम्भु ही हंस है। श्वासके आवागमनको हंस कहा जाता है। जब नासिकासे श्वास बाहर आती है, तब वह हकार (ह) तथा जब अन्दर श्वास प्रवेश करती है, तब वह सकार (स)-स्वरूप होती है। यही सुषुम्ना हकाररूपसे शम्भुस्वरूप तथा सकाररूपसे शक्तिरूपमें प्रतिष्ठित है। योगी इसी श्वासके निर्गम एवं प्रवेशको शिवशक्तिसे जोड़ देता है। श्वासके आवागमनके साथ-साथ जप भी होता रहता है। इसे अजपाजप कहते हैं। यह स्वयं होता रहता है, इसे किसी साधनकी अपेक्षा नहीं होती। योगचूडामण्युपनिषद् (३१) तथा ध्यानबिन्दूपनिषद् (६१-६२)-में कहा गया है—

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा॥

जैसे ब्रह्माण्डमें सूर्यकी सुषुम्ना नामक रश्मि चन्द्रमण्डलसे भूमण्डलपर अमृतस्राव करती है, उसी प्रकार सुषुम्ना नाड़ी कपालमें स्थित होकर अमृतका स्राव करती है। योगी अपनी जिह्वाको कपालकुहरमें प्रवेश कराकर अमृतका पान करता है। इसे खेचरीमुद्रा कहते हैं, इसका विवेचन हठयोगप्रदीपिकामें इस प्रकार किया गया है—

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी॥

(ह०यो०प्र० ३।३२)

उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट होता है कि सुषुम्ना नाड़ीका सम्बन्ध सूर्य और चन्द्र दोनोंसे है। सुषुम्नाके माध्यमसे इडा नाडी चन्द्रशक्तिको श्वासके माध्यमसे नासिकाके वाम रन्ध्रसे तथा पिंगला नाडी सूर्यशक्तिको दक्षिण रन्ध्रसे प्रवाहित करती है। इसे ज्योतिषकी भाषामें चन्द्रस्वर और सूर्यस्वरसे परिभाषित किया गया है।

प्रायः यह भी सर्वविदित है कि तिथियों तथा चन्द्रमाकी कलाओंका भी सम्बन्ध सूर्य और चन्द्रसे ही है। चान्द्रमासके शुक्लपक्षमें तिथियोंके अनुसार चन्द्रमाकी कलाएँ प्रतिदिन बढ़ती हैं तथा कृष्णपक्षमें तिथियोंके अनुसार प्रतिदिन कलाएँ घटती हैं, किंतु चन्द्र और सूर्य स्वरोंमें इस प्रकार ह्रास या वृद्धिका क्रम नहीं है। हम भूवासियोंको चन्द्रमामें कलाओंकी ह्रासवृद्धिकी केवल प्रतीति होती है। वस्तुतः चन्द्रमाके प्रकाशित भागमें भी ह्रासवृद्धि नहीं होती, वह तो सूर्यप्रकाशसे प्रतिदिन

समानरूपसे ही प्रकाशित होता है। इसीलिये स्वरोंमें भी ह्रासवृद्धि नहीं होती। ये सदैव समानरूपसे ही प्रवाहित होते रहते हैं। तिथियोंके सापेक्ष इनका प्रवाहक्रम इस प्रकार है—

प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे तृतीयातक तीन दिन सूर्योदयके समय चन्द्रस्वर पश्चात् तीन दिन चतुर्थीसे षष्ठीतक सूर्योदयके समय सूर्यस्वर चलता है। इसी प्रकार तीन दिन क्रमसे चन्द्रस्वर तथा सूर्यस्वर चलते हैं। अर्थात् शुक्लप्रतिपदासे तृतीयातक, सप्तमीसे नवमीतक तथा त्रयोदशीसे पूर्णिमातक सूर्योदयके समय चन्द्रस्वर (वाम नासिकासे श्वास)-प्रवाह होता है तथा शेष तिथियोंमें सूर्योदयके समय सूर्यस्वर (दक्षिण नासिकासे श्वास)-का प्रवाह होता है। कृष्णपक्षमें इससे विपरीत स्वरसंचार होता है अर्थात् कृष्ण प्रतिपदासे तृतीयातक सूर्योदयके समय सूर्यस्वर पश्चात् तीन दिन चन्द्रस्वर। इसी क्रमसे निरन्तर स्वरसंचार होता रहता है। चन्द्रस्वरके समय यदि सूर्यस्वर चले या सूर्यस्वरके समय चन्द्रस्वर चले तो शरीरके लिये तथा शकुनकी दृष्टिसे शुभ नहीं माना जाता है। इसी प्रकार श्वासके सम्बन्धको पंचमहाभूतोंके साथ दर्शाते हुए अहोरात्रमें चलनेवाली श्वास-प्रक्रिया (हंसचार)-को विस्तृत रूपसे परिभाषित किया गया है। हृदयमें अष्टदल कमलकी कल्पना की गयी है। प्रत्येक कमलदलके दो भाग होते हैं। एक भागसे पंचतत्त्वोंकी पृथक्-पृथक् श्वास नियत संख्यामें आरोहक्रमसे चलती है तथा दलके दूसरे भागसे अवरोहक्रमसे चलती है। श्वासोंकी तत्त्वक्रमसे संख्या तथा पर्यायके सन्दर्भमें स्वरज्योतिषके ग्रन्थ समरसारके मतको यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

नागैर्नीचैर्निधिज्ञाश्रयनशुकमितैः श्वासपर्यायकैर्वा-
त्यभ्रं वातोऽनलोम्बुक्षितिरपृथगुपर्यन्तराधोऽप्यव्रजुत्वे।
व्यत्यासाच्चावनीतो हृदयकमलजे पत्र एकत्र तेन
श्वासा नानाधिसंख्याननरसकमलेऽहर्निशोस्त्रिभ्रमोऽत्र॥

(समरसार हंसचार ३९)

आशय यह है कि अष्टदलकमलके आधे भागमें आरोह क्रमसे सर्वप्रथम ३० श्वास आकाशतत्त्वकी, अनन्तर ६० श्वास वायुतत्त्वकी, इसी क्रमसे ९० अग्नितत्त्व, १२० जलतत्त्व तथा १५० श्वास पृथ्वीतत्त्वके चलते हैं। अनन्तर पत्रके दूसरे भागमें अवरोहक्रमसे १५० श्वास पृथ्वी, १२० जल, ९० अग्नि, ६० वायु तथा ३० श्वास आकाशतत्त्वके चलते हैं। पूर्वादि क्रमसे सभी पत्रोंमें श्वासका संचार होता है। इस प्रकार एक पत्रसे कुल श्वाससंचारकी संख्या (३०+६०+९०+१२०+१५०=४५० आरोह तथा ४५० अवरोह कुल)=९०० होती है। इन पंचतत्त्वोंके ९०० श्वासके संचारमें लगभग ढाई घटी अर्थात् १ घण्टेका समय लगता है। कमलके आठों पत्रोंमें श्वासका एक पर्याय पूर्ण होनेमें २० घटी अर्थात् ८ घण्टेका समय लगता है तथा ८×९००=७२०० श्वासका संचार एक पर्यायमें होता है। एक अहोरात्रमें तीन पर्याय होते हैं। अतः एक अहोरात्र (२४ घण्टे)-में श्वासका संचार ७२००×३=२१६०० बार होता है। यदि सभी तत्त्वोंकी श्वाससंख्या उक्त क्रमानुसार चलती है तथा २४ घण्टेमें २१६०० श्वासका संचार होता है तो मनुष्य सभी प्रकारसे स्वस्थ तथा पूर्ण आयुवाला होता है।

इसी हंसचारको नरपतिजयचर्यामें कुछ भिन्न ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। वहाँ श्वाससंख्याका उल्लेख न करके उसके समय एवं लक्षणोंका विवेचन किया गया है। नरपतिका कथन है कि प्रत्येक तत्त्वकी एक-एक घटी श्वास चलती है तथा प्रत्येक स्वरका एक अहोरात्रमें बारह पर्याय चलता है अर्थात् ६० घटीमें ५ तत्त्वोंके १२ पर्याय=१२×५=६० चक्र प्रत्येक तत्त्वकी श्वास चलती है। यद्यपि दोनों मतोंपर विचार करनेपर कुछ विसंगतियाँ भी दीखती हैं, किंतु दोनोंके प्रतिपादनका आधार भिन्न-भिन्न है। समरसारमें श्वासकी संख्याका तथा नरपति-जयचर्यामें कालका विवेचन है। दोनों विधाओंमें श्वाससंचारको महत्त्व दिया गया है। तत्त्वोंके सापेक्ष श्वासका नियन्त्रण भी योगका एक अंग है।

योगकी परम साधना षट्चक्रभेदन है। साधनामें लीन साधक कभी-कभी प्रयासोंके बाद भी सफल नहीं होता। कुछ साधकोंकी साधना निर्बाध होती रहती है। इसमें ग्रहोंका भी योगदान साधक एवं बाधक होता रहता

है; क्योंकि षट्चक्रोंका सम्बन्ध ग्रहोंके साथ भी है। षट्चक्र और उनसे सम्बन्धित ग्रह तालिकामें दर्शाये गये हैं—

षट्चक्र एवं उनके ग्रह

क्र०सं०	षट्चक्र	अधिष्ठात्री देवता	कारक ग्रह
१	मूलाधार	गणेश	बुध
२	स्वाधिष्ठान	विष्णु	शुक्र
३	मणिपूर	रुद्र	रवि
४	अनाहत	रुद्र	मंगल
५	विशुद्ध	रुद्र	चन्द्र
६	आज्ञा	रुद्र	गुरु

इन षट्चक्रोंके भेदनके अनन्तर योगी सातवें चक्र सहस्रारमें प्रवेशकर परम योगेश्वर रुद्रका साक्षात्कार करता है। इस चक्रके देवता रुद्र तथा कारक ग्रह शनि हैं। इन षट्चक्रोंमें स्वाधिष्ठान और विशुद्ध चक्रका भेदन कठिन होता है; क्योंकि इन दोनोंके कारक ग्रह क्रमशः शुक्र और चन्द्रमा हैं, जो अति शीघ्रगामी ग्रह हैं तथा मानवमनको संवेदनशील बनाते हैं। अतः मनकी एकाग्रतामें बाधा उत्पन्न होती है तथा साधनामें व्यवधानकी सम्भावना बढ़ जाती है। परिणामतः कभी-कभी इन चक्रोंतक पहुँचकर साधक ग्रहोंके प्रबल प्रभावसे असफल भी हो जाते हैं, उनकी साधना भंग हो जाती है। जो योगी ग्रहयोगकी अनुकूलता तथा अपनी कठोर साधनासे विशुद्धचक्रका भेदन कर लेते हैं, वे आज्ञाचक्रका भेदन गुरुकृपासे सहजमें ही कर लेते हैं; क्योंकि आज्ञाचक्रका कारक ग्रह गुरु ही है। गुरुकृपा प्राप्त हो जानेपर सहस्रारमें प्रवेशका द्वार खुल जाता है।

इन तथ्योंसे यह सिद्ध हो जाता है कि ज्योतिष और योगकी धारा साथ-साथ बहती है तथा कहीं-कहींपर दोनों एक-दूसरेमें विलीन भी हो जाती हैं। जहाँ योगसाधनामें ज्योतिषका सहयोग अपेक्षित है, वहीं ज्योतिषीके लिये भी एकाग्रता आवश्यक होती है। एकाग्रता मनके नियन्त्रण बिना सम्भव नहीं है। मनका नियन्त्रण ही योग है।

ज्योतिषका एक महत्त्वपूर्ण एवं व्यावहारिक पक्ष यह भी है कि समयसे पूर्व किसी प्रकारके व्यवधान, व्याधि अथवा उलझन आदिका यदि पूर्वज्ञान हो जाय तो व्यक्ति उसके प्रति सावधान हो जाता है। पूर्वज्ञानसे व्यक्ति उसके प्रतिकार या समाधानके लिये सचेष्ट हो जाता है तथा कुछ सीमातक सफलता भी मिल जाती है। अतः यह मान लेना सर्वथा उचित होगा कि ज्योतिष और योग—ये दोनों मानवकल्याणके शास्त्र हैं तथा मानवजीवनके साथ-साथ चलते हैं। ग्रहोंकी विभिन्न स्थितियोंसे इस प्रकारके भी संकेत मिलते हैं कि कौन व्यक्ति योगी होगा तथा कौन व्यक्ति चाहते हुए भी योगी न बनकर भोगी ही बना रहेगा। ग्रहोंकी स्थितिके आधारपर यह ज्ञात किया जा सकता है कि किस व्यक्तिकी अभिरुचि किस शास्त्र अथवा किस क्षेत्रमें हो सकती है, किन परिस्थितियोंमें व्यक्ति ब्रह्मनिष्ठ या योगनिष्ठ हो सकता है। उदाहरणार्थ कुछ योग उद्धृत हैं—

ब्रह्मनिष्ठयोग—

खेशे देवलोके ब्रह्मनिष्ठः। भाग्यपे पारावते शुभदृष्टे ब्रह्मनिष्ठः। (जातकपारिजात ५। ६२-६३)

दशमेश देवलोकांशमें स्थित होकर शुभ ग्रहोंसे दृष्ट हो अथवा भाग्येश पारावतांशमें स्थित होकर शुभ ग्रहोंसे दृष्ट हो तो जातक ब्रह्मनिष्ठ होता है।

विविध संन्यासयोग—

एकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैर्जाताः पृथग्वीर्यगैः
शाक्याजीविकभिक्षुवृद्धचरका निर्ग्रन्थवन्याशनाः।
माहेयज्ञगुरुक्षपाकरसितप्राभाकरीनैः क्रमात्
प्रव्रज्या बलिभिः समाः परजितैस्तत्स्वामिभिः प्रच्युतिः॥

(बृहज्जातक १५। १)

यदि एक ही भावमें चार या चारसे अधिक बलवान् ग्रह एक साथ बैठे हों तो प्रव्रज्या (वैराग्य)-योग बनता है। इनमें बलवान् ग्रहोंके अनुसार प्रव्रज्या होती है। यथा मंगल बलवान् हो तो शाक्य, चीवरधारी, बौद्धभिक्षु। बुध बलवान् हो तो आजीवक या लोकायत संन्यासी। गुरु बली हो तो यति (संन्यासी)। चन्द्रमा बली हो तो कपाली। शुक्र बली हो तो चरक। शनि बली हो तो दिगम्बर (जैन) तथा सूर्य बलवान् हो तो कन्द,

मूल, फलपर जीवन-यापन करनेवाला तपस्वी होता है।

शास्त्रज्ञयोग—

अर्थसुतयोरंशाज्जीवे वैयाकरणः। अंशात्सुतार्थ-सोत्थे जीवारौ तार्किकः। अंशात् सोत्थे सुतेऽकेतुजीवौ गणितज्ञः। ज्ञाच्छौ सोत्थार्थगौ ज्योतिर्विदां श्रेष्ठः। (जातकतत्त्व ५। ३६, ३९, ४३, ४८)

कारकांश लग्नसे द्वितीय या पंचम भावोंमें बृहस्पति हो तो जातक व्याकरण, द्वितीय-तृतीय तथा पंचम भावोंमें बृहस्पति और मंगल स्थित हो तो तर्कशास्त्र, कारकांश लग्नसे द्वितीय और पंचम भावोंमें बृहस्पति तथा केतु स्थित हों तो गणितशास्त्रका तथा बुध और शुक्र द्वितीय भावमें स्थित हों तो जातक ज्योतिष-शास्त्रका विशेषज्ञ होता है।

इस प्रकार ग्रहोंकी स्थितिके अनुसार मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्थितिका ज्ञान करनेका मार्ग ऋषियों तथा आचार्योंने हमें दिखलाया है। इसीके आधारपर योगशास्त्रमें व्यक्तिकी प्रवृत्ति तथा उसकी सफलताका भी आकलन कर सकते हैं। उक्त सभी तथ्योंसे योग और ज्योतिषशास्त्रके अन्तःसम्बन्ध पूर्णतः सिद्ध होते हैं।

सामुद्रिक शास्त्र और हस्तविज्ञान

(श्रीभँवरलालजी शर्मा)

सामुद्रिक शास्त्र भारतकी बहुत प्राचीन विद्या है। जन्मलग्नसे बताये जानेवाले फलादेशमें कदाचित् अन्तर-प्रत्यन्तर हो सकता है; क्योंकि समयके थोड़े-से अन्तरालसे इष्टकाल बदल जाता है, ग्रहदशा बदल जाती है, परंतु हाथकी रेखाके फलादेशमें यह सम्भावना नहीं रहती; क्योंकि हाथकी रेखा तो हाथके साथ ही आती है। इस शास्त्रमें तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, मेषादि राशियों और लग्न इत्यादि हाथकी रेखाओंसे ही बता दिये जाते हैं। सामुद्रिक शास्त्रका अध्ययन-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, इसमें शरीर-लक्षणोंके साथ ही हस्तविज्ञानका भी अध्ययन होता है। हस्तविज्ञानका अपना कुछ वैशिष्ट्य है, जिससे इसका स्वरूप पृथक् रूपसे भी निर्धारित है। यहाँ संक्षेपमें इसकी कुछ बातें दी जा रही हैं—

प्रातःकालमें हथेलियोंका दर्शन करना हमारे यहाँ पुण्यदायक, मंगलप्रद तथा तीर्थोंके सेवन-जैसा माना गया है। अतः सुबह उठते ही हथेलियोंको देखनेकी परम्परा है। समुद्रशास्त्रके ज्ञाता बताते हैं कि मातृरेखा, पितृरेखा और आयुरेखा क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती हैं। इसलिये हथेलियोंके दर्शनसे त्रिवेणीदर्शन हो जाता है।

रेखाओं-अंगोंको देखकर भूत, भविष्य, वर्तमानके सभी शुभाशुभफल जाने जा सकते हैं। मणिबन्धसे अँगुष्ठ और तर्जनीके बीच जो रेखा गयी है, उसे पितृरेखा या गोत्ररेखा कहते हैं। अँगुष्ठ एवं तर्जनीके बीच जानेवाली रेखा मातृरेखा या धनरेखा है। तीसरी आयुरेखाको जीवित या तेजरेखा कहते हैं। ये तीनों रेखाएँ किसीके हाथमें सम्पूर्ण और निर्दोष हों तो वे गोत्र, धन एवं आयुकी वृद्धि बताती हैं। पितृरेखाको ऊर्ध्वलोक, मातृरेखाको मृत्युलोक और आयुरेखाको पाताललोक कहते हैं। पितृरेखाके स्वामी ब्रह्मा, मातृरेखाके स्वामी विष्णु तथा आयुरेखाके स्वामी शिव हैं। इन्द्र, यम, वरुण और कुबेर—हथेलीके चारों दिशाओंके क्रमसे स्वामी हैं।

पितृरेखा बाल्यावस्था, मातृरेखा तरुणावस्था तथा आयुरेखा वृद्धावस्था बताती है। पितृरेखासे वायुप्रकृति, मातृरेखासे पित्तप्रकृति तथा आयुरेखासे कफप्रकृति जानी जाती है। पितृ-मातृ तथा आयुरेखाएँ क्रमशः चर, स्थिर तथा द्विस्वभावसंज्ञक हैं। क्रमसे ये रेखाएँ पुरुष, स्त्री, नपुंसक तथा नभचर, थलचर, जलचर और इसी प्रकार सत्त्वगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी भी हैं। जिसके हाथमें जिस रेखाकी प्रधानता होती है, उसीका फल होता है। जैसे किसीके बायें हाथमें पितृरेखा स्पष्ट हो तो वह पितृलोकसे आया हुआ माना जायगा तथा दाहिने हाथमें हो तो वह मरनेपर पितृलोकको प्राप्त करेगा।

इस प्रकार रेखाओंपर समस्त ज्ञेय, चराचर, भूत, भविष्य, वर्तमानका प्रकाश होता है। जीवके प्रायः सभी

शुभाशुभ फल हाथकी रेखाओंसे ज्ञात हो जाते हैं। रेखाओंके साधारणतः बत्तीस लक्षण जो सर्वथा शुभसूचक हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—छत्र, कमल, धनुष, रथ, वज्र, कछुआ, अंकुश, बावली, स्वस्तिक, तोरण, बाण, सिंह, वृक्ष, चक्र, शंख, हाथी, समुद्र, कलश, मन्दिर, मछली, यव, जुआ, सूप, कमण्डलु, पर्वत, चमर, दर्पण, वृष, पताका, लक्ष्मी, पुष्पमाला तथा मोर। जिनके हाथमें ये लक्षण हैं, वे पुण्यवान्, भाग्यवान् और धनवान् होते हैं। यह शास्त्र भारतवासियोंका एक गौरवास्पद एवं परिशीलन तथा मनन करनेयोग्य शास्त्र है।

वाल्मीकिरामायणमें सुन्दरकाण्डके ३५वें सर्गमें बताया गया है कि महावीर हनुमान्‌जीने श्रीरामजीके उपर्युक्त हस्तलक्षणोंका वर्णनकर सीतामाताको रामदूत होनेका प्रमाण दिया। कहते हैं—महाराज विक्रमादित्यके हाथोंमें भी ये लक्षण रहे, जिनके कारण उन्हें 'परदुःख-भंजनहार' कहा गया।

रामचरितमानसके बालकाण्ड दोहा ६७ में नारदजीने

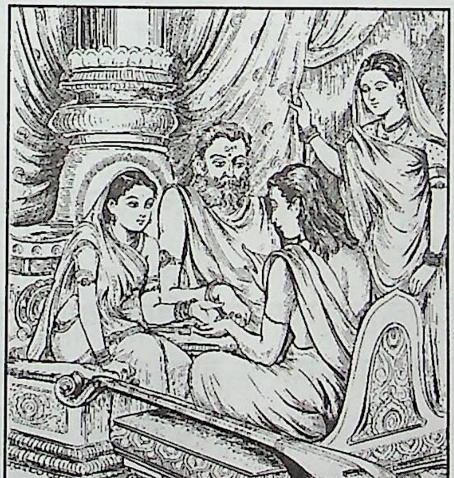

हिमालय और मैनाको पार्वतीकी हस्तरेखा देखकर बताया कि इसे योगी, जटाधारी, निष्कामहृदय, नंगा और अमंगल वेषवाला पति मिलेगा—ऐसी इसके हाथमें रेखा पड़ी है—

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥

इसी प्रकार बालकाण्डके दोहा २२९में नारदजीके सीताजीके प्रति वचन हैं—

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥

स्वामी प्रज्ञानानन्दद्वारा रचित 'मानस-गूढार्थ-चन्द्रिका' तथा श्रीअंजनीनन्दनशरणद्वारा लिखित 'मानस-पीयूष' में उपर्युक्त नारदवचन—***'उपजी प्रीति पुनीत'*** के अनेक अर्थ लिये गये हैं। कुछ विद्वानोंने इसका अर्थ लिया है कि राजा जनक और रानी सुनयनाको नारदजीने यह बात बहुत पहले बतायी थी, जब सीताका प्रादुर्भाव हुआ था। श्रीरूपलतारचित स्तुतिमें लिखा है—***'नारद मुनि आये बचन सुनाये।'*** सम्भव है तभी उपर्युक्त प्रसंगपर नारदजीने सीताजीकी हस्तरेखा देखकर कहा होगा कि पुष्पवाटिकामें इसे पतिका पहले दर्शन होगा, तब विवाह होगा। सारांश यह है कि महर्षि नारद सामुद्रिक शास्त्रके प्रथम ज्ञाता रहे, जिन्होंने पार्वती तथा सीताजीकी हस्तरेखाएँ देखकर उनके भावी पतियोंकी भविष्यवाणी की।

प्राचीन समयमें सामुद्रिक शास्त्र भारतमें बड़ी उन्नत दशामें रहा, किंतु वर्तमानमें इसका बहुत ह्रास हो गया है। केवल आजीविकाका ही यह विषय बन गया है। इस शास्त्रका विषय बहुत गहन और कठिन है, बिना सम्यक् अध्ययनके इस ओर प्रवृत्त होना विडम्बना नहीं तो और क्या है!

जन्मराशि और नामराशिका विचार

विवाहे सर्वमाङ्गल्ये यात्रादौ ग्रहगोचरे। जन्मराशेः प्रधानत्वं नामराशिं न चिन्तयेत्॥
देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवायां व्यवहारके। नामराशेः प्रधानत्वं जन्मराशिं न चिन्तयेत्॥

विवाहमें, सभी मांगलिक कार्योंमें, यात्रामें तथा ग्रह-गोचरविचारमें, जन्मराशिका प्राधान्य है, नामराशिसे विचार नहीं करना चाहिये और देश, ग्राम, गृह, युद्ध, सेवा तथा व्यवहारमें नामराशिका प्राधान्य है, जन्मराशिसे विचार नहीं करना चाहिये। [ज्योतिर्निबन्ध]

ज्योतिष और आयुर्वेद

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

आयु एवं आयुर्ज्ञानसम्बन्धी आयुर्वेदशास्त्र अनादि है; क्योंकि आत्माके समान सृष्टि भी अनादि है। आयुर्वेदका पटल बहुत विस्तीर्ण है। इसमें सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, मीमांसा-जैसे दर्शनोंके साथ ज्योतिषका भी समावेश प्राप्त होता है। आयुर्वेदमें औषधिके अतिरिक्त दैवव्यपाश्रय चिकित्साके अन्तर्गत मणि एवं मन्त्रोंसे चिकित्सा करनेका विधान है।

भारतीय संस्कृतिके आधार-स्तम्भ चार वेदोंमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। इसके अन्तर्गत ज्योतिष एवं चिकित्सा-विज्ञानका भी सांगोपांग वर्णन है। दोनों एक-दूसरेके पूरक एवं एक-दूसरेपर निर्भर हैं। वस्तुतः आकाशीय पिण्डोंका ज्योतिर्मय संगठन ही शरीररूपी भौतिक संगठनका कारक होता है। चरकसंहितामें कहा गया है कि **'पुरुषोऽयं लोकसंमितः'** अर्थात् यह पुरुष लोक (सृष्टि)-के समान है। लोकमें जितने भी मूर्तिमान् भावोंके भेद हैं, स्वरूपवाले ग्रह या पंचभूत हैं, वे सभी पुरुषके शरीरमें विद्यमान हैं। इसी बातको अन्यत्र **'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे'** के द्वारा कहा गया है।

आयुर्वेदमें दैव एवं दैवज्ञ दोनोंका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। दैव एवं पुरुषार्थ—इन दोनोंकी उत्तमताका योग हो तो निश्चित रूपसे सुखपूर्वक दीर्घायुकी प्राप्ति होती है। इसके विपरीत हीनसंयोग दुःख एवं अल्प आयुका कारण होता है। जब दैव बलवान् होता है और उसके समान पुरुषार्थ बलवान् नहीं किया जाता, तब पुरुषार्थ दुर्बल ही रहता है, अतः दुर्बल होनेके कारण पुरुषार्थका कोई फल नहीं होता है। इसीसे आयुका मान नियत किया जाता है—

दैवेन चेतरत् कर्म विशिष्टेनोपहन्यते।
दृष्ट्वा यदेके मन्यन्ते नियतं मानमायुषः॥

(चरक विमा० ३। ३४)

प्राणिशास्त्रके जानकारोंके अनुसार सृष्टिके शक्तिपुंज अदृश्य होते हुए भी गर्भाधान-क्रिया, कोशीय संरचना एवं विकसित होते भ्रूणपर बहुत गहरा प्रभाव डालते हैं। गर्भाधानके समय आकाशीय शक्तियाँ भ्रूणके गुण-संगठन एवं जीन्स-संगठनपर पूर्ण प्रभाव डालती हैं। जन्मलग्नके द्वारा यह ज्ञात हो सकता है कि बच्चेमें किन आधारभूत तत्त्वोंकी कमी रह गयी है। इसी ज्ञानके बलपर ज्योतिषी पहले ही भविष्यवाणी कर देता है कि शिशुको अमुक अवस्थामें अमुक रोग होगा।

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार विभिन्न ग्रह निम्न शरीर-रचनाओंके नियन्त्रक होते हैं—

१. **सूर्य**—अस्थि, जैव-विद्युत्, श्वसन-तन्त्र।
२. **चन्द्रमा**—रक्त, जल, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (हार्मोन्स)।
३. **मंगल**—यकृत्, रक्तकणिकाएँ, पाचन-तन्त्र।
४. **बृहस्पति**—नाड़ीतन्त्र, स्मृति, बुद्धि।
५. **बुध**—अंग-प्रत्यंग-स्थित तन्त्रिका-जाल।
६. **शुक्र**—वीर्य, रज, कफ, गुप्तांग।
७. **शनि**—केन्द्रीय नाड़ीतन्त्र, मन।
८. **राहु एवं केतु**—शरीरके अन्दर आकाश एवं अपानवायु।

ग्रहदोषके अनुसार ही विभिन्न वनौषधियाँ ग्रह-बाधाका निवारण करती हैं तथा ओषधिमिश्रित जलसे स्नान करनेसे भी ग्रह-दोष दूर होते हैं। विभिन्न रत्न धारण करनेसे ग्रहोंकी बाधाएँ नष्ट होती हैं।

शरीरमें वात, पित्त एवं कफ की मात्राका समन्वय रहनेपर शरीर साधारणतया स्वस्थ बना रहता है। इनकी न्यूनाधिक मात्रा शरीरमें रोग उत्पन्न करती है। सूर्य पित्तदोष, चन्द्रमा कफ एवं वातदोष, बुध त्रिदोष, बृहस्पति कफदोष, मंगल पित्तदोष एवं शनि वातदोष उत्पन्न करता है।

मानव-जीवनकी सफलताके आधारभूत धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्तिका मुख्य साधन मनुष्यका शरीर है। इसे निरामय एवं कार्यक्षम

रखना हमारा प्रथम कर्तव्य है। जन्मपत्री पूर्वार्जित कर्मोंको जाननेकी कुंजी है। पूर्वकृत कौन-से कर्मके विपाकसे मनुष्यको कौन-सी व्याधि होगी? इसका ज्ञान ज्योतिषविद्यासे ही प्राप्त होता है। मणि-मन्त्र-औषधिके प्रयोगसे व्याधिका पूर्णत: परिहार या उसकी तीव्रताका अल्पीकरण किया जा सकता है।

फलितमें राशिचक्र कालपुरुषका प्रतीक है। राशियाँ कालपुरुषके अंग-विभागकी बोधक हैं। आयुर्वेदमें कालके प्रभावका स्थान-स्थानपर उल्लेख है। आचार्य चरकने लिखा है—**कालो हि नित्यगश्चावस्थिकश्च तत्रावस्थिको विकारमपेक्षते नित्यगस्तु ऋतुसात्म्यापेक्ष:।** (च० विमा० १।२१।६)

अर्थात् काल नित्यग एवं आवस्थिक होता है। आवस्थिक काल विकारकी अपेक्षा करता है एवं नित्यग काल ऋतु-सात्म्यकी अपेक्षा करता है।

ज्योतिषमें रोगोंकी जानकारी प्राय: जातककी जन्म-कुण्डलीसे होती है। इसके अतिरिक्त हाथकी रेखाएँ, हाथके पर्वत एवं नाखूनोंके अध्ययनसे भी रोगज्ञान हो जाता है। अनेक शताब्दियोंसे ज्योतिर्विद्याका औषधियोंके साथ सम्बन्ध माना गया है। किसी भी वैद्यके लिये पूर्वमें यह आवश्यक था कि वह ज्योतिषी भी हो। अंग्रेजोंके आगमन एवं प्रभावके साथ ही ज्योतिषीय रोग-निरीक्षण एवं उपचारकी शैलियाँ प्राय: लुप्त होने लगीं। सम्प्रति यह प्रसन्नताका विषय है कि विकसित देश भी ज्योतिर्विद्याका उपयोग चिकित्सामें करने लगे हैं।

भारतीय वर्षा-विज्ञान

(श्रीशिवनाथजी पाण्डेय शास्त्री)

स्मरण कीजिये अतीतके उन तप:पूत प्राचीन खगोलवेत्ता ऋषि-मुनियोंको, जिनके पास आजकी तरह न तो विकसित वेधशालाएँ थीं और न ये आधुनिकतम सूक्ष्म परिणाम देनेवाले वैज्ञानिक उपकरण। फिर भी अपने अनुभव तथा अतीन्द्रिय ज्ञान और छोटे-मोटे उपकरणों (बाँस-नलिकाओं आदि)-के सहारे वे आकाशीय ग्रह-नक्षत्रों आदिका अध्ययन करके मौसमका वर्षोंपूर्व पूर्वानुमान कर लेते थे। शनै:-शनै: इस विज्ञानने गति प्राप्त की और प्रारम्भ हुआ नयी खोजोंका युग। राजा-महाराजाओंके संरक्षणमें निर्मित हुई नयी-नयी वेध-शालाएँ। सम्राट् विक्रमादित्यके समयमें तो यह विज्ञान चरमोत्कर्षपर रहा। सवाई महाराज जयसिंहद्वारा निर्मित दिल्लीमें जन्तर-मन्तर और जयपुर, उज्जैन तथा वाराणसीकी वेधशालाएँ आज भी भारतवर्षके स्वर्णिम अतीतका गुणगान कर रही हैं। गर्ग, पराशर आदिके समय तो यह विज्ञान गुरु-शिष्य-परम्परामें रहा। कालान्तरमें अनेक ज्योतिर्विदोंद्वारा उसे सर्वसुलभ कराया गया।

यद्यपि वैदिक-संहिताओं, पुराणों, स्मृतियोंमें इस विज्ञानका उल्लेख मिलता है, फिर भी आचार्य वराहमिहिरका इसमें विशेष योगदान रहा है। उन्होंने अपने ग्रन्थ बृहत्-संहितामें इस विषयपर विस्तारसे प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त संहिताग्रन्थोंमें ग्रहण, संक्रमण, ग्रह-युद्ध, अतिचार, मन्दचार, वक्रत्व, मार्गत्व आदि विभिन्न ग्रह-गतियोंका मौसमपर क्या प्रभाव पड़ता है? विस्तारसे बतलाया गया है।

इन संहिताग्रन्थोंमें तो ऐसे मन्त्रोंका भी विधान है, जिनके द्वारा यथेच्छ रूपसे वर्षाका आयोजन और निवारण किया जा सकता है।

ऋतु-चक्रका प्रवर्तक सूर्य होता है। सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्र (सौर-गणना)-में प्रवेश करता है, तभीसे औपचारिक रूपसे वर्षा-ऋतुका प्रारम्भ माना जाता है। भारतीय पंचांगकार प्रतिवर्ष आर्द्रा-प्रवेश-कुण्डली बनाकर भावी वर्षाकी भविष्यवाणी करते हैं। आर्द्रासे ९ नक्षत्रपर्यन्त वर्षाका समय माना जाता है।

ग्रहोंके गोचरसे बननेवाले कुछ योग—नारदपुराणमें त्रिस्कन्ध ज्योतिषका विशद वर्णन उपलब्ध है। वहाँ वर्षाविषयक अनेक योग दिये गये हैं। यथा—

१. वर्षाकालमें आर्द्रासे स्वातीतक सूर्यके विचरण करनेपर चन्द्रमा यदि शुक्रसे सप्तम स्थान अथवा

शनिसे पंचम, नवम या सप्तम स्थानपर हो तथा उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि हो तो उस समय अवश्य वर्षा होती है।

२. यदि बुध और शुक्र एक ही राशिमें समीपवर्ती हों तो तत्काल वर्षा होती है, किन्तु इन दोनोंके बीच यदि सूर्य आ जाय तो वर्षा नहीं होगी।

३. यदि मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा नक्षत्रोंमें सूर्यके विचरणके समय शुक्र पूर्व दिशामें उदित हो तथा स्वाती, विशाखा, अनुराधा नक्षत्रोंमें सूर्यके विचरणके समय शुक्र पश्चिममें उदय हो तो निश्चय वर्षा होती है। इससे विपरीत होनेपर वर्षाका अभाव होता है।

४. दक्षिण गोल (तुलासे मीनतक)-के सूर्यके रहते यदि शुक्र सूर्यसे वाम भागमें पड़े तो अवश्य वर्षा होती है।

५. यदि सूर्यके पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें प्रवेशके समय आकाश मेघोंसे आच्छन्न हो तो आर्द्रासे मूलपर्यन्त प्रतिदिन वर्षा होती है।

६. यदि रेवतीमें सूर्यके प्रवेश करते समय वर्षा हो जाय तो उससे दस नक्षत्र (रेवतीसे आश्लेषा)-तक वर्षा नहीं होती।

७. चन्द्रमण्डलमें परिवेष (घेरा) हो और उत्तर दिशामें बिजली चमके या मेढकोंका शब्द सुनायी पड़े तो निश्चय ही वर्षा होती है।

मेघोंका गर्भधारण

यद्यपि मेघोंके गर्भधारणके समयमें विद्वानोंमें मतैक्य नहीं है तथापि गर्गाचार्यके इस मतको अधिकांश विद्वानोंने मान्यता दी है—मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षमें जिस दिन चन्द्रमा पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें प्रवेश करता है, उस दिन मेघ गर्भधारण करते हैं। उससे १९५ दिन पश्चात् प्रसव होता है, यदि बीचमें गर्भपात (वर्षा) न हो।

विद्युत्के वर्णसे भी वर्षा आदिका अनुमान इस प्रकार किया जाता है—

वाताय कपिला विद्युदातपायाति लोहिता।
पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥

कपिला (भूरी) वर्णवाली बिजली वायु लानेवाली, अत्यन्त लोहित (लाल) वर्णवाली धूप निकालनेवाली, पीतवर्ण वृष्टि लानेवाली और सिता (श्वेत) दुर्भिक्षकी सूचना देनेवाली होती है।

संहिता ग्रन्थोंमें वर्षाका अनुमान कई प्रकारसे किया गया है, जिनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं—

१. नक्षत्रोंकी स्त्री-पुरुष संज्ञाद्वारा।
२. सूर्य-चन्द्रनाड़ीद्वारा।
३. नक्षत्र-वाहनद्वारा।
४. त्रिनाड़ीद्वारा।
५. सप्त नाड़ीद्वारा।

नरपति नामक ज्योतिषीने १२वीं शताब्दीमें नरपतिजयचर्या नामक ग्रन्थमें वर्षाके विभिन्न योगोंका वर्णन किया है। सूर्यके आर्द्रा नक्षत्रमें प्रवेशके बाद गोचरवश चन्द्रमासे इसका उपयोग किया जाता है। इसमें २८ नक्षत्रोंसे वर्षाका अनुमान किया जाता है।

क्रम-संख्या	नाड़ी	स्वामी ग्रह	नक्षत्र	फल
१	चण्डा	शनि	कृत्तिका, विशाखा, अनुराधा, भरणी	प्रचण्ड वायु
२	वायु	सूर्य	रोहिणी, स्वाती, ज्येष्ठा, अश्विनी	केवल तेज हवा
३	दहना	मंगल	मृगशिरा, चित्रा, मूल, रेवती	तापमानमें वृद्धि
४	सौम्य	गुरु	आर्द्रा, हस्त, पूर्वाषाढा, उ०भा०	बादल
५	नीर	शुक्र	पुनर्वसु, उ०फा०, उत्तराषाढा, पू०भा०	जल से भरे मेघ
६	जल	बुध	पुष्य, पू०फा०, अभिजित्, शतभिषा	सामान्य वर्षा
७	अमृता	चन्द्र	श्लेषा, मघा, श्रवण, धनिष्ठा	भारी वर्षा

मौसम-सम्बन्धी जानकारीके लिये उपर्युक्त विधि सर्वाधिक उपयोगी मानी जाती है; क्योंकि इसमें वायु, तापमान, वर्षाकी जानकारी एक साथ की जा सकती है। प्रत्येक नाड़ी अपने नामके अनुसार फल देनेवाली होती

है। इसे देखनेके कुछ सूत्र इस प्रकार हैं—

१. यदि एक भी ग्रह अपनी नाड़ीमें हो तो फल देनेवाला होता है। केवल मंगल जिस नाड़ीमें होता है, उसीके अनुसार फल देता है।

२. यदि कई ग्रह विभिन्न नाड़ियोंमें हों तो उस नाड़ीके अनुसार फल देते हैं।

३. यदि जल नाड़ीमें चन्द्र हो तो वर्षा होती है। अमृता नाड़ीमें अच्छी वर्षा होती है।

४. याम्य नाड़ी (चण्डा, वायु, दहना)-में क्रूर ग्रहोंका योग अनावृष्टिका सूचक है।

५. यदि एक नाड़ीमें चन्द्र, मंगल और गुरु हों तो भूमि जलमय हो जाती है।

६. यदि सूर्य, चन्द्र, मंगल एक नाड़ीमें हों तो अच्छी वर्षा होती है।

७. शुक्र, बुध, चन्द्र और गुरु एक नाड़ीमें हों तो अतिवृष्टि होती है।

भद्रबाहुसंहितामें सूर्य-परिवेष तथा चन्द्र-परिवेषका प्रत्येक नक्षत्रमें अलग-अलग वर्षापर पड़नेवाले प्रभावका विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रत्येक नक्षत्रमें प्रथम वर्षाका प्रभाव तथा माप भी बताया गया है। अर्थात् किस नक्षत्रमें कितने से०मी० वर्षा होगी, इसकी भविष्यवाणीकी जा सकती है।

मेघोंके प्रकार, वर्ण तथा उद्गम-दिशासे भी वर्षाका अनुमान किया जा सकता है—

कृष्णानि पीतताम्राणि श्वेतानि च यदा भवेत्।
तयोर्निदेशमाश्रित्य वर्षदानि शिवानि च॥

(भ०बा०सं० ६।४)

यदि बादल काले, पीले, ताम्र और श्वेत वर्णके हों तो अच्छी वर्षाके परिचायक हैं।

इसी प्रकार मेघोंके उद्गमके विषयमें कहा गया है—

शुक्लानि स्निग्धवर्णानि विद्युच्चित्रघनानि च।
सद्यो वर्षा समाख्यान्ति तान्यभ्राणि न संशयः॥

(भ०बा०सं० ६।६)

यदि मेघ श्वेत वर्णके हों, स्निग्ध हों तथा विद्युत्-सदृश कपोतवर्णी हों तो तत्काल वर्षा देनेवाले होते हैं। दिशाओंके आधारपर मेघोंसे वर्षाका योग इस प्रकार वर्णित है—

उदीच्यान्यथ पूर्वाणि वर्षदानि शिवानि च।
दक्षिणाण्यपराणि स्युः समूत्राणि न संशयः॥

(भ०बा०सं० ६।२)

उत्तर तथा पूर्व दिशासे उठनेवाले बादल सदा वर्षा देनेवाले होते हैं, किंतु दक्षिण तथा पश्चिम दिशाओंके बादल अल्प वर्षाकारक होते हैं।

कुछ अन्य वर्षाके योग—आचार्य वराहमिहिरका यह श्लोक वर्षाके लिये विशेष रूपसे प्रसिद्ध है—

प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसङ्क्रमे च।
पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चार्द्राम्॥

(बृहत्संहिता २८।२०)

१. जब कोई ग्रह उदय अथवा अस्त हो रहा हो।

२. दो ग्रहोंकी युति होनेपर।

३. चन्द्रमाके किसी मण्डलके प्रथम नक्षत्रमें प्रवेश करनेपर।

४. पक्षक्षय अर्थात् अमावस्या और पूर्णिमाके समय।

५. सायन सूर्यके २१ जूनको दक्षिण अयनमें और २२ दिसम्बरको उत्तर अयनमें प्रवेशके समय।

६. सूर्यके आर्द्रा नक्षत्र (२१/२२ जून) प्रवेशके समय।

इसके अतिरिक्त कुछ योग और भी हैं, जो वर्षामें सहायक हैं—

१. यदि शुक्रके उदय अथवा अस्तके समय आगे बुध हो।

२. यदि शुक्र और चन्द्र १८० अंशकी दूरी पर हों।

३. यदि गुरु अथवा चन्द्रमासे शुक्र सप्तम स्थानपर हो।

४. यदि चन्द्रमा और शुक्र एक ही राशिपर हों।

५. शनिसे ५, ७, ९वें भावमें चन्द्रमाके आनेपर वर्षाकी सम्भावना हो जाती है।

६. बुध-शुक्र, बुध-गुरु, गुरु-शुक्रकी युति वर्षाकारक होती है।

७. जब एक ही राशिमें चार अथवा पाँच ग्रह एक साथ हों तो वर्षा अथवा उत्पातके सूचक हैं।

अतिशीघ्र वर्षाके लक्षण—बृहत्संहिताके २८वें अध्यायमें २२ श्लोकोंमें अतिशीघ्र वर्षाके लक्षण दिये गये हैं। ये लक्षण वर्षाकालके ही हैं। अन्य ऋतुओंके लिये नहीं। '**तदहनि कुरुतेऽम्भस्तोयकाले**' (बृहत्संहिता २८।३) अर्थात् उसी दिन २४ घण्टेके अन्दर वर्षाकालमें ही प्रभावी होंगे, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—

१. जल स्वादहीन हो जाय। २. नमक पसीजने लगे। ३. आकाश कौओंके अण्डोंसदृश हो जाय। ४. दिशाएँ गौओंके नेत्र समान हो जायँ। ५. उदय होता हुआ सूर्य अत्यधिक तेजके कारण देखा न जा सके। ६. चींटियाँ अण्डे लेकर भागने लगें। ७. मेढक बोलने लगें। ८. मछलियाँ जलसे बाहर उछलने लगें। ९. चिड़ियाँ धूलमें स्नान करने लगें। १०. पपीहा रात्रिमें बोले। ११. मयूर सामूहिक रूपसे बोलें। १२. चन्द्रके आसपास वलय हो। १३. बिल्ली नाखूनसे धरती कुरेदे। १४. कुत्ते घरकी छतपर चढ़कर आकाशकी ओर देखें। १५. तीतरके पंखोंके समान मेघोंका वर्ण हो।

वर्षाप्रतिबन्धक योग—

१. यदि सूर्यके आगे मंगल हो तो वर्षा नहीं होती है।

२. बुध और शुक्रके साथ सूर्य हो तो भयंकर गर्मी पड़ती है।

३. मंगलके मार्गी होनेके समय सूर्य राशिपरिवर्तन करे तो तुषारापात होता है।

४. जब मंगल स्वाती, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, आर्द्रा, रोहिणी, उ०फा० नक्षत्रमें हो तो वर्षा नहीं होगी।

५. यदि शुक्रके आगे मंगल, बुध, शनि हों तो तेज हवा चलती है, वर्षा नहीं होती।

६. यदि माघ मासमें पाला न पड़े, फाल्गुनमें पवन प्रवाहित न हो, चैत्रमें बादल न हों, वैशाखमें उपलवृष्टि न हो, ज्येष्ठमें सूर्य न तपे अर्थात् अधिक गर्मी न पड़े तो वर्षा ऋतुमें अल्प वर्षा होती है। (मयूरचित्रक)

यहाँ ज्योतिषके प्राचीन ग्रन्थोंसे कुछ योग संकलित किये गये हैं। देश, काल, परिस्थितिके अनुसार इनमें शोध करके परिवर्तन तथा परिवर्धनकी आवश्यकता है; क्योंकि जब ये योग संकलित किये गये थे, तबसे अब भौगोलिक तथा खगोलीय परिस्थितियाँ काफी बदल गयी हैं।

स्वरविज्ञान और ज्योतिषशास्त्र

(श्रीजगदीशचन्द्रजी मेहता)

मानव-शरीर पंचतत्त्वोंका बना हुआ ब्रह्माण्डका ही एक छोटा स्वरूप है। ईश्वरकी असीम कृपासे जन्मके साथ ही मानवको स्वरोदय-ज्ञान मिला है। यह विशुद्ध वैज्ञानिक आध्यात्मिक ज्ञान-दर्शन है, प्राण ऊर्जा है, विवेक शक्ति है।

संसारके सब जीवोंमें-से मनुष्य ही एकमात्र कर्मयोनि है। शेष सब भोगयोनियाँ हैं। स्वर-साधनासे ही हमारे ऋषि-मुनियों आदिने अनुभवसे भूत, भविष्य और वर्तमानको जाना है। अब यह मनुष्यके हाथोंमें है कि इस स्वरोदय-विज्ञानका कितना उपयोग और उपभोग करता है।

भारतीय ज्योतिषशास्त्रमें अंक-ज्योतिष, स्वप्न-ज्योतिष, स्वरोदय-ज्योतिष, शकुन-ज्योतिष, सामुद्रिक-हस्तज्योतिष, शरीरसर्वांगलक्षणज्योतिष आदिपर अनेकानेक ग्रन्थ हैं। इन सबमें अति प्राचीन, तत्काल प्रभाव और परिणाम देनेवाला स्वरोदय-विज्ञान है।

मनुष्यकी नासिकामें दो छिद्र हैं—दाहिना और बायाँ। दोनों छिद्रोंमेंसे केवल एक छिद्रसे ही वायुका प्रवेश और बाहर निकलना होता रहता है। दूसरा छिद्र बन्द रहता है। जब दूसरे छिद्रसे वायुका प्रवेश और बाहर निकलना प्रारम्भ होता है तो पहला छिद्र स्वत: ही स्वाभाविक रूपसे बन्द हो जाता है अर्थात् एक चलित रहता है तो दूसरा बन्द हो जाता है। इस प्रकार वायुवेगके संचारकी क्रिया—श्वास-प्रश्वासको ही स्वर कहते हैं। स्वर ही साँस है। साँस ही जीवनका प्राण है। स्वरका दिन-रात २४ घंटे बना रहना ही जीवन है। स्वरका बन्द होना मृत्युका प्रतीक है।

स्वरका उदय सूर्योदयके समयके साथ प्रारम्भ होता है। साधारणतया स्वर प्रतिदिन प्रत्येक अढ़ाई घड़ीपर

अर्थात् एक-एक घंटेके बाद दायाँसे बायाँ और बायाँसे दायाँ बदलते हैं और इन घड़ियोंके बीच स्वरोदयके साथ पाँच तत्त्व—पृथ्वी (२० मिनट), जल (१६ मिनट), अग्नि (१२ मिनट), वायु (८ मिनट), आकाश (४ मिनट) भी एक विशेष समय-क्रमसे उदय होकर क्रिया करते रहते हैं। प्रत्येक (दाहिना-बायाँ) स्वरका स्वाभाविक गतिसे १ घंटा=९०० श्वास-संचारका क्रम होता है और पाँच तत्त्व ६० घड़ीमें १२ बार बदलते हैं। एक स्वस्थ व्यक्तिकी श्वास-प्रश्वास-क्रिया दिन-रात अर्थात् २४ घंटेमें २१६०० बार होती है। नासिकाके दाहिने छिद्रको दाहिना स्वर या सूर्यस्वर या पिंगला नाड़ी-स्वर कहते हैं और बायें छिद्रको बायाँ स्वर या चन्द्रस्वर या इडा नाड़ी-स्वर कहते हैं। इन स्वरोंका आत्मानुभव व्यक्ति स्वयं मनसे ही करता है कि कौन-सा स्वर चलित है, कौन-सा स्वर अचलित है। यही स्वरविज्ञान ज्योतिष है।

कभी-कभी दोनों छिद्रोंसे वायु-प्रवाह एक साथ निकलना प्रारम्भ हो जाता है, जिसे सुषुम्ना नाड़ी-स्वर कहते हैं। इसे उभय-स्वर भी कहते हैं। शरीरकी रीढ़की हड्डीमें ऊपर मस्तिष्कसे लगाकर मूलाधारचक्र (गुदद्वार)-तक सुषुम्ना नाड़ी रहती है। इस नाड़ीके बायीं ओर चन्द्रस्वर नाड़ी और दायीं ओर सूर्यस्वर नाड़ी रहती है। स्वर-संचार-क्रियामें अनेकानेक प्राणवाही नाड़ियाँ होती हैं, जिसमें प्रमुख इडा, पिंगला और सुषुम्ना ही हैं। हमारे शरीरमें ७२ हजार नाड़ियों (धमनियों, शिराओं, कोशिकाओं)-का जाल फैला हुआ होता है, जिसका नियन्त्रण-केन्द्र मस्तिष्क है। मस्तिष्कसे उत्पन्न मनके शुभ-अशुभ विचारोंका प्रभाव नाड़ीतन्त्रपर पड़ता है, जिससे स्वरोंकी संचारगति धीमी और तेज हो जाती है। इसका प्रभाव मूलाधारचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपूरचक्र, अनाहतचक्र, विशुद्धचक्र, आज्ञाचक्र और सहस्रारचक्रपर भी पड़ता है। इससे शारीरिक और मानसिक परिस्थितियों एवं घटनाओंका पूर्वाभास हो जाता है। यही स्वरोदय ज्योतिष है।

स्वरोदय-विज्ञानमें चन्द्रमाको अधिष्ठात्री माना गया है। वर्षभरकी अनुकूलता-प्रतिकूलताके सन्तुलनका पता चैत्रशुक्ल प्रतिपदासे तृतीयातक स्वर-संचार गतिको देखकर मालूम किया जाता है कि वर्ष कैसा रहेगा? इन तीन दिनोंकी तिथिमें सूर्योदयके समय शय्यात्यागके साथ प्रातःकाल चन्द्रस्वर (बायाँ स्वर)-का उदय-संचार अनुकूल—शुभ माना जाता है, जबकि सूर्यस्वरका उदय-संचार प्रतिकूल—अशुभ माना गया है। चन्द्रमाकी गतिके अनुसार प्रत्येक मासमें पन्द्रह-पन्द्रह दिनों के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष होते हैं। इनमें तिथियोंकी गणना सूर्योदयके समयसे ही दिन-रात २४ घंटेकी मानी जाती है। सूर्योदयके साथ स्वर और तिथियोंका नैसर्गिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वस्थ पुरुषका स्वरोदय दोनों पक्षोंमें निम्न प्रकार है—

शुक्लपक्षमें स्वरोदय—शुक्लपक्षमें १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५ (पूर्णिमा) तिथियोंतक प्रातः-काल सूर्योदयकालमें शय्यात्यागके साथ चन्द्रस्वर (बायें स्वर)-का संचार होता है और इसी प्रकार ४, ५, ६, १०, ११, १२ तिथियोंको सूर्यस्वर (दायें स्वर)-का संचार होता है।

कृष्णपक्षमें स्वरोदय—कृष्णपक्षमें १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५ (अमावस्या) तिथियोंमें सूर्योदयकालमें प्रातःकाल शय्यात्यागके साथ सूर्यस्वर (दाहिने स्वर)-का संचार होता है। इसी प्रकार ४, ५, ६, १०, ११, १२ तिथियोंको चन्द्रस्वरका संचार होता है।

कभी-कभी तिथिके घटनेपर २ दिनमें और बढ़नेपर ४ दिनमें स्वर स्वतः बदल जाते हैं।

स्वरोंके गुण, धर्म, प्रकृति और कार्य—(१) चन्द्रस्वरमें सभी प्रकारके स्थिर, सौम्य और शुभ कार्य करने चाहिये। यह स्वर साक्षात् देवीस्वरूप है। यह स्वर शीतल प्रकृतिका होनेसे गर्मी और पित्तजनित रोगोंसे रक्षा करता है।

(२) सूर्यस्वरमें सभी प्रकारके चलित, कठिन कार्य करनेसे सफलता मिलती है। यह स्वर साक्षात् शिवस्वरूप है। उष्ण प्रकृतिका होनेसे सर्दी, कफजनित रोगोंसे रक्षा करता है। इस स्वरमें भोजन करना, औषधि बनाना, विद्या और संगीतका अभ्यास आदि कार्य सफल होते हैं।

(३) सुषुम्ना स्वर साक्षात् कालस्वरूप है। इसमें ध्यान, धारणा, समाधि, प्रभु-स्मरण और कीर्तन श्रेयस्कर है।

स्वरोदयशास्त्र और आरोग्यता—आरोग्यताके वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें मनुष्य बड़ा उदासीन है। वह यम-

नियम, आहार-विहार, आचार-विचार, रहन-सहन, जल्दी सोना, जल्दी उठना आदि अनेकानेक नियमों तथा सिद्धान्तोंका पालन करता दिखायी नहीं देता। इसके विपरीत देरसे सोने तथा देरसे उठनेका फैशन बन गया है। इसके परिणामस्वरूप स्वरोंकी गति—चालमें अनियमितता पैदा होनेसे व्यक्ति बीमार हो जाता है, रोगग्रस्त हो जाता है। वह चिकित्सामें धन और समय दोनोंका व्यय करता है। जबकि स्वरोदय सरल, सुबोध, सस्ती, अहिंसक और अनौषधि चिकित्सा-पद्धति है। इसमें किसी भी प्रकारका आर्थिक व्यय और समय नष्ट नहीं होता है। व्यक्ति स्वयं ही स्वरोदय-चिकित्साद्वारा दमा, बुखार, सिरदर्द, पेटदर्द, अजीर्ण, रक्तचाप आदि अनेकानेक बीमारियोंको दूर भगा सकता है। इसके लिये स्वर-परिवर्तन विधियोंकी जानकारी होना आवश्यक है।

स्वरकी अमूल्य निधिका सही उपयोग करनेवाला सर्वदा सुखी और स्वस्थ रहता है।

स्वर-परिवर्तनकी विधियाँ—

(१) जो स्वर चलाना चाहो, उसके विपरीत करवट बदलकर उसी हाथका तकिया बनाकर लेट जाओ। थोड़ी देरमें स्वर बदल जायगा। जैसे यदि सूर्यस्वर चल रहा है और चन्द्रस्वर चलाना है तो दाहिनी करवट लेट जाओ।

(२) कपड़ेकी गोटी बनाकर या हाथके अँगूठेसे नासिकाका एक छिद्र बन्द कर दो। जो स्वर चलाना हो, उसे खुला रखो, स्वर बदल जायगा।

(३) बगलमें तकिया दबाकर रखनेसे भी स्वर बदल जाते हैं।

(४) अनुलोम-विलोम, नाड़ीशोधन, प्राणायाम, पूरक, रेचक, कुम्भक, आसन तथा वज्रासनसे भी स्वर-परिवर्तन हो जाता है। स्वर-परिवर्तनमें मुँह बन्द रखना चाहिये। नासिकासे स्वर-साधन करे।

चलित स्वरकी प्रधानतामें कार्य—

(१) प्रातःकाल सूर्योदयकालके बाद भी चलित स्वरवाली करवटसे उठो और बैठकर उसी तरफकी हथेलीके दर्शनकर मुँहपर घुमाओ। फिर दोनों हथेलियोंको देखकर, मिलाकर रगड़ो, फिर चेहरेपर घुमाओ, फिर सारे शरीरके हाथ-पैरपर घुमाओ। इसके बाद मन्त्र बोलो—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

अर्थात् हाथोंके अग्रभागमें लक्ष्मी, मध्यमें सरस्वती और मूलमें ब्रह्माका निवास है। ऐसे पवित्र हाथोंका प्रातःकाल स्वरके साथ दर्शन करना चाहिये। कर्मका प्रतीक हाथ ही है। कुछ भी प्राप्त करनेके लिये कर्म जरूरी है। इसके बाद बिस्तर त्यागनेके साथ जिस ओरका स्वर चल रहा हो, उसी ओरका पैर पृथ्वीपर बढ़ायें और मन्त्र बोलें—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

अर्थात् समुद्ररूपी वस्त्रोंको धारण करनेवाली, पर्वतरूपी स्तनोंसे मण्डित भगवान् विष्णुकी पत्नी पृथ्वीदेवि! आप मेरे पादस्पर्शको क्षमा करें। इस मन्त्रसे सिद्ध होता है कि भारतीय संस्कृतिमें जड़ वस्तुओंमें चेतनको देखनेकी क्षमता है। तत्पश्चात् चलित स्वरके अनुसार कदम बढ़ाये। यदि चन्द्रस्वर है तो २, ४, ६ सममें और सूर्यस्वर है तो १, ३, ५ विषममें कदम बढ़ाये। ऐसा करनेसे दिनका प्रारम्भ शुभ होता है और इच्छित कार्यमें सफलता मिलती है। आरोग्यताके साथ मनोकामना सिद्ध होती है।

(२) चलित स्वरकी ओरसे हाथ-पैर डालकर कपड़े पहननेसे प्रसन्नता बनी रहती है।

(३) दूसरेको देनेमें, उससे ग्रहण करनेमें, घरसे बाहर जानेपर जिस तरफका स्वर चलित हो उसी हाथ तथा पैरको आगे करके कार्य करनेमें सफलता मिलती है। ऐसा करनेसे व्यक्ति सर्वदा सुखी और उपद्रवोंसे बचा रहता है।

(४) चलित स्वरोंके अंगोंको प्रधानता देकर हर स्थितिमें कार्य किया जा सकता है और सफलता प्राप्त होती है। स्वर-ज्योतिषकी जानकारीसे मनुष्य शरीर और मनको नियन्त्रितकर रोग, कलह, हानि, कष्ट और असफलताको दूर कर सकता है, इसके साथ ही वह जीवनको आनन्दमय बनाकर परलोकको भी सुधारकर कल्याणको प्राप्त हो सकता है।

वास्तुशास्त्र और आरोग्य

(श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

'वास्तु' शब्दका अर्थ है—निवास करना। जिस भूमिपर मनुष्य निवास करते हैं, उसे 'वास्तु' कहा जाता है। वास्तुशास्त्रमें गृह-निर्माण-सम्बन्धी विविध नियमोंका प्रतिपादन किया गया है। उनका पालन करनेसे मनुष्यको अन्य कई प्रकारके लाभोंके साथ-साथ आरोग्यलाभ भी होता है। वास्तुशास्त्रका विशेषज्ञ किसी मकानको देखकर यह बता सकता है कि इसमें निवास करनेवालेको क्या-क्या रोग हो सकते हैं। इस लेखमें संक्षिप्त रूपसे ऐसी बातोंका उल्लेख करनेकी चेष्टा की जाती है, जिनसे पाठकोंको इस बातका दिग्दर्शन हो जाय कि गृह-निर्माणमें किन दोषोंके कारण रोगोंकी उत्पत्ति होना सम्भव है।

१. भूमि-परीक्षा—भूमिके मध्यमें एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदे। खोदनेके बाद निकली हुई सारी मिट्टी पुनः उसी गड्ढेमें भर दे। यदि गड्ढा भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो वह उत्तम भूमि है। यदि मिट्टी गड्ढेके बराबर निकलती है तो वह मध्यम भूमि है और यदि गड्ढेसे कम निकलती है तो वह अधम भूमि है।

दूसरी विधि—उपर्युक्त प्रकारसे गड्ढा खोदकर उसमें पानी भर दे और उत्तर दिशाकी ओर सौ कदम चले, फिर लौटकर देखे। यदि गड्ढेमें पानी उतना ही रहे तो वह उत्तम भूमि है। यदि पानी कम (आधा) रहे तो वह मध्यम भूमि है और यदि बहुत कम रह जाय तो वह अधम भूमि है। अधम भूमिमें निवास करनेसे स्वास्थ्य और सुखकी हानि होती है।

ऊसर, चूहोंके बिलवाली, बाँबीवाली, फटी हुई, ऊबड़-खाबड़, गड्ढोंवाली और टीलोंवाली भूमिका त्याग कर देना चाहिये।

जिस भूमिमें गड्ढा खोदनेपर राख, कोयला, भस्म, हड्डी, भूसा आदि निकले, उस भूमिपर मकान बनाकर रहनेसे रोग होते हैं तथा आयुका ह्रास होता है।

२. भूमिकी सतह—पूर्व, उत्तर और ईशान दिशामें नीची भूमि सब दृष्टियोंसे लाभप्रद होती है। आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य और मध्यमें नीची भूमि रोगोंको उत्पन्न करनेवाली होती है।

दक्षिण तथा आग्नेयके मध्य नीची और उत्तर एवं वायव्यके मध्य ऊँची भूमिका नाम 'रोगकर वास्तु' है, जो रोग उत्पन्न करती है।

३. गृहारम्भ—वैशाख, श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष और फाल्गुनमासमें गृहारम्भ करना चाहिये। इससे आरोग्य तथा धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।

नींव खोदते समय यदि भूमिके भीतरसे पत्थर या ईंट निकले तो आयुकी वृद्धि होती है। यदि राख, कोयला, भूसी, हड्डी, कपास, लोहा आदि निकले तो रोग तथा दुःखकी प्राप्ति होती है।

४. वास्तुपुरुषके मर्म-स्थान—सिर, मुख, हृदय, दोनों स्तन और लिङ्ग—ये वास्तुपुरुषके मर्म-स्थान हैं। वास्तुपुरुषका सिर 'शिखी'में, मुख 'आप्'में, हृदय 'ब्रह्मा'में, दोनों स्तन 'पृथ्वीधर' तथा 'अर्यमा'में और लिङ्ग 'इन्द्र' तथा 'जय'में है (देखें—वास्तुपुरुषका चार्ट)। वास्तुपुरुषके जिस मर्म-स्थानमें कील, खम्भा आदि गाड़ा जायगा, गृहस्वामीके उसी अङ्गमें पीडा या रोग उत्पन्न हो जायगा।

वास्तुपुरुषका हृदय (मध्यका ब्रह्म-स्थान) अतिमर्मस्थान है। इस जगह किसी दीवार, खम्भा आदिका निर्माण नहीं करना चाहिये। इस जगह जूठे बर्तन, अपवित्र पदार्थ भी नहीं रखने चाहिये। ऐसा करनेपर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

५. गृहका आकार—चौकोर तथा आयताकार मकान उत्तम होता है। आयताकार मकानमें चौड़ाईकी दुगुनीसे अधिक लम्बाई नहीं होनी चाहिये। कछुएके आकारवाला घर पीडादायक है। कुम्भके आकारवाला घर कुष्ठरोगप्रदायक है। तीन तथा छः कोनवाला घर आयुका क्षयकारक है। पाँच कोनवाला घर संतानको कष्ट देनेवाला है। आठ कोनवाला घर रोग उत्पन्न करता है।

घरको किसी एक दिशामें आगे नहीं बढ़ाना चाहिये। यदि बढ़ाना ही हो तो सभी दिशाओंमें समानरूपसे बढ़ाना चाहिये। यदि घर वायव्य दिशामें आगे बढ़ाया जाय तो वात-व्याधि होती है। यदि वह दक्षिण दिशामें बढ़ाया जाय तो मृत्यु-भय होता है। उत्तर दिशामें बढ़ानेपर रोगोंकी वृद्धि होती है।

वास्तुचक्र

ईशान — पूर्व — आग्नेय

शिखी सिर	पर्जन्य नेत्र	जयन्त कान	इन्द्र कन्धा	सूर्य भुजा	सत्य भुजा	भृश भुजा	अन्तरिक्ष भुजा	अनिल भुजा
दिति नेत्र	आप् मुख						सावित्र हाथ	पूषा मणिबन्ध
अदिति कान		आपवत्स छाती		अर्यमा स्तन		सविता हाथ		वितथ बगल
भुजग कन्धा								बृहत्क्षत बगल
सोम भुजा		पृथ्वीधर स्तन		ब्रह्मा हृदय		विवस्वान् पेट		यम ऊरु
भल्लाट भुजा								गन्धर्व घुटना
मुख्य भुजा		राजयक्ष्मा हाथ		मित्र पेट		इन्द्र लिङ्ग		भृंगराज जंघा
नाग भुजा	रुद्र हाथ						जय लिङ्ग	मृग नितम्ब
रोग भुजा	पापयक्ष्मा मणिबन्ध	शोष बगल	असुर बगल	वरुण ऊरु	पुष्पदन्त घुटना	सुग्रीव जंघा	दौवारिक नितम्ब	पिता पैर

उत्तर (बायें) — दक्षिण (दायें)

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

६. गृहनिर्माणकी सामग्री—ईंट, लोहा, पत्थर, मिट्टी और लकड़ी—ये नये मकानमें नये ही लगाने चाहिये। एक मकानमें उपयोग की गयी लकड़ी दूसरे मकानमें लगानेसे गृहस्वामीका नाश होता है।

मन्दिर, राजमहल और मठमें पत्थर लगाना शुभ है, पर घरमें पत्थर लगाना शुभ नहीं है।

पीपल, कदम्ब, नीम, बहेड़ा, आम, पाकर, गूलर, रीठा, वट, इमली, बबूल और सेमलके वृक्षकी लकड़ी घरके काममें नहीं लेनी चाहिये।

७. गृहके समीपस्थ वृक्ष—आग्नेय दिशामें वट, पीपल, सेमल, पाकर तथा गूलरका वृक्ष होनेसे पीडा और मृत्यु होती है। दक्षिणमें पाकर-वृक्ष रोग उत्पन्न करता है। उत्तरमें गूलर होनेसे नेत्ररोग होता है। बेर, केला, अनार, पीपल और नीबू—ये जिस घरमें होते हैं, उस घरकी वृद्धि नहीं होती।

घरके पास काँटेवाले, दूधवाले और फलवाले वृक्ष हानिप्रद हैं।

पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा, पीपल, कपित्थ, बेर, निर्गुण्डी, इमली, कदम्ब, बेल तथा खजूर—ये सभी वृक्ष घरके समीप अशुभ हैं।

८. गृहके समीपस्थ अशुभ वस्तुएँ—देवमन्दिर, धूर्तका घर, सचिवका घर अथवा चौराहेके समीप घर होनेसे दुःख, शोक तथा भय बना रहता है।

९. मुख्य द्वार—जिस दिशामें द्वार बनाना हो, उस ओर मकानकी लम्बाईको बराबर नौ भागोंमें बाँटकर पाँच भाग दायें और तीन भाग बायें छोड़कर शेष (बायीं ओरसे चौथे) भागमें द्वार बनाना चाहिये। दायाँ और बायाँ भाग उसको माने, जो घरसे बाहर निकलते समय हो।

पूर्व अथवा उत्तरमें स्थित द्वार सुख-समृद्धि देनेवाला होता है। दक्षिणमें स्थित द्वार विशेषरूपसे स्त्रियोंके लिये दुःखदायी होता है।

द्वारका अपने-आप खुलना या बन्द होना अशुभ है। द्वारके अपने-आप खुलनेसे उन्माद-रोग होता है और अपने-आप बन्द होनेसे दुःख होता है।

१०. द्वार-वेध—मुख्य द्वारके सामने मार्ग या वृक्ष होनेसे गृहस्वामीको अनेक रोग होते हैं। कुआँ होनेसे मृगी तथा अतिसाररोग होता है। खम्भा एवं चबूतरा होनेसे मृत्यु होती है। बावड़ी होनेसे अतिसार एवं संनिपातरोग होता है। कुम्हारका चक्र होनेसे हृदयरोग होता है। शिला होनेसे पथरीरोग होता है। भस्म होनेसे बवासीररोग होता है।

यदि घरकी ऊँचाईसे दुगुनी जमीन छोड़कर वेध-वस्तु हो तो उसका दोष नहीं लगता।

११. गृहमें जल-स्थान—कुआँ या भूमिगत टंकी पूर्व, पश्चिम, उत्तर अथवा ईशान दिशामें होनी चाहिये। जलाशय या ऊर्ध्व टंकी उत्तर या ईशान दिशामें होनी चाहिये।

यदि घरके दक्षिण दिशामें कुआँ हो तो अद्भुत रोग होता है। नैर्ऋत्य दिशामें कुआँ होनेसे आयुका क्षय होता है।

१२. घरमें कमरोंकी स्थिति—यदि एक कमरा पश्चिममें और एक कमरा उत्तरमें हो तो वह गृहस्वामीके लिये मृत्युदायक होता है। इसी तरह पूर्व और उत्तर दिशामें कमरा हो तो आयुका ह्रास होता है। पूर्व और दक्षिण दिशामें कमरा हो तो वातरोग होता है। यदि पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशामें कमरा हो, पर दक्षिणमें कमरा न हो तो सब प्रकारके रोग होते हैं।

१३. गृहके आन्तरिक कक्ष—स्नानघर 'पूर्व'में, रसोई 'आग्नेय'में, शयनकक्ष 'दक्षिण'में, शस्त्रागार, सूतिकागृह, गृह-सामग्री और बड़े भाई या पिताका कक्ष 'नैर्ऋत्य'में, शौचालय 'नैर्ऋत्य', 'वायव्य' या 'दक्षिण-नैर्ऋत्य'में, भोजन करनेका स्थान 'पश्चिम'में, अन्न-भण्डार तथा पशु-गृह 'वायव्य'में, पूजागृह 'उत्तर' या 'ईशान'में, जल रखनेका स्थान 'उत्तर' या 'ईशान'में, धनका संग्रह 'उत्तर'में और नृत्यशाला 'पूर्व, पश्चिम, वायव्य या आग्नेय' में होनी चाहिये। घरका भारी सामान नैर्ऋत्य दिशामें रखना चाहिये।

१४. जाननेयोग्य आवश्यक बातें—ईशान दिशामें पति-पत्नी शयन करें तो रोग होना अवश्यम्भावी है।

सदा पूर्व या दक्षिणकी तरफ सिर करके सोना चाहिये। उत्तर या पश्चिमकी तरफ सिर करके सोनेसे शरीरमें रोग होते हैं तथा आयु क्षीण होती है।

दिनमें उत्तरकी ओर तथा रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। दिनमें पूर्वकी ओर तथा रात्रिमें पश्चिमकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करनेसे आधासीसीरोग होता है।

दिनके दूसरे और तीसरे पहर यदि किसी वृक्ष, मन्दिर आदिकी छाया मकानपर पड़े तो वह रोग उत्पन्न करती है।

एक दीवारसे मिले हुए दो मकान यमराजके समान गृहस्वामीका नाश करनेवाले होते हैं।

किसी मार्ग या गलीका अन्तिम मकान कष्टदायी होता है।

घरकी सीढ़ियाँ (पग), खम्भे, खिड़कियाँ, दरवाजे आदिकी 'इन्द्र-काल-राजा'—इस क्रमसे गणना करे। यदि अन्तमें 'काल' आये तो अशुभ समझना चाहिये।

दीपक (बल्ब आदि)-का मुख पूर्व अथवा उत्तरकी ओर रहना चाहिये।

दन्तधावन (दातुन), भोजन और क्षौरकर्म सदा पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके ही करने चाहिये।

रत्नोंका ज्योतिषीय प्रभाव

(डॉ० श्रीमनोहरजी वर्मा)

प्राचीन कालसे ही मानव रत्नोंके सम्पर्कमें रहा है। चित्ताकर्षक रत्नोंने सरल मानवका मन मुग्ध किया। जल, थल, घाटियों, दरारों तथा पर्वतों आदि सभी स्थानोंसे भाँति-भाँतिके रत्न प्राप्त होने लगे। केवल पाषाण ही नहीं, उद्भिदों तथा जीवोंके शरीरोंसे भी अनेक प्रकारके रत्नोंकी उपलब्धि हुई। हीरा, माणिक्य, पन्ना, नीलम, पुखराज, गोमेद तथा लहसुनिया आदि पाषाण रत्न हैं, जबकि मोती सीपके अन्दर जैविक पदार्थसे निर्मित होता है। मूँगा समुद्रमें रहनेवाले पोलिप्स नामक जीवकी अस्थियोंसे निर्मित है। तृणमणि जैविक रालसे बनता है।

अलग-अलग प्रकारके रत्नोंका प्रभाव धारकपर अलग-अलग तरहका होता। ऐसा क्यों होता है? इसे समझनेमें ज्योतिषविद्याके मनीषियोंको सफलता मिली। उन्होंने पाया कि रत्नोंकी चमत्कारी शक्तिका सम्बन्ध आकाशीय ग्रहोंसे है। प्रत्येक ग्रहमें भिन्न-भिन्न प्रकारके प्राकृतिक गुण होते हैं। अनुभवसे पता चला कि ग्रह-विशेष और रत्न-विशेषकी प्रकृतिमें भारी गुणसाम्य है। अर्थात् ग्रह-विशेष और रत्न-विशेष दोनों समानधर्मा हैं। यथा सूर्य और माणिक्य, चन्द्र और मोती, मंगल और मूँगा, बुध और पन्ना, गुरु और पुखराज, शुक्र और हीरा, शनि और नीलम, राहु और गोमेद तथा केतु और लहसुनिया आदिमें गुणसाम्य है। उन ग्रहोंसे होकर पृथ्वीपर आनेवाली रश्मियोंमें सम्बन्धित ग्रहोंके प्राकृतिक गुण-दोष गहनतासे निहित होते हैं। स्वाभाविक बात है कि ये रश्मियाँ अपनी तरहके गुणवाले रत्नोंकी तरफ स्वतः आकर्षित होती हैं।

ये रत्न भी अपने सम्बन्धित ग्रहकी रश्मियोंका चूषण करके पुष्ट और तृप्त होकर संगृहीत हो रही इस शक्तिको धारकके शरीरमें सम्प्रेषित करने लगते हैं। इस प्रकार रत्नके माध्यमसे ग्रहविशेषके प्राकृत गुणोंसे जातक आप्लावित होता रहता है।

शुभ-अशुभ रत्नोंका निर्धारण कैसे हो?

जातकके जन्मकालिक ग्रहोंकी स्थितिके आधारपर शुभाशुभका निर्धारण किया जाता है। महर्षि पराशरद्वारा रचित 'होराशास्त्रम्' (पाराशरी)-में वर्णित सूत्रोंके आधारपर पृथ्वीके किसी विशेष बिन्दुपर शिशुके जन्म लेते समय ग्रहों, नक्षत्रों तथा राशियोंकी आकाशीय स्थितिको जन्मकुण्डलीमें अंकित कर लिया जाता है। बारह विभागोंमें विभक्त किये गये आकाशके प्रत्येक विभाग (भाव)-में स्थित राशिके प्रतिनिधि ग्रहके अनुसार भाव-स्वामित्व और भावस्थितिके आधारपर जातकके ग्रहोंके शुभाशुभका निर्धारण होता है। अतः उपयुक्त रत्नका चुनाव किसी पारंगत दैवज्ञकी सलाहसे किया जाना अपेक्षित है। ग्रहोंका जातकसे कोई व्यक्तिगत वैर या लगाव नहीं होता। जिस प्रकार शिशुके जन्मसे माँ-बाप, भाई-बहन, चाचा-चाची, नाना-नानी आदि सांसारिक सम्बन्ध स्वतः तय हो जाते हैं, उसी तरह जन्मसमयकी आकाशीय स्थितिके अनुसार ग्रहों और शिशुके आपसी सम्बन्ध भी बन जाते हैं। जैसे कर्मेश, भाग्येश, आयुकारक, मारक, पालक, विद्या, सन्तान, धन, स्वास्थ्य, लाभ-हानि और सुख-दुःख देनेवाले ग्रहोंकी भूमिका निश्चित हो जाती है। इन्हीं शुभ-अशुभ ग्रहोंके आधारपर धारणीय रत्नोंका निर्धारण होता है। ध्यान रहे, जो रत्न एक व्यक्तिके लिये अनुकूल हो, वह दूसरेके लिये प्रतिकूल भी हो सकता है। रत्न तीन प्रकारसे कार्य करते हैं—

१-शुभ कर्मोंके भोगमें आनेवाली बाधाओंको हटाना।

२-अशुभ ग्रहोंके प्रभावसे रक्षा करना।

३-सात्त्विक, परंतु दुर्बल ग्रहोंमें अतिरिक्त बलकी वृद्धि करना।

जैसे एक छतरी आनेवाली बरसातको रोक नहीं सकती, किंतु धारकको बरसातके पानीसे बचा सकती है, इसी भाँति एक छड़ी वृद्ध और दुर्बल व्यक्तिकी टाँगोंको

शक्ति नहीं दे सकती, किंतु अतिरिक्त सहारा अवश्य देती है। इसी प्रकार रत्नोंद्वारा ग्रहोंके प्रतिफलको हीनबल किया जाता है।

पुरुषार्थके बिना भाग्य नहीं बदला जा सकता। जिस प्रकार एक किसान अपनी सूझ-बूझसे अपने खेतकी मेड़को नीचाकर आवश्यकताके अनुसार जलको अपने खेतमें खींच सकता है। उसी मेड़को जरा ऊँचा करके अनचाहे जलको खेतमें आनेसे रोक भी सकता है, उसी प्रकार समझदार व्यक्ति छतरी और छड़ीके समान रत्न धारण करके ग्रहजनित आपदाओंसे बचनेका उपाय कर सकता है। सफलता पानेके लिये भाग्य और पुरुषार्थ दोनों चाहिये।

प्राचीनकालमें रत्नोंका स्वामित्व प्राप्त कर लेना ही उनके प्रभावी होनेके लिये यथेष्ट माना जाता था, किंतु रश्मिप्रभाववाला सिद्धान्त जैसे-जैसे प्रकाशमें आया, वैसे-वैसे रत्नका शरीरपर धारण करना अधिक उपयोगी समझा जाने लगा। रत्नोंमें रश्मियोंका विकिरण प्राकृत अवस्थाके बजाय तराशे हुए रत्नोंमें अधिक सरल होता है। अच्छी तराश रत्नके प्रभाव और मूल्य दोनोंको कई गुना बढ़ा देती है।

रत्नधारकके लिये सुझाव

१-रत्न असली हो। खरीदते समय अनुभवी रत्न-मर्मज्ञकी सलाह लेना फायदेमन्द है।

२-रत्न खण्डित न हो। पहने हुए रत्नके खण्डित हो जाने, फट जाने या बदरंग हो जानेपर उसे त्यागकर वैसा ही अन्य रत्न धारण करना चाहिये।

३-सम्बन्धित मन्त्रके शुद्ध उच्चारणसे विधिपूर्वक रत्नको जाग्रत् करके धारण करना अधिक लाभप्रद होता है।

४-रत्न धारण करके यथाशक्ति दान भी करना चाहिये।

५-अनावश्यक रूपसे रत्नको बार-बार उतारनेमें रश्मि-विकिरणमें बाधा पहुँचती है।

६-विरोधाभासी रत्नोंको एक साथ न पहनें।

७-रत्नके वजनका निर्धारण पुस्तकोंमें पढ़कर नहीं, गुणवत्ताके आधारपर होना चाहिये।

८-प्राकृतिक लहरें, बादल और बुदबुदे आदि रत्नके दोष नहीं होते।

९-रत्न पूर्ववत् कार्य न कर रहा हो तो पुनः शुद्धीकरण कर लें।

१०-रत्नको अँगूठी, लॉकेट, ब्रासलेट आदि किसी भी रूपमें पहना जा सकता है।

११-धातुमें जड़ित रत्नके नीचेका हिस्सा खुला रहे। त्वचासे हल्का-सा स्पर्श होते रहना अच्छा है।

१२-अन्य किसी व्यक्तिको अपना रत्न प्रयोग न करने दें।

१३-चोरी किया हुआ, छीना हुआ, कीमत न चुकाया हुआ, रास्तेसे प्राप्त और अनजाने व्यक्तिका रत्न अभिशप्त हो सकता है।

१४-रत्न बहुमूल्य होते हैं। इन्हें खरीदनेकी क्षमता सभीकी नहीं होती। उपरत्न अल्पमोली होते हैं, मगर वे भी अपना कार्य बखूबी करते हैं। बस उनका असर हलका और धीमा होता है।

१५-शनिका रत्न नीलम और शुक्रका रत्न हीरा विशेष प्रभाववाले हैं, सभीको सहन नहीं होते। अतः परीक्षाके बाद ही धातुमें जड़वायें।

१६-उचित धातुमें पहननेसे रत्नके साथ धातुका लाभ भी मिलता है।

१७-अगर रत्न पहनते हैं तो उसमें आस्था भी रखें, अन्यथा प्रयोजनसिद्धिमें सन्देह है।

आस्था और विश्वासकी आवश्यकता तो हर क्षेत्रमें है। सर्वशक्तिमान् ईश्वरके स्वरूपको भी लोग अपने विश्वासके अनुसार ही स्वीकार करते हैं। रत्नोंके साथ भी वैसा ही है। इनसे आत्मीयता स्थापित होनेमें थोड़ा समय लग सकता है, लेकिन एक बार ऐसा हो जानेपर कोई अपने प्रिय रत्नसे कभी अलग होना नहीं चाहेगा। दुर्योगसे ऐसे रत्नके खो जानेपर उसका प्रभाव जीवनपर्यन्त सालता रहता है।

शकुन-शास्त्र

(डॉ० श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

'जोंक—यह जलकृमि बैरोमीटरका अच्छा काम देता है। शीशेके बड़े पात्रमें जल भरकर इसे पाला जा सकता है। वर्षा होनेवाली होगी तो यह जलके तलभागमें जा बैठेगा, आँधी आनेवाली हो तो यह बेचैनीसे तैरता है। यह जलके ऊपर मजेमें तैरता हो तो समझना चाहिये कि ऋतु शान्त रहेगी।' यह तो पाश्चात्य जन्तु-शास्त्रज्ञोंने नवीन खोज की है। इस शकुनको वे विज्ञान कहते हैं। इसी प्रकार वे भड्डुरीके शकुनोंको भी अधिकांश सत्य मानने लगे हैं। जैसे—

अंडा ले चिउँटी चलैं, चिड़ी नहावै धूर।
ऊँचे चील उड़ान लैं, तब वर्षा भरपूर॥

तीनोंमेंसे एक ही लक्षण हो, तब भी बूँदा-बाँदी हो जाती है; किंतु तीनों हों तो भरपूर वर्षामें कोई सन्देह ही नहीं रहता। वैज्ञानिक कहते हैं कि पशु-पक्षी तथा पौधे ऋतुके प्रभावको पहलेसे ही अनुभव करने लगते हैं। जैसे वर्षा होनेसे कुछ घण्टे पूर्व ही मकड़ी अपने जालेके केन्द्रमें जा बैठती है। अतएव पशु-पक्षियों तथा पौधोंके द्वारा ऋतुका अग्रिम अनुमान किया जा सकता है। अकाल पड़नेवाला हो तो कई महीने पूर्व कुछ विशेष प्रकारके तृण निकल आते हैं। कुछ पौधोंमें विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है।

यह भी स्वीकार किया जाने लगा है कि भड्डुरीको या उसने जहाँसे अपनी सूक्तियोंका आधार लिया हो, ऋतुका सूक्ष्म लाक्षणिक ज्ञान था। आजकलकी ऋतुमापक वेधशालाएँ बहुत पहलेसे आँधी, वर्षा, बादल आदिकी सूचना प्राप्त कर लेती हैं। इसी आधारपर लोग कहने लगे हैं कि पुरानी सूक्तियाँ भी ऐसे ही सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षणका परिणाम हैं—

श्रावण शुक्ला सप्तमी, उदित न देखिय भानु।
तब लगि देव बर्षिहहिं, जब लगि देव उठान॥

इस प्रकारकी सहस्रों सूक्तियाँ ग्रामोंमें प्रचलित हैं। उनका बहुत बड़ा भाग सत्य परिणाम व्यक्त करनेवाला है। कोई नहीं जानता कि वे किस प्रकार प्रचलित हुईं। यदि भारतीय वाङ्मयके लक्ष-लक्ष ग्रन्थ नष्ट न कर दिये गये होते तो उनका मूल कदाचित् मिल जाता। जो हो, इन बची-खुची लक्षण-सूक्तियोंकी रक्षा आवश्यक है। वर्तमान वैज्ञानिक यन्त्र अभी इतने सूक्ष्म लक्षण निश्चित करनेमें असमर्थ ही हैं।

लक्षण-ज्ञान सूक्ति-ज्ञानसे भी सूक्ष्म होता है। जैसे अमुक महीनेमें पाँच शनि या पाँच मंगल पड़े हैं—इस लक्षणके अनुसार इसका कोई विशेष फल होगा—ऐसा ज्योतिषशास्त्र निर्देश करता है। स्पष्ट है कि प्रत्येक दिन अपने ग्रहके प्रभावसे सम्बन्ध रखता है। यदि चन्द्रमाके एक पूरे चक्करमें कोई दिन चारसे अधिक बार आता है तो इसका अर्थ है कि चन्द्रमापर इस बार उस ग्रहका प्रभाव अधिक पड़ा है। उस प्रभावका पृथ्वीपर कब या क्या परिणाम होगा—यह फलित ज्योतिष व्यक्त करता है।

शकुन-शास्त्र दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक तो ग्रह, नक्षत्र, राशि, दिन आदिपर निर्भर फलित ज्योतिषसे सम्बन्ध रखनेवाला शकुन-शास्त्र और दूसरा दृश्य पदार्थोंके द्वारा परिणामको प्रकट करनेवाला शकुन-शास्त्र। वैसे दोनोंको सर्वथा पृथक् रखना शक्य नहीं है; क्योंकि दृश्य शकुनोंमें भी काल (दिनादि), स्थान, नक्षत्र आदिका अनेक बार विचार होता है और उससे विभिन्न परिणाम निश्चित होते हैं। इसी प्रकार फलितमें भी बाह्य चिह्नोंकी अपेक्षा होती है, परंतु एक सीमातक शकुन और ज्योतिषका पार्थक्य सम्भव है तथा यहाँ शकुनका भी विचार अभीष्ट है।

शकुन कई प्रकारके माने गये हैं। पशु एवं पक्षियोंके शब्द तथा उनकी चेष्टाएँ, स्वप्न, अपने अंगोंका फड़कना या शरीरके विभिन्न स्थानोंमें खुजली होना, आकाशसे विभिन्न प्रकारकी वर्षा या ग्रहोंकी आकृतियोंमें दृश्य-परिवर्तन, वनस्पतियों तथा तृणोंमें विशेष परिवर्तन, प्रतिमा, पाषाण तथा जलमें विशेष लक्षण दर्शित होना, यात्रादिमें मिलनेवाले पदार्थ, छींक—

ये शकुनोंके मुख्य भेद हैं।

वैज्ञानिक वेधशालाएँ अभी प्रकृतिके सूक्ष्म प्रभावका बहुत अल्प विवरण जान सकी हैं। नील नदीमें बाढ़ आने या अबीसीनियामें वर्षा होनेका भारतकी वर्षापर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह बतलाना बहुत सूक्ष्म विज्ञान नहीं है। मानी हुई बात है कि अरबसागरकी वाष्प यदि अफ्रीकामें वृष्टि बन गयी तो सागरके दूसरे तटके देश भारतमें वर्षा उधरकी वायुसे कम होगी। शकुन-शास्त्रके ज्ञानके लिये प्रकृति एवं पशुओंकी प्रभाव-ग्रहण-शक्ति एवं उसे सूचित करनेका प्रकार बहुत ही सूक्ष्मतासे जानना पड़ेगा। इस ज्ञानका निरन्तर ह्रास होता जा रहा है।

पशु-पक्षियोंके शकुन

प्लेग पड़नेवाला हो तो चूहे पहले मरने लगते हैं—यह तो आजका शकुन है; किंतु इससे भी सूक्ष्म शकुन यह है कि कुत्ते प्रात:काल सूर्यकी ओर मुख करके रोने लगें तो कोई अमंगल होनेवाला है। गधे ग्राममें दौड़ने और चिल्लाने लगें, रात्रिमें बिल्लियाँ या श्रृगाल अकारण रोते हों तो ये भी अमंगल सूचित करते हैं। अकारण बिल्ली, कुत्ता या श्रृगालके रोनेपर समीप ही किसीकी मृत्युकी सूचना मानी जाती है। घरके पशु—गाय, घोड़े या हाथी अकारण अश्रु बहायें या चिल्लायें तो भी अमंगल सूचित होता है।

ऊपरसे छिपकली शरीरपर गिर पड़े या गिरगिट दौड़कर शरीरपर चढ़ जाय तो किस अंगपर उसके चढ़नेका क्या परिणाम होता है, यह शकुन-शास्त्रसे सम्बन्धित ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है। इसी प्रकार शरद्-ऋतुके प्रारम्भमें सूर्यके हस्त नक्षत्रपर अधिष्ठित होनेपर खंजन पक्षीके दर्शनका फल भी दिशाभेदसे वर्णन किया गया है। कौएके शब्दके अनुसार भविष्य-ज्ञानका वर्णन अत्यन्त विस्तृतरूपसे ग्रन्थोंमें वर्णित है। ऐसे ही अनेक पशु-पक्षियों, सर्पादिकों और कीड़ोंकी चेष्टाओंके अनुसार परिणाम जाननेकी प्रथा है। यात्राके समय मार्गमें कौन-सा पशु या पक्षी किस दिशामें कैसे मिले तो क्या परिणाम होगा—यह शकुनको जाननेवाले लोग शास्त्रोंमें प्राप्त कर लेते हैं। जैसे-यात्रामें मृगयूथका दाहिने आना, नेवले और लोमड़ीका दिखायी देना, वृषभ, बछड़ेसहित गौ, ब्रह्मचारी, हरे फल आदिका दृष्टिगोचर होना—ये सब शकुन शुभसूचक हैं। यात्रामें बिल्ली मार्ग काटकर सामनेसे चली जाय या श्रृगाल बायेंसे दाहिने मार्ग काटकर निकल जाय तो लौट आना चाहिये। ये शकुन यात्रामें आपत्तिकी आशंका सूचित करते हैं।

अन्धविश्वास कहकर किसी तथ्यको उड़ा देना एक बात है और उसमें सन्निहित सत्यका अन्वेषण दूसरी बात। ग्रामके लोग जानते हैं कि जब ग्राममें महामारी आनेवाली होती है, तब गौरैया पक्षी पहलेसे ही ग्रामको छोड़ देती है। इसी प्रकार दूसरे पशु-पक्षियोंको भी आपत्तिका पूर्वज्ञान हो जाता है। आपत्तिको सूचित करनेवाली उनकी चेष्टाएँ भिन्न-भिन्न प्रकारकी हैं, परंतु पशु-स्वभाव है कि उन्हें प्रसन्नता या आपत्तिकी जो पूर्व सूचना अनुभव होती है, उसे वे प्रकट कर देते हैं। जंगलमें बाघ चलता है तो उसके साथ-साथ एक विशेष प्रकारके पक्षी चिल्लाते चलते हैं। बिल्ली या व्याधको देखकर पक्षी तथा गिलहरियाँ चिल्लाकर दूसरोंको सावधान करती हैं। यह सब दूसरेको सूचित करनेके लिये उनका प्रयत्न नहीं है; अपितु ऐसा उनका स्वभाव है। उनकी ऐसी चेष्टा क्यों हुई है, यह क्या सूचित करती है—यह जानना ही शकुन-ज्ञान है।

पशु-पक्षियोंको यह सूक्ष्म-ज्ञान कैसे होता है? इस प्रश्नका उत्तर यही है कि उनका मन प्रकृतिसे सहज प्रेरणा प्राप्त करनेका अभ्यासी होता है। मनुष्योंमें भी जो मनको अपने विचारोंके प्रभावसे शून्य कर पाते हैं, वे प्रकृतिकी प्रेरणा ग्रहण करने लगते हैं। वे भविष्यका अनुमान करनेमें बहुत सफल होते हैं। विज्ञानके एक मध्यमकोटिके विद्वान्‌की अपेक्षा एक अपढ़ मल्लाह बिना किसी यन्त्रके नदीके जलकी गहराई और आँधीका अनुमान ठीक-ठीक कर लेता है। देखा गया है कि व्याध चाहे अच्छे वेशमें अपने आखेटके साधनोंको छोड़कर दूसरे ही कामसे कहीं जाता हो, पर पक्षी उसे देखते ही रोष प्रकट करने लगते हैं। जो लोग पशु-पक्षियोंको कष्ट नहीं देते, उनके पास पहुँचनेतक अपरिचित पक्षी भी निश्चिन्त बैठे रहते हैं।

जैसे पशु-पक्षी व्याध एवं सज्जनकी मानसिक स्थितिका प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं, वैसे ही दूसरे प्रभावको भी जान लेते हैं।

फलित ज्योतिष और शकुन-शास्त्र—दोनों इस सिद्धान्तपर स्थित हैं कि विश्वमें जो कुछ होता है, वह पूर्वसे ही निश्चित है। नवीन और अकस्मात् कुछ नहीं होता। ईश्वरीय सर्वज्ञतामें भूत-भविष्य दोनों काल वर्तमान ही रहते हैं। घटनाएँ तनिक भी इधर-उधर नहीं हो सकतीं। आप एक ज्योतिषीसे कुछ प्रश्न करते हैं। वह आपसे एक पुष्पका नाम पूछता है और फिर आपके प्रश्नोंका उत्तर दे देता है। बात इतनी ही है कि आपने पुष्पका जो नाम बताया, उसने आपकी मानसिक स्थिति बतला दी। ज्योतिषी जानता है कि उस समय आप दूसरे पुष्पका नाम बता ही नहीं सकते थे। जब आपके जीवनकी एक कड़ी मिल गयी तो फिर पूरा जीवन खुली पुस्तक हो गया। एक वस्त्रमेंसे एक सूत मिल गया तो पूरे वस्त्रकी रचनातक पहुँच जाना कठिन नहीं; क्योंकि रचनाक्रम तो निश्चित है। ज्योतिषशास्त्रमें इसी सिद्धान्तके आधारपर प्रश्न-कुण्डली बनती है।

शकुनोंमें हमें असम्भावना इसलिये प्रतीत होती है कि हम परिणामोंको निश्चित नहीं मानते। फ्रांसके किसी वैज्ञानिकने एक समुद्रीय पौधेको बाहर स्थलपर लगाया और उसपर पड़नेवाले सूक्ष्म प्रभावका गणित करता गया। सूर्य-तापका क्रम तथा देशोंकी स्थिति आदिका हिसाब करके उसने दो सौ वर्षतकके लिये आँधी, तूफान, वर्षाके सम्बन्धमें भविष्यवाणियाँ कीं। वर्तमान समयके यन्त्र भी दो-चार दिन पूर्वके सम्बन्धमें सूचना देते हैं। यह अन्वेषण-सिद्धान्त सिद्ध करता है कि वर्षोंके लिये भी भविष्यवाणियाँ करनी शक्य हैं, परंतु भय रहता है कि गणित या निरीक्षणमें थोड़ी भी भूल होनेपर वे भ्रमपूर्ण हो जायँगी। इस प्रकार जिन घटनाओंका कार्य-कारण-सम्बन्ध हम जान चुके हैं, उनको बहुत पहलेसे जानना शक्य मानते हैं; क्योंकि यह नियम है कि प्रकृतिमें अकस्मात् कुछ नहीं होता। कारणका क्रमशः विकास होता है। यदि हम समझ लें कि वर्षा, आँधी आदिके समान शरीर और मन भी जड़ है और उसकी क्रियाएँ भी निश्चित एवं स्थिर हैं तो हमें उसके कार्य-कारण-सम्बन्ध-ज्ञानसे भी आश्चर्य न होगा।

हिन्दू-शास्त्र जड़को भ्रम मानते हैं। जैसे हमारा शरीर हमारे लिये जड़ है, पर वह है चेतन कीटाणुओंका पुंज, वैसे ही पृथ्वी, वायु आदिके भी अधिदेवता हैं। समस्त दृश्य जगत् उसी प्रकार भाव (दिव्य) जगत्से संचालित है, जैसे हमारा शरीर हमारी चेतनासे। हमारे शरीरमें सब चेतन कीटाणु हैं, परंतु उनकी क्रिया नियन्त्रित है। उनमें विकार कब या क्यों आता है, यह चिकित्साशास्त्र बतलाता है। शरीरमें कुछ भी अनिश्चित नहीं; इसी प्रकार ब्रह्माण्डमें भी कुछ अनिश्चित नहीं है। जैसे कीटाणुओंकी चेतनासे शरीरमें अनियमितता नहीं आती, वैसे ही प्राणियोंकी चेतनता विश्वमें अनियमितता नहीं ला सकती, सबकी क्रिया निश्चित है। विकार भी पूर्व निश्चित है।

जो जड़वादी हैं, उन्हें सोचना चाहिये कि जब चेतना भी जड़का ही विकार है तो जैसे जलके या लकड़ीके सड़नेका क्रम परिस्थितिसे पूर्व निश्चित है, उसमें कब और कैसे कीड़े पड़ेंगे—यह निश्चित है, वैसे ही चेतनकी चेष्टाएँ भी निश्चित ही होंगी। चेतनाको जड़का भाग मान लेनेपर मन और शरीरकी क्रिया भी इंजनकी क्रिया-सी जड़ हो जाती है। जड़वादी मानते भी हैं कि स्वभाव, बुद्धि, विचारादि परिस्थितिके प्रभावोंसे निर्मित होते हैं। जब परिस्थितियोंका गणित सम्भव है तो उसके प्रभावोंका असम्भव क्यों हो जायगा? घटनाएँ तो व्यक्ति अपनी चेतनासे प्रेरित होकर ही करेगा और करेगा मानसिक एवं बाह्य परिस्थितिसे बाध्य अथवा प्रेरित होकर। अतः घटनाओंका पूर्व निश्चय भी परिस्थितिसे हो सकता है। जड़वादीके लिये तो सब घटनाएँ पूर्व निश्चित हैं, ऐसा माननेमें कोई आपत्ति होनी ही नहीं चाहिये; क्योंकि जड़की क्रिया तो कभी अनिश्चित होती ही नहीं।

विश्वको मूलतः चेतनात्मक माना जाय या जड़? यह मानना ही पड़ेगा कि हमारी समस्त मानसिक एवं

शारीरिक क्रियाएँ पूर्वनिश्चित हैं। जो क्रिया पूर्वनिश्चित है, वह अकस्मात् नहीं होती। अकस्मात् होने-जैसी प्रकृतिमें कोई बात है ही नहीं। उसके सूक्ष्म कारण बहुत पहलेसे प्रकट हो जाते हैं। हमें तो बादल एकाएक आये हुए लगते हैं, किंतु आजके वैज्ञानिक दो-तीन दिन पूर्व जान लेते हैं कि ये कब आयेंगे। इसी प्रकार बहुत-से पेड़-पौधे भी उस प्रभावको व्यक्त करने लगते हैं। जैसे वर्षा पहले सूक्ष्म प्रभावसे जानी जाती है, वैसे ही पशु-पक्षी दूसरी घटनाओंका प्रभाव भी अनुभव करने लगते हैं और उसे व्यक्त करते हैं।

अनेक बार हम अनुभव करते हैं कि हमारा मन अकारण खिन्न हो गया है। पीछे कोई दुःखद संवाद आता है। अनेक बार हम अनुभव करते हैं कि अमुक कार्य प्रारम्भ करनेमें मनकी कोई शक्ति रोक रही है। कई बार हम किसी प्रियजनको यात्रामें जानेसे रोकते हैं। उस अन्तःप्रेरणाका अनादर करनेपर पीछे हानि उठाकर पश्चात्ताप करना पड़ता है। ऐसा क्यों होता है। घटनाएँ तो सब पूर्वनिश्चित हैं। जैसे हम वनमें हों और दूरसे दावाग्नि लगनेके लक्षणोंका अनुभव करके भयभीत हो जायँ, ऐसे ही दुर्घटनाका प्रभाव भी हमारी अन्तश्चेतनापर पड़ता है। उस प्रभावका स्पष्टीकरण न होनेपर भी आशंका होती । इसी प्रकार मनमें शुभकी सूचना हर्षके रूपमें व्यक्त होती है।

हमारे मनमें बाह्य संसारकी इतनी प्रगाढ़ आसक्ति है कि हमारा मानसिक जीवन भी बाह्य जीवनकी भाँति नितान्त कृत्रिम हो गया है। फलतः हम प्रकृतिके सूक्ष्म प्रभावोंका अनुभव नहीं कर पाते। पशु-पक्षियोंको इन प्रभावोंकी विशेष अनुभूति होती है। कुछ विशेष प्रकारके पशु या पक्षी ही विशेष-विशेष प्रभावका अनुभव करते हैं। उन प्रभावोंके अनुसार उनकी चेष्टाएँ होती हैं। उन चेष्टाओंसे क्या प्रकट होता है, यह जानना ही शकुनज्ञान है।

वृक्षोंकी भाँति लताओं एवं तृणोंके भी फूलने-फलने, अनुपयुक्त स्थानपर उगने आदिके शकुन होते हैं। इनके अतिरिक्त यात्रादि कार्योंमें पशु-पक्षियोंकी भाँति विशेष प्रकारके पुष्पों, वृक्षों, तृणों, काष्ठ आदिके मिलनेके परिणाम भी बताये जाते हैं। ये परिणाम इन दृश्योंसे उसी प्रकार सम्बन्धित हैं, जैसे पशुओंके सम्बन्धमें बताया जा चुका है।

अनेक बार वृक्षों या तृणोंमें ऐसे अद्भुत परिवर्तन दिखायी पड़ते हैं, जो स्वाभाविक नहीं हैं, जैसे जिस जातिके मोटे बाँसमें फल लगता ही नहीं, उसमें फल लगना अनिष्टका सूचक है। ऐसे अद्भुत लक्षणोंकी ओर मनुष्यका ध्यान जाना सहज है। इनकी उपेक्षा तो की नहीं जा सकती और शकुन-शास्त्रको जो नहीं मानते, वे इनका कोई भी प्राकृतिक कारण अबतक बता नहीं सके हैं।

अद्भुत शकुन

मूर्तियोंसे पसीनेकी धारा बहने, मूर्तियोंके हँसने या स्वयं एक स्थानसे उठकर दूसरे स्थानपर चले जानेकी घटनाएँ आज भी कभी-कभी समाचार-पत्रोंमें आ जाती हैं। इसी प्रकार आकाशसे रक्त, धूलि, चन्दन आदिकी वर्षाके समाचार भी द्वितीय (सन् १९३९—४५ ई०के) महायुद्धसे पूर्व आये थे। रक्तवृष्टि तो अनेक स्थानोंपर हुई और कहीं-कहीं व्यापकक्षेत्रमें हुई। सरकारी कर्मचारियोंने देखभाल भी की तथा वहाँकी मिट्टी परीक्षणके लिये भेजी गयी। वैज्ञानिक यह नहीं बतला सके कि रक्त किस प्राणीका है, किंतु वह है रक्त ही, यह उन्होंने स्वीकार किया। इसी प्रकार एक स्त्रीके गर्भसे अंडे उत्पन्न होने तथा एक स्त्रीके ऐसा बच्चा उत्पन्न होनेका समाचार आया था, जिस बच्चेको गर्भसे ही जीवित सर्प लिपटा हुआ था। बच्चा और सर्प—दोनों पर्याप्त समयतक जीवित रहे।

मूर्तियोंमें आराधकके भावसे जो लक्षण प्रकट होते हैं, यहाँ उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। भाव तो दृढ़ होनेपर सम्पूर्ण विश्वको प्रभावित कर सकता है; क्योंकि दृश्य संसार भावलोकद्वारा ही संचालित है। इसी प्रकार आसुरी माया या मनके संकल्पसे जो रक्तवर्षणादि होते हैं, वे भी सिद्धिके अन्तर्गत हैं। यहाँ तो उन घटनाओंसे तात्पर्य है, जो बिना किसी प्रत्यक्ष कारणके स्वतः होती हैं। ऊपर जैसी घटनाओंका उल्लेख है, उनके अतिरिक्त इसी

कोटिके बहुत-से लक्षण ज्योतिष-ग्रन्थोंमें वर्णित हैं। ये सब लक्षण उत्पातके सूचक हैं। मूर्तियोंमें, जड़ पदार्थोंमें क्या-क्या परिवर्तन होते हैं, आकाशसे किन-किन पदार्थोंकी वृष्टि होती है, नारी-गर्भसे कैसी-कैसी अद्भुत आकृतियाँ उत्पन्न होती हैं, इनका वर्णन परिणाम ग्रन्थोंमें ही देखना चाहिये।

इसी प्रकारकी अद्भुत घटनाओंमें अकारण भूकम्प, उल्कापात, धूमकेतुका उदय होना, गुफाओंमें आँधी न चलनेपर भी शब्द होना, बिना आँधी और धूलिके दिशाओं तथा आकाशका मलिन हो जाना, अमावस्या और पूर्णिमाके बिना ही ग्रहण लगना आदि है। इन घटनाओंका भी ज्योतिषशास्त्रमें विस्तृत एवं सपरिणाम उल्लेख है।

हमने पहले बताया है कि जड़वादियोंके लिये भी पशु-पक्षी आदिसे ज्ञात शकुन मान्य होने चाहिये, परंतु जड़वादको मानकर इन अद्भुत शकुनोंका कारण पाया नहीं जा सकता। पाषाणमें या धातु, काष्ठादिकी मूर्तियोंमें हास्य, रोदन, गति, स्वेद तथा आकाशसे रक्त, चन्दन आदिकी वृष्टिका कारण जड़वादसे पाना शक्य नहीं। जैसे किसी भावुक भक्तने भगवान्‌को मानसिक पूजनके समय कोई नैवेद्य अर्पित करना प्रारम्भ किया और उसे किसीने उसी समय चौंका दिया तो नैवेद्य बाहर गिर पड़ा। अब वह नैवेद्य कहाँसे आया, इसे वैज्ञानिक नहीं बता सकेगा। इसी प्रकार ये घटनाएँ भावलोकसे सम्बन्ध रखती हैं।

जो सम्बन्ध हमारे शरीर और शरीरकी चेतनामें है, वही सम्बन्ध पदार्थों एवं उनके अधिष्ठाता देवताओंमें है। पदार्थका स्थूलरूप देवताओंका व्यक्त पदार्थभाव ही है, जैसे बाजीगरका भाव कुछ क्षणके लिये कोई प्रकट कर देता है। जैसे भय, आशंका, आश्चर्य आदिसे हमारे शरीरमें स्वेद, रोमांच, अश्रु, हास्य प्रकट होते हैं, वैसे ही देवताओंमें भी। शोक या क्रोधकी अधिकतामें हमारे रोमकूपोंसे रक्तकण निकल सकते हैं और रक्त-वमन भी हो सकता है। मूर्तियोंमें भक्तोंकी भावना तथा प्राण-प्रतिष्ठाके कारण देवशक्तिका सान्निध्य स्थापित होता है। विश्वमें कोई बड़ी घटना होनेवाली हो तो उसका प्रभाव देवशक्तिपर पड़ता है और प्रभाव प्रबल हो तो शोकादिके लक्षण स्थूल जगत्‌में प्रकट हो जाते हैं।

देवता जब प्रसन्न होकर अपने आराधकको कोई पदार्थ देते हैं तो वह पदार्थ कहींसे आता नहीं; अपितु देवताओंका भाव ही पदार्थके रूपमें मूर्त हो जाता है। पाण्डवोंको वनवासके समय सूर्यनारायणसे एक पात्र मिला था। महाभारतमें वर्णन है कि द्रौपदी जबतक भोजन न कर ले, तबतक उस पात्रसे चाहे जितने व्यक्तियोंको भोजन करनेयोग्य पदार्थ प्राप्त हो सकते थे। पात्रमें इतने पदार्थ नित्य भरे नहीं होते थे। पात्र देते समय देवताका जैसा संकल्प था, वह शक्ति उस पात्रमें मूर्त हो गयी थी। संकल्पसे वस्तुनिर्माण करनेवाले पुरुष इस समय भी देखे जाते हैं। इसी प्रकार देवताओंके हर्ष, शोकादिके चिह्न स्थूल जगत्‌में मूर्तिमान् हो जाते हैं। उनकी दिव्य दृष्टि जगत्‌में किसी बड़ी उथल-पुथलका प्रत्यक्ष करती है तो भूकम्प आदि होते हैं। इसीसे चन्दन, रक्तादिकी वृष्टि या मूर्तियोंमें क्रियाएँ प्रकट होती हैं।

शरीरके शकुन

अनेक बार हमारे शरीरके विभिन्न अंग फड़कते हैं या हथेलियों अथवा पैरोंके तलोंमें खुजली होती है। ये बातें शरीरमें वायु आदि दोषसे भी होती हैं और शकुनके रूपमें भी। प्रायः शकुनके रूपमें ये लक्षण तब प्रकट होते हैं, जब हम किसी कार्य, वस्तु या व्यक्तिके सम्बन्धमें सोच रहे हों। ये शकुन उसी सम्बन्धमें सूचना देते हैं। बिना हमारी इच्छाके या हम किसी सम्बन्धमें न सोचते हों, तो भी अंग-स्फुरणादि शकुन हो सकते हैं। ऐसे समय वे प्रभावकी महत्ता सूचित करते हैं।

जैसे विश्वके समस्त पदार्थोंके विभिन्न अधिष्ठाता देवता हैं, वैसे ही हमारे शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंके भी अधिष्ठाता देवता हैं। समष्टिमें व्यापक रूपसे कोई अद्भुत घटना होनी होती है तो उसमें उस देवताका प्रभाव प्रकट होता है और हमारे जीवनकी भावी घटनाका प्रभाव हमारे शरीरमें प्रकट होता है। कारण दोनों स्थानोंपर एक ही है। दोनों ही स्थानोंपर क्रिया देवशक्तिसे

हुई है। जैसे समष्टिमें घटनाकी महत्ता तथा अल्पताके अनुसार लक्षण प्रकट होते हैं, वैसे ही शरीरमें भी छोटे या बड़े लक्षण दीख पड़ते हैं।

अंगस्फुरण, हथेलियों अथवा पादतलकी खुजलाहट और छींक—ये सामान्य लक्षण हैं। इनके अतिरिक्त और भी लक्षण शरीरमें प्रकट होते हैं; परंतु जैसे संसारमें रक्तवर्षण या मूर्ति-हास्यादि कभी-कभी होते हैं, वैसे ही शरीरके ये लक्षण भी कभी-कभी किसीमें प्रकट होते हैं। पहने हुए आभूषण अकारण टूट या गिर जायँ, फूलोंकी माला अस्वाभाविक ढंगसे म्लान हो जाय, किसी अंगसे स्वेद बहने लगे, बिना कारण रुलायी आये और अश्रु गिरें, शरीरसे अकारण रक्त निकले, कार्यारम्भमें हाथके उपकरण गिर पड़ें, शरीर फिसल जाय—इस प्रकारके बहुत-से लक्षण शास्त्रोंने बतलाये हैं। कभी-कभी तो ये शकुनके रूपमें प्रकट होते हैं और कभी-कभी प्राकृतिक कारणोंसे—जैसे प्रमादवश हाथके उपकरण गिर सकते हैं या पैर फिसल सकता है। सब समय इनको शकुन मानना भी ठीक नहीं होता।

मृत्यु-शकुन

जब देवशक्तियाँ हमारे जीवनके साधारण कार्योंकी सूचना देती हैं, तब यह कैसे सम्भव है कि वे जीवनके परिवर्तनकी सूचना न दें। मृत्युके परिवर्तन तो प्रत्येक व्यक्तिमें प्रकट होते ही हैं। यदि हम उन्हें समझ सकें तो मृत्युका पूर्व अनुमान करना कठिन नहीं होता। मृत्यु-शकुनोंमें चारों प्रकारके शकुन होते हैं। पशु-पक्षियोंद्वारा सूचना, मानसिक सूचना, स्वप्न तथा अंग-लक्षण। मृत्यु-शकुनोंके समान ही बहुत बड़े संकट या रोगकी सूचना भी होती है। अनेक बार तो घोर कष्टके शकुन और मृत्यु-शकुनमें इतना सूक्ष्म अन्तर रह जाता है कि दोनोंका भेद जानना सरल नहीं होता। जैसे काक-रति देखना बहुत बड़ी बीमारीकी सूचना तो है ही; स्थान, काल, दिशादिके भेदसे वह मृत्यु-शकुन भी हो सकता है। इसी प्रकार मस्तकपर कौए, गीध या चीलका बैठ जाना बड़ी आपत्ति और मृत्यु—दोनोंका सूचक हो सकता है।

अनेकों पुरुष ऐसे हुए हैं, जिन्होंने अपना मृत्युकाल पहलेसे बतला दिया और वह ठीक ही निकला। यह कोई आवश्यक नहीं है कि ऐसे मनुष्य योगी या बड़े संयमी ही रहे हों। मृत्युसे पूर्व मनकी एक विचित्र स्थिति हो जाती है और जो उसे समझनेका प्रयत्न करते हैं, वे मृत्युकाल जान लेते हैं। स्वभावत: मनुष्य अपने मनकी खिन्नतासे पिण्ड छुड़ानेका अभ्यासी होता है, अत: वह मृत्युके समयकी खिन्नताको भी समझना नहीं चाहता।

मृत्युसे कुछ पूर्व नासिकाका अग्रभाग, भौंहें और ऊपरका ओष्ठ—ये अपने-आपको दिखलायी नहीं पड़ते। धूलिमें पड़े हुए पदचिह्न खण्डित होते हैं। अपनी छायामें छिद्र जान पड़ते हैं। छाया-पुरुषका मस्तक कटा हुआ दीखता है। इस प्रकारके बहुत-से लक्षण हैं। ऐसे ही जिसकी मृत्यु निकट आ जाती है, वह स्वप्नमें अपनेको तेल लगाता, प्रेतसे पकड़ा जाता, भैंसे या गधेपर बैठकर दक्षिणकी यात्रा करता हुआ देखता है।

स्वप्न-शकुन

स्वप्नके समय हमारा अन्तर्मन स्थूल शरीरके बन्धनसे स्वतन्त्र होता है। हमारे स्वभाव, विचारादिके प्रभाव उसपर बन्धन नहीं लगा पाते, केवल प्रेरणा देते हैं। ऐसे समय वह प्रकृतिकी सूक्ष्म सूचनाओंको बहुत स्पष्ट रूपसे ग्रहण करता है। स्वप्नमें देखे हुए दृश्योंके शुभाशुभ विचार अत्यन्त विस्तृत हैं और इस विषयपर स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हैं। यहाँ इतना ही जान लेना चाहिये कि सब स्वप्न शकुन ही नहीं होते, उनमें और भी बहुत-से तात्पर्य तथा कारण होते हैं। जागनेपर जो स्वप्न भूल जाते हैं, वे तो केवल मनकी कल्पना हैं। जो नहीं भूलते, उनमें भी बहुत-से हमारी शारीरिक आवश्यकता या स्थितिको सूचित करते हैं। जैसे प्यास लगी हो या शरीरको जलकी आवश्यकता हो तो स्वप्नमें हम जल पानेका प्रयास करते हैं। इसी प्रकार यदि स्वप्नमें हम आकाशमें उड़ते या भोजन करते हैं तो इसका अर्थ है कि शरीरमें वायुतत्त्व विकृत है अथवा अजीर्ण है। कफ एवं पित्तके विकारसे जल तथा अग्नि देखे जाते हैं।

स्वप्नमें जैसे शरीरकी विकृति एवं आवश्यकताकी

सूचना रहती है, वैसे ही मानसिक विकारके लिये भी सूचना रहती है। स्वप्नमें हम जिस प्रवृत्ति या कार्यको करते हैं, उसपर ध्यान दें तो पता लगेगा कि जीवनमें हमें किस ओर जानेका वहाँ संकेत है। जैसे एक व्यक्ति साहित्यका अध्ययन करता है और स्वप्नमें श्लोक गिनता, जोड़ता है तो इसका अर्थ है कि वह गणितमें लगनेपर विशेष उन्नति कर सकेगा। स्वप्नके द्वारा भय, उद्वेग आदि मानसिक दुर्बलताओंका कारण भी जाना जाता है। स्वप्न-विज्ञानपर पाश्चात्य विद्वानोंने बहुत विचार किया है। हमारे शास्त्रोंमें भी इसपर विस्तृत आलोचना है। तात्पर्य इतना ही है कि स्वप्नमेंसे कौन-सा स्वप्न शकुन-सम्बन्धी है, यह निश्चय करना सरल नहीं है। ब्राह्ममुहूर्तमें देखे गये स्वप्न,जिनके पश्चात् पुनः निद्रा न आयी हो, शकुनकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। यदि एक ही प्रकारके दृश्य स्वप्नमें बार-बार दिखायी दें तो उनपर विचार करना चाहिये। वे शारीरिक सूचना हों या शकुन—दोनों ही प्रकारसे उपयोगी हैं। स्वप्नोंपर विचार करते समय पहले यही देखना चाहिये कि वे शारीरिक सूचना या मानसिक स्थितिसे प्रेरित तो नहीं हैं। इसके पश्चात् ही उनका शकुन-विचार उचित है।

स्वप्नके समय हमारी स्थिति भावलोकमें होती है। अतएव जाग्रत्-दशाके स्थूल जगत्‌की अपेक्षा उस समय देवदर्शन एवं देवताओंके आदेश या सूचनाओंका प्राप्त होना सरल होता है। अधिकारी पुरुषोंको ऐसी अनुभूतियाँ होती भी हैं, फिर भी स्वप्नमें मनकी भावना साकार हुई या देवदर्शन हुआ, यह जानना सरल नहीं है। इसलिये स्वप्नकी भविष्यवाणियोंपर विश्वास करना बहुधा भ्रमपूर्ण होता है। स्वप्नके आदेश यदि निष्ठा, शास्त्र एवं आचारके प्रतिकूल हों तो उनपर ध्यान देना ही नहीं चाहिये।

शकुनोंका तात्पर्य

शकुन चाहे स्वप्नमें हों या जाग्रत्-दशामें हों, अपने शरीरमें हों या संसारमें, पशु-पक्षियोंद्वारा हों या दिव्य शक्तियोंद्वारा, प्रत्येक दशामें उनका तात्पर्य है—हमें सावधान करना और आश्वासन देना। शकुन-शास्त्र यह सिद्ध करता है कि जगत्‌की संचालिका एक चेतनशक्ति है और वह हमारे प्रति ममतामयी है। वह जड़, विचारहीन और बर्बर-प्रकृति नहीं है। उसमें अपार दया, स्नेह और ममत्व है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब घटनाओंका निवारण नहीं हो सकता तो उनकी सूचना मिलनेसे ही हमें क्या लाभ? इसका उत्तर यह है कि अनेक घटनाएँ स्थितिसे सम्बन्ध रखती हैं। वर्षा होनेवाली है तो होगी ही, उस समय यदि आप घरसे बाहर न निकलें तो भीगनेसे बच जायँगे। इसी प्रकार यात्रादिके अपशकुन जो अनिष्ट परिणाम प्रकट करते हैं, उनसे यात्रा रोककर बचा जा सकता है। अनेक बार मनुष्य जान-बूझकर अपनेको संकटमें डाल लेता है। ऐसे समय मानना पड़ता है कि उसका संकटमें पड़ना अनिवार्य था। वह पूर्वनिश्चित था। सब समय ऐसा नहीं होता। यदि ऐसा हो तो हमारे लिये मार्ग-विवरण तथा संकटकी सूचनाएँ अनावश्यक हो जायँ। हम प्रत्येक कार्यमें पूर्व-सूचना पानेकी इच्छा रखते हैं और जीवनमें उसका महत्त्व जानते हैं, अतः शकुनकी महत्ता हम अस्वीकार नहीं कर सकते।

हम मान लें कि सब घटनाएँ अनिवार्य हैं और बात कुछ ऐसी ही है भी, इतनेपर भी पूर्व-सूचना महत्त्वहीन नहीं हो जाती। यदि हमें पता चल जाय कि हम बीमार होंगे और इतना कष्ट पायेंगे तो उसके लिये पहलेसे मानसिक दृढ़ता प्राप्त कर सकते हैं। यदि एक साइकिल-सवार जान ले कि गड्ढेमें गाड़ी गिरेगी ही तो वह अपनेको बहुत कुछ बचा लेता है। इसी प्रकार हम शारीरिक एवं भौतिक दृष्टिसे भले ही घटनाओंके शिकार बनें, किंतु मानसिक दृष्टिसे प्रस्तुत रहने और सावधान होनेका मूल्य कम नहीं है।

अनेक व्यक्ति चाहते हैं कि उन्हें अपना मृत्युकाल पूर्व ही ज्ञात हो जाय। ऐसा कोई व्यक्ति कदाचित् ही मिलेगा, जो अपने जीवनके भविष्यके सम्बन्धमें उत्सुक न हो। हम यह विश्वास कर लें कि भविष्य जानकर भी हम उसे तनिक भी प्रभावित नहीं कर सकते, तब

भी हमारा कुतूहल शान्त नहीं होता। जीवनमें कुतूहल-वृत्तिका मूल्य कम नहीं है। शारीरिक भोग-पूर्तिकी अपेक्षा मनुष्यका प्रयत्न मानसिक तुष्टिके लिये ही अधिक है। शकुन-शास्त्र एक सीमातक कुतूहल-वृत्तिकी तुष्टि करता है, अधिक सावधान करता है और आश्वासन देता है। शकुनोंकी सार्थकता हमारे जीवनमें बहुत बड़ी है। अपनी असामर्थ्यके कारण 'अंगूर खट्टे हैं' वाली बात ही आजके समाजको इधरसे विमुख करती है।

शकुन-प्रभाव

शकुन जब स्वत: होते हैं, तभी उनका कुछ प्रभाव भी होता है। आजकल जैसे दूसरे नियमोंका दुरुपयोग होता है, वैसे ही शकुनसम्बन्धी धारणाका भी दुरुपयोग चल पड़ा है। दीपावलीके दिन बहेलिया घर-घर घूमकर बँधा हुआ नीलकण्ठ दिखलाता है और बड़े लोग यात्रा-शकुन बनानेके लिये जलभरे घड़े मार्गमें रखनेकी व्यवस्था करते हैं—ऐसे कृत्रिम शकुनसे कोई परिणाम नहीं हुआ करता। इससे मनुष्य अपने-आपको भ्रान्त ढंगसे सन्तुष्ट करता है और सिद्धान्तका परिहास ही होता है।

शकुनका प्रभाव समझनेके लिय भाव-जगत् और उसकी प्रेरणा माने बिना काम चल नहीं सकता। जैसे आकर्षणशक्ति एवं विद्युत्-शक्तिको अस्वीकार कर देनेपर वर्तमान विज्ञान चलेगा ही नहीं। न तो यन्त्र बन सकेंगे और न कार्यसम्बन्धी अनुमान होंगे। आकर्षण एवं विद्युत्—दोनों अप्रत्यक्ष शक्ति हैं। प्रभावके द्वारा ही उनकी सत्ताका बोध होता है, ऐसे ही भाव-जगत् एवं दिव्य जगत् भी प्रत्यक्ष नहीं हैं। विश्वकी अद्भुत घटनाओंसे ही उनकी सत्ता जानी जाती है। शकुनके प्रभावसे तो अनुभव करनेकी वस्तु हैं। कोई यह जाने या न जाने कि विद्युत् कैसे उत्पन्न होती है, परंतु बटन दबाकर विद्युत्प्रकाश तो वह प्राप्त कर ही सकता है। इसी प्रकार शकुनके जो परिणाम शास्त्रवर्णित हैं, वे तो सभीको प्राप्त होते हैं। जो उन लक्षणोंको जानते हैं, वे सावधान हो जाते हैं। जो नहीं जानते या उपेक्षा करते हैं, उनके साथ भी परिणाम तो वही घटित होते हैं।

अपशकुन-परिहार

शास्त्रोंमें अपशकुनोंके परिहारके अनेक उपाय बताये गये हैं। जैसे यात्राके समय अपशकुन हों तो उस समय निश्चित कालतक यात्रा रोक देनी चाहिये। जैसे ज्योतिषशास्त्रमें ग्रह-बाधाकी शान्तिके लिये नाना प्रकारके अनुष्ठानोंका विधान है, वैसे ही अपशकुनोंके दोषको दूर करनेके लिये भी जप-दान आदिका निर्देश है। अनेक लोग अपशकुनके निमित्तको ही दूर करनेका प्रयत्न करते हैं—जैसे बिल्ली रोती हो तो उसे भगानेका या उल्लूको मारनेका यत्न। इस प्रकार अपशकुनोंका परिहार नहीं होता। ये पशु-पक्षी आदि तो सूचना देनेवाले होते हैं। इनको दूर कर देनेसे अनिष्ट कैसे दूर हो जायगा? घड़ी बन्द कर देनेसे कहीं समयकी गति रुक सकती है? उल्टे इन सूचक लक्षणोंका रहना अच्छा है। यदि ऐसा न हो तो सृष्टि-विधानमें वे रहते ही नहीं। जप-दानादिसे अपशकुनका परिहार हुआ या नहीं, यह बात सूचक लक्षणोंसे जानी जा सकती है।

जैसे रोग होनेपर ओषधि करना एक प्रकारका प्रायश्चित्तरूप कर्म है, जैसे प्रायश्चित्तसे पापका परिहार होता है, वैसे ही संकल्पपूर्वक जप-दानादि कर्म प्रारब्धमें सम्मिलित होकर अनिष्टका निवारण करते हैं। जैसे यन्त्रद्वारा सूचना मिलनेपर कि हिमवृष्टि होनेवाली है, कोयला जलाकर या विद्युत्की उष्णतासे उसका निवारण किया जा सकता है, जैसे प्रकृतिके नियमोंको जानकर उसमें स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर लेना ही विज्ञानका कार्य है, वैसे ही अनुष्ठानसे अनिष्टकी निवृत्ति भी होती है।

स्थूल जगत् तथा उसके नियम सूक्ष्म (भाव) जगत् एवं उसके नियमोंसे भिन्न नहीं हैं। केवल स्थूल जगत्में उनका रूप स्थूल होनेसे वे यन्त्रद्वारा प्रत्यक्ष हो पाते हैं और स्थूल क्रियासे प्रभावित होते हैं। सूक्ष्म जगत् मनकी एकाग्रतासे सम्बन्ध रखता है और उसे जप, ध्यान, भाव आदिकी सूक्ष्म शक्तियोंसे प्रभावित किया जाता है। शकुन हमें सूचना देते हैं। ये प्रकृतिकी चेतावनीके स्वरूप हैं, जिससे हम सावधान हों और अपने बचावका प्रयत्न कर सकें।

शकुन-शास्त्रका प्रभाव हिन्दू-संस्कृतिमें बहुत व्यापक है। ज्योतिषशास्त्रके तीन अंग हैं—नक्षत्र-गणित, लक्षण-ज्ञान और (सामुद्रिक)-के साथ शकुनशास्त्र। इनमें तीसरा मुख्य अंग है। वैद्यक-शास्त्रमें भी चिकित्सकके लिये दूत-लक्षण एवं चिकित्साके लिये जाते समयके शकुन आदिका निर्देश है। कुशल वैद्य इन शकुनोंका ध्यान रखते हैं और लाभ उठाते हैं। समाजमें और जीवनमें जितने भी संस्कार होते हैं, सबमें शकुनका विचार होता है; क्योंकि प्रत्येक कार्य किसी-न-किसी उद्देश्यसे होता है। अतः उद्देश्यके सम्बन्धका शकुन-विचार छोड़ा कैसे जा सकता है? यात्रा, युद्ध, सन्धि, मैत्री, व्यापार, विवाह, सन्तानोत्पत्ति, कृषि, विवादप्रभृति समस्त कामोंमें शकुन-विचार होता है। महाभारत, रामायण, पुराण आदि ग्रन्थोंमें शकुनोंकी ऐसी सहस्रों घटनाओंका वर्णन है। सबके लिये शकुनोंका विस्तृत विवेचन है।

अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले।
त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः॥

(श्रीमद्भा० १०। ४१। ४)

पृथ्वी, आकाश या जलमें जो कुछ भी विचित्रताएँ हैं, वे सब आप विश्वात्मामें ही हैं। जिसने आपका साक्षात्कार कर लिया, उसके लिये कहीं कोई अद्भुत वस्तु रह नहीं जाती। वह आपकी प्रत्येक भाव-भंगी, प्रत्येक संकेतको समझता है। विश्व उस चिन्मय तत्त्वका भाव-विस्तार है। जिन ऋषियोंने उसका साक्षात्कार किया था, उनके लिये उसके संकेत और संकेतोंका रहस्य पहेली नहीं था। उन्होंने हमारे लाभके लिये उसका उसी प्रकार उपदेश किया है, जैसे अध्यापक विद्यार्थियोंको भूगोल या गणित पढ़ाते हैं। आज हम उस स्थूल विज्ञानको लेकर, जो स्थूल प्रकृतिके अपार रहस्यमें अधूरा और भ्रामक ज्ञान ही रखता है, ऋषियोंके ज्ञानकी आलोचना करने लगते हैं। जैसे प्रथम कक्षाके विद्यार्थीका लाभ इसमें है कि वह अंक, जोड़ आदिकी बातोंको मान ले, उनपर विश्वास कर ले; धीरे-धीरे वह अपनी मान्यताका रहस्य समझ लेगा; आरम्भमें ही वह रेखा और शून्यकी परिभाषाओंपर झगड़ेगा तो मूर्ख ही रह जायगा। ऐसे ही शास्त्रपर विश्वास करके उनके अनुसार आचरण करनेसे तो योग्यतानुसार धीरे-धीरे उनका सत्य जाना जा सकता है; पर प्रारम्भमें ही तर्क करनेसे अज्ञान और हानि ही हाथ लगती है।

शुभ-अशुभ शकुन तथा उनके समाधान

(डॉ० श्रीगोकुलप्रसादजी तिवारी, एल-एल०बी०, पी-एच०डी०)

ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिमें शुभ-अशुभ शकुनका बड़ा महत्त्व है। अशुभ शकुनोंके निराकरणके उपाय भी ज्योतिषशास्त्रमें बताये गये हैं। शकुनकी मान्यता आज भी हमारे समाजमें है। इसके अनुसार ही हमारे बुजुर्ग यात्रा आदि सभी कार्य करते हैं। यहाँ हिन्दूसमाजमें प्रचलित कुछ शुभ-अशुभ शकुनोंका विवेचन किया जा रहा है—

यात्राके समय शुभ-अशुभ-शकुन-विचार

सोम शनिश्चर पूरब न चालू। मंगल बुध उत्तर दिशि कालू॥
रवि शुक्र जो पश्चिम जाय। हानि होय पर सुख न पाय॥
बीफे दक्षिण करे पयाना। फिर नहीं होवे ताको आना॥

अर्थात् सोमवार, शनिवारको पूर्वदिशामें यात्रा नहीं करनी चाहिये। मंगलवार एवं बुधवारको उत्तरदिशामें यात्रा करना कालको आमन्त्रण देना माना जाता है। रविवार एवं शुक्रवारको पश्चिमदिशामें यात्रा करनेसे हानि होती है तथा दुःख प्राप्त होता है। गुरुवारको दक्षिणदिशामें यात्रा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यात्रासे वापस आनेकी सम्भावना कम रहती है।

ज्योतिष-मतानुसार निराकरणके उपाय

यदि उपर्युक्त दिन एवं दिशाओंमें यात्रा करना आवश्यक हो तो निम्नानुसार यात्रा की जा सकती है—

सोमवार एवं शनिवारको पूर्वकी यात्रा करनेकी परिस्थितिमें यात्रा करनेवालेको क्रमशः दूधका पानकर **'ॐ नमः शिवाय'** मन्त्रका जप करते हुए यात्रा करनी

चाहिये। शनिवारको उड़दके दाने पूर्वदिशामें चढ़ाकर तथा कुछ दाने खाकर यात्रा करे एवं यात्राके समय शनि-गायत्रीका पाठ करता रहे—**'ॐ भगभवाय विद्महे मृत्युरूपाय धीमहि तन्नः शनिः प्रचोदयात्।'**

मंगलवार एवं बुधवारको यात्रा करना जरूरी हो तो मंगलवारको गुड़का दान करे, कुछ गुड़ मुखमें धारण करे तथा मंगल-गायत्रीका जप करे—**'ॐ अङ्गारकाय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि तन्नो भौमः प्रचोदयात्।'**

बुधवारको उत्तरदिशाकी यात्रा आवश्यक हो तो तिल एवं गुड़का दान करे एवं उसीसे बने पकवानका भोजनकर यात्रा करे, यात्राके पूर्व पाँच बार बुध-गायत्रीका पाठकर यात्रा करनी चाहिये—**'ॐ सौम्यरूपाय विद्महे बाणेशाय धीमहि तन्नः सौम्यः प्रचोदयात्।'**

वैसे तो ज्योतिषशास्त्रके मतानुसार रविवार एवं शुक्रवारको पश्चिमदिशामें यात्रा करना निषिद्ध बताया गया है, फिर भी अत्यन्त आवश्यक हो जानेपर यात्रा करनी हो तो उपायकर यात्रा की जा सकती है—

रविवारको पश्चिममें यात्रा करनेके पूर्व शुद्ध गायका घी लेकर पूर्वदिशाकी ओर मुँहकर हवन करे तथा यात्रासे पूर्व घीका पान करे एवं कन्याओंको दक्षिणा देकर सूर्यगायत्रीका जप करते हुए यात्रा प्रारम्भ करे—**'ॐ आदित्याय विद्महे प्रभाकराय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।'**

गुरुवारको दक्षिणदिशामें यात्रा करना सर्वथा वर्जित है, किंतु आवश्यक शुभकार्यहेतु यात्रा करना जरूरी हो गया हो तो निम्न उपायकर यात्रा की जा सकती है—

गुरुवारको यात्राके पूर्व दक्षिणदिशामें पाँच पके हुए नीबू सूर्योदयसे पूर्व स्नानकर गीले कपड़ेमें लपेटकर फेंक दे, यात्रासे पूर्व दहीका सेवन करे तथा शहद, शक्कर एवं नमक तीनोंको समभागमें मिलाकर हवन करे और गुरुगायत्रीका जपकर यात्रा प्रारम्भ करे—**'ॐ आङ्गिरसाय विद्महे दिव्यदेहाय धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात्।'**

यात्राके समय अशुभ शकुन—यात्राके समय घरसे निकलते ही यदि निम्नमेंसे कोई दृष्टिगोचर हो जाय तो यात्रा रोक देनी चाहिये—

वन्ध्या स्त्री, काला कपड़ा, हड्डी, सर्प, नमक, अंगार, विष्ठा, चर्बी, तेल, उन्मत्त पुरुष, रोगी, जलता गृह, बिलाव-युद्ध, लाल वस्त्र, सामने खाली घड़ा, भैंसोंकी लड़ाई, बिल्लीद्वारा रास्ता काटना आदि। (मुहूर्तचिन्तामणि ११। १०२-१०३)

यात्राके समय शुभ शकुन—यात्रापर घरसे निकलते ही यदि निम्नमेंसे कोई भी दिखायी दे तो ज्योतिषमतानुसार शुभ शकुन माना गया है—

ब्राह्मण, हाथी, घोड़ा, गौ, फल, अन्न, दूध, दही, कमलपुष्प, सफेद वस्तु, वेश्या, वाद्य, मयूर, नेवला, सिंहासन, जलता दीपक, गोदमें शिशु लिये हुए स्त्री, नीलकण्ठ पक्षी, चम्पाके पुष्प, कन्या, शुभवचन, भरा हुआ घड़ा, घी, गन्ना, सफेद बैल, वेदध्वनि, मंगल-गीत आदि। (मुहूर्तचिन्तामणि ११। १००)

आजके इस आधुनिक वैज्ञानिक युगमें उपर्युक्त शुभ-अशुभ शकुनोंपर हमारी युवा पीढ़ी विश्वास नहीं करती, किंतु कुछ ऐसी अनहोनी घटनाओंके होनेके कारण आजकी पीढ़ी पुनः बुजुर्गोंद्वारा बताये शकुन-अपशकुनपर धीरे-धीरे विश्वास करने लगी है।

यात्राके समय छींक भी शुभ एवं अशुभ शकुनका संकेत देती है। ज्योतिषशास्त्रके मतानुसार कुछ कार्य ऐसे भी हैं, जिनके करते समय छींक आती है तो अशुभ होते हुए भी शुभ मानी जाती है। जैसे—आसन, शयन, शौच, दान, भोजन, औषधसेवन, विद्यारम्भ, बीजारोपण, युद्ध या विवाहमें जाते वक्त बायीं ओर या पृष्ठभागमें हुई छींक—**भोजने शयने दाने आसने वामे पृष्ठे युद्धे औषधसेवने अध्ययने बीजवापे एषु शुभा।**

छिपकलीके गिरनेपर शुभ-अशुभ शकुन-विचार तथा शुभाशुभ फल—छिपकलीका शरीरके किसी भी भागपर गिरना शुभ-अशुभ शकुनका संकेत होता है। बुजुर्गोंके एवं ज्योतिषके मतानुसार इसका विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

सिरपर छिपकलीके गिरनेपर धनलाभका संकेत है। ललाटपर—बन्धुदर्शन, भौंहमध्य—राजसम्मान, नासिका—धनप्राप्ति, दाहिनी भुजा—नृप-समागम, बायीं भुजा—

राजभय, उदर—भूषणलाभ, पीठ—बुद्धिनाश, जानुद्वय—शुभागमन, जंघाद्वय—शुभ, दोनों हाथ—वस्त्रलाभ, कन्धा—विजय, दाहिना मणिबन्ध—भय, धनहानि, कष्ट, वाम मणिबन्ध—अपकीर्ति, मुखपर—मीठा भोजन, दाहिना पैर—यात्रा, बायाँ पैर—बन्धुनाश।

छिपकली गिरने या गिरगिटके किसी अंगपर चढ़नेका तिथिके अनुसार शुभाशुभ फल बताते हुए लोक-ज्योतिषी भड्डरी कहते हैं—

पड़े छिपकरी अंग पर कर काँटा चढ़ि जाय।
तिथि और वार नक्षत्र कर इनको फल दरसाय॥
पड़िवा पड़े जो छिपकली सरट चढ़े जो अंग।
रोग बढ़ावें वेग हो, करे शक्ति को भंग॥
दुतिया में दे राज घनेरा। त्रितिया द्रव्य लाभ बहुतेरा॥
दुक्ख चतुर्थी मोहि बरवानी। पंचम छट्टि दई धन धानी॥
सप्तम अष्टम नौमी दसमीं। मरिवे नाहि तो आवे करमीं॥
एकादशी पुत्र को लावै। करै द्वादशी द्रव्य उछाहै॥
त्रयोदसी दे सबही सिद्धि। चतुर्दशी में नासै ऋद्धि॥

उपर्युक्त अनिष्टकारक स्थिति बननेपर इसके निराकरणके लिये निम्न उपाय करना चाहिये—

सचैल स्नानकर शिवालयमें घीका दीपक रखकर '**ॐ नमः शिवाय**' मन्त्रका जप करना चाहिये। साथ ही रुद्राभिषेक भी कराना लाभकारी माना गया है।

नोट—पुरुषके दाहिने अंगमें तथा स्त्रीके बाँयें अंगमें छिपकलीका पतन शुभ माना गया है।

अंगोंके फड़कनेपर शुभ-अशुभ शकुन एवं उनका फल—मस्तक फड़कनेपर—भूमिलाभ, ललाट फड़कनेपर स्थानलाभ, दोनों कन्धे पकड़नेपर—भोग, भौंहमध्य फड़कनेपर—सुख, दोनों भौंहके फड़कनेपर—महान् सुख, नेत्रोंके फड़कनेपर—धनप्राप्ति, नासिकास्फुरण—प्रीति, सुख, नेत्रकोण फड़कनेपर—स्त्रीलाभ, वक्ष:स्थल फड़कनेपर—विजय, हृदय फड़कनेपर—कार्यसिद्धि, कमर—प्रमोद, नाभि—स्त्रीनाश, उदर—धनलाभ, गुदा—वाहनलाभ, ओठ—प्रिय वस्तुकी प्राप्ति, दाढ़ी—भय, कष्ट, कण्ठ—ऐश्वर्यप्राप्ति, पीठ—पराजय, मुख—मित्रप्राप्ति, दक्षिणबाहु—विजय, वाम बाहु—धनागम, जानु—शत्रुभय।

नोट—पुरुषका दाहिना अंग और स्त्रीका बायाँ अंग फड़कना शुभ होता है, किंतु स्त्रीकी भुजा एवं नेत्रोंका फल विपरीत होता है।

ज्योतिषशास्त्र और अंगविद्या

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम० ए०, पी-एच० डी०)

'अंगविद्या' ज्योतिषशास्त्रके संहितास्कन्धकी एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने समस्त प्राणियोंको भिन्न-भिन्न वर्णों तथा आकृतियोंमें बनाया है और उनके अंग-प्रत्यंगोंको विविध आकार-प्रकार प्रदान किये हैं। ये विविधताएँ एवं विभिन्नताएँ केवल शोभाके लिये नहीं हैं, अपितु इनका गहरा सम्बन्ध व्यक्तियोंके व्यक्तित्व, कृतित्व एवं स्वभावसे भी है। व्यक्तियोंकी आकृतियाँ एवं उनके अंग-प्रत्यंगोंके विविध आकार-प्रकार सम्बन्धित व्यक्तिके भावी शुभाशुभत्वको भी लक्षित करते हैं।

प्राचीनकालमें समुद्र नामक ऋषिने मानव-अंगोंके शुभाशुभत्वकी गहन विवेचना की तथा अंगविद्याका प्रणयन किया। यह अंगविद्या लोकमें सामुद्रिकशास्त्रके नामसे जानी गयी।* इसमें मनुष्यके अंगोंको देखकर उसके भविष्य जाननेकी विधि वर्णित है।

रामायण, महाभारत तथा गणेश-शिव-स्कन्दादि पुराणोंमें भी अंगविद्यासे सम्बन्धित अनेक सूत्र (नियम) बतलाये गये हैं। यहाँ 'अंगविद्या' से सम्बद्ध कुछ शारीरिक लक्षणोंका वर्णन दिया जा रहा है—

प्रशस्तमानवके अंगोंके लक्षण

अंगविद्याके अनुसार प्रशस्त मानवके अंगोंके लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं—

* अंगविद्याका सम्बन्ध प्रश्नशास्त्रसे भी है अर्थात् प्रश्नकर्ता प्रश्न करते समय जिन अंगोंको स्वाभाविक रूपसे स्पर्श करता है, उसके आधारपर भी फलनिरूपण होता है। आचार्य वराहमिहिरके वृहत्संहिता आदिमें यह विषय वर्णित है। इसीलिये अंगविद्याको 'गात्रस्पर्शलक्षण' भी कहते हैं।

जिस मनुष्यके शरीरमें चौदह अंग[१] जो दो-दो (जोड़ा)-की संख्यामें होते हैं, वे बराबर हों, चार अंग[२] आपसमें समान हों, दस अंग[३] कमलके समान सुकोमल हों, दस अंग[४] सुविस्तृत हों, चार अंग[५] काले तथा तीन अंग[६] उज्ज्वल हों तो वह मनुष्य श्रेष्ठ लक्षणोंवाला कहा जाता है—

चतुर्दश समद्वन्द्वश्चतुः कृष्णश्चतुःसमः।
दशपद्मो दशवृहत् त्रिशुक्लः शस्यते नरः॥
पादौ गुल्फौ स्फिचौ पार्श्व वृषणौ चक्षुषी स्तनौ।
कण्ठोष्ठौ वंक्षणौ जंघे हस्ती बाहू च कुक्षिकौ॥
चतुर्दश समद्वन्द्वं समुद्रो नृषु शंसति।
अक्षितारे भ्रुवौ श्मश्रुः केशाश्चैवासिताः शुभाः॥
अङ्गुल्यो हृदयं नेत्रे दशनाश्च समा नृणाम्।
चत्वारः संप्रशस्यन्ते मदैश्वर्यसुखावहाः॥
जिह्वोष्ठं तालुरास्यं च मुखं नेत्रे स्तनौ नखाः।
हस्तौ पादौ च शंस्यन्ते पद्माभा दश देहिनाम्॥
पाणिपादमुरो ग्रीवा वृषणौ हृदयं शिरः।
ललाटमुदरं पृष्ठं वृहन्तः पूजिता दश॥
नेत्रे ताराविरहिते दशनाश्च सिताः शुभाः।
एतच्च लक्षणं कृत्स्नं नराणां समुदाहृतम्॥

सामुद्रिकशास्त्रमें महापुरुषके लक्षणोंको बताते हुए कहा गया है कि जिस पुरुषके सात अंग (नख, चरण, हथेली, जीभ, ओठ, तालु तथा नेत्रान्त) लाल हों, छः अंग (कक्षा (काँख), वक्ष, कृकारिका (गरदनका पिछला भाग), नाक, नख तथा मुँह) ऊँचे हों, पाँच अंग (दाँत, त्वचा, केश, अंगुलियोंके पर्व, नख) सूक्ष्म (पतले) हों, पाँच अंग (नेत्र, स्तन, जीभ, ठोढ़ी तथा भुजाएँ) दीर्घ—लम्बे हों, तीन अंग (भाल, छाती तथा मस्तक) चौड़े या विशाल हों, तीन अंग—ग्रीवा, जंघा (पिण्डली), मेहन (लिंग) छोटे हों तथा तीन अंग स्वर, नाभि तथा सत्त्व—(मन) गम्भीर हों—इस प्रकार ३२ शुभ लक्षणोंवाला पुरुष महापुरुष होता है—

इह भवति सप्त रक्तः षडुन्नतः पञ्चसूक्ष्मदीर्घो यः।
त्रिविपुललघुगम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षणः सत्पुमान्॥

(सामुद्रिकशास्त्र २। ८८)

इसके अतिरिक्त अंगविद्यामें शुभाशुभत्वकी दृष्टिसे स्त्री एवं पुरुष-अंगोंके कुछ विशेष लक्षण भी बताये गये हैं, जिनमें स्त्रियोंके पादतलसे लेकर सिरके केशोंतकका विवेचन किया गया है तथा पुरुषोंके अंगोंके शुभाशुभत्व भी कहे गये हैं। तदनुसार सर्वप्रथम वनिताओंके अंगोंके कुछ शुभाशुभ लक्षण प्रस्तुत किये जा रहे हैं; क्योंकि यदि स्त्री सभी प्रकारके श्रेष्ठ लक्षणोंसे सम्पन्न होती है तो गृहस्थ सदा उत्तम सुखको प्राप्त करता है—

'सदा गृही सुखं भुंक्ते स्त्रीलक्षणवती यदि।'

(काशीखण्ड ३७। १)

स्त्री-अंगोंके शुभाशुभ लक्षण

पादतल—स्त्रियोंके पैरोंके तलवे लालिमायुक्त, चिकने, कोमल, मांसल, समतल, उष्ण और पसीनेसे रहित होनेपर श्रेष्ठ होते हैं। सूपके आकारके, रुक्ष और बेडौल तलवे दुर्भाग्यसूचक होते हैं। तलवोंमें स्वस्तिक, चक्र एवं शंखादि चिह्न राजयोगकारक होते हैं। चूहे एवं सर्पादिके समान रेखायें दारिद्र्यसूचक होती हैं।

पादांगुष्ठ—स्त्रियोंके पैरोंके अँगूठे यदि ऊँचे, मांसल और गोल हों तो शुभद; छोटे, टेढ़े और चिपटे हों तो सौभाग्यनाशक होते हैं।

पादांगुलियाँ—स्त्रियोंके पैरोंकी अंगुलियाँ कोमल, घनी (आपसमें सटी हुई), गोल और ऊँची हों तो उत्तम होती हैं। अत्यन्त लम्बी अंगुलियोंवाली स्त्री कुलटा, कृश अंगुलियोंवाली स्त्री निर्धन तथा छोटी अंगुलियोंवाली स्त्री अल्पायु होती है।

पादनख—स्त्रियोंके पैरोंके नाखून गोलाकार, उन्नत,

---

१. पैर, गुल्फ, स्फिक् (पुट्ठोंके मांसपिण्ड), पार्श्वभाग, अण्डकोश, नेत्र, स्तन, कण्ठके पार्श्वभाग, ओंठ, जानुओंकी सन्धियाँ, जाँघ, हाथ, बाहें और काँख प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें दो-दो होते हैं।

२. अंगुलियाँ, हृदय, नेत्र और दाँत सम हों।

३. जिह्वा, ओंठ, तालु, आस्य (मुँह/जबड़ा), मुख, नेत्र, स्तन, नख, हाथ और पैर।

४. हाथ, पैर, वक्षःस्थल, ग्रीवा, अण्डकोश, हृदय, शिर, मस्तक, उदर और पीठ।

५. नेत्रोंकी पुतलियाँ, भौहें, दाढ़ी और (सिरके) बाल काले हों।

६. पुतलियोंके अतिरिक्त नेत्रोंके शेष भाग और दाँत उज्ज्वल हों।

चिकने और ताँबेके समान रक्तवर्णके शुभद कहे गये हैं।

भुजाएँ—जिनमें हड्डियोंका जोड़ न दिखायी दे, ऐसी कोमल तथा नाड़ियों और रोमसे रहित स्त्रियोंकी सीधी भुजाएँ प्रशस्त कही गयी हैं। मोटे, रोमोंसे युक्त भुजावाली स्त्री विधवा होती है। छोटी भुजाओंवाली स्त्री दुर्भगा होती है।

हाथकी अंगुलियाँ—स्त्रियोंकी सुन्दर पर्ववाली, बड़े पोरोंसे युक्त, गोल, हथेलीसे नखकी तरफ क्रमशः पतली अंगुलियाँ शुभद होती हैं। अत्यन्त छोटी, पतली, टेढ़ी, छिद्रयुक्त, अत्यन्त मोटी एवं पृष्ठ भागमें रोमोंसे युक्त अंगुलियाँ अशुभ/कष्टकारक होती हैं।

मुख—जिस स्त्रीका मुख गोल, सुन्दर, समान, मांसल, स्निग्ध, सुगन्धयुक्त और पिताके मुखके समान होता है—वह स्त्री प्रशस्त लक्षणोंवाली कही गयी है।

नेत्र—स्त्रियोंके लाल कोनोंवाले तथा काली पुतलियोंवाले नेत्र प्रशस्त कहे गये हैं। पुतलियोंके अतिरिक्त नेत्रके शेष भाग गोदुग्धके समान सफेद, विशाल एवं स्नेहिल हों तथा काली बरौनियोंसे युक्त हों तो वे नेत्र मंगलकारी कहे गये हैं।

भ्रू (भौंहें)—स्त्रियोंकी काली, स्निग्ध, आपसमें न सटी हुई, कोमल रोमोंसे युक्त, धनुषके समान झुकी हुई भौंहें श्रेष्ठ कही गयी हैं।

सीमन्त (सिन्दूर लगानेका स्थान)—सीधा एवं उन्नत सीमन्त श्रेष्ठ होता है। हाथीके मस्तकके समान उन्नत मस्तक सौभाग्य एवं ऐश्वर्यसूचक होता है।

केश—भ्रमरके समान काले, पतले, चिकने, कोमल और कुण्डलके समान अग्रभागवाले सिरके बाल उत्तम कहे गये हैं।

विशेष

स्त्रियोंके लक्षणोंका निरूपण करनेके अनन्तर भगवान् कार्तिकेय अगस्त्यजीको निष्कर्ष रूपमें बताते हैं कि हे मुनिश्रेष्ठ! सुलक्षणा स्त्री भी दुःशीला हो तो वह कुलक्षणाओंमें शिरोमणि होती है, जबकि श्रेष्ठ लक्षणोंसे रहित होते हुए भी पतिव्रता एवं शिवादि देवताओंकी भक्तिमें संलग्न रहनेवाली स्त्री सम्पूर्ण शुभलक्षणोंकी उत्पत्ति-स्थान होती है—

सुलक्षणापि दुःशीला कुलक्षणाशिरोमणिः।
अलक्षणापि सा साध्वी सर्वलक्षणभूस्तु सा॥

(काशीखण्ड ३७। १४३)

हे मुने! भगवान् विश्वेश्वरके अनुग्रहसे ही सुलक्षणा, सुचरित्रा, स्ववशवर्तिनी और पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है। पूर्वजन्मके महान् पुण्यसे सुलक्षणा नारीका जन्म होता है। ऐसी नारियोंका मोक्ष और अपवर्ग इसी धरतीपर रहता है। उन्हें देवलोक तथा मोक्षके लिये साधना नहीं करनी पड़ती। ऐसी प्रमदाएँ अपने शुभ आचरणसे स्वल्पायु पतिको भी दीर्घायु बना देती हैं—

सुलक्षणैः सुचरितैरपि मन्दायुषं पतिम्।
दीर्घायुषं प्रकुर्वन्ति प्रमदाः प्रमदास्पदम्॥

(काशीखण्ड ३७। १४९)

पुरुष-अंगोंके शुभाशुभ लक्षण

अंगविद्यामें शुभाशुभत्वकी दृष्टिसे पुरुषोंके अंगोंके शुभाशुभ लक्षण निम्नलिखित प्रकारसे कहे गये हैं*—

लम्बाई—अपने हाथकी अंगुलियोंकी नापसे १०८ अंगुल लम्बा पुरुष गुणों एवं ऐश्वर्यादिमें उत्तम होता है। ९६ अंगुल लम्बा मध्यम तथा ८४ अंगुल लम्बा पुरुष हीन होता है—

शतमष्टाभिः समधिकं ज्येष्ठः स्यान्मध्यमोऽपि षण्णवतिः।
चतुराधिकाशीति रथाङ्गुलानि दैर्घ्यात्पुमानधमः॥

(सामुद्रिकशास्त्र २। २५)

स्वर—हाथी, बैल, रथसमूह, मृदंग, सिंह और मेघोंके समान गम्भीर स्वरवाले पुरुष राजा (श्रेष्ठ) होते हैं। गदहेके समान स्वरवाले, क्षीण, रुक्ष या कठोर स्वरवाले पुरुष धन और सुखसे वंचित रहते हैं।

पैर—ऐसे पुरुष जिनके पैर रुधिरतुल्य लाल एवं सुकोमल तालुओंवाले, चिकने, मांसल, उष्ण, पसीने तथा शिराओंसे रहित हों और जिनके पैरोंका ऊपरी भाग कछुएकी पीठ-जैसा ऊँचा हो तथा अंगुलियाँ आपसमें मिली हुई हों; तो वे कोई राजा या बड़े अधिकारी होते हैं। सूपके समान चौड़े अग्रभागवाले, अत्यन्त छोटे, रूखे, भूरे नखोंवाले, टेढ़े और नाड़ीयुक्त पैर दारिद्र्य-सूचक होते हैं।

* आचार्य वराहमिहिरकी वाराहीसंहिता (बृहत्संहिता) आदि ग्रन्थोंमें भी पुरुषके अंगोंका शुभाशुभ लक्षण बताया गया है।

जंघा, ऊरु और जानु—हाथीकी सूँड़के समान आकारवाले तथा दूर-दूर और छोटे रोमोंसे युक्त जंघावाले पुरुष श्रेष्ठ होते हैं। दोनों जानु मांसपूरित और समान हों तो राजयोगकारक होते हैं। कुत्ते एवं सियारके समान पतली एवं लम्बी जंघावाले पुरुष धन-धान्यसे रहित होते हैं।

हृदय—ऊँचा, मोटा, कम्पनरहित और मांसल हृदय राजाओं (श्रेष्ठ पुरुषों)-का होता है। इसके विपरीत मांसरहित, रुक्ष, शुष्क, रोमयुक्त तथा उभरी हुई नाड़ियोंसे युक्त हृदयवाले व्यक्ति निर्धन होते हैं।

वक्ष—समान वक्षःस्थल धनीके, स्थूल एवं पुष्ट वक्षःस्थल शूरवीरके तथा छोटे वक्षःस्थल धनहीनके होते हैं। विषम वक्षःस्थल निर्धनके होते हैं और वे शस्त्रसे मारे जाते हैं।

कन्धा—सुविस्तृत भुजाओंसे युक्त, मांसल और पुष्ट कन्धे सुखी एवं पराक्रमी पुरुषोंके होते हैं। छोटे, मांसरहित, भग्न और रोमयुक्त कन्धे निर्धनोंके होते हैं।

बाहु (भुजा)—हाथीकी सूँड़के समान पुष्ट, मोटी एवं गोल भुजाएँ जो आपसमें समान हों तथा जानुओंको छू लेनेवाली लम्बी हों तो वे राजातुल्य ऐश्वर्य एवं सम्पन्नताकी द्योतक होती हैं। रोमयुक्त एवं छोटी भुजाएँ निर्धनोंकी होती हैं।

मुख—शान्त, सम, सौम्य, गोल, निर्मल एवं सुन्दर मुखवाले पुरुष राजा होते हैं। इसके विपरीत मुखवाले पुरुष दुःखी होते हैं। स्त्रियोंके समान मुखवाले पुरुष सन्तानरहित, गोल मुखवाले पुरुष शठ, लम्बे मुखवाले पुरुष निर्धन तथा भयभीत मुखवाले पुरुष पापी होते हैं।

कर्ण—बड़े कानोंवाले धनी, छोटे कानवाले कृपण, शंकुके समान कानवाले सेनानायक, रोमोंसे युक्त कानवाले दीर्घजीवी, लम्बे एवं मांसल कानवाले सुखी एवं भोगी होते हैं।

नाक—सीधी एवं छोटे छिद्रोंवाली तथा सुन्दर नासापुटोंवाली नाक सुन्दर भाग्यशाली पुरुषोंकी होती है। तोतेके समान नाकवाला पुरुष सुखोंको भोगनेवाला होता है। लम्बी नाकवाला पुरुष भाग्यशाली तथा शुष्क नाकवाला पुरुष दीर्घजीवी होता है। आकुंचित नाकवाला पुरुष चोर, नाककटा पुरुष अगम्यागमन करनेवाला, चिपटी नाकवाला पुरुष स्त्रीघाती होता है अर्थात् उसकी स्त्री मर जाती है।

ललाट—ऊँचे एवं विस्तीर्ण ललाटवाले पुरुष धनी, अर्द्धचन्द्रतुल्य ललाटवाले पुरुष धनवान् एवं राजा, सीपीके समान ललाटवाले पुरुष आचार्य, नीची ललाटवाले पुरुष पुत्र एवं धनसे हीन, शिरायुक्त ललाटवाले पुरुष अधर्मी तथा गोल माथेवाले पुरुष अत्यन्त कृपण होते हैं।

केश—जिस पुरुषके सिरमें एक रोमकूपमें एक ही बाल हों, बाल स्निग्ध और कोमल हों, बालोंके अग्रभाग काले हों तथा वे कुण्डलीके समान मुड़े हुए (घुँघराले) हों, बालोंके अग्रभाग फटे हुए न हों और बाल अधिक घने न हों तो वह पुरुष सुखी एवं राजा होता है। इसके विपरीत लक्षणोंवाले पुरुष दुःखी होते हैं।

श्राद्धके लिये 'ज्योतिषशास्त्रोक्त' कालशुद्धि

(पं० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय 'किशनमहाराज')

पितरों एवं प्रेतोंके उद्देश्यसे किये गये सत्कार्य, जैसे—दान, पूजन, तर्पण, पिण्डदानादि समस्त कार्य श्राद्धपद-वाच्य हैं, जिसमें 'श्रद्धा' की मुख्य भूमिका है। यथा—'**प्रेतान् पितॄनुद्दिश्य यस्मादन्नं दीयते तस्मात् श्राद्धमुच्यते।**' इत्यादिसे यह सुस्थिर हो जाता है कि पूर्वजों एवं किसी भी मृतप्राणीके कल्याणहेतु की गयी क्रिया तर्पण-पिण्डदानादि श्राद्धरूपमें ही उनको तत्-तत् लोकोंमें कर्मविपाकवशात् तत्तद् योनियोंमें, स्वर्ग-नरकादिमें प्राप्त होती है और उसके द्वारा जीवका उत्कर्ष होता है। ऐसा शास्त्रप्रतिपादित है। श्राद्धादिके पुण्यसे नरकोंसे मुक्ति होती है, यह आर्षवचनोंका प्रामाण्य है।

श्राद्धोंके कई प्रकार हैं, जैसे—नित्यश्राद्ध, नैमित्तिक-श्राद्ध, तीर्थश्राद्ध, एकोद्दिष्ट, पार्वणश्राद्ध और नान्दीश्राद्ध आदि। अन्त्येष्टिके प्रारम्भसे लेकर मलिन, मध्यम एवं उत्तमषोडषी, सपिण्डीकरण तथा वार्षिक श्राद्ध और प्रतिमासमें करनेके अभावमें अपकर्षणपूर्वक किये जानेवाले

श्राद्धोंकी दीर्घसूची कर्मकाण्डके निबन्धोंमें उपलब्ध है। ये श्राद्ध सद्गृहस्थोंके द्वारा अनुष्ठित होते देखे जाते हैं, विशेषतः 'गयाश्राद्ध' आदि विशेष आयोजन और आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक आपदाओंसे ग्रस्त होने एवं त्रिविध तापोंसे संतप्त लोगोंके शान्त्यर्थ त्रिपिण्डी श्राद्धादिके विशेष अनुष्ठानोंका प्रचलन एवं कार्य अद्यतन अनादि परम्परासे सत्सम्प्रदायानुसार किंचित् 'देशभेद वा गृह्यसूत्राधारितपद्धति'-भेदसे आस्तिक सनातन धर्मावलम्बियोंमें विद्यमान है। और्ध्वदैहिक श्राद्धपिण्ड-दान-तर्पण, हवन, ब्राह्मण-भोजनादि क्रियाको विधिवत् सांगोपांग सम्पादित कर देनेसे पितृ-शान्ति एवं प्रेतत्वसे मुक्ति होती है।

श्राद्धमें तीन बातें अत्यावश्यक हैं—'**दौहित्रः कुतपः तिलाः**।' दौहित्र (कन्याका पुत्र) एवं तिलको छोड़कर तीसरा कुतपकाल 'कुतप समय' श्राद्ध-पिण्डदानका समय ज्योतिषद्वारा साध्य है। सूर्योदयकालके अनन्तर ५वाँ घण्टा कुतपसंज्ञक कहलाता है, जो 'श्राद्धकाल' होता है। यद्यपि शास्त्रोंने आठ प्रकारके कुतपोंका वर्णन किया है तथापि श्राद्धयोग्य 'कुतप' कालमें रहनेवाली तिथिमें ही श्राद्धकर्म सम्पादित होता है, इसलिये 'पितृयज्ञ' श्राद्धके सम्पूर्ण फलप्राप्तिके हेतु मध्याह्नव्यापिनी 'कुतप' कालयुक्त तिथिमें श्राद्धकी संगति होती है—जैसा कि किसीका श्राद्ध अष्टमीतिथिको है और अष्टमी अपने अष्टमीके दिन सूर्योदयसे तीन घण्टा मानकी है, यदि ६ बजे सूर्योदय हो तो तीन घण्टे बादतक अष्टमीका मान = ९ बजेतक होगा; तदुपरान्त नवमी तिथिका प्रवेश हो जाता है। श्राद्ध अष्टमी तिथिका है, अब इसके पहले तिथि सप्तमीका समापन १० बजेके आसपास होकर मध्याह्न 'कुतप' में यदि पूर्व दिन अष्टमीका मान आ जाता है तो श्राद्ध औदयिकी अष्टमीमें नहीं होकर पूर्व दिन सप्तमीयुक्त कुतपकालव्यापी अष्टमीमें होगा। इसके ज्ञानके लिये पंचांगस्थ तिथ्यादि मान एवं धर्मकृत्योपयोगी तिथ्यादि-निर्णयमें ज्योतिषशास्त्रके गहन अध्ययन-मनन-चिन्तनकी आवश्यकता है। श्राद्धोपयोगी तिथि या धर्मकृत्योपयोगी तिथिमानमें—'सूर्यसिद्धान्त' पद्धतिके अनुसार निर्मित पंचांग एवं तदुक्त तिथ्यादिमानके अन्तर्गत किया गया श्राद्धकर्म फलदाता होता है—ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है। कभी-कभी विविध वचन एवं परस्पर विरोधी वाक्योंके मिलनेपर जनसाधारण भ्रममें पड़ जाते हैं। कुछ तात्पर्य समझे बिना अपनी स्वकीय कपोलकल्पित व्यवस्था लगा देते हैं। उनके अनुसार निम्न वचनके आधारपर उपर्युक्त अष्टमीका श्राद्ध अष्टमीमें होना चाहिये—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु॥

—लेकिन यहाँ तात्पर्य श्राद्धकाल 'कुतप' का महत्त्व है। उदयव्यापिनी तिथि 'प्रयोगप्राप्त' नहीं होनेपर अथवा 'संगव'-स्पर्श एवं संगवपर्यन्त नहीं होनेपर भी पूर्वदिन कर लेना प्रशस्त है।

'तिथिशुद्धि' और पंचांगस्थ तिथ्यादिके सम्बन्धमें ज्योतिषशास्त्र एवं धर्मशास्त्रालम्बित निर्णय यह निर्देश देता है कि दृक्सिद्धान्तानुसार यन्त्रवेध 'दूरबीनादि' द्वारा 'ग्रहण' आदिके सम्बन्धमें ग्राह्य है, परंतु तिथ्यादिके सम्बन्धमें अथवा अदृष्ट फल स्वर्ग-नरक अथवा प्रेत-पितृ आदिके कर्ममें श्रुत्युक्त आर्षमान ही प्रशस्त है। धर्मसम्राट् स्वामी करपात्रीजीने अपने ग्रन्थ धर्मकृत्योपयोगी तिथ्यादिनिर्णयमें भी इसका समर्थन किया है। यथा—

व्यासवचनानुसार—

यन्त्रवेधादिना ज्ञातं यद्बीजं गणकैस्ततः।
ग्रहणादि परीक्षेत न तिथ्यादि कदाचन॥

पुनश्च—

अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं निर्बीजार्कोक्तमेव हि।
प्रमाणं श्रुतिवद् ग्राह्यं कर्मानुष्ठानतत्परैः॥

—इत्यादि आर्ष वचनों एवं ज्योतिषशास्त्रके मान्य ग्रन्थोंके अनुसार पितृकार्य तथा देवकार्य आदिमें धर्मशास्त्रोक्त कालाकालकी गणनापूर्वक ही 'विहित काल' में किया गया कर्म सफलता देता है।

'नृसिंहपारिजात' के वचनानुसार—

पैत्र्यादिकार्याणि च ब्रह्मपक्षे सौरेण कुर्याद् व्रतयज्ञदीक्षाम्।
आर्येण विष्णुव्रतधर्मकादि प्रोक्तं तथा व्यासवसिष्ठमुख्यैः॥

'माधवीय' में भी लिखा है—

'ब्राह्मेण पितृकार्याणि......' तदतिरिक्त शुद्धकाल 'विहितकाल' में श्राद्धादिसे पितृगण प्रसन्न होते हैं, तद्विपरीत दृक्तुल्य तिथ्यादिके मानसे श्राद्धकालका निर्धारण करनेसे पितृशाप, पुण्यक्षय एवं दुर्गतिकी प्राप्ति होती है—ऐसे निर्वचनोंकी अनदेखी नहीं करनी चाहिये—श्राद्धसे पितरोंकी तृप्ति होती है। श्राद्ध भंग होनेसे पितरोंका कोप होता है। उसके लिये जो मान्य वचन है, तदनुसार तिथ्यादिका भी ग्राह्य-अग्राह्य आदि मानना चाहिये।

'दृक् सिद्धान्त' निषेध—

दृक्सिद्धखेटग्रहसाधितासु कुर्वन्ति केचित्तिथिषु प्रमादात्।
श्राद्धादिकं तत्पितृशापतस्ते पुण्यक्षयं दुर्गतिमाप्नुवन्ति॥

सूर्यसिद्धान्तमें प्रशस्ततिथ्यादिके विषयमें कहा गया है—

तथापि सन्तो बहवोऽत्र धार्मिकाः पुरातनाचारमथाजहन्तः।
सूर्यांशजोक्तार्जितकाल एव कर्माणि कुर्वन्ति सुखं लभन्ते॥

पार्वणके लिये 'कुतप' काल प्रशंसनीय है—

'एतच्च पार्वणश्राद्धं कुतुपादिमुहूर्तपञ्चके कार्यम्।'

कालके विभागसे दिनको ५ भागोंमें बाँटा गया है—प्रातः, संगव, मध्याह्न, अपराह्न तथा सायाह्न।

तृतीय मध्याह्नकालव्यापिनी तिथि ज्योतिषद्वारा निर्णीत होनेपर पार्वणके योग्य होती है। यथा—**'दिनद्वयेऽप्यपराह्णव्याप्तौ तु पूर्वैव ग्राह्या।'** आदि समस्त वचनोंमें श्राद्धाङ्ग कर्मकी सफलतामें 'मुहूर्त—श्राद्धकाल' की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। एक बात और ध्यान देनेयोग्य है। तीन बातें श्राद्धमें वर्ज्य कही गयी हैं—

१. श्राद्धकर्ममें त्वरा—शीघ्रता न करें। अनावश्यक विस्तार न हो, लेकिन अत्यधिक शीघ्रतासे वाक्यभ्रंश होनेसे पितृगण रुष्ट होते हैं।

२. श्राद्धकर्ताको श्राद्ध करके यात्रा नहीं करनी चाहिये।

३. श्राद्धकर्ता एवं भोक्ताके उदरमें श्राद्धान्नभोजनके निमित्त पितृगणोंका निवास रहता है, अतः श्राद्ध-भोजनोपरान्त मैथुन पितरोंको कष्ट देता है, इसलिये निषिद्ध है। उसके कारण कर्ताको दुःख भोगना पड़ता है। धर्मशास्त्रीय विधि-निषेधात्मक श्रुतिस्मृत्युक्त आचार-विचार-व्यवहारयुक्त व्यक्तित्व एवं सदाचारपरायण व्यक्ति भगवान्‌की कृपाका पात्र बन जाता है। अतः श्राद्धादिमें ज्योतिषशास्त्रकी काल-विधिका अतिक्रमण या लोप नहीं करना चाहिये।

श्रीरामचरितमानसमें स्वप्न-प्रसंग

(श्रीमदनगोपालजी)

निद्रावस्थामें हम सभी स्वप्न देखते हैं। यह एक रहस्यमय विषय है। निद्रित-अवस्थामें स्वप्न-परियाँ हमें किसी दूर देशमें ले जाती हैं। इस विचित्र देशकी सारी बातें ही निराली हैं। हमें विचित्र-विचित्र दृश्य दिखायी देते हैं। कभी-कभी हम अपनेको ही रोते हुए, हँसते हुए या गाते हुए देखते हैं। जाग्रत्-अवस्थामें आते ही स्वप्न-परियाँ फुर्रसे एकके बाद एक उड़ जाती हैं। हम देखे हुए स्वप्नोंको पूरी तरह याद भी नहीं रख सकते। कुछ ही स्वप्न, जिनका स्पष्ट प्रभाव मनपर पड़ता है, हमें याद रह जाते हैं। हमें प्रतीत तो यह होता है कि हमने सारी रात स्वप्न देखनेमें बितायी है, परंतु वास्तवमें स्वप्न कुछ ही क्षणोंका होता है। अधिकांश स्वप्न निरर्थक और असत्य होते हैं, जैसा कि श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीने स्वयं वर्णन किया है—

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

परंतु कुछ स्वप्न आगामी दुःखपूर्ण या सुखपूर्ण प्रसंगोंके परिचायक होते हैं और प्रायः भविष्यमें सत्य निकलते हैं। शुद्ध और निर्मल चित्तवाले सज्जनोंके मनमें प्रायः भावी घटनाओंकी प्रतिच्छाया पड़ती है और वे इन घटनाओंके सूचक स्वप्न देखते हैं।

श्रीरामचरितमानसमें वर्णित स्वप्न इसी कोटिके हैं।

सर्वप्रथम शिव-पार्वतीके विवाह-प्रसंगमें माता पार्वतीद्वारा स्वप्न देखे जानेका वर्णन है। दक्षकन्या सती अपने पति शिवकी आज्ञा न मानकर पिताके यज्ञमें भाग लेने गयीं। वहाँ शिवका अपमान देखकर उन्होंने योगाग्निद्वारा शरीरका परित्याग कर दिया। भगवान् शिव एकाकी रह गये। सतीने ही प्राणेश्वर शिवसे पुनर्मिलनके लिये पर्वतराज हिमाचलके गृहमें पार्वतीरूपसे अवतार ग्रहण किया। प्रभुकी इच्छावश देवर्षि नारद हिमाचलके यहाँ गये। पार्वतीके भविष्य-वर्णनके साथ ही उन्होंने उमा-महेश्वरके सुखद मिलनका भी संकेत किया। साथ ही अपने स्वभावके अनुरूप शिवके अशिव वेषका अतिरंजित वर्णन उन्होंने किया। पुत्रीके अमंगलकी कल्पनासे शंकित होकर हिमाचल-पत्नी मैना गिरिजाको समझाने लगीं। जगज्जननी गौरीने माताके बोधके हेतु अपनेद्वारा देखे हुए स्वप्नका वर्णन करके उनके मनका क्षोभ दूर किया और उसीके अनुसार वे तपमें प्रवृत्त हुईं। गोस्वामीजीने लिखा है—

सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि॥
करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥
तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥
मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता॥
बेदसिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ॥

यह स्वप्न भविष्यमें सत्य निकला। गिरिकन्या पार्वतीके घोर तपने शम्भुके आसनको हिला दिया। हिमकन्याकी दृढ़ प्रीतिके फलस्वरूप श्रीशंकर और पार्वतीका पुनर्मिलन हुआ।

दूसरे स्वप्नप्रसंगमें कैकेयीद्वारा स्वप्न देखे जानेका विवरण है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कैकेयीका स्वप्न सत्य तो अवश्य हुआ, परंतु विकारयुक्त मानसवाली होनेके कारण उसने उस स्वप्नका आशय गलत समझा। स्वप्न वास्तवमें उसके पति राजा दशरथकी मृत्यु, प्रियपुत्र भरतका क्षोभ और पुरवासियोंकी उसके प्रति घृणाका परिचायक था। श्रीमद्गोस्वामीजी कैकेयीके मुखसे मन्थराके प्रति कहलाते हैं—

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥

इसीके साथ-साथ कैकेयीनन्दन भरतने अपने मामाके यहाँ निवास करते हुए दुःस्वप्नोंका अवलोकन किया। वे शुद्ध और निर्मल हृदयके महात्मा पुरुष थे। अतएव वे उनका मतलब समझ सके। साथ ही उनके निवारणार्थ उन्होंने प्रयत्न भी किया। यह प्रसंग बड़ा करुण है। भरतजीके जीवन-सर्वस्व भगवान् श्रीराम जगज्जननी सीता और प्रिय भ्राता लक्ष्मणसहित पिताके आज्ञा-पालनहेतु वनको चले जाते हैं। अयोध्यामें महान् शोक छाया हुआ है। श्रीरामकी विरह-ज्वालामें दग्ध होकर महाराज दशरथ प्राणत्याग कर देते हैं। इस दुर्घटनाकी प्रतिच्छाया भरतजीको, जो अयोध्यासे सहस्रों योजन दूर केकयदेशमें अपने ननिहालमें हैं, नित्यप्रति स्वप्नमें दीखती है। जबसे इस दुर्घटनाका सूत्रपात हुआ है, तभीसे उन्हें भयंकर स्वप्न आने लगते हैं। उनका साधु-हृदय शंकित हो उठता है। दुःस्वप्नके परिहारहेतु वे नित्यप्रति शिवार्चन और दान-पुण्य करते हैं। मानसकारने इस प्रसंगका निम्नलिखित प्रकारसे वर्णन किया है—

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥
बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ॥

इसके पश्चात् हुई घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि श्रीभरतजीका स्वप्न बिलकुल सत्य था।

इसके अनन्तर जगज्जननी सीताजीके स्वप्नका वर्णन है—भरतजी ननिहालसे अयोध्या पधारे। अपने प्राणधन

श्रीरामके वनगमनका समाचार सुन उनके हृदयपर वज्रपात हुआ। प्रिय भ्राताका वनगमन और पिताका मरण केवल उनके कारण हुआ, इसकी कल्पना करके उनका हृदय रो उठा। वे साधुपुरुष तुरन्त ही मन्त्रणा करके श्रीरामको लौटा लानेके उद्देश्यसे चित्रकूटकी ओर चल पड़े। भगवान् राम उस समय चित्रकूटमें पर्णकुटी बनाकर निवास कर रहे थे। भरतजीके आगमनकी घटनाको सीताजीने अपने स्वप्नमें देखा और जागनेपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे उसका वर्णन किया—

उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन॥
लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥

यह दुर्घटना, जिसकी छाया सीताजीने स्वप्नमें देखी, श्रीराम-भरतादिके आगामी मिलापकी परिचायक थी। इस समयतक महाराज दशरथ परलोक सिधार चुके थे, परंतु श्रीराम इत्यादिको इसका पता नहीं था। अत: जब सीताजीने महाराज दशरथकी पत्नियों अर्थात् अपनी सासोंको मलिन-मन, दुखी तथा और ही प्रकारकी अर्थात् विधवा-वेषमें देखनेका हाल श्रीरामसे कहा, तब उन्होंने पिताके अमंगलकी आशंकासे सोच किया। उनके नेत्र अश्रुपूरित हो गये। धर्मशास्त्रमें दु:स्वप्नोंके परिहारहेतु उल्लिखित विधिद्वारा उन्होंने इस स्वप्नका परिहार करना चाहा। तदनुसार—

अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

अर्थात् भाई-समेत स्नानकर शिवपूजन किया और साधु पुरुषोंका सम्मान किया। यह घटना, जो सीताजीने देखी थी, श्रीभरतजीके स्वप्नकी ही भाँति भूतकालमें घटित हो चुकी थी। महाराज दशरथकी पत्नियाँ काफी समय पूर्व पतिका निधन हो जानेसे मलिन-मन, दुखी और विधवा हो चुकी थीं। केवल भरतमिलापकी घटना स्वप्न देखे जानेके कुछ काल बाद ही घटित हुई।

अन्तिम स्वप्न-प्रसंगमें राक्षसी त्रिजटाद्वारा स्वप्न देखे जानेका विवरण मिलता है। त्रिजटा लंकामें निवास करनेवाली रावणकी दासी थी। पूर्वजन्मके संस्कारोंके कारण वह भले विचारोंकी थी। श्रीराम-जानकीके चरणोंमें उसका स्वाभाविक स्नेह था। यही कारण है कि उसका देखा हुआ स्वप्न भी शत-प्रतिशत सत्य हुआ।

जब दशानन रावण सीताको साम और दामकी नीतिसे समझाकर हार गया, तब उसने तीसरी (दण्डकी) नीतिका आश्रय लेना चाहा। भयंकर तलवार निकालकर वह सीताको मारने दौड़ा। उस समय राजमहिषी मन्दोदरीने उसके चरण पकड़कर विविध प्रकारसे समझा-बुझाकर उसका रोष शान्त किया। रानीके बाधा देनेपर रावणने सीताका वध तो नहीं किया, परंतु बहुत-सी दुष्टा राक्षसियोंको बुलाकर उन्हें सीताको त्रास देनेकी आज्ञा दे दी। वे मायाविनी निशाचरियाँ जगन्माता सीताकी महिमा न जानते हुए उन्हें विविध प्रकारके मायामय भयंकररूप दिखाकर डराने लगीं। सीता भयसे विह्वल हो गयीं। त्रिजटाने यह दशा देखकर सीताके दु:खका निवारण करनेके हेतु अपना स्वप्न राक्षसियोंको सुनाया। गोस्वामीजी लिखते हैं—

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। रामचरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥

स्वप्न-सम्बन्धी फलादेश बतानेवाली पुस्तकोंमें ऐसे स्वप्नका विवरण और फल निम्नलिखित रूपसे लिखा है—

स्वप्नेषु नग्नान् मुण्डांश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान्।
व्यङ्गांश्च विकृतान् कृष्णान् सपाशान् सायुधानपि॥
स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पञ्चताम्।

जो पुरुष अथवा स्त्री स्वप्नमें विकृत-अंग, विकृत-वेश, मुण्डित, लाल अथवा काला वस्त्र पहने हुए अथवा नगन होकर दक्षिण दिशा अर्थात् यमराजकी

दिशाकी ओर जाती दिखायी देती है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है।

त्रिजटाने उन राक्षसियोंको इस प्रकार भयभीतकर सीताको त्रास देनेसे निवृत्त किया। त्रिजटाके स्वप्न और पूर्वलिखित स्वप्नोंमें अन्तर यह है कि पहले दोनों स्वप्नोंमें प्राय: ऐसी घटनाओंकी प्रतिच्छाया थी, जो घटित हो चुकी थीं, जबकि त्रिजटाद्वारा भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाओंका वर्णन किया गया है।

मानसमें वर्णित उपर्युक्त सभी स्वप्न सर्वथा सत्य और आगामी घटनाओंके परिचायक सिद्ध हुए।

विलक्षण ज्योतिष-विद्या—'हाजरात'

(डॉ० श्रीश्याममनोहरजी व्यास)

लगभग चालीस वर्ष पुरानी सच्ची घटना है। उदयपुर जिलेके एक कस्बेमें मैं राजकीय सीनियर सेकेण्डरी विद्यालयमें प्राचार्यके पदपर कार्यरत था। वहाँ मेरे दूरके एक सम्बन्धी थे, जिनके घर अक्सर मैं जाया करता था। उनके पड़ोसमें ही एक ज्योतिषी रहते थे। वे परलोकगत आत्माओंसे सम्पर्क स्थापित करवानेका भी दावा करते थे। विज्ञानका स्नातक होनेके कारण मैं उनकी बातोंपर कम ही विश्वास करता था। मेरे सम्बन्धीके पिताजी भीलवाड़ा (राजस्थान) जिलेके एक गाँवमें अचानक असाध्य रोगसे पीड़ित हो गये। कभी-कभी उनकी तबियतका समाचार आ जाया करता था, लेकिन कुछ दिनोंसे उस गाँवसे कोई समाचार नहीं आया था। हमने सोचा कि अब ज्योतिषीकी विद्याकी परीक्षा ली जाय और मैं अपने सम्बन्धीके साथ ज्योतिषीके घर गया। उनसे निवेदन किया कि वे अपनी तान्त्रिक साधनाके द्वारा अमुक गाँवमें सम्बन्धीके बीमार पिताकी बीमारीका समाचार मालूम करें।

उन्होंने हमारी प्रार्थना मान ली और कहा कि इसके लिये वे 'हाजरात' (सम्मोहन विद्या)-का प्रयोग करेंगे। उन्होंने हमसे भीमसेनी काजल और शुद्ध सरसोंका तेल मँगवाया।

मैंने दोनों वस्तुएँ लाकर उन्हें दे दीं। सन्ध्याके समय एक कमरेमें प्रयोग किया गया। ज्योतिषीजी अपने एक बारह वर्षके लड़केको लाये थे। आवश्यक सामग्री कमरेमें जमा कर देनेके पश्चात् उन्होंने उस बालकको साफ-सुथरी जगहपर बिठाया और उसके बायें हाथके अँगूठेके नाखूनपर काला काजल (तेल एवं अन्य मन्त्र-सिद्ध औषधियोंके साथ) लगाया।

तदनन्तर उन्होंने कुछ मन्त्रोच्चारण किया। इसके पश्चात् ज्योतिषीने बालकको रंगीन नाखूनको देखनेको कहा। बालक बराबर नाखूनकी ओर देखता रहा। उन्होंने बालकसे पूछा—'क्या देखते हो?'

बालक मानो सम्मोहित होकर कहने लगा—'मैदान देख रहा हूँ।'

ज्योतिषी—'अच्छा अमुक गाँवमें पहुँच जाओ।'

बालक—'हाँ पहुँच गया।'

ज्योतिषी—'अमुक व्यक्तिके घर पहुँचो।'

बालक—'हाँ, आ गया।'

ज्योतिषी—'अच्छा बताओ, इनके पिताजीकी तबियत कैसी है?'

बालक—आज तो कुछ ठीक है, पर दो दिन बाद प्रात: १० बजे ये स्वर्ग सिधार जायेंगे।

इसके पश्चात् तान्त्रिक क्रिया समाप्त कर दी गयी। यह अशुभ जानकारी मिलनेपर मेरे सम्बन्धी तुरंत अपने गाँव पहुँचे। ठीक दो दिन पश्चात् काफी इलाज करवानेके बावजूद भी उनके पिताजीका निधन हो गया।

यह घटना अक्षरश: सत्य है। अध्यात्मविज्ञानके अनुसार ज्योतिषीने बालकके अन्तर्मन (अवचेतन)-को सम्मोहन एवं तन्त्र-साधनाद्वारा अधिक क्रियाशील बना दिया था, जिससे उसे त्रिकालदर्शिताकी अनुभूति हुई थी। दूरानुभूति एवं भविष्य-दर्शनकी यह चामत्कारिक घटना मेरे लिये सदैव अविस्मरणीय रहेगी।

मुगल बादशाह जहाँगीरद्वारा राशियोंको सिक्कोंपर स्थान

(डॉ० मेजर श्रीमहेशकुमारजी गुप्ता)

[प्रस्तुत लेखसे यह परिलक्षित होता है कि जहाँगीर, जो मुगलबादशाह था, उसकी भी भारतीय ज्योतिषमें आस्था थी। उसने सभी राशियोंपर सिक्के निकाले। यहाँ कुछ विवरण प्रस्तुत है।—सम्पादक *]*

ज्योतिषशास्त्रका हमारे जीवनमें विशेष स्थान है। यह कर्तव्य एवं पुरुषार्थ करनेकी प्रेरणा देता है। सच्चे मार्गको दिखाता है, हमारा जन्म जिस समय होता है, उस समयके सारे वातावरणका प्रभाव हमारे जीवनमें पड़ता है और उस जन्म-समयके हिसाबसे हमारी एक राशि होती है। राशिको हिन्दुस्तानमें सभी मानते हैं। मुगलशासक जहाँगीर भी इसमें विश्वास करते थे।

मुगलशासक जहाँगीर अपने राशि-चिह्न (Zodiac signs)-वाले सिक्कोंके लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। ऐसे सिक्के जहाँगीर बादशाहने अपने शासनके तेरहवें सालमें सोने, चाँदीमें निकाले। इन सिक्कोंपर फारसी माहके नामके स्थानपर उस राशिका चिह्न अंकित किया गया। यह विचार स्वयं जहाँगीरका था। ऐसा उसने स्वयं अपनी आत्मकथा 'तुजुके-जहाँगीरी' में लिखा है। ये सिक्के बहुत कम मात्रामें बनाये गये। बहुत कम संग्रहालयोंमें इनका पूरा सेट उपलब्ध है। ये सिक्के जहाँगीरके शासन-कालमें आखिरतक चलते रहे, लेकिन जैसे ही जहाँगीरका बेटा शाहजहाँ गद्दीपर बैठा, उसने इन सिक्कोंके उपयोग एवं रखनेपर मौतकी सजाका ऐलान करवा दिया एवं कहा कि इनको राजकीय खजानेमें वापस जमा करा दिया जाय। इसलाममें जानदार वस्तुओंके चित्र आदिको स्थान नहीं दिया जाता। जो सिक्के लोगोंने डरके मारे अपने घरोंमें छिपा दिये थे या पूजाकी थैलीमें डाल दिये थे, वे ही सिक्के बच गये। अतः ये अत्यन्त दुर्लभ हैं।

	हिन्दी	उर्दू	अँगरेजी
क्र०	राशिका नाम	महीनेका नाम	राशिका नाम
१.	मेष	फरवरदीन	ऐरीज
२.	वृषभ	अर्दिबिहिस्त	टॉरस
३.	मिथुन	खुरदाद	जेमिनि
४.	कर्क	तीर	केन्सर
५.	सिंह	अमरदाद	लिओ
६.	कन्या	शहरेवार	वर्गो
७.	तुला	मिहर	लिब्रा
८.	वृश्चिक	आबान	स्कारपिओ
९.	धनु	अजर	सेजिटेरियस
१०.	मकर	दी	केप्रिकारनस
११.	कुम्भ	इस्फन्दरमुज	ऐक्वेरीयस
१२.	मीन	बहमन	पिसीज

जहाँगीरके राशिचिह्नके सिक्के

मेष (Aries)

वृषभ (Taurus)

मिथुन (Gemini)

कर्क (Cancer)

सिंह (Leo)

कन्या (Virgo)

तुला (Libra)

वृश्चिक (scorpio)

धनु (Sagittarius)

मकर (Capricornus)

कुम्भ (Aquarius)

मीन (Pisces)

ज्योतिषशास्त्रका इतिहास

[ग्रन्थ और ग्रन्थकार]

'प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं'

ज्योतिषशास्त्रका संक्षिप्त इतिहास

अभ्युदय एवं निःश्रेयसकी समग्र ज्ञानराशि वेदोंमें निहित है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंकी ऋतम्भरा प्रज्ञाका दिव्य दर्शन एवं आर्षवाणी वेदोंमें मन्त्ररूपमें प्रतिष्ठित है। ऋक्, यजुष्, साम तथा अथर्वरूपसे प्रविभक्त सशाख वेद-चतुष्टयी; उनका ब्राह्मणभाग, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदांग-प्रविभाग वेद शब्दका प्रतिपाद्य है। **'वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः'** (वेदांगज्योतिष)—इस वेदांग-वचनसे यह ध्वनि व्यंजित है कि मूलतः वेदोंका प्रवर्तन यज्ञ-सम्पादनके लिये हुआ; क्योंकि वे सर्वगत परमात्मा यज्ञमें प्रतिष्ठित रहते हैं—**'तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्'** (गीता ३। १५)। यह व्यापक यज्ञ कालाधीन है और वह अमूर्त तथा मूर्त कालतत्त्व कालातीत परमेश्वरका ही स्वरूप है। अतः उसके संज्ञान तथा उसकी उपलब्धिके लिये वेदोंमें काल एवं कर्मका निर्वचन करनेवाले ज्योतिरूप विज्ञान ज्योतिषशास्त्रका यत्र-तत्र प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूपसे प्रतिफलन हुआ है। शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द तथा ज्योतिषरूप वेदपुरुषका प्रकाशमय नेत्र ज्योतिषशास्त्रको ही कहा गया है—**'वेदस्य निर्मलं चक्षुः'**। भूः, भुवः तथा स्वर्लोककी गतिका नियामक यह ज्योतिषशास्त्र आर्ष ऋषियोंकी दृष्टिका विषय रहा है। इसीलिये स्फुट एवं अस्फुट रूपमें वह वहाँ व्यक्त है। कालके समस्त अवयवों, पृथ्वी-आकाश एवं नक्षत्रमण्डलके सौरादि ग्रहोंकी गतियों तथा उनसे होनेवाले प्रभावकी चर्चा संहिताओं तथा ब्राह्मणभागमें उपलब्ध है। मधु, माधव, शुक्र आदि बारह मासोंकी चर्चा तथा उनमें विहित कर्मानुष्ठानों आदिका वर्णन तैत्तिरीयसंहितामें निर्दिष्ट है। वैदिक वाङ्मयमें ज्योतिर्विज्ञानके मूल सिद्धान्त विद्यमान हैं। वेदार्थके सम्यक् अवबोधके लिये ही वेदांगशास्त्र उद्बुद्ध हुआ और उसमें ज्योतिष-अंग विशेष महत्त्वपूर्ण है। जैसे नेत्रहीनके लिये सब कुछ अन्धकारमय है, वैसे ही ज्योतिषरूपी नेत्रके बिना वेदका सम्यक् दर्शन सम्भव नहीं। अतः इस शास्त्रकी विशेष उपयोगिता है। कल्प नामसे अभिहित वेदांगके अन्तर्गत श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्बसूत्र आते हैं। इनमें मुख्य रूपसे धर्मशास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र ही प्रकारान्तरसे वर्णित हैं। यज्ञादिके मण्डप आदिकी संरचनाका शास्त्र—शुल्बसूत्र ज्योतिषके रेखागणितका ज्ञान कराता है। शेष तीन सूत्रग्रन्थोंमें श्रौत-स्मार्तकर्मकी मीमांसा ज्योतिषके परिप्रेक्ष्यमें की गयी है। धर्मसूत्र तो ज्योतिषकी आचारमीमांसा है। धर्मसूत्रोंका ही विस्तार मनु, याज्ञवल्क्यादिकी स्मृतियोंके रूपमें हुआ है। वहाँ ज्योतिषके विविध पक्ष निरूपित हैं।

वेदांगज्योतिष नामसे सम्प्रति तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं—(१) ऋग्ज्योतिष, (२) याजुषज्योतिष तथा (३) अथर्वज्योतिष। श्रीलगधाचार्यको वेदांगज्योतिषका प्रवक्ता आचार्य कहा गया है।

ऋग्ज्योतिषमें ३६ श्लोक है, याजुषज्योतिषमें ४४ श्लोक हैं (इसका अधिकांश भाग ऋग्ज्योतिषसे साम्य रखता है) तथा अथर्वज्योतिषमें १६२ श्लोक हैं।

पुराणेतिहास-ग्रन्थोंमें ज्योतिर्मीमांसा—पुराण-शास्त्रमें वेदोंका उपबृंहण है। ज्योतिषके जो मूलतत्त्व वेदोंमें समाहित हैं, उनका विस्तार पुराणोंमें हुआ है। पुराण संख्यामें अठारह हैं और ये भगवान् वेदव्यासद्वारा उद्भूत हैं। पुराणोंमें भी नारदपुराण, गरुडपुराण, अग्निपुराण, विष्णुपुराण और विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें ज्योतिषका विशेष वर्णन हुआ है। नारदपुराणका त्रिस्कन्धज्योतिष तो प्रसिद्ध ही है। गरुडपुराणमें भी सामुद्रिक शास्त्र, स्वरोदयशास्त्र एवं शकुनशास्त्रका निरूपण है। अग्निपुराण तो विश्वकोश ही है। पुराणोंका प्रमुख प्रतिपाद्य ज्योतिःसन्निवेश तथा

भुवनकोश-वर्णन है। भागवत, विष्णु आदि पुराणोंमें भूगोल एवं खगोल, सूर्यादि ग्रहोंकी गति, शिशुमारचक्र आदिका विस्तारसे वर्णन हुआ है। ऐसे ही वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत आदिमें भी ज्योतिषकी बहुत-सी बातें आयी हैं। महाभारतके लिये तो कहा गया है कि **'यन्न भारते तन्न भारते'** अर्थात् महाभारतमें सभी विषय वर्णित हैं, जो इसमें नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं है।

ज्योतिषके उपदेष्टा आचार्य—ज्योतिषशास्त्रके आचार्यके रूपमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा प्रतिपादित हैं। उनका ज्योतिषशास्त्र पैतामहशास्त्र कहलाता है। इस ज्योतिषशास्त्रको उन्होंने नारदजीको प्रदान किया और फिर परम्परासे लोकमें इसका अनुवर्तन हुआ। दूसरी परम्पराके अनुसार इस शास्त्रके उद्भावक भगवान् सूर्य हैं, उन्होंने इसे मयको प्रदान किया, फिर लोकमें इसका विस्तार हुआ। कश्यपसंहिता, पराशरसंहिता तथा नारदसंहितामें ज्योतिषके प्रवर्तक अठारह (मतान्तरसे उन्नीस) आचार्य बताये गये हैं; जिनके नाम इस प्रकार हैं—सूर्य, पितामह (ब्रह्मा), व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, रोमश, पौलिश, च्यवन, यवन, भृगु तथा शौनक।

इस प्रकार ज्योतिषका प्राचीन इतिहास अत्यन्त समृद्ध तथा गौरवशाली रहा है। ज्योतिषशास्त्रके संहिता, होरा तथा सिद्धान्त—इन तीनों स्कन्धोंसे सम्बद्ध अत्यन्त महत्त्वके ग्रन्थोंकी रचना होती रही है। जैनाचार्योंका भी इस दिशामें महत्त्वपूर्ण योगदान है। सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करण्डक आदि प्राचीनकालीन मुख्य ग्रन्थ हैं।

होराशास्त्रके अन्तर्गत रमल, प्रश्न तथा स्वप्नविज्ञानपर भी अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन हुआ है। आगे त्रिस्कन्धज्योतिषके प्रधान आचार्यों तथा उनकी रचनाओंका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया गया है—

(१) आर्यभट (प्रथम)—आर्यभट ही ऐसे प्रथम गणितज्ञ ज्योतिर्विद् हैं, जिनका ग्रन्थ एवं विवरण प्राप्त होता है। वस्तुतः ज्योतिषका क्रमबद्ध इतिहास इनके समयसे ही मिलता है। इनका गणितज्योतिषसे सम्बद्ध आर्यभटीय-तन्त्र प्राप्त है, यह उपलब्ध ज्योतिषग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन है। इसमें दशगीतिका, गणित, कालक्रिया तथा गोल नामवाले चार पाद हैं। इसमें सूर्य और तारोंके स्थिर होने तथा पृथ्वीके घूमनेके कारण दिन और रात होनेका वर्णन है। इनके निवासस्थानके विषयमें विद्वानोंमें मतैक्य नहीं है, कुछ लोग दक्षिणदेशके 'कुसुमपुर' को इनका स्थान बताते हैं तथा कुछ लोग 'अश्मकपुर' बताते हैं। इनका समय ३९७ शकाब्द बताया गया है। गणितज्योतिषके विषयमें आर्यभटके सिद्धान्त अत्यन्त मान्य हैं। इन्होंने सूर्य और चन्द्रग्रहणके वैज्ञानिक कारणोंकी व्याख्या की है और वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल आदि गणितीय विधियोंका महत्त्वपूर्ण विवेचन किया है।

(२) वराहमिहिर—भगवान् सूर्यके कृपापात्र वराहमिहिर ही पहले आचार्य हैं, जिन्होंने ज्योतिषशास्त्रको सिद्धान्त, संहिता तथा होराके रूपमें स्पष्टरूपसे व्याख्यायित किया। इन्होंने तीनों स्कन्धोंके निरूपणके लिये तीनों स्कन्धोंसे सम्बद्ध अलग-अलग ग्रन्थोंकी रचना की। सिद्धान्त (गणित)-स्कन्धमें उनकी प्रसिद्ध रचना है—पंचसिद्धान्तिका, संहितास्कन्धमें बृहत्संहिता तथा होरास्कन्धमें बृहज्जातक मुख्यरूपसे परिगणित हैं। इन्हें शकाब्द ४२७ में विद्यमान बताया जाता है। ये उज्जैनके रहनेवाले थे, इसीलिये ये अवन्तिकाचार्य भी कहलाते हैं। इनके पिता आदित्यदास थे, उनसे इन्होंने सम्पूर्ण ज्योतिर्ज्ञान प्राप्त किया। जैसे ग्रहोंमें सूर्यकी स्थिति है, वैसे ही दैवज्ञोंमें वराहमिहिरका स्थान है, वे सूर्यस्वरूप हैं। उनकी रचना-शैली संक्षिप्तता, सरलता, स्पष्टता, गूढार्थवक्तृता और पाण्डित्य आदि गुणोंसे परिपूर्ण है। इन्होंने तेरह ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं। इनका बृहज्जातक ग्रन्थ फलितशास्त्रका सर्वाधिक प्रौढ़ तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है, इसपर भट्टोत्पली आदि अनेक महत्त्वपूर्ण टीकाएँ हैं। आचार्य वराहमिहिरने इस विज्ञानको अपनी प्रतिभाद्वारा बहुत विलक्षणता प्रदान की। ये भारतीय

ज्योतिषशास्त्रके मार्तण्ड कहे जाते हैं। यद्यपि आचार्यके समयतक (नारदसंहिता आदिमें) ज्योतिषशास्त्र संहिता, होरा तथा सिद्धान्त—इन तीन भागोंमें विभक्त हो चुका था तथापि आचार्यने उन्हें और भी व्यवस्थितकर उसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। ज्योतिषके सिद्धान्त स्कन्धसे सम्बद्ध इनके पंचसिद्धान्तिका नामक ग्रन्थकी यह विशेषता है कि इसमें इन्होंने अपना कोई सिद्धान्त न देकर अपने समयतकके पूर्ववर्ती पाँच आचार्यों (पितामह, वसिष्ठ, रोमश, पौलिश तथा सूर्य)-के सिद्धान्तों (अभिमतों)-का संकलनकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इनकी बृहत्संहिता संहिता-स्कन्धका सबसे प्रौढ़ तथा मान्य ग्रन्थ है। इसमें १०६ अध्याय हैं। इसपर भट्टोत्पलकी टीका बड़ी प्रसिद्ध है। फलितज्योतिषका बृहज्जातक तो दैवज्ञोंका कण्ठहार ही है। इसमें २८ अध्याय हैं। इसमें स्वल्पमें ही फलितज्योतिषके सभी पक्षोंका प्रामाणिक वर्णन है। इसमें पूर्वप्रचलित पाराशरीय विंशोत्तरी दशाको न मानकर नवीन दशा-निरूपण दिया हुआ है। इस ग्रन्थका नष्टजातकाध्याय बड़े ही महत्त्वका है।

(३) पृथुयश—पृथुयश आचार्य वराहमिहिरके पुत्र हैं, इनके द्वारा विरचित 'षट्पंचाशिका' फलित-ज्योतिषका प्रसिद्ध ग्रन्थ है, इसमें सात अध्याय हैं।

(४) कल्याणवर्मा—इनका समय शकाब्द ५०० के लगभग है। इनकी लिखी सारावली होराशास्त्रका प्रमुख ग्रन्थ है। इन्हें गुर्जरदेश (गुजरात)-का बताया गया है। सारावलीका फलादेश अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है। इसमें ४२ अध्याय हैं। कहा जाता है कि इन्हें सरस्वतीका वरदान प्राप्त था। भट्टोत्पलने बृहज्जातककी टीकामें सारावलीके कई श्लोक उद्धृत किये हैं।

(५) लल्लाचार्य—लल्लाचार्यका ज्योतिषके सिद्धान्त स्कन्धसे सम्बद्ध 'शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र' ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनके समयके विषयमें मतभेद हैं, किंतु कुछ आचार्योंका कहना है कि ये ५०० शकाब्दके आसपास विद्यमान थे। इन्हें दाक्षिणात्य बताया गया है। इन्होंने रत्नकोष (संहिताज्योतिष) तथा जातकसार (होरास्कन्ध) नामक ग्रन्थोंका भी प्रणयन किया। लल्लाचार्य गणित, जातक और संहिता इन तीनों स्कन्धोंमें पूर्ण प्रवीण थे। शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रमें प्रधानरूपसे गणिताध्याय और गोलाध्याय—ये दो प्रकरण हैं। गणिताध्यायमें अनेक अधिकार (प्रकरण) हैं। भास्कराचार्यजी इनके प्रौढ़ ज्ञानसे विशेष प्रभावित थे।

(६) भास्कराचार्य (प्रथम)—इनका समय ५३० शकाब्दके आसपास माना गया है। इनके महाभास्करीय तथा लघुभास्करीय—ये दो ग्रन्थ हैं। आर्यभटीयका भी इन्होंने व्याख्यान किया था। ये लीलावतीके लेखक प्रसिद्ध भास्कराचार्यसे भिन्न हैं।

(७) ब्रह्मगुप्त—महान् गणितज्ञ आचार्य ब्रह्मगुप्त ब्राह्मसिद्धान्तका विस्तार करनेवाले हैं। इनका समय ५२० शकाब्द है। प्रसिद्ध भास्कराचार्यने इन्हें 'गणकचक्र-चूडामणि' कहा है। इन्होंने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त तथा खण्डखाद्य नामक करणग्रन्थका निर्माण किया। ये विष्णुके पुत्र हैं। ये गुर्जरप्रान्तके भिन्नमाल ग्रामके निवासी थे। इन्होंने गणितके क्षेत्रमें महान् सिद्धान्तोंकी रचना की और नवीन मत भी स्थापित किये। यह कहा जाता है कि तीन ही सिद्धान्त (गणितकी पद्धतियाँ) हैं—(१) आर्य, (२) सौर तथा (३) ब्राह्म और इनके क्रमशः तीन ही आचार्य भी हुए हैं—(१) आर्यभट, (२) वराहमिहिर तथा (३) ब्रह्मगुप्त। ये वेधविद्यामें अत्यन्त निपुण और असाधारण विद्वान् थे। इन्होंने बीजगणितके कई नियमोंका आविष्कार किया। इसीलिये ये गणितके प्रवर्तक कहे गये हैं। अलबरूनीने इनके गणितज्ञानकी बहुत प्रशंसा की है। ये आर्यभटसे उपकृत भी थे, किंतु खण्डखाद्यमें उनके अनेक मतोंका प्रबल विरोध भी इन्होंने किया है।

(८) श्रीधराचार्य—बीजगणितके ज्योतिर्विदोंमें श्रीधराचार्यका स्थान अन्यतम है, इनके त्रिशतिका (पाटीगणित), बीजगणित, जातकपद्धति तथा रत्नमाला आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, परवर्ती भास्कराचार्य आदि इनके सिद्धान्तोंसे बहुत उपकृत हैं।

(९) वित्तेश्वर (वटेश्वर)—'करणसार' नामक इनका ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ आर्यभटके सिद्धान्तोंका अनुगमन करता है।

(१०) मुंजाल—मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार आदि आठ प्रकरणोंमें विभक्त 'लघुमानस' करणग्रन्थके रचयिता मुंजालका ज्योतिष-जगत्‌में महान् आदर है। ये भारद्वाजगोत्रीय थे। अयनांशनिरूपणमें इनका विशिष्ट योगदान रहा है। प्रतिपाद्य विषय गणित होनेपर भी इस ग्रन्थकी शैली बड़ी रोचक तथा सुगम है।

(११) आर्यभट (द्वितीय)—इनका आर्यभटीय महासिद्धान्त नामक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनका ८७५ शकाब्दमें विद्यमान होना सिद्ध है। ये महान् गणितज्ञ हुए हैं। इन्होंने आर्यभट प्रथमके सिद्धान्तमें अनेक संशोधन किये हैं। इन्होंने संख्या लिखनेकी एक नवीन पद्धति बतायी है, जो आर्यभट प्रथमकी पद्धतिसे भिन्न है। इसे 'कटपयादि' पद्धति कहते हैं।

(१२) पृथूदक—ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तपर आचार्य पृथूदककी टीका अत्यन्त प्रसिद्ध है। भास्कराचार्य द्वितीयने अपने ग्रन्थोंमें इनकी चर्चा कई स्थानोंपर की है। ये कान्यकुब्जके निवासी थे, इनके पिताका नाम मधुसूदन था।

(१३) भट्टोत्पल—भट्टोत्पल प्रसिद्ध टीकाकार हैं। जिस प्रकार कालिदासके लिये मल्लिनाथ, भागवतके लिये श्रीधर तथा महाभारतके लिये नीलकण्ठ टीकाकार हुए; उसी प्रकार वराहमिहिरके लिये भट्टोत्पल हुए। इनका समय ८८८ शकाब्द निश्चित है। इन्हें काश्मीरका बताया गया है। इन्होंने ज्योतिषके अनेक ग्रन्थोंकी प्रौढ़ टीकाएँ लिखी हैं, यथा—आचार्य वराहमिहिरके योगयात्रा, बृहत्संहिता, बृहज्जातक; ब्रह्मगुप्तके खण्डखाद्य, पृथुयशके षट्पंचाशिका आदिकी टीकाएँ। यदि कहा जाय तो इनकी टीकाओंसे ही वराहमिहिरको इतनी प्रशस्ति मिली तो अत्युक्ति न होगी। प्रश्नसार, शकुनशास्त्र तथा रमलसार—इन ग्रन्थोंका भी इन्होंने प्रणयन किया। भट्टोत्पल महान् ज्योतिर्विद् हुए हैं।

(१४) श्रीपति—ज्योतिषशास्त्रके पाँच आचार्य इसकी भित्ति माने जाते हैं—चारके नाम इस प्रकार हैं—आर्यभट, वराहमिहिर, लल्लाचार्य तथा ब्रह्मगुप्त और इनमें पाँचवें श्रीपतिजी हैं। वराहमिहिरके ही समान इन्होंने भी ज्योतिषके तीनों स्कन्धोंपर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इनके सिद्धान्तशेखर, धीकोटिकरण, पाटीगणित, बीजगणित आदि सिद्धान्तस्कन्ध; रत्नमाला संहितास्कन्ध और जातकपद्धति तथा रमलपद्धति होराशास्त्रसे सम्बद्ध ग्रन्थ हैं। इनका समय १०वीं शती शकाब्द है। इनके पिताका नाम नागदेव था। ये काशीमें रहते थे।

(१५) श्रीधर—ये ज्योतिषशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान् थे, इनका समय १०वीं शती का अन्तिम भाग माना जाता है। इन्होंने गणितसार और ज्योतिर्ज्ञाननिधि संस्कृतमें तथा कन्नड़भाषामें जातकतिलक नामक ग्रन्थ लिखा है। इनके गणितसारपर एक जैनाचार्यकी टीका उपलब्ध है।

(१६) भोजराज (भोजदेव)—ये धारानगरीके राजा थे। इनके नामसे राजमृगांक, राजमार्तण्ड, आदित्यप्रताप, विद्वज्जनवल्लभ, रमलरत्न आदि अनेक ग्रन्थ हैं।

राजमृगांक ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तका करणग्रन्थ और राजमार्तण्ड मुहूर्तविषयक ग्रन्थ है। साहित्यजगत्‌में सरस्वतीकण्ठाभरण, शृंगारप्रकाश आदि इनके कई ग्रन्थ हैं। ये सिन्धुराजके पुत्र और मुंजके भ्रातृव्य हैं।

(१७) दशबल—ये वल्लभवंशी राजा थे। इनका करणकमलमार्तण्ड नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तानुसारी करणग्रन्थ है।

(१८) ब्रह्मदेव—इनका 'करणप्रकाश' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ये मथुरानिवासी चन्द्र ब्राह्मणके पुत्र थे। इनका समय शक १०१४ है।

(१९) शतानन्द—शतानन्दका 'भास्वतीकरण' प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ये जगन्नाथपुरीके रहनेवाले थे। यह ग्रन्थ वराहमिहिरके सूर्यसिद्धान्तके गणितके आधारपर है। करणग्रन्थोंमें भास्वतीकरणका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसपर कई संस्कृत टीकाएँ हैं। इस ग्रन्थमें तिथि, ध्रुवाधिकार आदि आठ अधिकार (प्रकरण) हैं।

(२०) सोमेश्वर—इनका समय १०५१ शकाब्द है। इनका मानसोल्लास (अभिलषितार्थचिन्तामणि) ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है।

(२१) भास्कराचार्य (द्वितीय)—वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्तके बाद इनके समान प्रतिभाशाली कोई ज्योतिर्विद् नहीं हुआ। इनका समय १०३६ शकाब्द है। ज्योतिषभास्कर भास्कराचार्यके सिद्धान्तशिरोमणि तथा करणकुतूहल—ये दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। सिद्धान्तशिरोमणि ज्योतिषसिद्धान्तका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसपर अनेक टीकाएँ हैं। सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ पाटीगणित (लीलावती), बीजगणित, ग्रहगणित तथा गोलाध्याय—इन चार भागोंमें विभक्त है। ये चारों भाग एक-एक ग्रन्थके समान हैं। आचार्य भास्करने गणित-ज्योतिषके सिद्धान्तोंका विस्तार तथा परिष्कार किया। लीलावतीपर अनेक टीकाएँ हैं। ज्योतिष-जगत्‌में इनका बहुत ही आदर है। इनके पाटीगणितके लीलावती नामकरणके विषयमें अनेक आख्यान कहे जाते हैं। कुछ विद्वानोंका कहना है कि लीलावती नामकी इनकी कन्या अत्यन्त विदुषी तथा स्वरूपवती थी, किंतु उसकी कुण्डलीमें अपरिहार्य वैधव्ययोगको देखकर इन्होंने उसका विवाह तो नहीं किया, किंतु उसकी सन्ततिके रूपमें इस ग्रन्थका निर्माण किया और लीलावती इसका नाम रखा। दूसरी कथाके अनुसार लीलावती इनकी भार्याका नाम था। उसके संतानहीनयोगको देखकर इन्होंने संतानके रूपमें इस ग्रन्थका प्रणयन किया और लीलावती इसका नाम रखा। ज्योतिषका थोड़ा-सा भी ज्ञान रखनेवाला ऐसा कोई नहीं होगा, जिसने लीलावती ग्रन्थका नाम न सुना होगा।

(२२) बल्लालसेन—ये गौडाधिपति लक्ष्मणसेनके पुत्र थे। इनकी कृति अद्भुतसागर बहुत ही प्रसिद्ध है और बहुत बड़ी है। यह वराहमिहिरके बृहत्संहिताके समान विषयोंका वर्णन करती है। इस ग्रन्थके आरम्भमें ही यह लिखा है कि इस ग्रन्थको लक्ष्मणसेनने लिखना प्रारम्भ किया, किंतु ग्रन्थ पूर्ण होनेसे पूर्व वे दिवंगत हो गये, अतः उनके पुत्र बल्लालसेनने इसे पूर्ण किया। इस ग्रन्थमें दिव्य, भौम, आन्तरिक्ष अद्भुतोंका वर्णन तथा उनकी शान्ति वर्णित है। इसमें बताया गया है कि लोगोंके अत्यन्त लोभके वशीभूत हो जाने, असत्यका व्यवहार करने, वेदादिशास्त्रोंमें नास्तिक्य बुद्धि रखने, अधर्मकी वृद्धि होने तथा लोगोंद्वारा अनेक प्रकारके निषिद्धाचरण करनेसे निश्चित ही अनेक प्रकारके अद्भुत (उपसर्ग—उत्पात) होते हैं और शान्ति करनेसे वे शान्त भी हो जाते हैं। इनका समय ११वीं शती शकाब्द है।

(२३) नरपतिदैवज्ञ—इनका बनाया हुआ नरपतिजयचर्या ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह संहिताके अन्तर्गत मुख्यरूपसे शकुनशास्त्रका ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें स्वरके द्वारा राजाओंके शुभाशुभ फल बताये गये हैं। इसे स्वरोदयशास्त्र भी कहते हैं। इसमें ६ अध्याय हैं।

(२४) कालिदासदैवज्ञ—इनका ज्योतिर्विदाभरण नामक प्रसिद्ध मुहूर्तग्रन्थ है। इसमें २० अध्याय हैं। ये रघुवंशादि काव्योंके प्रणेता कविवर कालिदाससे भिन्न हैं। विद्वानोंने इनका समय ११६४ शकाब्द स्थिर किया है।

(२५) केशवार्क—इनका विवाहवृन्दावन नामक मुहूर्तग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। ये भारद्वाजगोत्रीय औदीच्य ब्राह्मण थे। इनका स्थितिकाल ११६५ शक बताया गया है। ग्रहलाघवकार गणेशदैवज्ञकी इसपर टीका है।

(२६) महादेव—इनका ग्रहसिद्धि नामक प्रसिद्ध करणग्रन्थ है। महादेवी सारणी भी इसका नाम है। प्राचीन आचार्योंके सिद्धान्तोंको समझनेके लिये यह सारणी बहुत उपयोगी है। ये गौतमगोत्रीय ब्राह्मण थे, इनके पिताका नाम पद्मनाभ था। ये गोदावरीके निकटवर्ती प्रदेशके रहनेवाले थे। नृसिंहदैवज्ञने १४५० शकमें इस ग्रन्थकी टीका की है।

(२७) महेन्द्रसूरि—ये भृगुपुर-निवासी मदनसूरिके शिष्य थे। इन्होंने १२९२ शकाब्दमें 'यन्त्रराज' नामक एक करणग्रन्थकी रचना की। इस ग्रन्थमें पाँच अध्याय हैं, जिनके नाम हैं—गणिताध्याय,

यन्त्रघटनाध्याय, यन्त्रसंरचनाध्याय, यन्त्रशोधनाध्याय और यन्त्रविचारणाध्याय।

(२८) महादेव—कौडिन्यगोत्रीय श्रीबोपदेवजीके पुत्र महादेवने १२८९ शकाब्दमें 'कामधेनु' नामवाले करणग्रन्थकी रचना की। इसमें ३५ श्लोक और अनेक ग्रहगणितीय सारणियाँ भी हैं, जिनका उपयोग पंचांग बनानेके लिये होता है।

(२९) दामोदर—पद्मनाभके पुत्र दामोदरने 'भटतुल्य' नामक करणग्रन्थकी रचना की। यह ग्रन्थ आर्यभटमतानुसारी है। इनका समय १३३९ शकाब्द है।

(३०) वैद्यनाथ—इनका जातकपारिजात नामक होराशास्त्रका फलित ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें जातकसम्बन्धी सभी विषयोंका सांगोपांग विवरण दिया गया है। जातकपारिजातके प्रारम्भमें दिये गये विवरणसे ज्ञात होता है कि ये भारद्वाजगोत्रीय श्रीवेंकटेशके पुत्र थे। इनका समय १३५० शकके आसपास है।

(३१) गंगाधर—इन्होंने सूर्यसिद्धान्तके अनुसार 'चान्द्रमानाभिधानतन्त्र' नामक ग्रन्थकी रचना की। इस ग्रन्थमें चान्द्रमासके अनुसार ग्रहोंकी गति देखकर ग्रहस्पष्ट करनेकी रीति बतायी गयी है। ये सगरनगर-निवासी बताये गये हैं। इनके पिताका नाम चन्द्रभट्ट था। इनका समय १३५६ शक है। इन्होंने भास्कराचार्यकी लीलावतीकी टीका भी की है।

(३२) मकरन्द—वाराणसीमें निवास करनेवाले आचार्य मकरन्दने सूर्यसिद्धान्तके मतानुसार तिथि आदिके साधन तथा पंचांग-साधनके लिये 'मकरन्द' नामक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ बनाया है, जिसमें अनेक सारणियाँ उपलब्ध हैं, ये मकरन्दीय सारणीके नामसे विख्यात हैं। इन्होंने सूर्यसिद्धान्तमें बीज-संस्कार भी किया है। इनका जन्म-समय १३३० शकाब्द है। ग्रहलाघव-सारणी तथा मकरन्द-सारणी—ये दोनों बहुत ही उपयोगी हैं। मकरन्द-सारणीका अँगरेजीमें भी अनुवाद हुआ है। काशी तथा मिथिलाके अधिकांश पंचांग इस सारणीके आधारपर बनाये जाते हैं।

(३३) शार्ंगधर—शार्ंगधराचार्यने 'विवाहपटल' नामक होराशास्त्रका प्रसिद्ध ग्रन्थ बनाया है। इनका समय १४०० शकाब्द है।

(३४) केशव (द्वितीय)—केशव नामके एक दूसरे भी आचार्य हुए हैं, जिनका प्रसिद्ध ग्रन्थ विवाह-वृन्दावन है। प्रकृत केशवाचार्य ज्योतिषशास्त्रमें अत्यन्त प्रसिद्ध दैवज्ञ हुए हैं। ये ग्रहलाघवके कर्ता गणेशदैवज्ञके पिता हैं और ये वैद्यनाथके शिष्य तथा कमलाकरके पुत्र थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। उनमें ग्रहकौतुक, वर्षग्रहसिद्धि, गणितदीपिका, मुहूर्ततत्त्व, जातकपद्धति, ताजिकपद्धति आदि प्रमुख हैं। ये महान् वेधज्ञ भी थे। इनका समय १४१८ के आसपास है।

(३५) गणेशदैवज्ञ—ज्योतिषशास्त्रके इतिहासमें आचार्य गणेशदैवज्ञका अप्रतिम स्थान है। इनके बनाये तेरह ग्रन्थ हैं, जिनमेंसे ग्रहलाघव, तिथिचिन्तामणि, लीलावती-टीका, सिद्धान्तशिरोमणिविवृति, विवाहवृन्दावन-टीका आदि बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यह कहा जाता है कि ग्रहलाघवके ज्ञानके बिना ज्योतिषका ज्ञान शून्य ही है।

इनका समय १४४२ शकाब्द है। इनके पिताका नाम केशव तथा माताका नाम लक्ष्मी था। ये अभूतपूर्व प्रतिभासम्पन्न ज्योतिर्विद् थे।

(३६) ज्ञानराज—इनके 'सिद्धान्तसुन्दर' नामक गणित ग्रन्थ तथा 'ज्ञानराजजातक' नामक होराशास्त्रग्रन्थ—दोनों बड़े ही प्रसिद्ध हैं। सिद्धान्तसुन्दर ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्तके अनुसार निर्मित है। इसमें पहले गोलाध्याय है, तदनन्तर गणिताध्याय है। इन्होंने कई स्थलोंपर आचार्य भास्कर आदिके अभिमतकी आलोचना भी की है। इनका समय १४२५ शकाब्द है। इन्होंने बीजगणित ग्रन्थकी भी रचना की है।

(३७) सूर्य—ये अपने नामके अनुरूप ही थे। ज्योतिष-जगत्में ये सूर्यकी भाँति प्रकाशमान हैं। इन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। ये ज्ञानराजके पुत्र थे। सूर्यप्रकाश, लीलावतीटीका (गणितामृतकूपिका), श्रीपतिपद्धति गणित, बीजगणित, ताजिकालंकार,

सिद्धान्तशिरोमणिटीका, ग्रहविनोद, कविकल्पलता, भक्तिशतकम् आदि अनेक प्रौढ़ ग्रन्थोंका इन्होंने प्रणयन किया है। इनका जन्म १४३० शकाब्द है।

(३८) पीताम्बर—इनका 'विवाहपटल' नामक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिसमें विवाहसम्बन्धी सभी विषयोंका निरूपण हुआ है। इनका समय १४४४ शकाब्द है।

(३९) हरिभट्ट—इन्होंने 'ताजकसार' नामक होराशास्त्रका ग्रन्थ बनाया। इनका समय १४४५ शकाब्द है। यह ग्रन्थ मुख्यरूपसे मुहूर्तोंका निरूपण करता है।

(४०) शिवदास—इनका समय १४४६ शक है। इनका ज्योतिर्निबन्ध ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ धर्मशास्त्रीय विषयोंका तथा संस्कारों आदिके मुहूर्तोंका निरूपण करता है।

(४१) अनन्तदैवज्ञ—१४४० शकाब्दमें प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् नीलकण्ठ तथा रामदैवज्ञके पिता अनन्तदैवज्ञ एक महान् ज्योतिर्विद् हुए हैं। जातकपद्धति तथा कामधेनुगणितटीका इनके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ये विदर्भदेशीय ब्राह्मण थे और काशीमें निवास करते थे।

(४२) ढुण्ढिराज—आचार्य ढुण्ढिराजका ज्योतिर्विदोंमें विशेष आदर है। जातकाभरण, सुधारसकरण-चषक, ग्रहलाघवोदाहरण, ग्रहकलोपपत्ति, पंचांगफल, कुण्डकल्पलता आदि इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इनमें भी फलितशास्त्रसे सम्बन्धित जातकाभरण ग्रन्थकी विशेष प्रसिद्धि है। इसके फलादेश बहुत सटीक बैठते हैं। इनका समय १४६३ शकाब्द है। ये नृसिंहदैवज्ञके पुत्र थे।

(४३) नृसिंहाचार्य—ग्रहलाघवग्रन्थके प्रणेता गणेशदैवज्ञके भाई श्रीरामदैवज्ञके ये पुत्र थे। इनका समय १४८० शकाब्द है। इन्होंने 'मध्यमग्रहसिद्धि' नामक ग्रन्थ बनाया।

(४४) गणेशदैवज्ञ—पार्थपुरनिवासी ढुण्ढिराजके पुत्र गणेशदैवज्ञने ताजिकभूषणपद्धति ग्रन्थका निर्माण किया। इन्होंने अपने ग्रन्थमें यह सिद्ध किया है कि ताजिक-पद्धतिका मूल गर्गाचार्य, सत्याचार्य आदि प्राचीन भारतीय सिद्धान्तोंमें विद्यमान है। इनका समय १४८० शकाब्द है।

(४५) नारायण—अत्यन्त प्रसिद्ध एवं व्यापक रूपसे प्रयोगमें आनेवाले मुहूर्तशास्त्रका प्रौढ़ ग्रन्थ 'मुहूर्तमार्तण्ड' नारायण दैवज्ञकी ही रचना है। इस ग्रन्थका प्रणयनकाल १४९३ शकाब्द निर्दिष्ट है। ये टापर ग्रामनिवासी अनन्तदैवज्ञके पुत्र थे।

(४६) दिनकर—बृहत्खेटकसिद्धि, लघुखेटक-सिद्धि आदि ग्रन्थ इनके प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थोंमें ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तका परिपालन किया है। इनका समय १५०० शक है, ये कौशिकगोत्रीय थे।

(४७) गंगाधर—नारायणदैवज्ञके पुत्र गंगाधरने १५०८ शकाब्दमें ग्रहलाघवग्रन्थकी मनोरमा नामक टीकाका प्रणयन किया।

(४८) नीलकण्ठ—यह प्रसिद्ध है कि आचार्य नीलकण्ठ अकबरकी राजसभाके प्रधान पण्डित थे। ये अनन्तदैवज्ञके पुत्र रामदैवज्ञके बड़े भाई थे। इनके 'ताजिकनीलकण्ठी' तथा 'टोडरानन्द' ये दो ग्रन्थ हैं। ताजिकनीलकण्ठी अपनेमें ताजिकशास्त्रका सर्वाधिक प्रौढ़ एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है। वर्षकुण्डली तथा वर्षफलनिर्णयका यह अद्भुत ग्रन्थ है। ज्योतिषके साधकों तथा सिद्धों सभीके लिये ताजिकनीलकण्ठी अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। इसका विद्वानोंमें बहुत ही समादर है। इस ग्रन्थपर अनेक टीकाएँ हैं। इसमें संज्ञातन्त्र, वर्षतन्त्र और प्रश्नतन्त्र—ये तीन विभाग हैं। इसमें इक्कबाल, इत्थशाल, इशराफ, मणऊ, कम्बूल आदि अरबी भाषाके शब्दोंमें वर्णित विशिष्ट योग दिये गये हैं।

(४९) रामभट्ट (रामदैवज्ञ)—उपर्युक्त कथित अनन्तदैवज्ञके पुत्र तथा नीलकण्ठके अनुज रामदैवज्ञके 'मुहूर्तचिन्तामणि' ग्रन्थको जो ज्योतिष नहीं भी जानता है, वह भी इसके नामसे भलीभाँति परिचित है। मुहूर्तसम्बन्धी प्रायः सारा कार्य इस ग्रन्थके आधारपर ही होता आया है। यद्यपि मुहूर्तपर अनेक प्रौढ़ एवं बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं, किंतु जो प्रसिद्धि मुहूर्तचिन्तामणिको मिली, वह किसीको प्राप्त नहीं हो पायी। इसमें तिथि, वार,

नक्षत्र तथा मुहूर्तसम्बन्धी सभी बातें आ गयी हैं। इसमें गोविन्ददैवज्ञकी पीयूषधारा नामक टीका अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो काशीमें लिखी गयी। इनका समय १५१२ शकाब्द है।

(५०) विष्णु—गोदावरीक्षेत्रमें तैत्तिरीयशाखाध्यायी दिवाकरके पाँच पुत्रोंमें विष्णु दूसरे स्थानपर परिगणित हैं। इन्होंने १५३० शकाब्दमें सौरपक्षीय करणग्रन्थकी रचना की। इनकी ग्रहचिन्तामणिकी सुबोधिनी नामक व्याख्या भी अत्यन्त प्रसिद्ध है।

(५१) मल्लारि—दिवाकरके पुत्र मल्लारिने १५२४ शकाब्दमें ग्रहलाघवकी टीका की। गोलगणित तथा काव्यमें इनकी अबाध गति थी। इनकी ग्रहलाघवकी टीका अत्यन्त प्रसिद्ध है।

(५२) रंगनाथ—ये गणितज्योतिषके पटु विद्वान् थे। इन्होंने सूर्यसिद्धान्तकी गूढार्थप्रकाशिका नामक टीका बनायी। यह टीका १५२५ शकमें निर्मित हुई। इस टीकाका निर्माण काशीमें हुआ। इनके पिताका नाम बल्लाल और माताका नाम गोजि था।

(५३) गणेशदैवज्ञ—तापीतीरनिवासी पं० गोपालके पुत्र गणेशदैवज्ञने १५३५ शकाब्दमें जातकालंकार नामक फलितशास्त्रका अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ बनाया है। इसमें स्रग्धरा छन्दमें गुम्फित ११० श्लोक हैं। यह ग्रन्थ अत्यन्त काव्यमयी शैलीमें उपनिबद्ध है। फलितग्रन्थोंमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(५४) दिवाकर—ये नृसिंहदैवज्ञके पुत्र थे। इन्होंने अपने चाचा शिवदैवज्ञसे ज्योतिषशास्त्रका सूक्ष्म अध्ययन किया था। ज्योतिषके साथ ही ये न्याय, व्याकरण आदि शास्त्रोंके प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने पद्मजातक, केशवीयजातकपद्धति आदि ग्रन्थोंकी विशद पाण्डित्यपूर्ण टीकाएँ की हैं साथ ही मकरन्द ग्रन्थकी 'मकरन्दविवरण' नामक विवृतिका भी प्रणयन किया। इनका 'दिवाकरजातकपद्धति' ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनका जन्म-समय १५२८ शकाब्द है।

(५५) विट्ठलदीक्षित—इन्होंने मुहूर्तकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ बनाया तथा उसकी टीका भी बनायी। इनका अनुमानित जन्म-समय १५०९ शकाब्द बताया जाता है।

(५६) विश्वनाथ—आचार्य विश्वनाथको द्वितीय भट्टोत्पल कहा जाता है। जैसे टीकाकारोंमें भट्टोत्पल सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार ये भी भट्टोत्पलके समान ही वैदुष्यसम्पन्न हैं। इन्होंने ताजिकनीलकण्ठी, सूर्यसिद्धान्त, करणकुतूहल, मकरन्द, ग्रहलाघव, केशवीयजातकपद्धति, सोमसिद्धान्त, तिथिचिन्तामणि, बृहज्जातक तथा बृहत्संहिता आदि ज्योतिषके मूल आधार ग्रन्थोंकी अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण टीकाएँ लिखी हैं। ये दिवाकरके पुत्र थे। इनका समय १५५१ शकाब्द है।

(५७) मुनीश्वर—ये सूर्यसिद्धान्तकी गूढार्थ-प्रकाशिका नामक टिप्पणीके प्रणेता श्रीरंगनाथके पुत्र हैं। इनका समय १५५० शकाब्द है। इन्होंने सूर्यसिद्धान्तके भगणोंका संग्रह करके सिद्धान्तसार्वभौम नामक ग्रन्थकी रचना की। इसमें पूर्ववर्ती आचार्योंके मतोंका संग्रह किया गया है। पाटीसार तथा लीलावतीकी टीका भी इनकी की हुई है। इनका दूसरा नाम विश्वरूप था। ये बादशाह शाहजहाँके आश्रयमें थे।

(५८) कमलाकरभट्ट—दिवाकरदैवज्ञके भाई कमलाकरभट्ट गोल और गणित दोनों विषयोंके प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने काशीमें १५८० शकमें सूर्यसिद्धान्तके अनुसार सिद्धान्ततत्त्वविवेक नामक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थकी रचना की है। यह ग्रन्थ प्राचीन गणितसिद्धान्त-परम्पराका अनुपूरक ग्रन्थ है तथापि इसमें इन्होंने अपने कई नवीन मत भी प्रस्थापित किये हैं।

(५९) रंगनाथ—श्रीनृसिंहदैवज्ञके कनिष्ठ पुत्र रंगनाथाचार्यका समय १५४० शकाब्द है। इन्होंने १५६२ शकाब्दमें सिद्धान्तचूडामणि नामक करणग्रन्थका निर्माण किया। इन्होंने भंगीविभंगीकरण, लोहगोलखण्डन तथा पलभागखण्डन नामक तीन लघु समालोचनात्मक ग्रन्थोंका भी निर्माण किया।

(६०) नित्यानन्द—इन्द्रप्रस्थनिवासी गौड़ ब्राह्मण दैवज्ञ नित्यानन्दने १५६१ शकमें 'सिद्धान्तराज' नामक ग्रन्थ बनाया, जो गणितस्कन्धका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ये सायनगणनाके पक्षपाती थे। इन्होंने निरयन गणनाका

अनौचित्य प्रस्तुत किया। इन्होंने अपनेको रोमक-सिद्धान्तानुयायी बताया है।

(६१) बलभद्र—भारद्वाजगोत्री दामोदरके पुत्र तथा रामदैवज्ञके शिष्य बलभद्रने १५६४ शकमें हायनरत्न तथा होरारत्न—इन दो विशिष्ट ग्रन्थोंका प्रणयन किया।

(६२) रत्नकण्ठ—आचार्य रत्नकण्ठने पंचांगकौतुक सारणी-ग्रन्थका निर्माण किया, इसका रचनाकाल १५८० शक है। इन्हें काश्मीर मण्डलका बताया जाता है।

(६३) रघुनाथ—रघुनाथदैवज्ञने १५८२ शकाब्दमें मुहूर्तविषयक मुहूर्तमाला नामक ग्रन्थका प्रणयन किया।

(६४) महादेव—इनका मुहूर्तदीपिका नामक ग्रन्थ मुहूर्तका ज्ञान करानेवाला है। इसकी रचना १५८३ शकमें हुई। इसपर ग्रन्थकारकी स्वयंकी टीका है।

(६५) गोविन्द—गोविन्ददैवज्ञका होराकौस्तुभ नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इन्होंने बृहज्जातककी टीका भी की है।

(६६) गणपति—मुहूर्तगणपति नामक ग्रन्थके ये प्रणेता हैं।

(६७) चिन्तामणि—इन्होंने १६०७ शकमें रमलचिन्तामणि नामक ग्रन्थका निर्माण किया।

(६८) जटाधर—श्रीनगरवासी पं० जटाधरने १६२६ शकाब्दमें गढ़वालनरेशकी स्मृतिमें फतेहशाह-प्रकाशकरण ग्रन्थकी रचना की। ये वनमालीके पुत्र थे।

(६९) माधव—सामुद्रिकचिन्तामणिके प्रणेता पं० माधवाचार्यका समय १६२५ शकाब्द अनुमानित है।

(७०) नारायणभट—ये १६६० शकाब्दमें थे, इनके होरासारसुधानिधि, ताजिकसुधानिधि, गणकप्रिया, स्वरसागर, नरजातकव्याख्या आदि ग्रन्थ हैं। इनमें गणकप्रिया ग्रन्थ प्रश्नज्योतिषसे सम्बद्ध है और स्वरसागर ग्रन्थ नरपतिजयचर्याके समान स्वरशास्त्रके नियमोंका निरूपक है।

(७१) परमानन्द—सारस्वत ब्राह्मण परमानन्द काशिराजसभाके मान्य दैवज्ञ थे। इन्होंने १६६० शकमें प्रश्नमाणिक्यमाला नामक ग्रन्थका प्रणयन किया। यह जातकशास्त्रसम्बन्धी ग्रन्थ है।

(७२) जगन्नाथ—काव्यशास्त्रसम्बन्धी प्रख्यात ग्रन्थ रसगंगाधरके प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथने जयपुरनरेश जयसिंहके अनुरोधपर एक विलक्षण 'सिद्धान्तसम्राट्' नामक ग्रहगणितीय ग्रन्थ बनाया। इन्होंने अरबीके अनेक ज्योतिष ग्रन्थोंका संस्कृतमें अनुवाद भी किया।

(७३) जयसिंह—इन्हें मत्स्यदेशाधिपति कहा गया है। ये १६१५ शकाब्दमें राज्यासीन हुए। इन्होंने ही जयपुर नामक नगर बसाया। ये ज्योतिषशास्त्रके स्वयं पारंगत विद्वान् थे। इन्होंने ग्रह-नक्षत्रोंकी गतियोंके ज्ञानके लिये काशी, मथुरा, उज्जैन, जयपुर तथा हस्तिनापुरमें वेधशालाओंका निर्माण कराया।

(७४) बबुआ ज्योतिषी—यद्यपि इनका कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता, किंतु महान् ज्योतिर्विदोंमें इनकी विशेष प्रसिद्धि है, इनका स्थिति-काल १६७५ शकाब्द है।

(७५) मणिराम—यजुर्वेदीय भारद्वाजगोत्री लालमणिके पुत्र पं० मणिरामने १६९६ शकमें ग्रहगणितचिन्तामणि नामक ग्रन्थकी रचना की। इनके गुरु काश्यपगोत्रीय वत्सराज थे। इन्हें गुर्जर देशका बताया जाता है। यह ग्रन्थ ग्रहलाघवके समान प्रसिद्धिको प्राप्त है। इसमें ग्रहोंका स्पष्ट मान ग्रहलाघवसे भी अत्यन्त सूक्ष्मरीतिसे किया गया है। इस ग्रन्थमें बारह अधिकार (प्रकरण) तथा १२० श्लोक हैं।

(७६) मथुरानाथ—काशीनिवासी मालवीय ब्राह्मण पं० मथुरानाथने १७०४ शकाब्दमें 'यन्त्रराजघटना' तथा 'ज्योतिषसिद्धान्तसार' नामक ग्रन्थोंका प्रणयन किया। इनके पूर्वज पाटलिपुत्रनिवासी थे।

(७७) चिन्तामणि दीक्षित—सतारानिवासी पं० चिन्तामणिदीक्षितने सूर्यसिद्धान्तकी सारणी तथा गोलानन्द नामक वेधविषयक ग्रन्थका निर्माण किया। इनका समय १६५८—१७३३ शक माना जाता है।

(७८) राघव—पुणताम्बेग्रामनिवासी राघवाचार्य (राघवपन्त)-ने १७३२ शकमें 'खेटकृति' नामक ग्रन्थ बनाया। यह ग्रन्थ ग्रहलाघवके अभिमतका विस्तार करता है। इसके अतिरिक्त जातकपद्धतिचन्द्रिका तथा

पंचांगार्क नामक दो ग्रन्थ भी इनके हैं।

(७९) शिव—इनका तिथिपारिजात नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। यह भी ग्रहलाघवकी पद्धतिका अनुसरण करता है। ये विश्वामित्रगोत्रीय महादेवके पुत्र थे।

(८०) दिनकर—शाण्डिल्यगोत्रीय अनन्तदैवज्ञके पुत्र दिनकरने १७३४ शकमें यन्त्रचिन्तामणिकी टीका बनायी। ग्रहविज्ञानसारणी, मासप्रवेशसारणी, लग्नसारणी आदि कई सारणियाँ भी इनके नामसे प्रसिद्ध हैं।

(८१) यज्ञेश्वर—१७४० शकाब्दमें विद्यमान सदाशिवके पुत्र शाण्डिल्यगोत्रीय दैवज्ञाचार्य यज्ञेश्वरने अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन किया। इन्होंने सुवाजीबापूके द्वारा विरचित सिद्धान्तशिरोमणिप्रकाश ग्रन्थके मतोंके विरुद्धमें ज्योतिषपुराणविरोधमर्दन नामक ग्रन्थका प्रणयन किया। साथ ही यन्त्रराज, गोलानन्द तथा चिन्तामणि आदि अनेक ग्रन्थोंकी वैदुष्यपूर्ण टीकाएँ लिखीं। इनका प्रश्नोत्तरमालिका ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है।

(८२) नृसिंह (बापूदेवशास्त्री)—ईसाकी बीसवीं शताब्दीके आधुनिक ज्योतिर्विदोंमें नृसिंह बापूदेवका स्थान सर्वोपरि है। ये काशीके प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य थे। इनका जन्म महाराष्ट्रप्रान्तके अहमदनगर जनपदमें हुआ था। इन्होंने आंग्लभाषाकी पद्धतिसे नवीन गणितज्ञानका अध्ययनकर तदनुसार अनेक ग्रन्थोंकी रचना की।

(८३) देवकृष्ण—ये अपने समयके प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् थे। ये गौड़ ब्राह्मण पं० रामधनमिश्र के पुत्र, लज्जाशंकरके शिष्य तथा पं० सुधाकरजीके गुरु थे। इनका जन्म-समय १७४० शकाब्द है। इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है तथापि ज्योतिर्विदोंमें आपकी विशेष प्रतिष्ठा है।

(८४) जीवनाथ—शम्भुनाथके पुत्र जीवनाथ मैथिल ब्राह्मण थे और पाटलिपुत्र (पटना)-में रहते थे। ये महान् दैवज्ञ थे। इन्होंने भास्कराचार्यके बीजगणितकी विद्वत्तापूर्ण टीका की है। भावप्रकाश नामक इनका फलितज्योतिषका ग्रन्थ बड़े ही महत्त्वका है। इनका समय १७७४ शकाब्द है।

(८५) नीलाम्बर शर्मा—ये मैथिल ब्राह्मण थे तथा पूर्वोक्त कथित जीवनाथके भाई थे। इन्होंने यूरोपीय पद्धतिके अनुसार गोलप्रकाश नामक ग्रन्थका प्रणयन किया। इसमें पाँच अध्याय हैं।

(८६) विनायक (केरो लक्ष्मण छत्रे)—काश्यपगोत्रीय ऋग्वेदीय ब्राह्मण दैवज्ञ विनायकजीका जन्म महाराष्ट्रप्रान्तके अष्टागर नामक स्थानमें १७४६ शकमें हुआ। आपने पाश्चात्य ज्योतिष-ग्रन्थोंके आधारपर 'ग्रहसाधनकोष्टक' ग्रन्थका निर्माण किया। इसमें वर्षमान सूर्यसिद्धान्तके अनुसार और ग्रहगति सायन-पद्धतिसे ली गयी है। आप गणित-ज्योतिष और वृष्टिविज्ञानमें बड़े ही निपुण थे। आपका लोकप्रिय नाम नाना था। आपा साहब पटवर्धनके सहयोगसे इनके द्वारा जो पंचांग निकला, वह नानापटवर्धनीके नामसे विख्यात हुआ।

(८७) विसाजी रघुनाथ लेले—ये महाराष्ट्रके चितपावन ब्राह्मण थे। इनका गोत्र काश्यप तथा शाखा हिरण्यकेशी थी। ये १७४९ शकमें विद्यमान थे। ये ज्योतिषविद्याके महान् ज्ञाता और सायनपंचांगके पक्षधर थे।

(८८) रघुनाथाचार्य—चिन्तामणि रघुनाथाचार्यका जन्म द्राविडदेशमें १७५० शकमें हुआ। जिस प्रकार काशीमें बापूदेव और महाराष्ट्रमें केरोपन्तकी प्रसिद्धि थी वैसे ही मद्रदेशमें इनकी प्रसिद्धि थी। इनका ज्योतिषचिन्तामणि नामक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। १८०१ शकाब्द इनका अन्तिम समय माना जाता है।

(८९) वेंकटेश बापूजी केतकर—ये गर्गगोत्रीय महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। ज्योतिर्जगत्‌में इनकी बहुत प्रसिद्धि है। इन्होंने ज्योतिर्गणित नामक ग्रन्थ बनाया, जो वर्तमानमें बहुत मान्य तथा प्रचलित है। इसमें अनेक प्रकारकी सारणियाँ दी गयी हैं, जो बहुत ही उपयोगी हैं। पंचांग-साधनमें इनका बहुत उपयोग होता है। इनका समय १८०० शकाब्द है। ज्योतिर्गणितके अतिरिक्त उन्होंने वैजयन्ती, तिथिगणित और मराठीमें नक्षत्रविज्ञान, भूमण्डलीय गणित आदि ग्रन्थोंका निर्माण किया। ये

प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिषके अद्वितीय विद्वान् थे।

(९०) बालगंगाधरतिलक—महान् विद्वान् तिलकजीका जन्म १७७८ शकमें हुआ। इन्होंने १८१५ शकाब्दमें अँगरेजी भाषामें ओरिअन (ORION) नामक ग्रन्थ बनाया, जो भारतीय ज्योतिषके विविध पक्षोंकी नवीन व्याख्या करता है। इस ग्रन्थका बहुत प्रचार तथा बहुत प्रसिद्धि है। 'गीतारहस्य' तथा 'आर्कटिक होम इन दि वेदाज'—ये दो भी इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

(९१) विनायक पाण्डुरंग—ये ऋग्वेदीय महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। वैनायकी, द्वादशाध्यायी, कुण्डसार, अर्घकाण्ड तथा सिद्धान्तसार—ये इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। द्वादशाध्यायी वर्षफलनिरूपणका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ये ज्योतिषके पारंगत विद्वान् थे। इनका समय १७८० शकाब्द है।

(९२) सुधाकर द्विवेदी—काशी (खजुरी ग्राम)-निवासी महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदीके ज्योतिष-विषयक प्रायः चालीस ग्रन्थ हैं। इनका जन्म १७८२ शकाब्दमें हुआ। इनके दीर्घवृत्तलक्षण, विचित्रप्रश्न, वास्तवचन्द्र-शृंगोन्नतिसाधन, पिण्डप्रभाकर, भाभ्रमरेखा-निरूपण, धराभ्रम, ग्रहणकरण, गोलीयरेखागणित, प्रतिभाबोधक, गणकतरंगिणी तथा ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त और सूर्यसिद्धान्त आदिकी टीकाएँ—ये प्रमुख ग्रन्थ हैं। इनमें प्राच्य तथा अर्वाचीन ज्योतिष-पद्धतिका अद्भुत समन्वय था। ये अनेक भाषाओंके ज्ञाता थे। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी।

(९३) शंकरबालकृष्णदीक्षित—ये सिद्धसरस्वती ज्योतिर्विद् थे। हिन्दी-अनुवादके साथ प्राप्त इनका 'भारतीयज्योतिष' ग्रन्थ मूलतः मराठी भाषामें उपनिबद्ध है, यह ज्योतिष-विषयोंका विश्वकोश है।

(९४) हरिकृष्ण—इनका बृहज्ज्योतिषार्णव ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इनका समय १८६६ शकाब्द है।

आगे भी ग्रन्थ-लेखन, टीका, टिप्पणीकी यह परम्परा समृद्ध होती आयी है, जिज्ञासुओंको ग्रन्थान्तरोंमें देखना चाहिये।*

काशीके विशिष्ट ज्योतिषाचार्य

(१) पं० लक्ष्मीपति—ये पर्वतीय ब्राह्मण थे। काशीमें ये सिद्धान्तज्योतिषके प्रचारक थे तथा पाटीगणित एवं बीजगणितमें अत्यन्त प्रगल्भ थे। इनके समयमें ही फलितज्योतिषका ह्रास और गणितज्योतिषकी उन्नति प्रारम्भ हुई। काशिराजकीय पाठशालामें ये गणितज्योतिषके प्रथम अध्यापक थे। इनका जन्म लगभग सन् १७४८ ई० तथा मृत्यु सन् १८२० ई०में हुई थी।

(२) पं० कृष्णदेव—ये लक्ष्मीपतिके पुत्र तथा शिष्य दोनों थे। पिताकी मृत्युके बाद ये इसी संस्कृत कॉलेजमें ज्योतिषके प्रधानाध्यापक हुए। ये ज्योतिषशास्त्रकी गोलविद्यामें अत्यन्त निपुण थे।

(३) पं० लज्जाशंकर शर्मा—ये गुजराती मोढ़ ब्राह्मण थे। इन्होंने लक्ष्मीपति तथा दुर्गाशंकर पाठकसे ज्योतिषशास्त्रका सम्यक् अध्ययन किया था। ये पण्डित कृष्णदेवजीके सहायक थे और उनकी मृत्युके पश्चात् इन्होंने इसी पाठशालामें ज्योतिषशास्त्रकी गद्दीको सुशोभित किया। इनका जन्म सन् १८०४ ई० तथा मृत्यु सन् १८५९ ई०में हुई थी।

(४) पं० दुर्गाशंकर पाठक—पं० लज्जाशंकर शर्माके गुरु पण्डित दुर्गाशंकर पाठक प्रकाण्ड विद्वान् थे। ये अपने घरपर ही शिष्योंको ज्योतिष तथा काव्यशास्त्रका अध्यापन किया करते थे। ये औदीच्य ब्राह्मण थे और अपनी विद्वत्ताके कारण 'जगद्‌गुरु' कहलाते थे। यह प्रसिद्धि है कि पंजाबके राजा रणजीतसिंहके अनन्तर राजा खड्गसिंहके गद्दीपर बैठनेका शुभ मुहूर्त इन्होंने ही दिया था। राजकुमार निहालसिंहके जन्मके अवसरपर इन्होंने राजकुमारकी जो

* आधारग्रन्थ—(१) गणकतरंगिणी (म०म०पं० सुधाकर द्विवेदी), भारतीय ज्योतिष (शंकरबालकृष्णदीक्षित), भारतीय ज्योतिषका इतिहास (डॉ० गोरखप्रसाद), भारतीय ज्योतिष (नेमिचन्द्रशास्त्री) तथा भारतीयज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः (आचार्य लोकमणिदाहालः) आदि।

जन्मकुण्डली बनायी थी, वह बहुत ही चित्र-विचित्र थी, जिसपर प्रसन्न होकर महाराजाने इनको एक लाख रुपये पुरस्कारके रूपमें प्रदान किया था।

(५) पं० नन्दलाल शर्मा—इसी कालमें पं० लज्जाशंकर शर्माके विभागमें ये द्वितीय अध्यापक थे, जो पं० सुधाकर द्विवेदीके पिता तथा पं० कृपालुदत्त द्विवेदीके गुरु थे। ये इलाहाबाद जिलेके कड़ामानिकपुर गाँवके निवासी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ये फलितज्योतिषके बहुत बड़े विद्वान् थे और इस विद्यासे इन्होंने प्रचुर धनका अर्जन किया था। इनका जन्म सन् १८०४ ई०में तथा परलोकवास सन् १८६७ ई०में हुआ।

(६) पं० देवकृष्ण शर्मा—इनके पिताका नाम रामधन मिश्र था। इनका जन्म सन् १८१८ ई०में हुआ था। इन्होंने लज्जाशंकर शर्मासे सकल शास्त्रोंका अध्ययन करके २०-२२ वर्षकी अवस्थामें अपने घरपर ही छात्रोंको ज्योतिषका अध्यापन प्रारम्भ कर दिया था। उन दिनों कश्मीरमें राजा रणवीरसिंह राज्य करते थे। इन्हीं राजाके निमन्त्रणपर शर्माजी कश्मीर गये और राजज्योतिषीके पदपर प्रतिष्ठित होकर नौ वर्षोंतक कश्मीर (जम्मू)-में निवास किया। जम्मूसे लौटनेके पश्चात् ये सन् १८६८ ई०में गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेजमें ज्योतिषके अध्यापक हो गये। इन्होंने सन् १८८९ ई०में कॉलेजसे अवकाश ग्रहण किया। म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी इन्हीं शर्माजीके पट्टशिष्य थे।

(७) म० म० पं० श्रीबापूदेव शास्त्री—महामहोपाध्याय पं० बापूदेव शास्त्री अपने युगके महान् विद्वान् और प्रतिभाशाली ज्योतिर्विद् थे। उस युगमें पश्चिमी गणितका प्रचार अँगरेजी शिक्षाके साथ-साथ देशमें होने लगा था, परंतु भारतीय परम्परागत गणितज्ञोंका ध्यान इस शास्त्रीय विषयकी ओर अभीतक आकृष्ट नहीं हुआ था। बापूदेवजी शास्त्रीने अपनी प्रतिभाके बलसे भारतीय ज्योतिषको एक नया मोड़ दिया। यह इनकी महती उपलब्धि है।

मूलरूपसे महाराष्ट्र-निवासी चिन्तामणि परांजपेके पुत्रका नाम सदाशिव था, जिनके आत्मज सीताराम परांजपे हुए। यही सीताराम शास्त्री बापूदेवजीके पिता थे। इन्हींकी पत्नी सत्यभामाके गर्भसे बापूदेव शास्त्रीका जन्म कार्तिक शुक्ल षष्ठी, रविवार, विक्रमी सं० १८७६ (तदनुसार २४ अक्टूबर, सन् १८१९ ई०)-को हुआ। इनके पिताजीने इनका नाम नृसिंह रखा, परंतु घरवालोंने अत्यन्त प्रिय होनेके कारण बालकका नाम 'बापू' रख दिया और इसी नामसे ये अपने जीवनमें प्रसिद्ध हुए।

सन् १८४२ ई०में १५ फरवरीको इनकी नियुक्ति गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेजमें ज्योतिष-अध्यापकके पदपर हुई। शास्त्रीजीने छात्रोंके कल्याणके लिये सिद्धान्त तथा गणितशास्त्रके नवीन ग्रन्थोंका निर्माण तथा सम्पादन करके शिष्योंका बड़ा ही उपकार किया। इसी समय इन्होंने अँगरेजी भाषाका भी अध्ययन किया। इन्होंने बीजगणित नामक ग्रन्थको हिन्दीमें लिखकर सन् १८५० ई०में बम्बईसे प्रकाशित कराया। 'इंग्लिश जर्नल ऑफ एजुकेशन' नामक शोध-पत्रिकामें सिद्धान्त-ज्योतिष-विषयक एक लेख प्रकाशित हुआ था, बापूदेव शास्त्रीने उस लेखको पढ़कर उसमें अनेक अशुद्धियाँ निकालीं, जिन्हें उस लेखके प्रणेताने स्वीकार भी कर लिया। सन् १८६१ ई०में इन्होंने लान मिलट विलकिन्सन महोदयद्वारा सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थके अँगरेजी अनुवादको अपनी उपपत्ति तथा टिप्पणियोंके साथ 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' की सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थमाला 'बिब्लोथिका इण्डिका' में प्रकाशित कराया। पं० बापूदेवजीकी रचनाओंमें संस्कृतमें निबद्ध 'सरलत्रिकोणमितिः' पाश्चात्य गणितके तथ्योंको

देववाणीके माध्यमसे अभिव्यक्ति देनेकी प्रक्रियामें एक सफल महनीय ग्रन्थ है।

ग्रन्थ-रचना—पं० बापूदेव शास्त्रीने संस्कृत तथा हिन्दी दोनों ही भाषाओंमें ग्रन्थ-रचना की है, जिनकी सूची यहाँ दी जाती है—

(क) संस्कृतके ग्रन्थ—१. सूर्यसिद्धान्त-सोपपत्तिक, २. फलितविचार, ३. सायनवाद, ४. मानमन्दिरवर्णनम्, ५. प्राचीनज्योतिषाचार्याशयवर्णनम्, ६. तत्त्वविवेकपरीक्षा, ७. विचित्रप्रश्नसंग्रहः, सोत्तर, ८.अतुलयन्त्रम्, ९. पंचक्रोशी-यात्रानिर्णय, १०. नूतनपंचांग-निर्माणम्, ११. पंचांगोपपादनम्, १२. चलगणितम्, **(ख) हिन्दीभाषामें निर्मित ग्रन्थ**—१३. बीजगणित, १४. व्यक्तगणित, १५. भूगोलवर्णन, १६. खगोलसार।

म० म० पं० बापूदेव शास्त्रीको अपनी अलौकिक विद्वत्ताके कारण बहुशः सम्मानकी प्राप्ति हुई। सन् १८८७ ई०में महारानी विक्टोरियाकी गोल्डेन जुबिली (स्वर्णजयन्ती) मनायी गयी थी, उसी समय संस्कृत पण्डितोंके सम्मानके लिये सर्वप्रथम 'महामहोपाध्याय' की पदवीका निर्माण किया गया था। उस समय बापूदेव शास्त्री इस 'महामहोपाध्याय' की पदवीसे विभूषित किये गये।

नवीन पंचांगका सूत्रपात—श्रीबापूदेव शास्त्रीजीका भारतीय पंचांग-निर्माणमें भी विशेष योगदान सर्वदा अविस्मरणीय रहेगा। इस पंचांगका नाम है—दृक्-सिद्ध पंचांग। इस पंचांगके निर्माणका आरम्भ बापूदेव शास्त्रीजीने काशिराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंहजीकी अनुमतिसे वि०सं० १९३३ (सन् १८७६ ई०)-में किया।

शास्त्रीजीके शिष्योंमें चन्द्रदेव पाण्ड्या तथा पं० विनायक शास्त्री वेतालजीकी विशेष मान्यता थी।

ज्योतिषशास्त्रमें पं० बापूदेव शास्त्रीका सबसे महान् योगदान आधुनिक पाश्चात्य गणितका ग्रहण करना है।

[काशीकी पाण्डित्य-परम्परा]

म०म० पं०श्रीसुधाकरजी द्विवेदी

आधुनिक ज्योतिषशास्त्रके इतिहासमें महामहोपाध्याय पण्डित श्रीसुधाकरजी द्विवेदीका नाम सिद्धान्त ज्योतिषके उन्नायकके रूपमें सदा अमर रहेगा। इन्होंने ज्योतिषशास्त्रके

लुप्तप्राय प्राचीन ग्रन्थोंको प्रकाशमें लानेमें तथा अपनी व्याख्या, भाष्य एवं उपपत्तियोंसे उन्हें सुबोध बनानेमें प्रतिभाका जो चमत्कार दिखलाया है, वह विद्वानोंको आश्चर्यमें डाल देता है।

पण्डित श्रीसुधाकरजी द्विवेदीका जन्म वाराणसीके खजुरी नामक गाँवमें सं० १९१७ वि० (सन् १८६० ई०)-में हुआ था। इनके पूर्वजोंका मूल निवास गोरखपुर जनपदमें था। इनके वृद्ध पितामह काशीमें आकर अपने नानाके यहाँ दत्तकके रूपमें रहने लगे थे।

इनके पिताकी जीविका यजमानी वृत्तिसे चलती थी। अतः इनके पिताजीका उद्देश्य केवल यही था कि उनका पुत्र कुछ ज्योतिष और व्याकरणका अध्ययनकर अपनी यजमानी वृत्तिको ठीक-ठीक चालू रखे और जन्मकुण्डली बनाकर तथा लग्न-मुहूर्त देखकर अपनी जीविका चलाता रहे। अतः तत्कालीन संस्कृत कॉलेजमें नाम लिखाकर ये दुर्गादत्त शास्त्रीसे व्याकरणशास्त्रका अध्ययन करने लगे। एक दिन इनके पिताजी इन्हें अध्ययन करनेके लिये अपने साथ संस्कृत कॉलेज ले

गये और उस कक्षमें जाकर अध्ययन करनेका संकेत किया, जिस कक्षमें म० म० बापूदेव शास्त्री तथा उनके सहायक पं० देवकृष्ण मिश्र दोनों ज्योतिर्विद् एक साथ आमने-सामने बैठकर ज्योतिषका अध्यापन करते थे। सुधाकरजीने गलतीसे अथवा अनजानमें पं० बापूदेव शास्त्रीके पास न जाकर उनके सहायक पण्डित देवकृष्ण मिश्रके यहाँ अध्ययन करना प्रारम्भ किया। पिताके पूछनेपर इन्होंने अपने गुरुका नाम बतलाया। इसपर इनके पिताजी इन्हें डाँटने लगे और उन्होंने बापूदेव शास्त्रीसे अध्ययन करनेका आग्रह किया, परंतु इन्होंने कहा कि मैंने अब जिस गुरुके सामने पोथी खोल दी, उसीको गुरु मानूँगा। इस प्रकार इन्होंने समस्त ज्योतिषका अध्ययन पं० देवकृष्ण मिश्रसे ही किया।

एक अविस्मरणीय घटना—उस समयकी एक घटना नितान्त प्रसिद्ध है, जिससे बालक सुधाकरजीकी गणितीय प्रतिभाका पूर्ण परिचय मिलता है। म० म० बापूदेव शास्त्रीने अपने ग्रन्थ 'बीजगणित प्रथम भाग' की एक प्रति अपने सहायक पं० देवकृष्ण मिश्र को भेंटमें दी थी। सुधाकरजीने ग्रन्थकी अपूर्वताका विचारकर उसे अध्ययनके लिये गुरुजीसे माँगा और अपने घर ले आये। रातों-रात ही उन्होंने उस समस्त ग्रन्थका नितान्त मनोयोगसे अध्ययन कर लिया और उसमें गणितसम्बन्धी अनेक अशुद्धियाँ निकालीं। दूसरे दिन उस ग्रन्थका सम्पूर्ण संशोधन लाल स्याहीसे कर उसे गुरुजीको ले जाकर दिखलाया और सरल भावसे कहा—गुरुजी! इस ग्रन्थमें तो बहुत ही अशुद्धियाँ हैं। अपने छात्रसे 'छोटे मुँह बड़ी बात' सुनकर गुरु काँपने लगे और अपने छात्रको संकेतसे तथा मौखिक रूपसे कहा कि 'चुप रहो, चुप रहो। शास्त्रीजीके विषयमें ऐसी अपमानजनक बातें मत कहो।'

उसी कमरेके एक दूसरे छोरपर बैठे हुए बापूदेव शास्त्रीजीके कानोंमें इस फुसफुसाहटकी आवाज सुनायी पड़ी और उन्होंने अपने सहायक पण्डितजीसे पूछा कि क्या बात है? पण्डित देवकृष्ण मिश्रने अपने छात्रकी 'प्रातिभ उद्दण्डता' की कथा उन्हें कह सुनायी। शास्त्रीजीने जब उन संशोधनोंको देखा, तब उन्हें नितान्त सत्य पाया और अप्रसन्न होनेके स्थानपर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उस कॉलेजके तत्कालीन प्रिन्सिपल ग्रिफिथ साहबके पास सुधाकरजीकी प्रशंसा करते हुए लिखा कि **'अयं सुधाकरशर्मा गणिते बृहस्पतिसमः'** अर्थात् यह सुधाकर शर्मा गणितमें बृहस्पतिके समान है। इतना ही नहीं, उन्होंने सुधाकरजीको पुरस्कार देनेके लिये अपनी संस्तुति भी लिख भेजी। सुधाकरजीने इस संस्तुतिके फलस्वरूप अनेक पारितोषिक प्राप्त किये।

मिथिलाधिपति महाराजाधिराज दरभंगानरेशने सुधाकरजीके अलौकिक पाण्डित्यसे प्रभावित होकर काशीमें स्थापित अपने 'दरभंगा-संस्कृतविद्यालय' में इन्हें ज्योतिषशास्त्रका प्रधानाध्यापक नियुक्त किया। गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेजके प्रिन्सिपल डॉ० थीबो गणितके स्वयं प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने पण्डित सुधाकरजीकी कीर्ति सुनकर इन्हें 'सरस्वती-भवन' पुस्तकालयका अध्यक्ष नियुक्तकर समुचित पदपर प्रतिष्ठापित कर दिया।

म० म० सुधाकर द्विवेदीने संस्कृत तथा हिन्दीमें अनेक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की है। यहाँ इनके ग्रन्थोंका विवरण प्रस्तुत है—

(क) मौलिक ग्रन्थ

(१) दीर्घवृत्तलक्षणम्, (२) वास्तवचन्द्र-शृङ्गोन्नतिसाधनम्, (३) भूभ्रमरेखानिरूपणम्, (४) ग्रहणे छादकनिर्णयः, (५) यन्त्रराजः, (६) प्रतिमाबोधकः, (७) धराभ्रमे प्राचीननवीनयोर्विचारः, (८) पिण्डप्रभाकरः, (९) गणकतरंगिणी, (१०) द्युचरचारः, (११) समीकरणमीमांसा और (१२) दिङ्मीमांसा।

(ख) सम्पादित ग्रन्थ

(१) पंचसिद्धान्तिका, (२) सिद्धान्ततत्त्वविवेक, (३) शिष्यधीवृद्धितन्त्रम्, (४) करण-कुतूहलवासना, (५) लीलावती, (६) बृहत्संहिता, (७) ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त, (८) ग्रहलाघव, (९) त्रिंशिका, (१०)

करण-प्रकाश, (११) बीजगणित, (१२) सिद्धान्त-शिरोमणि, (१३) सूर्य-सिद्धान्त, (१४) चलन-कलन, (१५) चलराशि कलन, (१६) अंकगणितका इतिहास और (१७) वेदांग-ज्योतिषपर भाष्य।

शिष्य-मण्डली

इनके शिष्य प्रधान रूपसे मिथिला और काशीमण्डलमें पाये जाते हैं। वैसे तो इनके शिष्योंकी संख्या विशाल है, परंतु इनके प्रधान चार शिष्योंका वर्णन यहाँ प्रस्तुत है—

(१) महामहोपाध्याय पं० श्रीमुरलीधरजी झा—पं० मुरलीधर झा सिद्धान्तज्योतिषके बहुत बड़े विद्वान् थे। सुप्रसिद्ध गणितज्ञ पं० सुधाकर द्विवेदीके पश्चात् इन्होंने ही उनकी गद्दीको सुशोभित किया। अनेक सिद्धान्तग्रन्थोंकी टीका लिखकर इन्होंने उनके गूढ़ रहस्योंको समझानेका प्रयास किया है। गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेजमें लगातार इक्कीस वर्षोंके अध्यापनकालमें आपने अनेक सुयोग्य शिष्योंको उत्पन्न किया, जिनमें पं० बबुआ मिश्र, पं० चन्द्रशेखर झा, पं० गंगाधर मिश्र, पं० मुरलीधर ठाकुर, पं० सीताराम झा, पं० मधुकान्त झा आदि प्रमुख हैं। इन्होंने अपने गुरु पं० सुधाकर द्विवेदीके वेदांगज्योतिषके ऊपर सुधाकरभाष्य नामक ग्रन्थकी रचना की।

(२) पं० श्रीबलदेवजी मिश्र—ज्योतिषाचार्य पं० बलदेवजी मिश्र ज्योतिषशास्त्रके एक निष्णात विद्वान् थे। इनका जन्म सन् १८६१ ई०में बिहारके सहरसा जिलेके वनगाँवमें हुआ। बादमें ये काशीमें चले आये।

इन्होंने अनेक स्थानोंपर अध्यापन तथा अनुसन्धानका कार्य किया तथा अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है।

(३) पं० श्रीरामयत्नजी ओझा—पण्डित रामयत्न ओझा अपने समयके ज्योतिषियोंमें प्रखर शास्त्रीय ज्ञान तथा व्यापक व्यवहार-परिचयके कारण महनीय स्थान रखते थे। इनका जन्म बिहारप्रान्तके छपरा जनपदके अन्तर्गत 'माझी गाँव' में हुआ था। स्थनीय पाठशालामें संस्कृतके व्याकरण, साहित्य और शास्त्रोंका परिचय प्राप्त करनेके अनन्तर इन्होंने काशीमें आकर ज्योतिषविद्याका गहन अध्ययन किया। ये सिद्धान्तगणित तथा फलितज्योतिष दोनोंके असाधारण विद्वान् थे।

महामना मालवीयजीने इन्हें संस्कृत महाविद्यालयके ज्योतिष-विभागका अध्यक्ष बनाया। इन्होंने पहली बार मालवीयजीकी सम्मतिसे पंचांगका निर्माण किया, जो 'विश्वपंचांग' के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

इनके द्वारा विरचित फलित के दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं—(१) जैमिनि-सूत्रकी टीका तथा (२) फलित-विकास। सन् १९३८ ई०में इनका काशीवास हो गया।

(४) पं० श्रीबलदेवजी पाठक—द्विवेदीजीके चतुर्थ शिष्य पं० बलदेवदत्त पाठक थे। इनके पूर्वपुरुष गोरखपुर जनपदके निवासी थे, जहाँसे आकर इनके पितामह काशीमें बस गये थे। इनके पिताका नाम पं० रामदीहल पाठक था। इनके पिता भी अच्छे ज्योतिषी थे और सुधाकर द्विवेदीके मित्र थे। अतः इन्होंने अपने पुत्रको पढ़ानेके लिये द्विवेदीजीसे प्रार्थना की और इस प्रकार पाठकजी द्विवेदीजीसे अध्ययन करने लगे तथा ज्योतिषाचार्यकी उपाधि प्राप्त की।

खगोल विद्याके विशेष ज्ञानके लिये ज्योतिष शास्त्रमें उल्लिखित यन्त्रोंके निर्माणमें इनकी बड़ी रुचि थी। इन्होंने ही नाड़ीवलय यन्त्रका निर्माण किया था। इन्होंने धूपघड़ी (सन डायल)-के निर्माणके लिये एक संस्था भी स्थापित की थी, जिसके द्वारा निर्मित धूपघड़ियाँ काशी तथा इस नगरके बाहर भी स्थापित की गयीं। इन्होंने मण्डपकुण्डसिद्धि आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। इनके सुयोग्य पुत्र पण्डित गणेशदत्त पाठक उभयविध ज्योतिषके मर्मज्ञ विद्वान् हुए। पं० बलदेव पाठकजीके ही अन्यतम शिष्य हुए—पं० केदारदत्तजी जोशी, जिन्होंने मुनीश्वरद्वारा प्रणीत भास्कराचार्यके 'सिद्धान्तशिरोमणि' की 'मरीचि' व्याख्याका सुसम्पादित संस्करण दो खण्डोंमें प्रकाशित किया। [काशीकी पाण्डित्य-परम्परा]

काशीके कुछ अनोखे रत्न

(श्रीपण्डितराजजी)

(१) मृत्यु-विज्ञ

काशीमें महाश्मशानपर एक दरिद्र भिक्षुक ब्राह्मणने एक अपरिचित विद्वान्से एक पैसा माँगा। विद्वान्को दया आ गयी। उसने कहा—मैं आपको दो पैसा देता हूँ। एक पैसा यह तत्काल लीजिये और एक पैसेके लिये मेरे घर आइये। उन्होंने घरका पता बता दिया। उसे यह भी बता दिया कि वह ऐसा पैसा होगा कि तुम्हें भिक्षा माँगनेकी आवश्यकता न होगी। भिक्षुक उनके घर गया। विद्वान् महोदयने उसकी शिक्षाकी परीक्षा ली। परीक्षामें भिक्षुक असफल रहा। इसपर उसे आठ दिनमें गणित सिखाकर प्रश्नद्वारा निर्णयकी आपने शिक्षा दी। शिक्षा पूरी होनेपर यह आदेश दिया कि पाँच आनेसे अधिक मत लेना। भिक्षुक महाराज ब्रह्मनालमें सट्टीके पास ही बैठ गये। किसीको जाते हुए देखा। बोल उठे—'मुर्दा जा रहा है।' लोगोंने बड़ा डाँटा। अरे! सदेह आदमी जीता-जागता जा रहा है और उसे तुम मुर्दा कह रहे हो? मृत्यु-विज्ञने कहा '१५ पलकी देर है।' लोगोंका कुतूहल बढ़ा। उसके पीछे चले। वाणी ठीक थी। ६ मिनट बीतते-बीतते वह व्यक्ति गिरा और पंचतत्त्वको प्राप्त हो गया। फिर तो विद्वान् फूले न समाये। पाँच आनेमें मृत्युतिथि—यही उनका व्यवसाय हो गया, धन-यश दोनों प्राप्त था। यह घटना काशीकी है।

(२) दो बीड़ा पानसे अशर्फीतककी साइत

जग्गू सेठके अखाड़ेके पीछे गौरीनन्दन उपाध्याय एडवोकेटके पूर्व वंशमें एक पण्डित थे। काशी उन्हें 'व्रजवासी' नामसे पुकारती थी। वे केवल मुहूर्त बताते थे। मकानके नीचे कभी भी नहीं उतरते थे और न किसीसे बात-चीत करते थे। दो बीड़ा पानसे अशर्फीतककी साइत बताते थे। जितनी दक्षिणा दीजिये, उतना लाभ लीजिये। यजमानके पुकारनेपर ऊपरसे डलिया लटकाते थे। दक्षिणा देखकर ही साइत बताते थे। हिन्दीके प्रसिद्ध साहित्यकार जयशंकर प्रसादजीके पिताने एक गिन्नी रखकर साइत पूछी थी।

चोरकी साइत—एक बार एक चोरने एक रुपया रखकर मुहूर्त पूछा। साइत मिली, परंतु आदेश था कि रातको १२ बजे जो सामने आता हुआ दिखायी दे, उसे ही अपना धन जानना। निर्दिष्ट समयपर उसे एक गधा दिखायी पड़ा। उसपर एक कथरी पड़ी थी। चोर बड़ा बिगड़ा। उसी समय उसने आकर पण्डितजीको जगाया और बड़े उद्धत शब्दोंमें बोला—यही मेरा धन है?

हाँ, भाई! वही तुम्हारे लिये यथेष्ट है। उत्तर मिला। वह और बिगड़ा, परंतु पण्डितजीने फिर वही सधा हुआ उत्तर दिया। जब चोर क्रोधसे पागल हो गया तो पण्डितजीने कहा—अच्छा भाई! सौ रुपयेमें तुम गदहा बेचते हो? उसने प्रसन्न होकर कहा—'हाँ'। परंतु तुम्हें एक काम और करना होगा। गदहेके ऊपरकी कथरी फूँककर, तुम सौ रुपये मुझसे ले जाना और सारी राख आदि मुझे दे देना। उसने कहा—'ठीक है।' पण्डितजीने कहा—यह सौ रुपये लटका रहा हूँ, तुम उसे फूँको और जो कुछ मिले मेरी थैलीमें बाँध दो।

कथरीके फूँकनेपर उसमेंसे १००१ गिन्नियाँ निकलीं। चोर अवाक् रह गया। बाजी हार चुका था, परंतु पण्डितजीने कहा—अपना सौ रुपया ले जाओ, फिर किसी विद्वान्को झूठा न बनाना। उसने लाख सर पटका कि इसमेंसे आधी गिन्नियाँ पण्डितजी ले लें, परंतु उन्होंने इनकार कर दिया और सोने चले गये।

(३) साइत पूछकर युद्धमें भाग लेते थे

पिछले जर्मन महायुद्ध (सन् १९१४-१९१८ ई०)-में महाराज बीकानेर लड़ाईके मैदानमें कमाण्डर बनाकर भेजे गये। वे महामहोपाध्याय पण्डित श्रीअयोध्यानाथजीसे नित्यका फल पूछते थे और उन्हींके बताये हुए आदेशोंपर अभियान करते थे अथवा स्थिर रहते थे। इस कार्यके लिये पाँच रुपया नित्य वे दक्षिणा देते थे। चार वर्षतक लगातार यह क्रम जारी रहा। ज्योतिषीजीकी वाणी अक्षरशः सत्य निकलती रही।

ज्योतिषमें मिथिलाका अवदान

(डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक')

मिथिलामें ज्योतिषशास्त्रका प्रचार-प्रसार वैदिक-कालसे ही होता रहा है, ग्रन्थ-रचनाएँ भी यहाँ प्राचीन कालसे लेकर निरवच्छिन्न रूपसे आजतक होती चली आ रही हैं। इसी क्रममें १२वीं शताब्दीमें मिथिलाके नान्यवंशीय महाराज नरसिंहदेव (सन् ११३९ ई०)-के सभासद् चण्डेश्वराचार्यने सूर्यसिद्धान्तपर एक अत्युत्तम भाष्यकी रचना की थी। इनका यह भाष्य नेपालके राजकीय पुस्तकालयमें सुरक्षित है।

चण्डेश्वराचार्यके कुछ ही दिनों बाद आते हैं भीम शर्मा, जो १२वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें रामसिंहदेव (सन् ११९१ ई०)-के सभासद् थे और जिन्होंने अपने आश्रयदाताके आदेशपर 'भीमपराक्रम' नामक ग्रन्थकी रचना की थी। लगभग इसी समय, किंतु परवर्तीकालमें आचार्य जीवेश्वर नामके एक उत्कृष्ट दैवज्ञ हुए, जिनका 'रत्नशतक' नामक ग्रन्थ ज्योतिषके रत्नविषयक विधाकी अपूर्व रचना मानी जाती है। १४वीं शताब्दीके आदिमें सुप्रसिद्ध धर्मशास्त्री महामहत्तक (महथा) आचार्य चण्डेश्वर ठाकुर हुए। ये महाराज हरिसिंहदेव (सन् १२९५-१३२६ ई०)-के मन्त्री तथा महामहत्तक वीरेश्वर ठाकुरके पुत्र थे। ज्योतिषमें इनका 'कृत्यचिन्तामणि' ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध रहा है। मकरन्द उपाध्यायने पंचांग-निर्माणकी पद्धतिको जन्म दिया, जो 'मकरन्दसारिणी' के नामसे आज भी प्रचलित है। इसी ग्रन्थके आधारपर आजतक मिथिलामें पंचांग-निर्माण होता आ रहा है।

१५वीं शताब्दीके मैथिलदैवज्ञोंमें जहाँ भूमिभ्रमणकार गणपति, प्रश्नकौमुदीकार विभाकर (द्वैतविवेककार धर्मशास्त्री विभाकरसे भिन्न) तथा मुकुन्दविजयकार परमानन्द मिश्र उपाख्य परममिश्र विशेष उल्लेखनीय हैं; वहीं १६वीं शताब्दीके रघुनाथ शर्मा, महेश ठाकुर, शुभंकर ठाकुर, सुधाकर उपाध्याय, मोहन मिश्र आदि चर्चित रहे हैं। इनमें रघुनाथ शर्मा 'मणिप्रदीप' नामक करणग्रन्थके निर्माता तथा मीमांसक सोमभट्टके पुत्र थे। महाराज मिथिलेश म०म० महेश ठाकुरके पुत्र म०म० शुभंकर ठाकुर भी एक अच्छे ज्योतिषी थे। इनकी रचनाओंमें 'तिथिनिर्णय', 'श्रीहस्तमुक्तावली' आदि मुख्य हैं। म०म० सुधाकर उपाध्याय न्याय, व्याकरण एवं ज्योतिष तीनों ही विषयोंके पारगामी विद्वान् थे।

१६वीं शताब्दीमें विद्यमान रहे बलभद्र मिश्र ज्योतिषके एक अच्छे ज्ञाता एवं आचार्य थे। ज्योतिषमें 'प्रश्नभैरव' के रचयिता नारायणदासका समय भी १७वीं शताब्दी निर्धारित होता है। १८वीं शताब्दीमें मंगरौनी ग्रामवासी मचल उपाध्याय बहुत बड़े ज्योतिषी हुए, ये बुधवाल गंगौरामूलक म०म० राम झाके पुत्र और वंशधर झाके दौहित्र थे। पीछे मंगरौनीमें ही एक और ज्योतिर्विद् हुए, जो लालकविके नामसे प्रसिद्ध थे।

राजा-महाराजाओंमें भी महाराज बल्लालसेनने जहाँ लगभग आठ सहस्रश्लोकोंमें प्रायश: सभी पूर्ववर्ती ज्योतिर्विदोंके सिद्धान्तोंको अपने 'अद्भुतसागर' नामक ग्रन्थमें संग्रहीत किया है, वहीं राजा राममल्लने 'राममल्ली' नामक ज्योतिषग्रन्थका प्रणयन किया है।

अब यहाँ वर्णानुक्रमसे कुछ मैथिल ज्योतिषाचार्योंका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

१. अपूछ झा (२०वीं शताब्दी)—पं० उमादत्त झाके पुत्र, तार्किकप्रवर पं० राजा झाके अनुज और सुप्रसिद्ध वैयाकरण पं० खुद्दी झाके अग्रज थे—ज्योतिर्विद् अपूछ झा। इनका निवासस्थान मधुबनी जिलान्तर्गत कोकिलाक्ष या कोइलख ग्राम था। इनकी रचनाओंमें मुख्य हैं—निर्णयार्क और मकरन्दप्रकरण। कहते हैं रत्न-पहचानमें आपके समान पारखी उन दिनों मिथिलामें दो-चार ही थे।

२. कमलनयन मिश्र (१८वीं शताब्दी)—कलकत्ता संस्कृत कॉलेजके प्राध्यापक पं० बबुआजी मिश्र उपाख्य श्रीकृष्ण मिश्रके प्रपितामह और ज्योतिषके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० कमलनयन मिश्र सोदरपुर कटका मूलक पं० धरणीधर मिश्रके पुत्र थे। आप 'जन्मपद्धति', 'भास्वतीटीका' आदिके कर्ता थे।

३. कलाधर (१८वीं शताब्दी)—'शिशुबोध' नामसे यद्यपि अनेक लोगोंने ज्योति:शास्त्रमें रचनाएँ की हैं, उनमें आप विशिष्ट हैं।

४. कालिदास—कालिदास ज्योतिषके महान् पण्डित थे, जिनका 'ज्योतिर्विदाभरण' ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। '**धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्टघटखर्प्पर-कालिदासा:.....**'—यह सुप्रसिद्ध श्लोक भी इसी ज्योतिर्विदाभरणका है। रघुवंशादि महाकाव्योंके प्रणेता महाकवि कालिदास और 'ज्योतिर्विदाभरण' ग्रन्थके रचयिता कालिदास—दोनोंका समय अलग-अलग है।

५. काशीनाथ उपाध्याय—ज्योतिर्विद् काशीनाथ उपाध्यायकी प्रश्नप्रदीप, शीघ्रबोध, लग्नचन्द्रिका आदि पाँच कृतियाँ हैं; जिनमें ये ही तीन उपलब्ध होती हैं।

६. कृष्णदत्त उपाध्याय (१९वीं शताब्दी)—इस नामके मिथिलामें कई आचार्य हुए हैं, किंतु दरभंगा जिलेके भखराइन ग्रामवासी दैवज्ञ कृष्णदत्त उपाध्याय इनसे भिन्न हैं, ये 'चापप्रपंच' तथा 'जातकझोड' के रचयिता हैं। आप क्वीन्स कॉलेज वाराणसीमें वर्षोंतक ज्योतिषविभागाध्यक्ष रहे।

७. गोकुलनाथ उपाध्याय—आप न्याय, व्याकरण, साहित्यादि शास्त्रोंके साथ-साथ ज्योतिषके भी मर्मज्ञ पण्डित थे। आपकी 'मकरन्दवासना' मकरन्दकृत तिथि-पत्रकी व्याख्या है, जो अपने-आपमें किसी भी मौलिक ग्रन्थसे कम नहीं है, इनकी ज्योतिषशास्त्रमें दूसरी रचना है—'दिक्कालनिरूपण।'

८. महर्षि गौतम—गौतम भले ही न्यायदर्शनके जनक रहे हों, पर वे ज्योतिषके भी मूर्द्धन्य आचार्य और ग्रन्थकार थे, इनके ज्योतिषशास्त्रमें दो ग्रन्थ पाये जाते हैं—पाशाकेरलीयम् एवं शकुनाध्याय। महर्षि गौतमके प्रसंगमें बस इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वे मिथिलाके ब्रह्मपुर (ब्रह्मपुरी) नामक ग्रामके वासी थे, जहाँ गौतमके नामपर 'गौतमकुण्ड' और अहल्याके नामपर 'अहल्यास्थान' आज भी दरभंगा जिलेमें सुप्रसिद्ध हैं। इनके पुत्र शतानन्द मिथिलेश राजर्षि जनकके पुरोहित एवं कुलपूज्य थे।

९. चक्रपाणि—कहते हैं 'द्रौपदीपरिणयकार' चक्रपाणिदत्त ही ज्योतिर्विद् चक्रपाणि हैं। आपने 'प्रश्नतत्त्व' नामक पुस्तककी रचना की थी।

१०. चतुर्भुज मिश्र—२०वीं शताब्दीमें चतुर्भुज मिश्र नामक एक ज्योतिषाचार्य दरभंगा शहरके लालबाग मुहल्लेमें हुए। ये अपने ही घरपर रहकर छात्रोंको नि:स्वार्थ विद्यादान देते थे। इन्होंने 'अद्भुतसागर' नामसे प्रसिद्ध ग्रन्थकी रचना की।

११. चिरंजीव मिश्र—आप अपने समयके महान् ज्योतिषी और दरभंगा मण्डलके पं० पूर्णानन्द मिश्रके पुत्र थे। 'शरच्चन्द्रोदय' आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

१२. जयकृष्ण झा (१७वीं शताब्दी)—कर्माहाबेहटमूलक वत्सगोत्रीय १७वीं शताब्दीके म०म० जयकृष्ण उपाध्याय (झा) ज्योतिषके निविष्ट विद्वानोंमें परिगणित किये जाते हैं। 'बालबोधिनी' की उपलब्धिसे आपका ज्योतिषशास्त्रीय पाण्डित्य प्रमुखतासे प्रखर दिखता है। म०म० राघवके पुत्र वंशीधर, जो बनाईं झा नामसे प्रसिद्ध थे, आपके पिता थे।

१३. जीवनाथ झा—इस नामके विभिन्न शास्त्रोंमें, विभिन्न समयोंमें, विभिन्न व्यक्ति और आचार्य हुए हैं। जिनमें चन्द्रदत्त झाके भ्रातृज एवं आँखी झा नामसे प्रसिद्ध म०म० जीवनाथ, दरिहराकुलसम्भूत जीवनाथ, ज्योतिर्विद् नीलाम्बर झाके अनुज जीवनाथ आदि मुख्य हैं। इनमें बादके दोनों दैवज्ञ ज्योतिषके प्रकाण्ड पण्डित थे। दरिहराकुलसम्भूत जीवनाथ 'शुद्ध्यशुद्धिविचार' ग्रन्थके प्रणेता हैं।

१४. जीवनाथ झा (१९वीं शताब्दी)—पटना मण्डलके जीवनाथ झा, पं० शम्भुनाथ झाके पुत्र और सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् पं० नीलाम्बर झाके अनुज थे। इनके पिता शम्भुनाथ झा स्वयं एक अच्छे ज्योतिषी थे, इनका परिचय हमें इनकी तत्त्वदीपिकाकी पुष्पिकासे चलता है। ये भावप्रकाश, भावकुतूहल, दीक्षातत्त्वप्रकाश, प्रश्नभूषण, वनमाला, बीजगणित-सुबोधिनी, जन्मपत्रीविधान, तत्त्वदीपिका, वास्तुरत्नावली, मकरन्दतिथिपत्रव्याख्या आदि ग्रन्थोंके निर्माता हैं।

१५. दुल्लह झा—ज्योतिषमार्तण्ड दुल्लह झा मधुबनी जिलेके कोइलख (कोकिलाक्ष) ग्रामनिवासी

थे। इन्होंने ‘श्रीपतिपद्धति’ तथा ‘ताजिक नीलकण्ठी’ की व्याख्या की थी।

१६. धर्मेश्वर उपाध्याय—१८वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें स्थित रहे ज्योतिर्विद् धर्मेश्वर उपाध्याय केशवकृत ‘जन्मपद्धति’ के व्याख्याता हैं। यह व्याख्या वासनाभाष्य नामसे प्रसिद्ध है। इनके पिताका नाम रामचन्द्र और गोत्र वत्स था।

१७. धीरेश्वर उपाध्याय (१३वीं शताब्दी)—गढ़विसफी मूलक महावार्तिक नैबन्धिक धीरेश्वर ठाकुरसे भिन्न ज्योतिर्विद् धीरेश्वर ‘बुद्धिप्रदीप’ नामक ग्रन्थके प्रणेता हैं। इनका उपनाम ‘धीरेश’ था।

१८. नरपति उपाध्याय—‘स्वरोदय’ किं वा ‘नरपतिजयचर्या’ नामक ज्योतिषग्रन्थके कर्ता नरपति उपाध्याय, तरौनी ग्रामवासी साहित्यिक नरपत्युपाध्यायसे भिन्न, राजा अजयपालके सभासद् थे।

१९. नरसिंहदत्त मिश्र—आप वैयाकरण हरदत्तसे भिन्न किसी दूसरे हरदत्त मिश्र नामक अज्ञात मैथिल विद्वान्‌के पुत्र थे। आपने मकरन्दसारिणीकी ‘उपपत्ति’ नामक व्याख्या रची एवं बालकोंको ज्योतिषकी शीघ्र शिक्षा देनेके लिये आपने ‘ज्योतिषशिक्षा’ बनायी थी।

२०. नरहरि मिश्र (१५ वीं शताब्दी)—इस नामसे यद्यपि अनेकों विद्वान् हो गये हैं, जिनमें आप महाराज भैरवसिंह एवं उनके पुत्र महाराज कुमार रामभद्रसिंहके आश्रित थे। आप धर्मशास्त्री वाचस्पति मिश्रके पुत्र थे। इन्होंने ‘स्वरोदय’ नामक ग्रन्थकी व्याख्या लिखी है, जो नरपति उपाध्यायके स्वरोदयसे भिन्न और बृहद् है। किसीने इन्हें ‘अहिबलचक्रम्’ के रचयिता नरहरिसे भिन्न तो किसीने अभिन्न माना है।

२१. नाह्निदत्त (१६वीं शताब्दी)—इनका पूरा नाम या परिचय ज्ञात नहीं है, किंतु इनकी दो रचनाएँ मिलती हैं—‘बालबोधिनी’ और ‘पंचविंशतिका’ अर्थात् ‘नाह्निपंचीशी’।

२२. निधिनाथ उपाध्याय—आचार्य जनसीदनजीने जिन निधिनाथ (झा) उपाध्यायको मुजफ्फरपुर-मण्डलान्तर्गत गोरौल ग्रामवासी और धर्मसमाज संस्कृत-महाविद्यालयका अध्यापक माना है, उन वैयाकरणाचार्यसे प्रस्तुत निधिनाथ उपाध्याय न केवल भिन्न हैं, अपितु प्राचीन भी हैं। ‘प्रश्नविबोधिनी’ नामक प्रबन्ध इन्होंने रचा है।

२३. नीलकण्ठ उपाध्याय (१७वीं शताब्दी)—ताजिक नीलकण्ठीकारसे भिन्न आप ‘श्रीकण्ठ’ उपनामसे प्रसिद्ध थे। ज्योतिर्विद् नीलकण्ठ उपाध्याय करमाहा बेहटवंशीय वत्सगोत्रीय बिट्ठो निवासी म०म० हृषीकेशके पौत्र एवं म०म० राघवलक्ष्मीदेवीके पुत्र थे। ज्योतिर्विद् रुचिपति और म०म० इन्द्रपति क्रमशः आपके पुत्र एवं पौत्र थे। कुछ लोगोंके मतमें ‘कल्याणसौगन्धिक’ के रचयिता भी आप ही हैं। आप मध्यमग्रहसिद्धि, ज्योतिःसौख्य, जातकपद्धति आदि ग्रन्थोंके रचयिता थे।

२४. नीलाम्बर झा—नैयायिक नीलाम्बर झासे भिन्न ज्योतिर्विद् नीलाम्बर झा (सन् १८२३ ई० में जन्म)-की प्रतिभा ज्योतिषके सिद्धान्तपक्षमें सर्वाधिक और विलक्षण थी। अपने समयमें आप पौरस्त्य और पाश्चात्यगणितके महामनीषी माने जाते थे, जबकि तन्त्रविद्यामें भी आपका तलस्पर्शी ज्ञान बताया जाता है।

काशीके सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० बापूदेव शास्त्रीजीके आप शिष्य थे और उन्हींकी प्रेरणासे सन् १८७१ ई० में आपने यूरोपीयपद्धतिपर ‘गोलप्रकाश’ नामक एक विलक्षण ग्रन्थकी रचना की थी, इसीका एक भाग ‘चापीय त्रिकोणमिति’ के नामसे विद्वज्जनोंके सामने आया।

इन्होंने ‘गोलीय रेखागणित’-जैसे अनेक सिद्धान्त-सम्बन्धी ग्रन्थोंकी रचना की थी। आपकी अन्य रचनाओंमें मुख्य हैं—चापीयत्रिकोणगणित, जन्मपत्रोदाहरण, लल्ला-चार्यके ‘दृक्कर्म’ और ‘वलन’ की व्याख्याएँ, भास्करा-चार्यके प्रश्नाध्यायकी व्याख्या ‘ज्योत्पत्ति’, कमलाकरकृत प्रश्नाध्यायकी ‘तत्त्वविवेक’ व्याख्या, मकरन्दपर ‘मकरन्दवासना’, लीलावतीकी ‘उपपत्ति’ व्याख्या आदि।

२५. पद्मनाभ—दैवज्ञ पद्मनाभ नर्मदा देवीके पुत्र थे। इन्होंने ‘ध्रुवभ्रमणयन्त्र’ नामक ग्रन्थकी रचना की है।

२६. पद्मनारायण राय—पद्मनारायण राय पूर्णिया जिलेके सौरिया रियासतके जमींदार थे, इन्होंने ‘शिशुबोध’ नामक ग्रन्थकी रचना की है।

२७. परमानन्द ठाकुर (१६वीं शताब्दी)—मिथिलानरेश म०म० महेश ठाकुरके पुत्र और पलिवार महिषी (महिषीपाली)-मूलक शिवसुतदामू उपाध्यायके दौहित्र थे—'सिद्धान्तसुधाकार' परमानन्द ठाकुर। आप अपने समयके अद्वितीय सिद्धयोगी और विभिन्न शास्त्रोंके निष्णात पण्डित थे। ज्योतिषमें आपका सिद्धान्तसुधारत्न (अथवा सिद्धान्तसुधा) निश्चय ही अद्वितीय कृति है।

२८. पक्षधर उपाध्याय—मिथिलामें 'पक्षधर' नामके अनेक विद्वान् हुए हैं, किंतु ज्योतिर्विद् प्रकृत पक्षधर (१५वीं शताब्दी)-ने 'शिशुबोध' नामक ग्रन्थकी रचना की थी।

२९. प्राणधर मिश्र—आपने ज्योतिषमें 'जातक-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ रचा है।

३०. बलदेव मिश्र—राजपण्डित बलदेव मिश्रसे भिन्न आप ज्योतिषके 'त्रिकोणमिति', भास्करीय 'बीजगणित' आदिके रचयिता तथा सहरसाके वनगाँव ग्राम निवासी थे। आपका जन्म सन् १८७१ ई० में ०१ नवम्बरको हुआ था तथा प्रारम्भिक शिक्षा अपने ही गाँवमें पानेके बाद आप आगेकी पढ़ाईके लिये काशी आ गये और म०म० पं० सुधाकर द्विवेदीसे ज्योतिषका सम्यक् अध्ययन करने लगे। सन् १९३३ ई०में हुए ज्योतिष-सम्मेलनमें आप जहाँ सिद्धान्तपक्षके प्रतिनिधि थे, वहीं सन् १९५० ई० में हुए प्राच्यविद्या महाधिवेशनमें ज्योतिष विभागीय अध्यक्ष भी बनाये गये थे। सन् १९४८ एवं १९५१ ई० में जब क्रमश: विजयवाड़ा एवं पुरीमें अ०भा० पंचांगकार सम्मेलन हुआ तो आपकी भी उसमें सक्रिय सहभागिता थी।

आपकी रचनाओंमें त्रिकोणमिति तथा भास्करीय बीजगणितकी टिप्पणी तो है ही, आपने अपने गुरु सुधाकरद्विवेदी-कृत दीर्घवृत्ति, चलन-कलन तथा चलन-राशिकलनका विद्वत्तापूर्ण सम्पादन भी किया है। साथ ही आर्यभटीयम्की संस्कृत-हिन्दी व्याख्या करनेके बाद 'सरल त्रिकोणमिति' के नामसे एक पृथक् ग्रन्थकी भी रचना की थी।

३१. भरत उपाध्याय—ये माण्डरवंशीय काश्यप-गोत्रीय पं० यशोधर उपाध्यायके पुत्र और पं० श्रीराम उपाध्यायके अनुज थे। इन्होंने न केवल रामचन्द्रकृत समरसारकी व्याख्या की, बल्कि 'रसाला' नामक एक स्वतन्त्र कृतिकी भी रचना की थी।

३२. भवेश उपाध्याय—बेलौंचयमूलक भारद्वाज-गोत्रीय भवेश उपाध्याय नारी-भदौन ग्रामवासी थे। ये थे तो मूलत: वैयाकरण, पर ज्योतिषमें भी इनकी अबाध गति थी। आपने श्रीपतिकृत 'जन्मपद्धति' एवं भास्कराचार्यकृत 'लीलावती' पर अलग-अलग व्याख्याओंकी रचना की है।

३३. भानुनाथ दैवज्ञ—ज्योतिर्विद् भानुनाथ उपाख्य भाना झा खौआलवंशीय पिलखवार ग्रामवासी म०म० दीनबन्धु प्रसिद्ध नेनन उपाध्यायके पुत्र थे। ज्योतिषमें आपका बनाया हुआ 'व्यवहाररत्न' प्रसिद्ध है।

३४. मधुसूदन झा (१९वीं शताब्दी)—विद्यावाचस्पति मधुसूदन झा (या ओझा) रहते तो थे जयपुरमें, पर निवासी थे—सीतामढ़ी मण्डलके। मूलत: वैदिक और वैयाकरण झाजी ज्योतिषके भी अच्छे जानकार थे, बल्कि 'कादम्बिनी' नामक ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थके रचयिता भी थे।

३५. मधुसूदन मिश्र—'ज्योतिषप्रदीपांकुर' ग्रन्थके रचयिता मधुसूदन मिश्र न केवल ज्योतिषी थे, बल्कि उद्भट धर्मशास्त्री भी थे।

३६. मुकुन्द झा—'मुकुन्द झा ज्योतिषी' नामसे प्रसिद्ध आप मधुबनी जिलेके राँटी ग्रामवासी थे। ज्योतिष-विषयक 'जन्मचिन्तामणि' आपका अद्भुत ग्रन्थ है।

३७. मुरलीधर झा—ज्योतिर्विद् गुरुभक्त मुरलीधर झाका जन्म वर्तमान मधुबनी जिलेके भराम नामक ग्राममें पं० चानन झाके घर सन् १८६९ ई० में हुआ था। बालक मुरलीधरके नाना और मामा दोनों ज्योतिषी थे, साथ ही चानन झाके अनुज अर्थात् आपके चाचा विद्यानाथ झा भी अपने समयके मूर्द्धन्य ज्योतिर्विद् माने जाते थे। फलत: आपकी भी अभिरुचि ज्योतिषविद्याके प्रति जगी। प्रारम्भिक शिक्षाके बाद सन् १८८५ ई० में आगेकी पढ़ाईके लिये आप वाराणसी आ गये। यहीं सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् म०म० पं० सुधाकर द्विवेदीजीके श्रीचरणोंमें बैठकर ज्योतिषका अध्ययन किया।

आपने अपने गुरु द्विवेदीजीके ग्रन्थोंपर तो टीका की ही है, सिद्धान्तज्योतिषके अन्य ग्रन्थोंपर भी आपकी विलक्षण टीकाएँ हैं। अबतक अप्रकाशित वराहमिहिरकी 'बृहत्संहिता' को आपने अपने वैदुष्यसे न केवल सुसंशोधित किया, बल्कि उसका विद्वत्तापूर्ण सम्पादन भी किया। इसके अतिरिक्त शिवस्वरोदयकी हिन्दी व्याख्या, लीलावती 'उपपत्ति', बीजगणित टिप्पणी, सिद्धान्त-तत्त्वविवेक, बापूदेव शास्त्रीकृत त्रिकोणमितिका सावतरण सम्पादन, अर्जुनतपस्या (मैथिली उपन्यास), हितोपदेश, मैथिली व्याकरण, मिथिलामोद (मैथिली पत्रिकाका सम्पादन) आदि आपके उल्लेखनीय कृत्य हैं।

३८. राघव झा—सुप्रसिद्ध धर्मशास्त्री राघव झासे भिन्न ज्योतिषी राघव झाका पूरा नाम 'राघवानन्द' और निवासस्थान तरौनी था, परंतु ये 'राघव' नामसे ही प्रसिद्ध थे। ज्योतिषमें इन्होंने 'जातकपद्धति' नामक ग्रन्थकी रचना की थी।

३९. रामचन्द्र उपाध्याय—इनका 'समरसार' स्वरादेयशास्त्रका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

४०. लक्ष्मीदास मिश्र (१५वीं शताब्दी)—अभिनव वाचस्पति मिश्र (धर्मशास्त्री)-के ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीदास मिश्र, स्वरोदयकार नरहरिके अग्रज हैं। इन्होंने भास्कराचार्यकृत सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थकी 'गणित-तत्त्वचिन्तामणि' नामसे एक व्याख्याकी रचना की है।

४१. वररुचि—वररुचि विक्रमादित्यके नवरत्नोंमें अन्यतम हैं, पर ज्योतिर्विद् वररुचि विवादास्पद हैं। कुछ लोग जहाँ उन्हें विक्रमसभ्य वररुचिसे भिन्न नहीं मानते, वहीं कुछ विद्वान् इन्हें उनसे अर्वाचीन, शक सं० १४१३ में विद्यमान मानते हैं। साथ ही कुछ विद्वानोंके मतमें मुहूर्तभार्गवकार वररुचि तथा वाक्यकरणकार वररुचि भी एक नहीं हैं। फिर भी निश्चय रूपसे कुछ कहना कठिन है।

४२. वसन्त मिश्र—दैवज्ञशिरोमणि वसन्त मिश्र 'जातकचन्द्रिकाकार' आचार्य प्राणधर मिश्रके पौत्र एवं शूलपाणि मिश्रके पुत्र थे। इनकी माताका नाम सची देवी और मातामहका नाम गंगाधर था। 'जातकदर्पण' की रचना आपने काशीमें ही की थी।

४३. विद्याकर मिश्र—विद्याकरसाहस्रक ग्रन्थके रचयिता श्रीविद्याकर मिश्रने अनेक ग्रन्थोंपर टीकाएँ लिखी हैं। ज्योतिषमें आपकी गहन पैठ थी। भास्कराचार्यके 'ऋतुवर्णन' पर आपने एक विलक्षण व्याख्या लिखी है।

४४. श्रीदत्त उपाध्याय—धर्मशास्त्री श्रीदत्त मिश्रसे भिन्न इनके बारेमें कहा जाता है कि श्रीदत्त उपाध्याय दरिहरामूलक विभूति थे, परंतु कुछ लोगोंने इस मतका खण्डनकर इन्हें खौआलवंशीय बताया है, परंतु उत्पलभट्ट-कृत 'सप्तति' पर अपनी विवृति लिखनेवाले श्रीदत्त निश्चय ही १४वीं शताब्दीमें हुए हैं। ये अपने समयके महान् दैवज्ञ थे तथा 'सप्तपादार्थिक', 'समयप्रदीप' आदिके कर्ता भी।

४५. श्रीनिवास मिश्र—१६वीं शताब्दीमें मिथिलाके 'सिंघासो' ग्रामवासी श्रीनिवास मिश्र कालिदासकृत 'सेतुबन्ध' नामक प्राकृत महाकाव्यकी 'सेतुदर्पणी' नामक टीकाके रचनाकार हैं। इन्होंने ज्योतिषमें 'अद्भुतसागर' और 'शुद्धिदीपिका' की रचना की थी।

४६. सीताराम झा—आधुनिक मैथिल ज्योतिषियोंमें सर्वाधिक प्रसिद्धि पं० सीताराम झाको ही मिली है, जिन्होंने म०म० पं० मुरलीधर झाके बाद काशीमें ज्योतिष विद्याके माध्यमसे मिथिलाका प्रतिनिधित्व भी किया।

आपने बहुत सारे ग्रन्थोंकी व्याख्या की, अनेक ग्रन्थोंका सम्पादन किया और स्वयं भी मौलिक कृतियोंकी रचना की। आपकी संस्कृत रचनाओंमें गणितसोपान, गोलपरिभाषा, जन्मपत्रविधान, गणितचन्द्रिका, गोलबोध, ग्रहफलदर्पणम्, अहिबलचक्र, ताजिकनीलकण्ठी, बृहज्जातक, सूर्यसिद्धान्त, मुहूर्तमार्तण्ड, मानसागरी, जातकाभरण आदिकी व्याख्याएँ मुख्य हैं। आपके सम्पादनमें बृहत्पाराशरहोराशास्त्रके अनुशीलनसे आपकी वैदुषीका परिचय सहज प्राप्त हो जाता है। व्यवहारविवेक, केशवीयजातकपद्धति, खेटकौतुक, गर्गमनोरमा, ग्रहलाघव, जातकालंकार, लघुजातक, जैमिनिसूत्र, भावफलाध्याय, मुहूर्तचिन्तामणि, रेखागणित, लग्नवाराही, लघुपाराशरी, लीलावती, सारावली, शीघ्रबोध आदि ग्रन्थोंपर भी आपने अपनी सिद्धहस्त लेखनी चलायी है। १५ जून, सन्

१९७५ ई० को काशीमें आपकी इहलौकिक लीला समाप्त हो गयी।

४७. हरदत्त ठाकुर (१४वीं शताब्दी)—बिसइवार बिसफीमूलक दैवज्ञशिरोमणि हरदत्त ठाकुर कर्मादित्य ठाकुरके पौत्र एवं सान्धिविग्रहिक देवादित्यके पुत्र थे और ये 'स्थानान्तरिक हरदत्त' नामसे ख्यात थे। इन्होंने 'गणितनाममाला' और 'दैवज्ञबान्धव'—इन दो ज्योतिष-शास्त्रीय ग्रन्थोंकी रचना की है।

४८. हरपति उपाध्याय (१५वीं शताब्दी उत्तरार्ध)—आगमाचार्य हरपति खौआड़य बेजौलीमूलक काश्यपगोत्रीय म०म० रुचिपतिके कनिष्ठ पुत्र थे। श्राद्धदर्पणकार म०म० धनपति इन्हींके अग्रज थे। आगममें 'मन्त्रप्रदीप' और ज्योतिषमें 'व्यवहारप्रदीप' या 'व्यवहार-प्रदीपिका' नामक ग्रन्थोंका प्रणयन इन्होंने किया था।

४९. हरिनाथ उपाध्याय (१३वीं शताब्दी)—परमनिविष्ट धर्मशास्त्री और 'स्मृतिसार' के रचयिता हरिनाथ उपाध्यायकी ज्योतिषशास्त्रमें भी एक रचना प्राप्त होती है—'संकेतकौमुदी'। एक और ज्योतिष रचनाका नाम सुना जाता है 'ज्योति:सार', पर यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

५०. हेमांगद ठाकुर (१६वीं शताब्दी)—ज्योतिर्विद् हेमांगद ठाकुरका जन्म मिथिला राजवंशमें हुआ था। म०म० महेश ठाकुरके पौत्र और म०म० गोपाल ठाकुरके पुत्र म०म० हेमांगद ठाकुरने सन् १५७१ ई० में अपने पितासे मिथिला-राज्यकी गद्दी प्राप्त की थी। उन दिनों दिल्लीमें अकबर बादशाहका शासन था। मिथिला राज्यपर बहुत दिनोंका शाही कर बाकी था। मिथिलेशके पास उसे चुकानेका आदेश आया, पर ये समयपर चुका न सके। फलत: इन्हें दिल्ली ले आया गया और कारागारमें बन्द कर दिया गया। ये कारागारकी दीवारपर कुछ लिखते चले गये, बादमें लेखन-सामग्री भी मिली। लेकिन भूखे-प्यासे आप लिखते ही रहे, गणना करते रहे, जिससे जेल-कर्मचारियोंको लगा कि राजासाहब पागल हो गये। इसकी खबर बादशाहतक भी पहुँची तो वह स्वयं इन्हें देखने आया।

बादशाहने पूछा—'क्या हो रहा है?' इसपर हेमांगद ठाकुरने जबाब दिया—'गणना कर रहा हूँ जहाँपनाह!'

'किस बातकी गणना?'

'जहाँपनाह! एक हजार वर्षके ग्रहण-विचारपर पुस्तक लिख रहा हूँ, उसीसे सम्बन्धित गणना, जहाँपनाह!'

'अगर आप ज्योतिषी हैं तो बतायें कि ग्रहण कब लगेगा?' इस प्रश्नका इन्होंने जब जवाब दे दिया तो इन्हें छोड़ दिया गया और कहा गया—'यदि उस दिन ग्रहण लग गया तो सात वर्षोंसे बाकी शाही कर सात लाख रुपया माफ कर दिया जायगा और नहीं तो दण्ड-स्वरूप करको दूना कर दिया जायगा।' फिर क्या था? ये लग गये अपने इष्टदेवकी आराधनामें कि यदि उस दिन मेरी लाज रह गयी तो मिथिला जाकर हम आपकी पूजा करवायेंगे, जो आजतक कहीं नहीं हुई है।

भगवान्ने इनकी सुन ली और मिथिला आकर इन्होंने एक विद्वत्सभा बुलायी, जिसमें यह तय हुआ कि अबसे मिथिलामें भाद्रशुक्ल चतुर्थीको प्रतिवर्ष चतुर्थीचन्द्र (चौठ चन्द्र)-की पूजा की जायगी और वह आजतक निरवच्छिन्न रूपसे चली आ रही है।

वही हजारवर्षके ग्रहणपर लिखा गया ग्रन्थ 'ग्रहणमाला' है, जिसका दूसरा नाम 'राहूपरागपंजी' भी कहा जाता है।

अन्य ज्योतिर्विद्

अज्ञातकालिक बैद्यनाथ एवं मुरलीधर ठाकुरका जहाँ 'ताराचन्द्रोदय' तथा 'परवलयक्षेत्रम्' सुप्रसिद्ध हैं, वहीं अज्ञातनामा आचार्यकी 'ग्रहमंजरी' ज्योतिर्विज्ञानकी अन्यतम रचना कही जाती है। १८वीं शताब्दीके अन्तमें विद्यमान रहे प्रसिद्ध ज्योतिषी बबुआ झा काशीनरेश उदितनारायण सिंह (सन् १७८३-१८३५ ई०)-के आश्रित थे। इनके बाद १९वीं शताब्दीमें हुए दैवज्ञ दामोदरमिश्रकी 'लीलावती वासना', मोदनाथ झा की 'ताजिकचिन्तामणि' उल्लेखनीय रचनाएँ हैं; तूफानी झाका लिखा 'अब्दचिन्तामणि' ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

इन्हीं तूफानी झाके पुत्र नागेश्वर झा अपने समयमें फलितज्योतिषके प्रमाणित आचार्य माने जाते थे। इसी समयमें स्थित रहे नेपाल राज्यके तिलाठी ग्रामनिवासी

ज्योतिर्विद् नन्दकिशोर मिश्र, ज्योतिर्विद् पं० यदुनन्दन मिश्र, पं० परमेश्वरदत्त मिश्र अच्छे ज्योतिषी थे।

माधवपुर, दरभंगाके बाबूजी पाठक और गुर्म्हा-पचाढ़ीके बच्चेलाल झा प्रसिद्ध ज्योतिषियोंमें अग्रगण्य थे।

महाराज महेश्वर सिंहके आश्रित पूजापंकजभास्करकार ज्योतिषी मुक्तेश्वर झा नवानी ग्रामके निवासी थे। इनके मित्र और ग्रामीण ज्योतिर्विद् नन्दी झा भी प्रखर दैवज्ञ थे।

आचार्य द्रव्येश्वर झा तथा मानेचक-निवासी पं० शशिपाल झा सिद्धान्तदृग्गणितमें विलक्षण प्रतिभाशाली थे।

पं० रामप्रसन्न झा अपने गाँव बाघी (मुजफ्फरपुर)-के जमींदार बाबू रामधारी प्रसादकी आर्थिक सहायतासे पंचांग छपवाकर लोगोंमें निःशुल्क बाँटते थे। मुजफ्फरपुरके ही लावापुर-निवासी ज्योतिषी रघुनन्दन झा अपने शास्त्रमें तो निविष्ट थे ही, धर्मशास्त्रमें भी परम व्युत्पन्न थे। ये भी प्रतिवर्ष पंचांग निकालकर लोगोंमें बाँटते थे। दरभंगाके रामभद्रपुर ग्राम-निवासी ज्योतिर्विद् जगदीश झा, चनौर (मनीगाछी)-के पं० नन्दलाल झा अच्छे पौराणिकके साथ-साथ निविष्ट ज्योतिषी भी थे। पं० गेनालाल चौधरी नामक एक परम प्रतिष्ठित ज्योतिषी हुए, जो काशीमें ज्योतिषके अध्यापक थे। सकरी (दरभंगा)-के पासके कन्हौली ग्राम-निवासी ज्योतिर्विद् श्रीनन्दन झा, ज्योतिषाचार्य पं० सीताराम झा (चौगमा)-के गुरु थे; उन दिनों इनकी गणना महान् ज्योतिर्विदोंमें हुआ करती थी।

म०म० मुरलीधर झाके शिष्य पं० गंगाधर मिश्रने सिद्धान्ततत्त्वविवेक-वासना, नीलकण्ठीकी व्याख्या, वास्तवचन्द्रशृंगोन्नतिवासना, प्रतिभाबोधकवासना, कृत्यसार टिप्पणी आदि कई ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं।

२०वीं शतीके मूर्द्धन्य ज्योतिषियोंमें पं० कुशेश्वर कुमार, पं० षडानन झा, दैवज्ञप्रवर पं० सुन्दरलाल झा, पं० गंगाधर झा, शम्भुनाथ झा, ललितनाथ, पं० विश्वेश्वर झा आदि प्रमुख हैं। विगत शताब्दीमें मिथिलामें और भी कई ग्रन्थकार ज्योतिर्विद् उल्लेखयोग्य हुए हैं, यथा—मुरलीधर ठाकुर, बलदेव मिश्र, बुद्धिनाथ झा, दयानाथ झा, युगेश्वर झा, देवचन्द्र झा (नगवास), कपिलेश्वर चौधरी, लखनलाल झा, दीनानाथ झा, चन्द्रशेखर झा, मधुकान्त झा तथा पं० अच्युतानन्द झा आदि।

ज्योतिष-जगत्के सूर्य—पं० श्रीसूर्यनारायणजी व्यास

(डॉ० श्रीराजशेखरजी व्यास)

एक भारतीय यूरोपकी यात्रा कर रहे थे। उस दिन

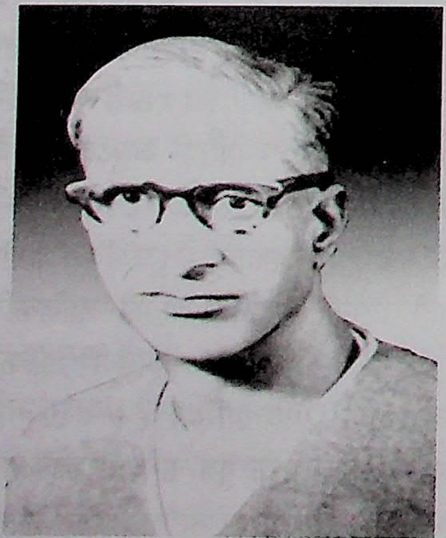

वे ग्रीनविचकी विश्वविख्यात वेधशाला, जो सारे संसारके समय (टाइम)-का निर्धारण करती है, देखने गये थे। वेधशालाके संचालक यह समझ गये थे कि ये कोई भारतके प्रभावशाली लेखक और विद्वान् हैं, इसलिये उन्हें आदर से विभिन्न विभाग दिखा रहे थे, पर सूर्य-अनुसन्धान-विभागमें जाकर तो यह आदर आश्चर्यमें परिणत हो गया।

एक दर्जनसे अधिक विद्वान् लम्बी मेजपर झुके कुछ चित्रोंपर तल्लीन मुद्रामें शोधकार्य कर रहे थे। संचालकने इस कार्यको अपनी वेधशालाका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य बताया। लगभग दो साल पहले सूर्यके चारों ओर कुछ धब्बे दिखायी दिये थे और वेधशालाके दूरवीक्षण-विभागमें उन धब्बोंके चित्र लिये गये थे।

उन्हीं चित्रोंका रहस्य खोजनेमें ये विद्वान् लगे हुए थे।

भारतीय दर्शकके अधरोंपर एक मीठी मुसकानकी रेखा खिल गयी। संचालक चौंके, 'क्या आप इस सम्बन्धमें कुछ जानते हैं?' आश्चर्यसे उन्होंने पूछा।

'हाँ, भारतका ज्योतिषशास्त्र इस सम्बन्धमें सब कुछ जानता है।' भारतीय दर्शकने उत्तर दिया और कोई दो घंटेमें यह भी बताया कि वे धब्बे कब, क्यों आते हैं और अब कब आयेंगे। उस विभाग की खोज पूर्ण हुई ।

संचालकने आग्रहसे अनुरोध किया कि आप हमारे विभागके साथ अपना एक फोटो खिंचवानेकी कृपा करें। फोटो खिंच गया और प्रशंसाभरे परिचयके साथ यूरोपके अनेक पत्रोंमें छपा। संचालकके लिए मुग्ध कर देनेवाली बात यह थी कि भारतीय दर्शकने उत्तर और समाधान इस शालीनताके साथ दिये थे कि उससे स्वयं दर्शककी विशेषताका नहीं, भारतीय ज्योतिषशास्त्रकी विशेषताका बोध होता था। ये भारतीय दर्शक थे—स्वाभिमान, स्वदेशाभिमान और ज्ञानके भण्डार पं० श्रीसूर्यनारायण व्यास (सन् १९०२—१९७६ ई०)। भारतके महान् ज्योतिषाचार्य, लेखक, पत्रकार और नागरिक।

उज्जयिनीकी महान् पैतृक परम्परामें महर्षि सान्दीपनिका नाम दुनियामें विख्यात है। भगवान् कृष्ण और बलरामके विद्यागुरुके रूपमें सान्दीपनिको कौन नहीं जानता? माना यह जाता है कि सान्दीपनि-वंशसे पं० सूर्यनारायण व्यासका सीधा सम्बन्ध था। उनके पिता महामहोपाध्याय श्रीनारायणजी व्यास सिद्धान्तवागीश अपने युगके असाधारण ज्योतिषी, खगोलविद् रहे हैं और जिस जमानेमें रेडियो, अखबार, टेलीविजन का जन्म नहीं हुआ था, तब बहुत सारे विदेशी विद्वान् उनसे पढ़ने आया करते थे। नारायणजी महाराजके बारेमें कई चमत्कारी बातें मशहूर हैं, लेकिन कुछके प्रमाण मैंने जुटाये हैं—

प्रख्यात ज्योतिर्विद् श्रीमुकुन्दवल्लभ मिश्र 'दैवज्ञ', जिन्हें पढ़कर मैं बड़ा हुआ और 'फलितमार्तण्ड' जिनका विख्यात ग्रन्थ है—उस पुस्तककी भूमिकामें लिखा है कि श्रद्धेय शिवस्वरूप पं० श्रीनारायणजी व्यासको मैं यह ग्रन्थ समर्पित करता हूँ। यह पढ़कर मैं गद्गद हुआ कि मैं नारायणजी महाराजका पौत्र हूँ। कौन थे नारायणजी व्यास? खोजना चाहिये। मुझे ज्ञात हुआ कि महामहोपाध्याय कविराज गोपीनाथ काशीके महान् तन्त्रविद्, उन्होंने लिखा है कि नारायणजी महाराज जब समाधिस्थ-अवस्थामें होते थे तो उनकी नाभिसे कमल खिलता था और वे एक साथ एक समयमें दोनों हाथोंसे लिखते थे। एक हाथसे व्याकरण, एक हाथ से ज्योतिष—पंचांगका कार्य। वे भारतके आरम्भिक पंचांग-निर्माता विद्वानोंमें रहे। असाधारण खगोलविद्! ऐसे महापुरुषके घरमें पं० सूर्यनाराण व्यासका जनमना! पहली बार मैंने भी पण्डितजीका जन्मस्थल देखा। उज्जयिनीमें स्थित सिंहपुरीमें एक तिमंजिला भवन, जिसे पण्डितजीके जन्म होनेके बाद पं० नारायणजी व्यासने दान कर दिया। आज भी उसका दानपत्र सुरक्षित है।

आरम्भिक युवावस्थासे श्रीसूर्यनारायण व्यासजी अंतर्राष्ट्रीय यशके भागीदार बने। यहाँपर जब ज्योतिष, फलित और गणितके फलादेशकी बात हुई तो मुझे एक बात याद आयी कि प्राय: पण्डितजीको लोग देशका असाधारण विद्वान् मानते हैं और गणितके सन्दर्भमें जब बात चलती है तो लोग कहते हैं कि फलानेजी उनसे ज्यादा विद्वान् थे और ढिमकेजी उनसे ज्यादा गणित जानते थे। मुझे एक जगह शोध-पत्र पढ़नेका अवसर मिला, तब एक दिलचस्प प्रसंग सामने आया—पण्डितजी स्वयं भी गणितके असाधारण विद्वान् थे। उज्जैनसे प्रकाशित होनेवाले 'महाकाल विजयपंचाग' एवं 'नारायण विजयपंचाग' का आरम्भ उन्होंने ही किया था। उनके पिताकी स्मृतिमें प्रारम्भ हुए इस पंचांगका सारा गणित और फलित वे ही किया करते थे।

गुजरातमें जब भूकम्प आया तो सारी दुनियामें बहस हो रही थी कि ज्योतिष क्या! कोई विज्ञान भी भूकम्पकी पूर्व भविष्यवाणी नहीं कर पा रहा। सारे चैनलोंपर यह आ रहा था कि सन् १९३२ में असेम्बलीमें एक सांसद दूधोलिया साहबने पूछा कि क्या कोई ऐसा यन्त्र बना है, जो

भूकम्पकी पूर्व घोषणा कर सके ? तो उन्होंने कहा कि अभी कोई ऐसा यन्त्र विज्ञानके पास नहीं है, आज भी नहीं, केवल सिस्मोलॉजी केन्द्र बादमें बताते रहते हैं। कितने 'रिक्टर स्केल' पर भूकम्प आया। पं० श्रीसूर्यनारायण व्यासजीने सन् ३२ में 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में भूकम्पपर एक लेख लिखा और एक पत्र लिखा, उसमें उन्होंने आनेवाले ३०० भूकम्पोंकी सूची छपवा दी। वे पत्र सुरक्षित हैं, लेख सुरक्षित हैं और वह अखबार भी सुरक्षित है। उस लेखके क्रमसे ही भूकम्प आये। सन् १९३४ ई० का विश्व-प्रसिद्ध बिहार भूकम्प, यहींसे राजेन्द्र बाबू और पण्डितजीका सम्पर्क कायम हुआ। सन् १९३२ ई० में उन्होंने विश्वयुद्धकी घोषणा कर दी थी। सन् १९२४ ई० में हर अखबार में लिख देना कि 'गाँधीजी मरेंगे नहीं मारे जायँगे' और 'गाँधीका वध एक ब्राह्मण करेगा' छपा हुआ लेख सुरक्षित है। जब बड़े-बड़े भावी नेता जीवित थे, नेहरू पहले दर्जेके नेता नहीं हुआ करते थे, तब यह घोषणा करना कि सन् १९४६ ई० के बाद नेहरू १० वर्षतक राज्य करेंगे। कब उनकी पत्नीका देहान्त होगा, कब विश्व-इतिहास लिखेंगे, कब आत्मकथा लिखेंगे, कब वे जेल जायँगे, कब देश आजाद होगा, कब वे देशके पहले प्रधानमन्त्री होंगे और १० वर्षतक शासन करेंगे और अन्तमें देशके किसी पराभवकी वजहसे उनको संकट में रहना पड़ेगा। यह पूरे पेज का ऑरिजनल लेख मेरे पास है।

राजेन्द्र बाबूका एक पत्र तीन पंक्तिका इस प्रकार है—'मुझे राष्ट्रपति चुने जानेपर आपका भेजा बधाईका पत्र मिला। इसके लिये आप मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करें। हाँ, इसके बारेमें तो आपने पहले ही कहा था। वह तो शास्त्रकी बात थी, इसके अलावा ***'बिप्र बचन किमि होइ असाँचा'***—कोई महापुरुष आशीर्वाद देता है तो वह कैसे गलत होगा।'

दिल्लीमें एक ज्योतिषशास्त्रका सेमिनार हुआ। प्रो० के० एन० रॉ देशके बड़े ज्योतिषियोंमें गिने जाते हैं। प्रो० के० एन० रॉ-ने मुझे टाइम्स-मैग्जीन अमेरिका का एक अंक दिया। सर क्रिप्स मिशन उस दौरान भारतके दौरेपर आया था। उन दिनों अमेरिकामें और बाहरके देशोंमें एक हंगामा हुआ कि दुनियाके तमाम राजनेता ज्योतिषियोंसे सलाह लेते हैं। अमेरिकी अखबारोंने इसपर बड़ा हंगामा किया। तब सर वोडो ब्राइटने एक लेख लिखा। ये बूढ़े आदमी जीवित थे, तभी सन् ३४ में वे भारत आये होंगे। उन्होंने लेख लिखा ८० में, 'Who does not consult stars' कौन ऐसा आदमी है, जो सितारोंसे राय नहीं लेता। भविष्यमें विश्वास नहीं करता। उसमें उन्होंने एक गाथा, अद्भुत बात लिखी।

उन्होंने लिखा कि जब भारतमें स्वतन्त्रताकी बात शुरू हुई, तय हुआ कि सिर्फ दो दिन दिये जायँगे, १४ अगस्त और १५ अगस्त। एक दिन पाकिस्तान शपथ ले ले और एक दिन भारत शपथ ले ले, दोनों स्वतन्त्र हो जायँ। तब राजेन्द्र बाबूने गोस्वामी गणेशदत्तजी महाराज, (गोस्वामी गिरधारीलालके गुरु)-के माध्यमसे पं० सूर्यनारायण व्यासको बुलवाया। तब हरदेव शर्मा त्रिवेदीको पं० सूर्यनारायण व्यास साथ लेकर गये। वे भी पं० व्यासके पूज्य पिताके शिष्य थे (विश्व पंचांग सोलनवाले)। पं० सूर्यनारायण व्यासने कहा—दो ही दिन बचे हैं—१४ अगस्त और १५ अगस्त। उसमेंसे मध्य रात्रिका मुहूर्त निकाला, भारतकी आजादीका बारह बजेका स्थिर लग्न नक्षत्र, जिसमें इस देशका लोकतन्त्र सदा स्थिर रहेगा। चाहे शनिकी दशामें देशकी आजादी हुई, चाहे देशके टुकड़े हो गये हों, केतुकी महादशामें देश भुखमरी और तंगहालीसे गुजरा हो। बुधकी महादशामें बौद्धिक वाक्‌विलास हुआ हो, लेकिन जबसे नब्बेमें शुक्रकी दशा लगी तो मैं पण्डितजीको बराबर याद करता हूँ। नब्बेसे, आदमीका अद्भुत विजन कि पचास बरस बाद यह राष्ट्र दुनियाका सिरमौर होगा।

जब सन् १९६२ ई० में जवाहरलालजी चीन युद्धके समय कष्टमें आये तो उन्होंने पं० श्रीसूर्यनारायणजीको याद करवाया, वह भी राजेन्द्र बाबूके माध्यमसे, सीधे सामने नहीं आये, समाजवादकी बात करते थे। मैं देशके सौ-सवा सौ समाजवादियोंकी कुण्डली नहीं, उनके पत्र पास रखता हूँ, जो पण्डितजीसे राय लिया करते थे। बड़े-बड़े समाजवादी लोग कहनेको ज्योतिषकी आलोचना

करते हैं, लेकिन ज्योतिर्विदोंसे राय लेते हैं।

जब लालबहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री बने तो उन्होंने अमावस्याके रोज शपथ ली। पण्डितजीने तत्काल फोन किया कि यह गलत कर रहे हैं। लालबहादुरजी पण्डितजीको बहुत जानते थे, मानते थे, सम्मान करते थे। जब वे ताशकंद जाने लगे, तब पण्डितजीने 'हिन्दी हिन्दुस्तान' में एक लेख लिखा—'लालबहादुर जीवित नहीं लौटेंगे', वहाँ उन्हींके बनाये एक सम्पादक थे—रतनलाल जोशी। वह लेख उन्होंने डरके मारे नहीं छापा; क्योंकि उन दिनों सारे देशमें पण्डितजीकी भविष्यवाणीका प्रेमभरा आतंक था और उनकी कोई बात गलत नहीं होती थी, लेखकी बात लालबहादुरजीतक पहुँचायी गयी तो लालबहादुरजीने हँसकर टाल दिया। अरे! व्यासजी जो कहते हैं, उसमें ऐसा क्या हो जायगा? पर लालबहादुरजी नहीं लौटे।

दो दिन बाद सम्पादककी टिप्पणीके साथ रतनलाल जोशीने यह समाचार निकाला कि यह लेख हमें एक सप्ताह पहले ही मिल चुका था कि लालबहादुरजी देशमें जीवित नहीं लौटेंगे।

मोरारजी देसाईके बारेमें आज भी कहा जाता है कि वे ज्योतिषपर विश्वास नहीं करते थे; बड़े दृढ़चित्त और जिद्दी नेता थे, गांधीवादी थे। मोरारजी देसाईका स्वयंका टाइप किया हुआ पत्र, मुम्बई राज्यकी स्थापनाका मुहूर्त, उन्होंने पण्डितजीसे निकलवाया।

हरदेव शर्मा त्रिवेदीने 'राजनेता और ज्योतिषशास्त्र' सम्पादकीयमें लिखा है—एक समारोहमें उन्होंने मुझे बताया भी कि प्रधानमन्त्री इन्दिराजीने सलाह लेनेके लिये पण्डितजीको एक बार दिल्ली बुलवाया, यह बहुत अखबारोंमें छपा है। उन्होंने उनका बन्दोबस्त किसी होटलमें करवा दिया। पं० श्रीसूर्यनारायणजी बड़े संस्कारवाले थे। होटलमें ठहरना बड़ा बुरा मानते थे। राष्ट्रपतिभवनसे ऐसे पत्र मिले, जिसमें राजेन्द्र बाबूने कहा, 'मैं आपको बुलानेमें बड़ा संकोच करता हूँ। एक तो आप आने-जानेका व्यय भी नहीं लेते और मैं आपको कष्ट देता हूँ।'

भारतके राष्ट्रपति पण्डितजीसे मिलने उनके घरमें आते थे। पण्डितजी जब इन्दिराजीसे मिले तो सम्पूर्णानन्दजीके माध्यमसे मिले। सम्पूर्णानन्दजी स्वयं ज्योतिषके असाधारण विद्वान् थे। व्यासजीको पता चला कि होटलमें बन्दोबस्त है तो पण्डितजीने कहा कि सम्पूर्णानन्दजी! आपको पता है, मैं होटलमें नहीं ठहरता। तो उन्होंने कहा कि 'बाई' का ऐसा ही आदेश है। वे इन्दिराजीको 'बाई' कहते थे। पण्डितजीने कहा कि तब तो मैं वापस जाता हूँ, वे लौटकर वापस आ गये।

सन् १९७२ ई० में पण्डितजी अस्वस्थ हो गये। सन् १९७० ई० में पण्डितजीने यह लिखा था कि इन्दिरा और उनके दोनों पुत्र दुर्घटनासे मरेंगे, किंतु वह पत्र डरके मारे इन्दिराजीको नहीं दिखाया गया अपितु सुरक्षित रख लिया गया। जब इन्दिराजीकी मृत्यु हुई, राजीवकी मृत्यु, संजयकी मृत्यु तो पत्रकी बात सामने आयी।

पं० व्यासजीकी भविष्यवाणियोंके सन्दर्भमें कन्हैयालाल प्रभाकर तथा माखनलाल चतुर्वेदीके कुछ संस्मरण प्रस्तुत हैं—

१-प्रभाकरजीने धर्मयुगमें ५ अप्रैल, सन् १९६४ ई०को एक संस्मरण लिखा है—'मेरे एक प्रिय किसी जटिल रोगसे पीड़ित थे। डॉक्टर लोग उनके बचनेकी आशा दिला रहे थे, पर हालत उनकी दिन-पर-दिन गिरती ही जा रही थी। परिवारवालोंकी समस्या यह थी कि उनसे सम्पत्तिकी वसीयत करनेकी बात कहें और बादमें स्वस्थ हो जायँगे तो कहेंगे कि तुम लोग मेरा मरना मना रहे थे और न कहें तो मरनेके बाद उनके उत्तराधिकारियोंके बीच सर्वनाशी मुकदमा छिड़ जायगा। बहुत सिर खपानेके बाद जब उन्हें कोई राह न सूझी तो वे मेरे पास आये। यह प्रभाकरजी लिखते हैं। समस्या बड़ी जटिल थी। किसीकी मृत्युके बारेमें कौन कुछ कह सकता है! गहरी उधेड़-बुनके बाद उन्हें पं० श्रीसूर्यनारायण व्यासजीका नाम याद आया। व्यासजी चमत्कारपूर्ण ज्योतिषविद्याके प्रामाणिक आचार्य तो हैं ही और मित्रोंपर कृपा उनका सहज स्वभाव है। मैंने उस मित्रकी जन्मकुण्डली व्यासजीको भेज दी। उत्तरमें व्यासजीने ८ माह बादकी एक तारीख लाल पेंसिलसे लिखकर उसके नीचे एकदम स्पष्ट लिखा कि इस तारीखसे पहले ही

मृत्यु हो जानी चाहिये, उसके बाद जीवनकी सम्भावना नहीं है और सचमुच उसी तारीखको उनकी मृत्यु हो गयी।'

२-माखनलाल चतुर्वेदी अपने एक सम्पादकीय लेखमें लिखते हैं कि ४ मईको महात्मा गांधी बाबू राजेन्द्र प्रसाद, अमृतलाल ठक्कर आदि सज्जनोंके साथ मोटरपर राँचीसे जमशेदपुर जानेके लिये निकले। ३६ मिनटके बाद इनकी मोटर एक गड्ढेमें गिर गयी। न जाने किस तरह संकटमेंसे भगवान्की कृपाने उन्हें बचा लिया। अभी थोड़े ही दिन हुए, उज्जैनके साहित्यिक और प्रख्यात विद्वान् ज्योतिषी पं० सूर्यनारायण व्यासने एक भविष्यवाणी प्रकाशित की थी। इसमें उन्होंने मईका महीना महात्माजीके लिये अनिष्टकारक बताया था।

३-माखनलाल चतुर्वेदीका ही एक अन्य सम्पादकीय 'कर्मवीर' (खण्डवा १६ मई सन् १९३४ ई०)-में प्रकाशित हुआ, सन् १९३६ ई० में सम्राट् एडवर्डकी भारतमें आनेकी बात अखबारोंमें छपी। व्यासजीने 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के 'करन्ट टॉपिक्स' में लिखा कि सम्राट् भारत नहीं आ रहे हैं और उनका पद भी थोड़े दिनका है, इसकी कतरन भी सम्राट्को भेजी गयी। इस प्रसंगकी चर्चा उस समयके अखबारोंमें काफी हुई। यूरोप-प्रवासमें सम्राट् पण्डितजीसे मिले। उनकी भविष्यवाणी जो सत्य सिद्ध हुई थी।

नवभारतमें ७ दिसम्बर, सन् १९५० ई०को पं० सूर्यनारायण व्यासजीने लिखा कि उपप्रधानमन्त्री सरदार वल्लभ भाई पटेलके स्वास्थ्यमें अत्यन्त चिन्ताजनक स्थिति आ जायगी। १७ दिसम्बरतकका समय कठिन रहेगा और सरदार १६ दिसम्बरकी अर्धरात्रिको दिवंगत हुए।

ऐसे विलक्षण थे—पं० श्रीसूर्यनारायण व्यास, वे अपने युगके द्रष्टा थे। उन्होंने स्वयं अपनी मृत्युके बारेमें भी लेख लिख दिया था।

ज्योतिष्मती नारियाँ

(१)
विदुषी लीलावती

बहुत दिनोंकी बात है, भारतके प्रत्येक विद्यार्थी और अध्यापककी जीभपर साध्वी लीलावतीका नाम रहता था। लीलावती गणितविद्याकी आचार्या थी; जिस समय विदेशी गणितका क-ख-ग भी नहीं जानते थे, उस समय उसने गणितके ऐसे-ऐसे सिद्धान्त सोच डाले, जिनपर आधुनिक गणितज्ञोंकी भी बुद्धि चकरा जाती है।

दसवीं सदीकी बात है, दक्षिण भारतमें भास्कराचार्य नामक गणित और ज्योतिष विद्याके एक बहुत बड़े पण्डित थे। उनकी कन्याका नाम लीलावती था। वही उनकी एकमात्र सन्तान थी। उन्होंने ज्योतिषकी गणनासे जान लिया कि 'वह विवाहके थोड़े दिनोंके ही बाद विधवा हो जायगी।' उन्होंने बहुत कुछ सोचनेके बाद ऐसा लग्न खोज निकाला, जिसमें विवाह होनेपर कन्या विधवा न हो। विवाहकी तिथि निश्चित हो गयी। जलघड़ीसे ही समय देखनेका काम लिया जाता था। एक बड़े कटोरेमें छोटा-सा छेदकर पानीके घड़ेमें छोड़ दिया जाता था। सूराखके पानीसे जब कटोरा भर जाता और पानीमें डूब जाता था तब एक घड़ी होती थी। विधाताका ही सोचा होता है। लीलावती सोलह श्रृंगार किये सजकर बैठी थी, सब लोग उस शुभ लग्नकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि एक मोती लीलावतीके आभूषणसे टूटकर कटोरेमें गिर पड़ा और सूराख बन्द हो गया; शुभ लग्न बीत गया और किसीको पतातक न चला। विवाह दूसरे लग्नपर ही करना पड़ा; लीलावती विधवा हो गयी, पिता और पुत्रीके धैर्यका बाँध टूट गया!

पुत्रीका वैधव्य-दुःख दूर करनेके लिये भास्कराचार्यने उसे गणित पढ़ाना आरम्भ किया। उसने भी गणितके अध्ययनमें ही शेष जीवनकी उपयोगिता समझी। थोड़े ही दिनोंमें वह उक्त विषयमें पूर्ण पण्डिता हो गयी। पाटीगणित, बीजगणित और ज्योतिष विषयका एक ग्रन्थ 'सिद्धान्तशिरोमणि' भास्कराचार्यने बनाया है। इसमें गणितका अधिकांश भाग लीलावतीकी रचना है। पाटीगणितके अंशका नाम ही भास्कराचार्यने अपनी कन्याको अमर कर देनेके लिये 'लीलावती' रखा है।*

* 'लीलावती' ग्रन्थमें आये हुए 'सखे' 'मृगनयने' 'कान्ते' आदि सम्बोधनोंके कारण कुछ लोग लीलावतीको भास्कराचार्यकी सहधर्मिणी मानते हैं।

मनुष्यके मरनेपर उसकी कीर्ति ही रह जाती है। लीलावतीने गणितके आश्चर्यजनक और नवीन, नवीनतर तथा नवीनतम सिद्धान्त स्थिरकर विश्वमात्रका उपकार किया है। वैधव्यने उस साध्वी नारीकी कीर्तिमें चार चाँद लगा दिये।

(२)

सखी खना

गणितमें लीलावती और ज्योतिषमें खनाका नाम बहुत प्रसिद्ध है। खना लंकाद्वीपके एक ज्योतिषीकी कन्या थी। सातवीं या आठवीं सदीकी बात है। उज्जयिनीमें महाराज विक्रमका राज्य था। उनके दरबारमें बड़े-बड़े कलाकार, कवि, पण्डित, ज्योतिषी आदि विद्यमान थे। वराह ज्योतिषियोंके अगुआ थे। उनकी गणना नवरत्नोंमें होती थी। इतिहासज्ञ वराहमिहिरके नामसे परिचित हैं। मिहिर वराहका लड़का था। मिहिरका जन्म होनेपर वराहने गणना करके देखा कि मिहिरकी आयु केवल दस सालकी थी; परंतु यह उसकी भूल थी। उसने गणना करते समय एक शून्य छोड़ दिया था, उसकी आयु सौ सालकी थी। वराहने उसे एक हाँड़ीमें बन्दकर क्षिप्रा नदीमें फेंक दिया, हाँड़ी व्यापारियोके हाथ लगी; उन्होंने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया और काममें लगा दिया। मिहिर होनहार तो था ही, ज्योतिषविद्या उसकी पैतृक सम्पत्ति थी; वह घूमता-फिरता लंकामें एक ज्योतिषीके घर पहुँचा। उसने ज्योतिषका अध्ययन किया। ज्योतिषीकी कन्यासे उसका विवाह हो गया, जो ज्योतिषमें पारंगता थी। कालान्तरमें उसने भारतयात्रा की। उज्जयिनीमें भी आकर उसने वराहतकको परास्त किया। किसी तरह वराहको पता चल गया कि यह उसका ही पुत्र है।

अब ज्योतिषके कड़े-से-कड़े प्रश्न हल हो जाया करते थे। कभी-कभी घरके भीतर बैठी खना ससुरको बड़ी-से-बड़ी भूलका ज्ञान करा देती थी। नगरवाले नहीं जानते थे कि मिहिरकी पत्नी इतनी विदुषी है। वराह उसकी विद्वत्तापर मन-ही-मन कुढ़ता था। उसे यह बात कभी नहीं अच्छी लगती थी कि समय-समयपर मेरी गणनामें भूल निकाला करे। खनाको ऐसी-ऐसी गणनाएँ आती थीं, जिनका वराह या मिहिरको थोड़ी मात्रामें भी ज्ञान नहीं था।

एक दिन राजाने तारागणोंके सम्बन्धमें वराहसे कठिन प्रश्न किया। उसने मौका माँगा। सन्ध्या-समय घर लौटकर, वह प्रश्न हल करने लगा, परंतु किसी प्रकारसे मीमांसा न हुई। रातमें भोजन करते समय बात-की-बातमें खनाने उसे समझा दिया; वराह यह सोचकर प्रसन्न हुआ कि पुत्रवधूकी विद्यासे राजसभामें मेरा मान बना रहेगा। दूसरे दिन राजाने हलकी विधि पूछी। वराहको कहना ही पड़ा कि प्रश्नका हल खनाने किया है। राजा तथा सभा-सदस्य चकित हो उठे। राजाने कहा, 'उसे आदरके साथ सभामें लाइये, हम और प्रश्न करेंगे।' वराहको यह बात अच्छी न लगी। उसने घर आकर पुत्रको खनाकी जीभ काट लेनेकी आज्ञा दी। मिहिर पिताके आज्ञापालन और सती-साध्वी विदुषी खनाके प्रेमसे घिर गया। खनाने मिहिरको समझाया कि स्त्रीके मोह या प्रेमसे अधिक महत्त्व पिताकी आज्ञाका पालन करनेमें है; उसने कहा कि 'मेरी मृत्यु किसी दुर्घटनासे होगी, इसलिये आप निर्भय होकर जीभ काट लें।'

मिहिरने पतिव्रताकी बात मान ली। उसने उसकी जीभ काट ली। इस तरह साध्वी खनाने पतिको स्वधर्मपरायणताकी सच्ची सीख दी और ससुरको अपनी कुलवधूको राजदरबारमें उपस्थित करनेसे बचा लिया।

किसान और देहाती जन खनाके बताये सिद्धान्तों और गणनाओंसे पानी बरसने, सूखा पड़ने आदिका भविष्य बतलाते हैं।

(३)

भडली

श्रावण पहिले पाँच दिन, मेघ न भाँडे आव।
पिया पधारौ मालवा, मैं जैहौं मौसाल॥
पूरब दिसिमें काचवी, जो आथमते सूर।
भडली वायक इमि भड़े, दूध जमाऊँ कूर॥
सनि, आदित या मंगलहिं, जौं पौढ़ें जदुराय।
चाक चढ़ावै मेदिनी,पृथ्वी परलै धाय॥
स्त्रावन सुक्ला सप्तमी उदय न दीखै भानु।
तब लगि देव बरसहीं, जब लगि देव उठान॥

अंडा लै चींटी चढ़ै, चिड़ो नहावै धूर।
ऊँचे चील उड़ान लै, है बरसा भरपूर॥

ये कृषकोंके लिये जीवनसूत्र हैं। काठियावाड़से लेकर उत्तर भारततक इनका प्रचार है। इस प्रकारके सूत्ररूप दोहे ऋतुके सम्बन्धमें, उपजके सम्बन्धमें, पशुओंके सम्बन्धमें तथा कृषि-पशु एवं मनुष्योंके रोगोंके सम्बन्धमें ग्रामोंमें अत्यन्त प्रचलित हैं। ये प्राय: ज्यों-के-त्यों सत्य सिद्ध होते हैं। पता नहीं, कितने दीर्घकालीन अनुभव एवं गहन ज्योतिषका तत्त्व इनमें निहित है।

मारवाड़के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी हुदादकी कन्या भडलीने इस प्रकारके दोहोंका निर्माण किया है। ये दोहे ही बताते हैं कि उनका ज्योतिषसम्बन्धी ज्ञान कितना विशाल था। प्राय: भडलीके दोहे अत्यन्त सरल ग्रामीण भाषामें हैं। सूत्रकी भाँति उनमें पूरी बात कह दी गयी है। ग्राम्य कृषकोंके लिये तो वे पुराण हैं।

पितासे भडलीने ज्योतिषका ज्ञान प्राप्त किया था। साथ ही बड़ी सावधानीसे उन्होंने दीर्घकालतक प्रकृतिका सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उनके ज्ञान एवं अनुभवके द्वारा आज भी असंख्यों कृषकोंका उपकार हो रहा है।

कृष्णभक्त श्रीरहीमजीका फलित-विचार

[खेटकौतुकम्]

श्रीरहीमजीकी महान् कृष्णभक्त तथा हिन्दी साहित्यकी सगुण भक्तिधाराके समुज्ज्वल कविश्रेष्ठके रूपमें तो अत्यन्त प्रसिद्धि है ही, किंतु वे एक कुशल ज्योतिर्विद् भी थे, इसकी प्रसिद्धि अत्यल्प है। वस्तुत: श्रीरहीमजी फलित ज्योतिषके महान् ज्ञाता थे। उनके द्वारा रचित 'खेटकौतुकम्' नामक ग्रन्थ होरास्कन्धका मानक ग्रन्थ है। यद्यपि यह ग्रन्थ अत्यन्त लघु है, इसमें केवल एक सौ पच्चीस श्लोक हैं, किंतु इसके फल बड़े ही मान्य, सटीक एवं स्वानुभूतसिद्ध हैं। यहाँ संक्षेपमें रहीमजीके सम्बन्धमें कुछ बातें तथा 'खेटकौतुकम्' का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

श्रीरहीमजीका पूरा नाम नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना था। ये अकबर बादशाहके अभिभावक प्रसिद्ध मुगल सरदार बैरम खाँके पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६१० में हुआ। ये संस्कृत, अरबी, फारसी, हिन्दी, व्रज, अवधी आदि कई भाषाओंके जानकार थे। अकबरके शासनकालमें रहीम उनके राजमन्त्री, सेनाध्यक्ष तथा प्रशासक आदि कई पदोंपर रहे। शासनकी ओरसे उन्हें कई जागीरें प्राप्त थीं। यवनसाम्राज्यमें होते हुए भी उनके हृदयपर भारतीय संस्कृति, दर्शन, धर्म एवं भक्तिका गहन प्रभाव पड़ा। भगवान् श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीने रहीमजीका मन ऐसा मोहा कि वे सदाके लिये उन्हींके होकर रह गये। इस बातको वे स्वयं एक दोहेमें इस प्रकार कहते हैं—

तैं रहीम मन आपनौ, कीन्हौं चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यौ रहै, कृष्णचन्द्र की ओर॥

एक जगह अपने आराध्यसे मधुर संवाद करते हुए वे कहते हैं—

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
आभीरवामनयनाहृतमानसाय
दत्तं मनो यदुपते कृपया गृहाण॥

अर्थात् रत्नाकर (क्षीरसमुद्र) तो आपका घर है, साक्षात् लक्ष्मीजी आपकी पत्नी हैं, आप स्वयं जगदीश्वर हैं, भला आपको क्या दिया जाय? किंतु हे यदुनाथ! गोपसुन्दरियोंने अपने नेत्रकटाक्षसे आपका मन हर लिया है, इसलिये मैं अपना मन आपको अर्पित करता हूँ, कृपया इसे ग्रहण कीजिये।

एक महान् भक्तके साथ ही वे ऐसे दानी और परोपकारी थे कि अपने समयके कर्ण माने जाते थे। उनके द्वारसे कोई खाली नहीं जाता था, इतने महान् दानी होनेपर भी उनको तनिक भी दाता होनेका मद नहीं था, वे तो अपने ठाकुरजीको ही असली दाता बताते थे—

देनहार कोइ और है देत रहै दिन रैन।
लोग भरम मो पर करें यातें नीचे नैन॥

सम्राट् अकबरके निधनके बाद जहाँगीर भारतके सम्राट् हुए। जहाँगीरने रहीमको किसी कारणवश अपराधी

मान लिया और उनकी सारी सम्पत्ति तथा जागीर छीन ली। कभी हाथीपर बैठनेवाले सेनाध्यक्ष रहीम को अब नंगे पैर चलना पड़ा, वे राजासे रंक हो गये। नियतिका विधान मानकर वे सदा सन्तुष्ट रहे, उनकी सुख-दुःखात्मक अनुभूति बड़ी गहन थी, जो उनके काव्यमें उतरी। ग्रह-बल, दैवबलकी प्राधान्यताको देखते हुए और प्रारब्धके भोगको स्वीकार करते हुए उनकी काव्यधारा ज्योतिश्चक्रकी ओर उन्मुख हो उठी और उसीका परिणाम सामने आया ग्रहमीमांसाका ग्रन्थ 'खेटकौतुकम्'।

'**खेटकौतुकम्**' में दो पद हैं—खेट और कौतुक। खेटका अर्थ है ग्रह और कौतुकका अर्थ है खेल-तमाशा—चमत्कार। इस प्रकार ग्रहोंद्वारा जीवनमें होनेवाला चमत्कार इस शब्दका सामान्य अर्थ है। आकारकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ अत्यन्त लघु है, पर है बड़े कामका। इसके श्लोकोंमें संस्कृतके साथ-साथ अरबी-फारसीके शब्द प्रायः प्रयुक्त हैं, जिस कारण पढ़नेमें ये श्लोक बड़े ही रुचिकर लगते हैं। पूरा ग्रन्थ दो प्रकरणोंमें विभक्त है—पहला भावफलाध्याय तथा दूसरा राजयोगाध्याय। पहलेमें ९९ श्लोक तथा दूसरेमें २५ श्लोक हैं।

प्रारम्भमें ही रहीमजीका कहना है कि पूर्वाचार्योंने भी फारसी शब्दोंसे मिले हुए संस्कृत श्लोकोंमें ज्योतिषके विविध ग्रन्थोंका प्रणयन किया है, अतः मैं भी उनके चरणकमलोंका अवलम्बन करते हुए उसी तरह फारसी शब्दोंके योगसे संस्कृत श्लोकोंमें 'खेटकौतुकम्' ग्रन्थकी रचना करता हूँ।

प्रथम प्रकरण भावफलाध्यायमें कुण्डलीके जो तन्वादि बारह भाव हैं, उनमें सूर्य, चन्द्र आदि नौ ग्रहोंके स्थित होनेका क्या फल होता है, यही बताया गया है, पहले सूर्यका द्वादश भावोंमें फल, फिर चन्द्रका, फिर मंगलका, इसी प्रकार बुध आदि सभी ग्रहोंका फल बताया गया है। रहीमजीका कहना है कि जो फल राहुका होता है, वही फल केतुका भी होता है। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

लग्नस्थित सूर्यका फल—यदि लग्नमें सूर्य हो तो वह मनुष्य दुर्बल शरीरवाला, स्त्रीसे अपमानित, दुर्जन सन्तानवाला तथा बाजार और बगीचेमें भ्रमण करनेवाला होता है। यदि नीचराशि (तुला)-का सूर्य लग्नमें हो तो आदरसे हीन, ईर्ष्यायुक्त और दुष्ट बुद्धिवाला होता है—

लग्नगः सम्शखेटस्तदा लागरः
कामिनीदूषितो दुष्प्रजो वै यदा।
पण्यरामारतो राशिमीजान्गतो
मानहीनोऽथ हीर्षी विदृष्टिः पुमान्॥

(खे०कौ० १।३)

फारसी शब्द—सम्श=सूर्य, **लागर**=कमजोर, **मीजान**=तुलाराशि।

द्वितीय भावगत सूर्यका फल—यदि जन्मलग्नसे द्वितीय भावमें सूर्य हो तो वह मनुष्य ज्ञानहीन (मूर्ख), क्रोधी, विरोध करनेवाला, चिड़चिड़े स्वभाववाला, कृपण, दरिद्र, विरूप, रोगी और स्मरणशक्तिसे रहित होता है—

यदा चश्मखाने भवेदाफताब-
स्तदा ज्ञानहीनोऽथ गुस्सर्व मुद्दाम्।
सदा तङ्गदिल्शख्तगो द्रव्यहीनः
कुवेषो गदा स्याद्वेहोशो दिवासाम्॥

(खे०कौ० १।४)

फारसी शब्द—चश्म=नेत्र (यहाँ दोकी संख्याका द्योतक है), **आफताब**=सूर्य, **तंगदिल**=कृपण, **गदा**=भिखारी।

इसी प्रकार तीसरेसे लेकर बारहवें भावमें स्थित सूर्यका फल बताकर आगे चन्द्र, बुध आदि सभी ग्रहोंका लग्न आदि भावोंमें स्थित होनेका फल बताया गया है।

कुण्डलीका नवम भाव भाग्यस्थान भी कहलाता है। उसमें शुभ ग्रह बृहस्पति स्थित होनेका क्या फल होता है, इसको बताते हुए कहा गया है—

हज्रते च खुशपरिजनवाँश्च खूबरो बहुसुखी च मुशीरः।
आमिलश्च यदि बख्तखाने मुश्तरी प्रविभवेत्खलु यस्य॥

(खे०कौ० १।५९)

फारसी शब्द—हजरत=सम्मानित, **खूबरो**=रूपवान्, **मुशीर**=राजाका मन्त्री, **आमिल**=अधिकारी, **मुश्तरी**=बृहस्पति ग्रह।

अर्थात् यदि नवमभावमें बृहस्पति हो तो अत्यन्त कुलीन, भाग्यवान्, सुन्दर स्वरूपवाला, सुखी, यशस्वी ईश्वरभक्त और परिवारसे सम्पन्न होता है।

'खेटकौतुकम्' ग्रन्थका दूसरा प्रकरण राजयोगाध्याय है। इसमें कुण्डलीके विविध भावोंमें विविध ग्रहोंके स्थित होनेसे जो राजयोग बनता है, उसका वर्णन है।

रहीमजी कहते हैं कि जब जातकके अष्टम भाव में शुक्र, द्वितीय भावमें बृहस्पति और जन्मलग्नमें राहु हो तो वह मनुष्य चक्रवर्ती राजा होता है—

आयुखाने चश्मखोरा मालखाने च मुश्तरी।
राहु जो पैदामकाने शाह होवे मुल्कका॥

(२।१३)

फारसी शब्द—आयुखाना=आठवाँ भाव, जिससे आयुका विचार होता है। **मालखाना**=द्वितीय भाव, जिससे धनका विचार होता है। **पैदामकान**=जन्मलग्न, **मुल्क**=देश।

इसी प्रकार एक अन्य राजयोगका वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि यदि जन्मकालमें बृहस्पति कर्क या धनुराशिमें हो तथा शुक्र दशम या द्वितीय भावमें हो तो दैवज्ञजन ऐसे जातकके फलादेशके लिये परिश्रम न करें; क्योंकि वह जातक निश्चय ही बादशाह होगा—

यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमाने
यदा चश्मखोरा जमी वासमाने।
तदा ज्योतिषी क्या लिखे क्या पढ़ेगा
हुआ बालका बादशाही करेगा॥

(२।१४)

फारसी शब्द—कमान=धनुराशि, **चश्मखोर**=शुक्र, **जमीन**=द्वितीय भाव, जिससे भूमि आदिका विचार होता है। **आसमान**=आकाश (दशम भाव)।

इस प्रकार श्रीरहीमविरचित 'खेटकौतुकम्' वास्तवमें कुतूहल उत्पन्न करनेवाला ग्रन्थ है। दैवज्ञोंने इस ग्रन्थके फलादेशकी भूरि-भूरि सराहना की है।

कुमाऊँके ज्योतिषी

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम०ए०, पी-एच०डी०)

हिमालयकी गोदमें बसा सुरम्य कुमाऊँ* (कूर्माचल) सदासे ज्योतिषका गढ़ रहा है। पंचांग, खगोलशास्त्र-सम्बन्धी सारणियाँ तथा अनेक ग्रन्थ यहाँ प्राचीनकालसे बनते आ रहे हैं। भूर्जवनका क्षेत्र होनेसे प्रारम्भमें यह कार्य भोजपत्रोंमें होता था, तदनन्तर 'सिद्धबडुवा' के पेड़ोंकी छाल, भाभड़ नामक घासविशेष तथा बाँस आदिकी लुग्दीसे बनाये गये 'पहाड़ी कागज' पर लेखन कार्य होता था। आज भी यह कागज 'जन्मपत्रियों' 'सारणियों' तथा पाण्डुलिपियोंके रूपमें सुरक्षित है। यहाँके उपलब्ध इतिहासको देखनेसे ज्ञात होता है कि कत्यूरी राजाओं तथा चन्दराजाओंके समय ज्योतिष-विद्या अपने चरमोत्कर्षपर थी। राजदरबारोंमें प्रतिष्ठित पण्डितोंने खगोलशास्त्र, प्रश्नविद्या, अंकविज्ञान, शकुनशास्त्र, जातक, होरा, मुहूर्त तथा ग्रह-गणितीय सारणियोंसे सम्बद्ध अनेक ग्रन्थरत्नोंका प्रणयन किया।

(क) कुमाऊँके प्रसिद्ध ज्योतिष-केन्द्र

कूर्माचलमें कुछ ऐसे स्थान हैं, जिन्हें ज्योतिष-केन्द्रोंकी संज्ञा दी जा सकती है; क्योंकि प्रारम्भसे आजतक इन स्थानोंमें ज्योतिष-विद्याका बोलबाला रहा है। इन ज्योतिष-केन्द्रोंमें माला-सर्प, भेरंग (पोखरी), झिझाड़, गल्ली, दन्या, गोरंग, उर्ग, चीनाखान आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी ग्रामोंमें आज भी जोशीसंज्ञक ब्राह्मण रहते हैं। यह 'जोशी' शब्द स्पष्ट ही 'ज्योतिषी' शब्दका अपभ्रंश है।

१. माला-सर्प—कौशिकी नदीके पाश्ववर्ती भागमें सोमेश्वरके समीप अवस्थित इन दो ग्रामोंका कूर्माचलके ज्योतिष-केन्द्रोंमें अन्यतम स्थान है। यहाँ अनेक प्रख्यात ज्योतिषी हो चुके हैं, जिनमें पं० हीरामणि जोशी, पं० रमापति जोशी, पं० देवकीनन्दन दैवज्ञ तथा पं० भास्कर दत्त जोशी आदि प्रमुख हैं। 'ग्रहलाघवकरण' में नवीन

* नवगठित पर्वतीय राज्य 'उत्तराखण्ड' के दो खण्ड हैं—कुमाऊँ और गढ़वाल। कुमाऊँका पौराणिक नाम 'मानसखण्ड' और गढ़वालका 'केदारखण्ड' है। इन दोनों खण्डोंमें तेरह जनपद है। कुमाऊँमें—पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, नैनीताल, चम्पावत, वागेश्वर तथा ऊधमसिंहनगर और गढ़वालमें—पौड़ी, उत्तरकारी, चमोली, टिहरी, रुद्रप्रयाग, देहरादून तथा हरिद्वार। यहाँपर कुमाऊँके ज्योतिर्विदोंकी संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत है। गढ़वालकी ज्योतिष-परम्परा भी अतिसमृद्ध है। बदरी-केदारधाम गढ़वालमें पड़ता है और कैलास-मानसरोवर कुमाऊँके अन्तर्गत है।

संस्कार देनेवाले पं० देवकीनन्दन अद्भुत ज्योतिर्विद् थे। 'ज्योतिष-चन्द्रार्क' तथा 'रुद्रप्रदीप' आदिके प्रणेता पं० रुद्रदेव जोशी और 'सुगम-ज्योतिष' तथा सन्ध्यादर्पणकार पं० देवीदत्त जोशी यहींके निवासी थे।

२. पोखरी—कूर्माचलके सर्वाधिक प्रसिद्ध देवी-मन्दिर 'कालिका-मन्दिर' से लगभग ५ मीलके अन्तरपर पोखरी (भेरंग) नामक प्रसिद्ध ग्राम है। मणिकोटी तथा चन्द दरबारमें यहाँके दैवज्ञ राजज्योतिषीके रूपमें प्रतिष्ठित रहे हैं। इनमें पं० मनोरथ दैवज्ञ, पं० हृषीकेश दैवज्ञ, पं० रत्नपति दैवज्ञ, पं० हरिदत्त ज्योतिर्विद् तथा महामहोपदेशक पं० रामदत्त दैवज्ञ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। राजा बाजबहादुरने पं० मनोरथ दैवज्ञको तथा उद्योतचन्द्रने पं० हृषीकेष दैवज्ञको इनके पाण्डित्यसे प्रभावित हो अनेक जागीरें प्रदान की थीं। पं० रत्नपति पशुभाषा, शकुनशास्त्र, काकविद्याके पारंगत पण्डित थे। इनके प्रश्नोत्तर-विज्ञानसे मुग्ध हो लखनऊके नवाबने तराईमें 'सिरौली' ग्राम जागीरमें भेंट की। इसी प्रकार पं० हरिदत्त ज्योतिर्विद् भी गणितविद्या तथा प्रश्नविद्याके प्रौढ़ मर्मज्ञ थे। इन्हींके सुपुत्र पं० रामदत्त ज्योतिर्विद्का नाम सर्वविदित है, जिनके द्वारा संचालित पंचांग पूरे कूर्माचल प्रदेशमें आज भी अत्यन्त लोकप्रिय है। इसके साथ ही लोहनीजीका भास्कर-पंचांग भी विश्रुत है।

(ख) पंचांग-परम्परा

बहुत समय पूर्व कुमाऊँमें एक ऐसा पंचांग बनता था, जिसे यहाँकी भाषामें 'ब्यालपातड़ो' कहते थे। इसमें कई वर्षोंके पंचांगकी गणना एक साथ होती थी और एक सामान्य प्रक्रियासे निर्दिष्ट वर्षोंके अन्दरसे प्रतिदिनका पंचांग ज्ञात हो जाता था। आकाशमें लग्नोंके उदय-अस्तका ज्ञान, शंकुकी छायासे दिनमें समयका ज्ञान यहाँके लोगोंके लिये एक साधारण-सी बात थी। 'ताम्रघटी' का प्रचलन सर्वत्र था। आज भी विभिन्न प्रकारकी घड़ियोंके रहते जन्म, विवाह, उपनयन आदि शुभ-कर्मोंके अवसरपर इसी ताम्रघटीसे लग्नका निश्चय किया जाता है।

(ग) प्रमुख ज्योतिषी एवं उनकी रचनाएँ

(१) ज्योतिर्विद् पं० श्रीरुद्रमणि (रुद्रदेव)

'ज्योतिश्चन्द्रार्क' के प्रणेता आंगिरसगोत्रीय श्रीमहादेवात्मज पं० रुद्रमणि (रुद्रदेव) अपने समयके प्रख्यात ज्योतिर्विद् हो चुके हैं। अल्मोड़ामण्डलान्तर्गत कौशिकी (कोशी) नदीके पश्चिमी तटपर अवस्थित 'माला' ग्राम इनका निवास-स्थल था। काशीमें पं० गणेश दैवज्ञकी सुदीर्घ परम्परामें समुत्पन्न दाक्षिणात्य भट्टसंज्ञक श्रीमद्गंगाधरजीके सान्निध्यमें इनकी विद्योपासना सम्पन्न हुई।

आपने 'रुद्रप्रदीप' तथा 'ज्योतिश्चन्द्रार्क' नामसे फलित ज्योतिषसे सम्बन्धित दो ग्रन्थोंकी रचना की है। १६४८ शाके (सन् १७२६ ई०)-में ज्योतिश्चन्द्रार्ककी रचना पूरी हुई।

आठ अध्यायोंमें विभक्त इस ग्रन्थकी 'काशिका' नामसे विस्तृत टीका भी उन्होंने स्वयं की है। सन् १९२७ ई०में ग्रन्थका पूर्वभाग प्रकाशित हुआ, जिसमें पाँच अध्याय हैं। शेष तीन अध्याय (उत्तर-भाग) सम्भवतः अप्रकाशित है। सरस्वती भवन वाराणसीमें प्रस्तुत ग्रन्थकी एक पूर्ण प्रति है।[1]

(२) दैवज्ञ पं० श्रीलक्ष्मीपति

अठारहवीं शतीमें काशीमें स्थित कूर्माचलीय विद्वानोंमें पं० लक्ष्मीपति ज्योतिषशास्त्र, विशेषतः गणितविद्याके अद्भुत ज्ञाता थे। आचार्य सुधाकर द्विवेदीने आपको '**अयं पर्वतीयः ब्राह्मणः**' कहा है और इनका जन्म शक १६७० (खसप्तरसेन्दु), सन् १७४८ ई० माना है।[2] कूर्माचलमें इनका ठीक-ठीक स्थान ज्ञात नहीं है, सम्भवतः ये अल्मोड़ा-जनपदस्थ 'तिलाड़ी' ग्रामके जोशी ब्राह्मण थे और म० म० नित्यानन्द पन्तके पूर्वज पं० नीलाम्बर पन्तके पुरोहित-कुलमें थे तथा उन्हींके साथ काशी आये।

आप गणितविद्याके प्रौढ़ पण्डित थे। पाटी एवं बीजगणितमें आपके अनेक सूत्र उपलब्ध हैं। आपके समयतक काशीमें फलित ज्योतिषका विशेष बोलबाला

१. हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची ज्योतिष, सं० ३४७९०।

२. गणकतरंगिणी।

था, किंतु इन्होंने सिद्धान्त विद्याकी यहाँ धाक जमा दी। जिस प्रकार बबुआ ज्योतिषी (सन् १७५६ ई०) फलितके क्षेत्रमें अग्रणी माने जाते हैं, उसी प्रकार गणितके क्षेत्रमें इनका नाम विशेषरूपसे लिया जाता है। जानथन डंकन महोदयने जब २९ अक्टूबर सन् १७९१ ई०में काशिक राजकीय पाठशालाकी स्थापना की तब पं० लक्ष्मीपति ही उस पाठशालाके प्रधान गणिताध्यापक थे। आपके शिष्य पं० शिवलाल पाठक, पं० दुर्गाशंकर पाठक तथा पं० कृष्णदेव आदि अत्यधिक ख्यातिप्राप्त हो चुके हैं।

(३) पं० श्रीकृष्णदेव

प्रख्यात सूत्रकार पं० लक्ष्मीपति ज्योतिर्विद्के ग्रहगणितीय सिद्धान्तोंके प्रसारमें उनके पुत्र पं० कृष्णदेवका अन्यतम हाथ रहा है। ये खगोलशास्त्र तथा गणितविद्याके प्रगल्भ ज्ञाता थे। अपने पितासे ही ज्योतिषशास्त्रका गहन अध्ययनकर तत्कालीन काशिक राजकीय प्रधान पाठशालामें इन्होंने लगभग १५ वर्षोंतक खगोलशास्त्र एवं गणित विद्याकी अनन्य सेवा की। आचार्य सुधाकर द्विवेदीजीने इनका समय सन् १७७५ ई०से सन् १८३५ ई०तक रखा है।[१]

(४) पं० श्रीदेवीदत्तजोशी

कौशल्या नदीके तटप्रदेशमें सोमेश्वरके समीप 'सर्प' नामक आंगिरसगोत्रीय जोशीसंज्ञक ब्राह्मणोंका ग्राम है। जहाँ समय-समयपर अनेक प्रख्यात ज्योतिर्विद् हो चुके हैं। पं० देवीदत्त जोशी भी अपने समयके प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। ज्योतिषके साथ ही कर्मकाण्डादि विषयोंके ये अच्छे ज्ञाता थे। इनके पितामहादिका अलवर (हिमाचल प्रदेश) आदि अनेक राजघरानोंसे सम्बन्ध रहा है। इनके पिता पं० रामदत्तजी स्वयं बहुत बड़े सनातनी पण्डित थे, जिन्होंने वार्षिकपद्धति, नित्यकर्मपद्धति आदि कई ग्रन्थोंका प्रणयन किया है। अपने पितासे अनेक विषयोंका अध्ययनकर आप तीर्थराज प्रयागमें चले आये और यहीं आपने 'सुगमज्योतिष'[२] आदि ग्रन्थोंकी रचना की। इनका समय १९वीं शती है।

ज्योतिषशास्त्रमें प्रवेशके लिये 'सुगमज्योतिष' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ग्रन्थ आठ अध्यायोंमें विभक्त है। जिनके नाम इस प्रकार है—'संज्ञाध्याय', 'जातकाध्याय', 'दशाध्याय', 'वर्षफलाध्याय', 'संस्काराध्याय', 'मुहूर्ताध्याय', 'प्रश्नाध्याय' तथा 'संहिताध्याय'।

(५) पं० श्रीगुणानन्द भड़ज्यू

पिथौरागढ़ नगरीसे २ मील पश्चिमकी ओर विश्वामित्र-गोत्रीय 'भट्ट' संज्ञक ब्राह्मणोंका विशाड़ नामक एक ग्राम है। १९वीं शतीके प्रारम्भमें यहाँ पं० विष्णुदत्तके पुत्र दैवज्ञ गुणानन्द अद्भुत ज्योतिर्विद् हो चुके हैं। ज्योतिष विद्याके साथ ही कर्मकाण्ड, मीमांसा, पुराण तथा साहित्यादि विषयोंके भी ये अच्छे ज्ञाता थे। ज्योतिषशास्त्रके उभयपक्षोंमें इनकी गति अबाध थी। 'प्रश्नविद्या' के तो ये प्रगल्भ विद्वान् थे। पंचांग तथा ग्रहगणितीय सारणियोंके साथ ही 'पृथ्वीसहस्रनाम' नामक एक लघुग्रन्थकी भी इन्होंने रचना की थी। ज्योतिषके अनेक ग्रन्थ इनके द्वारा प्रणीत होनेकी बात 'सोर' के इलाकेमें प्रसिद्ध है। कुछ समय पूर्वतक ग्राम विशाड़में इनके पौत्र श्रीगोविन्दवल्लभ भट्टजीके यहाँ अनेकों हस्तलिखित ग्रन्थ तथा अनुकृतिके ग्रन्थ देखे गये, किंतु वे आज नष्ट हो गये हैं। कुमाऊँमें 'गुणानन्द भड़ज्यू' के नामसे इनकी सर्वत्र प्रसिद्धि है। इनके पुत्र पं० हरिदत्तजी भी ज्योतिषके अच्छे ज्ञाता हुए हैं।

(६) पं० श्रीकेदारदत्त जोशी

कूर्मपृष्ठीय अल्मोड़ा जनपदके 'जुनायल' ग्राममें उत्पन्न गर्गगोत्रीय स्व० पं० श्रीहरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज पं० श्रीकेदारदत्त ज्योतिर्विद् पर्वतीयकी गणना काशीके अच्छे खगोलज्ञों तथा गणितज्ञोंमें की जाती है। आपका जन्म चैत्र शुक्ल अष्टमी (सन् १९०९ ई०)-को हुआ। अपनी जिज्ञासु प्रवृत्तिकी शान्तिके लिये आप ज्ञान-विज्ञानकी अनुपम नगरी काशीमें चले आये और यह

१. गणकतरंगिणी।

२. प्रथम बार सन् १९२२ ई०में इलाहाबादसे प्रकाशित।

समय लगभग सन् १९२७ ई० के आसपासका है। यहाँपर विश्वविख्यात खगोलशास्त्री पं० सुधाकर द्विवेदीजीकी शिष्य-परम्पराके प्रधान शिष्य पं० बलदेवजी पाठक तथा पं० रामयत्नजी ओझाकी गुरुत्व गरिमामें आपका अध्ययन सम्पन्न हुआ। सन् १९३८ ई०में हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्थापक तथा तत्कालीन कुलाधिपति महामना मदनमोहन मालवीयजीने म० म० प्रमथनाथ तर्कभूषण, संस्कृत महाविद्यालयके प्रधानाचार्य और मण्डन मिश्रकी परम्पराके प्रसिद्ध नैयायिक पं० बालकृष्ण मिश्र तथा ज्योतिष विभागके अध्यक्ष प्रसिद्ध गणितज्ञ पं० बलदेवजी पाठक—इन तीनों विद्वानोंके अनुरोधपर लुप्तप्राय गणित ज्योतिषकी शृंखलाको पुनः एक सूत्रमें पिरोनेके लिये आपको प्रख्यात गणितज्ञ जानकर हिन्दू विश्वविद्यालयके ज्योतिष विभागमें गणिताध्यापकके रूपमें नियुक्त किया। जहाँ आपने लगभग ३८ वर्षोंतक न केवल विद्यार्थियोंको विद्यादान दिया, अपितु समय-समयपर ज्योतिषके मौलिक सिद्धान्तोंकी ओर भी पण्डित समाजका ध्यान आकृष्ट किया। दैवज्ञ पं० केदारदत्तजीकी रचनाओंका नामोल्लेख इस प्रकार है—

(१) उपपत्ति (सिद्धान्तशिरोमणि मध्यमाधिकारान्त), (२) सूर्यग्रहण-विमर्श, (३) स्वरशास्त्र-विमर्श, (४) ज्योतिषनिबन्धसंग्रह, (५) दैवज्ञाभरण, (६) गणित-प्रवेशिका, (७) बृहदवकहडाचक्र, (८) ग्रहगणिताध्याय, (९) मुहूर्तचिन्तामणि-पीयूषधारापर पीताम्बरा व्याख्या, (१०) अष्टग्रहीयोग तथा क्षयमासमीमांसा, (११) ज्योतिश्शास्त्रका जीवतत्त्वपर विचार, (१२) ज्योतिषमें स्वरविज्ञानका महत्त्व, (१३) म० म० पं० सुधाकर द्विवेदीका जीवन एवं कृतियाँ तथा बृहज्जातक, ग्रहलाघव एवं नीलकण्ठी आदिकी व्याख्या।

लोकज्योतिषी घाघ और भड्डरीकी भविष्यवाणियाँ

(डॉ० श्रीरमेशप्रतापसिंहजी)

ज्योतिर्विज्ञान जिस प्रकार संस्कृत-भाषामें उपनिबद्ध होकर अनेक ग्रन्थोंके रूपमें सुरक्षित, संरक्षित है, उसी प्रकार लोकजीवनकी स्थानीय भाषाओंमें भी ज्योतिष-ज्ञानके अनेक व्यावहारिक सूत्र लोकस्मृतियोंमें संगृहीत होकर जन-जनकी वाणीसे प्रस्फुटित होते रहते हैं। भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है और कृषिका मुख्य आधार है वर्षा—'**पर्जन्यादन्नसम्भवः**'। समुचित वर्षा होनेपर ही अन्नकी उपज ठीकसे हो सकती है। अतः वर्षा कब होगी, होगी कि नहीं होगी, कितनी मात्रामें होगी—इसका ज्ञान होना कृषिकर्मके लिये बहुत आवश्यक है। यह विषय ज्योतिषके तीन स्कन्धोंमें मुख्य रूपसे संहितास्कन्धके अन्तर्गत वर्णित है, आचार्य वराहमिहिरने अपनी बृहत्संहितामें तथा उसके टीकाकार भट्टोत्पलने अपनी भट्टोत्पलीमें इस विषयपर बहुत विचार किया है, परंतु बेचारा किसान इन सब बातोंको कैसे जाने, सम्भवतः इसी समस्याके निदानके लिये लोकभाषामें कहावतोंके रूपमें सूक्तियोंका प्रादुर्भाव हुआ और इन्हीं कहावतों, जिनमें भविष्यवाणियाँ रहती हैं-के आधारपर ग्राम्य-अंचलमें खेती एवं सामाजिक समस्याओंका निदान करनेकी सुदीर्घ परम्परा रही है। इन भविष्यवाणियोंके जनकके रूपमें 'घाघ' तथा 'भड्डरी' का नाम अत्यन्त विश्रुत है। दोनोंने ही आजसे लगभग चार सौ वर्षपूर्व इन भविष्यवाणियोंका प्रवर्तन किया, जिनके मूल रूप ज्योतिषके ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं तथापि इनका मौसमज्ञान तथा शुभाशुभादि विचार वैयक्तिक अनुभूतिपर आधारित है।

घाघ जहाँ खेती, नीति एवं स्वास्थ्यसे जुड़ी कहावतोंके लिये विख्यात हैं, वहीं भड्डरीकी रचनाएँ वर्षा, ज्योतिष और आचार-विचारसे विशेष रूपसे सम्बद्ध हैं। घाघ और भड्डरीके विषयमें अनेक किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। ये दोनों ही अत्यन्त कुशल, बुद्धिमान्, नीतिमान् तथा भविष्यका ज्ञान रखनेवाले थे। सामान्यतया कोई व्यक्ति अत्यन्त नीतिनिपुण, चालाक एवं गहरी

सूझ-बूझ और पैठ रखनेवाला हो तो उसे 'घाघ' कहकर—यह कह दिया जाता है कि अरे! वह तो बड़ा ही घाघ है। यद्यपि इन दोनोंके व्यक्तिगत जीवनके विषयमें विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती तथापि कुछ बातें इस प्रकार हैं—

यह कहा जाता है कि घाघका जन्मस्थान बिहार (छपरा) था, वहाँसे ये कन्नौज चले आये। ऐसी मान्यता है कि कन्नौजमें घाघकी ससुराल थी और ये छपरासे आकर कन्नौजमें बस गये। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि उनकी अपनी पुत्रवधूसे अनबन रहती थी, इससे खिन्न होकर घाघ छपरा छोड़कर कन्नौज चले आये। कहा जाता है कि घाघका पूरा नाम देवकली दुबे था। इनके दो पुत्र थे और ये कन्नौजके चौधरीसरायके निवासी थे। घाघकी प्रतिभासे सम्राट् अकबर भी बहुत प्रभावित थे, फलस्वरूप उपहारमें उन्होंने इन्हें 'चौधरी' की उपाधि, प्रचुर धनराशि तथा कन्नौजके पास भूमि दी थी। इन्होंने जो गाँव बसाया, उसका नाम 'अकबराबाद सराय घाघ' पड़ा। अकबरकी मृत्यु सन् १६०५ ई० में हो गयी थी, अत: घाघका जन्म-समय सोलहवीं सदीके मध्यकालके पहलेका रहा होगा।

कहा जाता है कि घाघ बचपनसे ही कृषिविषयक समस्याओंके निदानमें अत्यन्त दक्ष थे और दूर-दूरसे लोग इनके पास समाधानके लिये आया करते थे। एक बार घाघ बचपनमें हमउम्र बच्चोंके साथ खेल रहे थे, उनकी गुणज्ञताको जानकर उसी समय एक ऐसा व्यक्ति इनके समीप आया, जिसके पास कृषिकार्यके लिये पर्याप्त भूमि थी, किंतु उसमें उपज इतनी कम होती थी कि उसका परिवार भोजनके लिये दूसरोंपर निर्भर रहता था। उस व्यक्तिकी समस्या सुनकर घाघ तुरंत ही बोल उठे—

आधा खेत बटैया देके, ऊँची दीह किआरी।
जो तोर लइका भूखे मरिहें, घघवे दीह गारी॥

कहा जाता है कि घाघके कथनानुसार करनेपर वह किसान धन-धान्यसे पूर्ण हो गया।

घाघ और उनकी पुत्रवधूकी नोंक-झोंक—घाघके सम्बन्धमें यह जनश्रुति है कि उनकी अपनी पुत्रवधूसे पटती नहीं थी। घाघ जो कहावतें कहते, पुत्रवधू उसका उलटा ही जवाब कहावतमें देती, एक-आध उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

घाघ—

मुये चाम से चाम कटावै, भुइँ सँकरी माँ सोवै।
घाघ कहैं ये तीनों भकुवा उढ़रि जाइँ पै रोवै॥

पुत्रवधू—

दाम देइ के चाम कटावै, नींद लागि जब सोवै।
काम के मारे उढ़रि गई जब समुझि आइ तब रोवै॥

घाघ—

बिन गौने ससुरारी जाय बिना माघ घिउ खींचरि खाय।
बिन वर्षा के पहनै पउवा घाघ कहैं ये तीनों कउवा॥

पुत्रवधू—

काम परे ससुरारी जाय मन चाहे घिउ खींचरि खाय।
करै जोग तो पहिरै पउवा कहै पतोहू घाघै कउवा॥

घाघ—

तरुन तिया होइ अँगने सोवै रन में चढ़ि के छत्री रोवै।
साँझे सतुवा करै बियारी घाघ मरै उनकर महतारी॥

पुत्रवधू—

पतिव्रता होइ अँगने सोवै बिना अन्नके छत्री रोवै।
भूख लागि जब करै बियारी मरै घाघ ही कै महतारी॥

घाघके समान ही भड्डरीका जीवनवृत्त भी सम्भावनाओंकी परिधिमें है, इनकी कहावतें उत्तरप्रदेश और बिहारमें अत्यधिक प्रचलित हैं, लोगोंका यह मानना है कि काशीके आस-पास इनका क्षेत्र माना जा सकता है। मारवाड़में भी एक भड्डरी हुए हैं, वे इनसे भिन्न हैं। घाघके समान ही लोकजीवनसे सम्बन्धित कहावतोंमें कही गयी भड्डरीकी भविष्यवाणियाँ भी बहुत प्रसिद्ध हैं। इन दोनोंका समय प्राय: एक ही है; क्योंकि कई कहावतोंमें ***'घाघ कहै सुनु भड्डरी'*** यह प्रयोग मिलता है। इन दोनोंकी भविष्यवाणियाँ अत्यन्त प्रासंगिक और उपयोगी हैं तथा ज्ञान-विज्ञानकी अनेक बातें इनमें भरी हैं। गेय

तथा रोचक होनेसे ये जनजीवनके कण्ठमें स्मृतिरूपमें व्याप्त हैं। लोग इन उक्तियोंको कहकर स्वयंको भी भविष्यवक्ता समझने लगते हैं। यहाँ संक्षेपमें भविष्यवाणियोंके रूपमें गुथी हुई वर्षा, अकाल तथा शकुन-सम्बन्धी कुछ कहावतें प्रस्तुत हैं—

वर्षासम्बन्धी कहावतें

आदि न बरसे अद्रा, हस्त न बरसे निदान।
कहै घाघ सुनु घाघिनी, भये किसान-पिसान॥

अर्थात् आर्द्रा नक्षत्रके आरम्भ और हस्त नक्षत्रके अन्तमें वर्षा न हुई तो घाघ कवि अपनी स्त्रीको सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि ऐसी दशामें किसान पिस जाता है अर्थात् बर्बाद हो जाता है।

आसाढ़ी पूनो दिना, गाज, बीज बरसन्त।
नासै लक्षण काल का, आनन्द माने सन्त॥

अर्थात् आषाढ़ मासकी पूर्णमासीको यदि आकाशमें बादल गरजे और बिजली चमके तो वर्षा अधिक होगी और अकाल समाप्त हो जायगा तथा सज्जन आनन्दित होंगे।

उत्तर चमकै बीजली, पूरब बहै जु बाव।
घाघ कहै सुनु घाघिनी, बरधा भीतर लाव॥

अर्थात् यदि उत्तर दिशामें बिजली चमकती हो और पुरवा हवा बह रही हो तो घाघ अपनी स्त्रीसे कहते हैं कि बैलोंको घरके अन्दर बाँध लो, वर्षा शीघ्र होनेवाली है।

उलटे गिरगिट ऊँचे चढ़ै। बरखा होई भूइँ जल बुड़ै॥

अर्थात् यदि गिरगिट उलटा पेड़पर चढ़े तो वर्षा इतनी अधिक होगी कि धरतीपर जल-ही-जल दिखेगा।

करिया बादर जीउ डरवावै। भूरा बादर पानी लावै॥

अर्थात् आसमानमें यदि घनघोर काले बादल छाये हैं तो तेज वर्षाका भय उत्पन्न होगा, लेकिन पानी बरसनेके आसार नहीं होंगे, परंतु यदि बादल भूरे हैं तो समझो पानी निश्चितरूपसे बरसेगा।

चमके पच्छिम उत्तर कोर। तब जान्यो पानी है जोर॥

अर्थात् जब पश्चिम और उत्तरके कोनेपर बिजली चमके, तब समझ लेना चाहिये कि वर्षा तेज होनेवाली है।

चैत मास दसमी खड़ा, जो कहुँ कोरा जाइ।
चौमासे भर बादला, भली भाँति बरसाइ॥

अर्थात् चैत्रमासके शुक्लपक्षकी दशमीको यदि आसमानमें बादल नहीं है तो यह मान लेना चाहिये कि इस वर्ष चौमासेमें बरसात अच्छी होगी।

जब बरखा चित्रा में होय। सगरी खेती जावै खोय॥

अर्थात् यदि चित्रा नक्षत्रमें वर्षा होती है तो सम्पूर्ण खेती नष्ट हो जाती है, इसलिये कहा जाता है कि चित्रा नक्षत्रकी वर्षा ठीक नहीं होती।

माघ में बादर लाल घिरै। तब जान्यो साँचो पथरा परै॥

अर्थात् यदि माघके महीनेमें लाल रंगके बादल दिखायी पड़ें तो ओले अवश्य गिरेंगे। तात्पर्य यह है कि यदि माघके महीनेमें आसमान लाल रंगका दिखायी दे तो ओले गिरनेके लक्षण हैं।

रोहिनि बरसे मृग तपे, कुछ दिन आर्द्रा जाय।
कहे घाघ सुनु घाघिनी, स्वान भात नहिं खाय॥

अर्थात् घाघ कहते हैं कि हे घाघिन! यदि रोहिणी नक्षत्रमें पानी बरसे और मृगशिरा तपे और आर्द्राके भी कुछ दिन बीत जानेपर वर्षा हो तो पैदावार इतनी अच्छी होगी कि कुत्ते भी भात खाते-खाते ऊब जायँगे और भात नहीं खायेंगे।

सावन केरे प्रथम दिन, उवत न दीखै भान।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान॥

अर्थात् यदि सावनके कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको आसमानमें बादल छाये रहें और प्रातःकाल सूर्यके दर्शन न हों तो निश्चय ही चार महीनेतक जोरदार वर्षा होगी।

अकालसम्बन्धी कहावतें

कातिक मावस देखो जोसी। रवि सनि भौमवार जो होखी।
स्वाति नखत अरु आयुष जोगा। काल पड़ै अरु नासैं लोगा॥

अर्थात् भड्डरीका कहना है कि ज्योतिषीको कार्तिककी अमावास्याको यह देख लेना चाहिये कि उस दिन रविवार, शनिवार और मंगलवार, स्वाती नक्षत्र तथा आयुष्ययोग तो नहीं है। यदि ऐसा है तो अकाल पड़ेगा और मनुष्योंका नाश होगा।

चटका मघा पटकिगा ऊसर। दूध भात में परिगा मूसर॥

अर्थात् यदि मघा नक्षत्र सूखा चला जाय तो समझो कि सारी जमीन ऊसर बन जायगी और किसानको दूध-भाततक भी नहीं मिलेगा।

नवैं असाढ़े बादले, जो गरजे घनघोर।
कहै भड्डरी ज्योतिसी, काल पड़े चहुँओर॥

अर्थात् आषाढ़ कृष्ण पक्षकी नवमीको आकाशमें घनघोर बादल गरजे तो ज्योतिषी भड्डरी कहते हैं कि चारों ओर भीषण अकाल पड़नेवाला है।

पाँच मंगरी फागुनी, पूस पाँच सनि होय।
काल पड़े तब भड्डरी, बीज बोअइ मति कोय॥

अर्थात् फाल्गुन मासमें पाँच मंगलवार और पौष मासमें यदि पाँच शनिवार पड़े तो भड्डरीके अनुसार निश्चय ही अकाल पड़नेवाला है और कोई बीज न बोये; क्योंकि उससे कोई लाभ नहीं होगा।

सावन पुरवाई चलै, भादों में पछियाँव।
कन्त डँगरवा बेचि के, लरिका जाइ जियाव॥

अर्थात् यदि सावन महीनेमें पुरवा हवा बहे और भाद्रपदमें पछुवा बहे तो हे स्वामी! पशुओंको बेच दो और बच्चोंको पालनेकी चिन्ता करो; क्योंकि वर्षा नहीं होगी और अकाल पड़ेगा।

ज्योतिष-सम्बन्धी कहावतें

अखै तीज रोहिनी न होई। पौष, अमावस मूल न जोई॥
राखी स्त्रवणो हीन विचारो। कातिक पूनों कृतिका टारो॥
महि-माहीं खल बलहिं प्रकासै। कहत भड्डरी सालि बिनासै॥

अर्थात् भड्डरी कहते हैं कि वैशाख अक्षय तृतीयाको यदि रोहिणी नक्षत्र न पड़े, पौषकी अमावास्याको यदि मूल नक्षत्र न पड़े, सावनकी पूर्णमासीको यदि श्रवण नक्षत्र न पड़े, कार्तिककी पूर्णमासीको यदि कृत्तिका नक्षत्र न पड़े तो समझ लेना चाहिये कि धरतीपर दुष्टोंका बल बढ़ेगा और धानकी उपज नष्ट होगी।

अद्रा भद्रा कृत्तिका, असरेखा जो मघाहिं।
चन्दा ऊगै दूज को, सुख से नरा अघाहिं॥

अर्थात् द्वितीयाका चन्द्रमा यदि आर्द्रा, भद्रा (भाद्रपद), कृत्तिका, आश्लेषा या मघामें उदित हो तो मनुष्यको सुख-ही-सुख प्राप्त होगा।

जो चित्रा में खेलै गाई। निहचै खाली साख न जाई॥

अर्थात् यदि कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा-गोवर्धनपूजा, अन्नकूट, गोक्रीड़ाके दिन चित्रा नक्षत्रमें चन्द्रमा हो तो फसल अच्छी होती है।

पाँच सनीचर पाँच रवि, पाँच मंगर जो होय।
छत्र टूट धरनी परै, अन्न महँगो होय॥

अर्थात् भड्डरी कहते हैं कि यदि एक महीनेमें पाँच शनिवार, पाँच रविवार और पाँच मंगलवार पड़ें तो महा अशुभ होता है। यदि ऐसा होता है तो या तो राजाका नाश होगा या अन्न महँगा होगा।

सोम सुकर सुरगुरु दिवस, पूस अमावस होय।
घर घर बजी बधाबड़ा, दुःखी न दीखै कोय॥

अर्थात् पूसकी अमावास्याको यदि सोमवार, बृहस्पतिवार या शुक्रवार पड़े तो शुभ होता है और हर जगह बधाई बजेगी तथा कोई भी आदमी दुःखी नहीं रहेगा।

शकुनविचार

कपड़ा पहिरै तीनि बार। बुध बृहस्पत सुक्रवार।
हारे अबरे इतवार। भड्डर का है यही बिचार॥

अर्थात् वस्त्र धारण करनेके लिये बुध, बृहस्पति और शुक्रवारका दिन विशेष शुभ होता है। अधिक आवश्यकता पड़नेपर रविवारको भी वस्त्र धारण किया जा सकता है, ऐसा भड्डरीका विचार है।

गवन समय जो स्वान। फरफराय दे कान॥
एक सूद्र दो बैस असार। तीनि विप्र औ छत्री चार॥
सनमुख आवैं जो नौ नार। कहैं भड्डरी असुभ विचार॥

अर्थात् भड्डरी कहते हैं कि यात्रापर निकलते समय यदि घरके बाहर कुत्ता खड़ा कान फटफटा रहा हो तो अशुभ होता है। यदि सामनेसे एक शूद्र, दो वैश्य, तीन ब्राह्मण, चार क्षत्रिय और नौ स्त्रियाँ आ रही हों तो अशुभ होता है।

चलत समय नेउरा मिलि जाय। बाम भाग चारा चखु खाय॥
काग दाहिने खेत सुहाय। सफल मनोरथ समझहु भाय॥

अर्थात् यदि कहीं जाते समय रास्तेमें नेवला मिल

जाय, नीलकण्ठ बायीं ओर चारा खा रहा हो और दाहिने ओर खेतमें कौवा हो तो जिस कार्यसे व्यक्ति निकला है, वह अवश्य सिद्ध होगा।

नारि सुहागिन जल घट लावै। दधि मछली जो सनमुख आवै॥
सनमुख धेनु पिआवै बाछा। यही सगुन हैं सबसे आछा॥

अर्थात् यदि सौभाग्यवती स्त्री पानीसे भरा घड़ा ला रही हो, कोई सामनेसे दही और मछली ला रहा हो या गाय बछड़ेको दूध पिला रही हो तो यह सबसे अच्छा शकुन होता है।

पुरुब गुधूली पश्चिम प्रात। उत्तर दुपहर दक्खिन रात॥
का करै भद्रा का दिगसूल। कहैं भड्डर सब चकनाचूर॥

अर्थात् भड्डरी कहते हैं कि यदि पूर्व दिशामें यात्रा करनी हो तो गोधूलि (सन्ध्या)-के समय, यदि पश्चिममें यात्रा करनी हो तो प्रात:काल यदि उत्तर दिशामें यात्रा करनी हो तो दोपहरमें और यदि दक्षिणकी ओर जाना है तो रातमें निकलना चाहिये। यदि उस दिन भद्रा या दिशाशूल भी है तो ऐसा करनेवाले व्यक्तिको कुछ भी नहीं होगा।

भरणि बिसाखा कृत्तिका, आद्रा मघा मूल।
इनमें काटै कूकुरा, भड्डर है प्रतिकूल॥

अर्थात् भड्डरीका कहना है कि यदि भरणी, विशाखा, कृत्तिका, आर्द्रा, मघा और मूल नक्षत्रोंमें कुत्ता काट ले तो बहुत बुरा होता है।

लोमा फिरि फिरि दरस दिखावे। बायें ते दहिने मृग आवै॥
भड्डर जोसी सगुन बतावै। सगरे काज सिद्ध होइ जावै॥

अर्थात् यात्रापर जाते समय यदि लोमड़ी बार-बार दिखायी पड़े। हिरण बायेंसे दाहिनेकी ओर निकल जाय तो व्यक्ति जिन कार्योंके लिये जा रहा होगा, वे सभी सिद्ध हो जायँगे, ऐसा ज्योतिषी भड्डरी कहते हैं।

सूके सोमे बुधे बाम। यहि स्वर लंका जीते राम॥
जो स्वर चले सोई पग दीजै। काहे क पण्डित पत्रा लीजै॥

अर्थात् शुक्रवार, सोमवार और बुधवारको बायें स्वरमें कार्य प्रारम्भ करनेसे सफलता मिलती है। रामने इसी स्वरमें लंका जीती थी। यदि बायाँ स्वर चले तो बायाँ पैर आगे निकालना चाहिये। दाहिना चले तो दाहिना पैर आगे निकालना चाहिये। इससे कार्य सिद्ध होता है। ऐसा करनेवाले व्यक्तिको पंचांगमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

सोम सनीचर पुरुब न चालू। मंगर बुद्ध उत्तर दिसि कालू।
बिहफै दक्खिन करै पयाना। नहि समुझें ताको घर आना॥
बूध कहै मैं बड़ा सयाना। मोरे दिन जिन किह्यौ पयाना॥
कौड़ी से नहिं भेट कराऊँ। छेम कुसल से घर पहुँचाऊँ॥

अर्थात् यदि यात्रापर जाना हो तो सोमवार और शनिवारको पूर्व, मंगल और बुधको उत्तर दिशामें नहीं जाना चाहिये। यदि व्यक्ति बृहस्पतिको दक्षिण दिशाकी यात्रा करेगा तो उसका घर लौटना सन्दिग्ध होगा। बुधवार कहता है कि मैं बहुत चतुर हूँ, व्यक्तिको मेरे दिन कहीं भी यात्रा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि मैं उसको एक कौड़ीसे भी भेंट नहीं होने दूँगा। हाँ! क्षेम-कुशलसे उसको घर पहुँचा दूँगा।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी

गाय दुहे, बिन छाने लावै, गरमा गरम तुरंत चढ़ावै।
बाढ़े बल अउर बुद्धि भाई, घाघ कहे सच्ची बतलाई॥

अर्थात् घाघका कहना है कि गायको दूहकर उसी समय बिना छाने गरमागरम कच्चा दूध पीनेसे बल और बुद्धि दोनों बढ़ती हैं।

चैते गुड़ बैसाखे तेल, जेठे पन्थ असाढ़े बेल।
सावन साग न भादो दही, क्वार करेला न कातिक मही॥
अगहन जीरा पूसे धना, माघे मिश्री फागुन चना।
ई बारह जो देय बचाय, वहि घर बैद कबौं न जाय॥

अर्थात् यदि व्यक्ति चैत्रमें गुड़, वैशाखमें तेल, ज्येष्ठकी धूपमें यात्रा, आषाढ़में बेल, सावनमें साग, भाद्रपदमें दही, आश्विनमें करेला, कार्तिकमें मट्ठा, मार्गशीर्षमें जीरा, पौषमें धनिया, माघमें मिसरी और फाल्गुनमें चना सेवन करे तो—ये वस्तुएँ स्वास्थ्यके लिये कष्टकारक होती हैं। जिस घरमें इनसे बचा जाता है, उस घरमें वैद्य कभी नहीं आता; क्योंकि लोग स्वस्थ बने रहते हैं।

वेध एवं वेधशालाओंकी परम्परा

(डॉ० श्रीविनयकुमारजी पाण्डेय)

ज्योतिषशास्त्रमें वेध एवं वेधशालाओंका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। ब्रह्माण्डस्थ ग्रहनक्षत्रादि पिण्डोंके अवलोकनको वेध कहा जाता है। संस्कृत व्याकरणमें वेध व्यध् धातुसे निष्पन्न होता है। परिभाषारूपमें नग्ननेत्र या शलाका, यष्टि, नलिका, दूरदर्शक इत्यादि यन्त्रोंके द्वारा आकाशीय पिण्डोंका निरीक्षण ही वेध है। नलिकादि यन्त्रोंसे ग्रहोंके विद्ध होनेके कारण ही इस क्रियाका नाम वेध विश्वविश्रुत है। दृष्टि एवं यन्त्रभेदसे वेध दो प्रकारका होता है।

दृष्टिवेध भी अन्तर्दृष्टिवेध एवं बाह्यदृष्टिवेधसे दो प्रकारका होता है। यहाँ महर्षियोंद्वारा यम-नियम, आसन-प्राणायामादि तपस्याओंसे भक्ति-ज्ञानजन्य नेत्रद्वारा ब्रह्माण्डस्थ पिण्डोंके अवलोकनको अन्तर्दृष्टिवेध तथा स्व-स्व नग्ननेत्रद्वारा आकाशस्थ पिण्डावलोकनको बाह्यदृष्टिवेध माना जाता है। जब हम चक्रनलिका, शंकु, दूरदर्शक आदि वेध-उपकरणोंसे सूर्यादि ज्योतिष पिण्डोंको देखते हैं तो यन्त्रवेध होता है।

वैदिक कालसे ही नक्षत्रों, तारापुंजों, सप्तर्षिमण्डल एवं नक्षत्रोंकी युति-अन्तर आदिका वर्णन मिलता है, जिनका ज्ञान वेधके बिना सम्भव नहीं था। वेदोंमें वर्णित आकाशीय घटनाओंका उल्लेख वेध-सम्बन्धित कुछ साक्ष्य उपस्थापित करता है—

'अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहतिः'

(ऋक्० १०। ८५। २)

वेदोंके अवलोकनसे प्राप्त ज्योतिषीय तथ्योंके अवगमनद्वारा सारांशरूपमें कह सकते हैं कि वैदिक कालमें भी वेध-परम्परा प्रचलित थी, परंतु किन स्थलों (वेधशालाओं)-पर किन साधनों (यन्त्रों)-द्वारा वेध सम्पादित होते थे, इस विषयमें दृढ़तापूर्वक कुछ भी कहना बड़ा ही कठिन होगा।

शुल्बसूत्रोंमें यज्ञ-सम्पादनके प्रसंगमें कुण्ड-मण्डपादि-साधनके लिये शंकुद्वारा दिग्-साधनका उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत-कालमें भी ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थितिका समुचित ज्ञान था। शल्यपर्वमें शुक्र एवं मंगलके चन्द्रमासे युतिका वर्णन प्राप्त होता है।[१] भीष्मपर्वमें तो ग्रहोंके युति-अन्तरादि विषयोंके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

सूर्यसिद्धान्त ज्योतिषशास्त्रका प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थ स्वीकृत है। इसके स्पष्टाधिकारके १४वें श्लोकमें स्पष्ट वर्णन है कि जिस विधिसे ग्रह दृष्टिमें उपलब्ध होते हैं, उस क्रियाको कह रहा हूँ।[२] ग्रन्थके अन्तमें गोल, बीज, शंकु, कपाल एवं मयूर इत्यादि यन्त्रोंका वर्णन मिलता है।[३]

परंतु वहाँ भी यन्त्रोंके निर्माण एवं प्रयोगकी विधि नहीं दी गयी है, फिर भी वेधविधि विकासपथमें अग्रसरित दिखायी देती है। ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्त ग्रन्थोंमें 'आर्यभटीयम्' उपलब्ध है। इसकी रचना ३९८ शकमें आर्यभटने की थी। इस ग्रन्थमें कालमापक यन्त्रकी निर्माण एवं प्रयोगविधि निर्दिष्ट है तथा शंकु यन्त्रका भी वर्णन मिलता है। इसके बाद मध्ययुगीय परम्परामें वेधकी दिशामें क्रमशः सार्थक प्रयास दिखायी देता है। वराहमिहिरके पंचसिद्धान्तमें वेध-सम्पादनपूर्वक बीज-संस्कार भी दिखायी देता है। वराहमिहिरके अनन्तर वेध-परम्परामें ब्रह्मगुप्तका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनका जन्म ५२० शकाब्दमें हुआ था। ब्रह्मगुप्त महान् दैवज्ञ वेधकुशल एवं दृक्सिद्ध ग्रहोंके पोषक थे। उन्होंने वेधद्वारा यह अनुभव किया कि प्रचलित विभिन्न सिद्धान्तोंके द्वारा दृक्सिद्ध ग्रह प्राप्त नहीं होते। अतः ब्रह्मगुप्तने स्फुट दृक्सिद्ध ग्रहोंके आनयनके लिये 'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त' की रचना की। इस ग्रन्थमें स्पष्ट संकेत प्राप्त

---

१. भृगुसूनू धरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ। (महाभारत-शल्यपर्व ११। १८)

२. तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः। प्रयान्ति तत् प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्॥

३. शङ्कुयष्टिधनुश्चक्रैश्छायायन्त्रैरनेकधा ॥ गुरूपदेशाद् विज्ञेयं कालज्ञानमतन्द्रितैः। (सू०सि० १३। २०-२१)

होता है कि नलिकादि यन्त्रोंद्वारा स्पष्टतर बीजका साधनकर उससे संस्कृत ग्रहोंद्वारा ही निर्णय एवं आदेश करना चाहिये।* ब्रह्मगुप्तके बाद १४४२ शकाब्दतक वेध-परम्परा वृद्धिपथमें दिखायी देती है। इस बीच मुंजाल, श्रीधराचार्य, श्रीपति, भास्कराचार्य, बल्लालसेन, केशवार्क, महेन्द्रसूरि, मकरन्द, केशव, ज्ञानराज इत्यादि वेधनिपुण दैवज्ञोंके प्रयास वेधकी दिशामें अन्यतम स्थान रखते हैं। दृक्सिद्ध ग्रहसाधन एवं वेधपरम्परामें केशवदैवज्ञ तथा उनके पुत्र गणेशदैवज्ञका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। केशवदैवज्ञ वेधक्रियामें अतीव दक्ष दिखायी देते हैं। १४१८ शकके लगभग इन्होंने ग्रहकौतुक नामक करणग्रन्थकी रचना वेधसिद्ध ग्रहोंके आधारपर की। ग्रहकौतुककी स्वकृत मिताक्षरा टीकामें अपने द्वारा किये गये वेधका जैसा स्पष्ट वर्णन इन्होंने दिया है, वैसा अन्यत्र ग्रन्थोंमें नहीं दिखायी पड़ता। कालान्तरसे इनके ग्रन्थको भी वेधद्वारा स्थूल देखकर इनके पुत्र गणेशदैवज्ञने वेधद्वारा प्राप्त निष्कर्षोंसे ग्रहलाघव नामक करण-ग्रन्थकी रचना की। इसके बाद लगभग दो शताब्दियोंतक ज्योतिष एवं वेध-परम्पराका प्रचार-प्रसार सामान्य गतिसे चलता रहा। इसके बीच अनेक विद्वान् हुए, जिनमें कमलाकर भट्ट एवं मुनीश्वर आदि प्रमुख हैं। इनके ग्रन्थोंमें भी वेध-सम्बन्धी पूर्वागत परम्पराका ही परिपालन है।

इस तरह सूर्यसिद्धान्त या आर्यभटके कालसे आरम्भकर लगभग १५वीं शताब्दीतक मुख्यतया शंकुयन्त्र, घटीयन्त्र, नलिकायन्त्र, यष्टियन्त्र, चापयन्त्र, तुरीययन्त्र, फलकयन्त्र, दिगंशयन्त्र एवं स्वयंवह यन्त्रका प्रयोग दिखायी देता है।

यद्यपि इस कालमें वेधप्रक्रिया विकसित हो चुकी थी, नये यन्त्रोंका आविष्कार भी प्रचलनमें था, परंतु स्थायी वेधशालाओंकी चर्चा कहीं प्राप्त नहीं होती।

१५वीं शताब्दीतक यूरोप एवं अरब देशोंमें वेधप्रक्रिया बहुत विकसित हो चुकी थी। हिपार्कस, टालमी इत्यादि विद्वानोंने अपनी वेधक्षमतासे अनेक नूतन तथ्य उपस्थापित किये थे। सन् १३९४ ई० एवं १४४९ ईसवीके मध्य तैमूरलंगके पौत्र उलूगबेगने भी वेधके क्षेत्रमें सराहनीय प्रयास किया था। उलूगबेग समरकन्दका बादशाह एवं खगोलविद्याका प्रेमी था। अतः इसने अपने राज्यमें एक वेधशालाका निर्माणकर वेधद्वारा ग्रह-नक्षत्रोंकी अनेक सारणियाँ निर्मित की थीं।

१५वीं शताब्दीके अनन्तर कालक्रमसे वेधविषयक ज्ञानमें वृद्धि हुई। पूर्वप्रचलित शंकुयष्टिनलिका इत्यादि यन्त्रोंके स्थानपर धातुनिर्मित लघु यन्त्रोंका प्रयोग होने लगा। कालान्तरमें लघु यन्त्रोंके परिणामकी स्थूलता देखकर ईंट-पत्थर एवं चूर्ण इत्यादिसे बड़े आकारके यन्त्रों एवं विस्तृत वेधशालाओंका निर्माण एवं प्रयोग होने लगा।

भारतीय वेध-परम्पराका स्वर्णकाल महाराज सवाई जयसिंहके कालसे प्रारम्भ होता है। यद्यपि जयसिंहके पूर्ववर्ती वेधकुशल दैवज्ञोंने वेधशालाओंका निर्माणकर वेधकार्य सम्पादित किया था तथापि वेधशालाओंकी परम्परामें सवाई जयसिंहकी तरह सुव्यवस्थित एवं व्यापक कार्य भारतीय ज्योतिषशास्त्रके इतिहासमें नहीं दिखायी देता। इन्होंने जयपुर, दिल्ली, उज्जैन, वाराणसी तथा मथुरामें वेधशालाओंकी स्थापना की।

सवाई जयसिंहकी इच्छासे इनके गुरु जगन्नाथ सम्राट्ने दिल्ली-जयपुर आदि वेधशालाओंमें वेध सम्पादितकर प्राप्त परिणामोंकी समीक्षापूर्वक अरबी भाषामें 'जिज-ए-मुहम्मदशाही' तथा संस्कृत भाषामें 'सिद्धान्त-सम्राट्' नामक ग्रन्थोंकी रचना की।

जयसिंहके अनन्तर आधुनिक वेधकर्ताओंमें सर्वप्रथम वेंकटेशबापूशास्त्री केतकर महोदयका नाम स्मरणीय है। इन्होंने प्राच्य-पाश्चात्य ग्रहगणितके समन्वयसे १८१८ शकमें सूक्ष्मसिद्धान्तमण्डित 'केतकीग्रहगणित' नामक ग्रन्थकी रचना की है। इसी क्रममें सन् १८३५ ई०के उड़ीसा प्रान्तके सामन्त चन्द्रशेखरका भी वेधके क्षेत्रमें

* संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादियन्त्रेभ्यः। तत्संस्कृतग्रहेभ्यः कर्तव्यो निर्णयादेशौ॥

योगदान स्मरणीय है। इन्होंने दृग्गणितैक्य-सम्पादनके लिये प्राचीन ग्रन्थोंमें उद्धृत यन्त्रवर्णनके अनुसार कुछ यन्त्रोंका निर्माणकर वेधद्वारा 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थकी रचना की। ज्योतिषशास्त्रकी आधुनिक वेध-परम्परामें डॉ० मेघनाद साहा आदि विद्वान् स्मरणीय हैं।

१३वीं शताब्दीमें 'पोप ग्रिगरी' द्वारा रचित 'वाशिंगटन' वेधशाला पाश्चात्यदेशीय वेधशालाओंमें उपलब्ध सबसे प्राचीनतम वेधशाला है। अमेरिकामें तीन वेधशालाएँ प्रमुख हैं—१-लिंगवेधशाला, २-प्रो० लावेलकी वेधशाला, ३-हार्वर्ड विश्वविद्यालयस्थ वेधशाला। अमरिकाके कैलिफोर्निया प्रान्तमें 'फ्लोमर' पर्वतपर स्थित वेधशाला आधुनिक वेधशालाओंमें अग्रणी है। आधुनिक भारतीय वेधशालाओंमें मद्रास वेधशाला, तमिलनाडु-प्रदेशस्थ कोडाईकनाल वेधशाला, नीलगिरि-पर्वतपर स्थित उटकमण्ड-वेधशाला, उस्मानिया वेधशाला आदि प्रमुख हैं।

राजस्थान प्रान्तके उदयपुर नगरमें फतेहसागर जलाशयके निकट स्थित उदयपुर वेधशाला और उत्तरांचल प्रदेशके नैनीताल शहरमें स्थित नैनीताल वेधशाला भी देशकी श्रेष्ठ वेधशालाओंमें परिगणित हैं। इन आधुनिक वेधशालाओंके अतिरिक्त राष्ट्रके अनेक भागोंमें कृत्रिम तारामण्डल भी स्थापित हैं। [संस्कृत वाङ्मयका बृहद इतिहास]

महाराजा सवाई जयसिंह एवं उनकी प्रस्तर-वेधशालाएँ

(ठा० श्रीप्रह्लादसिंहजी)

मध्यकालीन भारतीय इतिहासकी अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भिक पचास वर्षोंके राजनीतिज्ञों और शासकोंपर दृष्टि डाली जाय तो महाराजा सवाई जयसिंहका व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यन्त विशिष्टतालिये दृष्टिगोचर होता है। वे जहाँ एक पराक्रमी योद्धा थे, वहीं वे एक चतुर कूटनीतिज्ञ, धर्मप्रेमी, युद्धनीतिमें निपुण, शस्त्रनिर्माणके विशेषज्ञ, वास्तुविद् और ज्योतिर्विद् भी थे। राजा जयसिंहका जन्म ३ नवम्बर, सन् १६८८ ई० को कछवाहा (कुशवाहा)-वंशमें हुआ था। उनके पिता राजा विशनसिंह (विष्णुसिंह) आमेरके राजा थे। बालक जयसिंहके जन्मके समय दरबारी ज्योतिषियोंने भविष्यवाणी की थी कि राजकुमारोंकी आकाशगंगामें उनके पुत्र बृहस्पतिकी भाँति देदीप्यमान रहेंगे और इस वंशके सर्वाधिक प्रतिष्ठित सूर्य होंगे।

उनके दूरदर्शी पिताने उनकी शस्त्रविद्या और शैक्षणिक शिक्षाके लिये अलग-अलग प्रबन्ध किये। सन् १६९९ ई०में पिताके आकस्मिक निधनके उपरान्त जयसिंह बाल्यकालमें ही ११ वर्षकी आयुमें आमेरके राजा बने। वे अपनी आयुसे भी अधिक समझदार थे। मुगल सम्राट् औरंगजेब उनकी बुद्धिमत्ता और बहादुरीसे इतने प्रभावित थे कि उन्होंने इस युवा राजपूत राजाको सवाईकी उपाधिसे सुशोभित किया। वे अपने समकालीन राजाओंसे सवा गुना बुद्धिमान् थे।

महाराजा विशनसिंहकी मृत्युके बाद राजमाता इन्द्राकँवरने अपने बुद्धिमान् पुत्रको विद्वानों और गुरुओंकी छत्रछायामें रखकर उसके सर्वांगीण विकासके हर

सम्भव प्रयास किये।

खगोल-विज्ञानसम्बन्धी हिन्दू, यूनानी, मुस्लिम और यूरोपियन विचारोंका सर्वांगसम अध्ययन करनेके बाद सवाई जयसिंहने सन् १७१९ ई०में दिल्लीमें प्रथम खगोल-विज्ञानीय वेधशालाका निर्माण आरम्भ किया। उस समय मुगल बादशाह मुहम्मदशाह भारतके सम्राट् थे, उन्होंने इसके लिये सहर्ष अनुमति दे दी।

सवाई महाराज जयसिंह पहाड़ियोंके बीच स्थित अपनी पुरानी राजधानी आमेरको एक बृहत् और सुन्दर शहरमें बदलना चाहते थे, १८ नवम्बर, सन् १७२७ ई० को उन्होंने इसके निर्माणका शिलान्यास किया। उनके खगोलीय ज्ञानका प्रकटरूप हम गुलाबी शहर जयपुरके निर्माणमें देखते हैं, जिसमें उन्होंने नौ आयताकार खण्ड और सात द्वारोंका निर्माण कराया, इनमेंसे कुछ सूर्य, चन्द्र और ध्रुवतारेकी ओर अभिमुख हैं। उनके द्वारा किये गये खगोलविज्ञान-सम्बन्धी कार्य और वेधशालाएँ उनकी कीर्तिपताकाके रूपमें आज भी विद्यमान हैं।

उनके कीर्तिमान

१-जयपुरमें विश्वकी सबसे बड़ी और सर्वाधिक सूक्ष्म 'सूर्यघड़ी' निर्मित करानेका कीर्तिमान भी सवाई राजा जयसिंहके ही नाम है। ३५ मीटरके बृहत् व्यासक्षेत्रमें चूना-पत्थरसे निर्मित यह घड़ी सैद्धान्तिक-रूपसे प्रत्येक मिनटमें २ सेकेण्डतकके समयको ठीक बताती है।

२-आकाशके व्यावहारिक रूपसे अवलोकनके आधारपर उन्होंने वर्तमान पंचांगों (कैलेण्डरों)-में सुधार किया, उज्बेगकी खगोलीय तालिकाओंका परिशोधन एवं परिवर्धन किया और तारों तथा ग्रहोंकी प्रसिद्ध जिज-ए-मुहम्मदशाही विवरणिकाकी रचना की।

३-आमेर राजघरानेके प्रमुख और कुशल सेनापतिके रूपमें उन्होंने विश्वकी 'पहियोंपर सबसे बड़ी तोप' का निर्माण कराया, जिसकी गोला फेंकनेकी क्षमता ४० किमीतक थी। यह तोप केवल हाथियोंद्वारा ही खींची जा सकती थी। यह आज भी आमेरके जयगढ़ किलेमें प्रदर्शनार्थ रखी हुई है।

४-सवाई महाराज जयसिंहने ऐसे कई मन्दिरोंका निर्माण करवाया, जो पूर्णतः खगोलपिण्डों—सूर्य, चन्द्र और नौ ग्रहोंको समर्पित थे। भगवान् सूर्यकी प्रतिष्ठामें उन्होंने एक प्रसिद्ध सूर्यमन्दिरका निर्माण कराया, जो पूर्व दिशाकी पहाड़ीपर स्थित है तथा जयपुर शहरसे दिखायी देता है।

खगोलविद्या-सम्बन्धी इन अमर कीर्तिमानोंका निर्माण कराकर २१ सितम्बर, सन् १७४३ ई० को लगभग ५५ वर्षकी आयुमें उन्होंने जीवनकी अन्तिम साँस ली।

उनके द्वारा स्थापित वेधशालाओंका संक्षेपमें विवरण प्रस्तुत है—

(१) जयपुरकी वेधशाला—यह वेधशाला समुद्रतलसे ४३१ मीटर (१४१४ फीट)-की ऊँचाईपर स्थित है, इसका देशान्तर ७५° ४९'८.८" ग्रीनविचके पूर्वमें तथा अक्षांश २६° ५५' २७" उत्तरमें है।

प्रस्तर-यन्त्रोंसे युक्त दिल्ली वेधशालापर किये गये सफल प्रयोगके उपरान्त सन् १७२४ ई० में महाराजा सवाई जयसिंहने अपनी नयी राजधानी जयपुरमें एक बृहत् वेधशालाके निर्माणका निर्णय लिया और सन् १७२८ ई० में यह वेधशाला बनकर तैयार हुई।

जयपुर वेधशाला राजा सवाई जयसिंहकी हिन्दू, मुसलिम और यूरोपियन खगोलविदोंसे खगोल-विज्ञानसम्बन्धी विषयोंपर विचार-विमर्श करनेका केन्द्र बन गयी। इस वेधशालाका प्रयोग ज्योतिष-सम्बन्धी अध्ययन, भविष्यवाणियों और जन्म-पत्रिकाएँ बनाने तथा विभिन्न खगोल-विज्ञानीय यन्त्रोंकी सहायतासे खगोल-विज्ञानसम्बन्धी आँकड़े एकत्रित करनेमें होता था।

जयपुर वेधशाला ऊँची-ऊँची दीवारोंसे घिरी हुई है। यद्यपि यह आधुनिक शहरके व्यस्ततम क्षेत्रमें स्थित है, फिर भी भीड़भरे माहौलमें यह वेधशाला अत्यन्त शान्त और गम्भीर वातावरणका आभास कराती है।

आकाशीय पिण्डोंकी क्रान्ति, खगोलीय देशान्तर, भौगोलिक देशान्तर, क्रान्तिवृत्त, भचक्र राशियोंकी स्थिति,

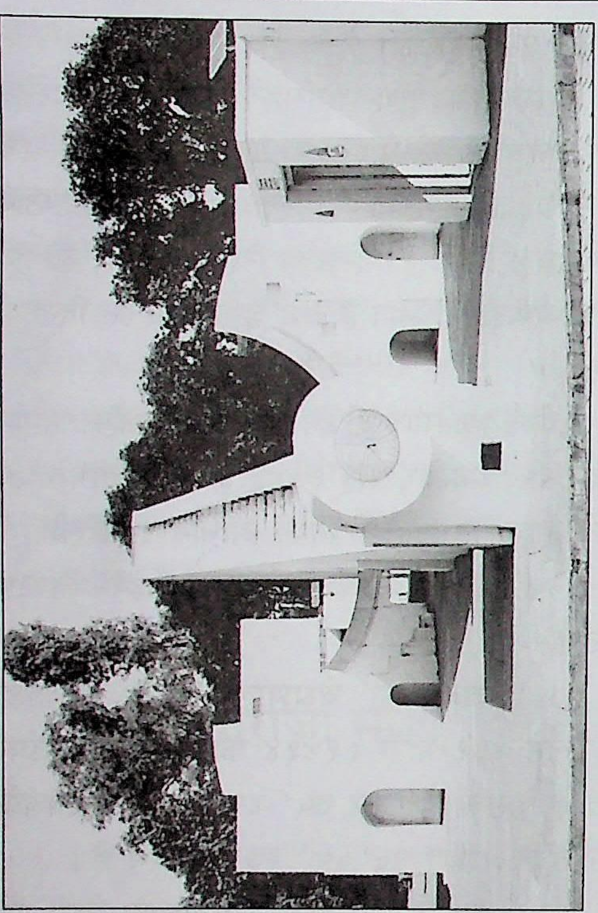

उज्जैनकी वेधशाला

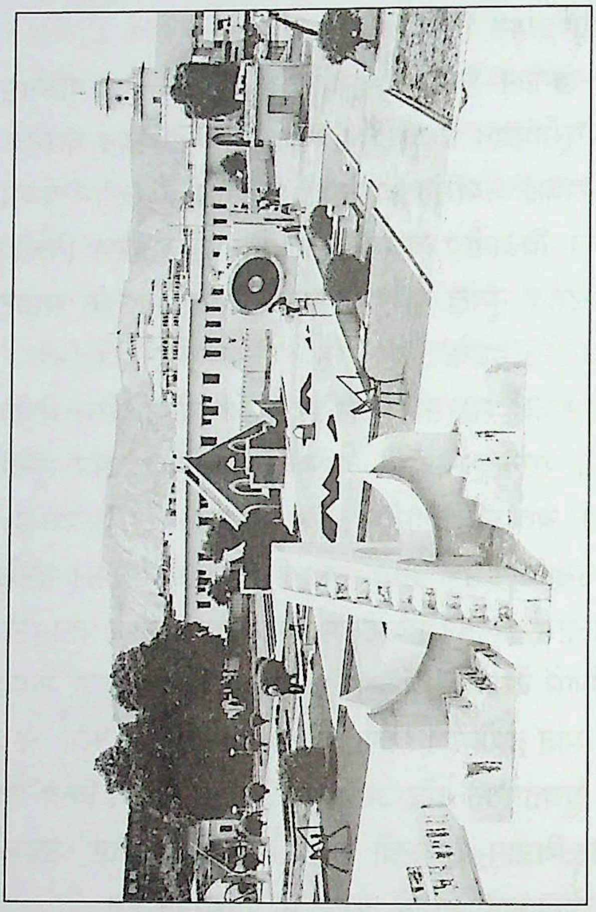

जयपुरकी वेधशाला

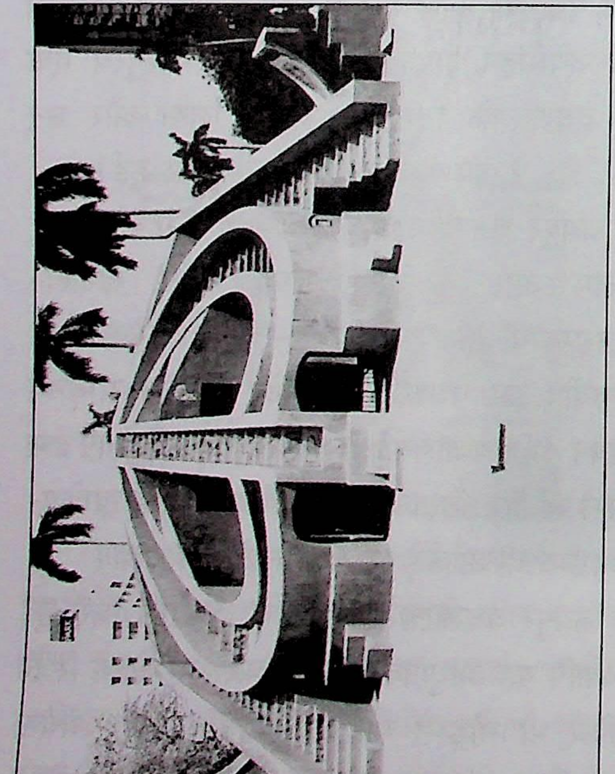

दिल्लीकी वेधशाला

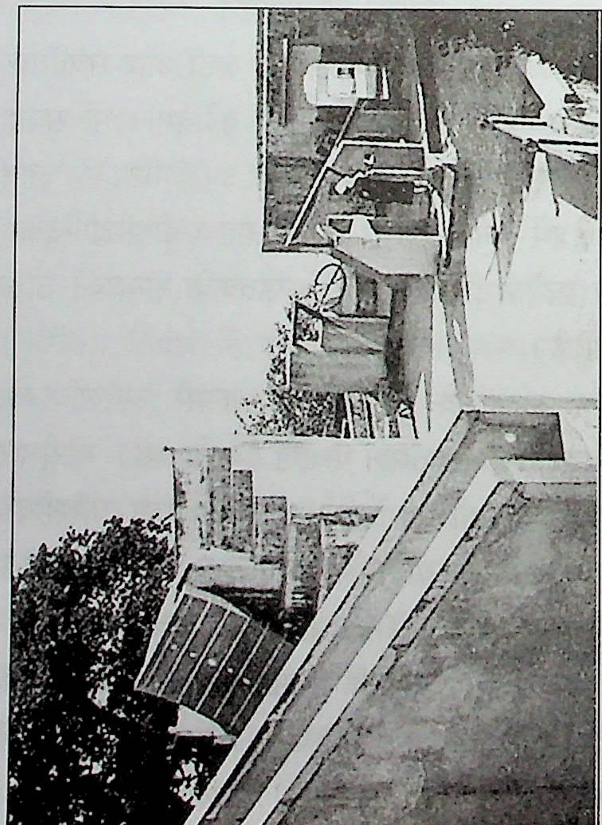

वाराणसीकी वेधशाला

विषुवांश, सूर्य समय, उन्नतांश, दिगांश, अक्षांश इत्यादिका अध्ययन, ग्रह-नक्षत्र-सारणी तथा पंचांग आदिकी रचना तथा मुहूर्त-निर्धारण करनेहेतु जयपुर वेधशालामें निम्नलिखित यन्त्रोंकी रचना की गयी—

१-लघु विषुवतीय धूपघड़ी (लघु सम्राट् यन्त्र), २-ध्रुवदर्शक यन्त्र, ३-वृत्ताकार उत्तरी तथा दक्षिणी सूर्यघड़ी (नाड़ीवलययन्त्र), ४-समतल (क्षितिजीय धूपघड़ी), ५-क्रान्तिवृत्तयन्त्र, ६-ज्योतिष-प्रयोगशाला (यन्त्रराज), ७-उन्नतांशयन्त्र, ८-दक्षिणीवृत्ति भित्ति-यन्त्र—(क) पश्चिमी भित्तियन्त्र, (ख) पूर्वी भित्ति-यन्त्र, ९-बृहत् विषुवतीय सूर्यघड़ी (बृहत् सम्राट् यन्त्र), षष्ठांशयन्त्र, १०-राशिवलय (राशियन्त्र १२), ११-जयप्रकाशयन्त्र, १२-अर्धगोलाकार (कपालीयन्त्र-२), १३-चक्रयन्त्र-२, १४-रामयन्त्र-२ (उन्नतांश, दिगांशयन्त्र), १५-दिगांशयन्त्र एवं १६-प्रतिबन्धित क्रान्तिवृत्तयन्त्र।

महाराजा सवाई माधोसिंहके आदेशसे सन् १९०१ ई० में इस वेधशालाका जीर्णोद्धार हुआ। स्वतन्त्रताके बाद यह वेधशाला राष्ट्रीय धरोहर बन गयी और अब इसका संरक्षण-अनुरक्षण राजस्थान सरकारके पुरातत्त्व विभागद्वारा किया जाता है।

२-दिल्ली वेधशाला—यह समुद्रतलसे २३९ मीटर (७८५ फुट)-की ऊँचाईपर, अक्षांश—२८ अंश ३९ विकला उत्तर तथा देशान्तर—ग्रीनविचके पूर्वमें ७७ अंश १३ कला ५ विकलापर स्थित है।

यह भव्य वेधशाला जन्तर-मन्तरके नामसे प्रसिद्ध है। जन्तर-मन्तर एक राष्ट्रीय स्मारक है, जिसका अनुरक्षण भारतीय पुरातत्त्व विभागद्वारा किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराजाने इस वेधशालाका निर्माण-कार्य हिन्दुस्तानके मुगल-सम्राट् मुहम्मदशाहके राज्याभिषेकके तुरन्त बाद सन् १७१९ ई० में आरम्भ कराया था और सन् १७२४ ई० में पूर्ण कर लिया था। सवाई जयसिंहने पं० जगन्नाथ सम्राट्के सहयोगसे यहाँ सात वर्षतक खगोलीय पिण्डोंका अवलोकन करके खगोलीय सारणियाँ और तारा सूचीपत्र तैयार किये, जिन्हें मुगल बादशाह मुहम्मदशाहके नामपर 'जिज-ए-मुहम्मदशाही' नाम दिया गया।

सन् १७३९ ई०में फारसके नादिरशाहने आक्रमणकर दिल्लीमें भारी कत्ले-आम और लूटपाट मचा दिया। वह अनेक अमूल्य रत्नों और आभूषणोंको लूट ले गया। उसने महाराज सवाई जयसिंहके ताँबेके यन्त्र और खगोलीय प्रयोग-सम्बन्धी अन्य यन्त्रोंका अनमोल संग्रह भी लूट लिया। इस प्रकार भारत प्राचीन खगोलविज्ञानके सर्वाधिक मूल्यवान् खजानेसे सदैवके लिये वंचित हो गया। फिर भी चूना-पत्थरके यन्त्र नादिरशाहकी तोड़-फोड़से बच गये; क्योंकि इनपर किसी देवी-देवताकी या मानवीय मूर्ति अंकित नहीं थी। बादमें सवाई माधोसिंह द्वितीयने इस वेधशालाके कुछ क्षतिग्रस्त यन्त्रोंका जीर्णोद्धार कराया। तत्पश्चात् यह ऐतिहासिक 'जन्तर-मन्तर' कई दशकोंतक उपेक्षित रहा और सन् १९८२ ई०में इसके फिर दिन बदले, जब एशियाड सन् १९८२ ई०में इस वेधशालाके मिश्रयन्त्रको 'शुभंकर' के रूपमें चुना गया। पुरातत्त्व विभागने इस वेधशालाके अधिकांश यन्त्रोंका चूने-पत्थर और पलस्तरसे जीर्णोद्धार कराया। दिल्ली वेधशालाके खगोलीय यन्त्र इस प्रकार हैं—

१-मिश्र यन्त्र—(क) मध्याह्न रेखा भित्तियन्त्र (दक्षिणीवृत्ति भित्तियन्त्र), (ख) लघुविषुवतीय धूप-घड़ी, (ग) कर्क भचक्रयन्त्र (कर्कराशिवलय), (घ) अग्रायन्त्र, (ङ) स्थिरयन्त्र (नियत चक्रयन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय सूर्य-घड़ी); २-बृहत् विषुवतीय सूर्य-घड़ी (बृहत् सम्राट् यन्त्र); ३-वलीय गोलाधरयन्त्र (जयप्रकाशयन्त्र, भाग २); ४-उन्नतांश-दिगांशयन्त्र-२ (रामयन्त्र)।

३-उज्जैन वेधशाला—यह समुद्रतलसे ४९२ मीटर (१५०० फुट) ऊँचाईपर, देशान्तर—७५ अंश ४५ कला (ग्रीनविचके पूर्व) तथा अक्षांश—२३ अंश १० कला उत्तरपर स्थित है।

प्राचीन भारतके लिये उज्जैन वही था, जो आजकी

दुनियाके लिये ग्रीनविच है। प्राचीन हिन्दू खगोलविद् उज्जैनकी स्थिति मुख्य मध्याह्न रेखापर मानते थे और खगोलीय गणनाएँ खगोल-विज्ञानकी इस प्राचीन पीठके मध्याह्न बिन्दुके सन्दर्भमें ही की जाती थीं।

प्राचीनकालमें यह भी मान्यता थी कि सूर्य अपने सुदूरतम उत्तरी अक्ष, जो उज्जैनके शिरोबिन्दुपर है, पहुँचनेके बाद दक्षिणकी ओर भ्रमण करने लगता है। यह वही बिन्दु था, जहाँ प्राचीन लंकाकी मध्याह्न रेखा, कर्कवृत्तको पार करती थी और इसीलिये उज्जैनकी मध्याह्न रेखा प्राचीन रेखा मानी जाती थी।

हिन्दू परम्पराओं और धार्मिक आस्थाओंमें स्वयं गहरी श्रद्धा रखनेवाले महाराज सवाई जयसिंहने कर्कवृत्तके ठीक निकट स्थित उज्जैनकी स्थितिकी सत्यताको गहराईसे समझा था और उन्होंने अपनी ५ खगोलीय वेधशालाओंमेंसे तीसरी वेधशाला यहाँ स्थापित करनेका निर्णय लिया, जिसके लिये मुगल-सम्राट् मुहम्मदशाहने इन्हें मालवाका प्रशासक नियुक्त किया था।

जयपुरके महाराजा सवाई माधोसिंह-द्वितीयने सन् १९२२ ई० में इस वेधशालाका जीर्णोद्धार कराया। उज्जैन जन्तर-महलके यन्त्रोंका विवरण इस प्रकार है—

१-विषुवतीय सूर्य-घड़ी (लघु-सम्राट् यन्त्र), २-गोलाकार धूप-घड़ी (नाड़िवलययन्त्र), ३- दिगांशायन्त्र, ४-मध्याह्न भित्तियन्त्र (दक्षिणावर्तीय याम्योत्तर भित्तियन्त्र), ५-क्षितिजीय धूप-घड़ी, ६-क्षितिजीय समतलीय यन्त्र (शंकुयन्त्र)। यह अनूठा शंकुयन्त्र एकमात्र उज्जैन वेधशालामें ही उपलब्ध है। यह उत्तर २५° २०′ तथा देशान्तर ग्रीनविचके पूर्व ८३°२′ स्थित है।

४-वाराणसी वेधशाला—वाराणसी प्राचीन कालसे धार्मिक आस्था, कला, संस्कृति और विद्याका एक महान् परम्परागत केन्द्र रहा है। काशी और बनारसके नामसे भी जानी जानेवाली यह नगरी सभी शास्त्रोंका अध्ययन-केन्द्र रही है। अन्य विद्याओंके साथ-साथ खगोल-विज्ञान और ज्योतिषके अध्ययनकी भी यहाँ परम्परा थी। इसलिये जयपुरके महाराज सवाई जयसिंह (द्वितीय)-ने इस ज्ञानपीठमें गंगाके तटपर एक वैज्ञानिक संरचनापूर्ण वेधशालाका निर्माण कराया।

सवाई जयसिंहने अपनी चतुर्थ वेधशाला (जन्तर-मन्तर)-के निर्माणके लिये अपने प्रतिष्ठित पूर्वज, आमेरके राजा मानसिंहद्वारा निर्मित महलक्षेत्रमें स्थित मानमन्दिरके अहातेको चुना। मानमन्दिर वेधशाला प्रसिद्ध दशाश्वमेध-घाटके कुछ सैकड़ा गज दूरीपर स्थित है। इस वेधशालाका निर्माण मानमन्दिरक्षेत्रमें सन् १७३७ ई०में कराया गया था। इस कार्यमें महाराजाके दरबारी खगोलविदोंमें पण्डित जगन्नाथ सम्राट् और पण्डित केवलराम प्रमुख सहयोगी थे। यह विश्वकी श्रेष्ठ, सुसज्जित वेधशालाओंमें-से एक है। इस वेधशालाके खगोलीय यन्त्र इस प्रकार हैं—

१-विषुवतीय सूर्य-घड़ी (सम्राट् यन्त्र) (लघु विषुवतीय सूर्य-घड़ी), २-लघु विषुवतीय धूप-घड़ी एवं ध्रुवदर्शक-यन्त्र, ३-दक्षिणोवृत्ति भित्तियन्त्र, ४-दिगांशयन्त्र, ५-गोलाकार धूप-घड़ी (नाड़िवलय यन्त्र)।

५-मथुरा वेधशाला—यह समुद्रतलसे ६०० फुट ऊँचाईपर, देशान्तर—ग्रीनविचके पूर्व ७७° ४२′ तथा अक्षांश—२७° २८′ उत्तरपर स्थित है।

महाराजा जयसिंहने सन् १७३८ ई०के आसपास यहाँ कई खगोलीय यन्त्रोंका निर्माण कराया था। इस वेधशालाके निर्माणके लिये महाराजने शाही किलेकी छतको चुना था, जिसे कंसका महल कहा जाता था।

सोलहवीं सदीके अन्तमें महाराजा जयसिंहके पूर्वज आमेरके राजा मानसिंहने इस किलेका पुनर्निर्माण कराया और इसे सुदृढ़ किया। मथुरा वेधशालाके बारेमें बहुत अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, परंतु प्राप्त विवरणके अनुसार यहाँ कई लघु-यन्त्र थे, जैसे—

१-अग्रयन्त्र, २-लघु सम्राट्-यन्त्र, ३-विषुवतीय धूप-घड़ी, ४-दक्षिणोवर्ती भित्तियन्त्र—ये यन्त्र ईंट और चूना पलस्तरसे बने थे और ये जयपुर वेधशालाके यन्त्रोंके समरूप लघुयन्त्र थे।

वेदोंमें ज्योतिष

(श्रीओमप्रकाशजी पालीवाल, एम०ए०, एल-एल०बी०)

ज्योतिष क्या है ? यह ज्योतिका शास्त्र है। ज्योति आकाशीय पिण्डों—नक्षत्र, ग्रह आदिसे आती है, परंतु ज्योतिषमें हम सब पिण्डोंका अध्ययन नहीं करते। यह अध्ययन केवल सौरमण्डलतक ही सीमित रखते हैं। ज्योतिषका मूलभूत सिद्धान्त है कि आकाशीय पिण्डोंका प्रभाव सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर पड़ता है। इस प्रकार मानव-संसारपर भी इन नक्षत्रों एवं ग्रहों आदिका प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दोंमें आकाशीय पिण्डों एवं मानव-संसारमें पारस्परिक सम्बन्ध है। इस सम्बन्धको अथर्ववेदके तीन मन्त्र स्पष्टरूपसे दर्शाते हैं। पहला मन्त्र है—

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्॥

(अथर्व० १९।७।१)

अर्थात् 'द्युलोक—सौरमण्डलमें चमकते हुए विशिष्ट गुणवाले अनेक नक्षत्र हैं, जो साथ मिलकर अत्यन्त तीव्र गतिसे टेढ़े-मेढ़े चलते हैं। सुमतिकी इच्छा करता हुआ मैं प्रतिदिन उनको पूजता हूँ, जिससे मुझे सुखकी प्राप्ति हो।' इस प्रकार इस मन्त्रमें नक्षत्रोंको सुख तथा सुमति देनेमें समर्थ माना गया है। यह सुमति मनुष्योंको नक्षत्रोंकी पूजासे प्राप्त होती है। यह मनुष्योंपर नक्षत्रोंका प्रभाव हुआ, जिसे ज्योतिषशास्त्र भी मानता है। दूसरा मन्त्र है—

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानी सन्तु॥

(अथर्व० १९।८।१)

अर्थात् 'जिन नक्षत्रोंको चन्द्रमा समर्थ करता हुआ चलता है, वे सब नक्षत्र मेरे लिये आकाशमें, अन्तरिक्षमें, जलमें, पृथ्वीपर, पर्वतोंपर और सब दिशाओंमें सुखदायी हों।'

अब प्रश्न उठता है कि चन्द्रमा किन नक्षत्रोंको समर्थ करता हुआ चलता है। वेदोंमें इन नक्षत्रोंकी संख्या २८ बतायी गयी है। इनके नाम अथर्ववेदके १९ वें काण्डके ७वें सूक्तमें मन्त्र-संख्या २ से ५ तक (४ मन्त्रों)-में दिये गये हैं। अश्विनी, भरणी आदि २८ नाम वही हैं, जो ज्योतिषग्रन्थोंमें हैं। इस प्रकार नक्षत्रोंके नाम तथा क्रममें पूरी समानता है। इस आधारपर हम कह सकते हैं कि ज्योतिषका मूल वेदोंमें है। तीसरा मन्त्र है—

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु।

(अथर्व० १९।८।२)

अर्थात् 'अट्ठाईस नक्षत्र मुझे वह सब प्रदान करें, जो कल्याणकारी और सुखदायक हैं। मुझे प्राप्ति-सामर्थ्य और रक्षा-सामर्थ्य प्रदान करें। दूसरे शब्दोंमें पानेके सामर्थ्यके साथ-साथ रक्षाके सामर्थ्यको पाऊँ और रक्षाके सामर्थ्यके साथ ही पानेके सामर्थ्यको भी मैं पाऊँ। दोनों अहोरात्र (दिवा और रात्रि)-को नमस्कार हो।'

इस मन्त्रमें योग और क्षेमकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना है। साधारणतया जो वस्तु मिली नहीं है, उसको जुटानेका नाम 'योग' है। जो वस्तु मिल गयी है, उसकी रक्षा करना ही 'क्षेम' है। नक्षत्रोंसे इनको देनेकी प्रार्थनासे स्पष्ट है कि नक्षत्र प्रसन्न होकर यह दे सकते हैं। इस प्रकार इस मन्त्रका भी ज्योतिषसे सम्बन्ध है।

इस मन्त्रमें जो 'अहोरात्र' पद आया है, उसका ज्योतिषके होराशास्त्रमें अत्यन्त महत्त्व है। यथा—

अहोरात्राद्यन्तलोपाद्धोरेति प्रोच्यते बुधैः।
तस्य हि ज्ञानमात्रेण जातकर्मफलं वदेत्॥

(बृ०पा०हो०शा०पू० २।२)

अर्थात् 'अहोरात्र पदके आदिम (अ) और अन्तिम (त्र) वर्णके लोपसे 'होरा' शब्द बनता है। इस होरा (लग्न)-के ज्ञानमात्रसे जातकका शुभाशुभ कर्मफल कहना चाहिये।'

आकाशीय पिण्डोंमें नक्षत्र और ग्रह दोनों आते हैं। ज्योतिषने इन दोनोंमें कुछ अन्तर किया है, जो निम्न श्लोकोंसे स्पष्ट है—

तेजःपुञ्जा नु वीक्ष्यन्ते गगने रजनीषु ये।
नक्षत्रसंज्ञकास्ते तु न क्षरन्तीति निश्चलाः॥

विपुलाकारवन्तोऽन्ये गतिमन्तो ग्रहाः किल।
स्वगत्या भानि गृह्णन्ति यतोऽतस्ते ग्रहाभिधाः॥

(बृ०पा०हो०शा०)

अर्थात् 'रात्रिके समय आकाशमें जो तेज:पुंज दीखते हैं, वे ही निश्चल तारागण नहीं चलनेके कारण 'नक्षत्र' कहे जाते हैं। कुछ अन्य विपुल आकारवाले वे वे गतिशील तेज:पुंज अपनी गतिके द्वारा निश्चल नक्षत्रोंको पकड़ लेते हैं, अत: वे 'ग्रह' कहलाते हैं।'

ऊपर तीन मन्त्रोंमें नक्षत्रोंसे सुख, सुमति, योग, क्षेम देनेकी प्रार्थना की गयी। अब ग्रहोंसे दो मन्त्रोंमें इसी प्रकारकी प्रार्थनाका वर्णन है। दोनों मन्त्र अथर्ववेदके उन्नीसवें काण्डके नवम सूक्तमें हैं। इस सूक्तके सातवें मन्त्रका अन्तिम चरण '**शं नो दिविचरा ग्रहाः**' है, जिसका अर्थ है, आकाशमें घूमनेवाले सब ग्रह हमारे लिये शान्तिदायक हों। यह प्रार्थना सामूहिक है। इस सूक्तका दसवाँ मन्त्र है—

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः॥

अर्थात् 'चन्द्रमाके समान सब ग्रह हमारे लिये शान्तिदायक हों। राहुके साथ सूर्य भी शान्तिदायक हों। मृत्यु, धूम और केतु भी शान्तिदायक हों। तीक्ष्ण तेजवाले रुद्र भी शान्तिदायक हों।' अब प्रश्न उठता है कि चन्द्रके समान अन्य ग्रह कौन हैं? इसका उत्तर एक ही है कि पाँच ताराग्रह—मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि हैं, जो चन्द्रके समान सूर्यकी परिक्रमा करनेसे एक ही श्रेणीमें आते हैं। सूर्य किसीकी परिक्रमा नहीं करता। इसलिये इसको भिन्न श्रेणीमें रखा गया है। राहु और केतु प्रत्यक्ष दीखनेवाले ग्रह नहीं हैं। इसलिये ज्योतिषमें इन्हें 'छायाग्रह' कहा जाता है, परंतु वेदोंने इन्हें ग्रहकी श्रेणीमें ही रखा है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतुको ज्योतिषमें 'नवग्रह' कहा जाता है। कुछ भाष्यकारोंने '**चान्द्रमसाः**' का अर्थ 'चन्द्रमाके ग्रह' भी किया है और उसमें नक्षत्रों (कृत्तिका आदि)-की गणना की है; परंतु यह तर्कसंगत नहीं लगता। इस मन्त्रमें आये हुए मृत्यु एवं धूमको महर्षि पराशरने अप्रकाशग्रह कहा है। ये पाप ग्रह हैं और अशुभ फल देनेवाले हैं। कुछके अनुसार गुलिकको ही 'मृत्यु' कहते हैं। उपर्युक्त मन्त्रमें इनकी प्रार्थनासे यह स्पष्ट है कि इनका प्रभाव भी मानवपर पड़ता है।

श्रीपराशरके अनुसार पितामह ब्रह्माजीने वेदोंसे लेकर ज्योतिषशास्त्रको विस्तारपूर्वक कहा है—

वेदेभ्यश्च समुद्धृत्य ब्रह्मा प्रोवाच विस्तृतम्।

(बृ०पा०हो० सारांश उत्तरखण्ड अध्याय २०।३)

शतपथब्राह्मणके अन्तर्गत ज्योतिष तथा वास्तुके मूलतत्त्व

(श्रीप्रवेशजी व्यास)

इस जगत्‌के सभी विषयोंका ज्ञान वेदोंमें विद्यमान है। वेदमन्त्रोंके ज्ञानका विस्तार ब्राह्मणग्रन्थोंमें हुआ। आरण्यक, उपनिषद्, षड्वेदांग, दर्शन, पुराण तथा विपुल साहित्यग्रन्थोंके रूपमें वैदिक ज्ञान का विस्तार होता गया; क्योंकि सभी प्रकारके ज्ञानका मूल वेदोंमें निहित है, अत: ज्योतिष तथा वास्तुका मूल उद्गम भी वैदिक मन्त्रों तथा ब्राह्मणग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। अध्ययन करनेपर ज्ञात हुआ कि किस प्रकारसे ज्योतिष तथा वास्तुविज्ञानका मूल वैदिक मन्त्रोंमें प्राप्त होता है।

ज्योतिषका आदि आर्षग्रन्थ 'सूर्यसिद्धान्त' माना जाता है। सूर्यसिद्धान्तके मूल नियमोंका ज्ञान वेदोंमें विद्यमान है। शून्यसे परार्धतक गणितीय अंकोंका वर्णन[१], रेखागणितके मापन, वर्तुल तथा त्रिकोणके सिद्धान्त[२], पृथ्वीकी आकृति और गतियाँ[३], संवत्सर और बारह महीने[४], छः ऋतुओं तथा

१. ऋग्वेद २।१८।४, ६, अथर्व० १३।४।१५—१८, ५।१५।१-११, यजु० ९।३१—३४, १७।२।

२. ऋग्वेद १०।१३०।३, १।१०५।१७, अथर्व० ८।९।२।

३. ऋग्वेद १।३३।८।

४. ऋग्वेद १।१६९।१२, यजु० २७।४५।

सात चक्रों की चर्चा[1], अयन गति[2], नक्षत्र[3], ग्रहणज्ञान[4], चन्द्रमाके प्रकाशका कारण[5], तिथि और पक्ष[6], युग तथा कल्प[7], धूमकेतु एवं पुच्छल तारा[8] इत्यादि अनेक ज्योतिषके मूलतत्त्व वैदिक साहित्यमें विद्यमान हैं। शतपथब्राह्मणके तृतीय काण्डके प्रथम खण्डके अन्तर्गत आदित्यचरुका प्रतिपादन करते हुए सूर्यके चलनका वैदिक छन्दोंसे सम्बन्ध तथा ज्योतिषके संहिताग्रन्थोंमें वर्णित अन्तरिक्षीय वीथियोंका अत्यन्त वैज्ञानिक रूपमें वर्णन हुआ है।

उत्तरी ध्रुवसे ९० अंश दक्षिण एवं दक्षिणी ध्रुवसे ९० अंश उत्तर कल्पित वृत्त विषुवद्वृत्त कहलाता है। विषुवद्वृत्तसे २४ अंश उत्तर और २४ अंश दक्षिण इतनी दूरीका अर्थात् ४८ अंशका जो एक वृत्त है, उसे क्रान्ति वृत्त कहते हैं। हम विषुवत्से ऊपर रहते हैं, अतः दृश्यमण्डलके अनुसार दक्षिण मार्ग सबसे छोटा है। यही कारण है कि जब सूर्य दक्षिणकी परम क्रान्तिपर पहुँच जाता है तो दिन सबसे छोटा होने लगता है। होते-होते उत्तरकी परमक्रान्तिपर आ जानेसे दिन बड़ा हो जाता है; क्योंकि दक्षिण मार्गसे मध्यम मार्ग बड़ा है, मध्यमसे उत्तर मार्ग बड़ा है, अतः इस छोटे-बड़े रहस्यको बतलानेके लिये इन तीन भागोंके क्रमशः वैश्वानर, जरद्गव एवं ऐरावत ये नाम रखे गये। वैश्वानर अग्नि को कहते हैं। बकरा आग्नेय है—जैसा कि श्रुति कहती है—**'तद्धैकेऽजमुपबध्नन्ति। आग्नेयोऽजः। अग्नेरेव सर्वत्वायेति वदन्तः।'**[9] इसीलिये दक्षिणवीथीको 'अजवीथी' भी कहा गया। दक्षिणमार्गस्थ नक्षत्रसंस्था बकरेकी ही आकृतिकी है, मध्यमार्गस्थ नक्षत्रसंस्था बैलकी आकृतिकी है एवं उत्तरमार्गस्थ नक्षत्रसंस्था हाथीकी आकृतिकी है। यह बात नक्षत्रदर्शनसे स्फुट प्रतीत हो जाती है। इसी रहस्यको बतलानेके लिये इन भागोंके नाम ऐरावतादि रखे गये।

इन तीनों मार्गोंमें प्रत्येकमें तीन-तीन वीथियाँ हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर ९ वीथियाँ हैं—

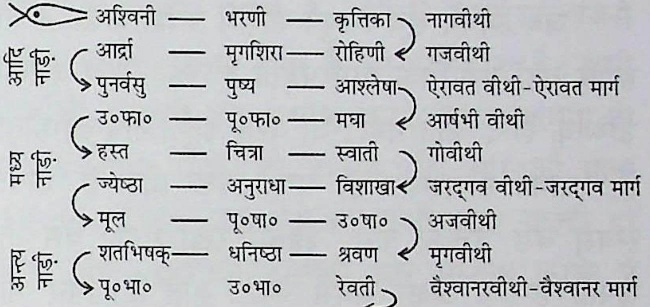

सारे ग्रह इन्हीं वीथियोंवाले वैश्वानरादि तीन मार्गोंपर अवलम्बित रहते हैं। इस तरहसे वीथियोंके रहस्यका प्रतिपादन हुआ है। इन वीथियोंका संहिता ग्रन्थोंमें ग्रहाचारके सन्दर्भमें तथा मुहूर्त-प्रकरणमें त्रिनाड़ीके रूपमें विस्तार देखनेको मिलता है। अहोरात्र वृत्तोंकी वैज्ञानिक व्याख्यामें बताया गया है कि विषुवत्से और क्रान्तिवृत्तके २४ अंशोंमें समान अंशोंपर तीन पूर्वापरवृत्त उत्तर तथा तीन पूर्वापरवृत्त दक्षिणमें बनते हैं। कुल मिलाकर ७ पूर्वापरवृत्त हो जाते हैं। इन्हीं सात पूर्वापरवृत्तोंको 'अहोरात्र वृत्त' कहा गया। वेदमें इन्हींके नाम छन्द हैं। इन सातों छन्दोंके नाम ये हैं—१-गायत्री, २-उष्णिक्, ३-अनुष्टुप्, ४-बृहती, ५-पंक्ति, ६-त्रिष्टुप् एवं ७-जगती।

'गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि'[10]

जो गायत्री छन्द है, उसे ज्योतिषी लोग 'मकरवृत्त' कहते हैं एवं इसे ही पाश्चात्य विद्वान् 'केप्रीकार्न' कहते हैं एवं जगती छन्दको ज्योतिषी कर्कवृत्त और पाश्चात्य

१. ऋग्वेद १।१६४।४८।
२. यजु० १९।४७।
३. अथर्व० १९।८।१२।
४. ऋग्वेद ५।४०।५-६।
५. ऋग्वेद १।१६४।
६. तैत्तिरीयब्राह्मण १।५।१०, १२, ३।१०।१।
७. यजु० ३०।१५, १८; २७।४५, ऋग्वेद १०।१९०।३।
८. अथर्व० १९।९।६, १०।
९. शतपथब्राह्मण, तृतीयकाण्ड, अ० १।
१०. शतपथब्राह्मण, तृतीय काण्ड, अ० १।

विद्वान् 'कैन्सर' कहते हैं। ये ही सूर्यके सात घोड़े हैं। प्रकृति-मण्डलके अनुसार भगवान् सूर्य इसी बृहती छन्दपर स्थिर रूपसे तपा करते हैं, इसलिये **'सूर्यो बृहतीमध्यूढस्तपति'**[१] कहा गया है।

जब सायन सूर्य मिथुन राशिमें प्रवेश करता है तो हमारे यहाँ सर्वाधिक गर्मी पड़ती है। अत: उस वृत्तको उष्णिक् छन्द कहा गया। जो वस्तु वर्तुल लघुवृत्त होती है, उसका मध्यस्थान ही सबसे बड़ा होता है, अत: सबसे बड़े वृत्तका नाम 'बृहती' रखा गया। वैसे तो जगती छन्दके अक्षर सबसे ज्यादा होते हैं। फिर भी बीचके छन्दका ही नाम बृहती रखनेका यही कारण रहा है; क्योंकि बृहतीपर ही सूर्यका पथ सबसे लम्बा है। क्रान्तिवृत्तके ४८ अंशका जो परिसर है, वही सूर्यका रथ है एवं जो क्रान्तिवृत्त है, वही इसके रथका एक पहिया है। क्रान्तिवृत्त एक है, अतएव सूर्यके रथका एक ही पहिया बतलाया जाता है। एक ही क्रान्तिवृत्तके ७ विभागसे ७ अहोरात्र बने हुए हैं, अत:—**'एकोऽवा बहति सप्तनामा'** यह कहा गया है।

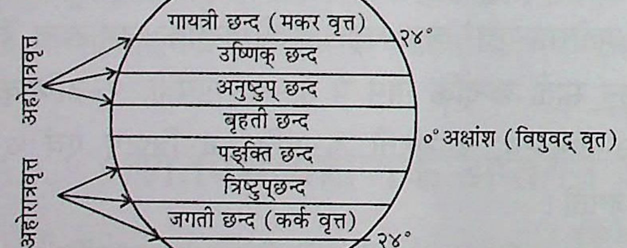

इसी तरहसे प्रकृतिके तत्त्वों तथा ऊर्जाओंसे समन्वय बनाते हुए नगर या वेदीके निर्माणके मूल सिद्धान्त भी शतपथब्राह्मणमें वर्णित हैं। उसी निर्माणकी प्रक्रियाका कालान्तरमें वास्तुशास्त्रके रूपमें उद्भव हुआ। शतपथब्राह्मणके तृतीय काण्डके अन्तर्गत प्रथम प्रपाठकके प्रथम अध्यायमें देवयजन-स्थलके वर्णनमें वास्तुके मूल सिद्धान्तोंकी सकारण व्याख्या सुलभ है। तदनुसार सूर्यमें 'ज्योतिर्गोरायु' ये तीन पदार्थ रहते हैं। इनमेंसे जो ज्योतिर्भाग है, उसे ही देवता कहते हैं। सूर्यका जो राशिमण्डल है, वही प्रकाश कहलाता है एवं प्रकाशको ही देवता कहते हैं। इसलिये श्रुति कहती है—**'चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥'** देवता अर्थात् ज्योतिस्वरूप रश्मियाँ द्युलोकसे पृथिवीपर आकर यहींसे वापस प्रतिफलित हो अपने द्युलोक लौट जाती हैं—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन् महिषो दिवम्॥

यह धाराक्रम अनवरत जारी रहता है। इसी विज्ञानको बतलानेके अभिप्रायसे **'अतो वै देवा दिवमुपोदक्रामन्'**[२] कहा गया। पृथ्वीलोकसे प्रतिफलित ज्योतिर्भागके साथ ही यज्ञद्वारा यजनात्माका भी स्वर्गमन हो जाता है। अत: सूर्यरश्मियोंकी अधिक प्राप्तिके लिये यज्ञ खुले स्थान तथा समतल स्थानपर हो—**'तद्यदेव वर्षिष्ठं स्यात् तज्जोषयेरन्'** तथा **'तद् वर्ष्मसत् समं स्यात्'**[३] भूमि अन्दरसे ठोस भी हो तथा देवयजन प्राक्-प्रवण होना चाहिये। पूर्वकी ओर उस भूमिका झुकाव होना चाहिये। पूर्वकी ओर ढाल रहनेवाली जमीन ही यज्ञके लिये उपयुक्त है। **'अविभ्रंशिसत् प्राक्प्रवण स्यात्।'**[४] प्राक्प्रवणताका कारण है कि पूर्वा दिक् ही देवताओंकी दिक् है। पूर्वमें ही भगवान् सूर्यका उदय होता है। देवतास्वरूप रश्मियाँ पूर्वसे ही आती हैं। यदि पूर्वकी ओर ढालू भूमि होगी तो उन रश्मियोंका सम्बन्ध अच्छेसे होगा। वस्तुतः सम्पूर्ण वास्तुमण्डल सूर्यकी ही शुभाशुभ रश्मियोंके अनुसार बना है। वास्तुपदमें वर्णित अधिकांश देवता तो सूर्यके ही द्वादश स्वरूप हैं। जिनके नाम सविता, पूषा, सूर्य, यम, विष्णु, इन्द्र, धाता, त्वष्टा, वरुण, अर्यमा, विवस्वान् और भग हैं।

१. शतपथब्राह्मण, तृतीय काण्ड, अ० १।
२. शतपथब्राह्मण, तृतीय काण्ड, प्रथम प्रपाठक अ० १, श्लोक १।
३. शतपथब्राह्मण, तृतीय काण्ड, प्रथम प्रपाठक अ० १, श्लोक २।
४. शतपथब्राह्मण, तृतीय काण्ड, प्रथम प्रपाठक अ० १, श्लोक २।

यदि भूमि पश्चिमकी ओर ढालू होगी तो देवता उसे स्पर्श किये बिना ही आगे निकल जायँगे। यदि ऐसी जमीन न मिले तो फिर उदक्प्रवणका निर्धारण करना चाहिये। जैसे पूर्वादिक् देवताओंकी है, वैसे ही उत्तरादिक् मनुष्योंकी है। अतः अपनी दिक्की ओर देवयजनको ढालू रखना भी बुरा नहीं कहा गया। **'अथोदक्प्रवणम्'—उदीची हि मनुष्याणां दिक्**[१] परंतु ध्यान रहे चाहे पूर्वकी ओर ढालू हो या उत्तरकी ओर, परंतु दक्षिणादिक् सदा ऊँची रहनी चाहिये। **'दक्षिणतः प्रत्युच्छ्रितमिव स्यात्'**[२] इसका कारण बताते हैं कि आग्नेय प्राणका नाम देवता है। प्राप्य प्राणका नाम असुर है एवं सौम्य प्राणका नाम पितर है। यह सोम उत्तरसे दक्षिणको जाया करता है। दक्षिणमें जाकर उसकी स्थिति होती है। सोम प्राण-स्थान दक्षिणादिक् है। इसलिये **'एषा वै दिक् पितॄणाम्'** कहा। यदि देवयजन दक्षिणप्रवण होगा अर्थात् दक्षिण दिशाकी ओर यज्ञभूमि ढालू होगी तो पितृप्राणसम्बन्धसे यह यजमान बहुत जल्दी ही परलोक सिधार जायगा—

'स यद् दक्षिणाप्रवणस्यात् क्षिप्रेह यजमानोऽमुलोकमियात्'

दक्षिणसे अग्नि आती रहती है, उत्तरसे सोम आता रहता है, पूर्वसे आयु आती रहती है; क्योंकि आयुके प्रदाता सूर्य ही तो हैं। अग्नि ही मनुष्यका जीवन है। सर्दी प्राणघातिनी है। इसका आगमन उत्तरसे होता है। सर्दी-गर्मी दोनोंका प्रवेश सिरके बीचमें जो केशान्त स्थान है, जिसे कि सुषुम्ना कहते हैं—वैदिक मतानुसार जिसे 'दृति' नामसे पुकारा जाता है, इसमेंसे होता है। ऐसी स्थितिमें उत्तरकी ओर मस्तक करके सोया जायगा तो सोमकी मात्रा प्रविष्ट हो जायगी और अग्निकी मात्रा कम हो जायगी। बस ऐसे मनुष्यकी आयु जल्दी ही क्षीण होगी, इसलिये उत्तरकी ओर मस्तक करके न सोनेकी आज्ञा दी है। यदि उत्तर अथवा पूर्व देवयजनको प्रवण किया जाता है तो यजमान आयुशेषतक नीरोग होकर (ज्योक्) जीवित रहता है। अतः देवयजन दक्षिणकी ओरसे ऊँचा ही रहना चाहिये—

'तथा ह यजमानो ज्योक् जीवति तस्माद्दक्षिणतः प्रत्युच्छ्रितमिव स्यात्।' (शतपथब्राह्मण, तृतीय काण्ड, प्रथम प्रपाठक अ० १)

इस प्रकारसे आधुनिक वास्तुके भी मूल सिद्धान्त—सौर ऊर्जा तथा पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्तिके अनुकूल प्रयोगका वर्णन भी शतपथब्राह्मणमें विद्यमान है। [पावमानी]

स्वप्नमें गोदर्शनका फल

स्वप्नमें गौ अथवा साँड़के दर्शनसे कल्याण-लाभ एवं व्याधि-नाश होता है। इसी प्रकार स्वप्नमें गौके थनको चूसना भी श्रेष्ठ माना गया है। स्वप्नमें गौका घरमें ब्याना, बैल अथवा साँड़की सवारी करना, तालाबके बीचमें घृत-मिश्रित खीरका भोजन भी उत्तम माना गया है। इनमेंसे घीसहित खीरका भोजन तो राज्य-प्राप्तिका सूचक माना गया है। इसी प्रकार स्वप्नमें ताजे दुहे हुए फेनसहित दुग्धका पान करनेवालेको अनेक भोगोंकी तथा दहीके देखनेसे प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है। जो बैल अथवा साँड़से युक्त रथपर स्वप्नमें अकेला सवार होता है और उसी अवस्थामें जाग जाता है, उसे शीघ्र धन मिलता है। स्वप्नमें दही मिलनेसे धनकी, घी मिलनेसे तथा दही खानेसे यशकी प्राप्ति निश्चित है। इसी प्रकार यात्रा आरम्भ करते समय दही और दूधका दीखना शुभ शकुन माना गया है। स्वप्नमें दही-भातका भोजन करनेसे कार्यसिद्धि होती है तथा बैलपर चढ़नेसे द्रव्य-लाभ होता है एवं व्याधिसे छुटकारा मिलता है। इसी प्रकार स्वप्नमें साँड़ अथवा गौका दर्शन करनेसे कुटुम्बकी वृद्धि होती है। स्वप्नमें सभी काली वस्तुओंका दर्शन निन्द्य माना गया है, केवल कृष्णा गौका दर्शन शुभ होता है। [पं० श्रीराजेश्वरजी शास्त्री सिद्धान्ती]

---

१. शतपथब्राह्मण, तृतीय काण्ड, प्रथम प्रपाठक अ० १।

२. शतपथब्राह्मण, तृतीय काण्ड, प्रथम प्रपाठक अ० १।

योगवासिष्ठमें वर्णित दैव-पुरुषार्थवाद—एक विवेचन

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम०एस-सी०, पी-एच०डी०)

भारतीय सांस्कृतिक ग्रन्थोंमें योगवासिष्ठ एक अद्वितीय ग्रन्थ है। महर्षि वाल्मीकिद्वारा रचित वासिष्ठरामायण, महारामायण आदि नामोंसे विश्रुत इस ग्रन्थमें विश्वामित्रके यागसंरक्षणके पूर्व ही भगवान् रामको कतिपय मानवीय मूल्यों तथा जीवनदर्शनपर शंका होती है, जिसका सम्यक् समाधान इस ग्रन्थमें महर्षि वसिष्ठद्वारा किया गया है। स्वयं वसिष्ठने कहा है कि संसार-सर्पके विषसे विकल तथा विषयविसूचिकासे पीड़ित जनोंके लिये यह अमोघ 'गारुडमन्त्र' है। योगवासिष्ठ (६।१२६।५४)-के अनुसार कर्तव्यका पालन करनेवाला ही आर्य है। इस ग्रन्थमें दैववाद एवं पुरुषार्थवादपर विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। महर्षि वसिष्ठके मतमें विभिन्न ग्रह-गोचर, ईति-भीति, आधि-व्याधिके रूपमें हम जो कष्ट भोगते हैं या विविध प्रकारके जो सुखोंका उपभोग करते हैं और जिसे हम भाग्य या दैव कहते हैं, वे हमारे पूर्वकृत कर्म होते हैं अर्थात् पूर्वकृत कर्म ही फल देनेको उन्मुख होनेपर दैव या भाग्य कहलाता है, इसके अतिरिक्त दैव नामक कोई वस्तु नहीं है। जैसा कर्म करते हैं या जन्मान्तरमें कर चुके हैं, उसीका फल भोग रहे हैं। योगवासिष्ठ मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण सर्ग पाँचमें महर्षि कहते हैं कि राम! जैसे प्रायश्चित्तसे पूर्वकृत पाप या दोषका शमन होता है, वैसे ही पुरुषार्थ या इस जन्मके गुणोंसे पूर्वजन्मकृत दोष नष्ट हो जाता है। राम! सांसारिक मोह-मायामें सम्पूर्ण पुरुषार्थकी साधनभूता आयुको नष्ट नहीं करना चाहिये।

महर्षि वसिष्ठके मतमें पुरुषार्थ दो प्रकारका होता है—शास्त्रानुमोदित और शास्त्रविरुद्ध (पापकर्म)। इन दोनोंमें शास्त्रविरुद्ध कर्म तो अनर्थका कारण होता है तथा शास्त्रानुमोदित पुरुषार्थ परमार्थ वस्तुकी प्राप्तिका कारण बनता है, अतः मनुष्यको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि इस जन्मके पौरुषसे पूर्वजन्मकृत पौरुष या भाग्य और प्रारब्धको जीत ले। राम! अपने उत्तम पुरुषार्थका आश्रय लेकर मनुष्यको तत्परतापूर्वक विघ्न करनेके लिये उद्यत पूर्वजन्मके अशुभ पौरुष या भाग्यको बदल देना चाहिये। पूर्वजन्मका कर्म प्रारब्धरूपसे मुझे ग्रह-गोचर आदिके रूपमें कष्ट दे रहा है—इस भावनाका बलपूर्वक दमन कर देना चाहिये; क्योंकि भाग्य या दैव प्रत्यक्ष प्रयत्नसे सबल नहीं हो सकता है, अतः पूर्वजन्मके अशुभ पौरुष या भाग्यके समाप्त होनेतक तत्परतापूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिये।

मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण सर्ग ६—१३ में महर्षि वसिष्ठ भगवान् रामको समझाते हैं कि पूर्वजन्मके पौरुषसे भिन्न दैव या भाग्य नामक कोई वस्तु नहीं है, पूर्वजन्मके शास्त्रविरुद्ध कर्मसे बिगड़ा हुआ भाग्य या दैव विभिन्न ग्रह-गोचरके रूपमें हमें कष्ट देता है। वस्तुतः यह भोग भी हमें अपने कर्मोंसे ही मिलता है न कि ग्रह या पाप ग्रहके व्यवहारसे। अतः हमें पुरुषार्थ या उद्यमसे भाग्य बदलना चाहिये। जो पूर्वकृत पौरुष/दैव या भाग्यको अपने वर्तमान जन्मके पुरुषार्थद्वारा जीतनेका प्रयत्न नहीं करता और दैवके भरोसे बैठा रहता है, वह पामर या मूढ है। भाग्य या दैव और वर्तमान पुरुषार्थमें जो भी सबल होता है, हमें उसीका फल भोगना पड़ता है। जैसे हमारे किसी कर्मसे इस जन्ममें पुत्रप्राप्तिका योग नहीं है तो भी शास्त्रीय विधानसे पुत्रेष्टियज्ञ, देव-आराधनके द्वारा हमें पुत्रप्राप्ति सम्भव है, उसी प्रकार प्रबल पुरुषार्थसे हम अपना भाग्य बदल सकते हैं।

मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण सर्ग सातमें महर्षिका कथन है कि जो लोग उद्योगका त्याग करके केवल दैव या भाग्यके भरोसे बैठे रहते हैं, वे आलसी मनुष्य स्वयं अपने शत्रु होते हैं, वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी पुरुषार्थ-चतुष्टयका नाश कर डालते हैं—

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः॥

(मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण ७।३)

आगे महर्षि कहते हैं कि राम! अधिक क्या कहा जाय, पुरुषार्थसे ही बृहस्पति देवगुरु, शुक्राचार्य दैत्यगुरु

तथा इन्द्रको देवाधिपति पदकी प्राप्ति हुई है, अन्यान्य देवता तथा ग्रह-मण्डल अपने-अपने पदोंपर प्रतिष्ठित हुए हैं। इस संसारमें मनुष्य जैसा प्रयत्न करता है, उसे वैसे ही अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। पौरुषद्वारा इष्ट-अनिष्ट कर्मका जो प्रिय-अप्रिय फल है, उसीको दैव कहते हैं। आगे महर्षिका यह कथन ध्यातव्य है कि पूर्वजन्ममें फलकी उत्कट अभिलाषासे जो कर्म किये जाते हैं, उसीको दैव कहते हैं, मन, चित्त, वासना, कर्म, दैव और निश्चय—ये मनकी संज्ञाएँ हैं। पौरुष या कर्मसे मनुष्य सभी कुछ प्राप्त कर सकता है, विपरीत परिस्थितियोंको सुधार सकता है, दैव से नहीं, अतः राम! तुम पुरुषार्थी बनो। मनुष्यका मन शिशुके समान चंचल है, जिसे अशुभ मार्गसे हटा देनेपर शुभ मार्गपर तथा शुभ मार्गसे हटानेपर अशुभ मार्गपर चला जाता है, मनको प्रयत्नपूर्वक पापमार्गसे हटाकर श्रेष्ठ कामोंमें लगाना चाहिये, यह सब शास्त्रोंके सारका संग्रह है—

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्।
प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः॥
यच्छ्रेयो यदतुच्छं च यदपायविवर्जितम्।
तत्तदाचर यत्नेन पुत्रेति गुरवः स्थिताः॥

(मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण ७। १२-१३)

जिसका कभी नाश नहीं होता है, उसीका प्रयत्नपूर्वक आचरण करना चाहिये, गुरुजन यही उपदेश देते हैं। नियति और पौरुष-सम्बन्धी ऐसा ही विस्तृत विवेचन भगवान् रामकी जिज्ञासापर महर्षि वसिष्ठ उत्पत्ति-प्रकरण सर्ग ६२ में देते हैं। महर्षि कहते हैं कि राम नियति या प्रारब्धसे पुरुषार्थकी सत्ता और पुरुषार्थसे प्रारब्धकी सत्ता अभिन्न रूपसे स्थित है और मनुष्यको अपने पौरुषसे ही दैव और पुरुषार्थ बनाना चाहिये। प्रारब्धके अनुसार अवश्य होनेवाली भावी होकर ही रहेगी, ऐसा निश्चय करके बुद्धिमान् पुरुष शुभ कर्मोंका त्याग कभी न करे। जो प्रारब्धके भरोसे पौरुषशून्य और अकर्मण्य हो जाता है; वह कभी सुखी नहीं हो सकता है।

साररूपमें योगवासिष्ठमें सर्वत्र शुभ प्रयत्नको ही वरीयता दी गयी है, जो कि हमारे पूर्वजन्मकृत दैव या भाग्यको भी बदल देता है, अतः हमें प्रयत्नपूर्वक शास्त्रानुमोदित पुरुषार्थको ही करते रहना चाहिये। इन सारे साधन और फलोंकी अपेक्षा ज्ञानी-महात्माओंका प्रारब्धभोग दुःखरहित हो जाता है और यदि दुःखरहित प्रारब्धभोग ब्रह्म सत्ताके प्रकाशमें स्थिर हो जाय तो निश्चय ही परमगतिकी प्राप्ति होती है। (योगवासिष्ठ उत्पत्ति-प्रकरण सर्ग ६२)

वाल्मीकिरामायणमें ज्योतिषके कुछ विशिष्ट प्रकरण

[स्वप्न, शकुन एवं मुहूर्त-विज्ञान]

(पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री, शास्त्रार्थपंचानन)

वाल्मीकिरामायणमें ज्योतिषशास्त्रके स्वप्न, शकुन-अपशकुन, मुहूर्तप्रभृति प्रकरणोंका न केवल उल्लेख मिलता है, अपितु उनके अनुकूल-प्रतिकूल फलाधायक होनेकी व्याख्या भी कहीं शब्दशः और कहीं सांकेतिक रूपमें की गयी उपलब्ध होती है। इस विषयमें कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

स्वप्न

स्वप्नमें देखे गये पदार्थोंसे भविष्यमें होनेवाले शुभ किंवा अशुभ फलोंका परिज्ञान हो जाता है, रामायणकालीन समाजमें नागरिकोंकी ऐसी मान्यता थी। स्वप्नमें निम्न वस्तुओंको देखना कल्याणकारी माना जाता था—

१-हाथीदाँतकी बनी हुई दिव्य पालकी (जिसमें एक सहस्र घोड़े जुते हुए हों)-में बैठकर आकाशकी सैर करना।

२-श्वेत वस्त्र धारण करना अथवा श्वेत पर्वतके शिखरपर चढ़ना।

३-अपने हाथोंसे सूर्य, चन्द्रमाका स्पर्श करना। चार दाँतोंवाले हाथीको देखना अथवा उसपर सवारी करना।

४-तीर्थदर्शन, पुण्य जलमें स्नान अथवा तीर्थ-

जलमें तैरना।

इसके विपरीत स्वप्नमें निम्न वस्तुओंको देखना भावी विनाशका सूचक समझा जाता था—

१-तैलपान करके अट्टहास करते हुए किसी व्यक्तिका गर्दभजुते रथमें बैठकर दक्षिणदिशाकी ओर जाना।

२-कीचड़में लथपथ किसी स्त्रीद्वारा किसीको घसीटकर कीचड़में गिराना। किसी पर्वतशिखरसे गोबर, मल-मूत्रादिसे भरे हुए दुर्गन्धित कुण्डमें किसीका सिरके बल गिरना।

३-सूखे हुए समुद्रको देखना, आकाशसे भयंकर गर्जनाके साथ नक्षत्रोंका भूमिपर गिरना। लपटोंसे भरपूर अग्निका अचानक बुझ जाना। चन्द्रमाका आकाशसे पतन।

४-लोहेके पीढ़ेपर बिठाकर काली-कलूटी स्त्रियोंद्वारा किसी पुरुषको पीटना।

वाल्मीकिरामायणके सुन्दरकाण्ड, अध्याय २७ में त्रिजटा राक्षसीका स्वप्न-वृत्तान्त विस्तारके साथ वर्णित किया गया है, जिसका आंशिक विवरण ऊपर दिया गया है। अपना स्वप्न सुनानेके बाद त्रिजटा भविष्यमें घटित होनेवाला उसका फल भी स्पष्टरूपसे बता देती है कि राक्षसोंका विनाश होगा, सीता अभ्युदय प्राप्त करेगी और श्रीराम विजयी होंगे—

अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम्।
राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च॥

(५।२७।४९)

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि त्रिजटाका यह स्वप्न शत-प्रतिशत सत्य सिद्ध हुआ था।

ऐसा ही महाभयानक दुःस्वप्न भरतजी ननिहालमें देखते हैं और इसे मृत्युसूचक स्वप्न मानकर अत्यन्त दुःखित हो जाते हैं। वे अपने पिता चक्रवर्ती सम्राट् महाराजा दशरथको लालचन्दनका लेप किये हुए, लाल ही वस्त्रधारण किये हुए गर्दभजुते रथसे दक्षिण-दिशाकी ओर जाते हुए देखते हैं। उनका हृदय इस आशंकासे काँपने लगता है कि अब किसी-न-किसीकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। मैं, श्रीराम, महाराजा दशरथ अथवा लक्ष्मण हममेंसे कोई भी मृत्युका ग्रास बन सकता है—

एवमेतन्मया दृष्टमिमां रात्रिं भयावहाम्।
अहं रामोऽथवा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति॥

(२।६९।१७)

परंतु भरतजीने स्वप्नमें अपने पिता दशरथजीको ही दुर्गतिग्रस्त देखा था, अतः वे उनके ही दिवंगत होनेकी पीड़ादायक आशंकासे व्यथित हो रहे थे—

नरो यानेन यः स्वप्ने खरयुक्तेन याति हि।
अचिरात्तस्य धूमाग्रं चितायां सम्प्रदृश्यते॥

(२।६९।१८)

भरतजीका यह दुःस्वप्न-दर्शन भी कालान्तरमें महाराजा दशरथकी मृत्युके रूपमें फलीभूत हुआ ही था।

ऋष्यमूकपर्वत कोई साधारण पर्वत नहीं था। रामायणमें उसका जैसा वर्णन किया गया है, तदनुसार उसकी संरचना स्वयं प्रजापति ब्रह्माने की थी—

ऋष्यमूकस्तु पम्पायाः पुरस्तात् पुष्पितद्रुमः।
उदारो ब्रह्मणा चैव पूर्वकालेऽभिनिर्मितः॥

(३।७३।३१-३२)

इस पर्वतकी अनेक विशेषताओंमें एक प्रमुख विशेषता यह थी कि उसके शिखरपर सोनेवाला व्यक्ति स्वप्नमें जो कुछ भी अच्छा या बुरा देखा करता था, वह उसे अवश्यमेव प्राप्त हो जाया करता था। यह रहस्य कबन्ध नामक राक्षसने श्रीरामको बताया था—

शयानः पुरुषो राम तस्य शैलस्य मूर्धनि।
यत् स्वप्नं लभते वित्तं तत् प्रबुद्धोऽधिगच्छति॥

(३।७३।३३)

लंकेश्वर रावणद्वारा अपहृता सीताकी पुनःप्राप्तिका स्वप्न श्रीरामने ऋष्यमूकपर्वतपर देखा था, जो कुछ ही समय बाद फलीभूत हो गया था।

शकुन-अपशकुन

स्वप्नदृष्ट पदार्थोंकी भाँति ही जाग्रत्-अवस्थामें देखे जानेवाले पदार्थ भी कार्यसिद्धि अथवा कार्यहानिकी सूचना दिया करते हैं। उन्हें लोक-व्यवहारमें शकुन अथवा अपशकुन नामसे जाना जाता है। कोई भी मांगलिक कार्य प्रारम्भ करनेसे पूर्व रामायणकालीन समाज अत्यन्त सावधानीके साथ शकुन आदि विचार किया करता था। यात्रा, विवाह अथवा यज्ञोपवीत, नूतन-गृह-प्रवेश, यज्ञ-यागादि के अवसरपर, युद्धके लिये प्रस्थान करते समय, देवदर्शन, राजदर्शन आदि महत्त्वपूर्ण कार्योंके उपस्थित होनेपर अनिवार्यरूपसे शकुनका विश्लेषण किया जाता था।

शरीरके अंगविशेषके फड़कनेसे, पक्षीविशेषके दर्शनसे, आकाशके निर्मल अथवा मलिन होनेसे, अपने चित्तके शान्त या उद्विग्न होनेसे शुभ या अशुभ फल देनेवाले शकुन-अपशकुनका निर्धारण किया जाता था। जैसे स्त्रियोंके बायें अंगका और पुरुषोंके दायें अंगका फड़कना अत्यन्त शुभ शकुन माना जाता था। श्रीराम और सुग्रीवकी मित्रताके अवसरपर सीताजी, बाली और लंकावासी राक्षस-समुदाय सभीकी बाँयीं आँखें एक साथ फड़कने लगी थीं, जो सीताजीके अभ्युदयकी और बाली तथा राक्षसोंके विनाशकी सूचना दे रही थीं। इसका अत्यन्त मनोहारी आलंकारिक वर्णन महर्षि वाल्मीकिने इस प्रकार किया है—

सीताकपीन्द्रक्षणदाचराणां
राजीवहेमज्वलनोपमानि ।
सुग्रीवरामप्रणयप्रसङ्गे
वामानि नेत्राणि समं स्फुरन्ति॥

(४।५।३१)

लंकामें भगवती जानकीके वामनेत्र, वामभुजा और वामजंघामें स्फुरणको देखकर ही त्रिजटाने उनके भावी अभ्युदयका विस्तारके साथ वर्णन कर दिया था। यथा—

निमित्तभूतमेतत् तु श्रोतुमस्या महत् प्रियम्।
दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पद्मपत्रमिवायतम्॥
ईषद्धि हृषितो वास्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः।
अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते॥
करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चोरुरनुत्तमः।
वेपन् कथयतीवास्या राघवं पुरतः स्थितम्॥

(५।२७।५०—५२)

एक तो श्रीरामके वियोगकी मर्मान्तक असह्य पीड़ा और फिर ऊपरसे राक्षसियोंद्वारा डराना-धमकाना—इन दो महान् क्लेशोंसे खिन्न होकर जब जानकीजीने अपनी ही वेणीसे फाँसी लगाकर प्राणत्याग करनेका निर्णय किया था, उस समय भी उनके तीनों वामांग—नेत्र, भुजा और जंघा सहसा फड़कने लगे थे। सुन्दरकाण्डके २९वें अध्यायमें इन शुभ लक्षणोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है, जिन्हें अनुभव करते ही जानकीजीका समस्त शोक-सन्ताप, उद्वेग, अन्तर्दाह क्षणभरमें विलीन हो गया और वे आनन्दातिरेकसे रोमांचित हो गयी थीं। उस समय उनका मुखारविन्द रात्रिमें खिले हुए पूर्णचन्द्रके समान शोभित हो रहा था—

सा वीतशोका व्यपनीततन्द्रा
शान्तज्वरा हर्षविबुद्धसत्त्वा।
अशोभतार्या वदनेन शुक्ले
शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन॥

(५।२९।८)

आँखके ऊपरवाले भागका फड़कना भी मनोरथोंकी पूर्तिका सूचक माना जाता था। वानरसेनाके साथ जब श्रीराम समुद्रतटपर पहुँचे थे, तब उनकी आँखका ऊपरवाला भाग फड़कने लगा था। बस, इस नेत्र-स्फुरणको अनुभव करते ही उन्हें निश्चय हो गया था कि अब मेरा मनोरथ अवश्य पूरा होगा, युद्धमें मेरी विजय सुनिश्चित है—

उपरिष्टाद्धि नयनं स्फुरमाणमिमं मम।
विजयं समनुप्राप्तं शंसतीव मनोरथम्॥

(६।४।७)

तत्कालीन समाजमें निम्नांकित वस्तुओंको भी

मंगलकारी शुभ शकुनोंके रूपमें स्वीकार किया जाता था—

१-मधुर स्वरमें पक्षियोंका कलरव (कूजना), मृगोंका दायें हाथकी ओरसे होकर निकलना।

२-ग्रहोंकी अनुकूल स्थिति, मानसिक उत्साह।

३-दिशाओंका और सूर्यमण्डलका निर्मल होना।

४-शत्रुके नक्षत्रका उपद्रवग्रस्त होना तथा अपने नक्षत्रका किसी अन्य नक्षत्र अथवा विरोधी ग्रहसे पीड़ित न होना। युद्धके लिये उद्यत श्रीरामके समक्ष यही शुभ शकुन उपस्थित हुआ था। राक्षसोंका निर्ऋतिदेवतावाला मूल नक्षत्र तो धूमकेतुसे ग्रस्त था और इक्ष्वाकुवंशजोंका नक्षत्र विशाखा उपद्रवरहित एवं सर्वथा निर्मल था। इक्ष्वाकुवंशज श्रीरामके लिये यह अत्यन्त हर्षका अवसर था—

नैर्ऋतं नैर्ऋतानां च नक्षत्रमतिपीड्यते।
मूलो मूलवता स्पृष्टो धूप्यते धूमकेतुना॥
सर्वं चैतद् विनाशाय राक्षसानामुपस्थितम्।
विमले च प्रकाशेते विशाखे निरुपद्रवे।
नक्षत्रं परमस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम्॥

(६।४।५१—५२, ५०)

अपशकुन—रामायणमें अपशकुनोंका बड़े विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। उनमेंसे कुछका यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शनमात्र प्रस्तुत है—

१-भयंकर गर्जनाके साथ बादलोंसे गर्मागर्म रक्तकी वर्षा होना।

२-घोड़ोंका करुण स्वरमें रोना। गीदड़ों, भेड़ियों और गीधोंद्वारा भैरव नाद करना।

३-गायद्वारा गर्दभको और नेवलेद्वारा चूहोंको जन्म देना, बिलावका बाघके साथ, सूकरका कुत्तेके साथ, किन्नरोंका राक्षसों या मनुष्योंके साथ मैथुनकर्ममें प्रवृत्त होना।

४-मुण्डितमस्तक किसी काले-कलूटे पुरुषका घरमें घूमना। दिनमें अचानक अन्धकार छा जाना।

५-सूर्यकी ओर मुँह करके कुत्तोंका रोना। घोड़ोंकी आँखोंसे निरन्तर आँसू निकलना। उल्कापात अथवा भूकम्पादिका होना। (६।३५।२६—३५)

मुहूर्त-विज्ञान

यद्यपि मूलतः काल सर्वथा अविभाज्य एवं अमूर्त तत्त्व है तथापि व्यावहारिक प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये ज्योतिषशास्त्रमें उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाजन किया गया है। परमाणु (झरोखेमेंसे आयी हुई सूर्यकी किरणोंमें दिखायी पड़नेवाले धूलिकणोंमेंसे किसी एक कणका साठवाँ भाग)-से प्रारम्भ करके त्रुटि, वेध, लव, निमेष, क्षण, काष्ठा, कला, नाडिका, मुहूर्त, दिन-रात, मास, संवत्सर आदिका विश्लेषण करते हुए न केवल सत्ययुगादि चारों युगोंका, अपितु ब्रह्मातककी आयुका मान नितान्त वैज्ञानिक पद्धतिसे निरूपित होकर ज्योतिषशास्त्रमें उपलब्ध है।

उक्त विवेचनके अनुसार एक दिन-रातमें तीस मुहूर्त होते हैं और एक मुहूर्तकी कालावधि तीस कला अथवा दो नाडिका मानी गयी है। सूर्यादि ग्रहों तथा अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रोंकी गति-विगतिके तारतम्यसे मुहूर्तोंका अनुकूल किंवा प्रतिकूल प्रभाव देनेवाला होना भी स्वतःसिद्ध है। इसलिये कुछ मुहूर्त शुभ और कुछ कुत्सित कहे जाते हैं।

रामायणकालीन समाजकी ज्योतिषशास्त्रमें गहन आस्था थी। वहाँ न केवल विवाह, नूतन गृहप्रवेश अथवा राज्याभिषेक-जैसे मांगलिक कृत्योंके अवसरपर ही शुभ मुहूर्तका शोधन कराया जाता था, अपितु सामान्य शुभकार्योंके समय भी अनुकूल ग्रह-नक्षत्रादिका विचार करनेकी परम्परा थी। महर्षि वाल्मीकिने प्रसंगानुसार कुछ मुहूर्तोंका वर्णन किया है, जो आज भी यथावत् स्वीकार्य हैं। यथा—प्रजापति भगसे उपलक्षित उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र वैवाहिक नक्षत्रोंमें सर्वाधिक प्रशस्त माना जाता था। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—चारों भ्राताओंका क्रमशः सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति नामक चारों राजकुमारियोंके साथ विवाह-संस्कार एक

ही दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें ही हुआ था—

एकाह्ना राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने।
पाणीन् गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः॥
उत्तरे दिवसे ब्रह्मन् फल्गुनीभ्यां मनीषिणः।
वैवाहिकं प्रशंसन्ति भगो यत्र प्रजापतिः॥

(१।७२।१२-१३)

जब चन्द्रमा पुनर्वसु नक्षत्रसे संयुक्त हो, तब बृहस्पति-देवतावाले पुष्य नक्षत्रमें राज्याभिषेक-जैसे महनीय कार्य सम्पन्न किये जाते थे। श्रीरामके राज्याभिषेकके लिये ऐसा ही शुभमुहूर्त निर्धारित किया गया था, जैसा कि महाराजा दशरथने स्वयं श्रीरामको बताया था—

अद्य चन्द्रोऽभ्युपगमत् पुष्यात् पूर्वं पुनर्वसुम्।
श्वः पुष्ययोगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्तकाः॥
तत्र पुष्येऽभिषिञ्चस्व मनस्त्वरयतीव माम्।
श्वस्त्वाहमभिषेक्ष्यामि यौवराज्ये परन्तप॥

(२।४।२१-२२)

बुधवारको छोड़कर प्रत्येक दिनका आठवाँ मुहूर्त 'अभिजित्' मुहूर्त कहलाता है—**अष्टमे दिवसस्यार्धे त्वभिजित् संज्ञकः क्षणः।** 'मध्याह्नात् पूर्वापर' कालमें होनेवाले इस मुहूर्तकी समयावधि २ घड़ी अर्थात् ४८ मिनट होती है।

अभिजित्‌के सही कालमानको जाननेकी प्रक्रिया भी बहुत सरल है। ज्योतिषशास्त्रानुसार दिनमानके आधे समयको सूर्योदयमें जोड़नेसे मध्याह्नकाल हो जाता है। इसमें २४ मिनट घटाने और अपराह्नके २४ मिनट जोड़नेसे अभिजित्‌का मान निकल आता है। जो भी हो, इस मुहूर्तमें समस्त दोषोंके निवारणकी तथा सभी शुभ कर्मोंको पूर्णतया सफल करनेकी अद्भुत क्षमता है। इस सद्‌गुणके कारण इसे 'विजय मुहूर्त' भी कहा जाता है। युद्धयात्राके लिये तो इस मुहूर्तको सर्वाधिक उपयुक्त मुहूर्तके रूपमें मान्यता प्राप्त थी।

शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे की जानेवाली अपनी समर-यात्राके लिये श्रीरामने अभिजित्-मुहूर्तको ही चुना था और उसी कालावधिमें सैन्य-संचालनके लिये सुग्रीवको निर्देश दिया था। संयोगवश उस दिन विजय-यात्राके लिये मान्य नक्षत्रोंमें परिगणित उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र भी था और पुष्य नक्षत्र भी उससे बहुत दूर नहीं था। इस दुर्लभ मणिकांचन-संयोगके समय प्रस्थान करनेवाली सेनाको विजयश्री प्राप्त हुई थी, यही अभिजित्‌को 'विजय मुहूर्त' कहनेका रहस्य है। श्रीरामका निर्देश इस प्रकार है—

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः॥
उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः॥

(६।४।३, ५)

कभी-कभी अज्ञानवश अथवा त्वरावश जब कोई व्यक्ति कुत्सित मुहूर्तमें किसी कार्यको कर डालता है तो उसका कुफल भी उसे भोगना ही पड़ता है।

रावणने जिस मुहूर्तमें जानकीजीका अपहरण किया था, तब उसे मालूम नहीं था कि उस समय 'विन्द' नामक कुत्सित मुहूर्त था और उसका फल यह था कि उस मुहूर्तमें चुरायी गयी वस्तु तो उसके स्वामीको यथासमय शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है, परंतु चोरको गलेमें काँटा फँस जानेसे व्याकुल मछलीकी भाँति तड़प-तड़पकर प्राणोत्सर्ग करना पड़ता है—

येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः।
विप्रणष्टं धनं क्षिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते॥
विन्दो नाम मुहूर्तोऽसौ न च काकुत्स्थ सोऽबुधत्।
झषवत् बडिशं गृह्य क्षिप्रमेव विनश्यति॥
न च त्वया व्यथा कार्या जनकस्य सुतां प्रति।
वैदेह्या रंस्यसे क्षिप्रं हत्वा तं रणमूर्धनि॥

(३।६८।१२—१४)

—ये सारी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ जटायुने श्रीरामको प्रदान की थीं और उन्हें जानकीजीकी पुनः सकुशल प्राप्तिके प्रति आश्वस्त किया था।

ज्यौतिषीय दृष्टिसे पौराणिक कालगणना और उसमें श्रीमद्भागवतका वैशिष्ट्य

(प्रो० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

पपीमपि निपीय यः स्वपिति शून्यतल्पे क्वचि-
त्पिपर्ति परमाणुतां ननु परार्धवत्तां ततः।
कपिं त्वथ पिपीलिकां नयति च प्लुतिं मन्दतां
प्रचण्डकलनाकलोऽवतु स कालमूर्तिः प्रभुः॥

प्रायः सभी पुराणोंमें उनके सर्गादि पंचलक्षणों* के अनुगुण मूल-सृष्टि एवं उसके विस्तारकी प्रक्रियाका अपने-अपने ढंगसे निरूपण हुआ है। इस प्रसंगमें 'काल' के दार्शनिक विवेचनके साथ-साथ 'कालगणना' की एक स्पष्ट (गणितीय और व्यावहारिक) पद्धति भी अनेक पुराणोंमें विस्तारसे विवेचित हुई है। इस दृष्टिसे विष्णुपुराणकी शैलीको अन्य सभीके प्रतिनिधिरूपमें माना जा सकता है। श्रीमद्भागवतमहापुराणको छोड़कर कूर्म, ब्रह्माण्ड तथा शिवपुराणादिकी कालगणना प्रायः श्रीविष्णुपुराणका ही अनुवर्तन करती है। पुराणोंकी यह गणना 'दिव्यादिव्य' कही जा सकती है; क्योंकि इसमें मनुष्यके 'निमेष-काल' अर्थात् पलकोंके निमीलनोन्मीलनके अत्यल्प समयसे लेकर ब्रह्मा अर्थात् सृष्टिकर्ता प्रजापतिके सम्पूर्ण आयुर्मान (जिसे द्विपरार्ध या पर कहा गया है)-तककी सूक्ष्म गणना की गयी है तथा इसके आगे भी ब्रह्माके समग्र आयुर्मानको भगवान् विष्णु और शिवके दिन आदिके रूपमें कल्पित करके गणनाको आगे बढ़ाया गया है, किंतु सर्वसम्मत और व्यवहारानुगुण-गणना 'द्विपरार्ध' या 'पर' कालतक ही मानी गयी है। विशेष बात यह है कि भारतीय ज्यौतिष भी पौराणिक कालगणनाको सम्पूर्णतया (कहीं-कहीं कुछ प्रक्रिया-भेदसे) स्वीकार करता है। इसलिये पुराणोंके अधिभूत, अध्यात्म एवं अधिदैववादको स्वीकार किये बिना भारतीय कालगणनाके रहस्यको ठीकसे नहीं समझा जा सकता। पौराणिक कालगणनाका आरम्भ तो पृथ्वीपर रहनेवाले स्थूल मनुष्यसे होता है, किंतु सापेक्षताकी स्थितिमें उसके विस्तारहेतु सूक्ष्म पितृलोकनिवासी पितृगणोंकी, स्वर्गादिमें रहनेवाले देवताओंकी और सबके ऊपर अत्यन्त सूक्ष्म सत्यलोक या ब्रह्मलोकमें रहकर सृष्टिविस्तारका संचालन करनेवाले प्रजापतिरूप परमेष्ठितत्त्वकी संकल्पना अनिवार्य हो जाती है। यहाँ सर्वप्रथम श्रीविष्णुपुराणकी कालगणनापद्धतिको उद्धृत करना समीचीन होगा। पुराणके द्वितीय अंशमें कहा गया है—

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव
त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलां च।
त्रिंशत्कलश्चैव भवेन्मुहूर्त-
स्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते॥

(श्रीविष्णुपुराण २।८।५९)

अर्थात् पन्द्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाकी एक 'कला' मानी जाती है। तीस कलाओंका एक मुहूर्त कहा जाता है तथा तीस मुहूर्तोंसे (मनुष्यका) एक 'अहोरात्र' बनता है। कालगणनाके इस आरम्भिक सूत्रवाक्यका परिणतिपर्यन्त उपोद्बलन इसी पुराणके प्रथम अंश तृतीय अध्याय तथा षष्ठ अंशके तृतीय और चतुर्थ अध्यायोंमें किया गया है। यहाँ द्वितीय सन्दर्भको संक्षेपमें उद्धृत किया जाता है—

निमेषो मानुषो योऽसौ मात्रा मात्राप्रमाणतः।
तैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत्काष्ठा कला स्मृता॥
नाडिका तु प्रमाणेन सा कला दश पञ्च च।

× × ×

* (क) सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च। सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत्॥ (श्रीविष्णुपुराण ३।६।२५)

(ख) सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

(श्रीमद्देवीभा० १।२।१८ तथा अन्यत्र भी बहुशः प्राप्त)

नाडिकाभ्यामथ द्वाभ्यां मुहूर्तो द्विजसत्तम।
अहोरात्रं मुहूर्तास्तु त्रिंशन्मासो दिनैस्तथा॥
मासैर्द्वादशभिर्वर्षमहोरात्रं तु तद्दिवि।
त्रिभिर्वर्षशतैर्वर्षं षष्ट्या चैवासुरद्विषाम्॥
तैस्तु द्वादशसाहस्रैश्चतुर्युगमुदाहृतम्।
चतुर्युगसहस्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम्॥
स कल्पस्तत्र मनवश्चतुर्दश महामुने।
तदन्ते चैव मैत्रेय ब्राह्मो नैमित्तिको लयः॥

(श्रीविष्णुपुराण ६। ३। ६—१२)

अर्थात् १ मानव-निमेष कालगणनाकी सबसे छोटी इकाई है। यह समय एक स्वस्थ मनुष्यके पलक झपकने जितना होता है अथवा एक ह्रस्व वर्णके उच्चारणमें व्यय होनेवाले समयको जिसे मात्रा कहते हैं, 'निमेष-काल' कह सकते हैं। इस प्रकार—

१५ निमेष या मात्रा	=१ काष्ठा
३० काष्ठा	=१ कला,
१५ कला	=१ नाडिका
२ नाडिका	=१ मुहूर्त
३० मुहूर्त	=१ अहोरात्र
३० अहोरात्र	=१ मास
१२ मास	=१ मानव वर्ष
१ मानव वर्ष	=१ दिव्य अहोरात्र (स्वर्गलोकस्थित देवताओंका एक दिन और एक रात्रि)
३६० दिव्य अहोरात्र	=१ दिव्य वर्ष (देवताओंका वर्ष)
१२,००० दिव्य वर्ष	=१ चतुर्युगी (जिसमें क्रमशः सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार विशेष कालखण्ड एक बार आ जाते हैं।)
१००० चतुर्युगी	=१ कल्प अर्थात् ब्रह्माका एक दिन

इस एक कल्प अर्थात् ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर बीत जाते हैं। एक मनु (तथा एक इन्द्रके) भोगके समयको मन्वन्तर कहा जाता है। पुराणोंकी यह मान्यता है कि कल्प अर्थात् ब्रह्माजीका एक दिन बीत जानेपर ब्रह्माजी थककर विश्रान्ति लेते हैं, अतएव उनकी रात्रि भी एक 'कल्प' अर्थात् १००० चतुर्युगीकी होती है। ब्रह्माजीकी इस रात्रिको ब्राह्म या नैमित्तिक-प्रलय कहते हैं। इसमें भूः, भुवः और स्वः-रूपा त्रिलोकी एकार्णवके जलमें डूबकर नष्ट हो जाती है। इस रात्रिके बीतनेपर फिर नया कल्प या ब्राह्मदिवस आरम्भ होता है और प्रबुद्ध प्रजापति पुनः सृष्टिकार्यमें संलग्न होते हैं—

एष नैमित्तिको नाम मैत्रेय प्रतिसञ्चरः।
निमित्तं यत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरिः॥
यदा जागर्ति सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत्।
निमीलत्येतदखिलं मायाशय्यां गतेऽच्युते॥
पद्मयोनेर्दिनं यत्तु चतुर्युगसहस्रवत्।
एकार्णवीकृते लोके तावती रात्रिरिष्यते॥
ततः प्रबुद्धो रात्र्यन्ते पुनः सृष्टिं करोत्यजः।

(श्रीविष्णुपुराण ६। ४। ७—१०)

ब्रह्माजीके ऐसे ३६० दिनोंसे उनका एक वर्ष बनता है और ऐसे ५० वर्ष एक 'परार्ध' कहलाते हैं। इस प्रकार ५०+५० ब्राह्मवर्ष या 'द्विपरार्ध' अथवा एक 'पर'—यह ब्राह्म आयुर्मान ही गणितीय कालका सबसे बड़ा रूप कहा गया है। कूर्मपुराण इसी तथ्यको इस प्रकार निरूपित करता है—

कालसंख्या समासेन परार्धद्वयकल्पिता।
काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः।
काष्ठास्त्रिंशत्कला त्रिंशत्कला मौहूर्तिकी गतिः॥
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः॥
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्॥

(कूर्मपुराण पूर्वार्ध ५। २, ४—६)

यहाँ भी कालकी सबसे छोटी इकाई 'निमेष' और

सबसे बड़ा कालमान 'द्विपरार्ध' ही कहा गया है। केवल इतनी बात अधिक कही गयी है कि मानवमासमें (कृष्ण और शुक्ल—ये) दो पक्ष होते हैं। मानववर्षके छः-छः महीने क्रमशः 'उत्तरायण' और 'दक्षिणायन' कहलाते हैं। इस प्रकार द्वादश मासात्मक मानववर्षका विभाजन दो अयनोंमें किया जाता है। मनुष्योंका उत्तरायण देवताओंका दिन तथा दक्षिणायन उनकी रात्रि कही जाती हैं। शेष बातें समान हैं।

शिवपुराणकी वायवीय संहितामें भी प्रायः ऐसा ही प्रतिपादन प्राप्त होता है। यहाँ भी कालकी प्रथम गणना निमेषसे ही की गयी है। निमेषको परिभाषित करते हुए पुराणकार कहते हैं—

अक्षिपक्ष्मपरिक्षेपो निमेषः परिकल्पितः।

(श्रीशिवपु० वायवीयसं० ८। २)

यहाँ दिव्य अर्थात् देवताओंके वर्षोंके अनुसार भारतवर्षमें होनेवाले कृतादि (या सत्यादि) चार युगोंका जो कालमान कहा गया है; लगभग वैसा ही अन्य पुराणों एवं ज्योतिर्विदोंको भी मान्य है—

पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते।
द्वापरञ्च कलिश्चैव युगान्येतानि कृत्स्नशः॥
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः॥
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥
एतद् द्वादशसाहस्रं साधिकञ्च चतुर्युगम्।

(शिवपु० वायवीयसं० ८। १२—१५)

अर्थात् ४००० दिव्य वर्षोंके साथ युगारम्भमें ४०० दिव्य वर्षोंकी सन्ध्या और युगान्तमें ४०० वर्षोंके सन्ध्यांश तदनुसार ४०००+४००+४००=४,८०० दिव्य वर्षोंका सत्ययुग या कृतयुग माना गया है। इसी प्रकार—

३००० दिव्य वर्ष+३०० दिव्य वर्षोंकी सन्ध्या+३०० दिव्य वर्षोंका सन्ध्यांश=३,६०० दिव्य वर्षोंका त्रेता।

२००० दिव्य वर्ष+२०० दिव्य वर्षकी सन्ध्या+२०० दिव्य वर्षका सन्ध्यांश=२,४०० दिव्य वर्षोंका द्वापर।

१००० दिव्य वर्ष+१०० दिव्य वर्षकी सन्ध्या+१०० दिव्य वर्षका सन्ध्यांश=१,२०० दिव्य वर्षोंका कलियुग।

—ये शेष तीन युग कहे गये हैं। इस प्रकार—

४,८०० दिव्य युग =कृतयुग
३,६०० दिव्य युग =त्रेतायुग
२,४०० दिव्य युग =द्वापरयुग
१,२०० दिव्य युग =कलियुग
कुल १२,००० दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग।

ऐसे ७१ चतुर्युगोंसे कुछ अधिकका १ मन्वन्तर होता है। जैसा कि विष्णुपुराणमें कहा है—

चतुर्युगाणां सङ्ख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः।
मन्वन्तरं मनोः कालः सुरादीनाञ्च सत्तम॥

(१। ३। १८)

विष्णुपुराणमें इसे और भी अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि दिव्य वर्षगणनाके अनुसार—

एक मन्वन्तर=८,५२,००० दिव्य वर्ष

यही मान मानवीय वर्षगणनाके अनुसार—

१ मन्वन्तर =३०,६७,२०,००० (तीस करोड़, सड़सठ लाख, बीस हजार मानववर्ष)

इस कालका चौदह गुना अर्थात्

दिव्य वर्ष ८,५२,०००×१४ =१,१९,२८,००० (एक करोड़ उन्नीस लाख अट्ठाईस हजार) दिव्य वर्ष

अथवा

मानववर्ष ३०,६७,२०,०००×१४=४,२९,४०८०,००० (चार अरब, उन्तीस करोड़, चालीस लाख, अस्सी हजार) मानववर्षोंका एक कल्प अर्थात् ब्रह्माका एक दिन होता है।

७१ चतुर्युगोंसे कुछ अधिकका एक मन्वन्तर होता है—यह जो पहले कहा गया था, उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—७१ चतुर्युगोंके मानसे चौदह मन्वन्तरों अर्थात् ब्राह्मदिवस-रूप एक कल्पमें ९९४ चतुर्युग ही होंगे, किंतु सामान्यतया कल्प या ब्रह्माके दिनमें एक हजार चतुर्युग माने जाते हैं। इस प्रकार

छः चतुर्युगोंका अन्तर आता है। इन छः चतुर्युगोंका चौदहवाँ भाग कुछ कम ५,१०३ (पाँच हजार एक सौ तीन) दिव्य वर्ष होता है। इस प्रकार यदि एक मन्वन्तरमें ७१ चतुर्युगके अतिरिक्त ५,१०३ दिव्य वर्ष और जोड़ लें तो यह अन्तर प्रायः समाहित हो जाता है।

ज्योतिषशास्त्रके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्तमें भी दिव्य कालगणना प्रायः ऐसी ही कही गयी है—

तद् द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्दसङ्ख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः॥
सन्ध्यासन्ध्यांशसहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम्।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया॥
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः।
क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोः स्वकः॥
युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।

× × ×

ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश॥

(सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार श्लोक १५—१९)

श्रीमद्भागवतमहापुराण भी ३।११।१८ से ३६तकके वर्णनमें तथा १२।४।१—६ तकके वर्णनमें कालगणनाका पूर्वोक्त पौराणिक पद्धतिके सदृश संवाद प्रदर्शित करता है, किंतु कालगणनाकी प्राथमिक इकाई यहाँ निमेषसे भी सूक्ष्म परमाणुकाल है और यद्यपि अन्तिम कालमान द्विपरार्ध ही है तथापि इस द्विपरार्ध कालको अव्याकृत अनन्त परमात्माके निमेषके रूपमें उपचरित माना गया है—

कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते।
अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः॥
कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः।

(श्रीमद्भा० ३।११।३७-३८)

तथा

कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप।
कथितो युगमानञ्च शृणु कल्पलयावपि॥

(श्रीमद्भा० १२।४।१)

श्रीमद्भागवतकी मानवीय कालगणनाका स्वरूप अपने मूल रूपमें इस प्रकार द्रष्टव्य है—

चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा।
परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः॥
सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत्।
कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः॥
एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम।
संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः॥

(श्रीमद्भा० ३।११।१—३)

इन तीन श्लोकोंमें दार्शनिक और वैज्ञानिक रूपमें प्रथमतया परमाणु और परम महान् पदार्थके दो स्वरूपोंकी व्याख्या की गयी है। तदनुसार—पृथ्वी आदि कार्यवर्गका जो सूक्ष्मतम अंश है,जिसका और विभाग नहीं हो सकता। जो अनेक है, किंतु अपने सजातीय अन्य परमाणुओंसे अभी संयुक्त नहीं हुआ तथा जिसके अपने-सदृश अन्य अनेक परमाणुओंसे मिल जानेपर मनुष्योंको उनके समुदायरूप एक अवयवीकी प्रतीति (ऐक्यभ्रम) होने लगता है। पदार्थकी उस सूक्ष्म-अवस्थाका नाम 'परमाणु' है। इसी प्रकार दूसरे ढंगसे देखनेपर यह 'परमाणु' जिसका सूक्ष्मतम अंश है, ऐसे अविशिष्ट अर्थात् पृथ्वी आदि विशेष प्रतीतियोंसे अमिश्रित पदार्थमात्रकी अत्यन्त स्थूल-अवस्थाका नाम परम महान् है। इसी बातको श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधरस्वामी इन शब्दोंमें कहते हैं—

सतः कार्यस्य विशेषाणामंशानां यश्चरमोऽन्त्यो यस्यांशो नास्ति, अनेकः कार्यावस्थामप्राप्तः असंयुतः समुदायावस्थाञ्चाप्राप्तः। अतएव सदा कार्यसमुदाया-वस्थायोरपगमेऽप्यस्ति स परमाणुर्विज्ञेयः। किं तत्र प्रमाणमत आह—यतो येभ्यः समुदितेभ्यः नृणां व्यवहर्तृणामैक्यभ्रमोऽवयविबुद्धिः। ××× सूक्ष्ममुक्त्वा स्थूलमाह—××यस्य चरमोंऽशः परमाणुस्तस्यैव सतः कार्यमात्रस्य स्वरूपावस्थितस्य परिणामान्तरमप्राप्तस्य यत्कैवल्यमैक्यं स परममहान्। (श्रीमद्भा० ३।११।१—३, भावार्थदीपिका)

इस प्रकार वस्तुके 'सूक्ष्मतम' और 'महत्तम' स्वरूपका विचार हो जानेपर इन परमाणु आदि अवस्थाओंको भोगनेवाले अव्यक्तरूप भगवान् कालकी भी सूक्ष्मता और स्थूलता (महत्ता)-का अनुमान किया जा सकता है। आशय यह है कि जो काल प्रपंचकी परमाणु-जैसी सूक्ष्म-अवस्थामें व्याप्त रहता है अथवा पदार्थकी वह सूक्ष्मावस्था जिसपर अधिष्ठित रहकर प्रतीत होती है, वह परमाणुकाल है और जो सृष्टिसे लेकर प्रलयपर्यन्त उसकी सभी अवस्थाओंका भोक्ता या अधिष्ठान है, वह परम महान् काल है—

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्।
सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान्॥

(श्रीमद्भा० ३। ११। ४)

ध्यातव्य है कि ज्योतिर्विज्ञानके सिद्धान्तग्रन्थोंमें भी कलनात्मक कालकी अमूर्त इकाई 'त्रुटि' से ही आरम्भ होती है, जबकि वक्ष्यमाणपद्धतिके अनुसार त्रुटि भागवतकी कालगणनामें चतुर्थ क्रमको प्राप्त करती है। यथा—

परमाणु-काल	**प्रथम इकाई**
दो परमाणु-काल	=१ अणु-काल
३ अणु-काल	=१ त्रसरेणु-काल
३ त्रसरेणु-काल	=१ त्रुटि

अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः।
जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात्॥
त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः।

(श्रीमद्भा० ३। ११। ५-६)

एक 'त्रसरेणु' झरोखेमेंसे होकर आती हुई सूर्यकी किरणोंमें चमकनेवाले धूलिकणके मानका होता है, ऐसे तीन त्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्यको जो समय लगता है, उसे भागवतमें 'त्रुटि' कहा गया है। ज्योतिर्विदोंके अनुसार सूचीसे कमलकी पंखुड़ीको भेदनेमें लगनेवाला काल 'त्रुटि' कहलाता है—

सूच्याभिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते।

(नारद)

भास्कराचार्यने नेत्रपक्ष्मद्वयसंयोग-काल सहस्त्रत्रयतम-भागतुल्य कालगतिको त्रुटि कहा है—

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खरामभागः
स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता।
त्रुटिः..... ॥

आधुनिक कालगणनामें इसका मान $\frac{१}{३२,४०,०००}$ सेकेण्ड माना जाता है। सूर्यसिद्धान्तके अनुसार यह अमूर्तकालकी प्रथम इकाई है, मूर्तकालको मापनेकी प्रथम इकाई प्राण है—

प्राणादिः कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसञ्ज्ञकः।

(सूर्यसि० मध्यमाधिकार श्लोक ११)

त्रुटिसे प्राणतककी यात्राका क्रम ज्योतिर्ग्रन्थोंके अनुसार इस प्रकार है—

६० त्रुटि	= १ रेणु
६० रेणु	= १ लव
६० लव	= १ लीक्षक और
६० लीक्षक	= १ प्राण

१ प्राण या असु, १० दीर्घ उच्चारणकाल, १० विपल या लगभग ४ सेकेण्डका माना गया है अर्थात् प्राण निमेषका दशगुणित काल है।

श्रीमद्भागवतके अनुसार—

१०० त्रुटि	=१ वेध
३ वेध	=१ लव
३ लव	=१ निमेष
३ निमेष	=१ क्षण
५ क्षण	=१ काष्ठा
१५ काष्ठा	=१ लघु और फिर
१५ लघु	=१ नाड़ी या दण्ड

आगेकी गणना, जैसे २ नाड़ी या दण्ड=१ मुहूर्त आदि प्रायः द्विपरार्धतककी गणना अन्य पुराणोंके ही अनुसार है।

यहाँ मानव-अहोरात्रके निरूपणमें सात नाड़िकासे बननेवाले एक अहोरात्रमें आठ प्रहरों या यामोंका

भी निरूपण किया गया है। नाड़ी-कालका प्रायोगिकमान भी विष्णुपुराण आदिके समान प्रस्थ-पात्रके अनुसार ही समझाया गया है—

शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः॥
निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः।
क्षणान्पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च॥
लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका।
ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्यामः सप्त वा नृणाम्॥
द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः।
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम्॥
यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे।
पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद॥
तयोः समुच्चयो मासः पितॄणां तदहर्निशम्।
द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि॥
अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः।
संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम्॥

(३।११।६—१२)

इस निरूपणमें मनुष्योंके एक अहोरात्रमें आठ यामोंका, महीनेके दो पक्षोंका, मनुष्योंके एक मासमें पितृगणोंके एक अहोरात्ररूप कालमानका, ऋतुओं-अयनों आदिका सविशेष निरूपण किया गया है। शेष वर्णन पुराणसामान्यके वर्णनोंके सदृश ही है। यह पहले कहा जा चुका है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें इदम्प्रथमतया 'परमाणुकाल' का और द्विपरार्धके समतुल्य 'भगवन्निमेष-काल' का जो निरूपण हुआ है, वह वैज्ञानिक और तार्किक तो है ही अन्य पुराणों तथा ज्योतिष-ग्रन्थोंमें भी उपलब्ध नहीं होता। यही पौराणिक कालगणनामें श्रीमद्भागवतका अपना वैशिष्ट्य है।

व्याकरण और निरुक्तमें ज्योतिषकी अवधारणा

(डॉ० श्रीदिव्यस्वरूपजी ब्रह्मचारी)

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने।
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः॥

(सूर्यसिद्धान्त, मंगलाचरण)

व्याकरणशास्त्र मुख्य रूपसे शब्दसाधुत्वका निरूपण करता हुआ श्रीमद्भागवतोक्त स्फोट ब्रह्मका प्रतिपादक है तथा निरुक्त वैदिक शब्दोंका प्रमुखतया निर्वचन करता है तथापि यह कोई नहीं कह सकता कि इन दोनों शास्त्रोंकी उपयोगिता ज्योतिषशास्त्रमें नहीं है। अपितु व्याकरणकी उपयोगिता समग्र भाषा एवं समग्र शास्त्रार्थके निर्वचनमें आधाररूपसे है। इसलिये भगवान् पतंजलिने महाभाष्यमें कहा **'सर्वशास्त्रपारिषदमिदं व्याकरणम्।'** संस्कृत-जगत्में प्रसिद्ध वचन है **'कणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्'** इत्यादि वाक्योंसे हम कह सकते हैं कि व्याकरण सर्वशास्त्रोंका प्राणभूत शास्त्र है। अतः ज्योतिषशास्त्रका व्याकरण एवं निरुक्त अर्थात् वैदिक व्याकरणके क्षेत्रमें बहुतायत निर्वचन उपलब्ध होता है।

वेदभगवान्के निर्मल उज्ज्वल ज्योतिस्वरूप नयनकी ही ज्योतिषशास्त्र संज्ञा है—**'वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम्'** और व्याकरणशास्त्रको वेदपुरुषका मुख कहा है—**'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'** जैसे मुख तो हो, किंतु नयन न हो तो लोककार्य सरलतासे सम्पन्न नहीं हो सकता और मुख ही न हो तो नेत्रोंकी स्थितिकी कल्पना ही व्यर्थ सिद्ध होती है। व्याकरणके अनुसार **'द्युत दीप्तौ'** (भ्वादिगण) धातुसे **'रिसिन्नादेशच जः'** (वा० २।१११)-से द्युत दीप्तिप्रकारक धातुसे इसिन् प्रत्यय द को ज् तथा अच् आदेशकर ज्योतिष पदकी निष्पत्ति होती है। जिसके नक्षत्र, प्रकाश, दृष्टि आदि अर्थ होते हैं। यह नक्षत्रशब्द उपलक्षण है, जो ज्योतिषशास्त्रकी ओर संकेत करता है; क्योंकि नक्षत्रोंको जान लेनेमात्रसे व्यक्तिकी जिज्ञासाकी समाप्ति नहीं हो जाती। ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र है—

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥

ज्योतिषशास्त्रको छोड़कर अन्यान्य जितने भी शास्त्र हैं, उनमें केवल विवाद ही भरा है। केवल ज्योतिषशास्त्र ही एक ऐसा शास्त्र है, जिसकी प्रत्यक्षताके विषयमें कोई विवाद नहीं। इसकी प्रत्यक्षताके विषयमें भगवान् सूर्य एवं चन्द्रमा साक्षी हैं, जो सर्वदृष्टिगोचर हैं।

निरुक्तमें ज्योतिषका संकेत द्वितीय अध्यायके चतुर्थ पादमें प्राप्त होता है। ज्योतिषशास्त्रके स्तम्भभूत ग्रह भगवान् सूर्य हैं। उनका एक नाम आदित्य भी है। वहाँ निरुक्तकार प्रश्न करते है? '**आदित्यः कस्मादादत्ते भासं ज्योतिषाम्, आदीप्तो भासेति वा।**' '**ज्योतिषाम्**' अर्थात् अन्य ग्रहों-नक्षत्रोंके भास—प्रकाशको यह '**आदत्ते**' ले लेता है। आदित्यके उदय होनेपर चन्द्रादि ग्रह-नक्षत्रोंकी प्रभाका ज्ञान नहीं होता अर्थात् अन्यान्य ग्रह अस्त हो जाते हैं। ग्रहोंके अस्तका तात्पर्य है सूर्यके निकट आनेपर ग्रहोंका दिखायी न देना, उस परिस्थितिमें अस्त होना व्यवहार माना जाता है। अन्यत्र पंचम अध्यायके चतुर्थ पादमें '**वृकः**' पदकी व्याख्या करते समय भी ज्योतिषकी झलक मिलती है। ज्योतिषमें चन्द्रमा जलतत्त्ववाला ग्रह माना जाता है। साथ ही अन्य तारोंकी अपेक्षा अधिक प्रकाशवाला भी है—'**वृकश्चन्द्रमा भवति विवृतज्योतिष्को वा विकृतज्योतिष्को वा विक्रान्तज्योतिष्को वा।**' वृक चन्द्रमाका नाम कहा जाता है। '**विवृतज्योतिष्कः**' का अर्थ अन्य नक्षत्रोंकी तुलनामें अधिक प्रकाशवाला अथवा शीतलप्रकाशयुक्त होना, चन्द्रमा शीतलतत्त्ववाला ग्रह है। निरुक्तमें भी चन्द्रमाको ज्योतिषशास्त्रके अनुसार ही शीतल कहकर चन्द्रमाके जलतत्त्वकी ओर संकेत किया गया है।

ज्योतिषशास्त्रकी अवधारणा शब्दशास्त्रकी उपेक्षा करके नहीं की जा सकती। बृहत्पाराशरहोराशास्त्रमें कहा भी गया है—'**गणितेषु प्रवीणो यः शब्दशास्त्रे कृतश्रमः।**' इसका भाव है कि जो गणितमें दक्ष हो तथा शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरणमें परिश्रमसम्पन्न हो, वही पुरुष—दैवज्ञ फलादेश करनेमें समर्थ होता है। व्याकरणने ज्योतिषशास्त्रकी अवधारणाका वृक्ष पोषित किया है, स्वयं भाष्यकार व्याकरणके प्रयोजन-निरूपणके अवसरपर पस्पशाह्निकमें कहते हैं—'**दशम्यां पुत्रस्य जातस्य नाम विदध्याद् घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमवृद्धं त्रिपुरुषानूकमनरिप्रतिष्ठितम्। तद्धि प्रतिष्ठिततमं भवति।**' '**द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा नाम कृतं कुर्यान्न तद्धितमिति।**' **न चान्तरेण व्याकरणं कृतस्तद्धिता वा शक्या विज्ञातुम्।**' इस प्रकार ज्योतिषज्ञानार्थ व्याकरणका ज्ञान परमावश्यक है।

महर्षि पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें अनेक सूत्रोंके माध्यमसे ज्योतिषशास्त्रकी अवधारणाका संकेत किया है, जैसे—नक्षत्रों, तिथियों, ऋतुओं, मासोंका नाम ग्रहण किया। प्रकृत प्रसंगमें उदाहरणार्थ कतिपय सूत्रोंका दिग्दर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है—'**कालोपसर्जने च तुल्यम्**' (१।२।५७), '**फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे**' (१।२।६०), '**लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके**' (३।३।१६४), '**रेवत्यादिभ्यष्ठक्**' (४।१।१४६), '**नक्षत्रेण युक्तः कालः**' (४।२।३), '**विभाषा फाल्गुनी**……' (४।२।२२) '**श्रावण्या**……**वसन्तादिभ्यष्ठक्**' (४।२।६२) इत्यादि सूत्र ज्योतिषकी अवधारणाको बीजरूपमें निहित करते हैं। वार्तिककार महर्षि कात्यायनने '**उत्पातेन ज्ञापिते च**' इत्यादिके द्वारा ज्योतिषकी अवधारणाको पोषित किया। उदाहरण—**वाताय कपिला विद्युत्** यह कथन स्कन्धत्रयसमन्वित ज्योतिषके संहिताकी ओर संकेत करता है। संहिताके अन्तर्गत अद्भुतोत्पातलक्षण एवं वृष्टिविचार-सम्बन्धी ग्रन्थ आते हैं। '**फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे**' सूत्रकी व्याख्या न्यासमें इस प्रकार उपलब्ध है, '**नक्षत्रग्रहणं ज्योतिष-उपलक्षणार्थम्**', '**उत्पातेन ज्ञापिते**' की बालमनोरमाकार व्याख्या करते हैं—'**अशुभसूचकः आकस्मिकः भूतविकारः उत्पातः।**' विद्युत्के वर्ण किस प्रकारके उत्पातके ज्ञापक होंगे, इस ओर संकेत मिलता है—'**वाताय कपिला विद्युत् आतपायातिलोहिनी। पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥**' '**नक्षत्रेण युक्तः कालः**' सूत्रकी व्याख्यामें पदमंजरीकारने महत्त्वपूर्ण

बातें लिखीं हैं। वे इस रूपमें हैं—'**इह कालं क्रियात्मानं केचिदिच्छन्ति अपरे द्रव्यात्मानमाकाशादिकल्पम्**' परंतु पश्चात् दोनोंका निराकरण कर दिया। मंजरीकारने '**आदित्यग्रहनक्षत्रपरिस्पन्दमथापरे। भिन्नमावृत्तिभेदेन कालं कालविदो विदुः।**' कहकर वैशेषिकोंके मतका उल्लेख करते हुए लिखा है—'**व्यापारव्यतिरेकेण कालमेके प्रचक्षते। नित्यमेकं विभुं द्रव्यं परिणामं क्रियावताम्॥**' इन दोनोंका निराकरण कर दिया। दोनों व्याख्याग्रन्थोंके अनुसार कालका स्वरूप—'**अव्यक्तात्मको विष्णुः। कालरूपो जनार्दनः**', अर्थात् अव्यक्तात्मक विष्णु ही कालस्वरूप हैं। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रप्रतिपादित पदार्थोंके प्रति व्याकरणशास्त्रकी अवधारणा ज्योतिषप्रतिपाद्य पदार्थोंको सिंचन एवं पोषणकर पल्लवित करने की है। निरुक्तकार नक्षत्रके विषयमें कहते हैं—'**ऋक्षाःस्तृभिरिति। नक्षत्राणाम्। नक्षत्राणि नक्षतेर्गति—कर्मणः। नेमानि क्षत्राणि इति च ब्राह्मणम्। ऋक्षा उदीर्णानीव ख्यायन्ते।**' अर्थात्—'**ऋक्षाः स्तृभिरित्येते नक्षत्राणां नामानि। नक्षतेर्गति—कर्मणः गत्यर्थे वर्तमानस्य तानि हि नित्यमेवागच्छन्ति। नेमानि क्षत्राणि धनानि। क्षत्रमिति धन—नाम। किन्तर्हि? धनस्वरूपाण्येतानि। उदीर्णानीव केनचिदूर्ध्वं गमितानीव ख्यायन्ते। दृश्यन्ते इत्यर्थः। स्तृभिः स्तीर्णानीव ख्यायन्ते दृश्यन्ते।**' '**ऋक्षाः**' और '**स्तृभिः**'—ये दोनों नक्षत्रोंके नाम हैं। नक्षत्र शब्द गत्यर्थक नक्ष धातुसे बनता है '**इमानि नक्षाणि**'—ये नक्षत्र कहलाते हैं; क्योंकि '**न क्षत्राणि**' क्षत्र माने प्रकाशित हैं, अतः इन्हें नक्षत्र कहते हैं। '**ऋक्षा उदीर्णानीव ख्यायन्ते**'—जिस हेतु '**उदीर्णानीव उर्ध्वं गमितानिव**'—किसीसे ऊपरको ले जाये गये-से '**ख्यायन्ते**'—दिखते हैं, इस कारणसे ऋक्ष कहलाते हैं। '**स्तृभिः स्तीर्णानीव ख्यायन्ते**' जिस कारणसे नक्षत्र आकाशमें बिछाये हुए-से दिखते हैं, अतः इन्हें '**स्तृभिः**' कहते हैं।

ग्रहोंमें चन्द्रमाका अपना एक विशिष्ट स्थान है, जिसकी स्थितिके अनुसार जातककी मनःस्थितिका ज्ञान होता है, चन्द्रमाके विषयमें महर्षि यास्कजी कहते हैं—'**चन्द्रमाश्चायन् द्रमति, चन्द्रो माता, चान्द्रं मानमस्येति वा। चन्द्रश्चन्दतेः, कान्तिकर्मणः चन्दनमित्यप्यस्य भवति। चारु द्रमति, चिरं द्रमति, चमेर्वा पूर्वरूपम्। चारु रुचेर्विपरीतस्य।**' अर्थात् '**चन्द्रमाः कस्मात्? उच्यते उपरिस्थितिः सर्वभूतानि चायन्—द्रमति—गच्छति इति चन्द्रमाः। अथ चायं सर्वस्य चन्द्रः—आह्लादकः माता—निर्माता च यतः ततः चन्द्रः चान्द्रं मानमस्येति वा चन्द्रमाः। चन्द्रः पुनः कान्त्यर्थात् चन्दतेः एष सदैव कान्तः।**' अथवा '**चारु द्रमतीति चन्द्रमाः चिरं द्रमतीति वा चम्यमानः—निपीयमानो देवैः द्रमतीति वा।**' चन्द्रमाको चन्द्रमा क्यों कहा जाता है? इसपर महामुनि यास्क कहते हैं—यह चन्द्रमा सब भूतोंको देखता हुआ—'**द्रमति गच्छति याति**' जाता है, गमन करता है। एवंविध निर्वचन करनेपर '**चायृ**' धातु पूर्वपद है तथा '**द्रम**' उत्तरपद है या फिर '**चन्द्रश्च माता च चन्द्रो माता**', चन्द्रमा कान्तिमान् भी है और कालनिर्माता है। ज्ञाता अर्थात् चन्द्रमाकी कलाओंके घटने-बढ़नेके आधारपर प्रतिपादित तिथियोंका ज्ञान होता है; क्योंकि अखण्डकालके ये खण्ड-खण्ड अवयव कल्पित व्यवहारमें हैं अथवा चान्द्रम्, चन्द्रसम्बन्धी मानम् कालनिर्माण—चान्द्रवर्षका निर्माण इस चन्द्रमासे होता है। इस कारण भी चन्द्रमाको चन्द्रमा कहते हैं अर्थात् '**चारु द्रमति गच्छति इति चन्द्रमा**'—यह सुन्दर प्रकाशयुक्त होता हुआ गमन करता है।

कालको संवत्सर भी कहा जाता है '**संवसन्तेऽस्मिन् भूतानि इति संवत्सरो यत्रेमानि सर्वाणि भूतान्यभिसंतिष्ठन्ते स संवत्सरः।**' सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् भूतसमुदाय सम्यक् रूपसे वास करते हैं, इसलिये संवत्सर कहा जाता है। ऋतुओंकी व्याख्यामें कहते हैं—'**ग्रीष्मो नाम ग्रस्यतेऽस्मिन् रसः इति ग्रीष्मः।**' वर्षाका विवरण करते हैं—**वर्षति आसु पर्जन्य इति वर्षा। हेमन्तो हिमवान्, हिमं पुनर्हन्तेर्वा हिनोतेर्वा। हि** धातुका तर्पण अर्थ होता है, यह धान्यादिको पुष्ट करता है—इसलिये हेमन्त कहलाता है। इस प्रकार निरुक्तमें ज्योतिषकी अवधारणा झलकती ही नहीं, अपितु तत्त्वतः भासित हो रही है।

कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें ज्योतिषतत्त्व

(श्रीअरविन्दकुमारजी श्रीवास्तव, एम०ए०, बी०एड०)

मौर्यवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यके राज्यके प्रधान अमात्य विष्णुगुप्तने कौटिल्यके नामसे राज्यव्यवस्था विधिवत् संचालित करनेके लिये अपने ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र'का प्रणयन किया था, जिसमें उन्होंने राज्य-व्यवस्थाके संचालनकी आवश्यकताके लिये स्थान-स्थानपर ज्योतिषके अनुसार कार्य करनेकी सलाह दी है।

कौटिल्यके अर्थशास्त्रके दूसरे अधिकरणके २१वें प्रकरणमें अध्याय तीनमें वास्तुशास्त्रके अनुसार दुर्ग बनानेका परामर्श दिया है कि दीवार बारह, चौदह, सोलह, अठारह हाथ आदि सम संख्याओंमें ऊँची रखनी चाहिये। यदि दीवार विषम संख्याओंमें हो तो पन्द्रह या सत्रह हाथकी संख्याओंके बराबर होनी चाहिये।

कौटिल्य अर्थशास्त्र (अधिकरण २, प्रकरण २२, अध्याय ४)-में बताया गया है कि जिस भूमिको दुर्ग-निर्माणके लिये चुना जाय, उसमें पूरबसे पश्चिमकी ओर और उत्तरसे दक्षिणकी ओर जानेवाले तीन-तीन राजमार्ग हों। इन छः राजमार्गोंमें दुर्ग-निर्माण या गृह-निर्माणकी भूमिका विभाग करना चाहिये। गृहभूमिके बीचसे उत्तरकी ओर नवें हिस्सेमें अन्तःपुरका निर्माण करना चाहिये। जिसका द्वार पूरब या उत्तरकी ओर हो। अन्तःपुरके पूर्वोत्तर भागमें आचार्य और पुरोहितके भवन, यज्ञशाला आदि बनवाये जायँ। अन्तःपुरके पूर्व-दक्षिणभागमें महानस (रसोईघर) तथा भाण्डागार होने चाहिये। दक्षिण-पश्चिम दिशामें शस्त्रागार तथा सोने-चाँदीके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको रखनेका स्थान होना चाहिये। पश्चिम-उत्तरमें रथ-पालकी आदि वाहनोंको रखनेके स्थान होने चाहिये। उत्तर-पूर्वमें कोषगृह और गाय-बैल तथा घोड़ोंका स्थान होना चाहिये। उससे आगे उत्तर दिशाकी ओर नगरदेवता, कुलदेवताका स्थान होना चाहिये।

दुर्गा, विष्णु, जयन्त, इन्द्र, शिव, वरुण, अश्विनी-कुमार और लक्ष्मी—इन देवी-देवताओंकी स्थापना नगर या गृहके मध्यमें करनी चाहिये। प्रत्येक दिशाके मुख्य द्वारपर उसके अधिष्ठाता देवताकी स्थापना की जाय, जिसमें उत्तरका देवता ब्रह्मा, पूर्वका इन्द्र, दक्षिणका यम और पश्चिमका सेनापति (कुमार कार्तिकेय) होता है। यथास्थान देवताओंकी भी स्थापना की जाय। नगरके उत्तर या पूरबमें श्मशान होना चाहिये।

आचार्य कौटिल्यने अर्थशास्त्र (अधिकरण २, प्रकरण २४, अध्याय ६)-में राजकीय कार्योंमें प्रयुक्त होनेवाले काल-विभाजनका भी उल्लेख किया है और बताया है कि राजाके राज्याभिषेकके बाद उसके प्रत्येक कार्यमें 'व्युष्ट' नामसे कहे जानेवाले वर्ष, मास, पक्ष और दिन इन चार बातोंका उल्लेख होना चाहिये। राज-वर्षके तीन विभाग हैं—वर्षा, हेमन्त और ग्रीष्म। इन तीनों विभागोंमें आठ-आठ पक्ष होते हैं, प्रत्येक पक्ष पन्द्रह दिनका होता है, प्रत्येक ऋतुके तीसरे तथा सातवें पक्षमें एक-एक दिन कम माना जाय, शेष छहों पक्ष पन्द्रह-पन्द्रह दिनके माने जायँ। इसके अतिरिक्त एक अधिमास (मलमास) भी माना जाय। यही काल-विभाजन राजकीय कार्योंमें प्रयुक्त किया जाना चाहिये।

कौटिल्यने अर्थशास्त्र (अधिकरण २, प्रकरण २५, अध्याय ७)-में कर्मचारियोंके वेतन देनेमें ज्योतिषसम्बन्धी आधार लिया है। उनके अनुसार तीन सौ चौवन दिन-रातका एक कर्मसंवत्सर होता है। उसकी समाप्ति आषाढ़ी पूर्णिमाको समझनी चाहिये। इसी वर्ष-गणनाके हिसाबसे प्रत्येक अध्यक्षका वेतन दिया जाना चाहिये। यदि अध्यक्षकी नियुक्ति वर्षके मध्यमें हुई है तो उसको कम वेतन और यदि उसने पूरे वर्ष कार्य किया है तो उसे पूरा वेतन दिया जाना चाहिये।

कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्र (अधिकरण २, प्रकरण ३८, अध्याय २०)-में देश और कालका मान भी बताया है, जिसमें तुट (त्रुटि), लव, निमेष, काष्ठा, कला, नाडिका, मुहूर्त, पूर्वाह्न, अपराह्न, दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युग आदि सत्रह विभाग बताये हैं।

तुट (त्रुटि)	=	निमेषका चौथा भाग
२ तुट (त्रुटि)	=	१ लव
२ लव	=	१ निमेष (पलक झपकनेतकका समय)
५ निमेष	=	१ काष्ठा
३० काष्ठा	=	१ कला
४० कला	=	१ नाडिका

अथवा एक घड़ेमें चार सुवर्णमाषकके बराबर चौड़ा और चार अंगुल लम्बा छेद बनाकर इतने ही परिमाणकी एक नली घड़ेमें लगा दी जाय, उस घड़ेमें एक आढ़क जल भर दिया जाय, वह जल उस नलीके द्वारा जितने समयमें बाहर निकले, उतने समयको नाडिका कहते हैं—

२ नाडिका	=	१ मुहूर्त
१५ मुहूर्त	=	१ दिन या रात

इस मान अर्थात् १५ मुहूर्तके दिन तथा १५ मुहूर्तकी रात केवल चैत्र तथा आश्विनमासमें होते हैं। इसके बाद छः मासतक दिन बढ़ता है और रात्रि घटती है, दूसरे छः महीनेतक रात्रि बढ़ती है और दिन घटता रहता है।

जब धूपघड़ीके शंकुकी छाया ९६ अंगुल लम्बी हो तो दिनका अठारहवाँ भाग समाप्त हुआ समझना चाहिये। ७२ अंगुल छाया रहनेपर दिनका चौदहवाँ भाग, ४८ अंगुल लम्बी रहनेपर आठवाँ हिस्सा, २४ अंगुल लम्बी रहनेपर छठा भाग, १२ अंगुल लम्बी रहनेपर चौथा भाग, ८ अंगुल लम्बी रहनेपर दिनके १० भागोंमें तीन भाग, चार अंगुल लम्बी रह जानेपर आठ भागोंमें तीन भाग समाप्त हुआ और जब छाया बिलकुल न रहे तो मध्याह्न समझना चाहिये।

मध्याह्न (बारह बजे)-के बाद उक्त छायामानके अनुसार उलटे क्रमसे दिनका शेष भाग समझना चाहिये।

आषाढ़के महीनेके अन्तमें दोपहर (मध्याह्न)-में छाया नहीं दिखायी देती। श्रावणसे पौषमासतक मध्याह्नमें दो-दो अंगुल छाया क्रमसे बढ़ती रहती है और फिर माघसे आषाढ़तक दो अंगुल कम होती जाती है।

पन्द्रह-पन्द्रह दिन-रातका एक पक्ष होता है। जिस पक्षमें चन्द्रमा बढ़ता रहता है, उसे शुक्लपक्ष और जिस पक्षमें चन्द्रमा घटता है, उसे कृष्णपक्ष कहते हैं।

दो पक्षका एक महीना होता है। दो मासकी एक ऋतु होती है। श्रावण-भादोंमें वर्षा-ऋतु होती है। आश्विन-कार्तिकमें शरद्-ऋतु होती है। मार्गशीर्ष-पौषमें हेमन्त-ऋतु रहती है। माघ-फाल्गुनमें शिशिर-ऋतु होती है। चैत्र-वैशाखमें वसन्त-ऋतु होती है और ज्येष्ठ-आषाढ़में ग्रीष्म-ऋतु होती है।

शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म उत्तरायण और वर्षा, शरद् तथा हेमन्त दक्षिणायन कहलाते हैं।

उत्तरायण और दक्षिणायन दोनोंका एक संवत्सर होता है। पाँच संवत्सरोंका एक युग होता है।

सूर्य प्रतिदिन दिनका साठवाँ भाग हरता रहता है, इस प्रकार साठ अहोरात्रमें वह एक दिनका उत्पादन करता है, इस क्रमसे वह एक वर्षमें ६ दिन, दो वर्षमें बारह दिन और ढाई वर्षमें पन्द्रह दिन अधिक बढ़ा देता है। इसी प्रकार चन्द्रमा भी प्रत्येक ऋतुमें एक-एक दिन कम करता जाता है, जिससे ढाई वर्षमें पन्द्रह दिन कम हो जाते हैं। इस दृष्टिसे सूर्य और चन्द्रमाकी गतिके अनुसार एक महीनेकी कमी हो जाती है। इस गणनाके अनुपातसे प्रति ढाई वर्ष बाद ग्रीष्म-ऋतुमें प्रथम मलमास और प्रति पाँच वर्षके पश्चात् हेमन्त-ऋतुमें दूसरा मलमास सूर्य तथा चन्द्रमा बनाते हैं। यही मलमास अधिमास कहलाता है, जो ढाई वर्षमें एक महीनेके अन्तरको पूरा कर देता है।

कौटिल्यने अर्थशास्त्र (अधिकरण २, प्रकरण ४१, अध्याय २४)-में विभिन्न राशियोंमें होनेवाली वर्षासे फसलके लाभोंका भी उल्लेख किया है। वर्षाके अनुपातसे यदि श्रावण-कार्तिकमें कुल वर्षाका तृतीयांश और भाद्रपद-आश्विनमें कुल वर्षाका आधा पानी बरसे तो वह वर्ष फसलके लिये लाभदायक समझना चाहिये।

जब बृहस्पति मेषराशिसे वृषराशिपर संक्रमण करे, जब मार्गशीर्षमें कोहरा, वर्षा, बादल आदि देखे जायँ, जब

शुक्र ग्रहकी उदयास्त एवं संचार गति आषाढ़की पंचमी आदि नौ तिथियोंमें संचारित हो और जब सूर्यके चारों ओर मण्डल दिखायी दे तो ये सभी अच्छी वर्षाके लक्षण हैं।

यदि सूर्यके चारों ओर मण्डल पड़ा हो तो अनाजके अच्छे दानेका अनुमान करना चाहिये। यदि शुक्रकी उदयास्त गति कारण हो तो अच्छी वृष्टिका अनुमान करना चाहिये।

कौटिल्यने अर्थशास्त्र (अधिकरण ९, प्रकरण १३५, अध्याय १)-में कालके तीन विभाग बताये हैं, सर्दी, गर्मी और वर्षा। कालका यह प्रत्येक भाग रात, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर तथा युग आदि विशेषताओंमें विभक्त है। समयके इन विशेष भागोंमें अपनी शक्तिको बढ़ानेयोग्य कार्य करने चाहिये। आचार्य कौटिल्यके अनुसार शक्ति, देश, कालमें तीनों ही प्रबल और एक-दूसरेके साधक हैं—**परस्परसाधका हि शक्तिदेशकालाः।**

ज्योतिषमें पराशरोक्त सृष्टिक्रम और अवतारवाद

(श्रीकान्तमणिजी त्रिपाठी)

पराशरोक्त सृष्टिक्रम सांख्योक्त सृष्टिक्रमसे प्रभावित अवश्य है, किंतु भगवान् पराशरका सृष्टिक्रम पौराणिक सृष्टिक्रमपर विशेषतः आश्रित है। पुराणमें विष्णुको प्रकृति-पुरुष दोनोंका कारण माना गया है। विष्णुपुराणके अनुसार विष्णुके उपाधिरहित परम स्वरूपसे प्रधान और पुरुष दो रूप होते हैं। उसके अनुसार भगवान् विष्णुको ही कालशक्तिके द्वारा विश्वकी सृष्टि एवं प्रलयके समय भी एकमात्र निर्विकार परेश स्वीकार किया गया है। उन्हींके निर्देशानुसार ब्रह्माजी उन्हींके नाभिकमलपर स्थित रहकर सृष्टिकारक होते हैं। विष्णुपुराणने ब्रह्माजीको भगवान् विष्णुका रूपान्तर माना है।

शिवपुराणानुसार शिवकी ही प्रेरणासे यह समस्त कार्य होता है। सृष्टिकार्यमें रुद्रका भी सहयोग आवश्यक ही नहीं प्रत्युत अनिवार्य है, यह मत श्रीमद्भागवतपुराण एवं मार्कण्डेयपुराणने भी स्वीकार किया है। ज्योतिषशास्त्रके मूर्धन्य मनीषी श्रीपराशरजीने 'बृहत्पाराशरहोराशास्त्र' नामक ग्रन्थमें व्यक्ताव्यक्तात्मक विष्णुको वासुदेवके नामसे प्रतिपादित किया है। उनकी ही तीनों मूर्तियाँ संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध तामस, राजस एवं सात्त्विक शक्तियोंके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। श्रीपराशरजीने ग्रन्थके आरम्भमें ही सृष्टिक्रमका वर्णन किया है, जो प्रायः पुराणोंके सृष्टिक्रमके अनुसार ही है। पुराणोंमें नवविध सर्ग प्रतिपादित है तथा श्रीपराशरजीने भी देव, भूतादिक कतिपय सर्गोंको स्वीकार किया है। पुराणोंके अनुसार ही उन्होंने श्रीशक्तिसमन्वित विष्णुको जगत्पालक, भूशक्तियुक्त ब्रह्माको जगत्स्रष्टा तथा नीलशक्तिसमन्वित रुद्रको जगत्का संहारकर्ता माना है—

श्रीशक्त्या सहितो विष्णुः सदा पाति जगत्त्रयम्।
भूशक्त्या सृजते विष्णुर्नीलशक्त्या युतोऽत्ति हि॥

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र पूर्व० १।१९)

अवतारवादकी पूर्वपीठिकामें श्रीपराशरजी मैत्रेयजीसे कहते हैं—हे ब्रह्मन्! सभी जीवोंमें परमात्मा स्थित है और यह समस्त जगत् परमात्मामें स्थित है। सभी जीवोंमें दो अंश होते हैं; किसीमें जीवांश अधिक होता है तथा किसीमें परमात्मांश। सूर्यादि ग्रह, ब्रह्मा, शिव आदि देवता तथा अन्य अवतारोंमें परमात्मांश अधिक होता है। इनकी जो शक्तियाँ (लक्ष्मी आदि) हैं, उनमें भी परमात्मांश अधिक होता है; अन्य देवता और उनकी शक्तियोंमें जीवांश अधिक होता है।

इसपर श्रीमैत्रेयने कहा—मुनीश्वर पराशरजी! राम, कृष्ण आदि जो विष्णुके अवतार हैं, क्या वे भी जीवांशसे युक्त हैं? यह मुझे समझाकर कहें।

इसपर पराशरजी बोले—

रामः कृष्णश्च भो विप्र नृसिंहः सूकरस्तथा।
एते पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः॥

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र पूर्व० १।२५)

हे विप्र! राम, कृष्ण, नृसिंह तथा सूकर—ये चार अवतार पूर्णतः परमात्माके अंश हैं अर्थात् पूर्णावतार हैं,

अन्य अवतार जीवांशसमन्वित हैं।

अजन्मा परमात्माके अनेक अवतार हैं। ग्रहरूपी जनार्दन (अवतार) जीवोंको उनके कर्मानुसार शुभाशुभ फल देनेवाले हैं। दैत्योंके बलनाश, देवताओंकी बल-बुद्धिकी वृद्धि एवं धर्मसंस्थापनके लिये ही ग्रहोंसे ये कल्याणकर अवतार हुए हैं—

अवताराण्यनेकानि ह्यजस्य परमात्मनः।
जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः॥
दैत्यानां बलनाशाय देवानां बलवृद्धये।
धर्मसंस्थापनार्थाय ग्रहा जाताः शुभाः क्रमात्॥

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र पूर्व० १। २६-२७)

अवतार इस प्रकार हैं—१-रामावतार सूर्यसे, २-कृष्णावतार चन्द्रसे, ३-नृसिंहावतार भूमिपुत्र मंगलसे, ४-बुद्ध-अवतार बुधसे, ५-वामनावतार बृहस्पतिसे, ६-परशुरामावतार शुक्र (भार्गव)-से, ७-कूर्मावतार शनिसे, ८-सूकरावतार सिंहिकापुत्र राहुसे एवं ९-मत्स्यावतार केतुसे हुआ है। अन्य जो अवतार हैं, वे भी ग्रहोंसे ही हैं। जिन अवतारोंमें परमात्मांश अधिक हैं, वे सभी खेचर (आकाशचारी देव) कहलाते हैं—

रामोऽवतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः।
नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बुद्धः सोमसुतस्य च॥
वामनो विबुधेज्यस्य भार्गवो भार्गवस्य च।
कूर्मो भास्करपुत्रस्य सैंहिकेयस्य सूकरः॥
केतोर्मीनावतारश्च ये चान्ये तेऽपि खेटजाः।
परमात्मांशमधिकं येषु ते च वै खेचराभिधाः॥

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र पूर्व० १। २८—३०)

जिनमें जीवांशकी अधिकता है, वे जीव कहलाते हैं। सूर्यादि ग्रहोंसे परमात्मांश निकलकर राम-कृष्ण आदिके रूपमें अवतार ग्रहण करते हैं और राम-कृष्ण आदिके रूपमें अवतीर्ण वे (परमात्मांश) अपना अवतरण-कार्य सम्पन्नकर उन्हीं सूर्यादि ग्रहोंमें पुनः विलीन हो जाते हैं। इसी भाँति उन्हीं सूर्यादि ग्रहोंसे निर्गत जीवांश मनुष्यादि प्राणी होते हैं। वे भी अपना कार्यकाल समाप्तकर उन्हीं ग्रहोंमें विलीन हो जाते हैं। वे सूर्यादि नवग्रह प्रलयके समय अव्यक्त परमात्मामें समा जाते हैं—

जीवांशमधिकं येषु जीवास्ते वै प्रकीर्तिताः।
सूर्यादिभ्यो ग्रहेभ्यश्च परमात्मांशनिःसृता॥
रामकृष्णादयः सर्वे ह्यवतारा भवन्ति वै।
तत्रैव ते विलीयन्ते पुनः कार्योत्तरे सदा॥
जीवांशनिःसृतास्तेषां तेभ्यो जाता नरादयः।
तेऽपि तथैव लीयन्ते तेऽव्यक्ते समयन्ति हि॥

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र पूर्व० १। ३१—३३)

राजस्थानी साहित्यमें ज्योतिषके दोहे

(पं० श्रीप्रह्लादरायजी व्यास 'साहित्य-सुधाकर', ज्योतिषाचार्य)

भारतकी 'आत्मा' राजस्थानकी स्वयंकी संस्कृति है, साहित्य है और इतिहास है। राजस्थान प्राचीनकालसे लेकर अर्वाचीनकालतक भारतके इतिहासको हर क्षेत्रमें एक नया अध्याय देता आ रहा है। भारतका इतिहास राजस्थानी वीरों एवं वीरांगनाओंकी स्वर्णिम गाथाओंसे सुशोभित है। हिन्दी-साहित्यका इतिहास इस बातका साक्षी है कि वीरगाथाकालसे आधुनिक कालतक महाकवि चन्दबरदाई, महाकवयित्री भक्तिमती मीराबाईसे लेकर आधुनिककालके कविराज मेघराज-मुकुल, परमेश्वर द्विरेफ, नरेन्द्र, मानावत, कृष्णकुमार 'सौरभ भारती', रामनाथ कमलाकर, ज्ञान भारिल्ल आदिने हिन्दी-साहित्यमें भी अपना अपूर्व योगदान दिया है।

राजस्थानी कवियोंने जहाँ ज्ञान, भक्ति और वीरताके गीत, भजन, दोहे, सोरठों और पद्योंकी रचना की, वहीं ज्योतिष-विज्ञानमें भी उनका अपूर्व योगदान है। ज्योतिष-विज्ञानके क्षेत्रमें राजस्थानको दूसरी काशी और उज्जैन माना गया है तथा आज भी देश-विदेशसे सहस्रों लोग राजस्थानकी राजधानी गुलाबीनगरी भारतीय पेरिस 'जयपुर'

में ज्योतिषकी वेधशालाका निरीक्षण करने आते हैं और आश्चर्यान्वित होकर जाते हैं।

ज्योतिष दैवज्ञविद्या और भगवती जगज्जननी-जगदम्बाका स्वरूप है। श्रीदेव्यथर्वशीर्षमें भगवती जगदम्बाके लिये '**ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादि-कालरूपिणी**' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ज्योतिष एक विज्ञान है। ज्योतिष कहते हैं—प्रकाशको, रोशनीको, उजालेको, नेत्रदृष्टिको। ज्योतिष वह विज्ञान है, जो भविष्यका ज्ञान देता है और मानवको उसके जन्मकालीन ग्रहस्थितिसे उसकी अच्छाइयों और बुराइयोंका भान करा देता है और उसे यह समझाता है कि जब समय ठीक नहीं चल रहा हो तो सोच-समझकर गम्भीर चिन्तनकर अपनी योजनाओंको क्रियान्वित करना चाहिये। उदाहरणार्थ किसी व्यक्तिके जन्मकालमें मंगल ग्रहकी स्थिति अच्छी नहीं होती तो वह झगड़ालू प्रवृत्तिका होता है या किसी व्यक्तिका चन्द्रमा वृश्चिक राशिमें होता है तो वह नीच-प्रवृत्ति अथवा दुर्भाग्यशाली जीव होता है। ऐसे व्यक्तिको ज्योतिष यह समझाता है कि किसीसे लड़ो मत, प्रवाल रत्न (मूँगा) ताँबे या सोनेमें धारण कर लो या मोतीकी अँगूठी चाँदीमें पहन लो तो जीवन अभिशाप बननेसे बच जायगा और आपका भाग्य-सितारा पूर्ण इन्दुसम मुसकरायेगा तथा आप उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर अपनी विजयपताका जीवन-संग्राममें फहराते दृष्टिगोचर होंगे। इस कथनकी पुष्टि इस राजस्थानी लोककथासे होती है—

एक बार एक युवक एक ज्योतिषीके पास गया और उसने पूछा कि मेरा अभी कैसा समय चल रहा है? ज्योतिषीने पंचांग देखकर उसे बताया कि तीन दिनका समय कलसे तुम्हारे लिये बहुत ही श्रेष्ठ एवं विलक्षण भाग्योदयकारक है। तुम मिट्टी हाथमें लोगे तो वह सोना हो जायगी। बातकी परीक्षा करने वह युवक दूसरे दिन राजदरबारमें गया। राजा अपने दरबारियोंके साथ राजकाजमें व्यस्त था। वह युवक अपने जूतोंकी खट-खट आवाज करता हुआ राजाके पास पहुँचा और उसने राजाको एक थप्पड़ लगा दिया, जिससे राजाका मुकुट धरतीपर गिर गया। सारे दरबारी आश्चर्यसे देखते रहे कि क्या माजरा है? मनुष्यका समय जब ठीक होता है तो खोटे-खरे काम भी उसके लिये लाभकारी हो जाते हैं। अतः राजाके मुकुटसे एक बिच्छू निकल पड़ा। राजाने समझा कि इसने तो मेरी रक्षा की है, अतः परम प्रसन्न हो उसे पर्याप्त पुरस्कार प्रदान किया और शाबाशीयुक्त धन्यवाद भी दिया। दूसरे दिन वह युवक फिर राजदरबारमें गया और उसने राजाको हाथ पकड़कर सिंहासनसे नीचे उतार दिया। सारे सिपाही और दरबारी उसे पकड़ने दौड़े कि राजाको एकाएक अपने सिंहासनपर काला भुजंग दिखायी दिया तो उसने सोचा कि इस बेचारेने तो मेरी जान बचायी है। अतः उसे और इनाम दिया। तीसरे दिन वह युवक फिर राजदरबारमें गया और उसने राजाको पकड़कर उसकी कमरमें एक लात मारी। राजाकी कमरमें बहुत वर्षोंसे दर्द रहता था, जिसका उसने बहुत इलाज कराया था, किंतु किसी भी वैद्य एवं किसी भी औषधिसे उसका उपचार नहीं हुआ था, किंतु उस युवककी लात लगते ही राजाका पुराना रोग भाग गया। अतः राजा बहुत ही राजी हुआ और उस तरुणको उसने मालामाल कर दिया।

सन्ध्या-समय वह युवक उस ज्योतिषीके पास पुनः गया और पूछा कि आपके बताये तीन दिन तो आज बीत गये। अब मेरा समय कैसा है? ज्योतिषीने पुनः पंचांग देखकर उसे बताया कि 'अब तीन दिन तुम्हारे लिये बहुत घातक हैं। तुम्हारा काल तुम्हारे सिरपर मँडरा रहा है। अतः मरते वक्त मुझे बुला लेना।'

प्रकृतिका कुछ ऐसा खेल हुआ कि राजकुमारीका चन्द्रहार चील उठाकर ले गयी और उसने उसे उस युवकके मकानके छज्जेपर पटक दिया। हारका चोर खोजते हुए कुछ सिपाही उधरसे निकले और उन्होंने छज्जेपर पड़ा हार देख लिया और उस तरुणको पकड़कर राजाके समक्ष प्रस्तुत कर दिया। राजा पहले तो उससे परम प्रसन्न था, किंतु वक्त-वक्तकी बात है। वक्तके

फेरसे राजा उस युवकपर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसे फाँसीकी सजा देनेका हुकुम दे दिया और कहा कि इसे तीन दिनतक कठोर दण्ड दिया जाय और तीसरे दिन सन्ध्यासमय फाँसी दे दी जाय।

तीसरे दिन जब उस तरुणको फाँसी दी जाने लगी तो राजाने उससे पूछा कि तुम्हारी अन्तिम इच्छा क्या है? तब उस युवकने राजासे निवेदन किया कि मैं अपने गुरुजीके दर्शन करना चाहता हूँ। अत: उन्हें बुला दिया जाय और उसने उस ज्योतिषीका पता बता दिया। सिपाही लोग तत्काल उस ज्योतिषीको बुलाकर लाये। ज्योतिषीने उस युवकके कानमें जाकर धीरेसे कहा कि ढाई घड़ी तेरा समय और खराब है। अत: तुम शौच जानेका बहाना करके शौचालयमें बैठकर यह समय गुजार दो। उस युवकने ज्योतिषीके परामर्शानुसार शौचालय जानेका राजासे निवेदन किया। राजाने अनुमति दे दी और वह शौचालयसे बाहर ही नहीं निकला। सिपाही लोग उस तरुणके छज्जेसे वह हार उठाकर लाना भूल गये थे और इसी बीच चील उस हारको उठाकर राजकुमारीके महलकी छतपर पटक गयी। सन्ध्यावक्त संयोगवश राजकुमारी अपने महलकी छतपर चली गयी और उसे अपना हार वहाँ पड़ा मिल गया, वह दौड़ी-दौड़ी अपने पिताके पास पहुँची और बोली कि वह तरुण निर्दोष है, उसे क्यों फाँसी दी जा रही है? राजाने उस युवकको शौचालयसे बाहर आते ही छोड़ दिया और उससे क्षमा-याचना की तथा योग्य तरुण समझकर राजकुमारीसे उसका विवाह कर दिया।

इस कथासे स्वत: प्रमाणित है कि ज्योतिषमें 'काल' की प्रधानता है। अत: ज्योतिषमें भगवान्‌को 'काल' माना गया है और 'कालपुरुष' के रूपमें भगवान्‌की प्रतिष्ठा की गयी है। कालपुरुषका वर्णन करते हुए गीता (१०।३३)-में भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको समझाया है कि मैं अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल हूँ—'**अहमेवाक्षयः कालः**।' उसी अध्यायमें अपने स्वरूपका वर्णन करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं—मैं ज्योतियोंमें किरणोंवाला सूर्य हूँ, नक्षत्रोंका अधिपति चन्द्रमा हूँ—'**आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्। ····नक्षत्राणामहं शशी**', मैं अक्षरोंमें ओंकार हूँ, अक्षय काल भी मैं ही हूँ। महीनोंमें मार्गशीर्ष हूँ और ऋतुओंमें वसन्त हूँ, गणना करनेवालोंमें समय हूँ (**कालः कलयतामहम्**)। ज्योतिषमें नवग्रह हैं—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु। आजकल हर्षल, नेपच्यून एवं प्लूटो कुल बारह ग्रह आधुनिक ज्योतिषी मानते हैं। सूर्य आत्मा और ब्रह्म है, इसीलिये सूर्यको जगत्‌की आत्मा कहा जाता है—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**।' मानवशरीरमें भी आत्मा सूर्य माना गया है। सूर्य एक राशिमें एक माह रहता है। इस प्रकार बारह महीनोंमें बारह राशियोंपर भ्रमण करता है। योगशास्त्रमें वक्ष:स्थलके भीतरी भागको हृत्-चक्र कहते हैं एवं इसे द्वादश कमल भी कहते हैं। योगीजन एवं मन्त्रद्रष्टा विद्वान् पुरुष व्यक्तिके सूर्यकी स्थितिका अध्ययन करके मन्त्र-दीक्षा देते हैं। चन्द्रमा माता दुर्गा एवं मनका प्रतीक है। अत: चन्द्रकी स्थिति भी देखी जाती है और चन्द्रकुण्डली विशेषतया बनायी जाती है। मंगल वीरता और रक्तका प्रतीक हनुमत्स्वरूप है। बुध गणपतिस्वरूप बुद्धि एवं व्यापारका हेतु है। गुरु ग्रह भगवान् विष्णुका स्वरूप ज्ञानका अधिष्ठाता माना गया है। शुक्रको सरस्वतीका स्वरूप एवं कामकला, संगीत, काव्य और शृंगारका हेतु मानते हैं। शास्त्रोंमें इसे शिवपुत्र स्वामी कार्तिकेय (षडानन)-का रूप भी माना है। शनि भगवान् शंकरका स्वरूप एवं वित्तदाता तथा शरीरमें लौहतत्त्वका कारक माना गया है, इसलिये शनिके मारकेशकी अवधिमें शान्तिहेतु मृत्युंजयमन्त्र (**ॐ जूं सः**)-का जप-अनुष्ठान आदि किया जाता है। राहु-केतु छायाग्रह हैं।

जैसे संस्कृतके कवियोंने नवग्रहोंके शान्तिपाठके स्तोत्र आदि संस्कृतमें लिखे हैं, उसी प्रकार राजस्थानी कवियोंने भी राजस्थानीमें नवग्रह-शान्तिके दोहे लिखे हैं। कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं—

सूरज चन्दा भौम बुद्ध गुरु शुक्र शनि देव।
सब ही जन किरपा करो नित उठ करता सेव॥
राहू-केतु किरपा करो धरूँ आपरो ध्यान।
भैरू चौंसठ योगिनी पीर वीर हनुमान॥
जती सती और सूरमा अरु बस्ती का देव।
मनसा पूरण कीजिये रती न आवे खेव॥

राजस्थानी कवियोंने ज्योतिषके विद्यार्थियोंको पढ़ानेहेतु ज्योतिषमें संस्कृतके कठिन-से-कठिन योगोंको सरलसे सरलतम कर दिया है। जैसे बच्चोंको अ, आ, इ, ई पढ़ाते हैं, वैसे ही ज्योतिषकी अ, आ, इ, ईसे लेकर पूरा ज्योतिष-विज्ञान राजस्थानी दोहोंमें भरा है। तिथियोंके स्वरूपका उदाहरण द्रष्टव्य है—

एक छठि एकादशी या नन्दा तिथि जाण।
दोयज सातें द्वादशी भद्रा लीजै मान॥
तीज अष्टमी त्रयोदशी जया तिथि है तीन।
चौदस नौमी चतुर्थी रिक्ता तिथि प्रवीन॥
दसवीं पून्यूं पंचमी मावस पूरण होय।
'मोति' सोधि विचार कर कारज करियो कोय॥

अर्थात् यदि एकम, छठ और एकादशी—नन्दा तिथि रविवार या मंगलवारके दिन हो, दूज (द्वितीया), सातम (सप्तमी) और बारस (द्वादशी)—भद्रा तिथि बुधवार या शुक्रवारको हो, तीज (तृतीया), अष्टमी और तेरस (त्रयोदशी)—जया तिथि बुधवारको तथा चंगी (चतुर्थी), नवमी और चौदस (चतुर्दशी)—रिक्ता तिथि गुरुवारको हो एवं पंचमी, दशमी और पूर्णिमा—पूर्णातिथि शनिवारको हो तो मृत्युयोग होता है। अतः इन तिथियों और वारोंमें सोच-विचारकर कार्य करना चाहिये।

बहुत-से लोग किसी भी शुभ कार्यका श्रीगणेश करनेहेतु पण्डितके पास शुभ मुहूर्त पूछने जाया करते हैं, किंतु राजस्थानी कविने एक ही दोहेमें सारे अच्छे मुहूर्त बता दिये हैं—

पूनम की पड़वा भली अर अमावस की बीज।
अण बूझ्या मुहरत भला कै तैरस कै तीज॥

अर्थात् पूर्णिमाके बाद आनेवाली पड़वा (प्रथम), तेरस (त्रयोदशी) और तीज (तृतीया) तथा अमावास्याके पश्चात् शुक्लपक्षकी द्वितीया—ये दिन अनपूछे मुहूर्त होते हैं और इन दिनोंमें जो भी कार्य शुरू किया जाता है, उसमें सफलता मिलती है।

कभी कहीं यात्रामें जाते हैं तो ज्योतिषीसे दिशाशूल पूछते हैं। एक राजस्थानी कविने इसपर एक दोहा लिखा है—

पूरब सोम शनैश्चर वासो, दक्षिण गुरु एकलो निवासो।
भौम और बुध उत्तर जानो, शुक्र रवि पश्चिम ठानो॥

यात्रामें रवाना होते वक्त यदि दाहिनी तरफ कोचरी बोलती मिल जाय और बायें हाथकी तरफ तीतर बोलता मिल जाय या नीलकण्ठ पक्षी मिल जाय तो जिस कार्यसे यात्रा की जा रही है, वह अवश्य सिद्ध होता है, इसमें मीन-मेख नहीं है अर्थात् किंचित् भी संशय नहीं है। यात्रापर रवाना होते वक्तके अपशकुनोंसे सम्बन्धित राजस्थानी दोहे द्रष्टव्य हैं—

भैंसा खर लड़ता मग माही।
स्वान बिलाई द्वन्द मचाई।
विधवा नारी उवासी लैवै।
कुत्तो कान फड़फड़ी देवैं॥
रोगी रीछ सवार सदा ही।
दायें बायें हैं दुखदायी॥
इकली हिरणी दूजो स्यालो।
भैंस चड्यो मत मिलजो ग्वालो॥
तीन कोस तक मिल जावे तेली।
निश्चय मौत शीश पर खेली॥
सूका लक्कड़ दूध अंगारा।
सूने माथे विप्र भिखारा॥

इन सबका सामने पड़ना बुरा होता है, किंतु इस वैज्ञानिक युगमें ये बातें अब मान्य नहीं मानी जाती, किंतु ग्रामीण लोग अभी भी इन बातोंको मानते हैं। यात्रामें दिशाशूलके परिहारपर भी एक राजस्थानी दोहा है—

घी खायर इतवार ने, सोमवार पय शुद्ध।
गुड़ खा मंगलवार ने, तिल खाय रे बुद्ध॥

दही खायर गुरू ने अर शुक्रवार जौ खाय।
उड़द खायर शनि ने चलो शूल दोष मिट जाय॥

इसी तरह ज्योतिषके अनेक योगोंका वर्णन भी राजस्थानी दोहोंमें है। नक्षत्रसे मृत्युयोगके वर्णनका एक दोहा इस प्रकार है—

उषा सोम दीति अनुराधा बुधाश्विनी गुरू ने मृगसिर।
भौंम शतभिषा मौत शोग है शुक्रा अखलेखा हस्त शनिचर॥

अर्थात् यदि सोमवारको उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हो, रविवारके दिन अनुराधा, बुधवारको अश्विनी, गुरुवारको मृगशिरा, मंगलवारको शतभिषा, शुक्रवारको आश्लेषा और शनिवारके दिन हस्त नक्षत्र हो तो मृत्युयोग होता है, अतः इन वारों एवं नक्षत्रोंमें कोई शुभ काम नहीं करना चाहिये।

इसके विपरीत सिद्धियोगका एक राजस्थानी दोहा इस प्रकार है—

रवि ने हस्त पुख हो गुरु ने बुध अनुराध अश्विनी भौम।
अमृतसिद्धि रेवती भृगु ने मन्द रोहिणी मृगसिर सौम॥

अर्थात् यदि रविवारको हस्त नक्षत्र हो, गुरुवारको पुष्य नक्षत्र हो, बुधवारको अनुराधा नक्षत्र हो, मंगलवारके दिन अश्विनी, शुक्रवारको रेवती, शनिवारको रोहिणी और सोमवारके दिन मृगशिरा नक्षत्र हो तो उस दिन अमृत-सिद्धियोग होता है और जो भी काम इन दिनों, इन नक्षत्रोंमें किया जाता है, वह सिद्ध हो जाता है।

इसी तरह ज्वालामुखी योगका वर्णन करते हुए एक राजस्थानी कविने कहा है कि—

पड़वा-मूलक पांचा-भरणी। आठें-कृतिका नौमी-रोहिणी।
दसमी असलेखा सुन लो भैया। ये जोग ज्वालामुखी कहिया॥

अर्थात् पड़वाको मूल नक्षत्र, पंचमीको भरणी नक्षत्र, अष्टमीको कृत्तिका, नवमीको रोहिणी नक्षत्र और दशमीको आश्लेषा नक्षत्र हो तो इनमें जन्मा हुआ जातक जीवित नहीं रहता।

राजस्थानी कवियोंने मनुष्य ही नहीं पशुओंके जन्मतक ज्योतिषके दोहे रचे हैं, एक उदाहरण देखिये—

माघ बुध ने भैंस बियावे, सावण भयि दिन में घोड़ी।
ब्यावें गाय सिंह रा रवि में, गृहपति री ऊम्बर थोड़ी॥

अर्थात् माघ महीनेमें बुधवारके दिन यदि भैंसके बच्चा जन्म ले या श्रावणमासमें दिनमें घोड़ीके बछेड़ा हो जाय अथवा भाद्रपदमासमें रविवारके दिन गायको बछड़ा जन्म जाय तो उनका मालिक अवश्यमेव मर जाता है।

नवग्रह बारह राशियोंपर घूमते रहते हैं। जैसे—सूरज एक राशिमें एक माह रहता है। चन्द्रमा ढाई दिन, शनि ढाई वर्ष, राहु-केतु डेढ़ वर्ष एक राशिमें संचार करते हैं। गुरु एक वर्ष (तेरह मास भी) एक राशिमें रहता है। ज्योतिषमें ग्रहोंकी इस गतिको गोचर कहते हैं। बहुत-से ज्योतिषी गोचर ग्रहोंसे भविष्य बता देते हैं, किंतु महादशा एवं अन्तर्दशा भी देखकर फल कहना श्रेयस्कर रहता है। राजस्थानके ज्योतिषी कवियोंने गोचरपर भी दोहे पर्याप्त मात्रामें लिखे हैं। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है—

मीन शनि, भौम तुल, कर्क बृहस्पति होय।
डंक कहवे सुण भड्डुली विरला जीवे कोय॥

अर्थात् मीनराशिपर जब शनि संक्रमण करता हो और तुलाराशिमें मंगल तथा कर्कराशिमें गुरु ग्रह संक्रमण करते हैं तो डंक कविने भड्डुली नामक कन्याको सम्बोधित करते हुए कहा है कि संसारमें ऐसे वक्तमें कोई विरला ही जीता है अर्थात् प्रचुर मात्रामें नरसंहार होता है। यह योग सन् १९६५ ई०में आया था, जिसमें नरसंहार पर्याप्त हुआ। यह सर्वविदित है।

ऋतुवर्णनके भविष्यके दोहे भी राजस्थानी साहित्यमें पर्याप्त हैं, जिनसे समय कैसा होगा, अकाल होगा या सुकाल ज्ञात हो जाता है। जैसे—

तीतर पंखी बादरी विधवा काजर रेख।
वा बरसे वा घर करै या में मीन न मेख॥

किसान पण्डितोंने राजस्थानीमें बहुत ही दोहे रचे हैं, जिनमें भड्डुरीके दोहे पर्याप्त प्रचलित हैं। जैसे—

मंगलवारी मावसी फागुन चैती जोय।
पशु बेचो कण संग्रहो नवसी दुकाला होय॥

अर्थात् भड्डुरीका कथन है कि मंगलवारके दिन फाल्गुन और चैत्रमासमें अमावास्या आ जाय तो अकाल

पड़ता है, अतः अपने पशु बेचकर अनाज खरीद लेना चाहिये।

चैत्र पूर्णिमा होय जो सोम गुरु बुधवार।
घर-घर होय बचखड़ा घर-घर मंगलाचार॥

कृषि-पण्डित भड्डुरीका कहना है कि चैत्रमासमें पूर्णिमा सोम, बुध या गुरुवारके दिन आ जाय तो समय अच्छा होता है और घर-घर मंगलगीत गाये जाते हैं।

इस तरह राजस्थानी ज्योतिषके दोहे और कहावतें बहुत प्रसिद्ध हैं, जैसे ***'आमो रातो अर मेह मातो'*** अर्थात् आकाशमें बादलोंका रंग लाल हो तो सघन वर्षा होती है।

राजस्थानके लाल बुझक्कड़ कविने ज्योतिषका मजाक करते हुए भी एक दोहा कहा है—

मीन मेख करक यां में कीं न फरख।
घर में बैठी डोकरी अर बारे बैठ्यो जरख॥

जिसका तात्पर्य यह है कि ज्योतिषमें अधिक अन्धविश्वास नहीं रखना चाहिये; क्योंकि एक तो इस विज्ञानके प्रकाण्ड पण्डित अब बिरले ही रह गये हैं और दूसरी बात यह है कि मेहनत और परिश्रम ही भाग्योदयका हेतु होता है, इसीलिये हमारे बुजुर्ग हमें समझाते हुए एक कहावत कहते हैं—

आपरी दशा आपने सूझे, मूरख होय जो दूजा न बूझै॥

साथ ही मनुष्यको भाग्यके भरोसे बैठे रहकर केवल ईश्वरको ही दोष नहीं देना चाहिये, अपितु पुरुषार्थद्वारा अपना जीवन सँवारना चाहिये—

मत देखो हाथकी रेखा पलटो मत पतरा पोथी।
मीन मेख कुछ कर न सकेगी ये सारी बातें थोथी॥
धरे हाथ पर हाथ न बैठो बढ़े चलो कुछ काम करो।
तुम सब कुछ कर सकते हो मत ईश्वरको बदनाम करो॥

[ज्योतिष्मती]

महाकवि जायसीके ग्रन्थोंमें ज्योतिष

(डॉ० श्रीघनानन्दजी शर्मा 'जदली', ज्योतिषविशारद)

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसीने भारतीय दर्शन, योग और ज्योतिषज्ञानको आत्मसात् कर लिया था। उनका निवासस्थान अवधमें जायस नगर था। वे लिखते हैं—***'जायस नगर मोर अस्थानू।'*** वे विचारधारासे सूफी थे। चेचकके प्रकोपसे एकाक्षी बन चुके थे। बादशाह शेरशाहने जायसीका विरूप चेहरा देख ठहाका मारा था। तब कविने कहा—***'मोहि का हँसेसि कि कोहरहि'*** अर्थात् मुझपर हँसता है या मेरा निर्माण करनेवाले कुम्हारपर? यह मार्मिक कथन सुनते ही बादशाहको लज्जित होना पड़ा था। कवि हिन्दू-मुसलमान दोनोंके प्रति सहृदय थे। इनके 'अखरावट' ग्रन्थमें सूफी विचार, वेदान्त, ज्योतिष आदि सन्दर्भ उपलब्ध हैं।

'पद्मावत' महाकाव्यमें ज्योतिष और शकुन प्रसंगानुकूल उपलब्ध हैं। इस महाकाव्यके जोगीखण्डमें राजा रत्नसेन गेरुवा वेश धारणकर ज्यों ही सिंहलद्वीपके लिये गमन करता है, उसे अनेक प्रकारके शकुन दिखलायी पड़ते हैं—

आगे सगुन सगुनियै ताका। दहिने माछ रूप के राँका॥
भरे कलस तरुनी जल आई। 'दहिउ लेहु' ग्वालिनि गोहराई॥
मालिनि आव मौर लिए गांथे। खंजन बैठ नाग के माथे॥
दहिने मिरिग आइ बन धाएँ। प्रतीहार बोला खर बाएँ॥
बिरिख सँवरिया दहिने बोला। बाएँ दिसा चापु चरि डोला॥
बाएँ अकासी धौरी आई। लोबा दरस आई दिखराई॥
बाएँ कुररी दहिने कूचा। पहुँचे भुगुति जैस मन सूचा॥

ज्योतिषशास्त्रमें भी कविवर जायसीकी गति अच्छी थी। 'पद्मावत' के जन्मखण्डके अन्तर्गत पद्मावतीका जन्म होता है। शास्त्रविधि अनुसार छठी-पूजन सम्पन्न होता है। विद्वान् ज्योतिषी आते हैं—***'काढि पुरान जनम अरथाए।'*** अर्थात् जन्मकुण्डली देखकर भविष्य-कथन करते हैं। कन्याराशिपर 'पद्मावती' नामकरण किया गया।

कन्यारासि उदयभा जग किया। पदमावती नाम अस दीया॥

नामकरणके बाद ज्योतिषियोंने बालिकाको आशीर्वाद दिये—

कहेन्हि जनमपत्री जो लिखी। देइ असीस बहुरे जोतिषी॥

'पद्मावत' के 'मानसरोदक खण्ड' में चान्द्रमास और तिथियोंका उल्लेख है। 'जोगीखण्ड' में ज्योतिषी राजा रत्नसेनके सिंहलद्वीपगमनके अवसरपर दिशाकाल बतलाते हुए कहते हैं—*'गनक कहहिं गनि गौन न आजू।'* सिंघलद्वीपखण्डमें ज्योतिष-खगोल ज्ञानके संकेत हैं—*'चाँद सुरुज औ नखत तराईं। तेहि डर अंतरिख फिरहिं सबाईं॥'* 'पद्मावत' के विवाहखण्डमें ज्योतिषशास्त्रानुसार मुहूर्त एवं विवाह-कुण्डलीका श्रेष्ठतम समय गणितकर निकाला गया—

लगन धरा औ रचा बियाहू। सिंघल नेवत फिरा सब काहू॥

राजा रत्नसेन सिंहलद्वीपसे प्रस्थान करते हैं। प्रस्थानपूर्व कविने शास्त्रानुरूप यात्राविचार किया है। 'रत्नसेन विदाई-खण्ड' में स्पष्ट निर्दिष्ट है—

पत्रा काढ़ि गवन दिन देखहि कौन दिवस दहुँ चाल।
दिशासूल चक जोगिनी सौंह न चलिए काल॥

दिशाकालविषयक शास्त्र-कथन है—शनि-सोमको पूर्व दिशामें और गुरुवारको दक्षिण दिशामें गमन त्याज्य है। रविवार और शुक्रवारको पश्चिम दिशा तथा मंगल और बुधवारको उत्तर दिशामें गमन न करे। इसी तथ्यको कवि जायसीने शास्त्रसम्मत रखा है—

अदित सूक पच्छिउँ दिसि राहू। बीफे दखिन लंक-दिसि दाहू॥
सोम-सनीचर पुरुब न चालू। मंगल बुध उत्तर दिसि कालू॥

यदि यात्रा करना अति आवश्यक हो तो ज्योतिष ग्रन्थोंमें जो दोष-परिहारके उपाय निर्दिष्ट हैं, उन्हींके आधारपर जायसी लिखते हैं—

अवसि चला चाहै जौ कोई। औषद कहौं, रोग नहिं होई॥
मंगल चलत मेल मुख धनिया। चलत सोम देखै दरपनिया॥
सूकहिं चलत मेल मुख राई। बीफै चलै दखिन गुड़ खाई॥
अदित तँबोल मेलि मुख मंडै। बायबिरंग सनीचर खंडै॥
बुद्धहि दही चलहु करि भोजन। औषद इहै और नहिं खोजन॥

बारह राशियोंमें कौन-कौन-सी दिशाओंमें चन्द्र निवास करता है, उसका भी संस्कृत श्लोकका अविकल अनुवाद-जैसा दिया गया है—

मेष सिंह धन पूरुब बसै। बिरिख मकर कन्या जम दिसै॥
मिथुन तुला औ कुंभ पछाहाँ। करक मीन बिरछिक उतराहाँ॥

यात्रामें सन्मुख और दायीं दिशामें चन्द्र शुभकारक होता है आदि तथ्योंको विस्तारसे पद्यबद्ध किया गया है।

जायसीके 'अखरावट' ग्रन्थमें भारतीय ज्योतिष, दर्शनशास्त्र और योगशास्त्रका त्रिवेणी संगम दृष्टिगत होता है। कविने पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकताका प्रतिपादन किया है। ब्रह्माण्डमें विद्यमान बारह राशियाँ और ग्रह शरीर पिण्डमें किस प्रकार स्थित हैं, उसका विवरण प्रस्तुत है—

रा दुक झाँकहु सातौ खंडा। खंडै खंड लखहु बरम्हंडा॥
पहिल खंड जो सनीचर नाऊँ। लखि न अँटकु पौरी मँह ठाऊँ॥
दूसर खंड बृहस्पति तहँवाँ। काम-दुवार भोग घर जहँवाँ॥
तीसर खंड जो मंगल जानहु। नाभि-कंबल मँह ओहि अस्थानुह॥
चौथ खंड जो अदित अहई। बाईं दिसि अस्तन मँह रहई॥
पाँचवँ खंड सुक्र उपराहीं। कंठ माँह औ जीभ तराहीं॥
छठएं खंड बुद्ध कर बासा। दुइ भौहन्ह के बीच निबासा॥
सातवँ सोम कपार मँह कहा सो दसवँ दुआर।
जो वह पँवरि उछारै सो बड़ सिद्ध अपार॥

'अखरावट' ग्रन्थमें कविने ब्रह्माण्ड और पिण्ड-शरीरमें सात खण्डोंकी परिकल्पना की है। ज्योतिष-शास्त्रानुसार ब्रह्माण्डको बारह राशियोंमें विभाजित किया गया है और उनके अधिपति सात ग्रह निर्दिष्ट हैं। कविने अपने ग्रन्थमें प्रथम तीन खण्ड शास्त्रानुसार दिये हैं। प्रथम खण्डमें मकर एवं कुम्भ राशियाँ हैं, उनका अधिपति शनि है। तन पिण्डमें *'पौरी मँह ठाऊँ'* अर्थात् 'मूलाधार' चक्र है। द्वितीय खण्डमें धनु एवं मीन राशियाँ हैं, उनका अधिपति गुरु ग्रह है। पिण्ड तनमें **'काम-दुवार भोग घर'** अर्थात् 'स्वाधिष्ठान' चक्र है। तृतीय खण्डमें मेष और वृश्चिक राशियाँ हैं, अधिपति मंगल ग्रह है, पिण्डमें **'नाभि कंबल'** अर्थात् 'मणिपूरक' चक्र है।

चतुर्थसे षष्ठ खण्डतक कविने शास्त्रसे भिन्न-विधान प्रतिपादित किया है। ज्योतिषविज्ञानके अनुसार

चतुर्थ खण्डमें वृषभ एवं तुला राशियाँ हैं और अधिपति शुक्र ग्रह है। जबकि जायसीने इनके स्थानपर 'अदित' (आदित्य) ग्रह और राशि सिंह निर्दिष्ट किया है, पिण्डमें ***'अस्तन मँह रहई'***—हृदय भाग अर्थात् 'अनाहत' चक्र है। पंचम खण्डमें मिथुन और कन्याराशि, अधिपति ग्रह बुध है-के स्थानपर वृषभ एवं तुलाराशि अधिपति शुक्र ग्रह और पिण्ड शरीरमें ***'कंठ माँह औ जीभ तराहीं'*** अर्थात् 'विशुद्धि' चक्र बताया है। षष्ठ खण्डमें शास्त्रसम्मत सिंहराशि, अधिपति सूर्य ग्रह है, कविने मिथुन एवं कन्याराशि, अधिपति बुध तथा पिण्ड शरीरमें ***'दुइ भौहन्ह के बीच निबासा'*** अर्थात् 'आज्ञाचक्र' बताया है।

सप्तम खण्डमें ब्रह्माण्डमें कर्क राशि और अधिपति चन्द्र ग्रह ज्योतिषशास्त्रानुसार है। जायसीने उसीके अनुरूप ***'सातवँ सोम कपार मँह'*** अर्थात् 'सहस्रारचक्र' निर्दिष्ट किया है।

कवि जायसी परमतत्त्वकी प्राप्तिमें भारतीय शास्त्रोंके चिन्तन एवं निष्कर्षोंसे अभिभूत थे। वे स्वीकार करते हैं कि तनुपिण्ड ब्रह्माण्डका प्रतीक है। जो आकर्षण और चैतन्य ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, वही पिण्डमें विद्यमान है। भौतिक पदार्थोंमें 'आकर्षण' रूपमें चैतन्य है और पिण्ड-शरीरमें आकर्षण तत्त्व 'वासना' के रूपमें विद्यमान है। महाकवि जायसीने परमतत्त्वकी प्राप्तिमें ज्योतिष, योग और वेदान्तकी महती भूमिका स्वीकार की है।

फलित ज्यौतिषके प्रत्यक्ष अनुभव

(पं० श्रीदेवीदत्तजी शर्मा, ज्यौतिषाचार्य)

ज्यौतिषशास्त्रके पराशर, भृगु, जैमिनि आदि अठारह आचार्य प्रसिद्ध हैं। करणग्रन्थ तथा अनेक फलितग्रन्थ हैं; परंतु फलविचारमें मतभेद भी है। अतः फल ठीक न मिलनेसे लोगोंकी श्रद्धामें न्यूनता आना स्वाभाविक है।

शास्त्रादेशके साथ-साथ अनुभवके आधारपर फल बतलानेवाला ज्योतिर्विद् अपना मान तो बढ़ायेगा ही, साथ ही इससे ज्यौतिषशास्त्रका गौरव भी उन्नत होगा। कई वर्षोंके अनुभवसे मुझे जन्म और वर्ष-सम्बन्धी जो चामत्कारिक अनुभव प्राप्त हुए हैं, उनमेंसे कुछ यहाँ लिख रहा हूँ। आशा है, ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता तथा ज्यौतिषशास्त्रमें रुचि रखनेवाली जनता इससे प्रसन्न होगी; क्योंकि प्रत्येक विद्याके गुप्त रखनेके कारण ही विद्याका ह्रास और लोप हुआ। इसके अनेक उदाहरण हैं—

१. फलितग्रन्थोंमें बृहत्पाराशरीके राजयोग शत-प्रतिशत ठीक मिलते हैं।
२. जन्ममें छठे घरका चन्द्रमा प्रमेह (बीस प्रकारमेंसे कोई भी) रखता है।
३. सप्तम मंगल अर्श (खूनी बवासीर)-का सूचक है।
४. सूर्य-शुक्रका रिपुभावमें योग मूत्रकृच्छ्र करता है।
५. शुक्र, मंगलका अष्टम घरमें योग उपदंश करता है।
६. लग्नके सूर्य प्रायः अर्धसिरकी पीड़ा देते हैं।
७. सप्तम केतु पथरी, दर्द एवं गुदा आदिमें शूलकारक है।
८. जन्मलग्नेश शुभयुक्त, दृष्टकेन्द्र अथवा त्रिकोणमें मित्रक्षेत्री प्रायः आजीवन सुखी, मानयुक्त तथा प्रतापी बनाता है।
९. पंचमेश, दशमेशका सम्बन्ध प्रबल राजयोग करता है।
१०. पत्नीका सप्तम सूर्य हो तो वह पतिद्वारा अनादर पाती है।
११. वर्षमें सप्तमेशका लग्नमें पड़कर गुरुदृष्ट होना विशेष उन्नतिका सूचक है।

ज्योतिषशास्त्रमें भगवत्तत्त्व

(डॉ० श्रीनागेन्द्रजी पाण्डेय, ज्योतिषाचार्य)

वेद ज्ञानके सागर कहे गये हैं। अन्य समस्त ज्ञान-विज्ञानके स्रोत भी इन्हींके सारतत्त्वसे अनुप्राणित हैं। भगवान् वेदपुरुषके षडंगके रूपमें जिन छः वेदांग शास्त्रोंका वर्णन है, उनमें ज्योतिषशास्त्रको वेदपुरुषका नेत्र कहा गया है। सभी अंगोंमें नेत्र ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि मानवके समस्त व्यापार नेत्रोंके सहारे ही सुचारुरूपसे संचालित होते हैं। अतः चक्षुभूत ज्योतिषशास्त्रमें परम महत्त्वपूर्ण भगवत्तत्त्वका किस प्रकार विवेचन किया गया है, यह जानना आवश्यक है।

ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्तग्रन्थोंमें 'सूर्यसिद्धान्त' विशेष प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थमें ईश्वरतत्त्वका विवेचन करते हुए स्वीकार किया गया है कि 'ब्रह्म' के द्वारा ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् और ब्रह्माण्डका प्रादुर्भाव हुआ। ग्रन्थके प्रारम्भिक मंगलाचरणमें ही कहा गया है—

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने।
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः॥

(सूर्यसि० १। १)

'समस्त जगत्के आधारभूत अचिन्त्य, अव्यक्त और निर्गुण तथा सगुणरूप ब्रह्मको नमस्कार है।' इस प्रकार वासुदेवको ही ब्रह्म एवं जगत्का आधार माना गया है। इसी ग्रन्थमें सृष्टिके रहस्यका वर्णन करते हुए भगवान् सूर्यने जिस अध्यात्मतत्त्वका उपदेश किया है, उसमें भी स्पष्ट कहा है—

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात् परोऽव्ययः॥

(सूर्यसि० १२। १२)

'वह परम ब्रह्म वासुदेवरूप[1] प्रधान पुरुष (पुरुषोत्तम) अव्यक्त, निर्गुण, शान्त तथा पच्चीस तत्त्वोंसे परे है। आगे यह स्पष्ट किया गया है कि इसी ब्रह्मसे इस सृष्टिका सर्जन हुआ है। इसका क्रम इस प्रकार बतलाया गया है—

वासुदेव (स्वयं ब्रह्म),
सूर्य (अनिरुद्ध नामक वासुदेवांश),
ब्रह्मा (अहंकार तत्त्वसे जगत्स्रष्टा)।

इसी ब्रह्मसे चन्द्र, सूर्य, पंचमहाभूत और समस्त चराचर विश्वका निर्माण हुआ है। (सूर्यसि० १२। १२—३१)

ज्योतिषशास्त्रके सुप्रसिद्ध विद्वान् भास्कराचार्य (द्वितीय) हुए हैं। उन्होंने इस चराचर विश्व और ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिका प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

यस्मात् क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भेऽ-
हङ्कारोऽभूत् खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरञ्चे-
र्विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत् तत्त्वमाद्यम्॥

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, भुवनकोश २। १)

इसका तात्पर्य यह है कि 'आद्य तत्त्व वह परम ब्रह्म है, जिससे सभी तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है। वह तत्त्व वासुदेवरूप है। जब उसकी सृष्टिकी इच्छा होती है, तब उससे संकर्षण नामक अंशकी उत्पत्ति होती है। यह संकर्षण प्रकृति और पुरुषमें क्षोभ उत्पन्न करता है। प्रकृति-पुरुषके क्षोभसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। महत्तत्त्व बुद्धिरूप होता है और उसीका नाम प्रद्युम्न है। इस प्रद्युम्न नामक महत्तत्त्वसे अनिरुद्ध नामक अहंकारकी उत्पत्ति होती है। वैष्णवमतमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन मूर्तिभेदोंका विशेष महत्त्व है। अहंकार गुणके विभागसे तीन प्रकारका होता है, जिसमें सत्त्व, रज और तमसे क्रमशः वैकारिक, तैजस और भूतादिकी उत्पत्ति होती है। इस क्रमका विष्णुपुराणमें स्पष्ट वर्णन मिलता है।[2]

---

१. वसति विश्वमखिलमस्मिन्निति वा विश्वस्मिन्नखिले वसतीति वासुः, दिव्यति—भासते स्वयमिति देवः, वासुश्चासौ देवश्चेति—वासुदेवः विश्वव्यापको विभुरित्यर्थः।

२. वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः॥ त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायत। (श्रीविष्णुपुराण १। २। ३५-३६); तुलनीय सांख्यकारिका।

इस प्रकारसे विष्णुपुराणके अनुसार ही ब्रह्मतत्त्वका विवेचन ज्योतिषशास्त्रके अन्तर्गत है, जो सांख्यदर्शनसे प्रभावित है। आचार्य वाराहमिहिरने जगदुत्पत्तिके सभी प्रचलित मतोंका उल्लेख करते हुए परमतत्त्वका विवेचन प्राचीन दार्शनिकोंपर ही छोड़ दिया है। महर्षि कपिल-प्रतिपादित सांख्यतत्त्व, कणादप्रतिपादित पदार्थतत्त्व (अणु), पौराणिक मतसे कालतत्त्व, लोकायतिक स्वभावतत्त्व तथा मीमांसकोंके कर्मतत्त्वका उल्लेख करते हुए विश्वके कारणभूत तत्त्वके निश्चयमें अपना कोई मन्तव्य नहीं दिया है।[१]

इस प्रकारसे ईश्वरतत्त्वके प्रतिपादनमें विष्णुपुराण, सांख्यमत इत्यादिके अनुसार ही ज्योतिषका मत है, जिसमें ब्रह्म इस निखिल ब्रह्माण्डका रचयिता एवं नियन्ता है।

दूसरा मत ज्योतिषके 'काल'के सम्बन्धमें है। कालको भी ईश्वरके रूपमें अनादि, अनन्त तथा व्यापक, विभु माना गया है। 'सूर्यसिद्धान्तकार' कहते हैं—**'लोकानामन्तकृत् कालः'**[२] अर्थात् काल समस्त लोकोंका अन्त करनेवाला है। ज्योतिषशास्त्रका एक अन्य प्रसिद्ध वचन इस प्रकार है—

कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिकादिना।
यो वञ्चयति भूतानि तस्मै कालात्मने नमः॥

'जो कला, काष्ठा, निमेष और घटीके रूपमें प्राणियोंको छलता जाता है—मृत्युके समीप पहुँचाता है, उस कालात्माको नमस्कार है। कालकी महत्तामें यह प्रमाण भी उपलब्ध होता है कि—

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना।
काले स पक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत्॥

इस प्रकार कालको भी एक विश्वनियन्ताके रूपमें प्रतिष्ठापित किया गया है। इसी कालको भगवत्तत्त्वके रूपमें देखते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥

(रा०च०मा० ६।१)

भगवत्तत्त्वके विवेचनमें ज्योतिषका तीसरा पक्ष बहुत ही महत्त्वका है, जिसमें 'शून्य' को परमब्रह्मतत्त्व या भगवत्तत्त्वके रूपमें अंगीकार किया गया है। 'शिव' धातुसे 'क्त' प्रत्यय लगाकर 'शून' शब्द बनता है और इसी 'शून' से शून्य शब्द निर्मित है, जिसका अर्थ है—स्फीत, वर्धित, विस्तृत। इसी अर्थमें वेदका यह प्रयोग है—**'मा शूने अग्ने नृणाम्'** (७।१।११)। ब्रह्म शब्द भी बृह् (भ्वा०) धातुसे 'मनिन्' प्रत्ययकर इसी वर्धित अर्थमें बना है, जो शून्य शब्दके अर्थसे साम्य रखता है। शून्यके पर्यायवाची शब्द हैं—ख, आकाश, व्योम, नभ, अनन्त और पूर्ण; और ये ही शब्द ब्रह्मके लिये भी अनेक स्थानपर मिलते हैं, जैसे—बृहदारण्यकोपनिषद्में—**'खं ब्रह्म'**, तन्त्रग्रन्थमें—**'शून्यं तु सच्चिदानन्दं शब्दं तद् ब्रह्मसंज्ञितम्।'** शून्यका गणितीय महत्त्व यह है कि—(क) शून्य वह है, जो स्वयं कोई संख्या नहीं, परंतु सभी संख्याओंका वर्धक एवं बौद्धोंकी दृष्टिमें आदि भी है। जैसे—१ के पूर्व शून्य होगा। (ख) शून्य स्वयं कोई संख्या न होकर भी सभी संख्याओंको परिवर्धित कर देता है; जैसे एकके आगे शून्य रखनेसे वह क्रमशः १०, १००, १००० और अनन्ततक हो जायगा।

इस प्रकार शून्य कुछ भी न होकर अनन्तशक्तिकी सामर्थ्य रखता है। आज भी आधुनिक गणितमें अनन्त संख्या (Infinite Number)-के परिज्ञानके लिये दो शून्योंको संयुक्त मिलाकर एक चिह्न (∞) बनाते हैं। शून्य रहकर भी अनन्त होगा, यही ब्रह्मका सगुण और निर्गुण रूप है। आचार्य भास्करने बीजगणितके प्रसंगमें 'ख हर' (शून्य-विभाजित शून्य) राशिको अनन्तकी संज्ञा देते हुए कहा है कि—'ख हर' राशिमें कोई भी संख्या धन

१. कपिलः प्रधानमाह द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्य। कालं कारणमेके स्वभावमपरे परे जगुः कर्म॥ (बृहत्संहिता १।७)
२. सूर्यसिद्धान्त १।१०

करें या ऋण करें, परंतु वह अविकृत ही रहती है—जिस प्रकार अनन्त सृष्टि एवं प्रलयके बाद भी वह परमात्मा अच्युत और अनन्त ही रहता है।[1] यही बृहदारण्यकोपनिषद्का भी कथन है, जो शून्यकी शक्तिको ब्रह्मशक्तिके सदृश सिद्ध करता है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

'पूर्णसे पूर्ण निकालनेके बाद भी पूर्ण ही बचता है।' 'यह ब्रह्मके पक्षमें कथन है', जो शून्यके गणितसे सिद्ध होता है। शून्यका कोई स्वरूप नहीं होता। हम व्यवहारके लिये एक बिन्दुके रूपमें उसको पहचानते हैं। वह भी काल्पनिक; क्योंकि रेखागणितमें बिन्दुकी परिभाषा है—जिसमें लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई न हो। किसी भी बिन्दुके किसी स्थानपर स्थित होनेसे यह परिभाषा उसमें घटित नहीं हो सकती है, परंतु व्यवहारतः हमें उसकी सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है; जैसे हम निर्गुण ब्रह्मकी पहचान सगुण रूपसे करते हैं। इसीलिये कहा गया है कि ब्रह्म शून्य होता हुआ भी शून्यतामें स्थित है।[2]

बौद्धदर्शनमें तो शून्यवाद ही प्रख्यात है, जिसमें सभी कुछ शून्यसे प्रादुर्भूत और विलीन होना माना जाता है।

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रके अनुसार भगवत्तत्त्व तीन स्वरूपोंमें वर्णित है—(१) ब्रह्मपरक, (२) कालपरक और (३) शून्यपरक। भगवत्तत्त्व ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिमें वही है, जो पुराणोपनिषदादिमें स्वीकृत है। यह ज्ञातव्य है कि १८ महर्षि ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक कहे गये हैं।[3] इनमें यवनको छोड़कर सभी पौराणिक और वैष्णवमतानुयायी हैं। उन महर्षियोंकी आध्यात्मिक अवधारणासे ज्योतिषशास्त्र पूर्ण प्रभावित और आप्लावित है। भारतीय वाङ्मयकी यह विशेषता है कि परमतत्त्वका विवेचन ही उसका मुख्य लक्ष्य रहता है। वह इसीकी सिद्धि विभिन्न स्वरूप एवं सिद्धान्तोंसे करता है। इस भगवत्तत्त्वका ज्ञान और उसकी प्राप्ति मानव-जीवनका चरम फल है।

ज्योतिषशास्त्रमें भगवन्नाम तथा प्रार्थनाकी महत्ता

(पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

बहुधा लोग यही समझते हैं कि ज्यौतिषादिके द्वारा केवल भूत-भविष्यका ज्ञान ही हो सकता है, पर उसमें परिवर्तन किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता, किंतु यदि ऐसी बात होती तो वास्तवमें शास्त्रका कोई उपयोग नहीं था। न कोई पुनः ज्यौतिषकी पूछ ही करता। वास्तवमें शास्त्रकी यही शास्त्रता है कि वह शोक-मोह-क्लेश आदिको पूर्णतया दूर कर सके। जो भी वस्तु शोक-मोह-क्लेशको दूरकर सुख-शान्ति प्रदान करनेमें सहायक होती है, वही योग्यताक्रमसे आदरणीय होती है। किंतु शास्त्रोंको इस दिशामें कहीं सर्वप्रथम, कहीं द्वितीय स्थान (अर्थात् भगवान्के बाद) प्राप्त है। ब्रह्मसूत्रके '**शास्त्रयोनित्वात्**' सूत्रमें वेदादि शास्त्रोंको भगवान्की भी योनि माना है।

तुलसी सो सब भाँति परम प्रिय पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद""॥

आदिका भी यही भाव है।

वास्तवमें योग, ज्यौतिष, वेदान्त, भक्ति आदि सभी शास्त्रोंका तात्पर्य एकमें ही दीखता है। प्रायः सभी सन्तों तथा शास्त्रोंका एक ही उपदेश है कि 'सदा भगवान्का स्मरण किया जाय।' यही दुर्भाग्य है कि प्राणी आत्मस्वरूप भगवान्को भूल जाय—

---

१. अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु। बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकाले ततेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत्॥
(बीजगणित, खषड्विधान १२, श्लोक ४)

२. शून्यता विद्यते त्वत्र तस्यामपि स विद्यते॥ (मध्यान्तविभाग टीका)

३. सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः। कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः॥
लोमशः पौलशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः। शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

इयमेव परा हानिरुपसर्गोऽयमेव हि।
अभाग्यं परमं चैतद् वासुदेवं न यत् स्मरेत्॥

'व्यासो वदत्यखिलवेदपुराणवेत्ता
नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः॥'

ठीक ज्यौतिषशास्त्रका भी यही मत है। वह सभी विपत्तियोंका प्रतीकार भगवत्स्मरणद्वारा ही बतलाता है। वृद्धपाराशरमें दशान्तर्दशाके प्रसंगमें निरन्तर यही बतलाया गया है कि यदि दशानायकमें अन्तर्दशाका स्वामी ९, १२ स्थानोंमें हो तो भारी क्लेश होगा। यदि दशानायक दूसरे सातवें घरका स्वामी हो तो अकाल-मृत्यु भी हो सकती है। दशानायक ६, ८, ११, १२ का स्वामी हो तो चोर, सर्प, रोगादिका भय होगा, किंतु वह तुरंत ही इन दोषोंकी शान्तिका उपाय भी बतलाता है। उसका कथन है कि यदि इन आपत्तियोंका कारण बुध बन रहा हो तो 'विष्णुसहस्रनाम' का पाठ करना चाहिये। यदि इन भावोंका स्वामी दशानायक गुरु हो तो 'शिवसहस्रनाम' का पाठ करना चाहिये। यदि सूर्यद्वारा हो तो 'सूर्यसहस्रनाम' एवं 'आदित्यहृदय' का पाठ करना चाहिये। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रहोंमें भी 'दुर्गासप्तशती', 'शिवाभिषेक', 'नाम-जप', 'मृत्युंजयजप' आदि उपाय बतलाये गये हैं। ये सभी स्तोत्रपाठ, उपासना, जप, सहस्रनाम आदि भगवत्स्मरण-ध्यानके प्रकार भी नाम-जप ही हैं। उपासना-पद्धतिमें भेद तात्कालिक चमत्कारके लिये है। अन्यथा समाहित होकर भगवत्स्मरण-जपके किसी भी प्रकारसे लाभ होगा ही।

ज्यौतिषशास्त्र-सारसर्वस्व

गुरु अथवा शास्त्र परम कल्याणमें सदा सहायक होते हैं। वास्तवमें भगवान्‌को भूल जाना ही दुर्भाग्य है। इसलिये वे किसी प्रकार प्राणीको जब पुनः भगवत्स्मरणमें लगा देते हैं तो प्राणीका सारा पाप-ताप-दुर्भाग्य दूर हो जाता है। तत्त्वदर्शियोंकी दृष्टिमें भगवान्‌का निरन्तर स्मरण ही सर्वोपरि श्रेष्ठ कार्य एवं परम सौभाग्यपूर्ण स्थिति है। इसलिये ज्यौतिषशास्त्र या ज्योतिषी पीड़ित प्राणीको तत्काल ही भगवत्स्मरणमें लीन करा देता है। इस तरह वह उनका कल्याण कर देता है। जबतक प्राणी विश्वासके साथ भगवत्स्मरणमें लीन है, वह निश्चयेन सुखी है। इसी दृष्टिसे सत्संगको भी सर्वोपरि सुख कहा गया है;* क्योंकि उसमें विशुद्ध भगवत्स्मरण ही कराया जाता है। उपनिषदोंमें भी विशुद्ध भगवत्स्मरणको सर्वोपरि सुख बतलाया गया है। यथा—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

(भवसन्तरणोपनिषद् ३। ३१)

अर्थात् सर्वथा भगवान्‌में प्रवृत्त व्यक्तिको जो सुख होता है, उसका वाणीद्वारा किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। वह सर्वथा लोकोपरि अद्भुत होता है; उसका तो केवल अन्तर्हृदयमें ग्रहण—अनुभवमात्र ही हो सकता है। इसी प्रकार जब मनुष्य भगवान्‌को भूल बैठता है और संसारमें किसी अन्य प्रपंचमें प्रवृत्त होता है तो प्रत्यक्ष ही उतनी ही बड़ी हानि समझनी चाहिये—

हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥

इसलिये ज्यौतिषादि शास्त्र वास्तवमें परम कल्याणकारी हैं। वे भगवान्‌को भूले हुए प्राणीको भगवान्‌की स्मृति करवाकर तत्काल उसका श्रेय-सम्पादन कर देते हैं। भगवद्भजनका सौभाग्य जिस व्यक्तिका हो जाता है, उसके परम कल्याणमें सन्देहका कोई अवसर नहीं रह जाता।

---

* (क) तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥ (रा०च०मा० ५। ४)
(ख) तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥ (श्रीमद्भा० १। १८। १३)

ज्योतिष और अध्यात्म

(साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री)

भारतीय संस्कृतिमें मानव-जीवन आनन्द और शान्तिकी प्राप्तिके लिये है। ऋषि-मुनियोंने जीवनको ऐहलौकिक और पारलौकिक दो भागोंमें विभक्त किया है। मानवके जीवनकालमें भौतिक सुख-शान्तिके लिये हमारे यहाँ अनेक शास्त्र हैं—(१) आयुर्वेद, (२) ज्योतिष, (३) योगशास्त्र, (४) वास्तुशास्त्र एवं (५) शिल्प-कला आदि। अध्यात्ममें—(१) वेदान्त, (२) न्याय, (३) सांख्य, (४) योगदर्शन आदि हैं। मानव अपने जीवन-यापन तथा सुख-शान्तिके लिये शुभ एवं अशुभ कर्म करता है। कर्मोंसे ही उसका भाग्य (प्रारब्ध)-का योग बनता है। जीवनमें सुख-दुःखका, अनुकूलता-प्रतिकूलताका एवं वर्तमान तथा भविष्यका ज्ञान ज्योतिषशास्त्रसे होता है।

ज्योतिषशास्त्र वेदका चक्षु है। इस शास्त्रका उद्देश्य जीवनको अध्यात्मकी ओर लगाना है। ज्योतिषशास्त्र व्यावहारिक जीवनको दर्शित करनेका शास्त्र है। इससे प्रारब्धकी जानकारी होती है तथा यह जीवनको अग्रसर करनेकी प्रेरणा देता है, सत्कर्मोंमें प्रवृत्त करता है और जीवनके भूत-भविष्यको प्रदर्शित करता है।

काल भगवान्‌को कहते हैं—'**कालः कलयतामहम्।**' सृष्टिका सृजन, पालन एवं संहार कालभगवान् करते हैं। काल ही पल, घड़ी, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग और मन्वन्तर आदिके रूपमें है। काल एक अनिर्वचनीय तत्त्व है। हम जिस जगत्‌में रहते हैं, उसके नियामक कालरूप सूर्य ही हैं। सूर्य ही ग्रह, उपग्रह तथा नक्षत्रमण्डलकी सृष्टिकर उसे गतिशील एवं प्रकाशित करते हैं।

यह सौरमण्डल ही जीवोंके कर्मका साक्षी है। ज्योतिषशास्त्रमें इन्हीं सौरमण्डलके ग्रह, नक्षत्रों तथा राशि-समूहों और पृथ्वीके जीवोंके परस्पर सम्बन्ध एवं परस्पर पड़नेवाले प्रभावोंका विवेचन है। हमारी दैनिकचर्या, दिन-रात, पक्ष-मास तथा वर्षादिके कालका ज्ञान ज्योतिषशास्त्रसे ही होता है। दिन, नक्षत्र, मास, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि इसी शास्त्रसे होते हैं। जीवनमें यज्ञोपवीत, विवाह, नामकरण आदि संस्कार एवं यज्ञ-दानादिकर्म, यात्रा तथा देव-प्रतिष्ठा आदि इसी शास्त्रसे निर्दिष्ट होते हैं। सृष्टि-रहस्य और क्रम, भूगर्भस्थिति, मौसम-विज्ञान आदिका ज्ञान भी इससे ही होता है। सृष्टिका सृजन-पालन एवं संहारका क्रम चलता रहता है, जिसे कालचक्र कहते हैं।

भौतिक जीवनका उद्देश्य अध्यात्म-जीवनकी प्राप्ति करना है। हमारे जीवनमें अनुकूलता एवं प्रतिकूलताकी जानकारी ज्योतिषशास्त्रसे होती है तथा उसका निराकरण भी ज्योतिष ही बतलाता है—जैसे किसी व्यक्तिके अरिष्टका योग है तो उसका उपाय महामृत्युंजयका अनुष्ठान तथा दान आदि करना ज्योतिषशास्त्र बतलाता है।

सृष्टिके सृजन-पालन और प्रलय—इन सभी अवस्थाओंमें परमात्मा सदा समान रूपसे रहते हैं, सृष्टिमें जो वैशिष्ट्य है, वह सब परमात्माका ही है। गीतामें भगवान् स्वयं इस बातको निम्न वचनोंद्वारा निर्दिष्ट करते हैं—**'ज्योतिषां रविरंशुमान्', 'नक्षत्राणामहं शशी', 'यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।' 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।' 'अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।' 'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥'**

जिस प्रकार वृक्षके मूलको जलसे सींचनेपर शाखा, पत्ते, फूल, फल सब तृप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार भगवान्‌की उपासना (भजन)-से सम्पूर्ण जगत् तृप्त हो जाता है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

मानवको चाहिये कि वह अपने जीवनमें भगवान्‌की मुख्यता रखे एवं उनकी आराधना करता रहे, अपने

इष्टदेवके अनुसार भगवन्नाम-जप, संकीर्तन, भगवद्ध्यान, भगवद्-विग्रह-दर्शन, भक्तोंकी तथा भगवान्‌की कथाका श्रवण, भगवद्गुणानुवाद करता रहे, सत्य बोले, संयम रखे, भगवान्-गुरुजनों-माता-पिता तथा पूज्यजनोंको प्रणाम करे, उनका सदा सम्मान करे। इस दैवीचर्यासे ग्रह-नक्षत्रादि सभी स्वयं उसके अनुकूल हो जाते हैं।

नमस्कार करनेसे सब पाप-ताप मिट जाते हैं। आयु बढ़ जाती है। विद्या आती है। अहंकार दूर होता है। मार्कण्डेयऋषिकी आयु नमस्कार करनेमात्रसे बढ़ गयी तथा वे चिरंजीवी हो गये। दान करनेसे सब आपदाएँ मिट जाती हैं। ***'प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान। जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥'*** भगवत्प्रार्थनासे कौरवोंकी सभामें भगवान्‌ने द्रौपदीकी लाज रखी। गजेन्द्रको ग्राहसे बचाया। सबका निष्काम भावसे हित करनेसे सब संकट दूर होकर भगवत्प्राप्ति हो जाती है—**'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।'**

सर्वदेवमयी गौकी सेवासे हृदयरोग, शारीरिक दौर्बल्य आदि रोग मिट जाते हैं। शंकरभगवान्‌पर एवं सूर्य-भगवान्‌पर जल चढ़ानेसे सभी ग्रह-बाधाएँ, रोग तथा आपदाएँ मिट जाती हैं। रामेश्वरयात्रामें प्यासे मरते हुए गधेको गंगाजल पिलानेसे एकनाथजीको वहीं रामेश्वरभगवान्‌ने दर्शन दे दिये। हिमाचल प्रदेशमें एक गरीब किसानने गंगायात्रा करनेके विचारसे धन कमाकर एकत्रित किया। पड़ोसीकी कन्या बीमार हो गयी थी। किसानने यात्रा न करके वह पैसा कन्याकी चिकित्साके लिये लगाया। गंगाजीने किसानकी यात्रा सफल मानकर उसको वहीं दर्शन दे दिया। श्रीहनुमान्‌जीकी उपासना करनेसे सब संकट दूर होते हैं—

भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥
संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा॥

कोणार्कका सूर्यमन्दिर राजाने सूर्योपासनासे शरीरका कुष्ठ रोग ठीक होनेपर निर्माण करवाया। माता-पिताकी सेवासे भगवान् प्रसन्न होकर पण्ढरपुरमें पुण्डरीक भक्तके लिये एक ईंटपर खड़े हैं।

सन्त श्रीतुलसीदासजी महाराजने एक मुर्देको रामनामके प्रभावसे जीवित कर दिया।

तुलसी मुआ मंगाय के सिर पर धरिया हाथ।
मैं तो कछु जानू नहीं तुम जानो रघुनाथ॥
भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥

सींथल ग्राम बीकानेर जिलेमें पूज्य सन्त श्रीहरिरामदासजीके शरीर त्याग देनेपर शिष्योंने भगवान्‌से प्रार्थना की तो वे पुनः उसी शरीरमें आये और महोत्सव-पर्यन्त जीवित रहे। भगवान् कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् सर्वथा समर्थ हैं। अतः भगवान्‌के भजनसे सब संकट, रोग आदि मिट जाते हैं—सन्तोंने कहा है—

सब ही कूँ डर काल का निडर न दीसै कोय।
हरिया, जाकूँ डर नहीं, राम सनेही होय॥
करता जो कायम करे तौ कुण मारण हार।
जन हरिया करतार बिन और न को आधार॥
सिर ऊपर साहिब खड़ा समरथ राम दयाल।
रामदास सांसो तजो कदै न व्यापै काल॥
श्वांस श्वांस दम दम बिचै रक्षक राम दयाल।
रामा राम उचारतां कदै न व्यापै काल॥

अतः मानवको भगवान्‌का भजन, परोपकार एवं सदाचारका पालन करना चाहिये, जिससे वह सदा सुखी रहे, आनन्दित रहे।

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥

जीवमात्र भगवत्स्मरण, भगवन्नामसंकीर्तन, भगवत्प्रणाम आदिसे जन्म-मरणरूपी संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अपवित्र-पवित्र—कैसी भी अवस्थामें जो भगवान्‌का स्मरण करता है, वह बाहर-भीतरसे शुद्ध हो जाता है—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

ज्योतिषशास्त्रमें भगवत्कृपा

(श्रीबलरामजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न, ज्योतिषाचार्य)

'ज्योतिषामयनं चक्षुः' (पाणिनीय-शिक्षा ४१)।

ज्योतिषशास्त्र ही सनातन वेदका नेत्र है। अतः ज्योतिष और भगवत्कृपापर कुछ लिखनेके पूर्व मनमें सहसा यह तर्क उत्पन्न हुआ कि ग्रहयोगके कारण भगवत्कृपाकी प्राप्ति होती है अथवा भगवत्कृपासे ग्रहयोग ही अनुकूल हो जाते हैं?

भगवान्‌की कृपासे ग्रहयोगोंका अनुकूल होना आश्चर्यजनक नहीं। भगवान् श्रीरामके प्रकट होनेके पूर्व—

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥

(रा०च०मा० १।१९०)

—योग, लग्न एवं ग्रह आदिकी अनुकूलता या तदनुरूपता हो गयी। भगवान् जिनपर कृपा करते हैं, उनके लिये भी ग्रह-नक्षत्रकी अनुकूलता आश्चर्यकी बात नहीं। इस प्रसंगमें ग्रहोंके परस्पर सम्बन्ध, उनकी दृष्टि, दशा, अन्तर्दशा आदिके आधारपर कुछ लिखा जाना आवश्यक है। भगवत्कृपासे अर्थ, धर्म, मोक्षादिकी प्राप्ति तो साधारण बात है। इसीके सहारे सन्त तुलसीदासजी-जैसे परमभागवत महाकविने महान् संकट झेलकर अगणित पातकियोंका भवसागरसे उद्धार करनेके निमित्त श्रीरामचरितमानसरूप पावन सेतुका निर्माण किया।

ग्रहयोग और भगवत्कृपाके प्रसंगमें जन्मांगके आधारपर विषयका प्रस्तुतीकरण इस प्रकार है—

जन्मांगमें द्वादश भाव होते हैं। इन द्वादश भावोंसे संक्षेपमें तन, धन, सहज, सुख, सुत, रोग, स्त्री, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय आदिका विचार किया जाता है।

गम्भीरतापूर्वक विचार करनेपर भगवत्कृपाका प्रभाव द्वादश भावोंपर भी पड़ता प्रतीत होता है। शारीरिक स्वस्थता, सात्त्विक धनकी प्राप्ति, प्रेमका आचरण करनेवाले भाई, सुखी जीवन, आज्ञापालक पुत्र, नीरोगता, सती-साध्वी पत्नी, तीर्थस्थानमें शरीरत्याग, धार्मिक अनुकूलता, पुण्यकर्म, पवित्र आय और उत्तम कार्योंमें धनका व्यय—ये सभी मानव-जीवनकी सर्वसम्पन्नताके परिचायक हैं।

जन्मके समय जो ग्रह पड़ जाते हैं, उन्हें दृष्टिमें रखकर ही उपर्युक्त वर्णित द्वादश भावोंपर विचार किया जाता है। जन्मके समय जो लग्न होता है, जन्मांगमें उसका उल्लेखकर अग्रिम भावोंमें राशियोंकी स्थापना करके भावोंका विचार होता है। प्रत्येक भावके राशिका स्वामी ही फिर तत्तद्भावोंका स्वामी माना जाता है और फिर तदनुकूल ही फल निर्दिष्ट होता है।

भगवत्कृपा और भावेश

दशमेश यदि बुध हो और उसपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती हो तो जातकके ऊपर भी श्रीभगवान्‌की कृपादृष्टि होती है। नवमेश यदि उच्चस्थ हो, उसपर शुभ ग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र आदि)-की दृष्टि हो तो ऐसे जातकपर प्रभुकी कृपा होती है। (चन्द्रमा शुभ ग्रहोंके साथ शुभ फलदायक है। पूर्ण चन्द्रमा भी शुभद माना जाता है।) यदि नवमेश पूर्ण बली हो और उसपर गुरुकी दृष्टि हो तो ऐसे जातकके ऊपर परमपिता परमात्माकी कृपादृष्टि सम्भव है। लग्नके स्वामी अथवा लग्नपर ही नवमेशकी दृष्टि होनेसे जातक प्रभुकृपाका पात्र बन जाता है। यदि नवमेश बृहस्पतिके साथ हो और षड्वर्गोंमें बली हो अथवा लग्नेशपर बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि हो तो जातक प्रभुकी कृपासे महायशस्वी होता है। नवमेश सिंहके अंशका हो और उसपर लग्नेशकी अथवा दशमेशकी दृष्टि हो तो जातकके ऊपर प्रभुकी कृपा अवश्य होती है। ऐसा जातक विश्वमें यशका अर्जन करता है। दशमेश केन्द्रस्थ (लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम भावमें) हो, नवमेश भी चतुर्थभावमें हो तो ऐसा जातक प्रभुकी कृपासे अपने व्यक्तिगत क्रिया-कलापोंद्वारा यशका भागी बनता है।

यह सर्वविदित है कि जिसपर प्रभुकी कृपा हो जाती है, वह असम्भवको भी सम्भवमें परिवर्तित कर

सकता है। प्रभुकी कृपासे पंगु भी हिमालयकी चोटीपर चढ़ सकता है, अन्धा भी सब कुछ देख सकता है, बधिरको श्रवण-शक्ति मिल जाती है—यह रहस्य ग्रह भी स्पष्ट करते हैं।

किसीके जन्मांगमें लग्नेश उच्च हो, उसपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती हो तो ऐसे जातकपर भगवान्की कृपादृष्टि सम्भव समझी जाती है। द्वितीयाधिपति उच्चका हो और उच्चका ही गुरु हो तथा द्वितीयेशपर गुरुकी पूर्ण दृष्टि भी हो तो ऐसा जातक भगवत्कृपाका पात्र बनता है। द्वितीयेश उच्च हो अथवा पंचम, नवम या एकादश स्थानमें विराजमान हो, बली लग्नेशका साथ हो और द्वितीयेश जिस स्थानमें विराजमान हो, उस स्थानका स्वामी केन्द्रवर्ती हो तो जातकके ऊपर प्रभुकी कृपा सम्भव है।

ग्रहयोग और ईश्वर-प्रेम

जन्मांगके पंचम स्थानसे ईश्वरके प्रति प्रेम, श्रद्धा, भक्ति आदिका विचार किया जाता है। नवम भावसे धर्मका विचार होता है। नवम भाव और पंचम भाव—दोनों भावोंको मिलाकर मानवकी ईश्वरीय भक्तिका पूर्ण विचार होता है और इस प्रकार भगवान्की कृपाका भी।

पंचम स्थानमें यदि कोई पुरुष ग्रह (सूर्य, मंगल एवं गुरु) बैठा हो या उसकी दृष्टि पड़ती हो तो जातकपर प्रभुकी कृपादृष्टि होती है। यदि पंचमभाव समराशिका हो, उसपर चन्द्रमा या शुक्रकी दृष्टि पड़ती हो अथवा उसमें चन्द्रमा या शुक्र विराजमान हो तो मानवके ऊपर लक्ष्मीकी कृपा होती है।

ईश्वरीय प्रेमकी प्राप्ति निम्न योगोंमें होती है—मानवके जन्मांगमें यदि किसी भावमें चार या पाँच ग्रह एकत्र हों तो ऐसा जातक प्रभुकी कृपाका सहारा लेकर संसारसे विरक्त होता देखा जाता है। यहाँ कुछ मतभेद भी है, ऐसे योगमें बली ग्रहके ऊपर ही विचार स्थित किया जाता है। निम्न स्थितियोंका विचार करनेपर प्रभुकी कृपाप्राप्तिका निश्चय किया जा सकता है—

१-चार या पाँच ग्रह (किसी भावमें) एकत्र हों।

२-उपर्युक्त ग्रहोंमें कोई एक बली हो।

३-बली ग्रह युद्धमें पराजित न हो।

४-बली ग्रह अस्त न हो।

५-इन ग्रहोंमें कोई दशम भावका स्वामी भी हो।

उपर्युक्त स्थितिमें मानव प्रभुकी कृपासे सांसारिक आसक्तिका त्यागकर प्रभुकी शरणमें चला जाता है।

ग्रहयोग और आध्यात्मिक जीवन

वर्तमान समयमें मानव विलासिताकी ओर अग्रसर हो रहा है। विलास-सामग्रीको प्राप्त करना ही उसका एकमात्र लक्ष्य बन रहा है, पर अब अमेरिकाके धनपति विलासितासे ऊबकर आध्यात्मिक जीवनकी ओर ललचायी आँखोंसे देखने लगे हैं, वेषभूषाकी नवीनता और तामसी-राजसी भोजन भी अब उन्हें उतना रुचिकर नहीं प्रतीत होता। अमेरिका आदि देशोंके बहुत-से लोग भारतीय आश्रमोंमें आध्यात्मिक जीवन बितानेके लिये आने लगे हैं। ज्योतिषशास्त्रमें आध्यात्मिक जीवनमें सफलताके योग भी बताये गये हैं।

यदि दशम भावमें मीन राशि हो और उसमें बुध या मंगल बैठा हो तो ऐसा जातक प्रभुकी कृपासे पवित्र जीवन व्यतीत करता है। दशमाधिपति नवममें हो और बली नवमेश बृहस्पति और शुक्र ग्रहसे दृष्ट या युत हो तो जातक प्रभुकी कृपा प्राप्त करनेके लिये अग्रसर होता है। यदि नवमाधिपति बली शुभ ग्रह हो, उसपर गुरु या शुक्रकी दृष्टि अथवा गुरु या शुक्रका साथ हो तो ऐसा जातक प्रभुकी कृपाका पात्र बन जाता है। यदि लग्नेश दशम स्थानमें और दशमेश नवम स्थानमें हो, पुनश्च दशमेश पापग्रहकी दृष्टिसे वंचित हो तो जातक शुभ-ग्रहोंकी शुभ दृष्टिके प्रभावसे भगवत्कृपाका अधिकारी बन जाता है। जन्मांगमें चन्द्रमा और बृहस्पतिके अन्तर्गत अन्य समस्त ग्रह स्थित हों तो ऐसा मानव निर्विघ्न भगवान्की शरणमें पहुँच पाता है। जन्मांगमें शनि और मंगलके अन्तर्गत सभी ग्रह हों तो ऐसा मानव भगवान्की कृपाका पात्र बनकर विश्वमें ख्याति भी अर्जित करता है।

कहानी—

'धर्मो रक्षति रक्षितः'

(श्री 'चक्र')

(१)

लखनऊसे लगभग दस मीलकी दूरीपर एक ग्राम था भगवानपुर। अब वह ऊजड़ हो चुका है, पता नहीं सरकारी कागजोंमें उसका नाम है या नहीं। गोमतीके सीधे-टेढ़े बहाव बड़ी अच्छी तरहसे गाँवसे दीखते थे। गाँव साधारणतया ब्राह्मणोंका था। कुछ दूसरी जातिके लोग भी रहते थे। ब्राह्मण आस-पासके गाँवोंके लोगोंके यज्ञ, हवन तथा संस्कार आदि कराकर जो कुछ भी मिलता, उसीसे जीवन-निर्वाह करते थे। कुछ कृषि भी कर लेते थे।

भगवानपुरमें पण्डित रामदयालजी सबसे साधारण स्थितिके थे। उनके यजमान भी थोड़े थे और वे कृषि भी नहीं करते थे। परिवारमें पत्नी, दो पुत्र एवं दो कन्याएँ थीं। जीवन-निर्वाह तो हो जाता था, किंतु कन्याओंके विवाहका प्रश्न उन्हें चिन्तित रखता था। किसी भी अच्छे कुलमें कन्याको पहुँचानेके लिये उस समय भी पर्याप्त दहेजकी आवश्यकता होती थी।

जबसे रामदयालजीका बड़ा पुत्र काशीसे ज्योतिष पढ़कर आया है, तबसे पण्डितजीके भाग्य कुछ जग-से गये हैं। पुत्रको उन्होंने हृदयको वज्र बनाकर विद्याध्ययनके निमित्त अपनेसे पृथक् किया था। बड़ी कठिनाईसे घरकी वस्तुएँ बेचकर उसको मार्ग-व्यय दिया था। काशीमें जाकर भी उस बच्चेको महान् कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। कहीं रहनेको स्थान नहीं, भोजनका प्रबन्ध नहीं, पण्डितोंसे परिचय नहीं। पर उसके दृढ़ निश्चयने समस्त कठिनाइयोंको पराजित किया। वह काशीसे ज्योतिषका प्रकाण्ड विद्वान् होकर ही लौटा। ढूँढ़-ढूँढ़कर विद्वानों एवं ज्योतिषियोंसे उसने गणितके रहस्योंका अध्ययन किया।

ज्योतिषाचार्य पण्डित श्यामसुन्दर शर्माकी गणितकी बारीकी इतनी अच्छी थी कि उनकी बातें अक्षरशः सत्य होने लगीं। पुत्रके पाण्डित्यने पिताका मस्तक ऊँचा कर दिया। रामदयालजीका सम्मान दूना हो गया। सब लोग उनका स्वागत करनेको उत्सुक रहते थे।

केवल सम्मानसे काम तो चलता नहीं। गृहकार्योंके लिये तो द्रव्य चाहिये। रामदयालजीको पुत्रकी विद्वत्तासे सम्मान तो मिला, पर वह कोरा सम्मान किस कामका? श्यामसुन्दर बहुत दयालु प्रकृतिके थे। वैसे भी उस समय कुछ मूल्य लेकर ज्योतिषकी गणना नहीं की जाती थी। जो कोई कुछ पूछने आता, गणित करके ज्योतिषाचार्यजी उसे बता देते। वह धन्यवाद देकर तथा प्रशंसा करता हुआ चला जाता। इस धन्यवाद और प्रशंसाने उन्हें रत्तीभर सहायता नहीं दी। आर्थिक स्थिति और भी कष्टमय हो गयी। बहनोंके विवाहका प्रश्न सामने था।

(२)

पण्डितजी! राममनोहरने अपनी सन्ततिके विषयमें कुछ पूछा था क्या? रामपुरके प्रसिद्ध जमींदार बाबू केदारसिंहने प्रणाम करते हुए ज्योतिषाचार्यजीसे पूछा।

'पूछा तो था; पर मैं बाल बनवा रहा था, अतः कोई उत्तर नहीं दे सका। बाबूजी सन्ध्याको फिर आनेके लिये कह गये हैं। आप विराजें; मैं सन्ध्या कर लूँ, फिर आपको ही बता दूँगा।' गीली धोतीको सुखाते हुए आचार्यजीने कहा।

'आप निश्चिन्त होकर सन्ध्या करें। मैं बैठता हूँ।' केदारसिंह चौकीपर बैठ गये। पण्डितजीके छोटे भाईने उन्हें जलपानके लिये पूछा, किंतु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। पण्डितजी लगभग आधे घण्टेमें सन्ध्या करके उठे। पत्रा लेकर वे आ बैठे।

थोड़ी देर एक कागजपर कुछ गणित करके उन्होंने बताया—'आपको भतीजा ही होगा।' जैसे केदारसिंहपर वज्र पड़ा हो। वे चिन्तित एवं उदास हो गये। कुछ देर चुप रहकर उन्होंने कहा 'पण्डितजी! मैं आपका बड़ा उपकार मानूँगा, बहुत आभारी होऊँगा, आप यह बात और किसीसे न कहें। जो कोई भी पूछे, उसे मूढ़गर्भ बता दें। आप इसके बदले जो भी सेवा चाहें, मैं करनेको प्रस्तुत हूँ।' उन्होंने पण्डितजीके चरणोंमें मस्तक रख दिया।

आश्चर्यसे पण्डितजीने कहा—'भला, यह कैसे हो

सकता है? मैं ब्राह्मण होकर झूठ तो बोलूँगा नहीं। फिर आपकी इसमें हानि ही क्या है?'

'हानिकी कुछ मत पूछिये। वह बहुत दिनोंसे पुत्रके लिये व्याकुल था। अन्तमें निराश होकर उसने संन्यास ले लेनेका निश्चय किया। बीचमें ही उसकी पत्नीको सन्ततिकी आशा हुई। आस-पासके वैद्य कहते हैं कि वह मूढ़गर्भ है। अब आपपर ही सारा निश्चय है। यदि आपने भी मेरा समर्थन कर दिया तो वह संन्यासी हो जायगा। उसकी स्त्री मेरी रक्षामें रहेगी, तब मैं उसके गर्भको किसी प्रकार नष्ट करा दूँगा। आपका अयश भी नहीं हो सकेगा। वह मेरी सम्पत्तिके आधेका भागीदार है। यदि उसके पुत्र हो गया तो मुझे उस सम्पत्तिसे वंचित रहना होगा। मैं इस कार्यके लिये आपको सहस्र मुद्राएँ दूँगा।'

'राम! राम!! झूठ बुलाकर भ्रूणहत्याका पाप भी आप मेरे ही सिर चढ़ाना चाहते हैं? मैं एक परिवारके नाशका कारण नहीं बन सकता!' यहाँसे काम चलता न देखकर केदारबाबू आचार्यजीके पिताके पास पहुँचे। उन्होंने वृद्ध ब्राह्मणको भली प्रकार भ्रममें डाला। दस सहस्र मुद्राओंतकका प्रलोभन दिया। सीधे-सादे रामदयालजी लोभमें आ गये। उन्होंने पुत्रसे कहा—'तनिक-सा कहना ही तो है, कह दो!' एकान्तमें ले जाकर समझाया 'दो लड़कियोंका विवाह करना है। घरमें भोजन-वस्त्रके भी लाले पड़ रहे हैं, इसमें पाप ही कौन-सा धरा है! अरे प्रायश्चित्त कर लेंगे। तीर्थ कर आना, यज्ञ और दान कर लेना। जीवन तो सुखसे बीतेगा।'

नम्र पुत्रने विनीत स्वरमें कहा—'पिताजी! क्षमा करें। मैं इस आज्ञाका पालन करनेमें असमर्थ हूँ। मुझसे एक पूरे वंशका सर्वनाश नहीं हो सकेगा।' पण्डितजी जानते थे कि लड़का आग्रही है। वह जिस बातपर अड़ जाता है, उसे नहीं छोड़ता। उनके मुखपर निराशा दौड़ गयी। कुछ रुष्ट स्वरमें बोले, 'जो तुम्हारी समझमें आये, करो। भाग्यमें तो भीख माँगना लिखा है, लक्ष्मी कैसे अच्छी लगेगी!' नेत्र भर आये, पर विद्वान् पुत्रने पिताको प्रत्युत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप वहाँसे उठ आया।

केदारबाबूने पुनः समीप आकर कहा—'पण्डितजी! पन्द्रह हजार दूँगा। सोच लीजिये! आप मुझसे शत्रुता कर रहे हैं।' उन्हें उत्तर मिला—'बाबूजी! ये मुद्राएँ आप दीनोंको बाँट दें, पुण्यकार्यमें लगा दें, आपका कल्याण होगा। मेरी क्या शक्ति कि आपसे शत्रुता करूँ! आपकी न्यायतः सेवा करनेको मैं सदा प्रस्तुत हूँ। हाँ, मुझसे यह पाप नहीं हो सकेगा।'

'अच्छा! देखता हूँ कि तुम कितने बड़े धर्मात्मा हो।' क्रोधमें बड़बड़ाते हुए केदारबाबू वहाँसे चले गये।

(३)

दिनमें ही डाका पड़ा। बड़े हट्टे-कट्टे, काले-कलूटे कोलोंने पण्डित रामदयालजीके घरकी एक-एक वस्तु लूट ली! लड़कियोंके शरीरपरके आभूषण भी उतार लिये। घरमें आग लगा दी। गाँवके लोगोंका साहस नहीं हुआ कि उनका प्रतिकार करें। उन सबोंने ज्योतिषाचार्यजीको बहुत पीटा। अधमरा-सा करके छोड़ दिया। घरके दूसरे लोगोंको भी पीटा।

घर जलकर छार हो चुका था। न तो रहनेको स्थान था और न पहननेको वस्त्र। केदारके डरसे कोई आश्रय देनेका साहस भी नहीं कर सकता था। उसकी दुष्टताका आतंक गाँवभरपर छाया हुआ था। लोग उसके नामसे काँपते थे। पण्डितजीको सबसे अधिक दुःख अपनी पुस्तकोंके जलनेका था।

उसी समय एक आदमी आया। उसने आचार्यजीके हाथमें एक पत्र दिया। पत्रमें किसीका नाम नहीं था। उसमें लिखा था 'मुझसे दुराग्रह करनेका यह फल है। अब भी मेरी बात मान लो तो घर बनते एक घण्टा भी नहीं लगेगा। मैं पन्द्रहके बदले बीस हजार दे दूँगा। यदि अब भी बुद्धि ठिकाने न आयी हो तो मारे-मारे भटको। देखता हूँ कि तुम्हें कौन सहायता देता है।'

पण्डितजीने उस आदमीसे कलम माँगकर पत्रकी पीठपर लिख दिया, यदि शास्त्रोंका यह वाक्य—'**धर्मो रक्षति रक्षितः**' सत्य है तो मेरी भी इस काण्डमें रक्षा हुई है। भगवान्‌ने जो भी किया, वह कल्याणके लिये ही होगा। मुझसे पाप नहीं हो सकेगा; न्याययुक्त जो आपकी सेवा हो, उसके लिये मैं सदाकी भाँति अब भी

प्रस्तुत हूँ।' पत्र उन्होंने उसी आदमीको दे दिया।

(४)

श्यामसुन्दरजीकी प्रसिद्धि बहुत दूर-दूरतक हो चुकी थी। चित्रकूट-नरेशका दूत उन्हें ढूँढ़ता हुआ लेनेके लिये वहाँ आ पहुँचा। यह ब्राह्मण-परिवार आश्रयहीन अपने उसी भस्मावशेष घरमें बैठा हुआ भाग्यको कोस रहा था। राजदूतको गाँवमें आते ही समस्त घटना ज्ञात हो गयी। उसने पूरे विप्र-कुटुम्बको रथपर बैठा लिया और चित्रकूटको ले चला।

जाते-जाते आचार्यजीने राममनोहरबाबूके यहाँ समाचार भेज दिया कि गणितसे यह सिद्ध हुआ है कि उन्हें पुत्र होगा। उस समाचारमें अपने कष्टका नाम भी नहीं था।

चित्रकूटसे थोड़ी दूरपर उस समय महाराज उदयकुमारसिंहकी राजधानी थी। दूतने पण्डितजीको अतिथिशालामें ठहराकर महाराजको सूचना दी। समाचार पाते ही महाराजने अपना सरोवरपरका एकान्त भवन ज्योतिषीजीको प्रदान कर दिया।

विद्वान्‌का सब जगह सम्मान होता है। अपनी विद्या और धर्मनिष्ठाके कारण श्यामसुन्दरजी महाराजके गुरु हो गये। और भी कई रियासतोंके अधिपतियोंने भी उन्हें अपने यहाँ बुलाकर सम्मानित किया। उनकी बहनोंका विवाह रीवाँ और बूँदी-जैसे राज्योंके राजपुरोहितोंके साथ हो गया।

जन्मभूमि किसीको भूलती नहीं। श्यामसुन्दरजीने थोड़े ही दिन बाद अपनी जन्मभूमिके उस टूटे-फूटे, भस्मकी ढेरी हुए मकानके स्थानपर एक विशाल भवन बनवाया। उनका परिवार प्राय: वहीं रहता था। आवश्यकता होनेपर वे प्राय: राज्यमें आमन्त्रित होते थे।

प्रारब्धवश या कालके फेरसे केदारबाबूका परिवार बीमारियोंकी भेंट हो गया। उनकी सम्पत्ति चोरोंने हड़प ली। भूमिपर ऋण हो गया। वृद्धावस्थामें उनके लिये रहने एवं भोजनका भी प्रबन्ध नहीं रह गया। उनके पहलेके कृत्योंका स्मरण करके कोई उन्हें सहायता भी नहीं देता था।

केदारबाबूकी दशा देखकर श्यामसुन्दरजीको दया आ गयी। उन्होंने उन्हें अपने भवनमें द्वारके समीपका एक सुन्दर कमरा दे दिया। भोजन पण्डितजीके घरसे उन्हें मिल जाता था। वृद्ध केदारका अब प्राय: पूरा समय पूजा-पाठमें लगता था। वे किसीसे कुछ बोलते न थे। एकान्तमें ही रहते थे। कभी-कभी अपने-आप कह उठते थे— **'धर्मो रक्षति रक्षितः।'**

प्रारब्धकर्म एवं ज्योतिषशास्त्र

(प्रो० श्रीपारसनाथजी द्विवेदी)

श्रुति, स्मृति आदि शास्त्रोंमें प्राणिमात्रका जन्मायुर्भोग कर्माधीन कहा गया है। ज्योतिषशास्त्र ग्रहाधीन कहा गया है। ज्योतिषशास्त्र वेदोंका अंग है। दोनों तथ्य प्रामाणिक हैं। प्रश्न यह होता है कि यदि ग्रहाधीन है तो कर्मोंकी क्या उपयोगिता, यदि कर्माधीन है तो ग्रहोंकी क्या उपयोगिता है? इसी तरहके अन्य प्रश्नोंपर यहाँ विचार प्रस्तुत हैं—

आकाशादिभूतोंमें जो व्यापार है उसे आधिभौतिक, ग्रहनक्षत्रादिमें जो व्यापार है उसे आधिदैविक एवं प्राणिशरीरादिमें जो व्यापार है उसे आध्यात्मिक कर्म कहते हैं। त्रिविध संसार-व्यापारका प्रयोजन पुरुषको भोगापवर्गकी प्राप्ति ही है।

आध्यात्मिक व्यापार कायिक-वाचिक-मानसिक है। शरीरसे जो कर्म वह कायिक, वाणीसे जो कर्म वह वाचिक, मनसे जो कर्म वह मानस है। इन्द्रियोंके कर्मको भी मानसिकमें अन्तर्भूत समझना चाहिये। ये सभी कर्म प्राणिमात्रमें प्राय: देखे जाते हैं। कोई भी कर्म निष्फल नहीं होता है। वह चाहे जड़गत हो या चेतनगत हो। जैसे कर्म निष्फल नहीं है, वैसे ही निर्हेतुक भी नहीं है। इनका कोई-न-कोई हेतु, कोई-न-कोई फल अवश्य है। किन-किन कर्मोंका क्या फल है, क्या हेतु है—इन सब विषयोंका स्पष्ट निर्णय स्मृतिग्रन्थोंमें शुभ एवं अशुभरूपसे दो भागोंमें विभक्त किया जाता है। शुभ कर्म इसलिये है कि वह सुखजनक है। अशुभ इसलिये है कि दु:खजनक है। सुख-

दुःखका हेतु कर्म ही है। कर्म एवं फलसांकर्य न हो, अतः यह कहना चाहिये कि जिस प्राणीका कृत शुभ कर्म या अशुभ कर्म है, उसका फल भी उसी प्राणीको मिलता है। अनुकूलवेदनीयता सुख है। प्रतिकूल-वेदनीयता दुःख है। सुख-दुःखके भी आधिदैविकादिरूपसे तीन भेद हैं। देवोंसे, भूतोंसे एवं शरीरादिसे अनुभूयमान सुख-दुःख उक्त तीन प्रकारके होते हैं।

सुखदुःखफलात्मक कर्मका नाश हो सकता है। अतः इसके नाशक हेतुमें मुमुक्षुकी जिज्ञासा होती है। अतएव सांख्यकारिकामें कहा गया है—

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्॥

(सा०का० १)

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः (योगदर्शन २।१२) **तत्र पुण्यापुण्यकर्माशयः कामलोभमोहक्रोधप्रसवः** (व्यासभाष्य) अर्थात् पुण्यापुण्यात्मककर्म-संस्कार ही क्लेशके मूल हैं। यह काम-लोभ-मोह-क्रोधके जनक हैं। ये इसी जन्ममें तथा जन्मान्तरमें वेदनीय हैं।

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ। य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा। (छा०उ० ५।१०।७)

इत्यादि श्रुति अर्थात् जो शुभकर्म करते हैं, वे ब्राह्मणादि शुभ योनियोंमें जन्म लेते हैं तथा जो पापकर्म करते हैं, वे कपूय अर्थात् पापयोनि-जैसे चाण्डालादिमें जन्म लेते हैं। स्मृति भी कहती है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

(कठोप० २।२।७)

अर्थात् स्वकर्मानुसार कुछ प्राणी ब्राह्मणादि योनियोंमें तथा कुछ वृक्षलतादि स्थाणुभावको प्राप्त होते हैं। इन उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि प्राणीके कर्मानुसार ही गति अर्थात् जन्म, आयु और भोग प्राप्त होते हैं।

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः' (योगदर्शन २।१३) इस योगसूत्रके अनुसार कर्मके मूल अविद्याके रहनेपर जन्म, आयु और सुख-दुःख भोग ही कर्मविपाक है। अतः कर्म ही जीवन-चक्रका प्रवर्तक है।

इन कर्मोंके शास्त्रमें तीन विभाग किये गये हैं। संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म एवं क्रियमाण कर्म। संचित कर्म वह है, जो अतीत शरीरादिसे प्राणीने अर्जित कर रखा है। वे संचित कर्म संस्काररूपसे प्राणीके आत्मा या अन्तःकरणमें फलभोगपर्यन्त विद्यमान रहते हैं।

ये संचित कर्म ब्रह्मविद्यासे भस्म हो जाते हैं। अन्यथा बिना भोगके निवृत्त नहीं होते हैं। इन्हीं संचित कर्मोंमेंसे फलोन्मुख कर्मराशि शरीरके आरम्भक होते हैं, जिन्हें प्रारब्ध कर्म कहा जाता है। जिन कर्मोंके फलको प्राणी वर्तमान शरीरसे भोगता है। इन कर्मोंसे प्राप्त शरीरसे जो कायिक-वाचिकादि कर्म निष्पन्न होते हैं, वे क्रियमाण कर्म कहे जाते हैं। क्रियमाण कर्म ही कालान्तरमें संचित कर्म होता है। इस तरह कर्मोंका अन्त नहीं होता है। संचितसे प्रारब्ध, प्रारब्धसे क्रियमाण, क्रियमाणसे संचित इस तरह घटी यन्त्रकी तरह यह कर्मचक्र चलता रहता है। प्राणी कर्मचक्रसे मुक्त नहीं हो पाता है। इसी कर्मचक्रको भवबन्धन, संसार आदि शब्दोंसे कहा जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि कर्म ही कर्मका जनक है। सभी कर्मोंका मूल अविद्या है। अविद्या आत्मविषयक अज्ञानको कहते हैं। कर्म ही बन्ध (सुख-दुःख-मोह)-का कारण है। ब्रह्मविद्या ही मोक्ष (आत्माकी स्वरूपावस्थिति)-का कारण है। जबतक बन्धका नाश नहीं, तब तक जीवकी मुक्ति नहीं।

आत्मविषयक विद्यासे संचित कर्म जल जाता है। प्रारब्ध कर्म भोगसे नष्ट हो जाता है तथा क्रियमाण कर्म भी ज्ञानाग्निके द्वारा भर्जित बीजकी तरह शरीरान्तरका आरम्भक नहीं होता है। इस तरह जीवकी मुक्ति होती है। श्रुति कहती है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

(मुण्डकोप० २।२।८)

अर्थात् परावर परब्रह्मके साक्षात्कार होनेपर जीवकी हृदयग्रन्थि (आत्मानात्माका अध्यास) अर्थात् अनात्म-

शरीरादिमें आत्मभाव नष्ट हो जाता है। उसके सभी संशय छिन्न हो जाते हैं तथा सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।

(गीता ४। ३७)

ज्ञानरूपी अग्नि सभी कर्मोंको नष्ट कर देती है। इस तरह '**कर्मणा बध्यते जन्तुः विद्यया च विमुच्यते।**'

बन्धका हेतु कर्म एवं मोक्षका हेतु विद्या है।

ज्योतिषशास्त्र—ज्योति:शास्त्रको वेदका नेत्र माना जाता है। उसके तीन स्कन्ध प्रसिद्ध हैं—मुहूर्त, गणित एवं जातक। जातकको होरा भी कहा जाता है। अहोरात्र शब्दके आदि-अन्तके वर्णोंको छोड़कर लाघवाद् होरा शब्दकी प्रसिद्धि है। मुहूर्त ज्योतिष वेदप्रतिपादित कर्मोंके निष्पादनके लिये उचित कालका ज्ञान कराता है। गणित ज्योतिषको सिद्धान्त ज्योतिष शब्दसे भी कहते हैं। इसमें ग्रहोंकी गतियोंका विवेचन होता है। जातक—होराशास्त्रमें कुण्डलीचक्रके द्वादश भावोंमें ग्रहोंकी स्थितिके अनुसार प्राणीके जन्म, आयु, कर्म आदिका विचार किया जाता है।

कुण्डलीके भावोंमें पड़े उच्च-नीच, अस्त-सुप्त, मृतादि ग्रहोंके तथा ग्रहयोगोंके अनुसार मनुष्यके कर्मादिका विचार होता है।

प्रश्न होता है कि क्या ग्रहोंकी अवस्थितिके अनुसार ही प्राणी जीवनमें सुकृत, दुष्कृत करता है—सुख-दुःखकी प्राप्ति करता है तथा अन्तमें मारक ग्रहके प्रभावमें मर जाता है।

जातक-शास्त्रका निष्णात विद्वान् दैवज्ञ कुण्डलीगत ग्रहस्थिति देखकर जातकके पूर्वजन्म-इहजन्म तथा अग्रिम जन्म बता सकता है; सद्योजातके भविष्यत्-कालमें आयुर्विद्या, धन, मित्र, धर्म-कर्मादिको स्पष्टरूपसे भाषित कर सकता है; विविध राजयोग, महापुरुषयोग, सुनफा, अनफा, दरिद्रादि योगोंके द्वारा भविष्यत्के रहस्यको ज्योतिर्विद् खोल सकता है; जातकके आयु:काल, रोग, दुःख-दारिद्र्य, जन्मान्तर-गति, मृत्यु, तद्देशकाल सब कुछ ग्रहस्थितिसे जान सकता है; विद्या, वित्त, सुत, मित्र, कलत्र, भूमि, भवन, यात्रादिको सम्यक्तया जान सकता है। एक ही शब्दमें कहना चाहिये कि जातकके त्रिकालमें जन्म और आयुर्भोगको ज्योति:शास्त्रके द्वारा जाना जा सकता है।

अब विचारणीय है कि जातकके शुभाशुभ कर्मफल क्या ग्रहोंके तत्तत्स्थान अवस्थितिवशात् हैं अर्थात् ग्रह ही जातकको सुख-दुःख देनेवाले तदनुकूल कर्मोंमें प्रेरित करनेवाले हैं या स्वोपार्जित कर्म। यदि कहें कि कर्मानुसार ग्रहस्थिति एवं ग्रहस्थितिवशात् कर्म होता है तो अन्योन्याश्रय होगा। यदि अनादिकाल-प्रवाहपतित होनेसे बीज-अंकुरके समान अन्योन्याश्रय दोष नहीं भी माना जाय तब भी एक प्रश्न उठता है कि सुदूरवर्ती नभ: प्रांगणमें मन्द और तीव्र गतिसे चलनेवाले जड़ ग्रहों एवं नक्षत्रोंका जातकके जन्मादिसे क्या सम्बन्ध है? स्वभावत: स्वकक्षामें गतिमान् ग्रहोंको मनुष्यके जीवनसे क्या लेना-देना है।

यदि कहें कि पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाशादि पंचमहाभूत जैसे शरीरादिके हेतु हैं, उसी प्रकार ग्रहादि भी हेतु होंगे; क्योंकि किसी भी कार्यके कारण पाँच होते हैं, जैसे गीताशास्त्र कहता है—

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥

(गीता १८। १४)

यहाँपर शरीरादिके अधिष्ठान पंचभूत, कर्ता, ईश्वर, करण, सहकारी कारण तथा विविध चेष्टाकरण व्यापार एवं दैव (प्रारब्ध) पूर्वजन्मार्जित कर्म हेतुओंमें सहकारी कारणमें ग्रह-नक्षत्रादिका स्थितियोग अन्तर्भूत हो सकता है तो भी यह युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि कार्यसे कारण असम्बद्ध नहीं होता है। ग्रहोंसे उत्पत्स्यमान या उत्पद्यमान या उत्पन्न शरीरसे सम्बन्ध नहीं बन पाता है। कथंचित् परम्परा-सम्बन्ध मान भी लें तो भी वे ग्रहनक्षत्रादि जन्मादिके कारण नहीं होंगे अन्यथासिद्ध ही होंगे। देश, काल, ईश्वर, अदृष्ट आदिके समान ग्रहनक्षत्रादि भी सामान्य कारण होंगे न कि तत्तत् फलोंके लिये विशेष कारण, अत: ज्योति:शास्त्रमें ग्रहादिफलवर्णन असंगत प्रतीत होता है।

उत्तर—ऐसी बात नहीं है। उक्त पंचविधकारण-कल्पोंमें देश-काल ईश्वर अदृष्ट साधारण कारणोंमें ग्रहादिकी भी गणना करनी चाहिये। वे सभी ग्रहनक्षत्र पंचभूतादि स्वकृतकर्म देश-काल ईश्वर अदृष्टादि कार्यके हेतु होते हैं। इनमें कोई साधारण, कोई असाधारण कारण होते हैं। जैसे सूर्यचन्द्रका जातक जन्मादिमें स्पष्ट

हेतुता या प्रभाव प्रसिद्ध है, उसी प्रकार मंगलादि ग्रहोंका भी स्वरश्मि, स्वोदय, स्वदृष्टि, स्वास्तमन, स्वोच्चता, स्वनीचत्व, बालत्व, युवत्वादिका प्रभाव जातक-जन्मादिपर स्पष्टतया होता है। ग्रहोंका स्वरश्मिद्वारा सूर्य-चन्द्रकी तरह जातकके साथ सम्बन्ध भी उपपन्न हो जाता है। अतः ग्रहनक्षत्रादिका जातकके ऊपर प्रभाव अनिवार्य है।

किस ग्रहका कौन-सी स्थितिमें कौन-से भावमें कैसा प्रभाव है, इन सभी तथ्योंका विस्तृत, स्पष्ट एवं सत्य विवेचन जातक-शास्त्र करता है। मनुष्य-जीवनका प्रभावक चेतन माता-पिता गुरु-मित्रादि ही हों जड़ न हों यह नहीं कहा जा सकता है। जैसे सूर्य, चन्द्रादिके प्रभावोंमें आकर मनुष्य आतपशैत्यादिके अनुकूल कर्म करता है, उसी प्रकार ग्रहान्तर प्रभावसे भी कर्ममें प्रेरणा समझना चाहिये। अतः ज्योतिष्पिण्डोंके जन्मादिपर प्रभावका निषेध अज्ञानी पुरुष ही कर सकता है।

शंका—तब तो यही कहना चाहिये कि '**ग्रहाधीनं जगत् सर्वम्**'। समस्त प्राणीका जन्म, आयु, भोगभृति, जन्मान्तर कर्म आदि ग्रहोंसे ही संचालित होते हैं। शुभाशुभ फलदाता ग्रह ही हैं। सुकृत-दुष्कृतके हेतु ग्रह ही हैं। आढ्यता, दरिद्रता, रोगिता, नीरोगिता, विद्यावत्ता, मूर्खता आदि समस्त भावोंके हेतु ग्रह ही हैं। व्यर्थ ही संचित, क्रियमाण एवं प्रारब्ध कर्मराशिकी हेतुत्वेन स्वीकृति है।

उत्तर—नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि गुण, स्वरूप, स्वभावगत्यादिसे नियत ग्रहनक्षत्रादि जीवन फलकर्मादिके वैविध्यके हेतु नहीं हो सकते हैं। अवश्य ही ग्रहोंसे अतिरिक्त हेतुवैषम्य, फलवैषम्यके लिये कारण मानना पड़ेगा। वह कारण प्रारब्धादि कर्म ही है। अन्यथा कर्मकी निष्फलता सिद्ध होगी। यदि कर्मकी निष्फलता सिद्ध होगी तो वेदादिशास्त्रप्रतिपादित विधि-निषेधात्मक समस्त कर्म व्यर्थ हो जायँगे। कर्म प्रतिपादक शास्त्र अप्रामाणिक हो जायँगे। दूसरी बात यह है कि उन ग्रहादिकोंकी विविध फलहेतुताका भी हेतु होना चाहिये। अन्यथा एक ही स्वभावनियत ग्रह किसीके लिये शुभद किसीके लिये अशुभद कैसे होगा? यदि कहें कि जन्मकालमें तत्-तद्भावस्थितिवशात् ग्रहान्तरदृष्टिवशात् स्वोच्चादि अवस्थादिवशात् वह विविध फलका हेतु हो सकता है तो भी प्रश्न होता है कि क्यों किसीके जन्मकालमें ग्रहोंकी अनुकूलता-प्रतिकूलता होती है। इसका भी कोई नियामक होना चाहिये। अचेतन ग्रहोंमें स्वेच्छा प्रवृत्ति तो नहीं कही जा सकती है। अतः इसका भी कारण प्राणीका स्वोपार्जित कर्म ही है। अतः यह कह सकते हैं कि जीवनकालमें समस्त ग्रहादि भूतादिकी अनुकूलता-प्रतिकूलताका वास्तविक हेतु स्वकृत कर्म ही है।

क्योंकि जन्म, आयु, भोगादि कर्माधीन है, यह तथ्य शास्त्रसम्मत युक्तिसम्मत है। इसका निराकरण नहीं किया जा सकता है। स्वकृतकर्मके कारण ही ग्रहादि अनुकूल-प्रतिकूल फलदाता होते हैं।

स्वकृतकर्मानुसार फलदान सहकारी होनेके कारण ही ग्रहोंमें उच्चत्व, नीचत्व, बालत्व, वृद्धत्वादिकी कल्पना है अन्यथा नभश्चारी स्वकक्षामें नियतगति ग्रहोंमें क्या उच्चत्व, नीचत्व, बालत्वादि है।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि स्वकृत कर्मफल निष्पादकतया ग्रहादिकोंका उपयोग है। सुकृत-दुष्कृत जो प्रारब्धादि कर्म है, उसका फल जो सुख-दुःखादि है—उसका निष्पादन चेतन आत्मा आत्मेतर जड़वर्गके बिना कैसे कर सकता है? अतः कर्मफलनिष्पादक शरीरादिसे अतिरिक्त भूतमात्र होता है। शरीरादि तो भोगके आयतन हैं। कुण्डली स्वकृतकर्मानुसार शुभात्मक एवं अशुभात्मक होती है।

शंका—तो क्या ग्रहयोग शुभाशुभके सूचकमात्र हैं? जैसे शकुन शुभाशुभके सूचक होते हैं?

उत्तर—नहीं, ग्रहयोग सूचकमात्र नहीं हैं। यद्यपि ग्रहस्थिति देखकर भविष्यत् फलकी सूचना समझी जा सकती है, फिर भी ग्रहयोगोंकी उपयोगिता सूचनामात्र देनेमें नहीं है, अपितु फलनिष्पादकतया उपयोग है। वे स्वयं अन्नपानादिकी तरह सुख-दुःखात्मक फल-निष्पादनमें सहकारी होते हैं। शकुनादि तो सूचकमात्र हैं। सुख-दुःखके हेतु नहीं होते हैं।

शंका—कर्म एवं ग्रहादिस्थिति दोनों सुख-दुःखके हेतु कैसे हो सकते हैं?

उत्तर—सुख-दुःखात्मक फलका प्रधान उपादान

हेतु तो सुकृत-दुष्कृत ही हैं। ग्रहादि तो निमित्त कारणमात्र होते हैं। कर्मके अनुसार ही जातककी ग्रहस्थिति भी बनती है।

राजयोग, सुखयोग, वित्त, पुत्र, स्त्री आदि योग, आयुष्य, धर्माधर्मरोग, दुःखादियोग भी कर्मानुसार ही होता है। यह निर्विवाद है।

शंका—कर्मके मूल क्या हैं? क्यों कोई शुभ कर्म कोई अशुभ कर्म करता है?

उत्तर—इसका भी हेतु पूर्वजन्मार्जित कर्म ही है। पूर्व-पूर्वकर्मजन्य संस्कार उत्तर-उत्तरफलभोग एवं कर्मके हेतु होते हैं।

कर्म एवं भोग दोनोंमें अनादिकालसे बीजवृक्षकी तरह हेतु-फलभाव व्यवस्थित है।

शंका—कर्म क्या आत्माका धर्म है या अनात्माका?

उत्तर—कर्म अनात्माका धर्म है। अनात्मा जड़ है, कर्म भी जड़निष्ठ है। आत्मा निष्क्रिय, निर्गुण, निर्विकार है। अनात्मा प्रकृतिगत कर्मोंका आरोप आत्मामें होता है। अतः आत्मा अपनेको कर्ता-भोक्ता समझता है। प्रकृतिगत कर्मोंका आरोप आत्मामें अविद्याके कारण होता है। गीता भी कहती है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

(गीता ३। २७)

अतः कोई भी व्यापार प्रकृतिनिष्ठ ही है। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, भूतमात्रा आदि प्रकृतिकी ही विक्रिया है। अतः सभी कर्मोंका आत्मामें अध्यासका मूल अविद्या ही है। अविद्या आत्मानात्माके अध्यासको कहते हैं।

शंका—कोई कर्म शुभ एवं कोई कर्म अशुभ क्यों होता है?

उत्तर—कर्म स्वभावतः न शुभ है न अशुभ है। अपितु जो पुण्यजनक है, वह शुभ है तथा जो पापजनक है, वह अशुभ है। कौन कर्म पापजनक है तथा कौन कर्म पुण्यजनक है, इसका निर्णय शास्त्रके अधीन है। कर्तव्याकर्तव्यका विवेक शास्त्र कराता है—'**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ**' (गीता १६। २४)—यह गीता-वचनप्रमाण है।

तात्पर्य यह है कि शास्त्रविहित कर्म पुण्यजनक एवं शास्त्रसे निषिद्ध कर्म पापजनक होते हैं। पुण्यपापजनक कर्मोंके प्रेरक होनेसे ग्रह भी शुभाशुभ होते हैं। ग्रह भी स्वभावतः पुण्यपापकर्मके प्रेरक नहीं होते हैं, अपितु प्रारब्धकर्मवशात् स्थान-दृष्टि आदिके कारण पुण्यपाप-जनक होते हैं।

प्रारब्ध कर्मके अनुसार ही मन, बुद्धि, इन्द्रियशरीर, वित्त, पुत्र, स्त्री, मित्र, ग्रहयोग, जन्मादि सभी प्राप्त होते हैं।

अथवा यह भी कहा जा सकता है कि ग्रहयोग सुख-दुःखादिजनक कर्मोंके सूचक हैं। ग्रहोंका रश्मि-प्रभाव तो पृथक् वस्तु है। जैसे सूर्यचन्द्रके रश्मिका प्रभाव तो सबके लिये समान ही है, पर कुण्डलीमें सूर्यादि स्थानवशात् विभिन्न फलकी सूचना मिलती है। अतः कुण्डलीचक्र प्राणिमात्रके शुभाशुभके सूचक हैं।

शंका—यदि कर्मानुसार ही पुण्य-पाप होता है, ग्रह सूचकमात्र हैं तो ग्रहशान्ति, ग्रहपूजा, होमादिका विधान तो व्यर्थ ही है?

उत्तर—नहीं, ग्रहशान्त्यादिका विधान व्यर्थ नहीं है। शास्त्रप्रामाण्यात् दुष्कर्मके प्रशान्त होनेपर वे ही ग्रह पीड़ाकर नहीं होते हैं। इस अर्थमें यह समझना चाहिये कि अनिष्टारिष्टादिके सूचक ग्रहोंको देखकर जो शान्त्यादि जप-होमादि विधान है, वह दुष्कर्म-शमनके लिये ही है। दुष्कृतका प्रशमन होनेपर ही ग्रह यदि कारक है, यदि वा सूचक हैं तो दोनों पक्षोंमें सुखद हो जाते हैं। दुष्कर्मके कारण ही ग्रह पापजनक होते हैं। अतः ग्रहशान्त्यादिका विधान व्यर्थ नहीं है। इस तरह प्रारब्ध कर्मसे नियमित जन्म, आयु भोगादिमें ग्रहोंका उपयोग तदनुसार फलनिष्पादनद्वारा है। केवल सूचकत्वपक्ष समुचित नहीं प्रतीत होता है। कर्मानुसार फलमें सहकारी कारण ग्रहयोगादि होते हैं। इस तरह प्रारब्ध कर्म एवं ज्योतिषशास्त्रका परस्पर समन्वय उपयुक्त प्रतीत होता है। ऐसा भी देखा जाता है कि दो व्यक्तियोंका एक ही

लग्न नक्षत्रग्रहादि योगमें जन्म होनेपर भी स्वभाव गुण-कर्ममें महान् अन्तर होता है। इसका हेतु क्या है? यदि केवल ग्रहादि योग ही हेतु है तो दोनों व्यक्तियोंका रूप, रंग, कर्म, ज्ञान, स्वभाव एक होना चाहिये।

यदि कहें कि देशकालादिका भेद हो सकता है तब तो ग्रहातिरिक्त कारणकी स्वीकृति दे दी गयी। यदि समान देश-काल भी हो तब भी कर्म-स्वभाव-गुणादिमें भेद देखा जाता है। इन सभी भेदोंका हेतु प्रारब्ध कर्म है। ***'करम प्रधान बिस्व करि राखा'*** गोस्वामी तुलसीदासजीका वाक्य अकाट्य है। जगत्‌की सृष्टि ही प्राणीके अभुक्त कर्म-फल भोगके लिये होती है। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, चार्वाक, जैन, बौद्ध कोई भी हो एक स्वरसे सभीको स्वीकार्य है कि जगत्-रचना प्राणि-कर्मफलभोगार्थ है। कर्म-वैचित्र्य होनेसे भोग-वैचित्र्य, भोग-वैचित्र्यसे भोग-साधन-वैचित्र्य होता है।

प्रधान प्रकृतिका महत्तत्त्वादिरूपसे परिणाम पुरुषको तत्कृत धर्माधर्मानुसार भोग एवं अपवर्गके लिये है। न्यायमतमें द्व्यणुकादि क्रमसे कार्यारम्भ प्राणिकर्मफल भोगके लिये है।

यदि सृष्टि भगवल्लीला है तब भी वह भगवल्लीला प्राणियोंके कर्मानुसार सुख-दुःखादिभोगार्थ एवं मोक्षार्थ ही है।

कल्पके आदिमें जीवोंके अभुक्त कर्मोंके फल देनेके लिये भोग साधनसाध्य जगत्‌की रचनाके लिये ईश्वरमें **'इदानीं स्त्रष्टव्यम्'** इस प्रकारकी सिसृक्षा होती है। ईश्वरके उक्तविध संकल्पसे सृष्टि होती है। सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर प्राणियोंके कर्मोंकी आलोचनाकर तदनुकूल सामान्यतः एवं विशेषतः भोग-साधनकी सृष्टि करता है। ग्रहनक्षत्रादि योग भी पृथिवी, जल, तेज आदिकी तरह कर्मजन्य भोगके साधक ही हैं। प्राणीके लिये कर्मानुसार ही वे सभी साधन सुख-दुःखप्रद होते हैं। मूलकारण तो प्रारब्ध कर्म ही है।

कर्मोंके क्षयके दो ही साधन हैं—भोग एवं आत्मतत्त्वज्ञान। भोगसे कर्मक्षय सम्पूर्णतया नहीं हो सकता। प्रारब्ध कर्मका भोगके द्वारा क्षय होनेपर भी क्रियमाण कर्मोंसे प्रतिक्षण समृद्ध होनेवाली संचित कर्मराशिका अन्त नहीं हो सकता है। अतः संसारसन्तानका अन्त नहीं होता है।

शंका—कर्मोंका अन्त क्यों नहीं हो सकता है? नित्यकर्मानुष्ठान सन्ध्यावन्दनादि करनेसे पापकी प्राप्ति नहीं होगी। **'अकरणे प्रत्यवायजनकत्वं नित्यत्वम्।'** अर्थात् जिन कर्मोंके न करनेसे पाप लगे वे कर्म नित्य हैं, जैसे सन्ध्यावन्दनादि। यागादि काम्य कर्मोंको भी नहीं करेंगे, अतः पुण्यकी प्राप्ति नहीं होगी। निषिद्ध कर्मोंको भी नहीं करेंगे, अतः पापकी प्राप्ति नहीं होगी। संचित कर्मोंका शनैः-शनैः अनेक जन्मोंमें भोगसे नाश हो ही जायगा। इस प्रकार कर्मका क्षय सम्भव हो सकता है।

उत्तर—नहीं, सभी कर्मोंकी भोगसे समाप्ति नहीं हो सकती है; क्योंकि भोग-कालमें भी क्रियमाण कर्म होता है। उसका फल शेष रहेगा। यदि उसको भी भोगसे समाप्त करेंगे तो भी उस भोग-कालमें क्रियमाण शेष रहेगा। दूसरी बात कि अनन्त पूर्वजन्मोंसे अर्जित कर्मोंकी भोगसे समाप्ति असम्भव है। भोगसे कर्मनाश सम्भव ही नहीं है। जितना ही भोग होगा, उतनी ही भोगस्पृहा बढ़ती जायगी और कर्ममें प्रवृत्ति होती जायगी। **'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति, हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते'**। अर्थात् भोगोंकी कामना उपभोगसे शान्त नहीं हो सकती है। जलती अग्नि घृताहुतिसे शान्त नहीं होती है, अपितु उत्तरोत्तर प्रवृद्ध होती जाती है। अतः भोगसे कर्मक्षय नहीं हो सकता है। भोगसे मोक्ष नहीं होता है। एकमात्र तत्त्वज्ञान ही कर्मक्षयका साधन है।

अतः यह निर्विवाद है कि मनुष्यके प्रारब्ध कर्मानुसार ही कुण्डलीचक्र होता है। भोग कालसे नियत है। काल ग्रहगतिरूप उपाधिसे परिच्छिन्न है। प्राणीका जन्म, उसकी स्थिति और उसका नाश भी कालपरिच्छिन्न है। प्राणी कर्म, भोग, काल-देश, दैव, ग्रह-नक्षत्रादिसे नियत होता है। [ज्योतिर्विज्ञानविमर्श]

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

भुवनभास्कर ग्रहाधिपति भगवान् सूर्यनारायणका इस बार यह विशेष अनुग्रह रहा कि '**ज्योतिषतत्त्वाङ्क**' कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें आप सभी महानुभावोंके समक्ष प्रस्तुत हो सका। वैसे इस बार कल्याणके विशेषाङ्कके सम्बन्धमें अनेक सुझाव प्राप्त हुए और अनेक विषय भी सामने आये, जिनमें ज्योतिष अन्यतम था। हमें लगता है कि जनमानसमें ज्योतिषके प्रति जो अविश्वासात्मक धारणा तथा उपहासात्मक वृत्ति व्याप्त है, वह मिथ्या नहीं प्रतीत होती; क्योंकि एक तो ज्योतिषके आर्ष ग्रन्थोंके अध्ययनकी परम्परा प्राय: कम हो गयी है और दूसरे अर्थलिप्सासे आबद्ध जनोंने ज्योतिषको व्यावसायिक रूप दे दिया है। फलत: ज्योतिषके मूलस्वरूपके विषयमें जनसाधारणमें भ्रान्त धारणा बनना स्वाभाविक ही है। अत: प्रथम तो यही विचार हुआ कि कल्याणके विशेषाङ्कके लिये ज्योतिष विषयका चयन करनेसे उपर्युक्त धारणाको पुष्ट करनेमें बल ही मिलेगा, किंतु गम्भीर विचार करनेपर यह प्रतीत हुआ कि ज्योतिष तो एक कल्याणकारी शास्त्र है, इसकी जितनी महिमा आयी है, उससे भी कहीं अधिक इसकी व्यावहारिक उपयोगिता है। मानवजीवनको सफल बनाने तथा उसे अपने लक्ष्यतक पहुँचानेमें इस शास्त्रका महनीय योगदान है। यह विद्या व्यवहारको सुधारकर परमार्थतक ले जानेवाली है तथा भारतीय सांस्कृतिक गौरवकी एक विशिष्ट विधा है। इसकी उपेक्षासे भारतीय सनातन परम्पराके मूल स्वरूपको समझनेमें अपूर्णता रह सकती है। अत: ज्योतिषका एक शास्त्रीय स्वरूप जनमानसके समक्ष अवश्य आना चाहिये।

दूसरी यह बात भी सामने आयी कि ज्योतिष तो केवल फलादेश करता है, केवल लौकिक कामनाओंकी पूर्तिके उपाय बताता है, इसका कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं है, सामान्य दृष्टिसे यह बात ठीक भी दिखायी देती है, किंतु वास्तवमें बात ऐसी है नहीं। इसका स्थूल स्वरूप जो भी हो, परंतु इस शास्त्रके प्रयोजनके विषयमें शास्त्रकारोंका कथन है कि 'ज्योतिष' अपौरुषेय वेदका एक अंग है, इसीलिये वेदांग कहलाता है। जैसी वेदकी महिमा है, वैसी ही ज्योतिषकी भी है। आचार्य पाणिनि बताते हैं कि वेदांगोंके अध्ययनके बिना वेदका अध्ययन पूर्ण नहीं होता, जो वेदका अध्ययन वेदांगोंके साथ करता है, वही ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है—'**साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।**' महर्षि गर्गाचार्य बताते हैं कि जो ज्योतिषशास्त्रको जानता है, वह परम गति—मोक्षको प्राप्त करता है—'**ज्योतिषं तु यो वेत्ति स याति परमां गतिम्।**' ऐसे ही महर्षि वसिष्ठजी कहते हैं कि ज्योतिषको भलीभाँति जान लेनेवाला चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त करता है—'**एतद् बुद्ध्वा सम्यगाप्नोति नूनं धर्मं चार्थं मोक्ष्यमग्र्यं यशश्च।**'

इसीके साथ एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि यह एक व्यावहारिक कालविधायक शास्त्र है। जीवनचर्याका ठीक-ठीक निर्वाह करानेवाला शास्त्र है। धर्मशास्त्र कर्मोंकी प्रयोगविधि बताता है कि अमुक कर्म इस प्रकार करना चाहिये, किंतु ज्योतिष ही निर्धारण करता है कि वह कर्म अमुक समयमें ही करनेसे फलदायी होता है। सिद्धान्त भी यही है कि जिस कर्मका जो समय नियत है, उसी समय उसे सम्पादित करना चाहिये। प्रकृति तो समयमें आबद्ध ही है, स्वयं भगवान् भी काल एवं कर्मकी मर्यादा स्थापित करते हैं।

इन्हीं सब दृष्टियोंसे '**ज्योतिषतत्त्वाङ्क**' के नामसे विशेषाङ्क प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया। हमारा यह लक्ष्य था कि ज्योतिषका शास्त्रीय स्वरूप जनसाधारणके समक्ष आ सके और ज्योतिषके सम्बन्धमें जो भ्रान्त धारणा है, वह दूर हो सके। इस आशयसे विशेषाङ्ककी एक प्रस्तावित विषय-सूची कल्याणके साधारण अङ्क-मईमें प्रकाशित हुई तो कल्याणके प्रेमी पाठकों तथा विद्वान् लेखक महानुभावोंने इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार

किया और उसकी सराहना भी की। उसका फल यह हुआ कि शीघ्र ही सामग्री प्राप्त होने लगी और धीरे-धीरे इतनी सामग्री प्राप्त हो गयी कि उसमेंसे लेखोंका चयन करना कठिन हो गया। कुछ तो बहुत अच्छी सामग्री आयी, किंतु अधिकांश सामग्री होरास्कन्धके समान विषयोंपर प्राप्त हुई। गणित एवं संहिता-सम्बन्धी अच्छी सामग्री अत्यन्त विलम्बसे प्राप्त हुई। विशेषाङ्कमें ज्योतिषके अधिकांश विषयोंका सन्निवेश हो जाय, इस तात्पर्यसे यहाँ विभागमें भी सामग्री तैयार की गयी, परंतु ज्योतिषतत्त्वाङ्ककी सम्पूर्ण सामग्री विशेषाङ्कमें समाहित कर पाना सम्भव न हो सका। इसमें एक तो विशेषाङ्कके पृष्ठ सीमित होना मुख्य कारण बना और दूसरा कारण था अच्छे लेखोंका अतिविलम्बसे प्राप्त होना। हमारी विवशता और अज्ञानता भी इसमें हेतु है तथापि जो सामग्री प्रकाशमें आ सकी है, उसमें परमात्मप्रभुकी अनुकम्पा ही है।

सहृदय पाठकोंसे निवेदन है कि वस्तुस्थितिको समझते हुए वे इस विशेषाङ्कसे लाभ उठायें और अपने सुझावोंसे हमें उपकृत करें। विशेषाङ्क-सम्बन्धी बहुत-सी सामग्री प्रकाशित होनेसे रह गयी है, जिसे बादके मासिक अङ्कोंमें देनेका प्रयास रहेगा, तथापि ऐसा लगता है कि बहुत सारी सामग्री फिर भी बच जायगी। इसके लिये हम विद्वान् लेखक महानुभावोंसे क्षमाप्रार्थी हैं।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्रहृदय सन्त-महात्माओं एवं ज्योतिषमर्मज्ञ विद्वान् लेखक महानुभावोंके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हैं, जिन्होंने विशेषाङ्ककी पूर्णतामें किंचित् भी योगदान दिया है। सद्विचारों एवं सिद्धान्तोंके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं; क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण तथा विद्वत्तासम्पन्न विचारयुक्त भावनाओंसे कल्याणको सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहा है।

हम अपने विभागके तथा प्रेसके उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहभरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। हम अपनी त्रुटियों एवं व्यवहारदोषके लिये उन सबसे क्षमाप्रार्थी हैं।

इस अङ्कके सम्पादन, संशोधन तथा चित्र-निर्माण आदिमें जिन लोगोंसे हमें सहयोग मिला है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

कल्याणका कार्य भगवान्‌का कार्य है। अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं, हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार **'ज्योतिषतत्त्वाङ्क'** के सम्पादनकार्यके क्रममें ज्योतिषशास्त्रका परिचय, ग्रह-नक्षत्रोंका जीवोंसे सम्बन्ध, कालतत्त्व, पंचांगपरम्परा एवं ज्योतिर्विज्ञान आदिका अन्वेषण, चिन्तन, मनन एवं स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात थी। हमें आशा है इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय प्रेमी पाठकोंको भारतीय ज्योतिष-शास्त्रकी जानकारी समग्ररूपसे प्राप्त हो सकेगी।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल अकारणकरुणावरुणालय श्रीपरमात्म-प्रभुके चरणोंमें प्रणतिपूर्वक निवेदन करते हैं कि त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) तथा सूर्य और चन्द्रमा आदि सभी ग्रह संसारमें शान्तिका विस्तार करें, जिससे सभी प्राणी सुखी हों, सब प्रकारकी व्याधियोंसे मुक्त हों, सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण हो और किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारका कोई कष्ट और दुःख न हो—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः
सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु॥

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर-प्रकाशन

कोड — मूल्य रु०

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

■ 1 बृहदाकार २५०

■ 2 ,, ग्रन्थाकार विशिष्ट संस्करण ११० [बँगला, तमिल, ओड़िआ, कन्नड, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती, मराठीमें भी]

■ 3 ,, साधारण संस्करण ९०

गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी)

■ 5 बृहदाकार, परिशिष्टसहित ३७५

■ 6 ,, ग्रन्थाकार, परिशिष्टसहित २०० [मराठी, तमिल (दो खण्डोंमें), गुजराती, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें), कन्नड (दो खण्डोंमें), बँगला, ओड़िआमें भी]

■ 8 **गीता-दर्पण**—(स्वामी श्रीरामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश [मराठी, बँगला, गुजराती, ओड़िआमें भी] ७०

■1562 **गीता-प्रबोधनी**—पुस्तकाकार ४५ (बंगला, ओड़िआ, पंजाबीमें भी)

■1590 ,, पॉकेट, वि०सं० ३५

■1796 **श्रीज्ञानेश्वरी**-हिन्दी भावानुवाद ८०

■1958 **गीता-संग्रह** ८०

■ 784 **ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका** (मराठी) १७५

■ 748 ,, मूल, गुटका (मराठी)

■ 859 ,,मूल, मझला (मराठी) ६०

■ 10 **गीता-शांकर-भाष्य** ११०

■ 581 **गीता-रामानुज-भाष्य** ६०

■ 11 **गीता-चिन्तन**— ५५ (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता-विषयक लेखों, विचारों, पत्रों आदिका संग्रह)

■ 17 **गीता**—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका [गुजराती, बँगला, मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिलमें भी] ४०

■ 16 **गीता**—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें (मराठीमें भी) ४५

■1555 **गीता-माहात्म्य** (वि०सं०) ५०

■ 19 **गीता**—केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी) १२

■ 18 **गीता**-भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप [ओड़िआ, गुजराती, मराठीमें भी] २०

■ 502 **गीता**-,, ,, (सजि०) ३५ [तेलुगु, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तमिलमें भी]

■ 20 **गीता**-भाषा-टीका,पॉकेट साइज१० [अंग्रेजी, मराठी, बँगला, असमिया, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम भी]

■1566 **गीता**—भाषा-टीका, पॉकेट साइज, सजिल्द २० [गुजराती, बँगला, अंग्रेजी भी]

■ 21 **श्रीपञ्चरत्नगीता**—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओड़िआमें भी] ३०

■1628 ,, **(नित्यस्तुति एवं गजल-गीतासहित)** पॉकेट साइज १२

■ 22 **गीता**—मूल, मोटे अक्षरोंवाली [तेलुगु, गुजरातीमें भी] १०

■ 23 **गीता**—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित ५ [कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम, ओड़िआमें भी]

■1602 **गीता**—सजिल्द (वि०सं०)—लघु आकार १३

■ 700 **गीता**—मूल, लघु आकार (ओड़िआ, बँगला, तेलुगुमें भी) ३

■1392 **गीता ताबीजी**—(सजिल्द) (गुजराती, बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) ६

■ 566 **गीता**—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ) .५०

▲ 388 **गीता-माधुर्य**-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) १२ [तमिल, मराठी, गुजराती, उर्दू, तेलुगु, बँगला, असमिया, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, संस्कृतमें भी]

▲ 679 **गीतामाधुर्य** (केवल मूल) ६

■1242 **पाण्डवगीता एवं हंसगीता** ४

■1431 **गीता-दैनन्दिनी** पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) ६५

■ 503 **गीता-दैनन्दिनी**—रोमन, पुस्तकाकार, प्लास्टिक जिल्द ५०

■ 506 **गीता-दैनन्दिनी**-पॉकेट(वि० सं०) २५

▲ 464 **गीता-ज्ञान-प्रवेशिका** २०

रामायण

■1389 **श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (विशिष्ट संस्करण) ५००

■ 80 ,, बृहदाकार ४५०

■1095 ,, ग्रन्थाकार (वि०सं०) (गुजरातीमें भी) २७०

■ 81 **श्रीरामचरितमानस**—ग्रन्थाकार सचित्र, सटीक, मोटा टाइप, २१० [ओड़िआ, बँगला, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी, नेपालीमें भी]

■1402 ,, सटीक, ग्रंथाकार (सामान्य) १५०

■1563 ,, मझला, सटीक विशिष्ट संस्करण १२०

■ 82 ,, मझला साइज, सटीक १०० सजिल्द [गुजराती, अंग्रेजी भी]

■1318 ,, रोमन एवं अंग्रेजी अनुवादसहित २००

■1617 ,, मझला १००

■ 456 ,, अंग्रेजी अनुवादसहित १४०

■1436 ,, मूलपाठ बृहदाकार २५०

■ 83 ,, मूलपाठ, ग्रंथाकार १०० [गुजराती, ओड़िआ भी]

■ 84 ,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी] ६०

■ 85 ,, मूल, गुटका [,,] ४०

■1544 ,, मूल गुटका (वि०सं०) ४५

■ 790 ,, केवल भाषा

[श्रीरामचरितमानस—अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

■ 94 **श्रीरामचरितमानस**-बालकाण्ड ४०

■ 95 ,, अयोध्याकाण्ड ३५

■ 98 ,, सुन्दरकाण्ड [कन्नड, तेलुगु, बँगला भी] ७

■1349 ,, सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें) (श्रीहनुमानचालीसासहित) [गुजरातीमें भी] २५

■ 101 ,, लंकाकाण्ड १५

■ 102 ,, उत्तरकाण्ड १७

■ 141 ,, अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड २०

■1583 ,, सुन्दरकाण्ड, (मूल) मोटा (आड़ी) रंगीन ८

■1919 ,, रंगीन (वि० सं०) १०

■ 99 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, गुटका [गुजराती भी] ४

■ 100 ,, सुन्दरकाण्ड मूल, मोटा टाइप ८ [गुजराती, ओड़िआ भी]

■ 858 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, लघु आकार [गुजराती भी] ४

■1710 ,, किष्किन्धाकाण्ड ३

■1376 **मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका**—(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक,टीकाकार-

प० प० प्रज्ञानानन्द सरस्वती (सातों खण्ड) (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

■ 86 **मानसपीयूष**-(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड) १४०० (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

■1935 **मानस-पीयूष**—परिशिष्ट ७५

■1907 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण**—बृहदाकार, भाषा ४५०

■1291 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-कथा-सुधा-सागर** १३०

■ 75, 76 **श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण**—सटीक, दो खण्डोंमें सेट [तेलुगु भी] ४००

■ 77 **रामायण**—केवल भाषा २२५

■ 583 ,, (मूलमात्रम्) १६०

■1953 ,, सुन्दरकाण्ड—पुस्तकाकार मूलमात्रम् [तमिल भी] ३०

■1549 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण** सुन्दरकाण्ड-सटीक [तमिल भी] ६५

■ 452, 453 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण** (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट) ४००

■ 74 **अध्यात्मरामायण**—सटीक [तमिल, तेलुगु, कन्नड, मराठी भी] ८०

■ 223 **मूल रामायण** [गुजराती, मराठी भी] ३

▲1654 **लवकुश-चरित्र** २५

▲ 401 **मानसमें नाम-वन्दना** १२

■ 103 **मानस-रहस्य** ५०

■ 104 **मानस-शंका-समाधान** १७

अन्य तुलसीकृत साहित्य

■ 105 **विनयपत्रिका**—सरल भावार्थसहित ३५

■1701 **विनयपत्रिका**, सजिल्द ५०

■ 106 **गीतावली**— ,, ३५

■ 107 **दोहावली**—भावार्थसहित १७

■ 108 **कवितावली**— ,, १७

■ 109 **रामाज्ञाप्रश्न**—भावार्थसहित १०

■ 110 **श्रीकृष्णगीतावली** ,, ८

■ 111 **जानकीमंगल**— ,, ६

■ 112 **हनुमानबाहुक**— ,, ४

■ 113 **पार्वतीमंगल**— ,, ५

■ 114 **वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण** ४

सूर-साहित्य

■ 555 **श्रीकृष्णमाधुरी** २४

■ 61 **सूर-विनय-पत्रिका** ३०

☞ भारतमें डाक खर्च, पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशिः—२ रुपया-प्रत्येक १० रु० या उसके अंशके मूल्यकी पुस्तकोंपर। —रजिस्ट्री / वी०पी०पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त। [पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० ५००)]

☞ रंगीन चित्रोंपर २० रु० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिंग चार्ज अतिरिक्त।

☞ रु० ५००/-से अधिककी पुस्तकोंपर ५% पैकिंग, हैण्डलिंग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।

☞ पुस्तकोंके मूल्य एवं डाकदरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य / डाकदर देय होगा।

☞ पुस्तक-विक्रेताओंके नियमोंकी पुस्तिका अलग है। विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।

☞ रु० २००० से अधिककी पुस्तकें एक साथ लेनेपर १५% छूट (▲चिह्नवाली पुस्तकोंपर ३०%) छूट देय। (पैकिंग, रेल-भाड़ा आदि अतिरिक्त)।

नोट—अन्य भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंका मूल्य एवं कोड पृष्ठ-५०३ से ५०६ पर देखें।

सम्पर्क करें—व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

कोड — मूल्य रु०

■ 62 श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी २८
■ 735 सूर-रामचरितावली २५
■ 547 विरह-पदावली २०
■ 864 अनुराग-पदावली— २५

पुराण, उपनिषद् आदि

■1930 श्रीमद्भागवत-सुधासागर २५० [मोटा टाइप]
■1945 ,, (विशिष्ट संस्करण) ३००
■ 25 श्रीशुकसुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपमें ४५०
■1951 श्रीमद्भागवतमहापुराण-सटीक
■1952 बेड़िआ-दो खण्डोंमें सेट ७००
■ 26, 27 श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट ४५० (गुजराती, मराठी, बंगला भी)
■ 564, 565 श्रीमद्भागवतमहापुराण—अंग्रेजी सेट ३००
■ 29 ,,मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी) १६०
■ 124 ,, मूल मझला ८०
■1855 ,, मूल गुटका-वि०सं० १००
■ 571 श्रीकृष्णलीलाचिन्तन १४०
■ 30 श्रीप्रेम-सुधासागर ९०
■ 31 भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र, सजिल्द [तमिल भी] ३५
■1927 जीवन-संजीवनी ४०

■ 728 महाभारत—हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छः खण्डोंमें] सेट १९५०
(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

■ 38 महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक ३००
■1589 ,, केवल हिन्दी २५०
■ 39, 511 संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) [बँगला भी] ३६०
■ 44 संक्षिप्त पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्द २००

■1468 सं० शिवपुराण (वि० सं०) २२५
■ 789 सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी] १७५
■1133 सं० देवीभागवत [,,] २००
■1770 श्रीमद्देवीभागवत-मूल १२०

■ 48 श्रीविष्णुपुराण—सटीक, सचित्र १४०
■1364 श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी) ८०
■1183 सं० नारदपुराण १७०
■ 279 सं० स्कन्दपुराणाङ्क २८०
■ 539 सं० मार्कण्डेयपुराण ७५
■1111 सं० ब्रह्मपुराण १००
■1113 नरसिंहपुराणम् —सटीक ७०
■1189 सं० गरुडपुराण १४०
■1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद) २००
■1361 सं० श्रीवराहपुराण १००
■ 584 सं० भविष्यपुराण १५०
■1131 कूर्मपुराण—सटीक १००
■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण १७५
■1432 वामनपुराण—सटीक ११०
■1897 देवीभागवतमहापुराण—सटीक, प्रथम खण्ड १८०
■1898 देवीभागवतमहापुराण—सटीक, द्वितीय खण्ड १८०
■ 557 मत्स्यमहापुराण—,, २३०
■1610 देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क ९०
■ 47 पातञ्जलयोग-प्रदीप १५०
■ 135 पातञ्जलयोगदर्शन—[बँगला भी] १५

■ 517 गर्गसंहिता १३०
■ 582 छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य १२०
■ 577 बृहदारण्यकोपनिषद्—(,,) १५०
■1421 ईशादि नौ उपनिषद्- (,,) १५० एक ही जिल्दमें
■ 66 ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय-हिन्दी व्याख्या ६५ [बँगला भी]
■ 67 ईशावास्योपनिषद्-सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड भी] ६
■ 68 केनोपनिषद्— सानुवाद, शांकरभाष्य १५
■ 578 कठोपनिषद्— ,, १७
■ 69 माण्डूक्योपनिषद्—,, २७
■ 513 मुण्डकोपनिषद्— ,, १५
■ 70 प्रश्नोपनिषद्— ,, १२
■ 71 तैत्तिरीयोपनिषद्— ,, २५
■ 72 ऐतरेयोपनिषद्— ,, १०
■ 73 श्वेताश्वतरोपनिषद्—,, २५
■ 65 वेदान्त-दर्शन—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द ६०
■ 639 श्रीनारायणीयम्—सानुवाद [तेलुगु, तमिल भी]

भक्त-चरित्र

■ 40 भक्त चरिताङ्क—सचित्र, सजिल्द २००
■1771 जैमिनीकृतमहाभारतमें भक्तोंकी गाथा-सजिल्द
■ 51 श्रीतुकाराम-चरित—जीवनी और उपदेश ५०
■ 121 एकनाथ-चरित्र २२
■ 53 भागवतरत्न प्रह्लाद २५
■ 123 चैतन्य-चरितावली-सम्पूर्ण एक साथ १५०
■ 751 देवर्षि नारद १८
■ 168 भक्त नरसिंह मेहता [मराठी, गुजराती भी] १७
■ 169 भक्त बालक-गोविन्द, मोहन आदिकी गाथा ७ [तेलुगु, कन्नड, मराठी भी]
■ 170 भक्त नारी—मीरा, शबरी आदिकी गाथा ७
■ 171 भक्त पञ्चरत्न—रघुनाथ, दामोदर आदिकी (तेलुगु भी) १०
■ 172 आदर्श भक्त—शिबि, रन्तिदेव आदिकी गाथा १० [तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]
■ 175 भक्त-कुसुम—जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा ८
■ 173 भक्त सप्तरत्न-दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा ८ [गुजराती, कन्नड भी]
■ 174 भक्त चन्द्रिका—सखू, विट्ठल आदि छः भक्तगाथा ८ [गुजराती, कन्नड, तेलुगु, मराठी, ओड़िआ भी]
■ 176 प्रेमी भक्त-बिल्वमंगल, जयदेव आदि [गुजराती भी] ८
■ 177 प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय, उत्तंक आदि १५
■ 178 भक्त सरोज—गंगाधरदास, श्रीधर आदि (गुजराती भी) १२
■ 179 भक्त सुमन—नामदेव, राँका-बाँका आदिकी भक्तगाथा १० [गुजराती भी]
■ 180 भक्त सौरभ—व्यासदास, प्रयागदास आदि १०
■ 181 भक्त सुधाकर—रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा १०
[गुजराती भी]
■ 182 भक्त महिलारत्न—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि १० [गुजराती भी]
■ 183 भक्त दिवाकर—सुव्रत, वैश्वानरआदिकी भक्तगाथा १०
■ 184 भक्त रत्नाकर—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा १०
■ 185 भक्तराज हनुमान्—हनुमान्जीका जीवनचरित्र ८ [मराठी, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]
■ 186 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र [ओड़िआ भी] ६
■ 187 प्रेमी भक्त उद्धव [तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ भी] ६
■ 188 महात्मा विदुर [गुजराती, तमिल, ओड़िआ भी] ६
■ 136 विदुरनीति १५
■ 138 भीष्मपितामह [तेलुगु भी] १७
■ 189 भक्तराज ध्रुव [तेलुगु भी] ५

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

■683 तत्त्वचिन्तामणि—(सभी खण्ड एक साथ) [गुजराती भी] १२०
■814 साधन-कल्पतरु १३० (१३ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)

▲1944 परम सेवा १५
▲1597 चिन्ता-शोक कैसे मिटें? १२
▲1631 भगवान् कैसे मिलें? १०
▲1653 मनुष्य-जीवनका उद्देश्य १०
▲1681 भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं १०
▲1747 भगवत्प्राप्ति कैसे हो? ८
▲1666 कल्याण कैसे हो? १०
▲ 527 प्रेमयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी] २५
▲ 242 महत्त्वपूर्ण शिक्षा—[तेलुगु भी] २५
▲ 528 ज्ञानयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी] २०
▲ 266 कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-१) (गुजराती भी) १५
▲ 267 कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-२) १५
▲ 303 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय [तमिल, गुजराती भी] १५
▲ 298 भगवान्के स्वभावका रहस्य [तमिल, गुजराती, मराठी भी] १२
▲ 243 परम साधन—भाग-१ १५
▲ 244 ,, ,, —भाग-२ १२
▲ 245 आत्मोद्धारके साधन (भाग-१) १८
▲ 335 अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति—(आत्मोद्धारके साधन भाग-२) [गुजराती भी] १२
▲ 579 अमूल्य समयका सदुपयोग ११ [तेलुगु, गुजराती, मराठी, कन्नड़, ओड़िआ भी]
▲ 246 मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१) १५
▲ 247 ,, ,, (भाग-२) १५
▲ 611 इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति [गुजराती भी] १२
▲ 588 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति [,,] १२
▲1015 भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता [,,] १२
▲1923 भगवत्प्राप्तिके सुगम साधन ८
▲1974 व्यवहार सुधार और परमार्थ १०
▲1296 कर्णवासका सत्संग [तमिल भी] १०
▲ 248 कल्याणप्राप्तिके उपाय- (त०चि०म०भा०१) [बँगला भी] २०
▲ 249 शीघ्र कल्याणके सोपान-भाग-२, खण्ड-१ [गुजराती भी] १७
▲ 250 ईश्वर और संसार—भाग-२, (खण्ड-२) १६
▲1900 निष्कामभावसे भगवत्प्राप्ति ८
▲ 519 अमूल्य शिक्षा—भाग-३, (खण्ड-१) ११
▲ 253 धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि—भाग-३, (खण्ड-२) १२
▲ 251 अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि-भाग-४, (खण्ड-१) १७
▲ 252 भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा-भाग-४ (खण्ड-२) १४
▲ 254 व्यवहारमें परमार्थकी कला—त० चि० भाग-५,(खण्ड-१) [गुजराती भी] १२
▲ 255 श्रद्धा-विश्वास और प्रेम-गुजराती, भाग-५, (खण्ड-२) [गुजराती भी] १५
▲ 258 तत्त्वचिन्तामणि—भाग-६, (खण्ड-१) १५
▲ 257 परमानन्दकी खेती—भाग-६, (खण्ड-२) १२
▲ 260 समता अमृत और विषमता विष-भाग-७, (खण्ड-१) १५
▲ 259 भक्ति-भक्त-भगवान्-भाग-७, (खण्ड-२) १७
▲ 256 आत्मोद्धारके सरल उपाय १८
▲261 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान ४ [मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
▲ 262 रामायणके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तमिल, मराठी भी] १०
▲ 263 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र ८ [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, तमिल, मराठी भी]
▲ 264 मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—१ १५
▲ 265 मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—२ १५
▲ 268 परमशान्तिका मार्ग—भाग-१(गुजराती भी) १५
▲ 269 परमशान्तिका मार्ग-(भाग-२) १५
▲1792 शान्तिका उपाय १२
▲ 543 परमार्थ-सूत्र-संग्रह [ओड़िआ भी] १५
▲1530 आनन्द कैसे मिले? ९
▲1837 अनन्यभक्ति कैसे प्राप्त हो? ८
▲ 769 साधन नवनीत [गुजराती, ओड़िआ, कन्नड भी] १०
▲ 599 हमारा आश्चर्य १२
▲ 681 रहस्यमय प्रवचन १२
▲1021 आध्यात्मिक प्रवचन [गुजराती भी] १५
▲1324 अमृत वचन [बँगला भी] १२
▲1409 भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय १२
▲1433 साधना पथ १०
▲1483 भगवत्पथ-दर्शन १२
▲1493 नेत्रोंमें भगवान्को बसा लें १०
▲1435 आत्मकल्याणके विविध उपाय १०
▲1529 सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो? ८
▲1561 दुःखोंका नाश कैसे हो? १२
▲1587 जीवन-सुधारकी बातें १२
▲1022 निष्काम श्रद्धा और प्रेम [ओड़िआ भी] १०
▲ 292 नवधा भक्ति [तेलुगु, मराठी, कन्नड भी] ७
▲ 274 महत्त्वपूर्ण चेतावनी १०
▲1871 आवागमनसे मुक्ति १०

कोड		मूल्य रु०
▲ 273	नल-दमयन्ती [मराठी, तमिल, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]	५
▲ 277	उद्धार कैसे हो?— ५१ पत्रोंका संग्रह [गुजराती, ओड़िआ, मराठी भी]	१०
▲1856	महात्माओंकी अहैतुकी दया	१०
▲1860	भगवत्प्राप्तिकी युक्तियाँ	१०
▲1874	महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें	१०
▲1790	जन्म-मरणसे छुटकारा	८
▲ 278	सच्ची सलाह-८० पत्रोंका संग्रह	१२
▲ 280	साधनोपयोगी पत्र	१०
▲ 281	शिक्षाप्रद पत्र	१२
▲ 282	पारमार्थिक पत्र	१२
▲ 284	अध्यात्मविषयक पत्र	१०
▲ 283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ [अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, मराठी, तेलुगु, ओड़िआ भी]	८
▲1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें	१२
▲ 680	उपदेशप्रद कहानियाँ [अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु भी]	१२
▲ 891	प्रेममें विलक्षण एकता [मराठी, गुजराती भी]	१२
▲ 958	मेरा अनुभव [गुजराती, मराठी भी]	१०
▲1283	सत्संगकी मार्मिक बातें [गुजराती भी]	१०
▲1150	साधनकी आवश्यकता [मराठी भी]	१२
▲1908	प्रतिकूलतामें प्रसन्नता	१०
▲ 320	वास्तविक त्याग	८
▲1791	त्यागकी महिमा	८
▲ 285	आदर्श भ्रातृप्रेम [ओड़िआ भी]	६
▲ 286	बालशिक्षा [तेलुगु, कन्नड, ओडिआ, गुजराती भी]	६
▲ 287	बालकोंके कर्तव्य [ओड़िआ भी]	५
▲ 272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा [कन्नड, गुजराती भी]	१२
▲ 290	आदर्श नारी सुशीला [बँगला, तेलुगु, तमिल, ओड़िआ, गुजराती, मराठी भी]	५
▲ 291	आदर्श देवियाँ [ओड़िआ भी]	५
▲ 300	नारीधर्म	५
▲ 293	सच्चा सुख और....... [गुजराती भी]	३
▲ 294	संत-महिमा [गुजराती, ओड़िआ भी]	३
▲ 295	सत्संगकी कुछ सार बातें [बँगला, तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]	३
▲ 301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म	३
▲ 310	सावित्री और सत्यवान् [गुजराती, तमिल, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, मराठी भी]	४
▲ 623	धर्मके नामपर पाप (गुजराती भी)	३
▲ 299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप [तेलुगु व अंग्रेजी भी]	५
▲ 304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित [गुजराती, असमिया, तमिल, मराठी भी]	३
▲ 297	गीतोक्त संन्यास तथा निष्काम कर्मयोगका स्वरूप	३
▲ 309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय [ओड़िआ भी]	३

कोड		मूल्य रु०
▲ 271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?	३
▲ 311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य [ओड़िआ भी]	३
▲ 306	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं? [गुजराती, ओड़िआ व अंग्रेजी भी]	३
▲ 307	भगवान्की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण) [ओड़िआ, कन्नड, गुजराती भी]	३
▲ 316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये और सत्यकी शरणसे मुक्ति	३
▲ 314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य [गुजराती, मराठी भी]	३
▲ 315	चेतावनी और सामयिक चेतावनी [गुजराती भी]	३
▲ 318	ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त [गुजराती, तेलुगु भी]	३
▲ 270	भगवान्का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं? (तेलुगु भी)	३
▲ 302	ध्यान और मानसिक पूजा [गुजराती भी]	३
▲ 326	प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोकनाशके उपाय [ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	३

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड		मूल्य रु०
■820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार) सभी खण्ड एक साथ	८५
■ 050	पदरत्नाकर	७०
■ 049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	६०
▲ 058	अमृत-कण	२७
▲ 332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	३०
▲ 333	सुख-शान्तिका मार्ग	२५
▲ 343	मधुर	१६
▲ 056	मानव-जीवनका लक्ष्य	१५
▲ 331	सुखी बननेके उपाय	१४
▲ 334	व्यवहार और परमार्थ	२०
▲ 514	दुःखमें भगवत्कृपा	१५
▲ 386	सत्संग-सुधा	१५
▲ 342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल [तमिल भी, तीन भागमें]	२०
▲ 347	तुलसीदल	१८
▲ 339	सत्संगके बिखरे मोती	१५
▲ 349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति	३०
▲ 350	साधकोंका सहारा—	१६
▲ 351	भगवच्चर्चा—(भाग-५)	१६
▲ 352	पूर्ण समर्पण	१७
▲ 353	लोक-परलोक-सुधार-I	१२
▲ 354	आनन्दका स्वरूप	१५
▲ 355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	२५
▲ 356	शान्ति कैसे मिले?	२०
▲ 357	दुःख क्यों होते हैं?	२०
▲ 348	नैवेद्य	१२
▲ 337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श [गुजराती, तेलुगु भी]	१०
▲ 336	नारीशिक्षा [गुजराती, कन्नड भी]	१०
▲ 340	श्रीरामचिन्तन	१२
▲ 338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन	१५
▲ 345	भवरोगकी रामबाण दवा [ओड़िआ भी]	१०
▲ 341	प्रेमदर्शन [तेलुगु, मराठी भी]	१३
▲ 358	कल्याण-कुंज—(क० कुं० भाग-१)	८
▲ 366	मानव-धर्म	८

कोड		मूल्य रु०
▲ 359	भगवान्की पूजाके पुष्प—(क० कुं० भाग-२)	१०
▲ 360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (क० कुं० भाग-३)	१०
▲ 361	मानव-कल्याणके साधन (क० कुं० भाग-४)	१६
▲ 346	सुखी बनो	१०
▲ 362	दिव्य सुखकी सरिता—(क० कुं० भाग-५) [गुजराती भी]	८
▲ 363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ-(क० कुं० भाग-६)	७
▲ 364	परमार्थकी मन्दाकिनी—(क० कुं० भाग-७)	८
▲ 526	महाभाव-कल्लोलिनी	६
▲ 367	दैनिक कल्याण-सूत्र	७
▲ 369	गोपीप्रेम [अंग्रेजी भी]	५
▲ 370	श्रीभगवन्नाम [ओड़िआ भी]	५
▲ 368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष [ओड़िआ भी]	७
▲ 373	कल्याणकारी आचरण	२
▲ 374	साधन-पथ—सचित्र [गुजराती, तमिल भी]	५
▲ 375	वर्तमान शिक्षा	५
▲ 376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	५
▲ 377	मनको वश करनेके कुछ उपाय [गुजराती भी]	२
▲ 378	आनन्दकी लहरें [बँगला, ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	३
▲ 379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य	४
▲ 381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य	२
▲ 382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	३
▲ 344	उपनिषदोंके चौदह रत्न	७
▲ 371	राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक	५
▲ 384	विवाहमें दहेज	२
▲ 809	दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और जीवन कैसे बनें?	२

परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

कोड		मूल्य रु०
■ 465	साधन-सुधा-सिन्धु [ओड़िआ, गुजराती भी] (४३ पुस्तकें एक ही जिल्दमें)	१४०
▲1675	सागरके मोती	१२
▲1598	सत्संगके फूल	१५
▲1733	संत-समागम	९
▲1633	एक संतकी वसीयत [बँगला भी]	३
▲ 400	कल्याण-पथ	१२
▲ 401	मानसमें नाम-वन्दना	१२
▲ 605	जित देखूँ तित-तू [गुजराती, मराठी भी]	१०
▲ 406	भगवत्प्राप्ति सहज है [अंग्रेजी भी]	१२
▲ 535	सुन्दर समाजका निर्माण	१२
▲1485	ज्ञानके दीप जले	१८
▲1447	मानवमात्रके कल्याणके लिये (मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती, अंग्रेजी, नेपाली भी)	१६
▲1175	प्रश्नोत्तर मणिमाला [बँगला, ओड़िआ, गुजराती भी]	१२
▲1247	मेरे तो गिरधर गोपाल	१०
▲ 403	जीवनका कर्तव्य [गुजराती भी]	१२
▲ 436	कल्याणकारी प्रवचन [गुजराती, अंग्रेजी, बँगला, ओड़िआ भी]	१०
▲ 821	किसान और गाय [तेलुगु भी]	३

कोड		मूल्य रु०
▲1093	आदर्श कहानियाँ [ओड़िआ, बँगला भी]	१०
▲ 407	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता [कन्नड, मराठी भी]	१०
▲ 408	भगवान्से अपनापन [गुजराती, ओड़िआ भी]	८
▲ 861	सत्संग-मुक्ताहार [,,]	६
▲ 405	नित्ययोगकी प्राप्ति [ओड़िआ भी]	१०
▲ 409	वास्तविक सुख [तमिल, ओड़िआ भी]	७
▲1308	प्रेरक कहानियाँ [बँगला, ओड़िआ भी]	८
▲1408	सब साधनोंका सार [बँगला भी]	५
▲ 411	साधन और साध्य [मराठी, बँगला, गुजराती भी]	८
▲ 412	तात्त्विक प्रवचन [मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती भी]	७
▲ 410	जीवनोपयोगी प्रवचन [अंग्रेजी भी]	१०
▲ 414	तत्त्वज्ञान कैसे हो? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार [बँगला, गुजराती भी]	८
▲ 822	अमृत-बिन्दु [बँगला, तमिल, ओड़िआ, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड भी]	१०
▲ 417	भगवन्नाम [मराठी, अंग्रेजी भी]	५
▲ 416	जीवनका सत्य [गुजराती, अंग्रेजी भी]	७
▲ 418	साधकोंके प्रति [बँगला, मराठी भी]	६
▲ 419	सत्संगकी विलक्षणता [गुजराती भी]	५
▲ 545	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग [गुजराती भी]	५
▲ 420	मातृशक्तिका घोर अपमान [तमिल, बँगला, मराठी, गुजराती, ओड़िआ भी]	५
▲ 421	जिन खोजा तिन पाइयाँ [बँगला भी]	७
▲ 422	कर्मरहस्य [बँगला, तमिल, कन्नड, ओड़िआ भी]	६
▲ 424	वासुदेवः सर्वम् [मराठी, अंग्रेजी भी]	५
▲ 425	अच्छे बनो [अंग्रेजी भी]	७
▲ 426	सत्संगका प्रसाद [गुजराती भी]	६
▲1019	सत्यकी खोज [गुजराती, अंग्रेजी भी]	८
▲1479	साधनके दो प्रधान सूत्र [ओड़िआ, बँगला भी]	४
▲1035	सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण	१
▲1360	तू-ही-तू	४
▲1434	एक नयी बात	३
▲1440	परम पितासे प्रार्थना	२
▲1441	संसारका असर कैसे छुटे?	२
▲1176	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और..[बँगला भी]	३
▲ 431	स्वाधीन कैसे बनें? [अंग्रेजी भी]	३
▲ 702	यह विकास है या....	२
▲ 589	भगवान् और उनकी भक्ति [गुजराती, ओड़िआ भी]	८
▲ 617	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम [तमिल, बँगला, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, गुजराती, मराठी भी]	७
▲ 770	अमरताकी ओर [गुजराती भी]	८
▲ 445	हम ईश्वरको क्यों मानें? [बँगला भी]	३

कोड		मूल्य रु०
▲ 432	एकै साधे सब सधै [गुजराती, तमिल, तेलुगु भी]	६
▲ 434	शरणागति [तमिल, ओड़िआ, तेलुगु, कन्नड भी]	५
▲ 427	गृहस्थमें कैसे रहें ? [बँगला, मराठी, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, गुजराती, असमिया, पंजाबी भी]	१०
▲ 433	सहज साधना [गुजराती, बँगला, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]	५
▲ 435	आवश्यक शिक्षा (सन्तानका कर्तव्य एवं आहारशुद्धि) [गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी, मराठी भी]	७
■1012	पञ्चामृत—(१०० पन्नोंका पैकेटमें) [गुजराती भी]	१
■1037	हे मेरे नाथ मैं आपको भूलूँ नहीं (१०० पन्नोंका पैकेटमें)	१
■1611	मैं भगवान्‌का अंश हूँ (,,)	१
■1612	सच्ची और पक्की बात (,,)	१
▲1072	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ? [गुजराती, ओड़िआ भी]	५
▲ 515	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन [गुजराती, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु भी]	२
▲ 438	दुर्गतिसे बचो [गुजराती, बँगला (गुरुतत्त्वसहित), मराठी भी]	२
▲ 439	महापापसे बचो [बँगला, तेलुगु, कन्नड, गुजराती, तमिल भी]	३
▲ 440	सच्चा गुरु कौन ? [ओड़िआ भी]	३
▲ 444	नित्य-स्तुति और प्रार्थना [कन्नड़, तेलुगु भी]	३
▲ 729	सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण [गुजराती भी]	३
▲ 447	मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी]	३
▲ 745	भगवत्तत्त्व [गुजराती भी]	२
▲ 632	सब जग ईश्वररूप है [ओड़िआ, गुजराती भी]	८

नित्य पाठ-साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु

कोड		मूल्य रु०
■1593	अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश	१२०
■1928	त्रिपिण्डी श्राद्ध पद्धति	१५
■1809	गया श्राद्ध पद्धति	३०
■1895	जीवच्छ्राद्धपद्धति	५०
■ 592	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [गुजराती भी]	५०
■1416	गरुडपुराण-सारोद्धार (सानुवाद)	३०
■1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	२५
■1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर	२८
■1954	शिव स्मरण	८
■1774	देवीस्तोत्ररत्नाकर	३०
■1623	ललितासहस्त्रनामस्तोत्रम् [तेलुगु भी]	१०
■ 610	व्रतपरिचय	४०
■1162	एकादशी-व्रतका माहात्य—मोटा टाइप [गुजराती भी]	२०
■1136	वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य	३०
■1588	माघमासका माहात्म्य	६
■1899	श्रावणमास-माहात्म्य (सानुवाद)	२७
■1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	१२
■ 052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी]	३०
■1629	,, ,, सजिल्द	४०
■1567	दुर्गासप्तशती—मूल, मोटा (बेड़िया)	३५
■ 876	,, मूल गुटका	१०
■1727	,, -मूल, लघु आकार	१०
■1346	,, सानुवाद मोटा टाइप	३०
■ 118	,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]	२५
■ 489	,, सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]	३५
■1281	,, ,, (विशिष्ट सं०)	४५
■ 866	,, केवल हिन्दी	१७
■1161	,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द	४५
■ 819	श्रीविष्णुसहस्त्रनाम—शांकरभाष्य	२८
■ 206	श्रीविष्णुसहस्त्रनाम—सटीक	५
■1801	श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम् (हिन्दी-अनुवादसहित)	८
■ 226	श्रीविष्णुसहस्त्रनाम—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी]	३
■1872	श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्-लघु	२
■ 509	सूक्ति-सुधाकर	
■ 207	रामस्तवराज—(सटीक)	४
■ 211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्—हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]	३
■ 224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र [तेलुगु, ओड़िआ भी]	५
■ 231	रामरक्षास्तोत्रम्—[तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	३
■ 715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्	

नामावलिसहितम्

कोड		मूल्य रु०
■1594	सहस्त्रनामस्तोत्रसंग्रह	८५
■1599	श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्रम्	६
■1600	श्रीगणेशसहस्त्रनामस्तोत्रम्	६
■1601	श्रीहनुमत्सहस्त्रनामस्तोत्रम्	६
■1663	श्रीगायत्रीसहस्त्रनामस्तोत्रम्	६
■1664	श्रीगोपालसहस्त्रनामस्तोत्रम्	६
■1665	श्रीसूर्यसहस्त्रनामस्तोत्रम्	५
■1706	श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्	६
■1704	श्रीसीतासहस्त्रनामस्तोत्रम्	७
■1705	श्रीरामसहस्त्रनामस्तोत्रम्	६
■1707	श्रीलक्ष्मीसहस्त्रनामस्तोत्रम्	७
■1708	श्रीराधिकासहस्त्रनामस्तोत्रम्	६
■1709	श्रीगंगासहस्त्रनामस्तोत्रम्	५
■1862	श्रीगोपालसहस्त्रनामस्तोत्रम्-सटीक	१०
■ 495	दत्तात्रेय-वज्रकवच—सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]	५
■ 563	शिवमहिम्नस्तोत्र [तेलुगु भी]	४
■1748	संतानगोपालस्तोत्र	६
■1850	शतनामस्तोत्रसंग्रह	२२
■1885	वैदिक सूक्त-संग्रह	२८
■ 054	भजन-संग्रह	४०
■1849	भजन-सुधा	१४
■ 229	श्रीनारायणकवच [ओड़िआ, तेलुगु भी]	३
■ 230	अमोघ शिवकवच	३
■ 140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	२५
■ 142	चेतावनी-पद-संग्रह (दोनों भाग)	२५
■ 144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	१०
■1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	८
■1800	पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह	८
■1092	भागवत-स्तुति-संग्रह	
■1214	मानस-स्तुति-संग्रह	१५
■1344	सचित्र-आरती-संग्रह	१५
■1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप	१५
■ 153	आरती-संग्रह	८
■1845	प्रमुख-आरतियाँ—पॉकेट	५
■ 208	सीतारामभजन	४
■ 221	हरेरामभजन-दो माला (गुटका)	४
▲ 385	नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी]	४
■ 222	हरेरामभजन—१४ माला	
■ 225	गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, हिन्दी पद्य, भाषानुवाद [तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]	३
■1505	भीष्मस्तवराज	३
■ 699	गङ्गालहरी	३
■1094	हनुमानचालीसा—हिन्दी भावार्थसहित	५
■1917	हनुमानचालीसा—रंगीन, वि०सं०४	
■ 227	,, —(पॉकेट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]	३
■ 695	हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ भी]	२
■1525	हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी]	२
■ 228	शिवचालीसा—(असमिया भी)	३
■1185	शिवचालीसा—लघु आकार	२
■ 232	श्रीरामगीता	४
■ 383	भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी....	३
■ 851	दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा	३
■1033	,, —लघु आकार	२
■ 203	अपरोक्षानुभूति	५
■ 139	नित्यकर्म-प्रयोग	१२
■ 524	ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री	३
■1471	संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य	६
■ 210	सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण.. मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]	६
■ 236	साधकदैनन्दिनी	४
■ 614	सन्ध्या	३

बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें

कोड		मूल्य रु०
■1316	बालपोथी (शिशु), रंगीन	१५
■ 212	,, ,, भाग-२	५
■ 684	,, ,, भाग-३	५
■ 764	,, ,, भाग-४	१०
■ 765	,, ,, भाग-५	१०
■ 125	,, ,, रंगीन, (भाग-१)	६
■1692	बालकके दिनचर्या रंगीन, ग्रन्थाकार	२५
■1693	बालकोंकी सीख ,,	२५
■1694	बालकके आचरण ,,	२५
■1690	बालकके गुण ,,	३०
■1689	आओ बच्चों तुम्हें बतायें ,,	२५
■ 218	बाल-अमृत-वचन	५
■ 696	बाल-प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी]	५
■ 213	बालकोंकी बोल-चाल	
■1691	बालकोंकी बातें—रंगीन	१५
■ 146	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा [ओड़िआ भी]	१०
■ 150	पिताकी सीख [गुजराती भी]	१२
■ 396	आदर्श ऋषि-मुनि	
■ 397	आदर्श देशभक्त	
■ 398	आदर्श सम्राट् [गुजराती भी]	
■ 402	आदर्श सुधारक	
■ 399	आदर्श संत	
■ 516	आदर्श चरितावली	
■ 116	लघुसिद्धान्तकौमुदी, सजिल्द	३५
■1437	वीर बालक (रंगीन)	१५
■1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (रंगीन)	१२
■1450	सच्चे-ईमानदार बालक-रंगीन	१२
■1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन)	१२
■1448	वीर बालिकाएँ (रंगीन)	१२
■ 727	स्वास्थ्य, सम्मान और सुख	५

सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड		मूल्य रु०
■1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ	२०
■ 698	मार्क्सवाद और रामराज्य—स्वामी करपात्रीजी	
■1955	जीवनचर्या विज्ञान	३५
■1657	भलेका फल भला	५
■1300	महाकुम्भपर्व	५
■ 542	ईश्वर	४
■ 57	मानसिक दक्षता	२८
■ 59	जीवनमें नया प्रकाश	२८
■ 60	आशाकी नयी किरणें	२५
■ 119	अमृतके घूँट	२२
■ 132	स्वर्णपथ	२०
■ 55	महकते जीवनफूल	३५
■1461	हम कैसे रहें ?	१०
■ 774	कल्याणकारी दोहा-संग्रह, गीताप्रेस-परिचयसहित	१२
■ 387	प्रेम-सत्संग-सुधामाला	२०
■ 668	प्रश्नोत्तरी	३
■ 501	उद्धव-सन्देश	२५
■ 195	भगवान्‌पर विश्वास	७
■ 120	आनन्दमय जीवन	२०
■ 133	विवेक-चूडामणि [तेलुगु, बँगला भी]	१७
■ 862	मुझे बचाओ, मेरा क्या कसूर ?	२५
■ 131	सुखी जीवन	२०
■ 122	एक लोटा पानी	१७
▲ 701	गर्भपात उचित या...... [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड भी]	४
■ 888	परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला भी]	१७
■ 134	सती द्रौपदी	१५
■1624	पौराणिक कथाएँ	१४
■1938	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ—पुस्तकाकार	८
■1782	प्रेरणाप्रद कथाएँ	१७
■1669	पौराणिक कहानियाँ	१४
■ 137	उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, कन्नड़, गुजराती, बँगला भी]	१५
■ 159	आदर्श उपकार—(पढ़ो, समझो और करो)	१७
■ 160	कलेजेके अक्षर ,,	१७
■ 161	हृदयकी आदर्श विशालता ,,	१७
■ 162	उपकारका बदला ,,	१५
■ 163	आदर्श मानव-हृदय ,,	१७
■ 164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो)	१७
■ 165	मानवताका पुजारी ,,	१७
■ 166	परोपकार और सच्चाईका फल ,,	१७
■ 510	असीम नीचता और असीम साधुता	१७
■ 157	सती सुकला	६
■ 147	चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, गुजराती, मराठी भी]	८
■ 129	एक महात्माका प्रसाद [गुजराती भी]	३०
■1688	तीस रोचक कथाएँ	१५
■ 151	सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला	१२
■1922	गोरक्षा एवं गोसंवर्धन	७

चित्रकथा

कोड		मूल्य रु०
■1647	देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ	२५
■1646	महाभारतके प्रमुख पात्र	२५
■ 190	बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला	२०
■ 868	भगवान् सूर्य (ग्रंथाकार)	२५

कोड | मूल्य रु०

■1156 एकादश रुद्र (शिव) ५०
■1032 बालचित्र-रामायण-पुस्तकाकार ६
■ 869 कन्हैया [बँगला, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी] १५
■ 870 गोपाल [बँगला, तेलुगु, तमिल भी] १५
■ 871 मोहन [बँगला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी] १५
■ 872 श्रीकृष्ण [बँगला, तमिल, तेलुगु भी] १२
■1018 नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी] १५
■1016 रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी] २५
■1116 राजा राम [तेलुगु भी] २५
■1017 श्रीराम २५
■1394 भगवान् श्रीराम (पुस्तकाकार) १२
■1418 श्रीकृष्णलीला-दर्शन ,, १५
■1278 दशमहाविद्या [बँगला भी] १५
■1343 हर-हर महादेव २५

■ 829 अष्टविनायक [ओड़िआ, मराठी, गुजराती भी] १५
■1794 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र २०
■ 204 ॐ नमः शिवाय [बँगला, ओड़िआ, कन्नड भी] २५
■ 787 जय हनुमान् [तेलुगु, ओड़िआ भी] २५
■ 779 दशावतार [बँगला भी] १५
■1215 प्रमुख देवता १५
■1216 प्रमुख देवियाँ १५
■1442 प्रमुख ऋषि-मुनि २५
■1443 रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] २५
■1488 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] २५
■1537 श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ २५
■1538 महाभारतकी प्रमुख कथाएँ २५
■1420 पौराणिक देवियाँ १२

■1307 नवदुर्गा—पॉकेट साइज ५
■ 205 नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती, असमिया, कन्नड, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी] १५
■ 537 बाल-चित्रमय बुद्धलीला
■ 194 बाल-चित्रमय चैतन्यलीला [ओड़िआ, बँगला भी] १२
■ 651 गोसेवाके चमत्कार [तमिल भी] १५

रंगीन चित्र-प्रकाशन

▲1695 चित्र—भगवती सरस्वती १०
▲1582 चित्र भगवान् श्रीकृष्ण १०
▲ 237 जय श्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण २०
▲ 546 जय श्रीकृष्ण—भगवान् श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण २०

▲1957 श्रीलक्ष्मीनारायण १०
▲1970 ,, एवं श्रीगणेशजी १०
▲1001 जगज्जननी श्रीराधा ८
▲1020 श्रीराधा-कृष्ण—युगल छवि ८
▲ 491 हनुमान्जी—(भक्तराज हनुमान्) १०
▲ 492 भगवान् विष्णु ८
▲1568 भगवान् श्रीराम-बालरूपमें १०
▲1351 सुमधुर गोपाल ८
▲ 560 लड्डू गोपाल १०
▲1674 ,, (प्लास्टिक कोटेड) १५
▲ 776 सीताराम—युगल छवि ८
▲ 548 मुरलीमनोहर-भगवान् मुरलीमनोहर १०
▲ 782 श्रीरामदरबारकी झाँकी १०
▲1290 नटराज शिव ८
▲ 630 सर्वदेवमयी गौ १०
▲ 531 श्रीबाँकेबिहारी १०
▲ 812 नवदुर्गा १०

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

■1184 श्रीकृष्णाङ्क
■ 41 शक्ति-अङ्क १५०
■ 616 योगाङ्क १३०
■ 627 संत-अङ्क १८०
■ 604 साधनाङ्क
■1773 गो-अङ्क १७०
■ 44 संक्षिप्त पद्मपुराण २००
■ 539 संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण ७५
■1111 संक्षिप्त ब्रह्मपुराण १००
■ 43 नारी-अङ्क २००
■ 659 उपनिषद्-अङ्क १५०
■ 279 सं० स्कन्दपुराण २८०
■ 40 भक्त-चरिताङ्क २००
■1183 सं० नारदपुराण १७०

■ 667 संतवाणी-अङ्क १५०
■ 587 सत्कथा-अङ्क १४०
■ 636 तीर्थाङ्क १५०
■ 574 संक्षिप्त योगवासिष्ठ १४०
■1133 सं० देवीभागवत-मोटा टाइप २००
■ 789 सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप) १७५
■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण १७५
■ 572 परलोक-पुनर्जन्माङ्क १५०
■1135 भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क १२०
■ 517 गर्ग-संहिता १३०
■1113 नरसिंहपुराणम्—सानुवाद ७०
■1362 अग्निपुराण २००
(मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)

■1432 वामनपुराण ११०
■ 557 मत्स्यमहापुराण (सानुवाद) २३०
■ 657 श्रीगणेश-अङ्क १५०
■ 42 हनुमान-अङ्क १२५
■1361 सं० श्रीवाराहपुराण १००
■ 791 सूर्याङ्क ८०
■ 584 सं० भविष्यपुराण १५०
■ 586 शिवोपासनाङ्क १००
■ 653 गोसेवा-अङ्क १००
■1131 कूर्मपुराण १००
■1044 वेद-कथाङ्क १००
▲1542 भगवत्प्रेम-अङ्क-अजि० ६५
▲1467 भगवत्प्रेम-अङ्क-सजि० ८५
■1592 आरोग्य-अङ्क (परिवर्धित संस्करण) १७०

■1189 सं० गरुडपुराण १४०
■1610 देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क ९०
■1793 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध) १००
■1842 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्द्ध) १००

Annual Issues of Kalyan-Kalpataru

▲ 1841 Jaiminīya Mahābhārata (Āśwamedhika Parva) (Part I) 40
▲ 1847 Jaiminīya Mahābhārata (Āśwamedhika Parva) (Part II) 40
▲ 2109 Morality Number 40
▲ 1971 Sādhanā Number 50
▲ 1972 Shiksha Number 50

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

बँगला

■1937 सं० शिवपुराण १२५
■1883 श्रीरामचरितमानस-मझला, सटीक १६०
■1577 श्रीमद्भागवतपुराण-सटीक-I २२०
■1744 श्रीमद्भागवतपुराण-सटीक-II २१०
■1785 भागवतेरमणिभुक्तेर २२
■1662 श्रीचैतन्यचरितामृत १५०
■1603 ईशादि नौ उपनिषद् ६०
■1786 मूल वाल्मीकीयरामायण ६
■1839 कृतिवासीरामायण १४०
■1901 साधन समर ११०
■1574 संक्षिप्त महाभारत-भाग-I १८०
■1660 ,, ,, भाग-II १८०
■ 763 गीता-साधक-संजीवनी- १७०
■1118 गीता-तत्त्व-विवेचनी ९०
■1851 गीता रसामृत ७५
■ 556 गीता-दर्पण ७०
■1736 गीता-प्रबोधनी ४०
■1489 गीता-दैनन्दिनी (२०१४) ६५
■ 013 गीता-पदच्छेद ४०
■1444 गीता-ताबीजी—सजिल्द ६
■1455 गीता-लघु आकार २
■1322 दुर्गासप्तशती—सटीक २५
■1604 पातञ्जलयोगदर्शन १५
■1460 विवेकचूडामणि १५
■1075 ॐ नमः शिवाय (चित्रकथा) २५
■1787 महावीर हनुमान् (,,) २५
■1043 नवदुर्गा (,,) १२
■1439 दश महाविद्या (,,) १५

■1292 दशावतार (चित्रकथा) १५
■1096 कन्हैया (,,) १५
■1097 गोपाल (,,) १५
■1892 सीतापतिराम (,,) २५
■1893 राजाराम (,,) २५
■1891 रामलला (,,) २५
■1098 मोहन (,,) १२
■1123 श्रीकृष्ण (,,) १५
■1888 जय शिवशंकर (,,) २०
■1889 प्रमुख ऋषिमुनि (,,) २५
■1495 बालचित्रमय चैतन्यलीला १२
■1393 गीता भाषा-टीका-पॉकेट सजि. १६
■1454 स्तोत्ररत्नावली २८
■1854 भागवतरत्नावली १६
■1659 श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम २
■1852 रामरक्षास्तोत्र—लघु आकार १
■1853 आमेदेरलक्ष्य और कर्तव्य १०
■ 496 गीता-भाषा-टीका (पॉकेट) १०
■1834 श्रीमद्भगवद्गीता (मूल) एवं विष्णुसहस्रनाम ७
▲1581 गीतार-सारातसार ८
■1496 परलोक और पुनर्जन्मकी... १५
▲1795 मनको वश करनेके कुछ उपाय व आनन्दकी लहरें ५
■1920 शाकाहार या मांसाहार-फैसला... ८
▲1925 ईश्वरकी सत्ता एवं महत्ता १०
▲ 275 कल्याण-प्राप्तिके उपाय २०
▲1305 प्रश्नोत्तर मणिमाला १०

▲ 395 गीतामाधुर्य १०
▲1102 अमृत-बिन्दु १०
■1356 सुन्दरकाण्ड—सटीक १२
▲ 816 कल्याणकारी प्रवचन ८
▲1838 जीवनोपयोगी प्रवचन १०
▲ 276 परमार्थ-पत्रावली (भाग-१) ८
▲1306 कर्तव्य साधनासे भगवत्प्राप्ति ७
▲1119 ईश्वर और धर्म क्यों? १२
▲1456 भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय १२
▲1580 अध्यात्मसाधनाय कर्महीनतानय ८
▲1452 आदर्श कहानियाँ ८
▲1453 प्रेरक कहानियाँ ६
■1513 मूल्यवान् कहानियाँ १२
▲1469 सब साधनोंका सार ५
▲1478 मानवमात्रके कल्याणके लिये १३
▲1359 जिन खोजा तिन पाइयाँ ८
▲1115 तत्त्वज्ञान कैसे हो? ७
▲1303 साधकोंके प्रति ७
▲1358 कर्म-रहस्य ६
▲1122 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? ५
▲1742 शरणागति ५
▲1784 प्रेमभक्ति प्रकाश तथा ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप ३
▲ 625 देशकी वर्तमान दशा.... ६
▲ 428 गृहस्थमें कैसे रहें ? ७
▲ 903 सहज साधना ४
▲1415 अमृतवाणी १२

▲ 312 आदर्श नारी सुशीला ४
▲1541 साधनके दो प्रधान सूत्र ५
▲ 955 तात्त्विक प्रवचन ५
■1652 नवग्रह (चित्रकथा) १५
▲ 449 दुर्गतिसे बचो सच्चा गुरु कौन? ४
▲ 956 साधन और साध्य ५
▲1579 साधनार मनोभूमि ८
▲ 330 नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र ३
▲ 762 गर्भपात उचित या अनुचित··· ४
■1881 हनुमानचालीसा—सटीक ३
■1880 हनुमानचालीसा—लघु २
■1743 शिवचालीसा, लघु आकार २
■1797 स्तवमाला ३
▲1319 कल्याणके तीन सुगम मार्ग ३
▲1651 हे महाजीवन! हे महामरण! २
▲1293 शिखा धारणकी········· २
▲ 450 हम ईश्वरको क्यों मानें? ३
▲1884 ईश्वर-लाभके विविध उपाय २
▲ 849 मातृशक्तिका घोर अपमान ३
▲ 451 महापापसे बचो ३
▲ 469 मूर्तिपूजा २
▲ 296 सत्संगकी सार बातें २
▲1936 ईश्वरेरप्रति विश्वास ६
▲ 443 संतानका कर्तव्य २
■1835 सत्यनिष्ठ साहसी बालक बालिकादेर कथा २०
▲1946 रामायण-महाभारतके कुछ...१५
▲1948 यह विकास या विनास ३

मराठी

कोड		मूल्य रु०
■1314	श्रीरामचरितमानस सटीक, मोटा टाइप	२१०
■1687	सुन्दरकाण्ड, सटीक	७
■1508	अध्यात्मरामायण	९०
■ 784	ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका	१७५
■1808	श्रीतुकाराममहाराजांची गाथा	१००
■1942	जगतगुरु तुकाराम	१७
■1934	संतश्रेष्ठ एकनाथ	२०
■1931	ब्रह्मचित्कलादर्शन अर्थात् श्रीमुक्ताबाई चरित्र व गाथा	७०
■1915	संतनामदेवांची अभंग गाथा	१००
■1817	पाण्डव-प्रताप	११०
■1950	हरिविजय	८०
■1836	श्रीगुरुचरित्र	१००
■1780	श्रीदासबोध, मझला साइज	१००
■1781	दासबोध (गद्यरूपान्तरासह)	१५०
■ 853	एकनाथी भागवत—मूल	१४०
■1678	श्रीमद्भागवतमहापुराण-I	१८०
■1735	श्रीमद्भागवतमहापुराण-सटीक-I	१८०
■1776	श्रीमद्भागवतमहापुराण (केवल मराठी अनुवाद)	२२०
■ 7	गीता-साधक-संजीवनी टीका	१५०
■1304	गीता-तत्त्व-विवेचनी	११०
■ 859	ज्ञानेश्वरी—मूल मझला	६०
■ 15	गीता-माहात्म्यसहित	४५
■ 504	गीता-दर्पण	३५
■ 748	ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका	
■1896	ज्ञानेश्वरी—माउली	१७
■ 14	गीता—पदच्छेद	४५
■1388	गीता-श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप)	१५
■1257	गीता—श्लोकार्थसहित	१०
■1168	भक्त नरसिंह मेहता	१५
■1913	संत श्रेष्ठ नामदेव	१७
■1671	महाराष्ट्रातील निवडक....	१०
▲ 429	गृहस्थमें कैसे रहें?	१२
▲1703	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	५
▲1387	प्रेममें विलक्षण एकता	१०
■ 857	अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१५
▲ 391	गीतामाधुर्य	१०
▲1099	अमूल्य समयका सदुपयोग	१०
▲1335	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१२
▲1155	उद्धार कैसे हो?	६
▲1716	भगवान् कैसे मिले?	१२
▲1719	चिन्ता,शोक कैसे मिटे?	१२
▲1717	मनुष्य जीवनका उद्देश्य	१०
▲1074	आध्यात्मिक पत्रावली	१०
▲1275	नवधा भक्ति	८
▲1386	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	८
▲1340	अमृत-बिन्दु	८
▲1382	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	१०
■1818	उपयोगी कहानियाँ	१५
▲1210	जित देखूँ तित-तू	१२
▲1330	मेरा अनुभव	१०
■1277	भक्त बालक	६
■1073	भक्त चन्द्रिका	८
■1383	भक्तराज हनुमान्	६
■1778	जीवनादर्श श्रीराम	२०
▲ 886	साधकोंके प्रति	७
▲ 885	तात्त्विक प्रवचन	७
■1607	रुक्मिणी स्वयंवर	१५
■1640	सार्थ मनाचे श्लोक	६
■1333	भगवान् श्रीकृष्ण	८
■1331	कृष्ण भक्त उद्धव	६
■1682	सार्थ सं० देवीपाठ	८
■1332	दत्तात्रेय-वज्रकवच	५
■1732	शिवलीलामृत	४०
■1768	श्रीशिवलीलामृतांतील-अकरावा अध्याय	४
■1730	श्रीशिवमहिम्न:स्तोत्रम्	४
■1731	श्रीविष्णुसहस्रनामावलि:	४
■1729	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	७
■1670	मूल रामायण, पॉकेट साइज	४
■1679	मनाचे श्लोक, पॉकेट साइज	४
■1680	सार्थश्रीगणपत्यथर्वशीर्ष	३
■1683	सार्थ ज्ञानदेवी गीता	१५
■1810	कन्हैया (चित्रकथा)	१५
■1811	गोपाल (,,)	१५
■1812	मोहन (,,)	१५
■1813	श्रीकृष्ण (,,)	१२
■1828	रामलला (,,)	२०
■1829	श्रीराम (,,)	२०
■1830	राजाराम (,,)	२०
■1645	हरिपाठ (सार्थ सविवरण)	१२
■ 855	हरिपाठ	५
■1169	चोखी कहानियाँ	६
▲1385	नल-दमयंती	४
▲1384	सती सावित्री-कथा	४
■1814	सामाजिक संस्कार कथा	१७
■1815	घराघरातील संस्कार कथा	२०
▲ 880	साधन और साध्य	७
▲1006	वासुदेव: सर्वम्	६
▲1276	आदर्श नारी सुशीला	४
▲1334	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲1749	श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश व ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	४
▲ 899	देशकी वर्तमान दशा....	७
▲1339	कल्याणके तीन सुगम मार्ग और सत्यकी शरणसे मुक्ति	६
▲1428	आवश्यक शिक्षा	७
▲1341	सहज साधना	६
▲1711	शिखा (चोटी) धारण...	३
▲ 802	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 882	मातृशक्तिका घोर अपमान	५
▲ 883	मूर्तिपूजा	३
■1746	मनोबोधभक्तिसूत्र	१२
▲ 884	सन्तानका कर्तव्य	३
▲1279	सत्संगकी कुछ सार बातें	३
▲1613	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	१२
▲1642	प्रेमदर्शन	१२
▲1641	साधनकी आवश्यकता	१२
▲ 901	नाम-जपकी महिमा	२
▲ 900	दुर्गतिसे बचो	२
▲1171	गीता पढ़नेके लाभ	२
▲ 902	आहार-शुद्धि	
▲1170	हमारा कर्तव्य	३
▲ 881	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	१२
▲ 898	भगवन्नाम	७
▲1578	मानवमात्रके कल्याणके लिये	२०
■1779	भलेका फल भला	४

गुजराती

कोड		मूल्य रु०
■ 799	श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार	१९०
■1939	वाल्मीकीयरामायण—सटीक-I	२००
■1940	वाल्मीकीयरामायण—सटीक-II	२००
■1943	गीता-माहात्म्य	४०
■1552	भागवत—सटीक (खण्ड-१)	१८०
■1553	भागवत—सटीक (खण्ड-२)	१८०
■1608	श्रीमद्भागवत-सुधासागर	२५०
■1326	सं० देवीभागवत	२००
■1798	सं० महाभारत (खण्ड-१)	२५०
■1799	सं० महाभारत (खण्ड-२)	२५०
■1286	संक्षिप्त शिवपुराण	१७०
■1650	तत्त्वचिन्तामणि, ग्रन्थाकार	८०
■1630	साधन-सुधा-सिन्धु	१२५
■ 467	गीता-साधक-संजीवनी	१८०
■1313	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१३०
■ 785	श्रीरामचरितमानस-मझला, सटीक	९०
■ 878	श्रीरामचरितमानस—मूल मझला	६०
■ 879	,, —मूल गुटका	४०
■1430	,, —मूल, मोटा टाइप	१२०
■1960	सं० योगवाशिष्ठ	१५०
■1637	सुन्दरकाण्ड-सटीक, मोटा टाइप	२५
■1365	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश	४५
■1565	गीता-मोटे अक्षरवाली सजिल्द	३५
■1668	एकादशीव्रतका माहात्म्य	१५
■ 12	गीता-पदच्छेद	४०
■1315	गीता—सटीक, मोटा टाइप	२२
■1366	दुर्गासप्तशती—सटीक	२५
■1634	दुर्गासप्तशती—सजिल्द	३५
■1227	सचित्र आरतियाँ	१२
■ 936	गीता छोटी—सटीक	१२
■1034	गीता छोटी—सजिल्द	२०
■1636	श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटा टाइप	१०
■1225	मोहन— (चित्रकथा)	१२
■1224	कन्हैया—(,,)	१५
■1228	नवदुर्गा—(,,)	१२
■1656	गीता-ताबीजी, मूल, सजिल्द	५
■ 948	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	७
■1085	भगवान् राम—	६
■ 950	सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका	४
■1199	सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार	४
■1823	विनय-पत्रिका	३०
■1226	अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१५
■ 613	भक्त नरसिंह मेहता	१५
▲1518	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	१०
▲1486	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१४
▲1164	शीघ्र कल्याणके सोपान	१२
▲1146	श्रद्धा, विश्वास और प्रेम	१५
▲1144	व्यवहारमें परमार्थकी कला	१२
▲1062	नारीशिक्षा	१२
▲1129	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	१२
■1400	पिताकी सीख	१२
■1425	वीर बालिकाएँ	६
■1423	गुरु, माता-पिताके भक्त बालक	८
■1422	वीर बालक	८
■1424	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	६
■1258	आदर्श सम्राट्	६
▲1128	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श	१०
▲1061	साधन नवनीत	९
▲1520	कर्मयोगका तत्त्व (भाग—१)	१२
▲1264	मेरा अनुभव	१०
▲1046	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१२
▲1211	जीवनका कर्तव्य	१२
▲ 404	कल्याणकारी प्रवचन	७
▲ 877	अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति	१२
▲ 818	उपदेशप्रद कहानियाँ	१२
▲1265	आध्यात्मिक प्रवचन	८
▲1516	परमशान्तिका मार्ग (भाग-१)	१०
▲1504	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१०
■1212	एक महात्माका प्रसाद	२५
▲1539	सत्संगकी मार्मिक बातें	१०
▲1457	प्रेममें विलक्षण एकता	१०
▲1655	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	१०
▲1503	भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	८
▲1325	सब जग ईश्वररूप है	६
▲1052	इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	१२
▲1878	जन्ममरणसे छुटकारा	१०
■ 934	उपयोगी कहानियाँ	१२
▲1067	दिव्य सुखकी सरिता	६
▲ 933	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१२
▲1295	जित देखूँ तित-तू	१०
▲ 943	गृहस्थमें कैसे रहें?	१०
▲1260	तत्त्वज्ञान कैसे हो?	७
▲1263	साधन और साध्य	५
▲1294	भगवान् और उनकी भक्ति	१०
▲ 932	अमूल्य समयका सदुपयोग	१०
▲ 392	गीतामाधुर्य	१२
▲1077	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
▲ 940	अमृत-बिन्दु	८
▲ 931	उद्धार कैसे हो?	८
▲ 894	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	८
▲ 413	तात्त्विक प्रवचन	७
■ 895	भगवान् श्रीकृष्ण	८
▲1126	साधन -पथ	६
▲ 946	सत्संगका प्रसाद	७
▲ 942	जीवनका सत्य	८
▲1145	अमरताकी ओर	७
▲1066	भगवान्‌से अपनापन	६
■ 806	रामभक्त हनुमान्	६
▲1086	कल्याणकारी प्रवचन (भाग-२)	८
▲1287	सत्यकी खोज	८
▲1088	एकै साधे सब सधै	४
■1399	चोखी कहानियाँ	७
▲ 889	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲1141	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	५
▲1047	आदर्श नारी सुशीला	४
▲1059	नल-दमयन्ती	५
▲1045	बालशिक्षा	६
▲1063	सत्संगकी विलक्षणता	५
▲1064	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग	४
▲1165	सहज साधना	५
▲1151	सत्संगमुक्ताहार	४
■1401	बालप्रश्नोत्तरी	४
▲ 893	सती सावित्री	३
▲1177	आवश्यक शिक्षा	४
■1867	स्वास्थ्य, सम्मान और सुख	५
▲1049	आनन्दकी लहरें	३
▲ 937	विष्णुसहस्रनाम नामावली	७
■1941	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्र नामावली...	६
■1910	गजेन्द्रमोक्ष	३
■1909	आदित्यहृदयस्तोत्र	३
■1911	गोपालसहस्रनामस्तोत्र	५
▲1058	मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण	३
▲1050	सच्चा सुख	२
▲1060	त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ	२
▲1840	एक संतकी वसीयत	२
■ 828	हनुमानचालीसा	३
▲ 844	सत्संगकी कुछ सार बातें	३
▲1055	हमारा कर्तव्य एवं व्यापार सुधारकी आवश्यकता	१.५०
▲1048	संत-महिमा	२
▲1310	धर्मके नामपर पाप	२
▲1179	दुर्गतिसे बचो	२
▲1178	सार-संग्रह, सत्संगके अमृत कण	३
▲1152	मुक्तिमें सबका अधिकार	१.५०
▲1207	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1206	धर्म क्या है? भगवान् क्या है?	२
▲1500	सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व	३
▲1051	भगवान्‌की दया	३
■1198	हनुमानचालीसा—लघु आकार	२
■1649	हनुमानचालीसा-अति लघु आकार	२
▲1054	प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 938	सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन	१
▲1056	चेतावनी एवं सामयिक...	१
▲1053	अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर..	१.५०
▲1127	ध्यान और मानसिक पूजा	१.५०
▲1148	महापापसे बचो	३
▲1153	अलौकिक प्रेम	१.५०

तमिल

कोड		मूल्य रु०
■1426	साधक-संजीवनी (भाग-१)	१४०
■1427	साधक-संजीवनी (भाग-२)	१२०
■ 800	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१५०
■1902	वा०रा०-सटीक (खण्ड-१)	२००
■1903	वा०रा०-सटीक (खण्ड-२)	१५०
■1904	वा०रा०-सटीक (खण्ड-३)	१२०
■1905	वा०रा०-सटीक (खण्ड-४)	१६०
■1906	वा०रा०-सटीक (खण्ड-५)	१२०
■1256	अध्यात्मरामायण	८५
■1961	श्रीमद्वा०रा० वचनमु-I	१९०
■1962	श्रीमद्वा०रा० वचनमु-II	१९०
■1966	श्रीमद्भा०महा०-सटीक-I	२२५
■1967	श्रीमद्भा०महा०-सटीक-II	२२५
■1968	श्रीमद्भा०महा०-सटीक-III	२५०
■ 823	गीता—पदच्छेद	५५

कोड		मूल्य रु०
■ 743	गीता—मूलम्	३०
■ 795	गीता—भाषा	८
■1918	गीता—छोटी	१२
■1606	श्रीमन्नारायणीयम्, सटीक	७०
■1618	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड वचनमु	४५
■1619	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड मूलम्	३०
■1890	कंबरामायण सुन्दरकाण्डम्	२८
■1912	व्रत-कल्पत्रयम्	११
▲ 389	गीतामाधुर्य	१५
■1788	श्रीमुरुगनुतुदिमालै	१२
■1789	तिरुप्पावैविलक्कम्	१७
■ 365	गोसेवाके चमत्कार	१५
■1134	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१५
▲1007	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
▲ 553	गृहस्थमें कैसे रहें ?	१५
▲ 850	संतवाणी—(भाग १)	१०
▲ 952	" (" २)	१०
▲ 953	" (" ३)	१०
▲1353	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१२
▲1354	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	१२
■ 646	चोखी कहानियाँ	१०
■ 608	भक्तराज हनुमान्	१०
■1246	भक्तचरित्रम्	१०
▲ 643	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	७
▲ 550	नाम-जपकी महिमा	२
▲1289	साधन-पथ	६
▲1480	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	१०
▲1481	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१०
▲1482	भक्तियोगका तत्त्व	१०
■ 793	गीता मूल-विष्णुसहस्रनाम	८
▲1117	देशकी वर्तमान दशा...	७
▲1110	अमृत-बिन्दु	१०
▲ 655	एकै साधे सब सधै	८
▲1243	वास्तविक सुख	१०
■ 741	महात्मा विदुर	६
▲ 536	गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी..	५
▲ 591	महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य	५
▲ 609	सावित्री और सत्यवान्	४
▲ 644	आदर्श नारी सुशीला	६
▲ 568	शरणागति	५
▲ 805	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲ 607	सबका कल्याण कैसे हो ?	४
■ 794	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	४
■ 127	उपयोगी कहानियाँ	१२
■ 600	हनुमानचालीसा	४
▲ 466	सत्संगकी सार बातें	३
▲ 499	नारद-भक्ति-सूत्र	३
■ 601	भगवान् श्रीकृष्ण	१०
■ 642	प्रेमी भक्त उद्धव	१०
▲ 742	गर्भपात उचित या....	२.५०
▲ 423	कर्मरहस्य	७
▲ 569	मूर्तिपूजा	३
▲ 551	आहारशुद्धि	३
▲ 645	नल-दमयन्ती	८
▲ 606	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	४
▲ 792	आवश्यक चेतावनी	४

कन्नड़

कोड		मूल्य रु०
■1112	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१२०
■1369 1370	गीता-साधक-संजीवनी (दो खण्डोंमें सेट)	२२०
■1728	सार्थ ज्ञानेश्वरी	१५०
■1739	श्रीमद्भागवतमहापुराण (सटीक) खण्ड-१	२००
■1740	श्रीमद्भागवतमहापुराण (सटीक) खण्ड-२	२००
■1558	अध्यात्मरामायण	१००
■1926	सं० शिवपुराण	१४०
■1949	भागवत सुधासागर	२५०
■1964	श्रीमद्०वा०रा० सटीक—I	२००
■1965	" " II	२००
■1969	" " III	२५०

कोड		मूल्य रु०
■1560	रामचरितमानस-सटीक	१६०
■1559	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-सुन्दरकाण्ड	८०
■ 726	गीता-पदच्छेद	४५
■ 718	गीता-तात्पर्यके साथ	२५
■1372	गीता-माहात्म्य	१२
■1723	श्रीभीष्मपितामह	१५
■1724	भक्त नरसिंह मेहता	१२
■1737	विदुरनीति	१७
■1726	प्रेमी भक्त	८
■1720	कृष्ण-भक्त उद्धव	४
▲1721	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	६
■1725	महात्मा विदुर	५
▲1722	बालकोंके कर्तव्य	५
■1816	गुरु और माता-पिताके....	८
■1375	ॐ नमः शिवाय	२५
■1357	नवदुर्गा	१५
▲1109	उपदेशप्रद कहानियाँ	१२
▲ 945	साधन नवनीत	१५
■ 724	उपयोगी कहानियाँ	१२
▲1499	नवधा भक्ति	६
▲1498	भगवत्कृपा	५
▲ 833	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१५
■1827	भागवतके प्रमुख पात्र	२५
▲ 834	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१२
■1107	भगवान् श्रीकृष्ण	१०
■1288	गीता—श्लोकार्थ	१०
▲ 716	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	८
■ 832	सुन्दरकाण्ड (सटीक)	१०
■1819	कन्हैया (चित्रकथा)	१२
■1820	गोपाल (" ")	१५
■1821	मोहन (" ")	१५
■1822	श्रीकृष्ण (" ")	१५
■1825	श्रीराम (" ")	२०
■1824	रामलला (" ")	२५
■1826	राजाराम (" ")	२०
■1863	दशावतार (" ")	१५
■1864	प्रमुख ऋषि मुनि (" ")	२०
■1865	प्रमुख देवता (" ")	१२
■ 840	आदर्श भक्त	१०
■ 841	भक्त सप्तरत्न	१०
■ 843	दुर्गासप्तशती—मूल	१५
▲ 390	गीतामाधुर्य	९
▲1625	नारीशिक्षा	१०
▲1626	अमृत-बिन्दु	१०
▲ 720	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	१२
▲1374	अमूल्य समयका सदुपयोग	८
▲ 128	गृहस्थमें कैसे रहें ?	१०
■ 661	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	८
■ 721	भक्त बालक	८
■ 951	भक्त चन्द्रिका	१०
■ 835	श्रीरामभक्त हनुमान्	८
■ 837	विष्णुसहस्रनाम—सटीक	१०
■ 842	ललितासहस्रनामस्तोत्र	८
■1373	गजेन्द्रमोक्ष	३
■1106	ईशावास्योपनिषद्	५
▲ 717	सावित्री-सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	५
▲ 723	नाम-जपकी महिमा और.....	४
▲ 725	भगवान्‌की दया एवं···	४
▲ 722	सत्यकी शरणसे मुक्ति, गीता पढ़नेके लाभ	४
▲ 325	कर्मरहस्य	५
▲ 597	महापापसे बचो	३
▲ 719	बालशिक्षा	६
▲ 839	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲1882	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	८
▲1371	शरणागति	५
▲ 836	नल-दमयन्ती	४
▲ 838	गर्भपात उचित या अनुचित···	२
■1105	श्रीवाल्मीकि रामायणम्-संक्षिप्त	२
■ 737	विष्णुसहस्रनाम एवं सहस्रनामावली	४

कोड		मूल्य रु०
■ 736	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	३
■ 738	हनुमत्-स्तोत्रावली	३
▲ 593	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	१०
▲ 598	वास्तविक सुख	८
▲ 831	देशकी वर्तमान दशा तथा···	५

असमिया

कोड		मूल्य रु०
■ 714	गीता—भाषा-टीका-पॉकेट	१२
■1564	महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	१०
■1222	श्रीमद्भागवतमाहात्म्य	८
■1963	सुन्दरकाण्ड—सटीक	१०
▲624	गीतामाधुर्य	१०
▲1487	गृहस्थमें कैसे रहें ?	१०
▲1715	आदर्श नारी सुशीला	४
■1323	श्रीहनुमानचालीसा	३
■1515	शिवचालीसा	३
▲ 703	गीता पढ़नेके लाभ	२
▲1924	सत्संगकी कुछ सार बातें	२

ओड़िआ

कोड		मूल्य रु०
■1551	संत जगन्नाथदासकृत भागवत	२२०
■1750	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध	२५
■1777	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध	८०
■1121	गीता-साधक-संजीवनी	२२५
■1100	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१२०
■1473	साधन-सुधा-सिन्धु	१४०
■1463	रामचरितमानस— सटीक, मोटा टाइप	२००
■1218	" मूल, मोटा टाइप	१००
■1831	श्रीमद्भागवतमहापुराण-I	२५०
■1832	श्रीमद्भागवतमहापुराण-II	२५०
■1298	गीता-दर्पण	६०
■1672	गीता-प्रबोधनी	४०
■1956	गीता-पदच्छेद-अन्वय	४५
■ 815	गीता-श्लोकार्थसहित (सजिल्द)	३५
■1219	गीता-पञ्चरत्न	२५
■1702	गीता-ताबीजी	६
■1009	जय हनुमान् (चित्रकथा)	२५
■1250	ॐ नमः शिवाय (")	
■1010	अष्ट विनायक (")	१२
■1248	मोहन (")	१२
■1249	कन्हैया (")	१२
■ 863	नवदुर्गा (")	१२
■1494	बालचित्रमय चैतन्यलीला	१०
■1157	गीता-सटीक, मोटे अक्षर	२०
■1465	गीता-अन्वयअर्थसहित पॉकेट साइज	२०
▲1511	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१३
■1476	दुर्गासप्तशती-सटीक	२५
▲1251	भवरोगकी रामबाण दवा	१२
▲1270	नित्ययोगकी प्राप्ति	१०
▲1268	वास्तविक सुख	६
▲1209	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	१०
▲1464	अमृत-बिन्दु	१०
▲1274	परमार्थ सूत्र-संग्रह	१२
▲1254	साधन नवनीत	
■1008	गीता—पॉकेट साइज	१०
▲ 754	गीतामाधुर्य	१०
▲1208	आदर्श कहानियाँ	१०
▲1139	कल्याणकारी प्रवचन	१०
■1342	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	१०
▲1205	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१०
▲1506	अमूल्य समयका सदुपयोग	१२
▲1272	निष्काम श्रद्धा और प्रेम	१२
■1204	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	७
▲1299	भगवान् और उनकी भक्ति	८
■ 854	भक्तराज हनुमान्	६
▲1004	तात्त्विक प्रवचन	७
▲1138	भगवान्से अपनापन	८
▲1187	आदर्श भ्रातृप्रेम	
▲ 430	गृहस्थमें कैसे रहें ?	७

कोड		मूल्य रु०
▲1321	सब जग ईश्वररूप है	७
▲1269	आवश्यक शिक्षा	६
▲ 865	प्रार्थना	४
▲ 796	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲1130	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	५
■1154	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■1200	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	५
▲1174	आदर्श नारी सुशीला	४
▲1507	उद्धार कैसे हो	१०
■ 541	गीता-मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	५
▲1614	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	१०
■1644	गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण	६५
▲1635	प्रेरक कहानियाँ	६
▲1003	सत्संगमुक्ताहार	६
▲1512	साधनके दो प्रधान सूत्र	५
▲ 817	कर्मरहस्य	५
▲1078	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	५
▲1079	बालशिक्षा	५
▲1163	बालकोंके कर्तव्य	
▲1252	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲ 757	शरणागति	५
▲1186	श्रीभगवन्नाम	
▲1267	सहज साधना	५
▲1005	मातृशक्तिका घोर अपमान	४
▲1203	नल-दमयन्ती	४
▲1253	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य	
▲1220	सावित्री और सत्यवान्	४
▲ 826	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 798	गुरुतत्त्व	३
■ 856	हनुमानचालीसा	३
■1661	" " (लघु आकार)	२
▲ 797	सन्तानका कर्तव्य	३
■1036	गीता—मूल, लघु आकार	३
■1509	रामरक्षास्तोत्र	३
■1070	आदित्यहृदयस्तोत्र	२
■1068	गजेन्द्रमोक्ष	२
■1069	नारायणकवच	२
■1775	अमोघ शिवकवच	३
▲1089	धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ?	३
▲1039	भगवान्‌की दया एवं भगवत्कृपा	३
▲1090	प्रेमका सच्चा स्वरूप	३
▲1091	हमारा कर्तव्य	३
▲1040	सत्संगकी कुछ सार बातें	३
▲1011	आनन्दकी लहरें	३
▲ 852	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	३
▲1038	संत-महिमा	३
▲1041	ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय	३
▲1221	आदर्श देवियाँ	३
■1201	महात्मा विदुर	३
■1202	प्रेमी भक्त उद्धव	
■1173	भक्त चन्द्रिका	६

उर्दू

कोड		मूल्य रु०
■1446	गीता—उर्दू	१०

तेलुगु

कोड		मूल्य रु०
■1573	श्रीमद्भागवत-मूल मोटा टाइप	१५०
■1858	श्रीमदान्ध्रमहाभागवतमु-दशम स्कन्धमु—सटीक	१४०
■1738	श्रीमद्भागवत संग्रहमु	१००
■1698	श्रीमन्नारायणीयम्—श्लोकार्थसहितम्	५०
■1699	श्रीमहाभागवत मकरंदालु	२२
■1767	श्रीपोतनभागवतमधुरिमलु	६०
■1632	महाभारत विराटपर्व	७०
■1352	रामचरितमानस-सटीक,ग्रन्थाकार	१६०
■1419	रामचरितमानस—केवल भाषा	१२०
■ 982	श्रीमद्देवीभागवत वचनमु	२००

कोड		मूल्य रु०
■ 975	संक्षिप्त शिवपुराण	१७०
■ 981	श्रीमद्वाल्मीकीय रा०वचमु	२५०
■ 979	सं०महाभारतमु प्रथम खण्डमु	२००
■ 980	,, ,, द्वितीय खण्डमु	२००
■ 1557	वाल्मीकिरामायण-(भाग १)	१५०
■ 1622	,, ,, (भाग-२)	१८०
■ 1745	श्रीमद्वा० रा० (भाग-३)	२००
■ 1429	श्रीमद्वाल्मीकिरामायण सुन्दरकांड (तात्पर्यसहित)	७५
■ 1477	,, ,, (सामान्य)	८५
■ 1714	गीता-दैनन्दिनी—वि० सं०	६५
■ 1172	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१२०
■ 845	अध्यात्मरामायण	१००
■ 772	गीता-पदच्छेद-अन्वयसहित	४५
■ 1921	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश	१००
■ 914	स्तोत्ररत्नावली	२५
■ 1684	श्रीगणेशस्तोत्रावली	४
■ 1685	श्रीदेवीस्तोत्रावली	४
■ 1804	श्रीरामस्तोत्रावलि	४
■ 1806	श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावलि	४
■ 1639	बालरामायण-लघु आकार	१
■ 1466	वाल्मीकीयरामायण-सुन्दरकाण्ड, मूल, पुस्तकाकार	४५
■ 924	,, ,, मूल गुटका	३०
■ 1532	,, ,, वचनमु	५०
■ 1026	पंच सूक्तमुलु-रुद्रमु	१०
■ 1758	शिवपंचायतनपूजा	७
■ 1763	श्रीललितासहस्रनाम, त्रिशती एवं खड्गमालासहितम्	१५
■ 771	गीता—तात्पर्यसहित	३०
■ 910	विवेकचूडामणि	२५
▲ 904	नारद-भक्तिसूत्र मुलु (प्रेमदर्शन-)	२०
■ 969	गोसेवाके चमत्कार	२०
■ 1959	हरे राम हरे कृष्ण (स्टीकर)	२
■ 959	कन्हैया (चित्रकथा)	१२
■ 960	गोपाल (,,)	१२
■ 961	मोहन (,,)	१२
■ 962	श्रीकृष्ण (,,)	१२
■ 963	रामलला (,,)	२०
■ 964	राजा राम (,,)	२०
■ 966	भगवान् सूर्य (,,)	२०

कोड		मूल्य रु०
■ 965	दशावतार (चित्रकथा)	१२
■ 1686	अष्टविनायक (,,)	१२
■ 967	रामायणके प्रमुख पात्र (,,)	२५
■ 887	जय हनुमान् (,,)	२५
■ 968	श्रीमद्भागवतके (,,) प्रमुख पात्र	२५
■ 1301	नवदुर्गा (,,)	१५
■ 1859	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र (,,)	१७
■ 970	प्रमुख देवियाँ (,,)	१५
■ 971	बालचित्रमय श्रीचैतन्यलीला (,,)	८
■ 1753	भागवतकी प्रमुख कथाएँ (,,)	१७
■ 909	दुर्गासप्तशती—मूलम्	१८
■ 1029	भजन-संकीर्तनावली	२५
■ 1309	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	२०
■ 1390	गीता तात्पर्य-पॉकेट, मोटा टाइप	१५
■ 691	श्रीभीष्मपितामह	१५
▲ 1028	गीतामाधुर्य	१६
▲ 915	उपदेशप्रद कहानियाँ	१२
▲ 1572	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	८
▲ 905	आदर्श दाम्पत्य-जीवनमु	१२
▲ 1757	आदर्श भातृप्रेम	६
■ 1526	गीता-मूल मोटे अक्षर, पॉकेट	१०
■ 1570	गीता-ताबीजी	६
■ 1031	गीता—छोटी, पॉकेट साइज	१०
■ 1571	गीता-लघु आकार	३
■ 929	महाभक्तुलु	१०
■ 919	मंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	१०
■ 1502	श्रीनामरामायणम् एवं हनुमान-चालीसा (लघु आकार)	२
▲ 766	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	१०
▲ 768	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१२
▲ 733	गृहस्थमें कैसे रहें?	१०
■ 1879	परलोक और पुनर्जन्म...	२०
■ 908	नारायणीयम्—मूलम्	१५
■ 682	भक्त पञ्चरत्न	८
■ 687	आदर्श भक्त	१०
■ 767	भक्तराज हनुमान्	७
■ 917	भक्त चन्द्रिका	१०
■ 918	भक्त सप्तरत्न	१०
■ 641	भगवान् श्रीकृष्ण	८
■ 663	गीता भाषा	१०
■ 662	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	६

कोड		मूल्य रु०
■ 753	सुन्दरकाण्ड—सटीक	८
■ 685	भक्त बालक	६
■ 977	दयालु परोपकारी बालक-बालिकाएँ	१२
■ 976	गुरु माता-पिताके भक्त बालक-रंगीन	१२
■ 978	सच्चे ईमानदार बालक-रंगीन	१२
■ 692	चोखी कहानियाँ	८
▲ 1752	आदर्श कहानियाँ	८
▲ 1802	प्रेरक कहानियाँ	८
■ 1803	श्रीमद्भागवत पंचरत्नमुलु	२५
■ 1751	महात्मा विदुर	६
▲ 920	परमार्थ-पत्रावली	६
■ 930	दत्तात्रेय-वज्रकवच	५
■ 846	ईशावास्योपनिषद्	३
■ 686	प्रेमी भक्त उद्धव	६
■ 1023	श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्-सटीक	४
■ 1760	द्वादश ज्योतिर्लिंग महिमा	१०
■ 1761	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	१०
■ 973	शिवस्तोत्रावली	४
■ 972	शतकत्रयम्	७
■ 1025	स्तोत्रकदम्बम्	५
■ 674	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■ 675	सं० रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्	४
▲ 906	भगन्तुडे आत्मेयुणु	५
■ 676	हनुमानचालीसा	४
■ 801	ललितासहस्रनाम	५
■ 974	,, ,, (लघु आकार)	४
■ 1024	श्रीनारायणकवचमु तात्पर्यसहितमु	३
■ 1030	सन्ध्योपासनविधि	१८
▲ 927	भक्तियोगतत्त्वमु	१५
■ 688	भक्तराज ध्रुव	४
■ 670	विष्णुसहस्रनाम—मूल	३
■ 911	,, -मूल (लघु आकार)	२
■ 1527	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलिसहितम्	६
■ 912	रामरक्षास्तोत्र, सटीक	३
■ 677	गजेन्द्रमोक्षम्	४
■ 1531	गीता-विष्णुसहस्रनाम-मोटा	१०
■ 732	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	३
▲ 923	भगवन्तु दयालु न्यायमूर्ति	२
■ 1762	भजगोविंदम् मोहमुद्गर	५
▲ 1756	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	८

कोड		मूल्य रु०
■ 1764	गोविन्दनामावलि और भजगोविन्दम्-लघु आकार	२
■ 1857	प्रश्नोत्तरी मणिरत्नमाला	५
▲ 760	महत्त्वपूर्ण शिक्षा	६
▲ 913	भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनमु-नाम स्मरणमें	
▲ 761	एकै साधे सब सधै	८
▲ 922	सर्वोत्तम साधन	६
▲ 759	शरणागति एवं मुकुन्दमाला	६
▲ 752	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 734	आहारशुद्धि, मूर्तिपूजा	५
▲ 664	सावित्री-सत्यवान्	३
▲ 665	आदर्श नारी सुशीला	५
▲ 921	नवधा भक्ति	६
▲ 1759	वासुदेव सर्वम्	५
▲ 666	अमूल्य समयका सदुपयोग	१२
▲ 672	सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 671	नामजपकी महिमा	१
▲ 678	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲ 731	महापापसे बचो	२
▲ 925	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲ 1547	किसान और गाय	२
▲ 758	देशकी वर्तमान दशा तथा...	४
▲ 916	नल-दमयन्ती	६
▲ 689	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	६
▲ 928	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	१५
▲ 690	बालशिक्षा	५
▲ 907	प्रेमभक्ति-प्रकाशिका	३
▲ 673	भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द	
▲ 926	सन्तानका कर्तव्य	३
■ 1765	भलेका फल भला	५

मलयालम

■ 1916	गीता—पॉकेट साइज, अजिल्द	१२
■ 739	गीता-विष्णुसहस्रनाम, मूल	६
■ 740	विष्णुसहस्रनाम—मूल	२

पंजाबी

■ 1697	गीता प्रबोधनी	
▲ 1616	गृहस्थमें कैसे रहें?	७
▲ 1894	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७

Our English Publications

■ 1318	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text, Transliteration & English Translation)	200
■ 1617	Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation	130
■ 456	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation)	180
■ 1550	Sunder Kand (Roman)	15
■ 452, 453	Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes	400
■ 564, 565	Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set	340
■ 1080, 1081	Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes	140
■ 457	Śrīmad Bhagavadgītā Tattva-Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	120
■ 455	Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	10
■ 534	,, (Bound)	15
■ 1658	Śrīmad Bhagavadgītā (Sanskrit text with hindi and English Translation)	20
■ 824	Songs from Bhartṛhari	3
▲ 783	Abortion Right or Wrong You Decide	2
■ 1491	Mohana (Picture Story)	15
■ 1643	Ramaraksastotram (With Sanskrit Text, English Translation)	2
■ 494	The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya)	3
■ 1528	Hanumāna Cālīsā (Roman) (Pocket Size)	5
■ 1638	,, Small size	3
■ 1492	Rāma Lalā (Picture Story)	20
■ 1445	Virtuous Children	25
■ 1545	Brave and Honest Children	20

By Jayadayal Goyandka

▲ 477	Gems of Truth [Vol. I]	12
▲ 478	,, ,, [Vol. II]	12
▲ 479	Sure Steps to God-Realization	14
▲ 481	Way to Divine Bliss	8
▲ 482	What is Dharma? What is God?	2
▲ 480	Instructive Eleven Stories	10
▲ 1285	Moral Stories	20
▲ 1284	Some Ideal Characters of Rāmāyaṇa	10
▲ 1245	Some Exemplary Characters of the Mahābhārata	10
▲ 694	Dialogue with the Lord During Meditation	3
▲ 1125	Five Divine Abodes	5
▲ 520	Secret of Jñānayoga	20
▲ 521	,, ,, Premayoga	
▲ 522	,, ,, Karmayoga	20
▲ 523	,, ,, Bhaktiyoga	
▲ 658	,, ,, Gītā	10
▲ 1013	Gems of Satsaṅga	2
▲ 1501	Real Love	5

By Hanuman Prasad Poddar

▲ 484	Look Beyond the Veil	10
▲ 622	How to Attain Eternal Happiness?	15
▲ 483	Turn to God	12
▲ 485	Path to Divinity	12
▲ 847	Gopis' Love for Śrī Kṛṣṇa	5
▲ 620	The Divine Name and Its Practice	3
▲ 486	Wavelets of Bliss & the Divine Message	

By Swami Ramsukhdas

▲ 1470	For Salvation of Mankind	20
▲ 619	Ease in God-Realization	10
▲ 471	Benedictory Discourses	10
▲ 473	Art of Living	8
▲ 487	Gītā Mādhurya	12
▲ 1101	The Drops of Nectar (Amṛta Bindu)	10
▲ 1523	Is Salvation Not Possible without a Guru?	6
▲ 472	How to Lead A Household Life	10
▲ 570	Let Us Know the Truth	5
▲ 638	Sahaja Sādhanā	8
▲ 621	Invaluable Advice	3
▲ 474	Be Good	12
▲ 497	Truthfulness of Life	2
▲ 669	The Divine Name	3
▲ 476	How to be Self-Reliant	
▲ 552	Way to Attain the Supreme Bliss	

Special Editions

■ 1411	Gītā Roman (Sanskrit text, Transliteration & English Translation) Book Size	30
■ 1584	,, (Pocket Size)	18
■ 1407	The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas)	15
■ 1406	Gītā Mādhurya (,,)	18
■ 1438	Discovery of Truth and Immortality (By Swami Ramsukhdas)	30
■ 1413	All is God (,,)	15
■ 1414	The Story of Mīrā Bāī (Bankey Behari)	20

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग)-पर अग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एवं कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

१-**'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकोंको जनवरीका विशेषाङ्क एवं अन्य उपलब्ध मासिक अङ्क दिये जाते हैं।**

२-जनवरीका विशेषाङ्क ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। वर्षपर्यन्त मासिक अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें भेजे जाते हैं।

३-**एकवर्षीय सदस्यता-शुल्क**—भारतमें ₹२०० (सजिल्द ₹२२०) (विदेशमें हवाई डाकसे भेजनेके लिये US$ 45 (₹२७००) (चेक कलेक्शनके लिये US$ 6 अतिरिक्त)।

पंचवर्षीय शुल्क—भारतमें ₹१००० (सजिल्द ₹११००) विदेशमें हवाई डाकसे भेजनेके लिये US$ 225 (₹१३५००) (चेक कलेक्शनके लिये US$ 6 अतिरिक्त)।

डाकखर्च आदिमें अप्रत्याशित वृद्धि होनेपर पंचवर्षीय ग्राहकोंद्वारा अतिरिक्त राशि भी देय हो सकती है।

४-दिसम्बर मासके अन्ततक सदस्यता-शुल्क प्राप्त न होनेपर आगामी वर्षका विशेषाङ्क वी०पी०पी०से भेजा जाता है। इसपर डाकशुल्कका ₹१० अतिरिक्त देय होता है।

५-जनवरीका विशेषाङ्क रजिस्ट्री/वी०पी०पी०से तथा फरवरीसे दिसम्बरतकके अङ्क प्रतिमासके प्रथम सप्ताहतक साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। खोये हुए मासिक अङ्कोंकी सूचना आनेपर उपलब्ध होनेकी स्थितिमें पुनः निःशुल्क भेजनेका प्रयास किया जाता है।

६-पता बदलनेकी सूचनामें **ग्राहक-संख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया पता पढ़नेयोग्य अक्षरोंमें लिखना चाहिये।**

७-पत्र-व्यवहारमें 'ग्राहक-संख्या' अवश्य लिखी जानी चाहिये।

८-**'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी स्थितिमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)**

गीताप्रेसके दो महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

महाभारत—सटीक [छः खण्डोंमें सेट] (कोड 728)—महाभारत हिन्दू-संस्कृतिका महान् ग्रन्थ है। इसे पंचम वेद भी कहा जाता है। यह भारतीय धर्म-दर्शनके गूढ़ रहस्योंका अनुपम भण्डार है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें भगवान् श्रीकृष्णके गुण-गौरवका गान, उपनिषदोंका सार तथा इतिहास-पुराणोंका आशय है। मूल्य रु० १९५०

मानस-पीयूष [सात खण्डोंमें सेट] (कोड 86)—महात्मा श्रीअञ्जनीनन्दनशरणके द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ श्रीरामचरितमानसकी सबसे बृहत् टीका है। यह महान् ग्रन्थ ख्यातिलब्ध रामायणियों, उत्कृष्ट विचारको, तपोनिष्ठ महात्माओं एवं आधुनिक मानसविज्ञोंकी एक साथ व्याख्याओंका अनुपम संग्रह है। मूल्य रु० १४००

(कोड 1935) मानस-पीयूष-परिशिष्ट मूल्य रु० ७५ नवीन प्रकाशन भी।

प्र० ति० २०-१२-२०१३
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

ग्रहाधिपति भगवान् सविताकी आराधना

जयति किरणमाली भासुरः सप्तसप्तिसकलभुवनधामा प्रागिदगन्ताट्टहासः।
भवति विगतपापं कीर्तनादेव यस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गं नराणाम्॥
तावज्जगद्भवति निश्चलमेव सर्वं तावत्क्रियाश्च विविधा न च यान्ति सिद्धिम्।
यावच्च नाथ कमलामलमण्डलस्त्वं नोत्तिष्ठसे व्यपनयन्किरणैस्तमांसि॥
उद्यन्तमम्बरतले सुरसिद्धसङ्घाः सब्रह्मदैत्यमुनिकिन्नरनागयक्षाः।
त्वामर्चयन्ति विबुधाः प्रणतैः शिरोभिश्चञ्चत्किरीटमणिभाभिरनुत्तमाभिः॥
अस्तङ्गते त्वयि जगद्भवति प्रसुप्तं भूयस्त्वयि प्रतपति प्रतिबोधमेति।
एवं सदा वरद लोकहितार्थहेतोरेकस्त्वमेव भगवंस्तिमिरस्य हन्ता॥
तेजोराशे त्वमिह शरणं सर्वतो दुःखितानां त्वत्तुल्योऽन्यो जगति सकले नास्ति कश्चिद् दयालुः।
त्वय्येकस्मिन्भवति सकला भक्तिरन्विष्यमाणा त्वामासाद्य प्रभवति कुतो व्याधिदुःखं नराणाम्॥
यैस्त्वन्नरः सकृदपि प्रणतः कथञ्चिद्ध्यातोऽथवा भुवननाथ तथान्तकाले।
निष्कल्मषा जगति दुष्कृतिनो भवन्ति ते निर्मला सुकृतिनो गतिमाप्नुवन्ति॥
प्राग्दिग्वधूतिलक भासुरकर्णपूर मन्दाकिनीदयितनाथ जगत्प्रदीप।
हेमाद्रितापन नभस्तलहाररत्न सन्ध्याङ्गनावदनराग नमो नमस्ते॥
नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे। त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने॥

किरणोंकी मालासे मण्डित, अत्यन्त प्रकाशमान एवं सात घोड़ोंके रथपर चलनेवाले उन भगवान् सूर्यकी जय हो, जिनका तेज समस्त भुवनोंमें व्याप्त है, जो पूर्व दिशाके अट्टहासकी-सी छवि धारण करते हैं तथा जिनके नामोंका कीर्तन करनेमात्रसे प्रचुर पाप-तापमय दोषोंसे ग्रस्त हुए मनुष्योंके अंग निष्पाप हो जाते हैं। कमलके समान निर्मल मण्डलवाले हे नाथ! जबतक आप अपनी किरणोंके द्वारा अन्धकारसमूहको दूर करते हुए जाग्रत् नहीं हो जाते हैं, तबतक यह सम्पूर्ण जगत् निष्क्रिय ही रहता है और तबतक विविध क्रियाएँ भी सिद्ध नहीं हो पातीं। भगवन्! जिस समय आप आकाशमें उदित होते हैं, उस समय देवताओं और सिद्धोंके समुदाय, ब्रह्मा आदि देवेश्वर, दैत्य, मुनि, किन्नर, नाग, यक्ष तथा ज्ञानी देवगण अपने झुके हुए मस्तकोंद्वारा चमकती हुई मुकुटमणियोंकी उत्तम प्रभाओंसे आपकी अर्चना करते हैं। हे वरद! आपके अस्त हो जानेपर यह समस्त संसार सुप्त हो जाता है और पुनः आपके उदित होनेपर प्रतिबुद्ध हो जाता है। इस प्रकार यह परम्परा सदासे चली आयी है। हे भगवन्! संसारके कल्याण करनेकी इच्छासे एकमात्र अकेले आप ही अन्धकारका विनाश करनेवाले हैं। हे प्रकाशपुंज! आर्तजनोंके सब प्रकारसे शरणदाता आप ही हैं, आपके समान इस सारे संसारमें कोई भी दयालु नहीं है, विविध रूपोंमें की जानेवाली भक्ति आपमें ही जाकर पूर्ण होती है, आपकी शरण ग्रहण कर लेनेपर मनुष्योंको दुःख एवं व्याधि कहाँसे हो सकती है? हे भुवननाथ! जिनके द्वारा आपके भक्तको एक बार भी प्रणाम कर लिया जाता है अथवा मरणासन्न-अवस्थामें जिस किसी भी प्रकार उसका ध्यान कर लिया जाता है, वे मनुष्य चाहे पापकर्मवाले भी हों तो संसारमें निष्पाप तथा निर्मल अन्तःकरणवाले हो जाते हैं और पुण्यात्मा उत्तम गति प्राप्त करते हैं। हे वधूरूपिणी प्राची दिशाके भाल-तिलक! देदीप्यमान कर्णपूर धारण करनेवाले मन्दाकिनीके प्रियतम नाथ! सुमेरुपर्वतको प्रकाशित करनेवाले! आकाशके महान् हाररत्न! अंगनारूपी सन्ध्याके मुखको रंजित करनेवाले! जगत्प्रदीप! आपको बारम्बार नमस्कार है। जो सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र नेत्र हैं, वेदत्रयीमय हैं अथवा त्रिभुवन-स्वरूप हैं, त्रिगुणात्मक शरीर धारण करनेवाले हैं और समस्त विश्वकी उत्पत्ति, पालन तथा संहारके हेतु हैं, उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है। (स्कन्द०, अवन्ती०, अ० ४३)

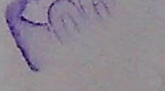

प्र० ति० १०-१२-२०११
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७   पंजीकृत-संख्या—NP/GR-13/2014-2016

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

मिलनेका पता—

'कल्याण'-कार्यालय

पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)